मूल्य : रु. ७५.००

प्रथम संस्करण : १९७२
द्वितीय संस्करण : १९८१

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : रुचिका प्रिण्टर्स द्वारा अनिल प्रिण्टर्स, दिल्ली-११००३२

आवरण : रिफॉर्मा स्टूडियो, नयी दिल्ली-११००३२

NIRALA KI SAHITYA SADHANA
A critical study *by* Dr. Ram Bilas Sharma

भूमिका

निराला की साहित्य साधना के पहले खण्ड में निराला का जीवन-चरित है, व्यक्तित्व का विश्लेपण है। साहित्यकार के व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निदर्शन उसका कृतित्व है। इस कृतित्व का विवेचन पुस्तक के दूसरे खण्ड में है। पहला खण्ड उसकी भूमिका मात्र है।

निराला जव तक जीवित रहे, उनका विवेक-शून्य विरोध ही अधिक हुआ। उनकी मृत्यु के वाद उनका व्यक्तित्व श्रद्धा की फूलमालाओं के नीचे छिप गया। निराला के जीवन-काल में और उनकी मृत्यु के बाद जो लोग उनके साहित्य के सही मूल्यांकन मे लगे रहे हैं, उनके कार्य की एक कड़ी यह पुस्तक है।

काव्य, कथा-साहित्य, आलोचनात्मक निवंधों के अलावा निराला ने देश की राजनीतिक, सामाजिक समस्याओ पर वहुत-कुछ लिखा है। ऐसी काफी सामग्री 'सुधा' की सम्पादकीय टिप्पणियों में विखरी हुई है। इसका अध्ययन निराला के कलात्मक साहित्य के भरे-पूरे विवेचन के लिए आवश्यक है, उस युग की राजनीति के अन्तर्विरोधों को समझने के लिए आवश्यक है, सबसे अधिक आज की राजनीतिक परिस्थिति को समझने के लिए आवश्यक है। आज देश मे जो कुछ हो रहा है, उसका गहरा सम्वन्ध स्वाधीनतापूर्व के भारत से है। प्रेमचंद और निराला अपने युग के दो अत्यंत जागरूक साहित्यकार थे। इनकी राजनीतिक विचारधारा का अपना—उनके साहित्य से स्वतंत्र—महत्व है। उसके अध्ययन से हम उस समय के राजनीतिज्ञों, उनकी विचारधारा, उनकी कार्यवाही को नये सिरे से परखना सीखेंगे।

निराला साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप का विश्लेषण करते है, उसके राजनीतिक दाँवपेंच की छानबीन करते है, साम्राज्यवाद से भारतीय सामन्तों के गठवन्धन को जाँचते है, इस चौखटे मे जाति-प्रथा, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रभाषा आदि समस्याओं पर विचार करते हैं। उसी संदर्भ मे वह साहित्य और दर्शन के क्षेत्रों में नये चिन्तन, नये विचारों के प्रसार पर बल देते है। दर्शन, साहित्य, राजनीति, समाज—सभी क्षेत्रों में उनके विचार परस्पर सम्बद्ध है। इनकी परस्पर सम्बद्धता को ध्यान में रखते हुए ही निराला के चिन्तनशील व्यक्तित्व की सही तस्वीर खींची जा सकती हैं। इस पुस्तक का 'विचारधारा' वाला अंश इसी दिशा में एक प्रयास है।

निराला की रचना-प्रक्रिया का स्रोत है उनका भावबोध। यह भावबोध उनकी विचारधारा से सम्बद्ध है किन्तु उसका प्रतिबिम्ब नही है। निराला का स्वाधीनता-प्रेम उनके साहित्य मे अप्रत्याशित नये-नये रूपो मे व्यक्त होता है। उनकी आस्था के प्रतीक अनेक है, उनका अधिष्ठान एक है। उनकी दार्शनिक मान्यताएँ अनेक अन्तर्विरोधो को पार करती हुई नारी और प्रकृति के मोहक चित्रो के साथ साहित्य मे व्यक्त होती है। नये मानवतावाद के प्रतिष्ठापक निराला के साहित्य मे मनुष्य वीर, क्रातिकारी, योद्धा, कवि, निरन्तर सघर्षशील, साथ ही अन्तर्द्वन्द्व, ग्लानि और पराजय से पीड़ित साधारण मनुष्य भी है। निराला सौन्दर्य और उल्लास के कवि है, दुख और मृत्यु के भी। इन बातो का विवेचन पुस्तक के दूसरे अंश 'भावबोध' मे है।

किसी भी साहित्यकार की कला का विवेचन कठिन कार्य है। बहुत-सी सैद्धातिक समस्याएँ विवेचन आरम्भ होने से पहले अपना समाधान चाहती हैं। साहित्यकार भी स्थापत्यकार की तरह अपना निर्माण-कौशल प्रदर्शित करता है। इस कौशल को हम कैसे परखे? निर्माण-कौशल के लिए उसकी रचना सामग्री क्या है? भाषा, शब्दो का अर्थ, उनकी ध्वनि, छंद-प्रवाह, मूर्ति विधान—इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है, काव्य की संरचना से इनका सम्बन्ध क्या है—इस तरह के प्रश्नो से उलझते हुए पुस्तक के तीसरे अंश मे निराला की कला—मुख्यतः उनकी काव्य-कला—का विवेचन किया गया है।

निराला ने बहुत-सा गद्य लिखा है जिसमें कुछ बहुत महत्वपूर्ण है, कुछ उनकी इच्छापूर्ति वाले स्वप्नो से कमजोर हो गया है। काव्य के साथ इसका अध्ययन करने से निराला की भावदशा, प्रेरणा स्रोतो को समझने मे सहायता मिलती है। किसान-जीवन का चित्रण करने मे उन्होने कथा-साहित्य का नवीन कलात्मक विकास किया है; उसका स्वतत्र महत्व है। निराला ने बहुत तरह का गद्य लिखा है, बहुत तरह के प्रयोग किए है। उनकी गद्य-लेखन-कला का विवेचन पुस्तक के चौथे अंश मे है।

निराला ने हिन्दी, बँगला, सस्कृत, अंग्रेजी मे बहुत-कुछ पढ़ा था, जो पढा था, उसे खूब घोखा था। उन पर शकराचार्य और विवेकानन्द की विचारधारा का ही नहीं, उनके काव्य का, उनकी भावधारा का भी प्रभाव है। कही लगता है कि विचारधारा से भी अधिक यह भावधारा का प्रभाव महत्वपूर्ण है। निराला मे वाल्मीकि, भवभूति और कालिदास की प्रतिध्वनियाँ है। वह जो कुछ पढ़ते है, रचना के लिए कलाकार की दृष्टि से उसका उपयोग करने के लिए। शेक्सपियर और रवीन्द्रनाथ से ग्रहण किए हुए चित्रो का उपयोग जहाँ-तहाँ अनपेक्षित संदर्भो मे विचित्र ढग से करते है। उन पर तुलसीदास के दर्शन का, दर्शन से अधिक उनकी कला का, कला में सर्वाधिक नाद-सौन्दर्य का प्रभाव है। उन्होने आधुनिक हिन्दी कवियो की भाषा का अध्ययन भी बारीकी से किया था। रचनाकार का मन कहाँ-कहाँ भटकता है, कैसी-कैसी उधेड़बुन मे फँसता है, रचना के लिए कहाँ से

उपकरण सँजोता है, इसकी थोड़ी-सी झलक पुस्तक के पाँचवें अंश में है।

इस भूमिका का उद्देश्य विषय-विवेचन का पूरा परिचय देना, या उसका सारांश प्रस्तुत करना नही है। पुस्तक पढ़ने से पहले मन में जो कुतूहल होता है, उसे आंशिक रूप में शान्त करना ही उद्देश्य है। जो कलाकार अपनी कृतियों से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध कर रहे है, उन्हें निराला की कलात्मक सफलता-असफलता का इतिहास दिलचस्प मालूम होगा, ऐसी आशा है। कलाकार और गैर-कलाकार, हिन्दी भाषी और अहिन्दी भाषी—वे तमाम साहित्य-प्रेमी, जिन्हें निराला की साहित्य साधना प्रिय है, इस पुस्तक को पढ़कर गर्व का अनुभव करेंगे, भारतीय साहित्यकारों के कृतित्व में उनकी आस्था दृढ़ होगी—यह विश्वास भी मुझे है।

निराला की जिन पुस्तकों से अंश उद्धृत किए है, उनकी सूची—प्रकाशन काल के उल्लेख सहित—परिशिष्ट में दे दी है।

२५ जुलाई १९७१ रामविलास शर्मा

विषय-सूची

विचारधारा

भावबोध

कला

गद्य-साहित्य

परंपरा

विचारधारा

अंग्रेज़ी राज और भारतीय जनता

हिन्दी-साहित्य में निराला अपने ओजगुण के लिए प्रसिद्ध है। उदात्त उनके काव्य का सहज स्वर है। दार्शनिक चिन्तन में, साहित्यिक वाद-विवाद में, व्यंग्य और माधुर्य में, करुणा और शोक में भी उनकी वाणी सामान्यतः ऊर्जा से प्रेरित रहती है। उनके साहित्य की यह विशेषता उनके व्यक्तित्व की ही देन नही है; उसका गहरा सम्बन्ध उनके युग से है।

अंग्रेज़ी में मिल्टन अपने उदात्त काव्य के लिए प्रसिद्ध हैं। वह उस युग के प्रतिनिधि कवि हैं जिसमें ब्रिटिश जनता ने यूरोप के इतिहास में पहली बार बादशाही खत्म करके प्रजातंत्र स्थापित किया। मिल्टन यूरोप की इस पहली सामन्त-विरोधी क्रान्ति के प्रबल समर्थक थे। ब्रिटिश जनता के क्रान्तिकारी उभार ने उनके मन में प्रजातन्त्रवाद के प्रति जो गहरी आस्था उत्पन्न कर दी थी, वह बादशाही कायम हो जाने पर मिटी नही। मिल्टन के गद्य और पद्य में जो ओजपूर्ण प्रवाह दिखाई देता है, उसका अटूट सम्बन्ध उस युग की क्रान्तिकारी चेतना से है।

भारतीय साहित्य में तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन के प्रतिनिधि कवि है। वह भारत में स्वाधीनता-आन्दोलन का उभार देखते है, भारत से बाहर विश्व-साम्राज्यवाद का घेरा टूटते हुए देखते है, स्वाधीनता-आन्दोलन जिस सीमा-रेखा तक बढ़ता है, उससे और आगे बढ़ने के लिए वह कवि-योद्धा की तरह जनता का आह्वान करते हैं। प्राचीन संस्कृति पर गर्व, तमिल भाषा से प्रेम, निर्धन जनता से हार्दिक सहानुभूति, सामाजिक व्यवस्था को बदलने की उत्कट आकांक्षा उनके काव्य मे उदात्त तत्त्व की सृष्टि करती है और यह उदात्त अभिन्न रूप से भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन से जुड़ा हुआ है।

निराला के समकालीन कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी अनेक रचनाओ मे जहाँ युग की क्रान्तिकारी चेतना से मन का तार जोड़ते हैं, सुब्रह्मण्य भारती और निराला की तरह उदात्त स्वर का परिचय भी वे देते है। वे स्वाधीनता-आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता थे, यह तथ्य सब लोग जानते ही है।

निराला ने लड़कपन में बंगभंग-विरोधी स्वदेशी आन्दोलन देखा, उन्होंने उन वीर युवकों की कहानियाँ पढ़ीं और सुनी जिन्होने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा भारत को मुक्त करने के प्रयास में अपने प्राण दिए, उन्होने सन् '२० और '३० में

स्वाधीनता-आन्दोलन के नये उभार देखे जिनमें भारतीय जनता ने व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होंने स्वयं अपने ज़िले के किसानों को संगठित करने मे योग दिया और उनके संघर्षों का नेतृत्व किया। निराला भारतीय और विश्व राजनीति के बारे मे जो सामग्री मिलती थी उसे ध्यान से पढ़ते थे, जो देखते-सुनते थे उससे पढ़ी हुई सामग्री की तुलना करते थे, फिर अंग्रेजी राज और भारत के बारे मे अपने निष्कर्ष निकालते थे। तब स्वाधीनता-प्रेम उनके साहित्य की प्रेरणा हो तो इसमें आश्चर्य नहीं।

निराला कवि होने के अलावा तार्किक, पत्रकार, वाद-विवाद में भाग लेने वाले तीक्ष्ण-बुद्धि आलोचक भी थे। अनेक निबन्धो मे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक समस्याओं पर उन्होंने अपने विचार विस्तार से प्रकट किये है। सन् '२५ मे गांधी-रवीन्द्र की चरखा-संबंधी बहस पर 'श्रीकृष्ण संदेश' मे धारावाहिक निबंध लिखकर उन्होने अपनी राजनीतिक अभिरुचि का परिचय दिया। सन् '२६ में 'सुधा' के संपादकीय विभाग मे आ जाने के बाद उन्होंने राजनीतिक-सांस्कृतिक विषयो पर अपने विचार अनेक बार—पहले की अपेक्षा अधिक बार—व्यक्त किए।

निराला के चिन्तन की विशेषता यह थी कि उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति, उसके राजनीतिक दांव-पेंच, सांस्कृतिक मामलों मे उसके हस्तक्षेप को पहचाना, गहराई से उसका विश्लेषण किया, देश की राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए एक मार्ग निश्चित किया।

भारत के अनेक पूंजीपति—उनके प्रतिनिधि उदारपंथी (लिबरल) राजनीतिज्ञ—सोचते थे कि अंग्रेजों के सहयोग से भारत का उद्योगीकरण संभव है। इनके विपरीत निराला का विचार था कि अंग्रेज़ों ने भारत को गुलाम बनाया ही इसलिए है कि यहाँ से कच्चा माल खरीदकर विलायत ले जाएँ, वहाँ से तैयार माल लाकर यहाँ बेचें। उनकी नीति भारत को खेतिहर उपनिवेश बनाकर रखने की है, यहाँ के उद्योगधंधों को विकसित करने की नही। निराला ने लिखा :

"महात्माजी के आन्दोलन के बाद से इंग्लैंड के व्यवसायी भारत से खूब सजग रहते हैं। और, ये पूंजीपति ही चूंकि प्रकारान्तर से इंग्लैंड के विधाता हैं, इसलिए ये इतने उदार होंगे कि अपनी भलाई भूलकर भारत की भलाई का खयाल करेंगे, यह बिलकुल भ्रांत धारणा है। भारत अंग्रेज़ी माल के खपाने के लिए अंग्रेज़ों का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ से कच्चे माल की जितनी पैदावार होती है, उसका अधिकांश वहीं के व्यापारियों के हाथ लगता है, जिससे एक-एक के सैकड़ों वसूल होते है।" (सुधा, फरवरी '३०; संपादकीय टिप्पणी—७)

साम्राज्यवाद मूलत. आर्थिक शोषण की व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रिटिश पूंजीपति भारत को गुलाम बनाकर इसलिए रखते थे कि यहाँ का कच्चा माल सस्ते दामों खरीदकर विलायत ले जाएँ और वहाँ का तैयार माल यहाँ महँगे दामों बेचकर मुनाफा कमाएँ। ब्रिटिश पूंजीपति एक दूसरा काम भी कर रहे थे;

वे भारत जैसे देशों में पूंजी लगा रहे थे; छोटे-मोटे कारखाने स्थापित कर रहे थे, भारतीय पूंजीपतियों को छोटे साझेदार बनाकर यहाँ के सीमित औद्योगिक विकास की बागडोर अपने हाथ में रखे हुए थे। किन्तु शोषण की मुख्य पद्धति यह नहीं थी कि ब्रिटिश पूंजीपति बड़े पैमाने पर भारत में पूंजी लगा रहे हों या यहाँ के पूंजीपतियों को कर्ज दे रहे हों। शोषण की मुख्य पद्धति वही पुरानी थी—कच्चा माल सस्ता खरीदना, तैयार माल महँगा बेचना। इस दृष्टि से साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति का विश्लेषण, जो निराला ने किया था, सही था।

साम्राज्यवाद का अर्थ है पूंजी की सार्वभौम सत्ता; यह सत्ता हृदयहीन है, भारत को वह ब्रिटिश पूंजीपतियों के हित में गुलाम बनाये हुए है। निराला ने लिखा, "साम्राज्यवाद इंग्लैंड की राजनीति का मूल है। पूंजी के द्वारा वणिक् शक्ति की वृद्धि के इतिहास के साथ-साथ साम्राज्यवाद का इतिहास इंग्लैंड के साथ गुंथा हुआ है। पूंजी की ही तरह यह हृदयहीन है। अंग्रेजों की शक्ति का समस्त संसार पर प्रभाव है। साथ-साथ अपनी वृत्ति या जातीय साम्राज्यवाद-जीवन के कारण इंग्लैंड संसार भर में बदनाम है। इतिहास के जानकार जानते हैं कि इंग्लैंड की सरकार पूंजीपतियों की सरकार है और साम्राज्यवाद उसकी जीवनी-शक्ति, मूल आधार।" (सुधा, अक्तूबर '३२; संपा. टि.—६)

भारत का आर्थिक शोषण बहाल रखने के लिए साम्राज्यवाद ने जो राजनीतिक दाँव-पेंच अपनाये, उनकी विशेषता यह थी कि एक ओर वह उच्च वर्गों को शासन में भाग लेने का लालच देता था, नये-नये सुधारों की घोषणा करता था, दूसरी ओर जनता के बढ़ते हुए असन्तोष को दबाने के लिए वह अधिकाधिक दमन का सहारा लेता था। निराला ने अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली में ब्रिटिश घोषणाओं का मखौल उड़ाते हुए लिखा :

"दीवाली के भोर, जब जलते हुए आशा-प्रदीपों का अनुमान-तैल समाप्त-प्राय हो रहा था, जब भाग्य का पाँसा कोर के बल लुढ़क चला था और निराशा निशा का उषाकालीन अंधकार घनीभूत हो रहा था, देहली के राजप्रासाद से प्रातः-कालीन मधुर तूर्य-निनाद के समान वायसराय महोदय की घोषणा ने भारत के राजनीतिक जीवन के एक नये ब्राह्ममुहूर्त की सूचना दी। देश के बंदी और मागध दौड़-दौड़कर तार यंत्र की लय के साथ प्रभु-गुणगान करने लगे। मांडलिकों की विलासमयी निद्रा की खुमारी बहुत कुछ उतर गई। सद्गृहस्थों ने भविष्य का प्रोग्राम बनाया और साम्प्रदायिक दूकानदारों ने नये फैशन की चीज़ों से दूकान की श्रीवृद्धि की। किन्तु दीवाने, भक्त, संन्यासियो ने भभूत रमायी, लँगोट कसा, चीर पहना और शंखध्वनि के साथ अपने इष्ट साधन मे तत्पर हो गए।" (सुधा, दिसम्बर '२६; संपा. टि.—१)

निराला ने ब्रिटिश सुधारों का विरोध किया, पूर्ण स्वाधीनता की माँग का समर्थन किया, दमन की बर्बरता का चित्र खींचकर जनता को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। अंग्रेजों ने अहिंसक सत्याग्रहियों पर डंडे बरसाए, क्रान्तिकारियों को फाँसी दी,

किसानों और मज़दूरों का संगठन करने वाले कम्युनिस्ट नेताओं को कठिन कारावास की लंबी सज़ाएँ दीं।

ब्रिटिश अन्याय के विरुद्ध यतीन्द्रनाथ दास ने अनशन करते हुए जब प्राण दिए, तब निराला ने लिखा, "भारतवर्ष ने जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया, जब खिलौना पाकर भारत बहल जाता था। देश समझ गया है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठने से काम न चलेगा। भारत में एक नई लहर पैदा हो गई है। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी है।" (सुधा, नवंबर '२९; संपा. टि.—१)

लखनऊ में सत्याग्रहियों पर पुलिस को डंडे बरसाते देखकर निराला ने लिखा था, "स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डंडों की मार कर, घावों से बहती हुई रक्त-धाराओं को देखकर, अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतराने वाली अंग्रेज़ सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोश में अभी नहीं; मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाए।" (सुधा, जून '३०; संपा. टि.—१)

दमन के साथ सुधार कैसे जुड़े हुए थे, निराला ने यह भी स्पष्ट करते हुए लिखा था, "यहाँ के आन्दोलन को दबा लेने के बाद सरकार की इच्छा है कि अपनी मर्ज़ी के अनुसार ही इस देश के नालायक आदमियों को कुछ हक वह दे दे, अन्यथा अगर यहाँ की माँग पूरी करनी पड़ी तो ब्रिटेन का बहुत बड़ा स्वार्थ बरबाद होगा।" (उप.)

सशस्त्र क्रान्ति से भारत को मुक्त करने के इच्छुक युवकों और अहिंसक सत्याग्रहियों से भिन्न वे लोग थे जो मज़दूर वर्ग को भारतीय समाज की मुख्य क्रान्तिकारी शक्ति मानकर उसका संगठन कर रहे थे। अंग्रेज़ों ने इन्हें मेरठ षड्यंत्र में अभियुक्त करार देकर उन पर मुकदमा चलाया और उन्हें सज़ाएँ दीं। इसके साथ ही ब्रिटिश वायसराय भारत को नई रियायतें देने की घोषणा भी कर रहा था। दमन और सुधारों की इस नीति के बारे में निराला ने लिखा, "सुन्दर हवाई महलों के स्वप्न देखकर संतुष्ट और आह्लादित होने वाले राजनीतिक नेताओं के दिन लद गए। अब तो क्रियात्मक और ठोस बातों की जरूरत है। उनके बिना युवक भारत की जाग्रत स्वातंत्र्य लिप्सा शान्त नहीं की जा सकती। यदि सरकार चाहती है कि एक ओर तो मेरठ षड्यंत्र, लाहौर हत्याकाण्ड और अन्यान्य राजनीतिक अभियोगों द्वारा युवक हृदय को कुचल डाला जाए, और दूसरी ओर इस प्रकार के अनिश्चित और नीहारिकामय धुँधले प्रलोभन उपस्थित कर उसको वशवद बना लिया जाए तो यह उसकी भारी भूल है।" (सुधा, दिसंबर '२९; संपा. टि.—३)

दमन और सुधारों की दोहरी नीति लागू करने के साथ-साथ अंग्रेज़ साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ाकर स्वाधीनता-आन्दोलन को कमज़ोर बनाने का प्रयत्न करते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों में वैमनस्य पैदा करने के अलावा वे अछूतों के अलग संगठन को बढ़ावा देकर हिन्दुओं में भी फूट डाल रहे थे। निराला ने

साम्राज्यवाद की इस भेद-नीति का विरोध किया और इस दिशा में न केवल कांग्रेस के प्रयत्नों का समर्थन किया वरन् उनसे आगे वढ़कर एक सामान्य मानवता के स्तर पर निम्न जनों को संगठित करने के उपाय भी सुझाए।

अंग्रेज़ों की नीति थी कि भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन को यथासम्भव वाकी दुनिया के राजनीतिक आन्दोलनों से दूर रखें, विशेषकर सोवियत रूस की हवा उसे न लगने दें। सोवियत रूस ने अफगानिस्तान से संपर्क कायम किया तो अंग्रेज चौकन्ने हो उठे कि अफगानिस्तान के रास्ते भारत के क्रान्तिकारी रूस से संपर्क स्थापित न कर लें। निराला ने अंग्रेज़ों की परेशानी का खाका खीचते हुए लिखा :

"अमीर यदि रूसी दूत का स्वागत कर लेते है तो वायसराय महोदय के पेट में चूहे कूदने लगते हैं। वे उँगलियो के वल खड़े होकर और सारस के समान दूराति-दूर तक गर्दन ऊँची किए हुए छिपे-छिपे यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि किवाड़ों के दूसरी ओर, दीवार के उस पार क्या स्नेहालाप हो रहा है। और, जब उन्हें निश्चय हो जाता है कि कुछ दाल में काला है, तो फौरन छीक उठते है। जब तक दोनों पक्ष घवराकर दूर भागने का प्रयत्न करते है, तब तक गवर्नमेंट ऑफ इंडिया लंवे डग रखती हुई कमरे में आ दाखिल होती है। सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है।" ('सुधा', नववर '२९; संपा. टि.—५)

अंग्रेज़ों ने जितनी कोशिश की कि भारत के स्वाधीनता-प्रेमियों को सोवियत संघ से दूर रखें, उतना ही उसके प्रति भारतवासियो का आकर्षण वढ़ा। निराला ने अनेक लेखों में सोवियत जीवन से हिन्दी जनता का परिचय कराया और साहित्य के माध्यम से भारत के नए अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्धों की नीव रखी।

निराला न केवल आयरलैंड जैसे देशों के स्वाधीनता-संग्राम का अध्ययन कर चुके थे— नववर '२९ की 'सुधा' मे यतीन्द्रनाथ के वलिदान के साथ उन्होंने चीन और आयरलैंड के युवको के संघर्ष का उल्लेख किया था—वरन् वह सन् '३० में यूरोपीय देशों में फौजी तानाशाही के वढ़ते हुए रुझान को भी ध्यान से देख रहे थे। जून '३० की 'सुधा' में उन्होंने स्पेन के फौजी तानाशाह जनरल प्राइमो दी रिवेरा पर एक लेख लिखा। (यह लेख उनके नाम के साथ छपा है।)

युवकों द्वारा फौजी तानाशाही के विरोध पर निराला ने लिखा, "सच वात यह है कि स्पेन अव सामरिक दवाव सह नही सकता। उसके साधारण लोग शासन के गुरु भार से दवे जा रहे है। इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वहाँ के नौजवानों को विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे है। वे लोग वर्तमान राजा का भी उच्छेद कर देना चाहते हैं। इसके भीतर भी 'राजतंत्र का नाश हो', 'साधारण-तंत्र की विजय हो' के नारे वुलंद हो रहे है।"

साम्राज्यवाद और युद्ध का गहरा नाता है। दुनिया में साम्राज्यवाद कायम है, इसीलिए प्रथम महायुद्ध खत्म हो जाने के वाद वास्तविक शान्ति स्थापित नही हुई, वरन् "शान्ति स्थापना करने का ढोंग रचा जा रहा है।" यह ढोंग पूरा होता नही दिखाई देता। "इसका प्रवान कारण था व्रिटेन का साम्राज्यवाद और गौण

थी अमरीका की प्रतियोगिता।" ('सुधा', नवंबर '२९; संपा. टि.—७)

साम्राज्यवाद अपनी नीति से उपनिवेशों की जनता को ही दवाकर नहीं रखता, वह अपने देश के मज़दूरों को तरह-तरह से धोखा देकर अपने काबू में किए रहता है। जब वह भारत को कुछ रियायतें देने की घोषणा करता है, तब अपने यहाँ के मज़दूरों को समझाता है, 'देखो, हम भारत को आज़ादी देना चाहते हैं, वहाँ के लोग आपस में लड़ें तो हम क्या करें?' वह मजदूरों को राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाता है और उन्हें सिखाता है कि मज़दूरों और पूंजीपतियों के हित एक हैं।

'इंग्लैंड के गँवार' भारत की सम्पत्ति से पलते हैं और राष्ट्रीय गौरव का गीत गाते हैं, ब्रिटन्स नेवर शैल बी स्लेव्ज़। ब्रिटिश पूंजीपति भारत को रियायतें इसलिए देते हैं कि "मजदूर दल को भी खुश करना है। काम मज़दूर ही करते हैं। उन पर सवारी कसे बिना इंग्लैंड के लिए भी ख़तरे में पड़ने का डर है। कहीं उनके विचारों ने पलटा खाया—रूस पडोस ही में है—तो फिर पूंजीपति लोग अकेले राष्ट्रीयता का बोझ कैसे लादेंगे ?" ('सुधा', फरवरी '३०; संपा. टि.—७)

इस तरह ब्रिटिश पूंजीपति नए-नए सुधारों की घोषणा करके न केवल भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को रोकते थे, वरन् ब्रिटिश मजदूरों को भी पूंजीवाद-विरोधी रास्ते पर चलने से रोकते थे। साम्राज्यवादी नीति को छिपाने के लिए वे राष्ट्रीयता की दुहाई देते थे। उनके साथ मज़दूर भी इस राष्ट्रीयता का बोझ ढो रहे थे। निराला ने प्रश्न किया कि मज़दूरों के विचारों ने पलटा खाया अर्थात् उन्होंने समाजवाद के लिए लड़ाई शुरू कर दी तो पूंजीपति अकेले राष्ट्रीयता का बोझ कैसे लादेंगे।

निराला ने साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप का जो विवेचन किया था, उसके राजनीतिक दाँवपेंच का विश्लेषण उससे मेल खाता है। दोनों में आन्तरिक संगति है। वह भारत के शोषक विदेशी पूंजीपतियों को ब्रिटिश मज़दूरों से अलग करके देखते हैं, भारत के लिए सुधारों की घोषणाएँ ब्रिटिश मज़दूरों को कैसे प्रभावित करती हैं, यह भी वह स्पष्ट करते हैं। वह भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन को विश्व-राजनीति से अलग करके नहीं देखते, वह साम्राज्यवाद के उन सूत्रों को सुलझाते हैं, जिनसे भारत, ब्रिटेन तथा अन्य देश बँधे हुए हैं।

साम्राज्यवाद के जैसे राजनीतिक दाँवपेंच हैं, वैसी ही उसकी सांस्कृतिक नीति है। भारत में जैसे कुछ पूंजीपति और उनके प्रतिनिधि—उदारपंथी राजनीतिज्ञ—यह समझते थे कि अंग्रेज़ों के सम्पर्क से औद्योगिक विकास सम्भव है, उसी तरह यहाँ बुद्धिजीवियों का एक दल कहता रहा है कि इस देश का सांस्कृतिक नवजागरण अंग्रेज़ी राज से सम्पर्क का परिणाम है। इनमें पूंजीवादी बुद्धिजीवी ही नहीं, कुछ प्रगतिशील विद्वान् भी हैं जो इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का दावा करते हैं। मार्क्स की विचारपद्धति को न समझकर, कुछ सूत्रों की आवृत्ति के बल पर वे सिद्ध करते हैं कि भारतीय समाज, संस्कृति शताब्दियों से स्थिर और गतिरुद्ध थी, अंग्रेज़ों के सम्पर्क से पहली बार वह सक्रिय और गतिशील हुई। चेतन ब्रह्म के स्पर्श

से मानो जड़ प्रकृति में स्पंदन हुआ हो !

इनके विपरीत निराला का मत यह था, "भारतवर्ष अंग्रेज़ों की साम्राज्य-लालसा का सर्वप्रधान ध्येय रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अंग्रेज़ों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती थी, पर सात समुद्र पार से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश मे राज्य करना जिन अंग्रेजों को अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किए कैसे रह सकते थे ? अंग्रेजों की नीति हुई—भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगीं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखाई जाने लगी। हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगी। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार मे डाल दिया गया। बाकायदा अंग्रेज़ी की पढ़ाई होने लगी। इस देश का शताब्दियों से अंधकार मे पड़ा हुआ जन-समाज समझने लगा कि जो कुछ है, अंग्रेज़ी सभ्यता है, अंग्रेज़ी साहित्य है, और अंग्रेज हैं।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—६)

निराला ने भारत में अंग्रेज़ों की सांस्कृतिक नीति को उनकी साम्राज्यवादी राजनीति से अलग करके नहीं देखा; उन्होंने इस तथ्य की ओर संकेत किया कि अंग्रेज़ों की साम्राज्य-लालसा को तुष्ट करने का साधन उनकी सांस्कृतिक नीति है। इतिहास को विकृत करना, भारतवासियों में अपनी सभ्यता के प्रति हीनभाव पैदा करना, भारतीय भाषाओं को गँवारू और अविकसित बताना—उनकी सांस्कृतिक नीति के मूल सूत्र थे। किसका दृष्टिकोण सही है—अंग्रेज़ों की प्रगतिशीलता को सराहने वाले बुद्धिजीवियों का या निराला जैसे साहित्यकारों का ?

साम्राज्यवाद से जहाँ बन पड़ा, उसने न केवल भाषाओं का, वरन् उन्हें बोलने वाली जातियों का भी नाश किया। अमरीकी महाद्वीपों में अज्तेक और इंका जनों की सभ्यताएँ अत्यन्त विकसित थीं। अब वहाँ उनके ध्वंसावशेष ही रह गए हैं। रेड इंडियन जनों से उनकी भूमि छीन ली गई; अमरीकी विश्वविद्यालयों में उनकी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम नही हैं। अमरीकी नीग्रो अंग्रेजी बोलते हैं, उनके पुरखे कौन-सी भाषा बोलते थे, वे यह भी नही जानते। दक्षिणी अफ्रीका, रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड—जहाँ भी साम्राज्यवादियों से बन पड़ा, उन्होने गुलाम बनाए हुए देशों के मूल निवासियो का नाश किया, उनकी भाषाओं और संस्कृतियों का दमन किया।

निराला का दृष्टिकोण सही था; अंग्रेज़ों की प्रगतिशीलता को सराहने वाले बुद्धिजीवियो का दृष्टिकोण गलत है।

भारत की भाषाएँ बची रहीं, उनमे नया साहित्य रचा गया, इसका कारण यह है कि भारतवासी अपनी स्वाधीनता के लिए लड़े। सन् '२० मे यह लड़ाई शुरू नहीं होती; सन् '२० में केवल उसका एक नया दौर शुरू होता है। यह लड़ाई पूरी नही हो सकती जब तक कि साम्राज्यवाद की राजनीति और आर्थिक नीति के साथ उसकी सांस्कृतिक नीति का भी पूरी तरह विरोध न किया जाए। निराला ने

वड़े सचेत ढंग से यह कार्य पूरा करने का प्रयत्न किया।

राष्ट्रीय स्वाधीनता पर वहुत साहित्यकारो ने लिखा है। निराला की विशेषता यह है कि उन्होने साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण, राजनीतिक दाँवपेंच और सांस्कृतिक नीति का गहराई से विश्लेषण किया, ये सव एक-दूसरे से कैसे जुड़े है, यह दिखाया, उन्होने उन उदारपंथी वुद्धिजीवियों का विरोध किया, जो अग्रेजो के सहारे भारत का औद्योगिक और सास्कृतिक विकास करना चाहते थे। हमारी भाषा को कोई गंवारू न कहे, उसे अविकसित न वताए, हमारा साहित्य अग्रेज़ी से हेठा सावित न हो—यह साम्राज्य-विरोधी चेतना स्वभावतः निराला के अपने कृतित्व की समर्थ प्रेरणा भी थी।

राजा, ज़मींदार, किसान

१८५७ मे भारतीय जनता के सघर्ष को दवाने में अंग्रेजो को कश्मीर, पंजाव, हैदरावाद, वंगाल आदि प्रदेशो के राजाओ और जमीदारों से वड़ी सहायता मिली। १८५८ के वाद अंग्रेजो ने अपनी नीति मे यह परिवर्तन किया कि देशी रियासतो को व्रिटिश भारत मे मिलाने के वदले वे उनके मालिको को अपने सहायक के रूप मे पालने लगे। साधारणतः इन रियासतो मे उद्योग-धन्धो का विकास व्रिटिश भारत की तुलना मे भी कम हुआ, यहाँ निरक्षरता और निर्धनता का प्रसार व्रिटिश भारत से भी अधिक था, यहाँ निरंकुश अत्याचार, सामाजिक उत्पीड़न, धार्मिक अन्ध-विश्वास व्रिटिश भारत से भी अधिक थे। लड़ाई के दिनो मे ये राजा अंग्रेज़ी फौज मे रंगरूट भर्ती कराते थे, शान्ति के समय गोलमेज सम्मेलनों मे अपने प्रतिनिधि भेजकर स्वाधीनता-आन्दोलन का विरोध करते थे। भारत मे अंग्रेजी राज के प्रमुख सहायक थे यहाँ के राजा और नवाव। साम्राज्यवाद के इस देशी आधार को ढहाये विना भारतीय स्वाधीनता की लडाई पूरी न हो सकती थी।

निराला महिपादल मे रहते हुए स्वयं अंग्रेजो द्वारा संरक्षित सामन्ती व्यवस्था का निर्दय शोषक रूप देख चुके थे। लाठी के गूले से गरीव पुजारी की उँगलियाँ कुचलने की घटना, 'राजा साहव को ठेगा दिखाया' कहानी के लिए वही से उन्हें प्राप्त हुई थी। वही के विलास-वैभव का स्मरण करते हुए उन्होने **चोटी की पकड़** उपन्यास में लिखा था, "यह स्वर्ग दिखता हुआ दृश्य नरक है। ये राजे-महाराजे राक्षस। ये देवी-देवता पत्थर के, काठ के, मिट्टी के।" (पृ. ५८)

इन देशी राज्यो को अंग्रेजी राज से अलग करके वह न देखते थे। इनके

अत्याचारी शासन के लिए मूलतः अंग्रेज़ ही ज़िम्मेदार थे। पटियाला राज्य में प्रजा पर बर्बर अत्याचारो का विवरण पढ़कर निराला ने क्रोध से लिखा था, "सभ्यता और न्याय का ढोंग रचने वाली ब्रिटिश सरकार यदि अपने हिमायती, दुष्ट, व्यभिचारी देशी नरेशों की विलासिता और अत्याचारो को इस प्रकार छिपाने का प्रयत्न करेगी, यदि वह उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए निरीह और निर्बल प्रजा का इस प्रकार बलिदान करेगी, न्याय का गला इस प्रकार घोटेगी तो शीघ्र ही उसे सभ्य जातियों के सामने मुँह काला करना पड़ेगा। उसे इन पापों का शीघ्र ही दंड मिलेगा।" ('सुधा', नवम्बर '२९; संपा. टि.—९)

अंग्रेजो के आने से पहले भी राजा अत्याचार करते थे, किन्तु तब उन्हें डर रहता था कि बहुत ज्यादा अत्याचार करने पर प्रजा विद्रोह कर देगी, उन्हें लूट लेगी। अब देशी राजाओं के रक्षक हो गए अंग्रेज़। इसलिए वह भय जाता रहा। निराला ने लिखा कि अब वे लंदन-पैरिस की सैर करते है, प्रजा को जी भरकर सताते हैं, "केवल एक दृष्टि रहती है कि सरकार प्रसन्न रहे। दूसरों की महिलाएँ छीन ली गईं, अत्याचार पर अत्याचार हुए, लगान पर लगान बढ़ा, प्रजा ने जरा-सी आवाज़ कृपा के लिए उठाई, तो गाँव का गाँव फूँक दिया गया।" ('सुधा', नवम्बर '३२; संपा. टि.—२)

इन राजाओं की स्थिति से मिलती-जुलती हालत अवध के उन ताल्लुकेदारो की थी जो १८५७ में अंग्रेज़ों के प्रति वफादारी निबाहकर उनके खास विश्वासपात्र बन गए थे। १८५७ की लड़ाई का केन्द्र था अवध। दिल्ली को जीतने के लिए अंग्रेज़ों ने दस हज़ार फौज इकट्ठी की थी तो अवध की लड़ाई के लिए करीब एक लाख। इस अवध में जो राजा और जमीदार अंग्रेज़ो से लड़े, उनकी रियासतें जब्त कर ली गईं, जो वफादार रहे, उनकी रियासतें सुरक्षित रहीं, उन्हे नई रियासतें भी दी गई। जिनके पास पहले अवध में कोई रियासत न थी, किन्तु जिन्होने अंग्रेज़ों की मदद की, उन्हें भी अंग्रेज़ों ने ताल्लुकेदार बना दिया। भारत में हिंदी-भाषी प्रदेश किसान-आन्दोलन का केन्द्र रहा है, उसे दबाने मे यहाँ के ज़मीदार और ताल्लुकेदार अंग्रेज़ों के सबसे बड़े सहायक रहे है।

१८५७ से १९३० और उसके बाद तक देशी सामन्तो के साथ अंग्रेज़ों के गठबन्धन का जो सिलसिला चला, उसका सजीव चित्रण निराला ने अलका के दूसरे अध्याय में किया है। उससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों द्वारा भारतीय किसानों के शोषण में मुख्य भूमिका इन ताल्लुकेदारो की थी। अवध मे प्रचलित लोककथाओं के आधार पर निराला ने वहाँ के एक प्रतिनिधि ताल्लुकेदार का चित्रण इस प्रकार किया :

"बाबू मुरलीधर अवध के आकाश के एक सबसे चमकीले तारे है, जहाँ तक ऐश्वर्य की रोशनी से ताल्लुक है, यानी सबसे नामी ताल्लुकेदार। कहते है, कभी उनके दीपक में इतना तेल न था कि रात को उजाले में भोजन करते, बात उनके पूर्वजों पर है। उनके यहाँ शाम से पहले भोजन-पान समाप्त हो जाता था। यह

विशाल सम्पत्ति उनके पितामह ने अंग्रेज सरकार की तरफदारी कर प्राप्त की। गदर के समय वकरियों के वच्चे ढकनेवाले वड़े-वड़े झावों के अन्दर वंद कर कई मेम और साहवो को वागियों से उन्होंने वचाया था। फिर जव राय विजयवहादुर को फाँसी के समय, उनके महान् भक्त होने के कारण, तीन वार फाँसी की रस्सी कट-कट गई, और गोरे वहुत घवराए, तव उनके गले मे फाँसी लगने का उपाय उन्होंने वतलाया कि यह विष्णु भगवान् के वड़े भक्त है, जव तक इनका धर्म नष्ट न होगा, इन्हे फाँसी नही लग सकती, इसलिए मुर्गी के अंडे का छिलका इनकी देह से छुआ दिया जाए। साहवो ने ऐसा ही किया, तव फाँसी लगी। मुरलीधर के पितामह भगवानदास को अंग्रेज सरकार ने इन कार्यों का पुरस्कार हज़ार गाँव साधारण लगान और दूसरे ताल्लुकेदारों से अनुकूल खास-खास शर्तों पर दिए, तव से इनका रात का दिया जला।"

इनके एक जोडीदार है, ज़मीदार कृपानाथ। इनके पिता होटल मे रसोइए का काम करते थे, फिर संडीले के लड्डू वेचते रहे, कुछ दिन कपड़े की फेरी की, वाद मे रूमालो का कारखाना खोला। कर्ज से तवाह किसी ताल्लुकेदार का गांव नीलाम हुआ तो अफसरो की मुट्ठी गर्म करके "सत्तर हज़ार का मौजा तीस हज़ार मे उन्हे ही मिला।" उनके पुत्र कृपानाथ के ज़माने मे किसान लगानवन्दी का आन्दोलन चलाते है। ज़मीदार का हिमायती लक्खू गरीव किसान वुधुवा पर यह आरोप लगाता है, "यह सुराज की खोज मे नेता की तरह तत्पर है। सरकार और ज़मीदार के दो पाटो मे रहकर पिसने से नही डरता। लोगो को अपनी लीक पर ले चलने को वछवे जैसे फेरता फिरता है। कहाँ से भगवान जाने इसके पास खवर आती है। अव रियाया को लगान न देना होगा। दिन भर इसी काम में तत्पर रहता है।" (अलका, पृ. ६४-६५)

सरकार और ज़मीदार—ये चक्की के दो पाट हुए। इनके वीच मे पिसता है निर्धन किसान, जो समझता है कि स्वराज्य का अर्थ यह है कि ज़मींदार को लगान मत दो। निराला ने अलका उपन्यास '३२-'३३ मे लिखा था। अवध मे इन दिनो किसान आन्दोलन की क्या स्थिति थी, किसानो के प्रति ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस की नीतियाँ क्या थी, इसका विश्लेषण जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा में मिलेगा। उसे देखने से निराला के विचारो का महत्त्व ज्ञात होगा।

हिन्दी कथा-साहित्य मे वहुत वार क्रान्तिकारी वीरो का चित्रण किया गया है। निराला ने भी अपने काव्य और कथा-साहित्य में क्रान्तिकारियो का चित्रण किया है। दोनो मे अन्तर यह है कि निराला के क्रान्तिकारियो का कार्यक्षेत्र हमेशा गाँव होता है। क्रान्ति की सार्थकता है किसानो की मुक्ति मे। अंग्रेजी राज और ज़मींदारी शासन के दोहरे उत्पीड़न से जो किसान को मुक्त करे, वही सच्चा क्रान्तिकारी है। निराला ने 'वादलराग' (१९२४) मे किसान और विप्लवी वीर के सम्वन्ध पर लिखा था :

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृपक अधीर
ऐ विप्लव के वीर !

अप्सरा उपन्यास में चंदन किसानों का संगठन करता है। उसकी गिरफ्तारी का समाचार सुनकर उपन्यास के नायक साहित्य-प्रेमी राजकुमार के मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न होती है। उसे लगता है कि बंदी बना हुआ चंदन उस पर हँस रहा है और कह रहा है, "साहित्य की सेवा करते हो न मित्र ? मेरी माँ थी जन्मभूमि और तुम्हारी माँ भापा—देखो, आज माता ने एकान्त मे मुझे अपनी गोद में—अन्धकार की गोद में छिपा रखा है, तुम अपनी माता के स्नेह की गोद मे प्रसन्न हो न ?" (अप्सरा, पृ. ८९)

अलका मे विजय उर्फ प्रभाकर वही काम करता है जो अप्सरा मे चंदन करता है।

निराला ने 'सुधा' में जो टिप्पणियाँ लिखीं, उनमें बार-बार उन्होने युवकों का आह्वान किया कि वे गाँवों में जाकर किसानो का संगठन करें। शहरों में युवक-सम्मेलन आयोजित करके जो नेता अंग्रेज़ी मे धुआँधार भापण देते थे, उनके बारे में निराला ने लिखा कि वे बातूनी आदर्शवादी और बगुला भगत है। ('सुधा', अक्तूबर '२९; संपा. टि.—१) सम्मेलनों पर रुपया बर्बाद करने के बदले गाँवो मे जाकर काम करना आवश्यक है, इस पर उन्होने लिखा, "गाँवों में अभी तक कोई स्वराज्य का नाम भी नहीं जानता, इसका हमे व्यक्तिगत अनुभव है। ग्राम-प्रचार और ग्राम-संगठन की इसीलिए सख्त जरूरत है।" (उप., संपा. टि. —२)

निराला का मत था कि राजनीतिक प्रचार का उद्देश्य यह होना चाहिए कि किसान शिक्षित हों, उनमें यह योग्यता उत्पन्न हो कि राजनीतिक समस्याओं पर स्वयं विचार कर सकें, उद्देश्य यह न होना चाहिए कि वे कुछ नेताओं के अनुयायी मात्र बनकर रह जाएँ। निराला ने जेल जाने वाले सत्याग्रहियों को लक्ष्य करके लिखा, "जितने आदमी जेल में साल-साल भर की सजा भुगत रहे है, अगर आन्दोलन से पहले कहा जाता कि भारत में तीस हजार केन्द्र बनाकर मूर्ख ग्रामवासियो को शिक्षा दीजिए, उन्ही की मातृभापा में, संसार की आवश्यक बड़ी-बड़ी बातें, उन्ही से प्राप्त रोटियो से गुजर करते हुए, किसी से लड़िये मत, वे परिश्रम करके अन्न पैदा करेंगे, आपके भोजनो की फिक्र करेंगे, आप उनकी विद्या तथा शिक्षा की फिक्र कीजिए, आपका और उनका इस तरह बराबर का व्यवहार रहेगा, तो इतनी बड़ी संख्या दीख पड़ती या नही, इसमें संदेह है।" ('सुधा', सितम्बर '३०; संपा. टि.— ८)

किसानों को शिक्षित किए बिना, उनके साथ रहकर, उन्ही का-सा जीवन बिताकर, उनका संगठन किए बिना भारत स्वाधीन नही हो सकता, निराला का यह दृढ़ विश्वास था। ज़मीदारों के खिलाफ किसानो की लड़ाई केवल उनके वर्ग-स्वार्थ की लड़ाई नहीं थी, निराला की समझ में वह आज़ादी की लड़ाई का अभिन्न

अंग थी क्योंकि अंग्रेजों के पास भारत की बहुसंख्यक जनता—किसानों—को दबाए रखने का मुख्य साधन थे जमींदार। सन् '२९ की मंदी से और भी स्पष्ट हो गया कि साम्राज्यवाद के शोषणचक्र में, सबसे ज्यादा पीसे जाते हैं किसान। जो भी कच्चा माल वे पैदा करते हैं, उसे कौड़ी मोल बेचते है। लेकिन लगान में कमी नहीं होती। लगान गल्ले के रूप में नहीं, मुद्रा के रूप में वसूल किया जाता था। इसलिए सस्ते दामों गल्ला बेचे बिना किसान लगान अदा न कर सकते थे। लगान अदा न कर पाने पर जमींदार उन्हें बेदखल करते थे। जमींदारों की सहायता से अंग्रेज किसानों का शोषण किस तरह करते है, इस पर निराला ने लिखा था :

"पाट, सन, रूई, गल्ला आदि जितना कच्चा माल यहाँ पैदा होता है, मुँहमाँगे दामो पर ही दिया जाता है। किसान लोगो मे माल रोक रखने की दृढ़ता नही, और उस दृढ़ता की जड़ भी काट दी गई है। कारण, लगान उन्हे रुपयो से देना पडता है, खेत की पैदावार का तिहाई-चौथाई हिस्सा नही। समय पर लगान देने का तकाजा उन्हे विवश कर देता है, वे मुँहमांगे भाव पर माल बेच देते है। यह इतनी बड़ी दासता है, जिसका उल्लेख नही हो सकता। आजकल के किसान यह बात भूल गए है कि माल उनका है, इसलिए वे ही उसके दामों के निर्णायक है। वे बाज़ार की तरफ़ आँखें फाड़े हुए भाव का रास्ता देखते रहते हैं। अगर कुछ दिन के लिए भी माल वे रख छोड़ें, तो समय पर लगान न दे सकने के कारण उन पर जमीदारो की बेभाव की पड़ती है। इस तरह वे सोलहो आने विवश है।" (उप.)

यह इतनी बड़ी दासता है जिसका उल्लेख नही हो सकता! दासता के भी अनेक स्तर है। कुछ को दासता ज्यादा खलती है, कुछ को कम, कुछ को बिलकुल नही खलती, उल्टा उससे लाभ होता है। निराला ने अपना ध्यान केन्द्रित किया समाज के उस वर्ग पर जिसे दासता से सबसे अधिक कष्ट था, भारत के उन किसानो पर जो सोलहो आने विवश थे। इनमे भी जो सबसे दलित, निर्धन, भूमिहीन, ज़मीदार की बेगार करने वाले किसान थे, उनके प्रति निराला की सहानुभूति सबसे ज्यादा थी।

अलका मे एक गाँव है जहाँ निराला के युवक क्रान्तिकारी किसानों का संगठन करने जाते है। भारत के पिछड़े हुए गाँवो का मानो वह प्रतिनिधि है। "गाँव मे शूद्रों की ही संख्या अधिक है। प्राय: सभी किसान। कुछ ब्राह्मण है, जो अत्यन्त दरिद्र, बकरियों का कारोबार करते है, अर्थात् बकरियाँ पालकर बच्चे बकर-कसाइयो को बेचते है। दो-चार घर ऐसे भी हैं जो काश्तकारी करते है।" (पृ. ७०)। निराला के लघु उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा' के नायक बिल्लेसुर ऐसे ही गाँव मे बकरी चराते है। नए पत्ते की अनेक कविताओ मे ऐसे ही गाँव की घटनाओं का चित्रण है।

> गाँव के अधिक जन कुली या किसान हैं,
> कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,

नाई, लोहार, वारी, तरकिहार, चुड़िहार,
वेहना, कुम्हार, डोम, कोरी, पासी, चमार,
गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार…
ज़मींदार के वाहन।
वाकी परदेश में कौड़ियों के नौकर हैं
महाजनों के दवैल,
स्वत्व वेचकर विदेशी माल वेचनेवाले।

('महगू महगा रहा')

अलका में वह गाँव, जहाँ विजय किसानों का संगठन करता है, **चतुरी चमार** का गाँव जहाँ निराला स्वयं किसानों की लड़ाई लड़ते हैं, **नए पत्ते** की कविताओ का गाँव जहाँ नए संघर्ष फूट पड़ते है, सव अवध के एक पिछड़े हुए गाँव—गढाकोला की प्रतिच्छवि हैं। स्वाधीनता की समस्या पर विचार करते हुए निराला की निगाह चारों तरफ घूमकर अन्त में इसी गाँव पर आकर ठहर जाती है। इसी गाँव को लक्ष्य करके निराला ने लिखा था कि "गाँवो में अभी तक कोई स्वराज्य का नाम भी नही जानता, इसका हमें व्यक्तिगत अनुभव है।" यह उन्होने लिखा था सन् '२९ में (अक्तूवर '२९ की 'सुधा' में प्रकाशित टिप्पणी में)। सन् '३०-'३१ के आन्दोलन के दौरान इस गाँव के लोगों की चेतना मे मौलिक परिवर्तन हुआ, उनमे नए आत्म-सम्मान की भावना पैदा हुई। इस परिवर्तन को लक्ष्य करके निराला ने 'अलका' ('३२-'३३) में लिखा, "किसानों का सवसे वड़ा कसूर यह कि वे पहले की तरह नहीं डरते, लगान के अलावा वाजिव-उल-अर्ज़ से अधिक जो रकम और परिश्रम किसानों से लिया जाता था—हली, भूसा, रस, पुआल, सिंचाई का काम आदि, अव नही देते; और ऐसा देखते हैं, जैसे परम मित्र हों।" (अलका, पृ. १२८)

वह वाजिव-उल-अर्ज़ भी खूव है।

चतुरी ने निराला से पूछा, "काका, जमीदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक जोड़ा पंचमा। जव मेरा ही जोड़ा मजे मे दो साल चलता है, तव ज्यादा लेकर कोई चमड़े की वरवादी क्यों करे?"

निराला ने उत्तर दिया, "चतुरी, इसका वाजिव-उल-अर्ज में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा, तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने पड़ेंगे।"

अलका के किसानों की तरह चतुरी भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया है। वह मुकदमा लड़ता है और अंत मे उन्नाव से लौटकर निराला से कहता है: "काका, जूता और पुर वाली वात अव्दुल-अर्ज़ में दर्ज नही है।"

यह हुई किसान-आन्दोलन में वाजिव-उल-अर्ज़ (चतुरी के अव्दुल-अर्ज़) की भूमिका।

यह बात '३२-'३३ की है। सन् '३८ में जब सुमित्रानंदन पंत ने 'रूपाभ' निकाला, तब वाजिब-उल-अर्ज की बात पुरानी हो चुकी थी। निराला ने अपना लघु उपन्यास चमेली लिखा; उसमे उन्होने दिखाया कि चतुरी के भाई-बंधु जमीदार से सीधी टक्कर लेने लगे है। सन् '४५-'४६ मे—नए पत्ते की कविताओं के गाँव में—यह संघर्ष और तेज़ होता है। गाँव में डिप्टी, दरोगा और अन्य कई अफसर आते है। ज़मीदार का गोड़इत दूध इकट्ठा करने निकलता है। बदलू अहीर से झगड़ा होता है। गोडइत नाक पर घूँसा खाकर गिर पड़ता है, बदलू अहीर के तरफदार इकट्ठा हो जाते है।

मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार,
लुच्छू नाई, वली कहार, कुल टूट पड़े,
कुछ नही हुआ, कुछ नही हुआ, होने लगा।

('डिप्टी साहब आए')

इस घटना का यह अर्थ नही कि किसान विजयी हुए और जमीदारी-प्रथा का खात्मा हो गया। वह घटना इस बात की ओर संकेत भर करती है कि किसानो की चेतना मे परिवर्तन हुआ है, उनका संगठन किया जा सकता है और वे संघर्षो की नई मज़िलें पार कर सकते है। जमीदार का आतक अपनी जगह कायम है।

जमीदार के सिपाही की
लाठी का गूला, लोहा बँधा,
दरवाजे गढा कर जाता है।

('छलांग मारता चला गया')

लाठी का यह लोहा बँधा गूला जो किसान के दरवाजे गढा कर जाता है, ज़मीदारी आतंक का प्रतीक है और वस्तुस्थिति का सही प्रतीक है।

'झीगुर डटकर बोला' कविता में ज़मीदार का सिपाही किसान-सभा के सदस्यो पर गोली चलाता है।

सन् '२४ से '४६ तक—'तुझे बुलाता कृषक अधीर' से लेकर 'झींगुर डटकर बोला' तक—निराला की कविताओ, कहानियो और उपन्यासो मे चित्रित किसान भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन के उतार-चढ़ाव का नक्शा प्रस्तुत करते है। विप्लवी वीर को पुकारने से शुरुआत करके वे डटकर बोलने की मंज़िल तक पहुँचते हैं। हिन्दी साहित्य मे प्रेमचन्द और निराला दो ऐसे साहित्यकार हैं जो स्वाधीनता के आन्दोलन मे किसानो की भूमिका पर ध्यान केन्द्रित करते है।

काग्रेस की अपेक्षा निराला की सहानुभूति क्रान्तिकारियो के प्रति अधिक थी। निराला और क्रान्तिकारियो के दृष्टिकोण मे अन्तर यह था कि निराला दो-चार अंग्रेजों या उनके देशी सहायको को मारने के बदले किसानों को सगठित करके उन्हे स्वाधीनता-आन्दोलन मे शामिल करना ज्यादा आवश्यक समझते थे। निराला को कांग्रेस से सहानुभूति थी किन्तु जहाँ काग्रेस ज़मीदारो से समझौता करती थी, वह उसकी आलोचना करते थे। निराला को कम्युनिस्ट पार्टी से सहानुभूति ही

नहीं, आशा भी थी कि वह किसानों का संगठन करके जमींदारों और पुलिस का आतंक खत्म करेगी। उनकी यह आशा पूरी न हुई। मेरठ-षड्यंत्र से लेकर एक की दो कम्युनिस्ट पार्टियाँ बनने तक मज़दूरवर्ग के क्रान्तिकारी नेताओं ने असंख्य पृष्ठ इस बहस को लेकर रंगे हैं कि भारतीय पूँजीपतियों में कब और कितने साम्राज्य-वाद से मिल गए। दो पार्टियाँ बनने पर इस तरह के दस्तावेज़ों की पृष्ठ-संख्या में और भी वृद्धि हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मूल सामाजिक आधार भारत के राजा और जमींदार हैं, इस सामंती आधार को खत्म किए बिना साम्राज्यवाद के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व (अथवा प्रभाव) को खत्म नहीं किया जा सकता, सामन्ती अवशेष खत्म किए बिना न तो भारत का पूँजीवादी विकास सम्भव है, न समाजवादी—इस मूल प्रश्न पर क्रान्तिकारी दस्तावेज़ों में बहुत कम लिखा गया, जितना लिखा गया है, उस पर आचरण और भी कम किया गया है। क्रान्तिकारी नेताओं से कौन कहे कि प्रेमचन्द और निराला भी कुछ ऐसा लिख गए है जिससे वे राजनीति में कुछ सीख सकते हैं।

राजनीति की तरह प्रगतिशील साहित्य के विकास के लिए भी निराला का किसान-सम्बन्धी दृष्टिकोण, उनकी विचारधारा महत्त्वपूर्ण है। देश की बहुसंख्यक जनता से कटे हुए अनेक साहित्यकार अहंकार की तलैया में डुबकी लगाकर बहुत-सा आक्रोश का कीचड़ बटोर लाए है किन्तु इससे देश में कोई बहुत बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन नहीं हो गया। इसीलिए निराला जैसे साहित्यकारों की विचारधारा का अध्ययन करना आज और भी आवश्यक है।

द्विज और शूद्र

भारतीय समाज में जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव, छुआछूत से कौन परेशान नहीं है? सबसे ज्यादा परेशान वे हैं जो इस भेदभाव से सबसे ज्यादा फायदा उठाते हैं।

जाति-पाँति का भेदभाव भारतीय समाज पर आसमान से नहीं टपक पड़ा। वह सामन्ती व्यवस्था के साथ उत्पन्न होता है, उसके खात्मे से ही उसके ख़त्म होने की बारी आती है। भारत में सामन्ती व्यवस्था जहाँ जितनी मजबूत रही है, वहाँ जाति-पाँति का भेदभाव भी उतना ही दृढ़ रहा है। ब्रज को देखते अवध में, भोज-पुरी क्षेत्र को देखते मिथिला में इस तरह का भेदभाव अधिक मिलेगा। इसका कारण यह है कि ब्रज और भोजपुरी क्षेत्र की तुलना में अवध और मिथिला सामन्ती व्यवस्था के गढ़ रहे है।

जाति-पाँति भारतीय समाज ही नही, उस प्रत्येक समाज की विशेपता है, जिसका गठन सामन्ती व्यवस्था के अनुरूप हुआ हो।

सामन्ती व्यवस्था मे खाने-पहनने की चीज़ें मशीनों से नहीं, हाथ से, बड़े पैमाने पर नहीं, छोटे पैमाने पर, कारखानों में नही, खेत, घर या दूकान पर तैयार की जाती है। हल-माची की खेती से लेकर चरखे-करघे की कताई-वुनाई तक हर उद्योग में पूरा कुटुम्व शामिल होता है। जो पेशा वाप का, वही वेटे का। इस तरह पेशे के हिसाव से जातियाँ वनती है; पेशे का आधार होता है कुटुम्व, इसलिए जो जाति वाप की होती है, वही उसके वेटे की होती है। समाज मे जो हाथ से खाने-पहनने की चीजें पैदा नही करता, वह ऊँचा समझा जाता है, जो हल चलाता है, कपड़े वुनता है, जूते गाँठता है, वह नीच समझा जाता है।

जिस देश मे सामन्ती व्यवस्था ज्यादा दिन तक रही, उसमे जाति-प्रथा भी सवसे ज्यादा टिकाऊ हुई, उसकी संकीर्णता भी अन्य देशो को देखते वहुत ही घृणित रूपों मे प्रकट हुई, जैसे भारत मे।

भारत मे जितने पेशे है, उससे ज्यादा जातियाँ है। इसका कारण यह है कि वहुत-से कवीले—जाट, गूजर, अहीर इत्यादि—जव वर्ण-व्यवस्था में शामिल हुए तव अपने पुराने नामो का व्यवहार पहले की तरह करते रहे। जिन जातियो के नाम पेशे पर पड़े है, उनमे भी अनेक उपभेद मिलते है और इन उपभेदो का भी वही कारण है : कही-न-कही उपभेदो मे उन कवीलो की स्मृति सुरक्षित है, जिनसे इन जातियों का निर्माण हुआ है।

जातियाँ चाहे जितनी हो, सामन्ती समाज मे मुख्य भेद होता है द्विज और शूद्र मे। खाने-पहनने की चीज़ें जुटाते है शूद्र; शूद्रो के परिश्रम से लाभ उठाकर युद्ध करने, शास्त्र रचने और व्यापार करने वाले होते है द्विज।

भारत मे अंग्रेज़ों के आने से वहुत पहले यहाँ वर्ण-व्यवस्था टूटने लगी थी। पौराणिक गाथाओ मे कलियुग के आने पर जो खेद प्रकट किया गया है, उसका रहस्य है वर्ण-व्यवस्था का विनाश। देशव्यापी भक्ति-आन्दोलन की प्रमुख विशेपता रही है—ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध, मनुष्य-मात्र की समानता की घोपणा। संस्कृत का माध्यम छोड़कर जव लोकभापाओं में साहित्य रचा जाने लगा, तव संस्कृति पर द्विजो—विशेपकर व्राह्मणों—का एकाधिकार भी समाप्त हो गया। संस्कृत में शूद्र कवियो की संख्या नगण्य है, तो हिन्दी, मराठी, तमिल आदि भापाओं में ऐसे अनेक कवि अग्रगण्य है। वे संत कहलाए और उच्च वर्णो द्वारा पूजे गए। रैदास के कुटुम्व मे लोग मुर्दा जानवर ढोते थे किन्तु अपनी साधना के वल पर वह आचारवान विप्रो द्वारा पूजे गए।

> जाके कुटुम्व सव ढोर ढोवंत
> फिरहिं अजहुँ वानारसी आसपासा।
> आचार सहित विप्र करहिं डँडउति
> तिन तनै रविदास दासानुदासा।

भारत में अंग्रेज़ी राज का कायम होना यदि वास्तव में कोई प्रगतिशील कार्य होता तो यहाँ के साहित्य मे रैदास जैसे संतों की वाढ़ आ जाती। किन्तु इसके विपरीत हुआ यह कि उनकी संख्या में तेज़ी से कमी हुई और यह शोध का विषय है कि अंग्रेज़ी राज के डेढ़ सौ वर्पो मे कितने साहित्यकार शूद्र वर्ण में जन्म लेकर भी पुराने सन्तों की तरह समाज में पूजे गए।

जाति-पाँति, ऊँच-नीच का भेदभाव सामन्ती व्यवस्था की देन है। अंग्रेज जव सामन्ती व्यवस्था को पाल रहे थे, उसे अपनी राजसत्ता का मुख्य सामाजिक आधार वना रहे थे, तव जाति-पाँति का भेदभाव मिटता कैसे? अंग्रेजी राज मे उसे नया जीवन मिला, टूटती हुई सामाजिक रूढ़ियाँ एक वार फिर मज़वूत हुईं। शूद्रों की वेगार से लाभ उठाते थे ज़मीदार; ज़मीदारों के संरक्षक थे अंग्रेज़; इसलिए ऊँच-नीच के भेदभाव को दृढ़ करने वाले हुए अंग्रेज़। उनके शासन में देशी सामन्त और विदेशी पूँजीपति के दोहरे शोपण से भारत की निम्न जातियाँ भयानक रूप से त्रस्त हो उठीं। उनके इस त्रास ने निराला के मर्म को छू लिया था, उनके हृदय की समस्त करुणा इन दीन-जनों की ओर प्रवाहित हो गई थी।

करुणा तो औरों की भी प्रवाहित हुई थी, निराला की विशेषता थी उनसे तादात्म्य, उन्हें नीच कहने-समझने वालों के प्रति आक्रोश, ऊँच-नीच के भेदभाव पर टिकी हुई व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए युवकों का आह्वान। चतुरी के लड़के अर्जुन चमार के लिए निराला ने 'मेरे मित्र' शव्दों का प्रयोग किया था (जुलाई '३० की 'सुधा' में गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश के उपन्यास 'अरुणोदय' की समीक्षा में)। गाँव की प्रथा के अनुसार चतुरी निराला के भतीजे थे; इस तरह अर्जुन उनके नाती हुए। उनके लिए निराला ने 'मित्र' शव्द का प्रयोग किया था।

डलमऊ में जव "चमार, पासी, धोवी और कोरी दोने में फूल लिए हुए" निराला के सामने रखने लगे, "डर के मारे हाथ पर नही दे रहे थे कि कही छू जाने पर मुझे नहाना होगा", तव निराला का मन ग्लानि से भर गया और वह स्वयं से पूछने लगे— तुम कितने वड़े क्रान्तिकारी हो, इनके लिए तुमने क्या किया है?

निराला ने उन चमार, पासी, धोवी और कोरी लड़कों से कहा, "आप लोग अपना-अपना दोना मेरे हाथ में दीजिए, और मुझे उसी तरह भेंटिए, जैसे मेरे भाई भेंटते हैं।"

निराला के चिन्तन की विशेपता यह थी कि उनके लिए सामाजिक क्रान्ति शुरू होती थी इन निम्न जातियों से और राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के लिए वे इस सामाजिक क्रान्ति को अनिवार्य मानते थे। निराला के लिए अछूतोद्धार कोई 'रचनात्मक कार्यक्रम' न था जो राजनीतिक आन्दोलन से छुट्टी मिलने पर फुर्सत के वक्त अपना लिया जाता। निराला के लिए जाति-प्रथा का विनाश और समानता के आधार पर समाज का पुनर्गठन एक राजनीतिक कर्तव्य था। उसे पूरा किए विना राष्ट्रीयता का विकास असम्भव था।

जो व्राह्मण और क्षत्रिय अपनी उच्चता का दंभ नही छोड़ते, जो अन्त्यजों को

समान अधिकार नहीं दे सकते, वे नए भारत का निर्माण भी नही कर सकते। निराला ने लिखा—"हमारी राजनीतिक दुर्बलता यही पर है। यही से हमे समाज—जातीय समाज—भारतीय समाज की नींव डालनी है। उसी की मजबूती हमारे राष्ट्र की दृढ़ता है।" ('सुधा' १६ अगस्त, '३३; सपा. टि.—१)

सामाजिक क्रान्ति के बिना राजनीतिक आन्दोलन दुर्बल रहेगा। राष्ट्र की दृढ नीव तब पड़ेगी जब जाति-प्रथा मिटाकर नए सिरे से समाज का गठन होगा। निराला की यह धारणा कितनी सच थी, यह १९७० के स्वाधीन भारत को देखकर अच्छी तरह समझ मे आ जाता है।

निराला ने कहा कि देश के नेता जिन आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यो को लेकर आगे बढ रहे है, उनसे इस सामाजिक क्रान्ति का सामंजस्य करना चाहिए। "जो समाज पुराना है, हारा हुआ है, वह कितनी भी प्राचीन विभूतियों से युक्त हो, वह नवीन युग के लिए मृत है। उसी से पहले हमे लड़ना था। लड़कर परास्त करना था। परास्त कर नए समाज को सजीव और बहुजनों वाला बनाना था। तब हम राष्ट्र का पहला सोपान तय करते। इसी समाज से राष्ट्र को बल मिलता। यही समाज राष्ट्र का समाज है।" (उप.) निराला की इस संपादकीय टिप्पणी का शीर्षक है—'राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता।' इस शीर्षक के अनुरूप ही उन्होने राष्ट्रीयता से समाज के पुनर्गठन का सम्बन्ध जोड़ा है। (इससे पहले १ अगस्त, '३३ की 'सुधा' में 'राजनीति और समाज' शीर्षक टिप्पणी मे भी इसी सम्बन्ध पर जोर है।)

राष्ट्रीय आन्दोलन मे जैसे बहुत से जमींदार शामिल थे, जो वर्ग-स्वार्थ छोड़ने को तैयार न थे, वैसे ही उसमे बहुत से कुलीनता-प्रेमी सज्जन भी थे जो शूद्रो के मुकाबले अपनी द्विजत्व वाली प्रतिष्ठा मे कोई कटौती करने को तैयार न थे। इनका तर्क था कि वर्णव्यवस्था मिट जाएगी तो समाज मे भ्रष्टाचार फैल जाएगा क्योंकि प्रत्येक वर्ण और जाति के अपने संस्कार है, जो सदियो से चले आए है और एक दिन मे मिट नही सकते। निराला ने इन लोगो के लिए लिखा :

"जो लोग यह तर्क उपस्थित करते है कि इस तरह भ्रष्टाचार पैदा होगा, वे मूर्ख है; फिर कहिए, हम फिर कहते है, वे मूर्ख है। अगर आप नही जानते, तो विश्वास कीजिए, वे मूर्ख है। जो मनुष्य देश के सभी मनुष्यो को अपने बराबर समझता है, वह अगर भ्रष्टाचार फैलाता है, तो मनुष्य की उच्चता का, सदाचार का कोई प्रमाण नही।" (उप.)

दंभियो के प्रति निराला का यह आक्रोश-प्रदर्शन था। उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था—अन्त्यजो को द्विजो के बराबर स्थान देना; इसी मार्ग से वे विभिन्न धर्मावलंबियो को भी एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित करने का स्वप्न देखते थे। कुछ वर्ष पूर्व सुनने मे आया था कि कुछ समाजवादी युवक निम्न जातियो को ऊपर उठाने के लिए उन्हें जनेऊ पहना रहे है। निराला का तर्क था कि इससे बड़प्पन का मिथ्या भाव पैदा होता है; जो कल तक नीच समझा जाता था, वह जनेऊ

पहनकर दूसरों को नीच समझने लगता है।

"इसलिए तोड़कर फेंक दीजिए जनेऊ, जिसकी आज कोई उपयोगिता नहीं, जो बड़प्पन का भ्रम पैदा करता है, और समस्वर से कहिए कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं, जितनी आपका नीच-से-नीच पड़ोसी, चमार या भंगी रखता है। तभी आप महामनुष्य हैं।...

"मित्रवर, देश को ऐसे ही महापुरुषों, ऐसी ही महाशक्तियों की आवश्यकता है। यही लोग राजनीति की जड़ सुदृढ़ कर सकते हैं; त्याग, तपस्या तथा अध्यवसाय द्वारा देश के मूर्खों को शिक्षा दे सकते है, समाज को राजनीति के लिए उपयुक्त बना सकते हैं; और सब भ्रम है, सारी बहस मिथ्या है, सारी स्कीम इन्द्रजाल है, सारा व्यक्तित्व दूसरों को गुलाम बनाने का बोझ है।" (उप.)

यह उस बीते हुए युग की आवाज़ है जिसमें निराला ने **देवी** और **चतुरी चमार**, प्रेमचंद ने **गोदान** और **कफ़न** की रचना की थी। यह उस साहित्य की आवाज़ है जो राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन से भारत की निम्नतम जातियों को अपने अन्दर समेट लेने का आग्रह कर रहा था लेकिन जिसकी वह आवाज़ राजनीतिज्ञों ने सुनी नहीं। निराला इस अर्थ में युगद्रष्टा थे कि तमाम राजनीतिज्ञों की अपेक्षा वह स्पष्ट देख रहे थे, और बार-बार घोषित कर रहे थे, कि व्यापक सामन्त-विरोधी क्रान्ति के बिना भारत का साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन कभी पूरी तरह सफल नहीं हो सकता।

वैसे तो श्रेष्ठता का भाव सभी द्विजों में था, किन्तु उसकी मात्रा ब्राह्मणों में सबसे अधिक थी। निराला ने इस दंभ और पाखंड की ज़ोरदार आलोचना की, और अनेक बार की। स्वामी दयानन्द सरस्वती के समाज-सुधारों का उल्लेख करते हुए लिखा, "ब्राह्मणों की ठग-विद्या के सम्बन्ध में भी स्वामीजी ने लिखा है। आज ब्राह्मणों की हठपूर्ण मूर्खता से अपरापर जातियों को क्षति पहुँच रही है। पहले पढ़े-लिखे होने के कारण ब्राह्मणों ने श्लोकों की रचना कर-करके अपने लिए बहुत काफी गुंजाइश कर ली। उसी के परिणामस्वरूप वे आज तक पुजाते चले आ रहे हैं।" ('सुधा', १६ अक्तूबर, '३२, 'प्रबन्ध प्रतिमा', पृ. ५७) इस संदर्भ में स्वामीजी ने एक श्लोक की चर्चा की थी, जिसका भाव यह था : संसार देवताओं के अधीन है, देवता मंत्रों के अधीन है, मंत्र ब्राह्मणों के अधीन हैं, इसलिए ब्राह्मण ही देवता हैं। इस पर निराला की टिप्पणी है, "लोगों से पुजाने का यह पाखंड बड़ी ही नीच मनोवृत्ति का परिचय है।" (उप.)

निराला वर्णव्यवस्था की उपयोगिता अथवा व्यर्थता इतिहास के सन्दर्भ में देखते थे। उनका विचार था, किसी समय यह वर्णव्यवस्था आवश्यक थी और इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। किन्तु यह व्यवस्था शताब्दियों से टूट रही थी और बीसवीं सदी में उसे पूरी तरह निर्मूल किए बिना सामाजिक प्रगति संभव न थी। "अब प्रकृति ने वर्णाश्रम-धर्म के सुविशाल स्तंभों को तोड़ते-तोड़ते पूर्णरूप से चूर्ण कर दिया है।" ('सुधा',

१ दिसम्बर १९३३; 'प्रबन्ध प्रतिमा', पृ. ७६)

वर्णव्यवस्था के विरुद्ध निराला का एक प्रिय तर्क यह था कि पराधीन देश के नागरिको मे न ब्राह्मण होते है, न क्षत्रिय; दास होने के कारण वे सब समान रूप से शूद्र हो जाते है। "म्लेच्छ-शासन मे रहने का 'स्मृति' मे निषेध है, क्योकि इससे जाति मे संस्पर्श दोष आ जाते हैं। आर्य-जाति अनार्य संस्कारो में पड़कर अनार्य हो जाती है। हमारे यहाँ ऐसा ही हुआ। चिरकाल से म्लेच्छ-संसर्ग ने जाति को पूर्व स्थान से च्युत कर दिया। रक्षा के लिए अनेक प्रकार की चेष्टाएँ होती रहने पर भी आचार-विचार, वेशभूषा और भाषा तक मे म्लेच्छो के चिह्न आ गए। पर उच्च वर्ण वालो ने फिर भी अपनी धार्मिक अकड़ न छोड़ी। पराधीन जाति शूद्रत्व को प्राप्त करती है, यह विश्वास उसे न हुआ।" ('सुधा', नवम्बर '३२; संपा. टि.—'हिन्दुओं का जातीय संगठन')

म्लेच्छ-शासन मे मुसलमानो की हुकूमत के अलावा निराला अंग्रेज़ी राज को भी गिनते थे। "कर्मानुसार यहाँ ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि हुए। अब म्लेच्छ-शासन मे सस्पर्श-दोष से वे जातियाँ भी नष्ट हो गई है।" ('सुधा', मार्च '३३; संपा. टि.—५) यह तब नही, अब की स्थिति है।

अंग्रेज़ी राज मे भुखमरी और बेकारी बढ़ रही थी, पुराने पेशे टूट रहे थे और जीविका की तलाश में अवध के ब्राह्मण-ठाकुर दूर परदेश की खाक छान रहे थे। ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व पर गर्व करने का कोई भी प्रत्यक्ष आधार न रह गया था, फिर भी पुराना वर्ण-दंभ छूटता न था। इस दभ पर निराला को हँसी आती थी, क्रोध भी आता था। "उदाहरणार्थ कलकत्ता, बंबई, कानपुर और दिल्ली को लीजिए। यहाँ भारत के सब वर्णो के लोग मिलेगे, सब पराधीन। समाज मे ब्राह्मण कहलाने वाले लोग जूते तक की दूकान करते है। बालकराम शुक्ल सुर्ती और ज़र्दा के ज़हर से देश को जर्जर करने का इरादा गाँठकर, कामयाब होने पर भी, शुक्ल नही रह सकते।...शहरो मे सब वर्णो के लोगो की एक ही पराधीन-वृत्ति गति है, जिसका दंभ भी लोग आपस में बैठकर करते है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १३९-४०)

इस स्थिति से दो निष्कर्ष निकाले जा सकते है। एक यह कि भारत की प्रगति के लिए वही आदर्श वर्ण-व्यवस्था फिर स्थापित की जाय जिसके अन्तर्गत प्राचीन-काल मे उसने प्रगति की थी। दूसरा यह कि वर्णव्यवस्था को निर्मूल करके सदियों के सताए हुए शूद्रो को ऊपर उठने का अवसर दिया जाय। निराला ने पहले निष्कर्ष को ठुकरा दिया, दूसरे को अपनाया और अनेक निबन्धो और टिप्पणियों में शूद्रों में छिपी हुई शक्ति के विकास पर ज़ोर दिया।

"अतः अब जिस जागरण की आशा से पूर्वाकाश अरुण हो रहा है, उसमे सबसे पहले तो वे ही जातियाँ जागेंगी, जो पहले की सोई हुई—शूद्र, अन्त्यज जातियाँ हैं। इस समय जो उनके जागने के लक्षण हैं, वही आशाप्रद है, और जो ब्राह्मण-क्षत्रियो मे देख पड़ते है, वे जागने के लक्षण नही, वह पीनक है—स्वप्न के प्रलाप हैं। विरासत मे पहले के गुण अब शूद्र और अन्त्यज ही अपनावेंगे। यहाँ की सभ्यता

के ग्रहण का क्षेत्र वहीं तैयार है। ब्राह्मण और क्षत्रियों में उस पूर्व-सभ्यता का ध्वंसावशेष ही रह गया है। उनकी आँखों का वह पूर्व-स्वप्न अब शूद्रों तथा अन्त्यजों के शरीरों में भारतीयता की मूर्तियों की तरह प्रत्यक्ष होगा।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २३६)

और भी— "जो शूद्र या अछूत इस देश में सदियों से उच्च वर्णवालों की सेवा करते आ रहे हैं, वे केवल सेवा करते रहें, यही विचार अधिकांश उच्चवर्ग वालो के मस्तिष्क में रहे। उन्हें भी उन्नत होकर ब्राह्मण और क्षत्रियों की तरह समाज में मान्य होना है।···जो लोग प्रतिभाशाली थे, वे जानते थे कि भविष्य में जाति की बागडोर ब्राह्मण-क्षत्रियो के हाथ में नही रह सकती। क्योंकि यह जातीय समीकरण का युग है। अब सब जातियाँ समान तथा मर्यादा में बराबर है। जो सदियों से सेवा करती आ रही है, उन्ही जातियों में यथार्थ मनोबल है। जब तक उनका उत्थान न होगा, भारत का उत्थान नहीं हो सकता। देश के लिए सच्चे सेवाभाव से ये ही जातियाँ काम कर सकती है।" ('सुधा', नवम्बर '३२; संपा. टि.—'हिन्दुओं का जातीय संगठन')

समाज मे ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने के लिए अनेक आन्दोलन हुए और निराला ने उन सबका समर्थन किया किन्तु वह उनसे अलग और उन सबसे आगे भी थे, क्योंकि शिखासूत्र त्यागकर—आचार और विचार दोनों दृष्टियों से—वह द्विज और शूद्र की समानता घोषित कर रहे थे, रूढ़िवादी द्विज-समाज की छाती पर पाँव रोपे हुए बार-बार ललकार रहे थे, 'तुमसे कुछ न होगा, भारत का उद्धार शूद्र जातियाँ ही करेंगी।'

निराला जिन दिनों वर्ण-व्यवस्था पर विचार कर रहे थे, उन दिनों शूद्रों में धनी-निर्धन का भेद स्पष्ट न हुआ था, विशेषकर बैसवाड़े में, जहाँ की समाज-व्यवस्था से वह सबसे अच्छी तरह परिचित थे। स्वाधीन भारत में यह भेद काफी स्पष्ट हो गया है और अब निम्न जातियों के मालदार चौधरी बिरादरी और भाईचारे के नाम पर अपने गरीब भाइयों को गोलबंद करके अपने आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व को दृढ करते है। किन्तु सन् '३०-'३२ में भी यह प्रक्रिया तो स्पष्ट थी कि उच्च वर्णो में गरीबी फैल रही है और जमींदार का मुकाबला करने के लिए सभी गरीब किसानों की एकता ज़रूरी है, उनका जन्म चाहे उच्च वर्ण में हुआ हो, चाहे शूद्र वर्ण में।

अलका के गाँव में शूद्रों की संख्या अधिक है। कुछ ब्राह्मण हैं, जो अत्यन्त दरिद्र होने के कारण बकरियाँ पालते हैं और उनके बच्चे कसाइयों के हाथ बेचते हैं। दो-तीन घर हल जोतने वाले ब्राह्मणों के भी है। ब्राह्मण होने के कारण ये पूज्य माने जाते है किन्तु "इधर पासियों का प्राधान्य होने पर उन्हीं की प्रभुता मानकर रहते है।" (पृ. ७०) पासियों के प्राधान्य का यह अर्थ नहीं है कि गाँव में सामाजिक क्रान्ति हो गई है। बीरन पासी छः भाई हैं, सबके जवान लड़के हैं, "रात को सबकी निगरानी होती है। मशहूर बदमाश। गाँव में हाथी मारकर ले

आएँ, हज्म हो जाय।" (पृ. ५९) ऐसे लोगों के सहारे गरीब किसान जमींदारी शासन से मुक्त नही हो सकते; दरअसल "जमीदार भी इन्हे मानता है।" (पृ. ६०) ज़मीदार का सिपाही जब गरीब किसान बुधुआ को पकड़कर ले चला, तब उसने बीरन को पुकारा, "पर बीरन ने सुनकर भी न सुना"। (पृ. ६२)

इसी गाँव के दरिद्र ब्राह्मणो की तरह **बिल्लेसुर बकरिहा** के नायक है। वह भी बकरियो का कारोबार करते है और इनके गाँव मे भी पासियों का प्राधान्य है। एक लड़का उनकी बकरियाँ देखकर कहता है, "पासियों को खबर कर दी जाय तो नाले में मारकर निको लेगे।" गाँव मे किसानों की एकता का आधार शूद्रत्व नही, उनकी निर्धनता है। 'महगू महगा रहा' कविता मे जैसे बहेना, कुम्हार, डोम, कोरी, पासी, चमार 'ज़मीदार के वाहन' है, वैसे ही गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण इत्यादि, जो अपने को द्विज कहते है। 'अलका' मे जैसे शहर के पढे-लिखे युवक गाँव मे जाकर किसानो का संगठन करते है, वैसे ही 'महगू महगा रहा' कविता के गाँव में—**हमारे अपने है यहाँ बहुत छिपे हुए लोग**।

निराला की रचनाओ से स्पष्ट है कि किसान आन्दोलन की सफलता के लिए शूद्र और द्विज—सभी वर्णो के निर्धन किसानो की एकता जरूरी है और इन किसानों से शहर के शिक्षित युवकों का सहयोग आवश्यक है। **चतुरी चमार** में स्वयं निराला शिक्षित युवको के प्रतिनिधि बनकर चतुरी तथा गाँव के निर्धन किसानों से सहयोग करते है। चतुरी की लड़ाई जमीदार से है; अलका मे बुधुआ लोध की लडाई जमीदार से है। निराला की रचनाओं से यह भी स्पष्ट होता है कि ज़मीदारो का प्रभुत्व खत्म किए बिना निर्धन किसान को शूद्रत्व से मुक्ति नही मिल सकती।

वर्णव्यवस्था सम्बन्धी लेखों मे निराला ने इस व्यवस्था के खोखलेपन, वर्तमान युग मे उसकी नि.सारता, इस व्यवस्था के कारण निर्धन ब्राह्मणों मे फैले हुए मिथ्या, अहंकार और दंभ का चित्रण किया और इस व्यवस्था की कड़ी आलोचना की। उन्होने ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने का काम राजनीतिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया, राष्ट्रीय आन्दोलन की दृढता के लिए उसे आवश्यक माना। दलितजनो के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होने मैत्री और भाईचारे के आधार पर उन्हें अपने बराबर आसन दिया। उनका उद्धार अन्य वर्णो के गरीब किसानों के सहयोग से होगा—इस सत्य की ओर संकेत किया।

राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन कुछ लोगों के लिए अंग्रेजों को हटाने भर का आन्दोलन था; अंग्रेजों को हटाने के लिए समाज-व्यवस्था को बदलना आवश्यक न था। निराला का विचार इनके मत से भिन्न था। उनकी समझ मे एक व्यापक सामाजिक क्रान्ति न केवल इसलिए आवश्यक थी कि पुरानी व्यवस्था सदियों पहले जर्जर हो चुकी है, वरन् इसलिए भी कि उसके बिना देश का राजनीतिक आन्दोलन शक्तिशाली न हो सकता था। इस राजनीतिक आन्दोलन का लक्ष्य क्या हो, उसे शक्तिशाली कैसे बनाया जाए, शिक्षित युवको को सामाजिक क्रान्ति के लिए कौन-

से कदम उठाने चाहिए—इन सब समस्याओं को लेकर निराला ने जो कुछ लिखा था, वह राजनीतिज्ञों के दाँवपेंच से बहुत आगे की बात थी।

नारी की स्वाधीनता

समाज में द्विज और शूद्र का भेद उत्पन्न हुआ, तब उसके साथ स्त्री-पुरुष में छोटे-बड़े का भेद भी पैदा हुआ। पुराने कबीले टूटने पर नए श्रम-विभाजन के आधार पर जैसे वर्णव्यवस्था उत्पन्न होती है, वैसे ही श्रम-विभाजन के आधार पर स्त्री-पुरुष में छोटे-बड़े का भेद उत्पन्न होता है। स्त्री घर का काम करती है, पुरुष बाहर का काम करता है। सम्पत्ति का स्वामी पुरुष होता है, वह युद्ध करता है, शास्त्र रचता है, व्यापार करता है, स्वभावतः उसके काम के आगे स्त्री का घरेलू काम छोटा लगता है। शूद्रों में, जहाँ स्त्री पुरुष के साथ काम करती है, वह द्विज वर्ण की देवियों की तुलना में अधिक समर्थ होती है। जैसे वर्णव्यवस्था विश्वव्यापी है, वैसे ही नारी की पराधीनता। सामन्ती व्यवस्था जहाँ ज्यादा पुरानी और मज़बूत होगी, वहाँ जाति-पाँति के भेदभाव की तरह स्त्री और पुरुष में छोटे-बड़े का भेद भी ज़्यादा होगा। अवध और मिथिला की अपेक्षा ब्रज और पंजाब की देवियाँ अधिक स्वाधीन हैं, इसका यही कारण है। वर्णव्यवस्था की तरह स्त्री-पुरुष की सामाजिक असमानता कभी ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य थी, सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक थी किन्तु उसकी वह भूमिका शताब्दियों पहले समाप्त हो चुकी। राष्ट्र के नए विकास के लिए आवश्यक था कि स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलें, पुरुषों के समान ही वे देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भाग लें।

सामाजिक रूढ़ियाँ जैसे शूद्रों को दास बनाए हुए थी, वैसे ही वे स्त्रियों की पराधीनता का कारण भी थी। निराला ने लिखा, "प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की ही तरह घेर रखा है। घर की छोटी-सी सीमा में बँधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सब कुछ भूली हुई है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १३१) प्राचीन शीर्णता अर्थात् प्राचीन समाज-व्यवस्था की रूढ़ियाँ—वही शूद्रों पर अत्याचार का कारण है, वही नारी की पराधीनता का।

समाज में ऊँच-नीच का भेद मिटाना निराला के लिए एक राजनीतिक कर्तव्य था, उसी तरह नारी के समान अधिकारों का संघर्ष स्वाधीनता-आन्दोलन का

अभिन्न अंग था। पुरुष घर के बाहर अंग्रेजों का दास, घर में उस दास पुरुष की दासी---नारी। इस दोहरी परतन्त्रता को खत्म किए बिना राष्ट्र कैसे स्वाधीन हो सकता है? निराला ने लिखा, "हम लोग स्वयं जिस तरह गुलाम है, उसी तरह अपनी स्त्रियों को भी गुलाम बना रखा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियाँ कर रखा है। इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र मुक्ति देनी चाहिए। तभी हमारी दासता की बेड़ियाँ कट सकती हैं।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १३४-३५)

न केवल भारत में वरन् आधुनिक यूरोप मे भी रूढ़िवादियों का तर्क यह रहा है कि प्रकृति ने ही स्त्री और पुरुष को इस तरह बनाया है कि उनका कार्यक्षेत्र अलग-अलग रहे। स्त्री कोमल है, पुरुष कठोर है; इस भेद के अनुरूप उनके धर्म भी अलग-अलग हैं। निराला कहते है, वे दिन बीत गए जब स्त्री के लिए यह प्रशंसा की बात समझी जाती थी कि वह चित्रलिखे कपि को देखकर डर जाती है। "परन्तु अब आवश्यकता है, हर एक मनुष्य के पुतले में, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, कोमल और कठोर दोनों भावो का विकास हो। अब दोनों के लिए एक ही धर्म होना चाहिए। पुरुष के अभाव मे स्त्री हाथ समेटकर निश्चेष्ट बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर संतानपालन, गृहकार्य आदि वह सँभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। पहले दोनो के भाव और कार्य अलग-अलग थे, अब दोनो के भाव और कार्यो का एक ही मे साम्य होना आवश्यक है।" (उप., पृ. १३०)

इस तरह निराला ने स्त्री-पुरुष के दो धर्मो, दो कार्यक्षेत्रों वाली बात की जड़ ही काट दी। स्त्री का कार्य सन्तान-पालन है, उपार्जन भी। उपार्जन का कार्य पुरुष के अभाव में ही नही, उसकी उपस्थिति मे भी आवश्यक है। स्त्रियों को स्वावलम्बी बनना चाहिए क्योकि "स्वावलम्ब कोई पाप नहीं, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं। उनके आधे हाथ निष्क्रिय हैं। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएँगे, कार्य की सफलता हमे तभी प्राप्त होगी।" (उप., पृ. १३४)

स्त्रियों की सामाजिक पराधीनता का मुख्य कारण उनकी आर्थिक पराधीनता है। पर-निर्भरता के कारण ही उन्हें घर की चहारदीवारी के भीतर बन्द रहकर अनन्त अत्याचार सहने पड़ते हैं। "उनके साथ जो पाशविक अत्याचार किए जाते है, उनका कोई प्रतिकार नही होता। वे चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन रहा है।" (उप., पृ. १३१)

निराला का कहना था कि इस घरेलू दासता का अन्त होना चाहिए। देश के राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन मे पूरी शक्ति नही आ सकती जब तक समानता के आधार पर उसमे पुरुषो के साथ स्त्रियाँ भी भाग न लेंगी। उन्होने लिखा, "अब घर के कोने में समाज तथा धर्म की साधना नही हो सकती। जमाने ने रुख बदल दिया है। हमारे देश की लड़कियो पर बडे-बडे उत्तरदायित्व आ पड़े है। उन्हे वायु की तरह मुक्त रखने मे ही हमारा कल्याण है। तभी वे जाति, धर्म तथा समाज के लिए कुछ कर सकेंगी।" (उप., पृ. १३३)

रूढ़िवादियों का कहना था कि उच्च शिक्षा पुरुषों के लिए आवश्यक है; स्त्रियों को ज़्यादा पढ़ा-लिखाकर क्या करना है? क्या उन्हें नौकरी करनी है? निराला का विचार था कि शिक्षा अपने आप में वांछनीय है; शिक्षित होकर स्त्रियाँ स्वावलम्वी वनें तो यह और भी अच्छा है। राष्ट्र के नए नागरिकों को जन्म देने वाली माताएँ अशिक्षित न रहनी चाहिए।

"महिलाओं की स्वतन्त्रता ही उनके जीवन की सव दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ़ उनकी स्वतन्त्रता का स्वरूप वतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रुक नहीं सकता, न वह अव तक कही रुका है। चूंकि पुरुष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश मे अधिक समर्थ हैं, इसलिए हम स्त्री-स्वतन्त्रता के कार्य में पुरुषो से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतन्त्र और मेधावी वालक-वालिकाएँ नही पैदा हो सकतीं, जिससे राष्ट्र का सर्वांश जर्जर हो जाता है।" ('सुधा', सितम्वर '३२; संपा. टि.—६)

इस तरह स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रश्न से सम्वद्ध था। किन्तु स्त्रियों की शिक्षा उन्हें योग्य माताएँ वनाने के लिए ही आवश्यक न थी; शिक्षित होकर उन्हें स्वावलम्वी भी वनना था और देश के आर्थिक जीवन में भाग लेना था। उन्होंने लिखा, "ज्ञान के विना जीवन व्यर्थ है। निर्वाह होना कठिन है। स्वावलम्वन नही आता। स्वावलम्वन कोई पाप नही, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं। उनके आधे हाथ निष्क्रिय हैं। जव स्त्रियो के भी हाथ काम मे लग जाएँगे, कार्य की सफलता हमें तभी प्राप्त होगी।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. १३४)

आर्थिक पराधीनता के कारण ही समाज में दोहरी नैतिकता का जन्म होता है। स्त्रियो के लिए एक कानून है, पुरुषों के लिए दूसरा। पुरुष विधुर हो जाए तो दूसरा विवाह कर सकता था, विधुर हुए विना भी एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था, धनी हुआ तो रखेलों और वेश्याओं की कमी न थी, किन्तु स्त्री के विधवा हो जाने पर वह चाहता था कि स्वर्गीय पति को याद करते हुए वह शेष जीवन यों ही विता दे। इस दोहरी नैतिकता से क्षुब्ध होकर निराला ने लिखा था, " 'सीता,' 'सावित्री,' 'दमयंती' आदि की पावन कथाएँ आँखें मूंदकर लिख सकता हूँ। तव वीवी के हाथ 'सीता' और 'सावित्री' आदि देकर वगल मे 'चौरासी आसन' दवाने वाले दिल से नाराज़ न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को विगाड़ने की कोशिश करके ही विगड़ा हूँ। अव ज़रूर सँभलूंगा।" ('सुधा', १ फरवरी '३४—'देवी')

आर्थिक निर्भरता के कारण ही स्त्रियाँ घरो मे वंद रहकर दव्वू और निस्सहाय वन गई थी। वे गुंडों से अपनी रक्षा न कर पाती थी, एक वार भ्रष्ट की जाने पर वेश्यावृत्ति अपनाने को विवश होती थी। इस वाहर के व्यभिचार के अलावा वे घर में अनेक प्रकार के व्यभिचार करने को विवश होती थी। ये सव ऐसी गोपनीय

वातें हैं जिनके वारे में कोई कुछ लिखना पसन्द नही करता। किन्तु निराला ने लिखा, "शहर और देहात, सव जगह, समाज की एक ही-सी पतित अवस्था है। भारतीयता, दिव्यता और सतीत्व आदि की जितनी वाते है, दिखलाऊ है। सती-प्रथा की तरह सतीत्व-प्रथा के उठ जाने का अगर कानून वन जाए, तो और-और देशों की महिलाओं की तरह यहाँ की सीता और पार्वती देवियो के भी चित्र देखिए। छिपे तौर पर कितना पाप होता है, यह किसी भी आँख-कान वाले से छिपा नही। मै जहाँ रहता हूँ, उसके ही एक कोस के अन्दर सतियाँ ससुर, जेठ, भाई और पिता तक के साथ पति-सम्वन्ध स्थापित होने पर कम हिचकी।" (प्रवन्ध प्रतिमा, पृ. १४०-४१)

शिक्षा के अभाव मे समाज के भीतर अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थी जिनसे सर्वाधिक हानि स्त्रियो की होती थी। पर्दा-प्रथा, वाल-विवाह आदि ऐसी ही कुरीतियाँ थी। निराला ने अन्य हिन्दी साहित्यकारो की तरह इनका विरोध किया। उनसे आगे वढकर उन्होने इस वात पर जोर दिया कि स्त्रियों मे वौद्धिक विकास की क्षमता वैसी ही है, जैसी पुरुषों मे। कुरीतियाँ दूर करना ही काफी नही है। स्त्रियो में शिक्षा प्रचार आवश्यक है, जिससे वे ज्ञान के क्षेत्र मे पुरुषों के साथ काम कर सकें। निराला स्वामी दयानन्द और आर्य समाज के प्रशंसक थे क्योकि इनके प्रयत्न से स्त्रियो मे शिक्षा-प्रचार हुआ था। उन्हे इस वात से विशेष प्रसन्नता थी कि "स्त्रीसमाज को उठाने वाले पश्चिमी शिक्षाप्राप्त पुरुषो से वह (स्वामी दयानन्द) वहुत आगे वढे हुए है" और "वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसंगो में पुरुषो के ही वरावर नारियो को अधिकार देते है।" (उप., पृ. 62)

निराला स्वभावतः साहित्य मे स्त्रियो के योगदान के प्रति वड़े सजग थे। वे हर प्रकार से उन्हे प्रोत्साहन देते थे और साहित्य के पूर्ण विकास के लिए इस योग-दान को अत्यन्त आवश्यक मानते थे। सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि हिन्दी लेखिकाओ की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा था, "हिन्दी के नवीन युग-विकास को युवको की तुलना मे कम शक्ति इनसे नही प्राप्त हुई। कालिदास कला-विषय पर पति के मुकावले उन्हे 'प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ' इस उक्ति से शायद प्राधान्य देना नही चाहते, और यह उस समय की शायद अधिक रसिकता रही हो; पर मुझे दोनों सम, वल्कि ललित कलाविधि मे देवियाँ समधिक कुशल दीख पड़ती है।" ('सुधा', नवम्वर '३४—'श्री चकोरी जी की कविता')

साहित्य मे स्त्रियाँ पुरुषो के समकक्ष है, उनका योगदान युवक-कवियो से कम महत्त्वपूर्ण नही है, इसके सिवा साहित्य और कला मे वे पुरुषो से और आगे वढ़ सकती है। जव सुमित्राकुमारी सिन्हा की पुस्तक 'अचल सुहाग' प्रकाशित हुई, तव निराला यह देखकर चकित हुए कि यह लेखिका पारिवारिक जीवन के सम्वन्ध मे पुरानी घिसी-पिटी मान्यताओ को चुनौती दे रही है। उन्होने पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा, "एक प्रतिष्ठित परिवार की महिला के कलम से ये जो मनोभाव इन कहानियों मे निकले और परिपुष्ट हुए है, एकाएक एक पुराने पाठक को

तोज्जुब में डाल देते हैं। प्रेम के सम्बन्ध में बदलती हुई धारणा में महिलाओं की प्रतिनिधि की हैसियत से, कवयित्री सुमित्राकुमारी ने बड़ी निर्भीकता दिखलाई है। स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष के विचार शुद्ध हों—अशुद्ध, प्राचीन हों—नवीन, स्त्री के विचारों के सामने मान्य नहीं हो सकते। यद्यपि यूरोप में एक सदी पहले से क्रिश्चियन आदर्श की नारी का मज़ाक उड़ाना शुरू हो गया था—नारी-स्वतन्त्रता की आवाज़ बुलन्द की गई थी, और वैज्ञानिक युग की प्रतिष्ठा के साथ-साथ स्त्रियों के स्वातन्त्र्य का महत्त्व बढ़ा था, फिर भी कल तक हिन्दुस्तान में ऐसी बात न थी। साहित्य के पृष्ठों में नारी का जो रूप था, वह बहुत-कुछ प्राचीन सम्बन्ध लिए हुए ही था।"

सुमित्राकुमारी सिन्हा की पुस्तक निराला के लिए मात्र एक साहित्यिक कृति नहीं थी। उसमें उन्होंने एक सामाजिक परिवर्तन की झलक देखी, नारी का विद्रोही स्वर सुना, जो पुरानी मान्यताओं का बोझ लादे हुए परिवार में घुट-घुटकर मरने को तैयार न थी। उन्होने चेतावनी दी, "मुझे आशा है, हिंदीभाषी जनता इस पुस्तक से अपने घर की महिलाओं की मानसिक स्थिति समझेगी। और कर सके तो यथोचित करेगी, नही तो देवियाँ तो कमर कसकर तैयार हैं ही।" इस चुनौती में निराला के आह्लाद का स्वर भी मिला हुआ है; यह सोचकर वह प्रसन्न थे कि रूढ़िवादियों से जहाँ अभी तक वह अकेले लोहा ले रहे थे, वहाँ अब लेखिकाएँ भी उनके काम में हाथ बँटाने आ गई है।

स्त्री-शिक्षा से निराला की दिलचस्पी का एक विशुद्ध साहित्यिक कारण भी था। लड़का जब तक माँ से खड़ीबोली न सुनेगा, तब तक वह सहजभाव से, खड़ीबोली को मातृभाषा के रूप में ग्रहण करके, हिंदी का महान् लेखक नही बन सकता। विशेष रूप से अवध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में, जहाँ हिन्दी सांस्कृतिक भाषा बन चुकी थी, वह अभी घरों में प्रवेश न कर सकी थी, पुरुष खड़ीबोली बोलता था, तो घर से बाहर, पत्नी से वार्तालाप अवधी या भोजपुरी मे होता था। यह स्थिति हिन्दू घरों की ही नही, मुस्लिम घरो की भी थी। बच्चे अपनी माँ से साफ़-सुथरी खड़ीबोली सुनें, इसके लिए स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार अत्यन्त आवश्यक था।

इस सम्बन्ध में निराला ने लिखा, "स्त्रियाँ यदि अपढ़ रह गईं, यदि उन्हीं की ज़बान न मँजी, तो बच्चा पढ़कर भी कुछ कर नही सकता। मौलिकता का मूल बच्चे की माता है। भाषा का सुधार, संशोधन स्त्रियाँ ही करती हैं। जब तक वर्तमान खड़ीबोली स्त्रियों के मुख से मँजकर नहीं निकलती, तब तक उसमें कोमलता का आना स्वप्न है। वही बच्चा भविष्य के हिन्दी-साहित्य का महाकवि है, जिसे अपनी माता के मुख से साफ़-शुद्ध, मार्जित, सरल, श्रुति-मधुर तथा मनोहर खड़ीबोली के सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १३६)

यहाँ निराला के चिन्तन की एक विशेषता ध्यान देने योग्य है। वह प्रत्येक समस्या पर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से विचार करते है। नारी की स्वाधीनता की समस्या देश के आर्थिक विकास, राजनीतिक आन्दोलन और नवीन

साहित्य के अभ्युदय से जुड़ी हुई है। स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनें; अभी देश अपने आधे हाथों से काम करता है। वे घर की सीमाएँ लाँघकर बाहर आएँ; देश के सामाजिक आन्दोलन में सम्मिलित होकर उसे समर्थ बनाएँ। वे शिक्षित हों जिससे उनके बच्चे समर्थ साहित्यकार बनें। निराला जहाँ किसी स्त्री को उस आदर्श के निकट पहुँचते देखते थे, वह भाव-विह्वल हो उठते थे, गद्य में विचार और तर्क का स्थान कविता ले लेती थी। लखनऊ के एक महिला-सम्मेलन में किसी नेता ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार पर भाषण दिया। उसने कहा कि स्त्रियों के पास वह दृष्टि होनी चाहिए जिससे वे सच्चा रूप पहचान सकें। इस पर खद्दर की साड़ी पहने एक लड़की आगे बढ़ी। वहाँ विदेशी सूत की देशी साड़ी पहने हुए कोई राष्ट्रनेत्री भी बैठी हुई थीं। निराला को लगा कि उस लड़की को देखकर राष्ट्रनेत्री का चेहरा स्याह पड़ गया है। उन्होंने लिखा, "इतना सुनते ही (अर्थात् विदेशी वस्तुओं से सुन्दरता घटती है—नेता की यह बात सुनते ही) खद्दर की साड़ी से सजी हुई एक किशोरी, प्रभात की ज्योतिर्मयी तरंग की तरह, अपने अल्प-सज्जित रूप की तरुण लहरों से उमड़ पड़ी। वहीं संसार-प्रसिद्ध भारत की आदर्श राष्ट्रनेत्री भी बैठी हुई थीं। उनके अधरों के पल्लव अंधकार से ढँक गये। उनकी देशकीमत विदेशी सूत की जरीदार देशी साड़ी भी अपनी रजतशुभ्र द्युति से उस अंधकार को दूर नहीं कर सकी। उस तरुण बालिका की अगम्य द्युति राष्ट्र की आत्मा की ज्योति थी, वहाँ प्राणों का प्याला अपने अपार रूप के गर्व से उस समय के लिए ऊपर तक भरकर कुछ छलक गया था, जिसकी प्रभा से सभास्थल कुछ काल के लिए ताड़ित-हत, चकित, स्तंभित रह गया था। उस अपराजित खिली हुई रूपराशि में थोड़ी देर के लिए राष्ट्र की नारी की अभावशून्य अपनी ही मौलिकता से दृप्त स्वर्गीय छवि आ गई थी।" ('सुधा', फरवरी '३०; संपा. टि.—१३)

इस तरह का—या उससे कुछ घटकर—गद्य-काव्य लिखने वाले और लोग भी थे। उनके लिए स्त्रियों में शिक्षा-प्रसार की समस्या शहरी उच्च या मध्यवर्ग के महिला-समाज तक सीमित थी। किन्तु अधिकांश स्त्रियाँ गाँवों में रहती थीं; निराला के अनुसार इनमें शिक्षा-प्रसार के बिना भारतीय महिला-समाज शिक्षित न कहला सकता था।

"देहात में शिक्षा की बहुत कमी है, वहाँ लड़कों को ही मदरसा भेजना दुश्वार है। गाँवों से कोस-कोस की दूरी पर मदरसे हैं। हर एक तहसील में मुश्किल से दो मिडिल स्कूल हैं। आठ-आठ, दस-दस कोस के लड़के मिडिल स्कूल के बोर्डिंग-हाउस में ठहरकर पढ़ नहीं सकते। अधिकांश लोगों की आर्थिक स्थिति वैसी नहीं है। जो लोग सम्पन्न हैं, उनमें अकारण प्यार की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि वे बच्चे को अपने से अलग नहीं कर सकते, वह मूर्ख भले ही रह जाए। जहाँ लड़कों का यह हाल है, वहाँ लड़कियों की बात ही क्या? हर एक गाँव से प्रतिदिन जितनी भीख निकलती है, यदि उतना अन्न रोज़ एकत्र कर लिया जाए, तो गाँव में ही एक छोटी-सी पाठशाला खोल दी जा सकती है। एक शिक्षक की गुज़र उससे हो जाएगी। अविद्या का

जो यह प्रबल मोह फैला हुआ है, यह न रह जाएगा। बालिकाओं के लिखने-पढ़ने का गाँव ही में प्रबन्ध हो सकता है। इस तरह उनके प्रति सच्चा न्याय गाँव वाले कर सकते हैं। शहरो मे तो लड़कियो को पढ़ाने के अनेक साधन है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १३३)

जितना अन्न भीख मे दिया जाता है, उसे इकट्ठा करके गाँव मे लड़कियों के लिए पाठशाला खोली जा सकती है—कैसा उत्कट प्रेम, देश की प्रगति के लिए कैसी आतुरता! कल्पना के आकाश से उतरकर धरती पर दृढ़ता से पाँव रोपने की कैसी अद्‌भुत क्षमता थी निराला में! जिनके पास साधन थे, उनके हृदय में यह उत्कट देश-प्रेम न था; निराला के हृदय में देश की निरक्षर-दरिद्र जनता के लिए अपार स्नेह था, वैसा ही साधनों का नितान्त अभाव था। किन्तु वह क्रान्तिकारी साहित्यकार थे; नवयुवकों को एक स्वप्न दे गए—ग्रामीण स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के बिना सामाजिक क्रान्ति पूरी न होगी। शूद्रों के उद्धार के लिए सामाजिक क्रान्ति आवश्यक है, स्त्रियों की स्वाधीनता के लिए सामाजिक क्रान्ति आवश्यक है। निराला विभिन्न सन्दर्भो में क्रान्ति की चर्चा करते है। वास्तव में ये सब अनेक क्रान्तियाँ न होकर एक ही क्रान्ति के विभिन्न स्तर हैं। यदि स्त्रियों में सामाजिक क्रान्ति पूरी नही हुई तो राजनीतिक क्रान्ति कहाँ पूरी हो गई है? आज भारत और पाकिस्तान की अधिकांश समस्याएँ—उनकी आन्तरिक समस्याएँ, परस्पर सम्बन्धों की समस्याएँ—हमारे गतिरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन की समस्याएँ हैं। निराला की विचारधारा का महत्त्व यह है कि उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक क्रान्ति के रूप में देखा, उस क्रान्ति के प्रत्येक स्तर को तीक्ष्ण विश्लेषक दृष्टि से देखा और इन स्तरो के परस्पर सम्बन्ध को पहचाना।

"महान् विप्लव ही हर एक सुधार का मूल है। स्त्रियाँ उन विप्लवों के साथ-साथ, अधिकार-सम्बन्धी जैसे-जैसे परिवर्तन समाज में होते गए, वैसे ही वैसे अपना पूर्व-रूप बदलती गई।" (सुधा', नवम्बर '२९; सपा. टि.—१२)

भारतीय नारी की आदर्श मूर्ति गढ़कर स्त्रियों की समस्या हल नही की जा सकती। विप्लवों के साथ जो अधिकार-सम्बन्धी परिवर्तन हुए हैं, उनके सन्दर्भ में ही नारी की परिवर्तित स्थिति पर विचार हो सकता है। किसी समय स्त्री-पुरुष मे मौलिक अधिकार-भेद माना जाता था, दोनों की शक्ति अलग, कार्यक्षेत्र अलग। निराला ने घर मे बंद रहने वाली स्त्री की घुटन, उसकी यंत्रणा से पर्दा उठा दिया। ज्ञान और कर्म में उसे पुरुष की सहधर्मिणी कहकर उन्होने अपनी तर्कशक्ति से उन तमाम रूढ़ियों को काट डाला, जो उसे दासों का दास बनाए हुए थी। यह सही है कि शिक्षित प्रगतिशील युवतियो को देखकर उन्हें बहुत जल्दी प्रभात की ज्योतिर्मयी तरंगें याद आने लगती थी किन्तु यह भी सही है कि सड़क के किनारे बैठी हुई पागल भिखारिन मे—"वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभाने वाला उसमें कुछ न था"—निराला को "वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना मे लाकर साहित्य मे लिखता हूँ।" (देवी, 'सुधा', १ जुलाई '३४)

यहाँ विचारधारा नही है, एक भाव-विह्वल मनःस्थिति है, वह भूमि है जिसमें कलात्मक साहित्य की सृष्टि होती है। निराला का मन एक भारतीय स्त्री की दुर्दशा देखकर तड़प उठा है। उनकी विचारधारा तर्कबद्ध, भावशून्य, विशुद्ध विश्लेषणात्मक स्थापनाओ का समूह नही है। भावमूलक रचना-प्रक्रिया से उनकी विचारधारा का गहरा सम्बन्ध है; 'देवी' कहानी मे महाशक्ति वाली वात से इस सम्बन्ध की पुष्टि होती है।

शास्त्र और रूढ़िवाद

समाज मे स्त्रियो और शूद्रो को पराधीन वनाए रखने के लिए प्राचीन रूढियो के समर्थक वात-वात मे वेद, पुराण, रामायण, महाभारत और शास्त्रों का हवाला देते थे। उनके तर्क सुनकर लगता था कि इस विशाल साहित्य की रचना स्त्रियों और शूद्रो को गुलाम वनाए रखने के लिए ही हुई है। द्विजो की तुलना मे शूद्रों और पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो को नीचा सिद्ध करने के लिए समाज मे तरह-तरह के कर्मकाण्ड प्रचलित थे। लोग इन्ही को धर्म समझ वैठे थे। निराला ने कर्मकाण्ड और धर्म मे भेद किया। उन्होने कहा कि कर्म वही श्रेष्ठ है, जो ज्ञानजन्य है; अज्ञानजन्य कर्म रूढि का पालन मात्र है। यदि शास्त्र ज्ञानजन्य कर्म का आदेश करता है, तो वह ठीक है; यदि वह रूढियो के पालन का आदेश करता है, तो उसका विरोध करना चाहिए। वर्तमान युग मे मनुष्य को अपनी वुद्धि से काम लेकर अपना सामाजिक व्यवहार निश्चित करना चाहिए; निराला ने कहा कि वात-वात मे शास्त्रो की दुहाई देना पराधीन मनोवृत्ति का सूचक है।

धर्म और रूढियो मे भेद करते हुए निराला ने लिखा, "सव प्रणालियाँ मनुष्यो ने ही सोचकर समय-समय पर अपनी भलाई के लिए समाज मे चलाई। यदि हम उन्हे पकड़कर उन्हे ही अपना धर्म मान वैठें, तो हम धोखा खाएँगे। कारण, हम एक जड़ तरीके को धर्म समझ लेंगे। धर्म कभी कोई कानून, कोई रीति नही हो सकता। इसलिए हमे अपने समाज को हर वक्त इस प्रकार तैयार रखना चाहिए कि फौज के सिपाहियो की तरह, इच्छानुसार, जव जैसी जरूरत पड़े, हम समाज को उसी तरह, उसी रूप मे, उसी राह से निकाल ले।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—१०)

इलाहावाद में एक सरकारी अफसर के यहाँ जनेऊ था। अफसर ऊँचे कान्य-कुब्ज व्राह्मण थे। वंगले मे शामियाना लगाया गया और उसके नीचे मंडप वनाया गया। निराला ने इस पर टिप्पणी की—"मंडप पहले गरीव व्राह्मण छाया के लिए

ही कुश आदि से आँगन में छाते थे। यहाँ विशाल मोटे शामियाने के नीचे तृण का मंडप ! यह कौन-सा स्वांग था ? ऐसी ही भारतीयता की रक्षा की जाएगी ?" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १४६)

रूढ़ियों की रक्षा के लिए पुराणपंथी हमेशा भारतीयता की दुहाई देते आए हैं। निराला ने इसलिए प्रश्न किया कि क्या भारतीयता की रक्षा करने का यही अर्थ है कि निरर्थक रूढ़ियों का पालन किया जाए। मनुष्य को रूढ़ियों का गुलाम देखकर निराला की व्यंग्यवृत्ति जाग्रत होती थी। उन्हें लगता था कि ये रूढ़ियों के दास अपने को बड़ा धर्मात्मा समझते हैं; वास्तव में वे मनुष्यता के स्तर से भी गिरे हुए है। इलाहाबाद के उसी यज्ञोपवीत समारोह के सिलसिले में उन्होंने लिखा, "सब जगह मूजी-मेखलाधारी नया ब्राह्मण-बालक छत्र-दंड आदि लिए काशी पढ़ने के अर्थ रवाना होता है। तब उसे कोई पकड़कर रुपया, दो रुपया देकर समझाता है —यही रहो, यहीं पढ़ जाओगे। फिर अगर वह बड़े बाप का लड़का हुआ, तो देखिए, घड़ी-भर बाद कमीज, वेस्टकोट, टाई, कोट, रिस्टवाच, सोने की चैन, मोज़े-जूते डाटे हुए, हैट लगाए, निमन्त्रित जनों का विस्मय बना बैठा हुआ है। जनेऊ के समय के दंडधर ब्राह्मण-बालक का दंड कहाँ चला गया ? नही रखने की इच्छा, तो वह स्वांग क्यों ? यह भारतीयता और शालीनता समाज के सर्वोच्च कृत्य का एक विकसित रूप है ! इसी तरह की और-और बातें हैं, जहाँ स्वभावत: मन विद्रोह कर बैठता है , जिनके निराकरण की ज़रूरत है। सुधार तो बहुत दूर की बात है। पहले आदमी बनिये, सुधार तब होगा।" (उप., पृ. १४६-४७)

रूढ़ियों को इस तरह निबाहना निराला की दृष्टि में ज्ञान-शून्य कर्म था जिससे समाज की प्रगति रुकती थी। आग में घी जलाकर वायु शुद्ध करने वाली बात इसी तरह की अन्य रूढ़ि थी। रूढ़िवाद से छुटकारा पाने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए निराला ने लिखा, "यदि ज्ञान-रहित कर्मों की कवायद ही गृहस्थियों के हक मे है, तो इससे उन्हें कोई फायदा नहीं पहुँच सकता। और, यह जानी हुई बात है कि 'भरत' के नाम के जप से किसी का भरण-पोषण नहीं हो सकता। इसके लिए काम करना चाहिए। उसी तरह केवल आग में घी जलाकर वायुशोधन करते रहना मूर्खता ही है; कारण, पहले के इतना अब यहाँ दूध-घी नही होता। जहाँ आदमियों को घी-दूध न मिलता हो, वहाँ वायु-शुद्धि से रक्त-शुद्धि अवश्य ही अधिक महत्त्व रखती है, और जब कि बगीचा लगा लेने से, धूप आदि के जलाने से भी वायु शुद्ध हो सकती है।" ('सुधा', जुलाई, '३०; संपा. टि.—४)

अन्य समस्याओं की तरह रूढ़ियों से संघर्ष की समस्या भी निराला के लिए राष्ट्रीय अभ्युत्थान की समस्या से जुड़ी हुई थी। भारत को प्रगतिशील आधुनिक राष्ट्र बनना है। भारतीयता के नाम पर प्राचीन रूढ़ियों से चिपके रहकर वह आधुनिक नहीं बन सकता। "सभी राष्ट्र अपनी पुरानी प्रथाओं में शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन करते जा रहे है।" ('सुधा', सितम्बर '३२; संपा. टि.—६) भारत को इन राष्ट्रों के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ना है। पुरानी प्रथाओं को छोड़ने का

अर्थ यह नहीं है कि हमारा धर्म नष्ट हो गया। "यहाँ धर्म का कोई सवाल नहीं। कारण, धर्म तो मनुष्य की भीतरी प्राणों की भावना है। बाहरी कर्मों, वेशभूषा आदि मे भाषा के परिवर्तन की तरह बराबर रद्दोबदल ज़रूरी है। पर हम इस सामाजिक कार्य मे उन्नतिशील सभी देशो से पीछे है।" (उप.)

धर्मनिरपेक्षतावादियो की तरह निराला धर्म को मनुष्य की भीतरी प्राणो की भावना मानते थे। किन्तु धर्मनिरपेक्षतावादी जहाँ धार्मिक अन्धविश्वासों और सामाजिक रूढियो के बारे मे मौन साध लेते है, निराला वहाँ मुखर होकर उनका विरोध करते थे। अज्ञान के प्रति तटस्थ रहकर राष्ट्र प्रगति नही कर सकता। जो राष्ट्र प्रगति कर रहे है, वे धार्मिक रूढ़ियो के प्रति निरपेक्षता का व्यवहार करके नही, उनका प्रबल विरोध करके प्रगति कर रहे हैं। निराला ने प्रगतिशील राष्ट्रों के रूढ़ि-विरोधी अभियान को लक्ष्य करके लिखा, "इस धार्मिक पाश से छुटकारे की आवाज बुलद हो रही है। ईसाई गिरजे से नफरत करने लगे, मुसलमानो ने मस्जिदें ढहा दी, चीनियो ने चोटियाँ काट डाली। पर हमारे देश मे शिखा (चोटी) का झंडा उसी तरह फहरा रहा है। इस झडे के नीचे जितनी बुराइयाँ हुईं, सब उसी तरह जी रहे हैं।" ('सुधा', जुलाई '३०; संपा. टि.—४)

आधुनिक राष्ट्र बनने के लिए भारतवासियो के विचारो मे आमूल परिवर्तन आवश्यक है। पराधीनता का कारण है अज्ञान। जब तक हमारे कर्म ज्ञानाश्रित नही, तब तक राष्ट्र की चेतना भी स्वाधीन नही। जो मन से गुलाम है, वह राजनीतिक रूप से भी बहुत जल्दी गुलाम बन सकता है। पूर्ण स्वाधीनता के लिए ज्ञान के प्रकाश मे आँखें खोलना अत्यन्त आवश्यक है। "विद्या ज्ञान है। ज्ञान का प्रकाश मार्जन। इससे मन और बुद्धि प्रखर होती है, चमकती है, जैसे अस्त्र शान पर। हमारी पराधीनता का कारण अविद्या है।" ('सुधा', जुलाई '३०; सपा. टि.—५) "ज्ञान कभी भी पराधीन नही रह सकता। बल्कि यदि एक ही शब्द मे स्वाधीनता की परिभाषा की जाए, तो वह ज्ञान ही होगा।" ('सुधा', फरवरी '३०; सपा. टि.—१३)

यह निराला की सास्कृतिक क्रान्ति थी। ज्ञान के आधार पर तमाम सामाजिक रूढ़ियो के बन्धन काट दो; ज्ञान के आधार पर समाज का नया संगठन करो जिसमे स्त्रियो को पुरुषो के समान और शूद्रो को द्विजो के समान उन्नति करने का अवसर मिले। शास्त्रो की कठोरता सबसे ज्यादा स्त्रियो और शूद्रो को ही सहना पड़ती थी। लड़कियो का व्याह छोटी उम्र मे कर देना चाहिए—इसके समर्थन मे पंडितो की सभा हुई। निराला ने इनका परिहास करते हुए लिखा, "आठ वर्ष की बालिका के विवाह से वैकुण्ठ मे अकुंठित गति प्राप्त करने वाले पंडितो ने खूब खुलकर शास्त्रार्थ किया और सिद्ध भी कर डाला कि बिना आठ साल की लड़की का विवाह किए हिंदू-धर्म की रक्षा हो नही सकती।...समाज के अग से यह पडित-पाप जब तक दूर न होगा, तब तक समाज की शिशुता स यौवन की ज्योति नहीं निकल सकती। लोग इसी तरह पुस्तको के पन्नो मे स्वतन्त्रता और धर्म की तलाश करते

फिरेंगे, मनुष्य के विचारों और प्रकृति में नहीं।" ('सुधा', मई '३०; संपा. टि.—७)

सारा सत्य पुस्तकों में नहीं है। पुस्तकों में जो सत्य है, उसे भी पहचानने के लिए मनुष्य को बाहर प्रकृति और समाज की ओर देखना चाहिए। प्रत्येक सामाजिक सुधार को न्यायसंगत ठहराने के लिए उसे शास्त्र-सम्मत सिद्ध करने का प्रयास मानसिक पराधीनता का लक्षण है। निराला ने लिखा, "बात-बात में शास्त्रों की राय लेने की जो आदत बड़े-बड़े विद्वानों तक में देख पड़ती है, वह शास्त्रीय पराधीनता है। मनुष्य शास्त्रों से अपने अनुकूल विधान ही निकालता है। शास्त्रों में हर कानून की प्रतिकूलता देख पड़ती है। सच बोलना चाहिए, पर झूठ कहने के भी अवसर हैं। इस तरह के सविरोध शास्त्रों से यही शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को अपनी मेधा के अनुसार ही काम करना चाहिए। यह बात समाज में नहीं देख पड़ती।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १४१)

यूरोप में अठारहवीं सदी के अनेक दार्शनिकों ने धार्मिक अन्धविश्वासों की तीव्र आलोचना की थी। भारत की तुलना में धार्मिक कट्टरता वहाँ कम न होकर कुछ अधिक ही थी। फिर भी सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक निरन्तर संघर्ष और विज्ञान की प्रगति के कारण बीसवीं सदी में स्थिति काफी बदल गई थी। भारत में सामन्ती व्यवस्था जितनी प्राचीन थी, शास्त्रीयता का ज़ोर भी यहाँ उतना ही ज्यादा था। अनेक सांस्कृतिक आन्दोलनों के बावजूद रूढ़िवाद की जड़ें समाज में अब भी बहुत गहरे जमी हुई थीं। शास्त्रों, पुराणों, काव्यों, ऐतिहासिक परम्पराओं का उपयोग पुरुष अपने ढंग से, पुरानी अधिकार-व्यवस्था की रक्षा के लिए करते थे। स्त्री भी उनका उपयोग अपने ढंग से, अधिकारों में समानता के लिए कर सकती है, यह प्राचीनता-प्रेमियों को पसंद नहीं। निराला ने इस मिथ्या नैतिकता की आलोचना करते हुए लिखा, "महाराज दशरथ या वाजिदअली शाह की तरह यदि अनेक स्त्रियों का एक पति होना शास्त्र-संगत है, तो द्रौपदी की तरह एक स्त्री पच्चीस पतियों से भी रति कर सकती है, और उसका प्यार मर नहीं सकता। हाँ, किसी एक के प्रति अधिक भले ही हो। हमारे पुरुषों को यह सब बहुत बुरा लगेगा, क्योंकि वे चाहते हैं, हम सबकी स्त्रियों की तरफ देखें, हँसी-मज़ाक करें, पर हमारी स्त्री दिन-रात हमारे ही ध्यान में डूबी रहे। ठीक मनुष्य की तरह, इतनी ही ऊँचाई पर ठहरकर विचार करने पर, चारित्रिक आकाश-कुसुम फिर पृथ्वी पर ही खुलेंगे, और आदर्श का आकाश आकाश ही-सा शून्य बनकर प्रकाश-लेश-रहित हो जाएगा।" (उप., पृ. १४२)

जैसे स्त्री-पुरुष की असमानता को लोग धर्म का अंग समझने लगे, वैसे ही द्विज और शूद्र के जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेदभाव को वे धर्म का अंग समझते थे। यद्यपि प्रकृति ने सबको गुलाम बनाकर समानता की भूमि पर ला खड़ा किया है, फिर भी "न समझने वाले लोग कट्टरता की ही बुनियाद मज़बूत करते हैं, न कि बुद्धि की; और चूँकि इस तरह का प्रचलन हिंदू-समाज में है, इसलिए हिंदू-समाज

किसी बुद्धि तथा विवेक के आश्रय पर नही खडा, किन्तु कट्टरता ही उसके उस विभिन्न अस्तित्व का एकमात्र आधार है।" ('सुधा', जून '३०; संपा टि.—१०)

यह व्यवस्था इतनी गल गई थी कि उसमें सुधार की गुंजाइश नही थी। हिंदुओ के लिए आवश्यक था कि "अपने समाज का कुछ सुधार ही नहीं, किन्तु आमूल परिवर्तन करें।" (उप.)

समाज से यदि जातिप्रथा उठ गई, सब मनुष्य बराबर समझे जाने लगे, स्त्रियाँ पुरुषों के समान स्वच्छंद हो गईं तो क्या धर्म का लोप न हो जाएगा ? निराला का उत्तर था, समाज के पुनर्गठन से धर्म के नाश होने का भय नही है। "वीरो, छोटों को अपने बराबर कर लेने से बडा धर्म और कौन-सा है ? जो बड़ा है, वही दूसरे को विद्या देकर, धन देकर, सहानुभूति देकर अपने बराबर कर सकता है। जो स्वयं छोटा है, वह क्या करेगा ?" ('सुधा', १६ अगस्त '३३; संपा. टि.—१)

निराला की इस क्रान्तिकारी विचारधारा का स्रोत था वेदान्त। नवी सदी के आरम्भ मे महान् दार्शनिक शंकराचार्य ने भारतीय चिंतन में भारी क्रान्ति की। यह संसार माया है, जैसा दिखाई देता है, वैसा नही है; ब्रह्म मनुष्य के भीतर है, स्वर्ग में बैठा हुआ जगत् का संचालन करने वाला कोई परमपिता नहीं है। प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य ने बौद्धों का प्रतिवाद किया किन्तु वास्तव में उतना ही विरोध उन्होंने ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड का भी किया। मनुष्य की चेतना से भिन्न जब कोई ईश्वर नही है, तब वे तैंतीस करोड़ देवी-देवता भी नही है जो मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु—और उसके बाद तक उसके शुभाशुभ कर्मों का फल देने के लिए तत्पर थे। संसार जब माया है तब समाज मे ऊँच-नीच का भेदभाव, जाति-प्रथा, वर्ण-व्यवस्था भी प्रपंच है, भ्रम है। शंकराचार्य की इस अद्वैत विचारधारा का आश्रय लेकर, कबीर से निराला तक, भारतीय सन्तो, कवियों और साहित्यकारों ने समाज मे प्रचलित भेदभाव और धार्मिक अन्धविश्वासो की तीव्र आलोचना की। स्वयं शकराचार्य ने सासारिक और पारमार्थिक सत्य मे भेद किया, व्यवहार जगत् मे वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार किया। किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि वेदान्त का उपयोग भारतीय साहित्य मे वर्ण-व्यवस्था के समर्थन के लिए नहीं, वरन् उसके विरोध के लिए किया गया।

ब्राह्मण-शूद्र सम्बन्धी शंकराचार्य की व्यवस्था के बारे मे निराला ने लिखा, "शंकर की दृष्टि केवल चमक पर थी, वह धर्म की रक्षा अधिकारियो मे ही समझते थे। इसलिए उनके नियम बडे कठोर हुए। वैदिक ज्ञान की मर्यादा तथा महत्त्व को स्थिर रखने के लिए शूद्रों के प्रति उनके अनुशासन बड़े कठोर हैं। यही कारण है कि शूद्र उन्हे अपना शत्रु समझते है। कुछ हो, शंकर का महान् मस्तिष्क-धर्म भी अधिक काल तक यहाँ स्थायी नहीं रह सका।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २३२)

शंकर की विचारधारा को निराला ने मस्तिष्क-धर्म कहा, रामानुजाचार्य प्रवर्तित विचारधारा को हृदय-धर्म बताया। वास्तव मे यह हृदय और मस्तिष्क का भेद न था। भक्ति-आन्दोलन का विरोध करने वाली धार्मिक कट्टरता की

आलोचना करते हुए निराला ने भक्त शंकर के बारे में लिखा था, "जिस गंगा की स्तुति करते हुए महाज्ञानी शंकर भी द्वैतवाद की भूमि में आकर कहते हैं—

इंद्र–मुकुट–मणि-राजित–चरणे,
सुखदे, शुभदे सेवक-शरणे,
रोगं, शोकं, पापं, तापं,
हर मे भगवति, कुमति-कलापम् ।

"जिसके तटों पर अनादि काल से ऋषियों ने तपस्या की, जिसके दृश्यमात्र से हृदय पवित्र होता है, उसका बहिष्कार धर्म-भावना के मूल में ही कुठाराघात है।" ('सुधा', सितम्बर '३२; संपा. टि.—७)

उधर कबीर के बारे में निराला का मत था, "हिन्दी साहित्य का ज्ञानकांड यदि कबीर के साहित्य को कहें, तो अत्युक्ति न होगी।" ('सुधा', दिसम्बर '३२; संपा. टि.— १)

ज्ञानकांड कबीर के साहित्य में, शंकर के दर्शन में। भक्ति गंगा की स्तुति करने वाले शंकर में और अनेक वैष्णव कवियों मे। कबीर के ज्ञानकांड मे शूद्रों का प्रवेश है, शंकर के ज्ञानकांड में उनका प्रवेश वर्जित है। वैष्णव कवियों की भक्ति मे शूद्रों के प्रति अतिशय सहानुभूति और उदारता है, शंकर की भक्ति मे इस उदारता और सहानुभूति का अभाव है। शंकराचार्य की अद्वैत विचारधारा और भक्त-सन्त-साहित्य का मौलिक अन्तर यह है।

"वैष्णव धर्म के अन्तर्गत भी जति-पाँति का भेद नही रहा। अनेक उपाख्यान तथा कथा-कहानियाँ इस जाति-वैषम्य को धर्म से मिटाने के लिए रची तथा प्रचारित की गई।...महाप्रभु श्री चैतन्य देव का वैष्णव धर्म उदारता का प्रशान्त महासागर है। कबीर के पास जातिभेद न था। रैदास की शिष्या रानी भी थी। सधन कसाई का नाम आज भी प्रातःकाल उठकर बड़े-बड़े ब्राह्मण बड़े चाव से जपते है। अधिक क्या, प्रत्येक समाज से उतने ही बड़े महापुरुष निकले है, जितने बड़े ब्राह्मण समाज में हो सकते हैं। जो आत्मिक उत्कर्ष मंडन मिश्र ने वेदाध्ययन से प्राप्त किया था, वही उत्कर्ष व्याध मांस बेचकर प्राप्त करता है। पर यूरोप मे किसी जूते गाँठने वाले अपढ़ की मर्यादा ऐसी नही कि वह लॉर्ड खानदान के साथ बराबरी का व्यवहार करे। यहाँ की सामाजिक प्रणाली दूसरी ही थी।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. २३३)

द्विज-शूद्र का भेद मिटाने वाली यह समस्त विचारधारा कहीं-न-कही शंकर के अद्वैत सिद्धान्त से प्रेरित थी। प्रेरित होकर वह शंकर की अनुवर्ती मात्र न बनी रही, व्यवहार जगत् मे वह शंकर-मत की सीमाओं को पार करके बहुत आगे बढ़ आई। यह समस्त साहित्य संस्कृत में नहीं, हिन्दी तथा अन्य लोकभाषाओं मे रचा गया। यह साहित्य मानवमात्र की समानता की ऐसी उदात्त अभिव्यंजना करता है कि उसकी मिसाल तत्कालीन यूरोपीय साहित्य में नही है।

निराला ने जूते गाँठने वाले अपढ़ की मर्यादा से लॉर्ड खानदानवालों के रोबदाब का भेद बिलकुल सही दिखाया था। कुछ लोग समझते है कि जातिप्रथा

केवल भारतीय समाज की विशेषता है। जातिप्रथा ब्रिटेन में भी थी। अठारहवीं सदी में ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने की बातें अनेक ब्रिटिश बुद्धिजीवी करने लगे थे। यह भेदभाव गरीब-अमीर का ही न था, भेदभाव कुलीनता और जाति-पाँति को लेकर था। यहाँ बॉसवेल लिखित डाक्टर जॉनसन के जीवन-चरित मे एक घटना का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा।

बॉसवेल ने जॉनसन से एक लेखक की शिकायत की कि वह लॉर्ड खानदान के लोगो का उचित सम्मान नही करता। जॉनसन ने कहा, "जैसे वह लॉर्ड की बराबरी का दावा करता है, वैसे ही कोई चमार उससे बराबरी का दावा करे तो ? वह उसे खूब घूरेगा। तब चमार कहेगा, 'जनाब, घूरते क्या हो ? मै समाज की बड़ी सेवा करता हूँ। ठीक है कि इसके लिए मुझे पैसे मिलते है, सो पैसे आपको भी मिलते हैं। और खेद के साथ कहना पड़ता है कि आपको ज्यादा पैसे मिलते हैं जबकि आपका काम उतना आवश्यक नही है, जितना मेरा। क्योंकि मनुष्य-जाति का काम आपकी किताबो के बिना बड़े मजे से चल सकता है लेकिन मेरे जूतों के बिना नही चल सकता।' तो जनाब, समाज मे ऊँच-नीच के भेद को लेकर ऐसे पक्के नियम न हो जिनमे कभी तबदीली नही हो सकती तो कौन बड़ा है, कौन छोटा, इस बात को लेकर हमेशा आपस में फजीहत होती रहे। जब लोग मान लेते हैं कि यह भेद आकस्मिक है, तब उनमे ईर्ष्या नही होती।" (**दि लाइफ आफ सैमुअल जानसन**, दि मॉडर्न लाइब्रेरी, न्यूयार्क, पृ. २७१)

ऊँच-नीच का भेदभाव आकस्मिक है; कौन किस कुल में जन्म लेता है, यह उसके वश मे नहीं, इसलिए उसके मन मे उच्च कुलवालों के प्रति ईर्ष्या नहीं। इस सम्बन्ध मे समाज के नियम अपरिवर्तनशील हैं अर्थात् मोची का बेटा जूते गाँठेगा और लॉर्ड का बेटा नवाबी करेगा। निराला को इस बात पर गर्व था कि भारतीय साहित्य मे मानव-समानता की ऐसी प्रबल भावना व्यक्त हुई जैसी यूरोप के साहित्य में दुर्लभ थी। भारतीय संस्कृति पर गर्व करने का सही तरीका यह नही है कि सामाजिक रूढियो, धार्मिक अन्धविश्वासो से हम चिपके रहें, जो मृतप्राय हैं, उसे पूजते रहें; सही तरीका यह है कि हम उन पर गर्व करें जिन्होने इन रूढ़ियो और अन्धविश्वासों का विरोध किया है, अपने कार्यो से हम उनकी क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाएँ।

शंकराचार्य ने अद्वैत मत का प्रचार किया। कबीर तथा परवर्ती भक्त कवियो ने द्विज-शूद्र का भेद मिटाने के लिए शंकर की विचारधारा को और आगे बढ़ाया। निराला ने इसी परम्परा को अपनाया और मानव-समानता के आधार पर समाज के पुनर्गठन के लिए अपनी शक्तिभर उद्योग किया। जॉनसन के जीवन-चरित से जो वार्ता उद्धृत की गई है, उससे अद्वैत विचारधारा की प्रगतिशील सामाजिक भूमिका स्पष्ट हो जाएगी। वर्णगत दंभ के विरोध मे भक्तो और सन्तो के पास जो अचूक अस्त्र था, वह था वेदान्त। वही अस्त्र स्वामी विवेकानन्द के पास था, वही निराला के पास।

जब ब्रह्म मनुष्य के भीतर है, तब पौराणिक गाथाओं के देवी-देवता प्रतीक मात्र हो सकते हैं, वास्तविक सत्ता नही। "दुनियाभर के पौराणिक खुराफात लोग मानते हैं, पर जीवन के सत्य को नहीं मानते। इसकी क्या दवा है?"—निराला ने लिखा। (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. १४३)

" 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म' नाम के लंबे निबंध मे उन्होने पौराणिक प्रतीकों की व्याख्या की। दिसम्बर '३२ की 'सुधा' (संपा. टि.—१) में रूपक को सत्य मानने वाले विश्वास की आलोचना की। १६ अक्टूबर '३३ की 'सुधा' में उन्होने लिखा कि लोकरुचि अरूप की तुलना में रूप की ओर ज़्यादा होती है। इसलिए प्रतीकों की रचना हुई, इससे प्रगति भी हुई, किन्तु देश ज्ञानभूमि से गिर गया। "मस्तिष्क से दुर्बल हुई जाति औद्धत्य के कारण छोटी-छोटी स्वतन्त्र सत्ताओं में छँटकर एक दिन शताब्दियों के लिए पराधीन हो गई।"

निराला के चिंतन में ज्ञान का ऐसा महत्त्व है। अज्ञान का अर्थ है दुर्बलता, पराधीनता। ज्ञान का अर्थ है शक्ति, स्वाधीनता। उसका स्रोत है वेदान्त। सामाजिक व्यवहार के लिए उसका सारतत्त्व है मनुष्य मात्र की समानता। हिंदू समाज मे द्विज और शूद्र की समानता, भारतीय समाज मे हिन्दू और मुसलमान की समानता। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद—ये सब आदर्श व्यक्ति होंगे, "व्यक्ति के नियामक नही; उनकी तारीफ़ होगी, पर उनके पीछे जान देना मनुष्यता से दूर समझा जाएगा। कारण, हर मनुष्य की वही कीमत है, जो राम-कृष्ण और ईसा-मुहम्मद की थी।" ('सुधा', सितम्बर '३४; संपा. टि.—१)

निराला का यह मानवतावाद प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को निर्मूल करने, समाज के नए सिरे से गठित करने में सक्षम था। सांस्कृतिक क्षेत्र में वह जिस क्रान्ति के अग्रदूत थे, उसका आधार था, यह ज्ञानाश्रित व्यावहारिक वेदान्त। व्यापक मानवतावाद के आधार पर वह राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करना चाहते थे।

राष्ट्रीय एकता और मुसलमान

पन्द्रहवीं सदी से लेकर अठारहवी सदी तक आज की अपेक्षा मुसलमानों को यह ज़्यादा याद रहा होगा कि वे भारत के विजेता है, वे मुहम्द बिन कासिम, मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी की सन्तान है; आज की अपेक्षा तब उन्हे ज़्यादा याद रहा होगा कि उनकी संस्कृति का स्रोत अरब और ईरान मे है, उन्हें हिन्दुस्तान के काफिरों की भाषा और संस्कृति से कुछ लेना-देना नही है, आज की अपेक्षा तब

मुसलमानों को एक मुश्तर्का ज़बान की ज्यादा ज़रूरत रही होगी, जिससे यहाँ के लोगो पर उन्हे शासन करने में सुविधा हो।

पन्द्रहवी सदी से लेकर अठारहवी सदी तक क्या ब्रजभापा और अवधी, क्या बँगला, कश्मीरी, पंजावी और सिन्धी—इन सभी भापाओ मे मुसलमानों ने वड़े पैमाने पर साहित्य-रचना की। अवधी मे मलिक मुहम्मद जायसी, ब्रजभापा में रहीम और रसखान, बँगला मे काजी काजन और आलाओल, कश्मीरी मे हव्वा-खातून, पंजावी में फरीदशाह और वारिसशाह, सिन्धी में शाह अब्दुल लतीफ और सचल सरमस्त—उत्तर भारत की प्रायः सभी भापाओ मे मुसलमानों ने ऊँचे दर्जे का साहित्य रचा। अवधी, व्रज, बँगला, कश्मीरी, पंजावी और सिन्धी भापाओं के रूप मे कोई मौलिक परिवर्तन न हुआ, कही इनसे भिन्न मुश्तर्का ज़वान की ज़रूरत न हुई। तुर्क, पठान, अरव—जिन देशों के भी मुसलमान यहाँ आए, यहाँ के प्रदेशो की भापाएँ अपनाकर यही के हो गए। यहाँ की भापाएँ अपनाकर वे कश्मीरी, सिन्धी या वंगाली हो गए; तुर्क, अरव और पठान न रहे। जो लोग यही के रहने वाले थे, मुसलमान वने तो उनका धर्म वदल गया, उनकी भापा वदलने का कोई सवाल न था।

मुसलमानों के रचे हुए इस साहित्य की एक विशेपता धार्मिक कट्टरता की आलोचना, हिंदू धर्म के प्रति सहिष्णुता, हिंदू देवताओं की महिमा का वर्णन है। दूसरी विशेपता यहाँ की लोक सस्कृति, उत्सवों-त्योहारों आदि का वर्णन है, जिसमे जायसी अद्वितीय है। तीसरी विशेपता सूफी-मत का प्रभाव और वेदान्त से उनकी विचारधारा का सामीप्य है।

दिल्ली की राजभापा फारसी थी। उपर्युक्त मुसलमान कवियों की भापाएँ भारत की प्रादेशिक भापाएँ थीं। अकवर से लेकर औरगज़ेव के समय तक कट्टर मुल्लाओं ने सूफियो का वरावर विरोध किया, धार्मिक संकीर्णता उभारकर राज्यसत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। औरगंज़ेव के समय मे उनका यह प्रयत्न सफल हुआ। साहित्य से सूफी गायव होने लगे, फारसीयत का ज़ोर वढ़ा, मुश्तर्का ज़वान ईरान की रीतिवादी प्रतीक योजनाएँ लेकर साहित्य की भूमि पर पुष्पित और पल्लवित हुई।

अंग्रेजी राज कायम होने से पहले नवावी ज़माने में भापा और संस्कृति को लेकर हिन्दुओ और मुसलमानों में अलगाव के वीज वोए जा चुके थे। अंग्रेज़ों के ज़माने में फसल लहलहा उठी लेकिन उसके वीज उनसे पहले ही वोए गए थे।

आज की अपेक्षा १८५७ में हिन्दुओं को ज्यादा याद रहा होगा कि औरंगज़ेव ने उन पर क्या-क्या अत्याचार किए है, फिर भी अंग्रेज़ों के खिलाफ़ उस 'गदर' में हिन्दू-मुसलमान ऐसे मिलकर लडे कि उनमें फूट डालने की सभी अंग्रेजी चालें व्यर्थ हुई। १९४७ मे हिन्दुओं-मुसलमानों का अलगाव इतिहास की सवसे वड़ी सच्चाई वन गया और उसके आधार पर देश का विभाजन हुआ, यह अंग्रेजों की सवसे वड़ी सफलता थी।

हर राजनीतिज्ञ की तरह निराला भी जानते थे कि 'फूट डालो और राज करो'—यह अंग्रेज़ों की नीति है। किन्तु अधिकांश राजनीतिज्ञो की तरह निराला यह न मानते थे कि अंग्रेज़ों के आने से पहले यहाँ सब कुछ अच्छा ही अच्छा था और उनके चले जाने के बाद फिर सब कुछ पहले की तरह अच्छा हो जाएगा। उन्होंने साहस से इस तथ्य का सामना किया कि हिन्दुओं और मुसलमानो में परस्पर घृणा का भाव मौजूद है। इस घृणा को जड़ इतिहास में है, अधिकांश हिन्दू समझते है कि वे विजित हैं और अधिकांश मुसलमानों में यह भाव है कि वे विजेता रह चुके हैं। इस घृणा के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले राजनीतिज्ञों का अभाव नही था और अब तो उनकी संख्या में काफी वृद्धि हो गई है। इनसे निराला भिन्न इस बात में थे कि वह इस घृणा को अज्ञानजन्य और क्षणिक मानते थे; उससे भिन्न मैत्री के भाव को वह ज्ञान-जन्य और स्थायी मानते थे।

निराला ने अपने व्यावहारिक वेदान्त की कसौटी पर हिन्दू-मुस्लिम समस्या को परखते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि जो दूसरों को गुलाम बनाता है, वह मनुष्यता से गिरा हुआ है, जो गुलाम बनकर रहता है, वह भी मनुष्यता से गिरता है। भारत के भेड़ियाधसान में अंग्रेज शेर बने हुए थे; निराला ने कहा कि "यदि ब्रिटेन के वीर सिंह है और भारत के दीन कृषक मेष, तो विचार की दृष्टि में, दार्शनिक की भाषा में, दोनों मनुष्यता से गिरे हुए है।" (**प्रबन्ध पदम्**, पृ. १८)

हिन्दुओं और मुसलमानों में विजेता और विजित का भाव इसलिए दृढ़ है कि दोनों बाह्य आचार से बँधे हुए है। वास्तविक मनुष्यता को दोनो में कोई नहीं पहचानता। "मतलब यह कि जिस विज्ञान के बल पर पश्चिम सिंह बन सकता है, वह जिस तरह मनुष्यता की हद से गिरा हुआ होता है, उसी तरह हिन्दुओं का ज्ञानभूल-रहित आचारवाद, जिसने सदियों से उन्हें गुलाम बना रक्खा है, और मुसलमानो की खुदापरस्ती भी, जो बुतो से घिरी हुई रहकर भी उनकी सत्ता से घृणा करें।" (उप.)

अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ से ही जैसे निराला ने अपना ध्यान राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रश्न पर केन्द्रित किया था, वैसे ही हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी आरम्भ से वह गम्भीरता से विचार करते आए थे। राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता ज़रूरी है, इसके लिए परस्पर शत्रुभाव न रखकर दोनो को एक ही राष्ट्र का अभिन्न अंग बनना चाहिए—यह स्थापना 'समन्वय' में प्रकाशित उनके प्रथम लेख 'जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण' में मौजूद है। उन्होंने इस लेख में प्रश्न किया था, "भारत में जितनी भिन्न-भिन्न जातियाँ बस गई है, जिन्हें हिन्दू शत्रु तुल्य समझते है और जो हिन्दुओं से जैसा का तैसा ही बदला लेती है, वे यदि जातीय जीवन का अंग न मानी जायँ—यदि वे जाति से अलग कर दी जायँ—तो जाति की सत्ता कब तक सही-सलामत टिकी रहेगी ?" (**'समन्वय'**, चैत्र १९८०)

रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द से उन्होंने सीखा था कि प्रत्येक धर्म की साधना द्वारा मनुष्य उसी सत्य का साक्षात् करता है जिसका वर्णन वेदान्त

में है। मुसलमानों मे जो सूफी थे अथवा जो सूफीमत से प्रभावित थे, उनके विचारों मे और वेदान्त मे बहुत साम्य था। मलिक मुहम्मद जायसी ने तो वेदान्त की शब्दावली का ही प्रयोग करते हुए लिखा था :

सोऽहं सोऽहं वसि जो करई। जो बूझै सो धीरज धरई।

निराला इसी भूमि पर हिन्दुओं और मुसलमानों की मैत्री को दृढ़ करने के लिए प्रयत्नशील थे। 'समन्वय' (श्रावण, १६८३) मे उन्होंने एक लेख लिखा, 'साहित्य की समतल भूमि'। समतल भूमि का अर्थ है, वह विचारभूमि जहाँ बड़े-छोटे का भेद नहीं है, धार्मिक संकीर्णता नही है। एकदेशीय संकीर्णता की आलोचना करते हुए उन्होने लिखा, "इस लेख मे हम यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि साहित्य की समतल भूमि कैसी है और रीति-रिवाजो मे हिन्दुओं से सम्पूर्णतः पृथक् मुसलमान जाति भी साहित्य और ज्ञान की भूमि मे हिन्दुओं के समान ही है।" कबीर, तुलसी, नजीर, गालिब, मीर आदि कवियों की रचनाओं से अनेक अंश उद्धृत करके वेदान्त की भूमि पर उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम कवियों का भाव-साम्य प्रदर्शित किया।

'समन्वय' में प्रकाशित इस लेख के विचार-सूत्रो को परिवर्धित करके उन्होने 'सुधा' मे लेख लिखा—'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य'। इस लेख की मूल स्थापना यह थी—"हिन्दू और मुसलमान, दोनों जातियाँ ऊँची भूमि पर एक ही बात कहती है। इस लेख मे हम यही दिखलाने की चेष्टा करेंगे। साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि जब तक हिन्दू और मुसलमान इस भूमि पर चढ़कर मैत्री की आवाज़ नही लगावेंगे, तब तक वह स्वार्थ-जन्य मैत्री स्वार्थ में धक्का लगने तक की ही मैत्री रहेगी—वैसी ही मैत्री, जैसी ब्रिटिश-सिंह और भारत-गऊ की हो सकती है।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. १८-१६)

खिलाफत आन्दोलन मे हिन्दुओं और मुसलमानो की मैत्री ऐसी ही मैत्री थी जो बहुत जल्दी टूट गई। निराला जिस मैत्री की बात कह रहे थे वह ज्ञान पर आधारित थी, वह एक-दूसरे के विचारो मे एक ही सत्य की पहचान पर निर्भर थी। स्वभावतः यह ज्ञान, यह सत्य बाहरी आचार-भेद का विरोधी था। इस ज्ञान के आधार पर मैत्री तभी कायम हो सकती थी, जब हिन्दू और मुसलमान अपनी-अपनी धार्मिक रूढ़ियो की आलोचना करें। पिछले पचास वर्षों में हिन्दू-मुस्लिम एकता के जितने प्रयत्न हुए हैं, वे धार्मिक रूढ़ियों की रक्षा करते हुए, बाह्याचार भेद को कायम रखते हुए किए गए हैं। तुम भी ठीक, हम भी ठीक, अंग्रेजों से अधिकार ले लो, उनके जाने के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा—इस राजनीति का जो परिणाम निकलना चाहिए था, वह देश के सामने है।

पन्द्रहवी सदी से लेकर अठारहवी सदी तक सूफी कवियो ने भारतीय भाषाओं मे जो काव्य रचा, उसमे कही प्रत्यक्ष, कही अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक कट्टरता की कटु आलोचना है। धर्मान्ध मुल्ला इन्हें इस्लाम का शत्रु समझते थे, इसीलिए उनका जमकर विरोध करते थे। अंग्रेजों की दोस्ती जैसे यहाँ के राजाओं और जमींदारो

से थी, वैसे ही संकीर्ण दृष्टि वाले मुल्लाओं और पंडितों से। सांस्कृतिक क्षेत्र में अंग्रेज़ों ने यह 'क्रान्ति' की कि हिन्दुओं और मुसलमानों के मन से इस इतिहास को ही मिटा दिया कि मुसलमानो ने यहाँ की लोक-संस्कृति और लोक-भाषाओ को अपनाया और अपनी रचनाओं में धार्मिक उदारता का परिचय ही नही दिया वरन् अपने धर्म की आलोचना भी की। कांग्रेसी नेतृत्व में चलने वाले स्वाधीनता आन्दोलन ने हिन्दुओं और मुसलमानों को इस इतिहास से परिचित कराने का प्रयत्न नहीं किया। स्वाधीन भारत में चूँकि अखिल भारतीय साहित्य का अध्ययन किसी विश्वविद्यालय में नही होता, इसलिए विभिन्न भाषाओ के साहित्य में मुसलमानों की देन क्या है, भारतीय संस्कृति के कौन-से तत्त्व उनकी रचनाओ में विद्यमान हैं, धार्मिक रूढ़िवाद की आलोचना उन्होने कहाँ, किन संदर्भो मे की है, इसका ज्ञान भारतीयता-प्रेमियों को आखिर हो तो कैसे हो?

पन्द्रहवी सदी से लेकर अठारहवी सदी तक द्विज और शूद्र का भेद मिटाने वाली धार्मिक रूढ़ियों का निषेध करके हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता को दृढ़ करने वाली साहित्य की जो शक्तिशाली धारा प्रवाहित हुई थी, बीसवी सदी मे उसके सच्चे, समर्थ और सबसे बड़े प्रतिनिधि थे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।

'अरे इन दोउन राह न पाई' इस सूत्र का मानो भाष्य करते हुए निराला ने लिखा, "भारतवर्ष में जो सबसे बड़ी दुर्बलता है, वह शिक्षा की है। हिन्दुओ और मुसलमानो में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाय। परस्पर के सामाजिक व्यवहारो मे दोनों शरीक हों, दोनों एक-दूसरे की सभ्यता को पढ़ें और सीखे। फिर जिस तरह भाषा में मुसलमानों के चिह्न रह गए हैं और उन्हे अपना कहते हुए अब किसी हिन्दू को संकोच नहीं होता, उसी तरह मुसलमानों को भी आगे चलकर एक ही ज्ञान से प्रसूत समझकर अपने ही शरीर का एक अंग कहते हुए हिन्दुओं को संकोच न होगा। इसके बिना, दृढ़ बन्धुत्व के बिना, दोनों की गुलामी के पाश कट नही सकते, खासकर ऐसे समय, जबकि फूट डालना शासन का प्रधान सूत्र है।" (**प्रबन्ध पद्म**, पृ. ४०-४१)

इन वाक्यों का एक-एक शब्द देश-प्रेम में डूबा हुआ है, देश को स्वाधीन करने की आकांक्षा से दीप्त है। राजनीतिक स्तर पर एकता दृढ़ करने के लिए सांस्कृतिक स्तर पर हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता दृढ़ करना आवश्यक था। राजनीति में सौदेबाज़ी हो रही थी। अलग चुनाव-क्षेत्र होंगे; इस सूबे मे उनका बहुमत है, इसमें अल्पमत; वहाँ जनसंख्या के अनुपात से इतने प्रतिनिधि ज्यादा चुने जा सकेंगे, यहाँ कम; प्रान्तीय सरकारो में इतने अधिकार मिलेंगे, केन्द्र मे इतने; मार्ले-मिण्टो ने यह कहा, क्रिप्स और पेथिक लारेंस ने यह कहा—सौदेबाज़ी की इस राजनीति से दूर निराला हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए ग़ालिब, नज़ीर, तुलसीदास और जयशंकर प्रसाद में विचार-साम्य की तलाश कर रहे थे।

नश्वरता और वैराग्य के भावों की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा, "जिस तरह

हिन्दुओं में वैराग्य की यह शिक्षा मिलती है, उसी तरह मुसलमानों में भी। सूफी-वाद मे तो ज्ञान, वैराग्य और मादकता, तीनो की प्रधानता है। मुसलमानों के दर्शन मे तो नही, हां, कुरान के साथ अद्वैतवाद की सूक्तियां जरूर मिल जाती हैं। पर कविता मे और सूफियाने ढंग की कविता में यहां के बड़े-बड़े दर्शनशास्त्रो का तो विलकुल निचोड़ मिल जाता है। खान-पान और रहन-सहन का भेद रहने पर भी जिस विकास की ओर मुसलमान सभ्यता गई है, वह यहां से कोई पृथक् रास्ता नही।" (उप. पृ. ३०-३१)

निराला का दृढ विश्वास था कि धार्मिक कट्टरता को दूर किए बिना राष्ट्रीय एकता दृढ नही हो सकती। यह कट्टरता वाहरी आचार से ज्यादा सम्बद्ध थी, विचारो से उसका सम्वन्ध कम था। कट्टरता मनुष्य की सोचने-विचारने की शक्ति को नष्ट कर देती है, विचारो का महत्त्व पहचानने की शक्ति ही उसमे नही रहती। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को वढावा देने वाले साम्प्रदायिक प्रचार का विरोध करते हुए निराला ने लिखा, "सामाजिक और राजनीतिक जटिल प्रश्नों की तरह भारत को धार्मिक प्रश्न का भी सन्तोषजनक उत्तर देना है। हमारे यहां तमाम कम-ज़ोरियो और संकीर्णताओ की जड़ मे विविध धर्म-भावनाएँ ही है, खासकर हिंदू और मुसलमान धर्म मे। आर्य समाज द्वारा विचारो की व्यापकता को वहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई है। पर जिस ढंग से वैदिक धर्म का प्रचार किया गया है, उसमे कट्टरता प्रधान है। विचारवान धर्मो मे सार भाग देखते हैं। सभी धर्मो के मूल तत्त्व मिलते-जुलते है। आचारो के साथ धर्म के ऊँचे अंश का कोई सम्वन्ध नही। वेद के ज्ञानकाण्ड के साथ मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि अपने-अपने धर्म के भीतर से सहमत है। वेद के मानी भी किसी पुस्तक-विशेष के नही, वह ज्ञानरूप होकर सभी जातियो मे सम्मिलित है। वेद को लेकर विवाद करने पर वेदज्ञों की ही मर्यादा नष्ट होती है, वेद अपने अर्थ में पूर्ण है।" ('सुधा', सितम्बर '३२; संपा. टि—७)

ज्ञान की इस परिभाषा के सामने धर्म को लेकर जो सप्रदायगत भेदभाव पैदा होता है, वह अपने आप नष्ट हो जाता है। निराला ने इस ज्ञान की तुलना विज्ञान के सत्य से की, जो सम्प्रदायो मे वँटा हुआ नही होता। उनका तर्क यह था कि विज्ञान का सत्य एकदेशीय नही होता तो धर्म का सत्य ही एकदेशीय क्यो हो।

"जिस तरह जड़-विज्ञान मे सत्य का सार्वभौम, चिराश्रय ऐक्य मिलता है और सभी देशो को समभाव से उन्नयन करने का अधिकार, उसी तरह धर्म-विज्ञान मे भी। आजकल वड़े-वड़े विचारवान् ऐसे ही प्रयत्न मे लगे हुए है। पर हमारे यहां धार्मिक कट्टरता ही प्रवल है। इसका परिणाम यह होता है कि कट्टरता का जड़त्व मस्तिष्क का विकास नही होने देता। अपने अनुकूल न होने पर धार्मिक तत्त्व झूठे जान पडते है। यह आत्मानुकूल तत्त्ववृत्ति वहुत वड़ी मानसिक दुर्वलता है। इसके कारण सभी रेखाओ से मनःशक्ति का विकास नही हो पाता। प्रहार करनेवाली पशुवृत्ति वनी रहती है। मनुष्य सव देशो के साहित्य, समाज, राजनीति और धर्म का महत्त्व नही समझ पाता। प्रगति एक हद तक वँधी रहती है।" (उप.)

आवश्यक यह है कि हम अन्य देशों के भी साहित्य, समाज, राजनीति और धर्म का महत्त्व समझें; अपने साहित्य, समाज, राजनीति और धर्म का महत्त्व समझें, यह तो आवश्यक है ही। किन्तु जो दृष्टि दूसरो का महत्त्व नही देख सकती, वह अपना महत्त्व भी नही पहचानती। धर्म का तत्त्व हो जाता है किसी विशेष रूढ़ि का पालन। मस्जिद के सामने जुलूस निकलने और बाजे बजने पर अंग्रेज़ी राज में आए दिन दंगे होते थे और स्वाधीन भारत में भी होते हैं। निराला ने इन दंगों को लक्ष्य करके लिखा था, "कृष्णजी का जुलूस यदि न निकले, तो कोई क्षति नही होती; रामलीला में यदि मनुष्य बन्दर बनकर न नाचे, तो मनुष्यता की रक्षा ही होती है, धन भी बचता है। उधर मुसलमानो के देश मे, उस दिन तक छपता था, मस्जिदें तोड़ी गई और मुसलमानो के ही हाथों।" ('सुधा', सितम्बर '३४; संपा. टि.—१)

धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने पर हिन्दुओ और मुसलमानों मे एकता ही स्थापित नही हो सकती, वरन् वे दोनो एक ही समाज के—सामाजिक संस्कारो की दृष्टि से भी—अभिन्न अंग बन सकते है। "हिंदू और मुसलमानो की समस्या इस देश की पराधीनता की सबसे बड़ी समस्या है।"—निराला ने लिखा। ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—१०)

यह समस्या शुद्धि और तबलीग से हल न हो सकती थी। ऐसी शिक्षा की ज़रूरत थी जिसमे देश, काल को समझने की शक्ति हो। हिन्दू मुसलमानो मे हजम हो जाएँगे, यह भय संकीर्ण दृष्टिवालो को है, "किसी समझदार को नही, जो अपने मुसलमान भाई के यहाँ भोजन करके भी अपने इष्ट, देश, जाति तथा धर्म की दृष्टि में पवित्र ही रहता है।" (उप.) हिन्दू मुसलमानों के हाथ का छुआ पानी पियें, पहले यह प्राथमिक साधारण व्यवहार जारी करना चाहिए। (उप.) इसके बाद एकीकरण के दूसरे प्रश्न हल होंगे। "देश मे कितनी मुसलमानो की विदुषी कुमारियाँ हिन्दुओं के घर आयी और कितनी हिन्दुओं की मुसलमानों के घर गई, यह सामाजिक प्रश्न हल होने को अभी पड़ा ही है; जैसे किसी हित की प्रेरणा से नही, केवल प्रेम के फंदे में पड़कर उन लोगो ने विवाह किया और अपने-अपने कुल को कलंक लगाया हो।" ('सुधा', जनवरी '३३, संपा. टि.—२) जब हिन्दू अपने भीतर ऊँच-नीच का भेद मिटा देंगे, रूढ़िवाद से मुक्त होकर जब "वे वर्तमान वैज्ञानिकों की तरह विचारों की ऊँची भूमि पर अधिष्ठित रहने का प्रयत्न करेंगे"—तब मुसलमानों में भी व्यापक परिवर्तन होगा, "तब आज के मुसलमान भी आज के मुसलमान न रहेंगे। अगर रहे, तो इस उच्चता के मुकाबले रह नही सकते क्योंकि यह युग ही व्यक्तिवाद का नही रहा।" ('सुधा', सितम्बर '३४; संपा. टि.—१)

निराला एक बात अकसर दोहराते है और वह यह कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का सम्बन्ध हिन्दुओं की अपनी वर्णगत संकीर्णता से है। भारत की संपदा यूरोप गई, इस तरह वैश्यशक्ति का लोप हुआ; राज्यसत्ता अंग्रेजों के हाथ में आयी, इस तरह क्षत्रियत्व नष्ट हुआ; ज्ञान-विज्ञान में यूरोप आगे बढ़ता गया, इससे ब्राह्मण-

शक्ति भी लुप्त हुई। "हम इस बात को न समझकर, ब्राह्मण बनकर, भारतीय संस्कृति के एकच्छत्र सम्राट् होकर भाइयों पर खोखली भारतीयता का रोब गाँठते रहे। अब उस भारतीयता से कैसा फल पैदा हुआ, वह सामने है, चखिए।" ('सुधा', १६ अगस्त '३३; संपा. टि.—१) इस भारतीयता अर्थात् पुरानी जीर्ण समाज-व्यवस्था के आधार पर शक्तिशाली राष्ट्रीयता का विकास नही हो सकता। आवश्यकता है नई व्यवस्था की, जिसमे कोई मनुष्य छोटा-बड़ा न हो। "हम बहुत पहले से कह रहे है, समाज का आमूल परिवर्तन जरूरी है।" (उप.) मानवमात्र की समानता के आधार पर पुनर्गठित समाज मे ही सच्ची राष्ट्रीयता का विकास होगा। "भारत की विशाल राष्ट्रीयता यही है। यहाँ हिन्दू-मुसलमान वाला सवाल नही। ऐसे मनुष्य को कोई हिन्दू या मुसलमान, धर्म विशेष मे कैद रहने वाला मनुष्य नही हज़म कर सकता। आप ही सोचिए, ऐसे भाव को कोई 'पन' क्या अपने मे मिला सकता है? आप समझें, सब 'पन' इसी भाव के आश्रय मे है या नही।" (उप.)

निराला इसी दृष्टि से भारतीय इतिहास पर विचार करते है। जो अपने समाज के भीतर दूसरों को पराधीन बनाता है, वह समाज की स्वाधीनता की रक्षा भी नही कर सकता। विदेशी आक्रमणकारियो के सम्मुख यहाँ के शासकवर्ग की पराजय का मुख्य कारण हिन्दू समाज का आन्तरिक उत्पीड़न था।

अनेक ऐतिहासिक उपन्यासकारो की तरह सामन्तों के वैभव और शौर्य का महिमामंडित चित्रण करने के बदले निराला ने जनसाधारण की दशा की ओर ध्यान आकर्षित किया और मुसलमानो से युद्ध मे उनकी पराजय का कारण तलाश किया। **प्रभावती** उपन्यास मे यमुना कहती है, "वर्णाश्रम-धर्म की प्रतिष्ठा में बौद्धो पर विजय पानेवाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म की रक्षा न कर सकेगे; क्योकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणो के घृणाभावों से पीडित है।" (पृ. ४८) इस घृणाभाव की व्याख्या करते हुए निराला ने—किसी पात्र को माध्यम न बनाकर अपनी ओर से भी—लिखा, "वह और ही युग था। एक ओर गाँव मे गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग मे महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियो से भरे प्रासादो मे, फिर भी उन्ही के पास फैसले के लिए—न्याय के लिए जाना और उन्हे भगवान का रूप मानना पड़ता था।···उस समय भारत जिस भिन्नता मे था, वह साधारण जनों की आत्मा को असह्य थी। जिस तरह वनो के प्राण शून्य में पुकार भरते हुए वारिवर्षण कराते है, उसी तरह भारत की जनता की मौन करुणा-ध्वनि ने दूसरी-दूसरी सत्ताओं को शासन के लिए बुलाया···चिरकाल से क्षत्रियो की युद्धज्वाला भारत को दग्ध कर रही थी। कृषि, जनपद तथा जीवन अकारण युद्ध के कारण नष्ट हो रहे थे। साधारण जनों के दृश्य बड़े करुणोत्पादक थे।" (पृ. ४९-५०)

जो लोग भारत पर मुसलमानो के आक्रमण और हिन्दुओ पर मुसलमानो के अत्याचार का वर्णन करके राष्ट्रीयता का भाव जगाने में विश्वास करते है, उनके

लिए उचित है कि इस स्थिति के लिए वे जनसाधारण को अथाह पीड़ा पहुँचाने वाले शासकवर्ग के उत्तरदायित्व की चर्चा भी करें। एक ओर गाँव मे गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग में महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियों से भरे प्रासादों में। वह वर्ग-वैषम्य कुछ परिवर्तित रूप में आज भी है और किसी हद तक पहले से और तीव्र है। इस वैषम्य को कायम रखने के लिए ही राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिक प्रचार का सहारा लेते हैं।

'वर्तमान हिंदू समाज' नामक निवन्ध में शूद्रों के उत्पीड़न की चर्चा करते हुए निराला ने लिखा, "स्वामिजनों का सेवकों तथा शूद्रों पर अनुचित दवाव पड़ने लगा। यह भारतवर्ष की अशिक्षा का काल है, और एक प्रकार महाराज विक्रमादित्य के समय से शुरू होता है, जिस समय संस्कृत फूली-फली कही जाती है—दूसरे मनुष्य को मनुष्य न समझना, यह वृत्ति वहुत पीछे मुसलमानों के शासनकाल में भी भारतवर्ष के लोगों में थी, और अव तक फीसदी ९८ लोगों की वही धारणा वनी हुई है।...दूसरी जातियों के प्रति यह नफरत ही भारत के पतन की धात्री है...इस औद्धत्य के ज़माने में यहाँ की शूद्रशक्ति किस तरह प्रपीड़ित थी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।...जो लोग हिंदू-अंग से छूटकर मुसलमान हो गए, उनमें अधिकांश पीड़ित होने के कारण ही हुए।" (**प्रबंध प्रतिमा**, पृ. २३४-३६)

जो लोग निराला की इस वात से असहमत हों, वे इस प्रश्न पर विचार करे कि स्वाधीन भारत में हिंदू-अछूतों की एक वहुत वड़ी संख्या ने बौद्ध धर्म क्यों अपना लिया।

निम्न जनों का उद्धार न मुसलमान वनने से हुआ, न बौद्ध वनने से, उनका उद्धार समाज में उनकी भौतिक स्थिति वदलने से ही होगा, वह वात अलग है।

शूद्रों के उत्पीड़न के साथ नारी के साथ दुर्व्यवहार भी क्षत्रियों की पराजय का एक कारण था। 'वर्तमान हिंदू समाज' निवंध में पृथ्वीराज के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए उन्होने लिखा, "हम देखते है, मुहम्मद गोरी पंजाव पार कर आया, पर कई वार के विजयी महाराज पृथ्वीराज संयुक्ता के साथ विलास-वाटिका में विहार कर रहे है। उन्हें जरा भी चिंता नहीं, कुछ भी खबर नहीं कि शत्रु-सैन्य की कितनी संख्या है। दूसरे देशों में गुप्तचर नहीं भेजते, वहाँ की राजनैतिक व्यवस्था की कोई खबर नहीं आती। म्लेच्छों से आर्यगण [illegible]?" (प्रबंध प्रतिमा, पृ. २३५-३६)

प्रभावती उपन्यास में पृथ्वीराज के [illegible], [illegible] कुमारी, शशिव्रता, इन्द्रावती, हंसावती और संयोगिता के विवाह का उल्लेख करने के बाद वीरसिंह कहते है, "तुम जानते हो, इन विवाहों के कारण किस प्रकार विरोध बढ़ा। इस वार दोनों शक्तियों के नष्ट होने की संभावना है।" (पृ. ६५) इस पर यमुना टिप्पणी करती है, "आज वीरत्व [illegible] नहीं, देश का परिज्ञान [illegible] केवल राजसत्ता का अभिमान, इसलिए [illegible] तीन हो गया है, वे नष्ट हुए और

[illegible]य एकता और मुसलमान /

को वरकर कीर्ति को वरती हैं, जो स्त्री है।" (उप.)

निराला इतिहास को इस आलोचनात्मक दृष्टि से देखते थे, हिंदू समाज की आन्तरिक कमजोरियाँ पहचानते थे, उन्हे दूर करने मे प्रयत्नशील थे, इसलिए समानता की नई भूमि पर हिंदू-मुस्लिम एकता को दृढ करने की बात वह सोचते थे। विशेष रूप से शूद्रो पर क्षत्रियो के अत्याचारो को वे मुसलमानों की विजय का मुख्य कारण मानते थे। भारतीय साहित्य मे जिन दिनों रैदास जैसे संतों का आविर्भाव हुआ, उन दिनो मुसलमानो मे रहीम और रसखान जैसे कवि भी पैदा हुए। बीसवी सदी मे रैदासों को संत बनाने की ताकत हिंदू समाज मे मानो खत्म हो गई; उसी अनुपात मे रहीम और रसखान जैसे कवियो की संख्या भी नगण्य हो गई। जो स्वयं भीतर से विघटित है, वह दूसरो को मिला भी नही सकता।

हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक अनेक उदारपथी बुद्धिजीवियों का कहना था कि हिंदू-मुस्लिम सघर्ष का पुराना इतिहास भुला देना चाहिए। निराला का मत इनसे भिन्न था। वह इतिहास को गहराई से देखते थे, समाज की आन्तरिक कमजोरी को पहचानने की कोशिश करते थे। इतिहास की इस सामग्री का उपयोग साहित्य मे हो सकता है, होना चाहिए, यदि लिखनेवालो की चेतना रूढ़ियो के मोह से मुक्त हो। निराला की स्थापना यह थी—"हिंदू-मुसलमानों के उस संघर्षकाल मे बहुत कुछ मसाला आज की जातीयता की इमारत मे लगने लायक है, यदि कुशल हाथो से प्राप्त हो। उन दिनो के धार्मिक पथो मे से किसी एक मे रहनेवाला साहित्यिक यह उत्तरदायित्व नही ले सकता, क्योकि वह पक्षपात-दोष से बच न सकेगा। जनता को धार्मिक पक्षपात से मुक्त कर सत्य के सीधे मार्ग पर ले आना साधारण शक्ति का काम नहीं है।" ('सुधा,' १ सितंबर '३३, संपा. टि.—१)

'तुलसीदास' कविता मे निराला ने इसी असाधारण शक्ति का परिचय दिया है। उसमे एक ओर 'मोगल-दलबल के जलदयान' हैं तो दूसरी ओर 'रक्षा से रहित' क्षत्रिय, 'द्विज चाटुकार' और 'क्षीण कंकालकाय' शूद्रगण।

क्या हिंदू और मुसलमान मिलकर इस देश मे सुदृढ राष्ट्रीयता स्थापित कर सकते है?

निराला का उत्तर है: "यूरोप के जर्मनी, फ्रास, इटली आदि देशो मे यदि एकता है, तो भारत मे उससे एक इच भी कम नही। यदि विभिन्न जातियों (races) के होते हुए भी वे देश एक राष्ट्र की दृढ़ता पा सकते है, तो हिंदुओं, मुसलमानों (दोनों ही आर्य और अनार्य भी है) के इस देश मे भी वही राष्ट्रीयता स्थापित हो सकती है, इसमें कुछ भी सन्देह नही है।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—६)

किन्तु मुसलमानो मे तो इतनी कट्टरता है, वे कैसे भारत-राष्ट्र का अंग बनेंगे?

निराला कहते है; "हिंदुओ की सकीर्णता के कारण ही मुसलमान इस देश मे संकीर्ण हो रहे हैं। यदि फारस में वे बढ़े-चढ़े विचारो के है, रूस मे उनका चोला बदल गया है, टर्की मे उनका कुछ और ही रूप हो रहा है, तो कोई कारण नही कि यहाँ के मुसलमान भी हिंदुओ के बढ़ते हुए विचारों और समाज-सुधारो को देखकर

अपना सुधार न करें।" ('सुधा', जनवरी '३३, संपा. टि.—२)

समाज में ऊँच-नीच का भेद मिटाकर, अंधविश्वास और रूढ़ियों से मुक्त होकर व्यापक मानवतावाद की भूमि पर हिंदू और मुसलमान अपनी राष्ट्रीय एकता दृढ़ कर सकते हैं—निराला की शिक्षा का यह सारतत्त्व था।

भाषा और राष्ट्र

भारतीय जनता के राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की भावना को कुचलकर उसे पराधीन बनाए रखने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने निरंतर इस धारणा का प्रचार किया कि भारत कभी एक राष्ट्र नही था। जो भी राष्ट्रीय भावना फैली है, वह अंग्रेजी राज की देन है। भारत के अधिकांश उदारपंथी बुद्धिजीवी भी इसी धारणा को दोहराते है।

स्वयं अंग्रेज़ों ने अपने यहाँ राष्ट्रीय एकता कैसे स्थापित की? कई शताब्दियों तक वे वेल्स और स्कॉटलैंड पर अधिकार करने के लिए युद्ध करते रहे। इसे गृहयुद्ध भी नहीं कह सकते। यह वास्तव में स्कॉट और वेल्स दो स्वतंत्र जातियो को गुलाम बनाने का युद्ध था। इस युद्ध में विजयी होकर, वेल्स और स्कॉटलैंड की भाषा और संस्कृति का दमन करके ही अंग्रेज़ ब्रिटेन को एक राष्ट्र बना सके।

अमरीकियो ने संयुक्त राज्य अमरीका को कैसे संयुक्त किया? पहले वे रेड-इंडियनों से लड़े, फिर जहाँ से आए थे, उस देश ब्रिटेन से लड़े, फिर आपस मे लड़े, तब संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रीय एकता स्थापित हुई।

सोवियत संघ में राष्ट्रीयता का विकास कैसे हुआ? ज़ारशाही रूस ग़ैर-रूसी जातियों के लिए कठघरा था। समाजवादी क्रान्ति से यह कठघरा टूटा। फिनलैंड और पोलैंड ने रूस के साथ संघबद्ध होने से इनकार किया। बेलोरूसिया और उक्रैन—जहाँ की भाषा और संस्कृति रूसियो की भाषा और संस्कृति के निकटतम है—स्वतंत्र प्रजातंत्र बने। अन्य प्रदेशो में लम्बे गृहयुद्ध के बाद सोवियत सत्ता स्थापित हुई। बाद में संधि करके स्वतंत्र प्रजातंत्रों ने अपना संघ बनाया। १९४० में लातविया, एस्तोनिया और लिथुआनिया के प्रजातंत्र सोवियत संघ में शामिल हुए। इस तरह सोवियत संघ में राष्ट्रीय एकता कायम हुई।

भारत में राष्ट्रीयता का विकास दूसरे ढंग से हुआ है। इस विकास मे उन प्रदेशो की प्रमुख भूमिका रही है, जिनमें अब हिंदी भाषा बोली जाती है। कुरुक्षेत्र, आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त, मध्य देश—सब इन्ही प्रदेशों के अन्तर्गत है। यही से संस्कृति

के वे तमाम सूत्र आरंभ होते है जिनसे दूर-दूर के जनपद एक ही राष्ट्र मे बँध गए। हिंदीभाषी जाति—या उसके पूर्वपुरुषो—ने भारत को जातियों का कठघरा नही बनाया; उसने आन्ध्र, तमिलनाडु या बंगाल के लोगो को अपना दास बनाने के लिए शताब्दियो तक उनसे युद्ध नही किया। भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना राजनीतिक समझौतों और सन्धियों के आधार पर कायम नही हुई। उसका मुख्य आधार है सांस्कृतिक।

निस्सन्देह राजनीतिक एकता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। किंतु वही सब कुछ नही है। प्राचीन यूनान छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित था; फिर भी समूचा देश—हेलास—एक है, उसके निवासियों की सभ्यता एक है, यह चेतना यूनानियो मे थी। यूरोप का कौन ऐसा राष्ट्र है, जिसके साहित्य और सस्कृति पर उस विभाजित हेलास का गहरा प्रभाव न पडा हो? राजनीतिक एकता के तार जहाँ टूट जाते हैं, वहाँ संस्कृति के सूत्र ही विभाजित जन-समुदायो को परस्पर बाँधे रहते हैं।

महाकवि दाते का देश—इटली—भी छोटे-छोटे राज्यो मे बँटा हुआ था। किन्तु उनसे बड़ा इटली की भाषा और साहित्य का प्रतिनिधि कवि और कौन है?

यूरोप और अमरीका के देशों मे राष्ट्रीय एकता गृहयुद्ध के बाद कायम हुई। भारत के इतिहास को देखते हुए वहाँ की राष्ट्रीयता बहुत ही कच्ची उम्र की है। हम इस देश के है, यह देश हमारा है—इस भाव के पैदा होने, सुदृढ़ होकर मनुष्य की आन्तरिक चेतना का अमिट अंश बन जाने मे समय का बड़ा महत्त्व है। भारत की राष्ट्रीयता से वे देश स्पर्धा नही कर सकते जिनका इतिहास अभी कल शुरू होता है। राष्ट्रीयता देशकाल-सापेक्ष है। उत्तर-दक्षिण अमरीका के गोरे निवासियो ने दूसरो के प्रदेश को अपना देश बनाया। देश को अपना कहते हुए उन्हें थोड़ा ही समय बीता है। इस देशकाल-सापेक्षता के सिद्धान्त को ध्यान मे रखते हुए कोई भी पश्चिमी देश भारत को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने का दावा नही कर सकता।

महाभारत का युद्ध आरभ होने से पहले धृतराष्ट्र ने संजय से कहा—तुम इस भारतवर्ष का वर्णन करो, जिसके लिए कौरव और पाण्डव युद्ध करने को तत्पर हैं। संजय ने कहा—इस भारतवर्ष मे गंगा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि नदियाँ बहती हैं। इसमें कश्मीर, गन्धार, आन्ध्र, केरल, कर्णाटक, द्रविड़, कोंकण, मालवा, उत्कल, अंग, वग, कलिग आदि जनपद है। इस भारतवर्ष मे आर्य, म्लेच्छ और दोनों के मिश्रण से उत्पन्न होनेवाले लोग रहते है। अपने गुण और बल के अनुसार यहाँ की धरती की सेवा की जाय तो वह कामधेनु के समान सब कामनाओं की पूर्ति करे किन्तु "जैसे कुत्ते मास के टुकड़े के लिए परस्पर लड़ते और एक-दूसरे को नोचते हैं, उसी प्रकार राजा लोग इस वसुधा को भोगने की इच्छा रख कर आपस मे लड़ते और लूटपाट करते है।" (महाभारत; गीता प्रेस; भीष्म पर्व, नवाँ अध्याय)

जिन्होने भारत मे राष्ट्रीय एकता का भाव जगाया, उन्होने उसे अपने असीम मानवप्रेम से सम्बद्ध भी कर दिया। राजा इस धरती को भोगना चाहते है, उसकी

सेवा नही करना चाहते, इसीलिए आपस में लड़ते और लूटपाट करते है।

इस देश में आर्य और म्लेच्छ दोनो रहते है। उनके मिश्रण से जो तीसरी किस्म के लोग उत्पन्न हुए हैं, वे भी यहाँ रहते हैं। इस भारत में कश्मीर से लेकर केरल तक अनेक जनपद हैं। भारत के इस बहुजनपदीय राष्ट्र का रूप प्राचीन साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है।

अंग्रेज कहते थे, भारत कभी एक राष्ट्र नही था। अंग्रेजी राज मे राष्ट्रीय एकता कायम करनी है तो अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा वनाओ। अंग्रेजी के विना अनेक भाषाएँ वोलनेवाला यह देश अपनी एकता की रक्षा नही कर सकता। उदारपंथी वुद्धिजीवी कहते थे—अंग्रेज़ ठीक कहते हैं, अंग्रेज़ी के विना राष्ट्रीय एकता की रक्षा नही हो सकती।

स्वाधीनता आन्दोलन मे भाग लेने वाले देशभक्तों की राय थी, हिंदी सारे देश मे सवसे ज्यादा वोली और समझी जाती है, उसी को राष्ट्रभाषा वनना चाहिए। किंतु राष्ट्रीयता के वारे मे इनमे अधिकांश का यही मत था कि वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज़ो की देन है। अंग्रेज़ों ने या तो हमें राष्ट्रीयता सिखाई अथवा उनका विरोध करते हुए हमने स्वयं उसे सीखा।

निराला यह नहीं मानते थे कि राष्ट्रीयता की भावना अंग्रेजी राज की देन है। उन्होने इस धारणा का खंडन किया कि भारत एक देश नही, अनेक देशों का समुदाय है। उनका कहना था कि यह धारणा अंग्रेज़ों द्वारा फैलाई गई थी। निराला ने लिखा, "अंग्रेज़ कहते थे कि चूँकि भारतवर्ष कोई एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यहाँ न एक भाषा है और न एक प्रकार का समाज, अनेक छोटी-वड़ी भाषाओ के रहते भारतवर्ष उन्नति नही कर सकता, इसलिए सवको अंग्रेजी पढ़नी चाहिए। अंग्रेजो के हिमायती अव तक कुछ ऐसी ही दलील पेश करते रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि इनमे कुछ तो इसी देश के निवासी—भारतीय—हैं। हमें उनकी वात पर हँसी भी आती है, और कष्ट भी होता है। भारतवर्ष एक देश नही है, अनेक देशों का समुदाय है, यह वे ही कह सकते हैं जिन्हें यहाँ के इतिहास का कुछ पता नही और जिन्हें यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की नीव का ज्ञान नही। परंतु जो यह जानते हैं कि प्राचीन भारत ने एक सूत्र में गुँथकर अपना सर्वतोमुखी विकास किया है, जिन्हें यह मालूम है कि इस देश ने सुख और दुःख की परिस्थितियों में एक साथ रहकर काम किया है, विजय की है तो एक साथ, हारे है तो एक साथ; जिनको इसका पता है, राम, कृष्ण, वुद्ध, रामानुज, कवीर, तुलसी आदि सैकड़ों महापुरुप और वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक संप्रदाय प्रादेशिक सीमा से ऊपर समस्त देश में, वायु की भाँति, एकरस फैले हैं, वे ऐसे भ्रम मे कदापि नही पड़ सकते।" ('सुधा', जून '३०, संपा. टि.—६)

सुख-दुःख की परिस्थितियों मे एक साथ रहकर काम करना—राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास का यह समर्थ कारण है। यहाँ जो सम्प्रदाय जन्मे, वे प्रदेश की सीमाएँ पार करके सारे देश मे फैले। प्रदेश अनेक है, लेकिन है वे सव एक ही

देश के भीतर।

यूरोप के राष्ट्रों में अनेक नसलो के लोग घुल-मिलकर एक हो गए; तव भारत मे मुसलमान भी यहाँ की राष्ट्रीयता में घुल-मिलकर एक हो सकते है—यह तर्क प्रस्तुत करने के वाद निराला राष्ट्रभापा की आवश्यकता सिद्ध करते हुए कहते हैं, "यदि इस देश को अपना पूर्व गौरव पहनचाकर अपना अस्तित्व वनाए रखना है, यदि इसे अन्य सभ्यताओं के मुकावले खड़े होकर अपना मस्तक नत नही करना है, और यदि राजनीतिक, आर्थिक आदि विपयों में इसे विदेशियो का गुलाम नहीं होना है, सारांश यह है कि यदि इसे संसार के इतिहास में कुछ अपना व्यक्तित्व वनाए रखना है, तो भारतवर्ष को राष्ट्रीयता के एक पाश मे अवश्य वँधना पड़ेगा। विना एक राष्ट्रभापा के राष्ट्रीयता का विकास नही हो सकता। यह वात राजा राममोहन राय, दयानंद आदि ने समझी थी, और इस युग की सव महान् आत्माएँ इसका समर्थन करती हैं।" (उप.)

राष्ट्रभापा की स्वीकृति की माँग अपने इतिहास के प्रति भारतीय जनता की सजग दृष्टि से उत्पन्न हुई थी, यह उस साहित्य की देन थी जो पराधीनता की परिस्थितियों में जनता को एकतावद्ध होकर विदेशी शासकों से संघर्प करने की प्रेरणा देता था, समाज को पुनर्गठित करके स्वाधीन राष्ट्रो के साथ कदम मिलाकर आगे वढने की सहज आकाक्षा का वह प्रतिफलन थी; अंग्रेजो का विरोध करना है, केवल इसीलिए राष्ट्रभापा चाहिए, इस तरह के नकारात्मक दृष्टिकोण का परिणाम वह न थी।

अंग्रेज़ी राज कायम होने से राष्ट्रीयता फैलती तो आधा अफ्रीका एक राष्ट्र वन गया होता, वहाँ भी राष्ट्रभापा के व्यवहार की माँग सुनाई देती।

जर्मनी और आस्ट्रिया पड़ोसी देश है, दोनों मे जर्मन भापा वोली जाती है किंतु वे दो राष्ट्र है, एक नही। दक्षिण अमरीका के अनेक राज्यों मे स्पैनिश भापा वोली जाती है किन्तु वे एक राष्ट्र नही है। स्विट्जरलैण्ड में जर्मन, इटालियन, फ्रेंच—तीन भापाएँ वोली जाती है किंतु वह एक राष्ट्र है। मुख्य वात है—सुख और दुःख की परिस्थितियों में एक साथ रहकर काम करना।

प्राचीन गौरव की वात से प्रसन्न होकर कुछ लोग सोचते हैं, यदि यहाँ संस्कृत फिर राष्ट्रभापा हो जाय तो राष्ट्रीय एकता की रक्षा के साथ उस प्राचीन गौरव की पुन.प्राप्ति भी हो जाय। निराला ने इस प्राचीनता-प्रेम की आलोचना करते हुए सस्कृत को सारे भारत की भापा वनाने के विचार को अव्यावहारिक वताया और लिखा, "इसका प्रयोग शिष्टजन ही करते थे। वह संस्कृत अव हमारे घरों में वोली जाय, इस वात में प्राचीन-प्रियता,. स्वदेश-प्रेम आदि चाहे जितना हो, पर भापाशास्त्र के व्याव्हारिक नियमो के सामने यह ठहर नही सकती। सस्कृत हमारे पूज्य पूर्वजो की पवित्र वाणी रही है, इस दृष्टि से हमारे लिए वह शिरोधार्य है। वह देववाणी है, हम उसकी पूजा करेगे, पर इससे अधिक हम शायद कुछ न कर सकेंगे।" (उप., संपा. टि.—७) संस्कृत को राष्ट्रभापा वनाने का सुझाव,

अव्यावहारिक होने के कारण, वास्तव में हिंदी की जगह अंग्रेज़ी को प्रतिष्ठित रखने में सहायक होता था। यूरोप में किसी समय लैटिन का प्राधान्य था किंतु जब यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ, तब लैटिन का स्थान वहाँ बोल-चाल की भाषाओं ने ले लिया। (उप., संपा. टि.—६) वैसे ही यहाँ संस्कृत अपदस्थ हुई।

राष्ट्रभाषा के रूप मे हिंदी को अपनाने का संघर्ष वास्तव में अंग्रेज़ी के विरुद्ध समस्त भारतीय भाषाओं की अधिकार-प्राप्ति का संघर्ष था। निराला से पहले महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' की अनेक टिप्पणियो मे प्रान्तीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का समर्थन किया, अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाए रहने का विरोध किया। फरवरी, १९१६ की 'सरस्वती' में द्विवेदीजी ने 'विविध विषय' स्तंभ में लिखा था, "मद्रास प्रान्त में कई करोड़ आदमी तामील और तैलंगी भाषाएँ बोलते हैं। वही उनकी मातृभाषाएँ हैं। उन सबको कुछ थोड़ी सी प्रारंभिक शिक्षा छोड़कर अन्य सारी शिक्षा अंग्रेज़ी भाषा ही के द्वारा मिलती है। यह बात आश्चर्य में डालने वाली है···अंग्रेज़ी भाषा सीखने की आवश्यकता है ज़रूर··· तथापि इससे मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने की महत्ता कम नही हो सकती।"

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर हिंदी के तमाम ज़िम्मेदार साहित्यकारों की वही राय रही है जो द्विवेदीजी की थी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर हिंदीवाले अन्य भाषाओं को दबाना चाहते हैं, यह प्रचार पराधीन भारत में—गांधीजी के जीवन-काल में और गांधीजी के भेजे हुए हिंदी-प्रचारकों के विरुद्ध—शुरू हो गया था, इसीलिए अहिंदी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए हिंदीभाषियों ने जो आन्दोलन किया, उसे याद रखना आवश्यक है। निराला ने द्विवेदीजी का अनुसरण करते हुए शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए प्रादेशिक भाषाओं का समर्थन किया।

"हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगीं—" (उप., संपा. टि.—६) निराला ने साम्राज्यवाद की कुटिल नीति के बारे में जब यह लिखा था, तब उनका ध्यान केवल हिन्दी की ओर नहीं था, वह समस्त भारतीय भाषाओ की बात कह रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति के साथ प्रदेशों की जनता में जातीय चेतना भी फैल रही थी। भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन की चर्चा आरंभ हो गई थी। बंगाल का विभाजन न किया जाय, बंगाली जाति एक है—यह आन्दोलन बीसवीं सदी के प्रथम दशक में चल चुका था। निराला ने केवल भाषा के आधार पर प्रान्तों के विभाजन को अवांछनीय बताया किन्तु आगे लिखा, "यह ठीक है कि साहित्यिक विकास के लिए भाषाओं को प्रान्तबद्ध होने में कुछ सुविधा रहेगी। विभिन्न प्रान्तों के विश्वविद्यालय अपने यहाँ की भाषा की ओर ध्यान देंगे, वहाँ के साहित्यिक उसकी श्रीवृद्धि प्रतियोगिता की भावना के साथ करेंगे, पर यह बात दूसरी है। साहित्यिक उत्कर्ष के साथ ही भावों के सार्वदेशिक सुगम विनिमय का ध्यान भी रखना पड़ेगा, और यही राष्ट्र-

भाषा का प्रश्न है।" (उप., संपा. टि.- -६)

निराला का यह विचार सही था कि भाषा के आधार पर ही प्रान्तों का पुनर्गठन न होना चाहिए। सोवियत संघ मे भाषाओं की संख्या के अनुरूप सौ-दो सौ प्रजातंत्र नही बने। किंतु यहाँ प्रश्न प्रादेशिक भाषाओ के विकास का है। निराला को विभिन्न भाषाक्षेत्रो के विश्वविद्यालयों से अपेक्षा है कि वे अपनी भाषाओ की ओर ध्यान देंगे और लेखक अपने साहित्य का विकास करेंगे। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाधी, प्रफुल्लचन्द्र रे आदि मनीषियो के प्रयत्नो की चर्चा—और उनका समर्थन—करते हुए निराला ने लिखा, "जब तक शिक्षा विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा मे नही दी जाती, तब तक उसकी पूरी तरह प्राप्ति असंभव है।" ('सुधा', १ जनवरी '३४; सपा. टि.—१) हिंदी के राष्ट्रभाषा होने से बँगला या अन्य किसी प्रान्तीय भाषा की हानि न होगी, इस धारणा पर बल देते हुए निराला ने लिखा, "हिंदी के रहते हुए भी वे अपनी भाषा का महत्तम विकास कर सकते हैं। सभी प्रान्तीय भाषाओं के संबध मे यह बात कही जा सकती है।" ('सुधा', १ जुलाई '३४; सपा. टि.—५)

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचारो की आलोचना करते हुए निराला ने प्रान्तीय भाषाओं के विकास और समृद्धि पर पुनः बल देते हुए लिखा, "प्रान्तीय भाषाओ के समुन्नत होने के विषय मे दो सम्मतियाँ नही हो सकती—सभी ऐसा चाहते है। जो लोग भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे है, उन्होने तो सदा स्पष्ट शब्दो मे यही कहा है कि प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति मे बाधा न देकर, किसी प्रकार का रोड़ा न अटकाकर, एक राष्ट्रभाषा को विकसित करना चाहिए, क्योकि हमारे जैसे विशाल देश मे यदि कोई ऐसी देशी भाषा हो सके, जिसमे एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के निवासियो से विचार-विनिमय कर सकें, तो राष्ट्रीय उन्नति में बड़ी सहायता मिले।" ('सुधा', नवंबर, '३४; संपा. टि.—१२)

निराला ने यहाँ बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह अर्थ कदापि नही है कि वह अहिंदी भाषाओं का स्थान ले ले। उसका स्थान तो वास्तव मे अंग्रेजी लिए हुए थी। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का उद्देश्य यह था कि एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के निवासियों से विचार-विनिमय कर सकें। विचार-विनिमय का यह कार्य जो लोग अंग्रेज़ी के माध्यम से करते थे, वे एक फीसदी से भी कम थे। एकता को व्यापक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक था कि विभिन्न प्रान्तों के साधारण लोग बड़े पैमाने पर सपर्क कायम करे। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की आवश्यकता इन्ही लोगो को थी।

फिर भी अंग्रेज़ी के समर्थक हिंदीभाषियों पर यह आरोप लगाते ही रहे कि वे दूसरो पर हिंदी लादना चाहते है, उनकी भाषाओं को दबाना चाहते है। इसलिए अंग्रेजी ही राजभाषा रहनी चाहिए जो किसी पर नही लादी गई!

हिंदी के विरोध और अंग्रेजी के समर्थन मे वे और भी कई तर्क ढूंढ लाए थे।

एक तर्क यह था कि हिंदी एक कृत्रिम भाषा है। उसके अंतर्गत भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेलखंडी आदि भाषाओं को गिन लिया जाता है। ये सब स्वतन्त्र भाषाएँ है, हिंदी की बोलियाँ नही। हिंदी बोलनेवालों की संख्या वास्तव में बहुत कम है।

'विचित्रा' नाम की बँगला पत्रिका में श्री सुशीलकुमार वसु नाम के सज्जन ने हिंदी को उसकी बोलियो से जुदा करके सिद्ध किया कि हिंदी बोलनेवाले बँगला-भाषियों की तुलना में बहुत कम है। इस पर निराला ने लिखा, "मातृभाषा का प्रेम तो बहुत स्वाभाविक चीज़ है। परंतु किसी दूसरी भाषा के सम्बन्ध में गलत धारणा बनाना और उसका प्रचार भी करना मन की अस्वाभाविकता का परिचायक है। वसु महोदय ने हिंदी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले है। और उनका कथन है कि वे सब अंग एक-दूसरे से भिन्न है, जबकि वास्तव मे वे परस्पर घुले-मिले हुए हैं। उनकी राय मे पूर्वी हिंदी पश्चिमी हिंदी से भिन्न है। बिहारी हिंदी के अन्तर्गत नहीं है, वरन् संपूर्ण स्वतंत्र भाषा है एवं हिंदी की अपेक्षा बँगला के साथ ही उसका संपर्क अधिक है।" ('सुधा', १ जुलाई '३४; संपा. टि—५)

डा. ग्रियर्सन, डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और उनके अनुवर्तियो द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों को ही 'विचित्रा' मे दोहराया गया था। डा. ग्रियर्सन और डा. चाटुर्ज्या ने सरल हिंदी को देश में सबसे ज्यादा समझी जानेवाली भाषा स्वीकार किया था; उनके अनुवर्ती यह भी मानने को तैयार न थे—यह अन्तर था। किन्तु अवधी, भोजपुरी, मैथिली हिंदी से स्वतंत्र भाषाएँ है, यह मान्यता डा. ग्रियर्सन और डा. चाटुर्ज्या दोनो की थी।

निराला ने सुशीलकुमार वसु के लिए लिखा कि या तो उन्हें प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान नही और यदि ज्ञान है तो उसे उन्होने छिपाया है। वह भाषाशास्त्र के नियमों से भी अनभिज्ञ हैं। किसी भी प्रान्त मे प्रत्येक सौ मील पर भाषा-भेद स्पष्ट हो जाता है। "परंतु हम उनसे पूछते हैं कि स्वयं बंगाल में क्या इस प्रकार का भाषा-भेद दृष्टिगोचर नही होता?" पूर्वी बँगला पश्चिमी बँगला से भिन्न है। पूर्वी हिंदी पश्चिमी हिंदी से भिन्न है तो क्या असमिया, उड़िया और बिहारी 'बँगला की बिलकुल सगी बहनें' हैं? हिंदी की तुलना मे बँगला के बोलने-समझने वाले अधिक हो गए, "परन्तु हिंदी तो न उत्तर के लोग समझते हैं, न पश्चिम के, न बुंदेलखंडी उसे समझ पाते हैं, न मुसलमान, न अवधी, न बिहारी और बंगालियों के लिए तो वह बिलकुल ही ग्रीक है। इस तरह की यह हिंदी है क्या चीज़, इसे बंगाली ही समझ सकते हैं।"

अनेक बंगाली बुद्धिजीवी असमिया और उड़िया को बँगला की बोली मानते थे। आगे चलकर असम और उड़ीसा अलग प्रान्त बन गए। बँगला का क्षेत्र सकुचित हो गया। ये बुद्धिजीवी सोचते थे, हिंदी से उसकी बोलियाँ अलग हो जायँ तो उसका क्षेत्र भी ज़रा संकुचित हो जाएगा। लेकिन यहाँ अलग प्रान्त बनने पर भी बिहार, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रदेश आदि की भाषा हिंदी ही रही!

श्री सुशीलकुमार वसु का एक तर्क यह था कि "हिंदी के साथ उर्दू का पार्थक्य

इतना अधिक है कि हिंदी सीखकर कोई सहसा उर्दू समझने में समर्थ नहीं हो सकता।" (उप.) हिंदी-उर्दू का भेद अंग्रेजो के जमाने मे वढा। पंद्रहवी से अठारहवी सदी तक उत्तर भारत की भापाओं पर फारसीयत का प्रभाव वहुत ही कम है यद्यपि फारसी चार-पाँच सौ साल से राजभापा वनी हुई थी। हिंदीभापी क्षेत्र मे फारसीपन के प्रभाव से उर्दू-हिंदी का भेद वढ़ा; किन्तु केवल अभिजातवर्ग मे और साहित्य मे। जनसाधारण की वोलचाल की भापा मे ऐसा कोई भेद न था। अंग्रेज़ी को भारत की राजभापा वनाए रखने के लिए इस भेद को पहले इस्तेमाल किया गया और अव भी किया जाता है। इस सम्वन्ध मे निराला की मान्यता यह थी : "हिंदी-उर्दू का विवाद यद्यपि अव तक वन्द नही हो गया है, पर समझदार लोग यह समझने लगे है कि इनमे कोई विशेप विभेद नही है—कम-से-कम वोलचाल की दृष्टि से हम दोनों को एक मान सकते हैं।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—६) जहाँ तक मुसलमानो का सम्वन्ध है, "अधिकाश मुसलमान थोड़े-से परिवर्तित रूप मे हिंदी ही वोलते हैं;" इस प्रकार "हिंदी वोलने वालों की संख्या सवसे अधिक है।" (उप.)

हिंदी के विरोध मे सवसे वड़ा तर्क यह था कि वह एक पिछड़ी हुई भापा है, साहित्यिक समृद्धि मे अन्य भापाएँ उससे आगे वढ़ी हुई हैं, तव उसे राप्ट्रभापा के पद पर क्यों विठाया जाए। इस तर्क का आधार यह मिथ्या कल्पना थी कि राप्ट्र-भापा का व्यवहार मुख्यत: साहित्य के पठन-पाठन के लिए होगा। निराला का कहना था कि साहित्य का प्रश्न राप्ट्रभापा से जुड़ा हुआ है, फिर भी दोनों एक नही है। "साहित्य और भाषा का प्रश्न वहुत कुछ एक होते हुए भी वहुत कुछ अलग भी है।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—६) कसौटी यह होनी चाहिए कि राप्ट्रभापा सरल, सुवोध हो, "सवसे अधिक वोली तथा समझी जाती हो।" ('सुधा', १ जुलाई '३४; संपा. टि.—५)

भरतपुर हिंदी साहित्य सम्मेलन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा कि हिंदी को राप्ट्रभापा वनाना हो तो साहित्य की श्रीवृद्धि करो। ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—६) हिंदी प्रान्तो में ही अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग हिंदी की उपेक्षा करते हुए पूछते थे—हिंदी मे है क्या? ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—२) उत्तर भारत में मद्रास से शिक्षित युवकों का एक दल यात्रा करने आया। उसमें एक युवक ने कहा कि हिंदी में ऊँचे साहित्य का अभाव है। ('सुधा', १ अगस्त '३४) इन्दौर साहित्य सम्मेलन में वँगला की समृद्धि के मुकावले हिंदी की दरिद्रता का उल्लेख महात्मा गांधी ने किया। ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—३)

हिंदी साहित्य की दरिद्रता के इस निरंतर उल्लेख से निराला का क्षुव्ध होना स्वाभाविक था। यह उल्लेख अप्रासंगिक था क्योकि राप्ट्रभापा का उपयोग मूलत. विभिन्न प्रदेशों की जनता के वीच संपर्क भापा के रूप में होना था। अंग्रेजी को न हटा पाने पर अपनी असफलता पर पर्दा डालने के लिए यह एक अच्छा वहाना था। विश्वज्ञान प्राप्त करने के लिए अंग्रेज़ी को राजभापा और शिक्षा का माध्यम वनाए रहना चाहिए—यह निष्कर्ष भी हिंदी की दरिद्रता से अपने आप निकलता था।

निराला ने बड़े धैर्य से और अनेक बार इस तर्क का उत्तर दिया।

'विचित्रा' वाले बँगला लेख के प्रसंग में उन्होंने लिखा, "भारतवर्ष के लिए एक साधारण और चलित भाषा का निर्वाचन करते समय यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि भारत की प्रधान भाषाओं में साहित्यिक उत्कर्ष किसका बड़ा है। इस विषय में हिंदी किसी प्रान्तीय भाषा से पीछे नहीं है। यद्यपि हम मानते हैं कि बँगला साहित्य कई दृष्टियों से औरों की अपेक्षा उत्कृष्ट है, परंतु प्राचीन हिंदी साहित्य का मुकाबला बँगला नहीं कर सकती। व्रजभाषा का प्रभाव वैष्णव कवियों पर काफी पड़ा है। बँगला में एक रवीन्द्रनाथ हैं, हिंदी में तुलसीदास, सूर, कबीर तीन हैं।" ('सुधा', १६ जुलाई '३४; संपा. टि.—५)

संयत भाव से उन्होंने अपनी भाषा और साहित्य का पक्ष-समर्थन किया, बँगला के उत्कर्ष को स्वीकार करते हुए। मद्रास के युवक-यात्री की राय पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा, "हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि राष्ट्रभाषा के साथ ऊँचे साहित्य का कौन-सा सम्बन्ध है, जो कहें, इसके बिना उसकी सिद्धि असंभव हो रही है···पर यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं कि आधुनिक बँगला साहित्य, हिंदी साहित्य से ऊँचा है।" ('सुधा', १ अगस्त '३४; संपा. टि.—२)

गांधीजी के इन्दौरवाले भाषण पर टिप्पणी करते हुए निराला ने लिखा कि हिंदी का नया-पुराना साहित्य मिलाकर किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य से घटकर सिद्ध नहीं होता। आधुनिक हिंदी साहित्य ने जितनी तेजी से प्रगति की है, उतनी तेजी से अन्य किसी भाषा के साहित्य ने प्रगति नहीं की।

"यहाँ महात्माजी का विवेचन बहुत ही अधूरा जान पड़ता है। हिंदी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पी. सी. राय और जगदीशचन्द्र बोस नहीं, और ऐसे नाम और भी गिनाए जा सकते हैं, इसे हम महात्माजी की अधूरी जानकारी समझते हैं। यहाँ महात्माजी ने विज्ञापित मनुष्यों के विज्ञापन की ओर देखा है, प्रतिभा की ओर नहीं।"

हिंदी में तुलसी, सूर, बिहारी, कबीर आदि का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "तुलसी के सामने किसी कवि को हिंदीवाले मान जाएँगे, यह दुराशामात्र है।" आधुनिक साहित्यकारों के बारे में उन्होंने लिखा, "आज जो कवि आगे बढ़ते जा रहे हैं, महात्माजी ने उनके कार्यक्रम और रचनाओं को नहीं देखा। मुमकिन है, कुछ साल बाद अपने साहित्य में उनमें से किसी का पूर्णरूप से विज्ञापित हो जाने के बाद वही स्थान हो, जो रवीन्द्रनाथ का है।" ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—३)

किसका साहित्य बड़ा है, किसका छोटा—यह बहस अब भी जारी है और निकट भविष्य में जारी रहेगी। मूल समस्या दूसरी ही थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में कितनी गहराई है, निम्नतम जनता को किस हद तक उसने सक्रिय बनाया, साम्राज्यवाद के दृढ़ देशी आधार सामन्तवाद के विरुद्ध उसने कितने बड़े पैमाने पर किसानों का संघर्ष चलाया, उच्च और मध्यवर्ग—तथा ज़मींदारों—की शिक्षित

संतान की जगह नेतृत्व पद पर कितने औद्योगिक मजदूरों और गरीब किसानों को बिठाया—इन प्रश्नों के उत्तर से समझ में आ जाएगा कि हिंदी राष्ट्रभापा क्यो नही बनी। राष्ट्रभापा की ज़रूरत अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगो को नहीं, साधारण लोगो को थी, जिनमें अधिकांश अपनी या पराई कोई भापा लिख-पढ़ न सकते थे। ये साधारण लोग कितनी बड़ी संख्या मे राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेते हैं, इस पर निर्भर था कि हिंदी राष्ट्रभापा के पद से अंग्रेज़ी को हटा पाती है या नही। किंतु कहाँ तो अर्धशिक्षित और अशिक्षित जनो को ज़रूरत थी हिंदी के साधारण ज्ञान की, कहाँ नेताओ ने बहस छेड़ दी साहित्य किसका अधिक समृद्ध है—हिंदी का या बँगला का!

इसी तरह बड़े सद्भाव से वे एक और तर्क यह दिया करते थे कि हिंदी मे तमाम भारतीय भापाओं के शब्द आ जाएँ, तब वह अखिल भारतीय भापा बन जाएगी; हिंदी अपने वर्तमान रूप मे प्रादेशिक है, जब वह अखिल भारतीय रूप ग्रहण करेगी, तब राष्ट्रभापा भी बन जाएगी।

अपनी राजनीति, अपने नेतृत्व, अपने आन्दोलन की कमजोरियाँ छिपाने के लिए वकील-नेता कब कहाँ से कौन-सी दलीलें ढूंढ़ लाएँगे, कोई नही कह सकता। इन दलीलों का खंडन करने मे निराला का प्रमुख स्थान था। उन्होने राष्ट्रीयता के विकास को सही दृष्टि से देखा, अहिंदी भापाओं से राष्ट्रभापा हिंदी के सम्बन्ध की सही व्याख्या की। हिंदी भापा और साहित्य पर जो अनुचित आक्षेप किए गए, दूसरो की भापा के सम्मान की उचित रक्षा करते हुए, उन्होंने उनका समुचित उत्तर दिया। साथ ही राष्ट्रभापा-गौरव के अनुरूप हिंदी साहित्य को समृद्ध करने की आकांक्षा उनमें और भी प्रबल हुई।

जातीयता और हिन्दी

भारत में अनेक भापाएँ बोली जाती है। इन भापाओ के अपने-अपने प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले लोगो को 'जाति' की संज्ञा दी जाती है। वर्णव्यवस्था वाली जाति-पाँति से इस 'जाति' का अर्थ बिलकुल भिन्न है। किसी भापा को बोलने वाली, उस भापाक्षेत्र मे बसनेवाली इकाई का नाम जाति है। महाभारत में कश्मीर, केरल, उत्कल आदि जिन जनपदों का वर्णन है, वही अब विकसित होकर आधुनिक भारत के जातीय प्रदेश बन गए हैं। महाभारतकालीन भारत जैसे बहु-जनपदीय राष्ट्र था, वैसे ही आधुनिक भारत बहुजातीय राष्ट्र है। भारत की अन्य

भापाओं की तरह हिंदी का भी अपना एक प्रदेश है, अन्य भापा-भापियों की तरह हिंदीभापियों की भी एक जाति है।

भारतेन्दु ने जब 'लेवी प्राणलेवी' निबंध में लिखा था, "हाय—पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर वह सभ्यता देगा, जो हिंदुस्तान के और खंड के वासियो ने पायी है।" —तब उन्होंने भारत मे अनेक भापाएँ बोलनेवाली जातियों—और इन जातियों में हिंदीभापी जाति—का अस्तित्व स्वीकार किया था।

हिंदी राष्ट्र या सूबा हिंदुस्तान पुस्तक में डा. धीरेन्द्र वर्मा ने इसी हिंदीभापी जाति के एकीकरण की समस्या का विवेचन किया था।

इसी हिंदीभापी जाति को बंगाल के लोग हिंदुस्तानी कहते हैं। डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने इस सम्बन्ध में लिखा है, " 'हिंदुस्तानी' शब्द का अर्थ होता है 'हिंदुस्तान की (भापा)' और 'हिंदुस्तान', यह शब्द, मुस्लिम-काल में अपने सीमित अर्थ में पंजाब तथा बंगाल के बीच के उत्तरभारतीय मैदान के लिए प्रयुक्त होता था। पूर्वी हिंदी तथा बिहारी बोलनेवाला पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार का भाग, जो पूरब कहलाता है, भी इसी 'हिंदुस्तान या हिंदुस्थान' का एक हिस्सा है। बंगाल मे बँगला न बोलने वाले तथा बिहार या उत्तरप्रदेश के लोगों को 'हिंदुस्थानी' अथवा 'पश्चिमी' कहा जाता है।" (**भारतीय आर्यभाषा और हिंदी**, पृ. १५६)

'विचित्रा' वाले सुशीलकुमार बसु के प्रसंग में निराला ने लिखा था कि बंगालियों का अपना एक प्रान्त है, इसलिए उनमें प्रान्तीयता है, "परंतु हिंदी भापाभापी तो किसी एक प्रान्त मे नहीं रहते। वे तो सर्वत्र हिंदुस्थान मे रहते हैं। अतएव राजनीतिक अथवा साहित्यिक क्षेत्र मे हिंदुस्तानी मनोवृत्ति यदि कोई वस्तु है, तो बंगाली मनोवृत्ति भी अपना एक अलग अस्तित्व रखती है और समय-समय पर उसका परिचय भी हमें मिलता है।" ('सुधा', १६ जुलाई '३४; संपा. टि.—५)

यहाँ निराला ने 'हिंदुस्थान' शब्द का प्रयोग हिंदीभापी प्रदेश के लिए किया है या सारे देश के लिए ? हिंदी भापाभाषी सर्वत्र हिंदुस्थान मे रहते है—इसका यह अर्थ किया जा सकता है कि वे सारे भारत में रहते है, यह भी कि वे अनेक हिंदीभापी प्रान्तो में बंटे हुए हैं जिन्हें मिलाकर एक विशाल प्रान्त नही बनाया गया। धीरेन्द्र वर्मा ने इसी दूसरे अर्थ में 'सूबा हिंदुस्तान' की बात की थी। बँगला में हिंदीभापी प्रदेश के लिए हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग होता ही था।

'बंगालियो की प्रान्तीयता' शीर्षक एक अन्य टिप्पणी ('सुधा', जून '३५) मे निराला ने अंग्रेज़ी के प्रभाव से बँगला साहित्य के समृद्ध होने की चर्चा करते हुए लिखा था कि बंगाल के मुकाबले 'भारत विशेषत: हिंदीभापी प्रान्त' पीछे है। यहाँ हिंदीभापी प्रान्तों का अस्तित्व स्पष्ट स्वीकार किया गया है। बंगाल और 'हिंदीभापी प्रान्तो' में फर्क यह है कि बंगाल एक संयुक्त भापा-क्षेत्र है, हिंदीभापी प्रदेश अनेक प्रान्तों मे विभाजित है।

'सुधा' के इसी अंक में 'इंदौर का हिंदी विश्वविद्यालय' शीर्पक अन्य टिप्पणी

मे निराला ने लिखा, "हिंदीभापी जिस विशाल भू-भाग के लोग एक दिन भारत के प्रति विषय के सूत्रधार रह चुके है, विरोधी शक्ति से लड़ते-लड़ते क्षीण होते हुए, आज भिन्न भापा-भाषी विद्वानो की दृष्टि मे मनुष्य भी न रह जाएँ, यह सहन करने की बात नही, इसका बहुत शीघ्र हिंदीभापियो को उचित उत्तर देना होगा।"

इससे स्पष्ट है कि निराला हिंदीभापी जाति का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते है वरन् उससे तादात्म्य भी स्थापित करते है।

निराला ने लिखा कि रगमच पर अभिनेताओ का उच्चारण 'हिंदी जातीयता के विलकुल प्रतिकूल है' ('सुधा', १ सितम्बर '३३; सपा. टि.—१), उर्दू-फारसी के प्रभाव से 'भापा-साहित्य के भीतर हमारी जाति टूटी हुई विकलांग हो रही है' ('सुधा', १ अक्तूबर '33; सपा. टि.—२), जहाँ उर्दू-फारसी का असर कम था, संस्कृत का प्रभाव अधिक था, वहाँ अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार होने पर 'भापा मार्जित तथा जातीय विशेषत्व की ज्ञापिका हो गई' (उप.), जब हिंदी शिक्षा का माध्यम होगी, हिंदी का अपना विश्वविद्यालय होगा, तव "हम लोगों मे जातीयत्व के सच्चे बीज अकुरित होगे, शिक्षार्थी युवको की नसों मे दूसरा ही रक्त प्रवाहित होगा। एक दूसरी ही शोभा हिंदीभाषी भूभाग मे दृष्ट होगी।" ('सुधा', जून '३५, सपा. टि.—४) "कवित्त छद हिंदी का चूकि जातीय छन्द है, इसलिए जातीय मुक्त छद की सृष्टि भी कवित्त छद की गति के अनुकूल हुई है।" (**प्रबंध पद्म**, पृ. ९९) यहाँ वह जाति, जातीयता, जातीत्व आदि शब्दो का प्रयोग किसी प्रदेश के निवासियो, उनकी भापा और संस्कृति की विशेपताओं के लिए करते है।

हिंदी-भापाभापी अनेक प्रान्तो मे रहते है। ये सव प्रान्त एक विशाल भूभाग के अन्तर्गत है। इस भूभाग के निवासियो का गौरवपूर्ण इतिहास है। उनके पूर्वज भारत के प्रति विषय के सूत्रधार रह चुके है। अव यह जाति विरोधी शक्ति से लडते-लड़ते क्षीण हो गई है। दूसरे प्रदेशो के विद्वानो द्वारा हिंदीभापियो का अपमान सहन करने की वात नही है। निराला के इन विचारों से प्रकट होता है कि उनके चिन्तन की एक प्रेरक शक्ति उनकी जातीय चेतना भी है।

'चरखा' निवंध मे निराला ने लिखा है कि यू. पी. मे रहकर यदि वह भी अपने दूसरे शिक्षित भाइयो की तरह 'प्रान्तीयता वू-विवर्जित' होते तो वंगालियो की प्रान्तीयता से वेखवर रहते किन्तु "वगालियो के संसर्ग से प्रान्तीयता का ज़हर मेरी नसो में खूब फैल गया और नशे मे वेहोश कर देने की जगह मुझे वेतरह सजग कर देने लगा।" (**प्रबंध प्रतिमा**, पृ. १७)

जातीयता की भावना अमृत है और विष भी। १९०५ मे अग्रेजों ने वगाल का विभाजन किया। वगालियो ने इसका विरोध किया, अग्रेजी की जगह वँगला वोलने और लिखने पर जोर दिया, स्वदेशी आन्दोलन चलाकर सारे देश को नई प्रेरणा दी। इस प्रवुद्ध जातीय चेतना ने वँगला साहित्य के विकास मे बड़ी सहायता की। साथ ही यह चेतना कभी-कभी संकीर्ण प्रान्तीयता का रूप लेकर दूसरो की भापा और साहित्य पर अनुचित आक्षेप करने की प्रेरणा भी देती थी। जातीयता

के ये दोनों रूप बंगाल तक सीमित नहीं थे; वे अन्य प्रदेशों में भी साफ दिखाई देते थे। विशेष रूप से १९४७ के बाद जातीय अहंकार की भावना बहुत बढ़ी है।

निराला ने लिखा था कि 'अपनी भाषा और अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान ही यथार्थ मनुष्यत्व है।' ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—२) इस तरह की श्रेष्ठता का प्रदर्शन पिछले दिनों खूब हुआ है। इस प्रसंग में निराला के चिन्तन की विशेषता यह है कि वह अपनी श्रेष्ठता के साथ दूसरों की श्रेष्ठता के प्रति भी सजग है और उन्होंने बँगला साहित्य की जितनी प्रशंसा की है उतनी दूसरो ने अन्य भाषाओं के साहित्य की कम की होगी। इसके साथ ही वह हिंदीभाषी प्रदेश की विशेष परिस्थितियो—भाषा और साहित्य के विकास की रुकावटों—के प्रति भी बहुत सचेत थे। निराला जातीयता के विष से मुक्त हैं; वे अपने और दूसरों के गुण-अवगुण दोनो पहचानते हैं।

बंगाल के साहित्यिक अभ्युत्थान का मूल कारण निराला की दृष्टि मे, वहाँ के समाज-सुधारकों और साहित्यकारों पर वेदान्त का प्रभाव था। 'बंगालियों ने ज्ञान को ही अपने साहित्यिक उत्थान का मूल माना।' ('सुधा', दिसंबर '३२; संपा. टि.—१) रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पहले भी कवियो ने 'सत्य को ही साहित्य के मूल सूत्र की तरह पकड़ा'। माइकेल मधुसूदन दत्त कई पश्चिमी भाषाओं के जानकार थे, उन्होंने अमित्र छंद चलाया। 'नाट्याचार्य गिरीशचंद्र ने ऊँचे-ऊँचे वेदान्त तत्त्वों को अपने स्वच्छंद छंदवाले नाटकों में जगह दी।' निराला चाहते थे कि मुगल शासन के इतिहास से साहित्य के लिए जो सामग्री ली जाय, वह साम्प्रदायिक द्वेष से मुक्त हो। इस विचार से द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक आदर्श साहित्य थे। "द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने ऐतिहासिक नाटको मे मुसलमान पात्रों को द्वेषपूर्ण विजातीय दृष्टि से नही देखा। उन्हें जो जैसा समझ पड़ा, सत्य को दृढ़ पकड़े हुए उसका वैसा ही चित्रण किया।" बंगाल में राजा राममोहनराय ने ब्राह्मसमाज की प्रतिष्ठा की; महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उसका संवर्धन किया। 'इस प्रवर्तन से बंगाल के साहित्य की सहस्रों गुणा शक्ति बढ़ गई।' बंगाल में स्त्रियों को स्वाधीनता में साँस लेने का अवसर मिला। 'ब्राह्मसमाज को स्त्रियों की स्वतन्त्रता का सबसे अधिक श्रेय है।' आधुनिक युग मे रवीन्द्रनाथ की साधना सर्वोपरि है।

"रवीन्द्रनाथ का तो कहना ही नही। ब्रह्म शब्द की विस्तृति की तरह उनका काव्य और उनकी कला देश और काल की परिधि को ही पार कर गई। भावना के भीतर से वह अनेकानेक चित्रणो को विराट् सत्य मे पर्यवसित करने लगे। हिंदू, मुसलमान, ईसाई वाला सवाल ही न रहा। आज देश के सुधारक अन्यान्य प्रान्तों मे जो कार्य कर रहे है, फिर भी जो कार्य देश की मुक्ति के लिए पड़े हुए है, रवीन्द्रनाथ उनका उल्लेख तथा उनका विकास चालीस वर्ष पहले कर चुके है।" (उप.)

यह सब जातीयता का अमृत है।

बँगला साहित्य का विकास बंगालियों के मातृभाषा-प्रेम के कारण संभव हुआ है। मातृभाषा-प्रेम स्तुत्य है किंतु उसे इतना संकुचित न होना चाहिए कि वह

"दूसरे प्रान्त तथा दूसरी भाषा का उत्कर्ष देखकर बुद्धि को भ्रष्ट कर दे। जहाँ-जहाँ और जब-जब मौका मिला है, बंगालियो ने हिंदी को नीचे ढकेलने की कोशिश की है।" ('सुधा', नवंबर '३४; संपा. टि.—१२) यह जातीयता का विष है और निराला ने उसकी आलोचना की। किंतु इस टिप्पणी में भी उन्होने रवीन्द्रनाथ के लिए लिखा था, "हमारे चित्त में उनके लिए बड़ा आदर है। उन्होने संसार भर में भारत का मुख उज्ज्वल किया है, इसमे संदेह नही।"

निराला आधुनिक हिंदी साहित्य की तुलना मे आधुनिक बँगला साहित्य की श्रेष्ठता मुक्त कंठ से स्वीकार करते थे। वह हिंदी की श्रेष्ठता घोषित करते थे, उसके प्राचीन साहित्य के बल पर। इस श्रेष्ठता को माननेवाले बंगाली विद्वान् भी है, यह भी लिखना वह न भूलते थे। "स्वामी माधवानदजी जैसे बंगाली विद्वान् प्राचीन बँगला के मुक़ाबले प्राचीन हिंदी को ही अधिक महत्त्व देते है।" ('सुधा', १ अगस्त '३४; संपा. टि.—२) इसी टिप्पणी मे उन्होने यह भी लिखा, "यह स्वीकार करने मे हमे कोई आपत्ति नही है कि आधुनिक बँगला-साहित्य हिन्दी-साहित्य से ऊँचा है।"

आधुनिक बँगला-साहित्य के ज्ञान ने निराला को आधुनिक हिंदी-साहित्य की कमज़ोरियो के प्रति सचेत किया। बँगला-साहित्य का अभ्युत्थान ज्ञान से हुआ किंतु "हमारे मस्तिष्क में नाम मात्र को ऊँचे विचार नही रह गए, हम इतने जड़ स्वभाव वाले हो गए है। यह हमारे पतन और साहित्यिक उत्कर्ष न होने का मुख्य कारण है।" ('सुधा', दिसंबर '३२; सपा. टि.—१) ऊँचे विचारो अर्थात् वेदान्त-ज्ञान का अभाव है, मनुष्य मात्र को समदृष्टि से देखने की क्षमता का अभाव है। हिंदी राष्ट्रभाषा है। उसमे राष्ट्र का विराट् रूप प्रकट होना चाहिए; किंतु यहाँ लोग लकीर के फकीर बने हुए हैं। "ज्ञान पानी की तरह है। पानी को जिस बर्तन मे रखो, वह उसके आकार का बन जाता है। पर हमारे साहित्यिको का ज्ञान किसी धातु के बने बर्तनों की तरह जड़ है, जो अपना गढ़ा हुआ स्वरूप बदल नही सकता।" (उप.) बँगला मे माइकेल मधुसूदन दत्त ने अमित्र छंद, गिरीशचंद्र घोष ने स्वच्छंद छंद का प्रचलन किया किंतु "हमारी हिंदी मे अभी छंदो के ह्रस्व-दीर्घ की मात्राएँ गिनी जा रही है। भारतीयता, शालीनता और 'पन' के विचार से साहित्यिको को फुरसत नही मिल रही है।" (उप.)

हिंदीभाषी प्रदेश सामाजिक रूढ़िवाद का गढ़ है। वहाँ नए विचारो का प्रकाश फैलाना अत्यंत दुष्कर है। हर कदम पर क्रान्तिकारी साहित्यकार को विरोध का सामना करना पड़ता है। 'हिंदी का मौलिक साहित्य सब प्रकार तिरस्कृत होकर, ऐसे पीड़न के भीतर से भी बचता, बढ़ता जा रहा है।' ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—१) हिंदी प्रदेश के शिक्षित जन हिंदी का अनादर करते है, हिंदी साहित्य के पाठको की सख्या बहुत ही कम है। पुस्तको की उचित बिक्री नही होती, लेखको को उचित पारिश्रमिक नही मिलता। एक ओर आर्थिक कष्ट, दूसरी ओर साहित्य में विरोध। हिंदी साहित्यकारो ने "हिंदी के पीछे तो अपना सर्वस्व अर्पण कर

दिया है, पर हिंदीभापियों ने उनकी तरफ वैसा ध्यान नही दिया—शतांश भी नही। वे साहित्यिक इस समय जिस कठिनता का सामना कर रहे हैं, उसे देखकर किसी भी सहृदय की आँखों में आँसू आ जाएँगे। चुपचाप वे आर्थिक कष्ट को सहन करते हुए साहित्य का निर्माण करते जा रहे हैं। वदले में उन्हे अनधिकारी साहित्यिकों से लाञ्छन और असंस्कृत जनता से अनादर प्राप्त हो रहा है।" ('सुधा', जून '३५, संपा. टि.—२) अनादर करने वालो मे एक ओर अहिंदी प्रदेशों के विद्वान्, दूसरी ओर हिंदी के ही अनधिकारी साहित्यकार। साहित्य-साधना का अर्थ हुआ आत्मवलिदान। और— "अभी कितने ही सत्साहित्यिको की वलि चढ़ेगी, तव कही लोग कुछ होश मे आएँगे।" (उप.)

१८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के वाद अंग्रेजों ने हर संभव उपाय से हिंदीभापी प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति मे वाधा डाली। औद्योगिक विकास में पीछे, निरक्षरता मे आगे, छोटे-वड़े प्रान्तों मे विभाजित, ताल्लुकेदारों-ज़मीदारो का गढ़, भारत का अकेला भापा-क्षेत्र जिसकी वोलचाल की भापा एक, लेकिन साहित्य की भापाएँ दो, भारत का अकेला भापा-क्षेत्र जिसमे एक मुस्लिम विश्वविद्यालय, एक हिंदू विश्वविद्यालय, भारत का वह भापा-क्षेत्र जिसमे सवसे ज़्यादा वोलियाँ हैं, जिसमें जातीय चेतना का सवसे ज्यादा अभाव है, जिस पर अंग्रेज़ी का प्रभुत्व सवसे ज्यादा है—ऐसा है हमारा हिंदीभापी प्रदेश। अंग्रेजो के जाने के वाद उसकी इस स्थिति में कोई मौलिक परिवर्तन नही हुआ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में वँगला साहित्य एम. ए. की पढ़ाई के योग्य न समझा जाय, इसकी कल्पना नही की जा सकती। किन्तु लखनऊ विश्वविद्यालय मे हिंदी साहित्य एम. ए. की पढ़ाई के योग्य न समझा गया था। इस स्थिति के लिए अंग्रेज और अवध के ताल्लुकेदार जिम्मेदार थे। 'लखनऊ विश्वविद्यालय और हिंदी' टिप्पणी ('सुधा', १दिसंवर '३३) में निराला ने लिखा था, "यह वड़े-वड़े ताल्लुकेदारो की युनिवर्सिटी कहलाती है, जिसमें हिंदुओ की ही वड़ी संख्या है। पर इन माई के लालो को अपने अन्यान्य आवश्यक कार्यो से इतनी फ़ुरसत कहाँ कि इस ओर ध्यान दें! अवध की हिंदी आदर्श हिंदी समझी जाती है, किंतु वहीं उसे विश्वविद्यालय मे उचित स्थान प्राप्त नही है, क्या यह परिताप का विपय नही है?"

वैसे तो भारत के हर प्रदेश पर अंग्रेजी भापा का रोव-दाव था, किंतु अन्य प्रदेशो के अंग्रेज़ी पढे-लिखे लोग जहाँ अपने साहित्य से परिचित थे, उस पर गर्व करते थे, वहाँ हिंदी प्रदेश के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग हिंदी भापा और साहित्य को उपेक्षा की दृप्टि से देखते थे, हिंदी के प्रति अपने अज्ञान पर उनके मन में जरा भी ग्लानि न थी। वँगला, मराठी आदि भाषाओं के साहित्य को विद्वानो ने समृद्ध किया "पर हमारे यहाँ के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान् हिंदी को देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। पिता-पुत्र मे पत्र-लेखन का अंग्रेजी माध्यम है। यह साहित्यिक चरित्र के पतन की हद है। यहाँ विद्या नही, अविद्या का साम्राज्य है।" ('सुधा', दिसंवर

'३४; संपा. टि.—१) यहाँ के अंग्रेजी-पढ़े लोग करते कुछ नही, सिर्फ लंबी-चौड़ी बातें करते हैं। अन्य प्रान्तवालों की तरह वे भी कहते है, हिंदी मे है क्या ! ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—२)

अंग्रेजी और बँगला से स्पर्धा के अलावा हिंदी-उर्दू का एक अपना आन्तरिक संघर्ष था। भारत के जिन क्षेत्रों मे मुसलमान बहुसंख्यक थे, उर्दू का विकास वहाँ नही हुआ। उर्दू का विकास हुआ हिंदी प्रदेश मे, जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक है। उर्दू के विकास के लिए "हिंदी का मुख्य आधार लिया गया", उर्दू में जितने मुहावरे है, वे "ठेठ यहीं के हैं", "फर्क केवल शब्दो मे रहा। हिंदी के विस्तार मे सहायक सस्कृत के शब्द हुए, और उर्दू के विस्तार मे फारसी-अरबी के।" ('सुधा', अगस्त '३२; सपा टि —४) जैसे आज अंग्रेजी जाननेवाला अधिक सभ्य समझा जाता है, वैसे ही पहले फारसी शब्दों का अधिक व्यवहार करनेवाला तहज़ीबयाफ्ता माना जाता था। इस तरह के लोगो में हिंदू और मुसलमान दोनो थे किंतु अंग्रेजी राज मे उर्दू अधिकाधिक मुसलमानों की भाषा के रूप मे प्रचारित की जाने लगी। अब उसकी रक्षा का प्रश्न अल्पसख्यकों के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न बन गया है। निराला मानते थे कि बोलचाल के स्तर पर हिंदी-उर्दू मे कोई भेद नही है किंतु साहित्य मे यह भेद है और जातीय साहित्य की प्रगति के लिए बाधक है।

निराला ने लिखा कि "फारसी और उर्दू का हमारी बाहरी प्रकृति पर जैसा अधिकार था, अतःप्रकृति पर भी बहुत कुछ वैसा ही पड़ा है—हमारा वाक्स्फुरण, प्रकाशन बहुत कुछ वैसा ही बन गया है।" ('सुधा', १ अक्तूबर '३३; सपा. टि.—२) सभ्यजनो में गजलो को जो आदर प्राप्त है, वह पदो को नही। हिंदी पत्रो मे उर्दू के अशआर छपते है, "ध्रुवपद, धम्मार, रूपक और झप सोलह मात्रा की कव्वालियो के आगे झेंप गए है। ये सब हमारी भाषा की पराधीनता के सूचक है।" इस कारण हिंदी उर्दू को प्रभावित नही करती, "हिंदी ही उर्दू से प्रभावित है।" परिणाम यह कि "भाषा-साहित्य के भीतर हमारी जाति टूटी हुई, विकलाग हो रही है।" (उप.)

हिंदी की अपनी जातीय विशेषताएँ है। इन्हे पहचान कर भाषा का विकास करना चाहिए। फारसी रगमंच की भाषा इन्ही जातीय विशेषताओ के प्रतिकूल थी। फिल्म ससार में हिंदी की उपेक्षा हो रही थी। अभिनेता और अभिनेत्रियाँ गलत ढग से हिंदी बोलते थे। "फिर जो थोड़ा-सा परिचय हिंदी मे लिखा हुआ कही-कही निकलता है, उसे पढकर उस काकुले-पुर पेचोखम का पेचोख़म निकालकर हिंदीभाषी भाषाविद् दर्शक हिंदी की कामत दराजी का भरम दूर कर लेते हैं। जैसी भाषा, उससे बढकर उच्चारण; और कला जगह-जगह चलती तलवार की चोटो से डरकर हमेशा चौखट के अंदर।" ('सुधा', नवंबर '३४; सपा. टि.—११)

फिल्म ससार के एक प्रसिद्ध बंगाली निर्देशक सपत्नीक लखनऊ आए। एक फिल्म दिखाई गई जिसमे दोनो ने एक साथ अभिनय किया था। "पानी अंग्रेजी का

पूरा चढ़ा; अरसे तक विलायत रहे हैं; न हिंदी कोई जवान, न उसके बोलनेवाले कोई जानकार, लगे बोलने; मालूम हो रहा था कि हाँ, बेपर की उड़ाना इसे कहते हैं।" (उप.)

निराला की बड़ी इच्छा थी कि एक फिल्म निर्माणकेन्द्र हिंदी प्रदेश मे भी हो। बंबई और बंगाल को जो करोड़ो रुपया जाता था, वह बचता, इस प्रदेश की उन्नति में लगाया जाता। एक फिल्म कंपनी चलाने की योजना बनी भी थी। निराला ने उस प्रसंग मे लिखा था, "हिंदी के नये कलाकार प्लाट और कथोपकथन द्वारा इस टाकी-साहित्य को चमका सकते है। हमें उनसे बातचीत कर ऐसा ही अनुभव हुआ है। उनमें अच्छे-अच्छे अभिनेता भी है; नाटक लिख और खेल भी चुके हैं। देखने में भी सुन्दर हैं।" लखनऊ संगीत का केन्द्र है। बनारस और बादा से भी संगीतज्ञ ले सकते हैं। "इनकी तानें विशुद्ध हिन्दी की होती है। गजलियात और ठुमरी वगैरह, लखनऊ की भैरवी और बांदा का जँगला, ये दूसरी जगह इतनी सुन्दर अदायगी के साथ नही मिल सकते, विशेषकर हिन्दी के कानो के लिए।" फिल्मो में हिन्दी प्रदेश का अपना संगीत हो, अपने साहित्य की झलक हो। "नवीन स्वरो के लिए हमारे साथ नवीन और प्राचीन प्रतिष्ठित कवि है ही, जिन्होने अनेक प्रकार की नवीनता पैदा की है, और स्वरों का ज्ञान भी रखते है।" ('सुधा', जून, '३५; संपा. टि.—७)

हिन्दी में अपना रंगमंच स्थापित करने की आकांक्षा की तरह निराला की यह इच्छा भी अपूर्ण रही।

निराला की बड़ी इच्छा थी कि हिन्दी प्रदेश मे एक विश्वविद्यालय हो, जिसमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो, जिसमें साहित्य ही नही, विज्ञान और तकनीक की शिक्षा भी हिन्दी के माध्यम से दी जाय। अंग्रेजी सीखनी चाहिए किन्तु उसके सस्कारों को अपने ऊपर हावी न होने देना चाहिए। अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम है; इससे 'हमारा आत्मिक भाव' नष्ट हो गया है। "हम हर विषय का विचार अपनी बुद्धि से कम, उस शिक्षा के संस्कारो से अधिक करते है।" इंदौर के साहित्य-सम्मेलन में हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव आया। निराला हिन्दी के भविष्य के सपने देखने लगे। उन्होने लिखा, "इस तरह राष्ट्रभाषा को बहुत बड़ा महत्त्व प्राप्त होगा, अपितु भाषा प्राणों के साथ मिलकर सृजन के नये क्षेत्रों में जिस वेग से प्रवाहित होगी, इसका अभी हम अनुमान नही कर सकते। जो हिन्दी अपने प्राचीन गौरव में प्रान्तीय भाषाओ की बड़ी बहन है, और आधुनिक प्रगति में दूसरी भाषाओ की गति से अधिक वेगवती है, वह अपर प्रान्तो के अहम्मन्य विद्वानों को इस प्रकार पूरा उतरता हुआ उत्तर देगी।" ('सुधा', जून '३५; संपा. टि.—४)

यद्यपि भारत के अधिकांश बड़े पूंजीपति हिन्दीभाषी प्रदेश के है, उनके माल की खपत के लिए सबसे बड़ा बाजार इस प्रदेश मे ही है, फिर भी तकनीकी विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, अन्य विश्वविद्यालयों में भी अंग्रेजी का

प्रभुत्व बना हुआ है। हिन्दी प्रदेश भारत का सबसे बड़ा भाषाक्षेत्र है। यहाँ की जनता की सामाजिक-सांस्कृतिक उन्नति हुए बिना समूचे देश की उन्नति असंभव है। हिन्दी के साहित्यकारो मे निराला ही सबसे अधिक अपने जातीय प्रदेश की समस्याओ के प्रति सतर्क थे। फिल्म से लेकर साहित्य तक उन्होंने सारी समस्याओं को एक ही मूल समस्या के अन्तर्गत मानकर उन पर विचार किया था। यह मूल समस्या थी, हिन्दीभाषी जाति के विकास की समस्या। वे अन्य भाषाओं की तुलना मे हिन्दी का समर्थन करते थे, उन भाषाओ की महत्ता भी स्वीकार करते थे। अपनी भाषा और साहित्य मे जो अन्तर्विरोध थे, उनके प्रति भी सजग थे। उनके समय की अधिकाश समस्याएँ अभी हल नही हुई। हिन्दी जाति के अभ्युत्थान के लिए जो भी प्रयत्नशील हो, उन्हे निराला के विचारों मे प्रेरणा मिलेगी।

गांधीवाद-छायावाद

सन् '२० से '३६ तक का समय हिन्दी साहित्य मे छायावाद का उत्कर्षकाल है। 'जुही की कली' से लेकर 'राम की शक्तिपूजा' तक निराला की सबसे प्रसिद्ध छायावादी काव्य-कृतियाँ इसी अवधि की हैं। इस अवधि मे जिस व्यक्ति ने भारतीय राजनीति और भारतीय जनता के सामाजिक चिन्तन पर सबसे गहरा असर डाला, वह महात्मा गाधी थे। कोई आश्चर्य नही कि कुछ आलोचक छायावाद को गाधीवाद का साहित्यिक प्रतिरूप मानते है। निराला की विचारधारा का अध्ययन करते हुए गाधीवाद से उसके सम्बन्ध पर विचार करना आवश्यक है।

गाधीवाद के आलोचको मे दो तरह के लोग प्रमुख थे। एक तो उग्र वामपंथी जो गांधीजी को स्वाधीनता आन्दोलन के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट मानते थे, जो उनमे और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों मे कोई भेद न करते थे, जो स्वाधीनता-आन्दोलन के संगठन और उसकी प्रगति मे उनकी किसी देन को स्वीकार ही न करते थे। दूसरे थे दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी, जो समझते थे कि गांधीजी हिन्दू संस्कृति का नाश कर रहे है, मुसलमानों के आगे घुटने टेकने की नीति पर चल रहे है, जो हिन्दू-सगठन और हिन्दू-राष्ट्र की स्थापना की राह मे गाधीजी को सबसे बड़ी बाधा मानते थे। इन्ही के साथी मुस्लिम लीग के नेता थे जो हिन्दुओ से अलग मुसलमानो की अपनी सभ्यता और संस्कृति की बातें करते थे, जो भारत को जनतंत्र के लिए अनुपयुक्त मानते थे क्योंकि उनके अनुसार जनतंत्र का अर्थ होगा, अल्पसख्यक मुसलमानो पर बहुसंख्यक हिन्दुओ का राज्य, जो विशेषाधिकारों की

माँग करते हुए क्रमशः मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। उग्र वामपंथियों और हिन्दू-मुस्लिम दक्षिणपंथियों के बीच वह विराट् जनसमूह था जो गांधीजी को महात्मा मानकर पूजता था, जो उनकी विचारधारा और कार्यवाही को आलोचनात्मक, विवेकपूर्ण दृष्टि से देखने में असमर्थ था।

निराला का दृष्टिकोण इन सब लोगों से भिन्न था। अपने लेखनकाल के आरंभ से ही उन्होंने गांधीवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया था। वह उन बहुत थोड़े से सतर्क बुद्धिजीवियों में थे, जो न गांधीजी के प्रति मोहाविष्ट थे, न उनके अन्ध-विरोधी थे। 'चरखा' निबंध में उन्होंने गांधी और रवीन्द्रनाथ के बारे में लिखा था, "मेरी दृष्टि में, जहर दोनों में है और अमृत भी दोनों में है। मुझे समय नहीं मिला कि समालोचना में गांधीजी का ज़हर भी निकालकर जनता के सामने रखता।" (**प्रबंध प्रतिमा**, पृ. १८) इस कथन से उनके दृष्टिकोण की विवेकशीलता प्रमाणित होती है।

चरखा चलाने के विरोध में रवीन्द्रनाथ की युक्तियों का खंडन करते हुए उन्होंने गांधीजी के समर्थन में लिखा, "वे भारतीय समाज को चरखा चलाकर अपना कपड़ा आप बना लेने का उपदेश देते है। इससे करोड़ों रुपयों की बचत और फायदा देशवासियों को है। इससे वे परावलंबी न रहेंगे। स्वावलंबी हो जाना ही शक्ति का सूचक है। इस तरह शक्ति-वृद्धि के साथ-साथ देशवासी स्वराज्य की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे, यह कौन कह सकता है?" (उप., पृ. ४)

सन् '२०-'२१ के आन्दोलन की असफलता के बाद सन् '२९ में गांधीजी ने नए संघर्षों की तैयारी फिर शुरू की। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ। गांधीजी जब चाहे, अपने भाषण से जनता की साम्राज्य विरोधी चेतना को वेग से प्रज्वलित कर सकते थे। लाहौर कांग्रेस में उन्होंने यही किया। निराला ने उनके इस कार्य को सराहते हुए लिखा, "कांग्रेस की वक्तृताओं में पहले महात्माजी अपनी अपार महिमा मे मौन ही थे, जैसे वे किसी महान् प्रतिज्ञा को पूर्ण कर रहे हों। जब वह गत वर्ष समाप्ति पर आ गया और कांग्रेस द्वारा निश्चित किए हुए ध्येय का कोई फल सरकार की ओर से नहीं मिला, तब राष्ट्र के प्राण, संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष में वह कैसा ओज, कैसी अपार महाशक्ति प्रत्यक्ष हुई, इसका जड़ लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। उस दिन —उसी दिन महात्माजी की अजेय सरस्वती की ओजस्विनी मूर्ति के हमने दर्शन किए। वे निडर ज्योतिर्नयन, स्वतन्त्रता का आलोक भरते चमकते हुए, राष्ट्र की प्रसुप्त प्रतिमा को जगा रहे थे। वह वाणी शब्द-बंधो के सहस्रो तरगों से अबाध उद्वेलित अवरोध तट को बारंबार छाप-छाप कर बह रही थी। श्वास के आवर्तोच्छ्-वास के साथ भाषा के बहते हुए तूफ़ान मे उस दिन सहस्रो जीवन शरीर के संकीर्ण रेखा तट से महाशून्य में उड़ गए थे और स्वतन्त्रता का विशाल दृश्य देखा था। उसी दिन मालूम हुआ, इस पराधीन देश में महात्माजी स्वाधीन साँस ले रहे है।" ('सुधा', फरवरी '३०; संपा. टि.—३)

निराला-साहित्य में गांधीजी का सबसे भावुकतापूर्ण उल्लेख यही है।

गांधीजी गिरफ्तार किए गए। निराला ने आधी रात के बाद उन्हें पकड़ने की 'शृगाल-नीति' का विरोध करते हुए लिखा, "बम्बई सरकार ने महात्माजी पर जो लाञ्छन लगाए है, अभी वे किसी मूल्य के नही ठहराए जा सकते। कारण, उनका विचार किसी खुली अदालत में नही किया गया।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—२)

गोलमेज सम्मेलन मे अंग्रेजो ने मुसलमानों को तो हिन्दुओं से अलग किया ही, हिन्दुओं से भी अछूतों को अलग करने की योजना उन्होंने बनाई। इसके विरोध मे गाधीजी ने आमरण अनशन व्रत आरम्भ किया। निराला के मन को भारी धक्का लगा। उन्हें शंका हुई कि शायद गाधीजी अब न रहेंगे। उन्होने वर्तमान समाज मे अछूतो की स्थिति की चर्चा करते हुए लिखा कि कांग्रेस ने अछूतो को कभी अछूत नही समझा; सभी भाषाओं का साहित्य अछूतों को अपनाने के मार्मिक चित्रो से भरा है, दुर्दशा से बचने के लिए सनातनी सँभलने लगे है, "पर फिर भी अक्ल का ज़ग एक दिन मे नहीं छूटता।" देश के नेताओ ने उनकी जीवन-रक्षा के लिए प्रार्थनाएँ की; रवीन्द्रनाथ ने तार दिया—"उनके तार मे जो समवेदना है, वह गाधी-रवीन्द्र जैसे देश के महत्तम मनुष्यों के कार्यकलाप समझने वाले लोग ही समझेंगे।" ('सुधा', अक्तूबर '३२; संपा. टि.—५)

अब तक चरखा वाले विवाद की बात पुरानी हो चुकी थी।

गाधीजी के बारे में निराला ने लिखा, "अब वह अपने और पराए स्वार्थ से बाहर हैं। अब इस उपवास की मूर्ति में केवल महात्माजी हैं, जो सत्याग्रह के बल पर विश्व पर विजय प्राप्त कर सकते है, जो अमर जीवन के ज्ञाता, सदा मुक्त, सदा स्वतंत्र है। जिस मंत्र को लेकर वह भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम मे अवतीर्ण हुए थे, अब उसी की सिद्धि में उत्तीर्ण हो रहे हैं।" (उप.) निराला ने वेदान्त की दृष्टि से उन्हें सदा मुक्त, सदा स्वतन्त्र कहा था। उन्होने यह विश्वास प्रकट किया कि उनकी मृत्यु हो गई, तो भी उससे देश की प्रगति होगी।

इस टिप्पणी मे निराला ने फिर घोषित किया कि 'महात्मा गांधी ससार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष है।'

'सुधा' के इसी अंक में उन्होने 'साम्राज्यवाद और सत्याग्रह' शीर्षक दूसरी टिप्पणी मे सत्याग्रह-संग्राम और गांधीजी के आन्दोलन का समर्थन करते हुए लिखा, "सत्याग्रह मनुष्यो के सामने मनुष्यता का आदर्श रखता है। महात्माजी मनुष्यो मे अग्रगण्य है। वह मनुष्यो के सामने मनुष्यों की आर्त पुकार को हमेशा पुरअसर समझते रहे है, और मनुष्यों से उन्हे बराबर मनुष्यता की ही आशा रही है। पर जवाब उन्हे साम्राज्यवाद का ही डंक मारकर बराबर दिया गया, जिसके विष से आज समस्त देश जर्जर है।"

सत्याग्रह की लडाई इतिहास मे अपने ढंग की पहली लड़ाई है। कानून पूरी शक्ति से उसे पराजित करने के लिए सामने आता है। अंग्रेजो ने अवैध आर्डिनेन्स

जारी किये और ये आर्डिनेन्स उनके स्थायी कानून वन गए ! जरूरत पर और भी आर्डिनेन्स जारी कर दिये जाते हैं। 'सत्याग्रह के शीर्ण शरीर को इतनी मजवूत जंजीरें वाँध रही है।' फूट डालने की व्रिटिश कूटनीति गांधीजी की मनुष्य-नीति से विफल की जा सकती है, यह विश्वास प्रकट करते हुए निराला ने लिखा, "महात्मा गांधी इस मनुष्य-नीति के पूर्णावतार है। जिस दिन यह विग्रह अपनी प्रतिज्ञा के तप मे विदेह होकर देश के प्राण-प्राण मे परिव्याप्त हो जलने लगेगा, उसी दिन सरकार समझेगी, उसने कितनी वड़ी गलती की।" महामानव की आत्मा मृत्यु के पश्चात् और भी महान् हो जाती है। "यदि गांधीजी को भी यही प्रमाण देने का मौका दिया गया, तो गरीवो के तप्त प्राणों की ज्वाला फिर हरगिज सरकार शान्त न कर सकेगी।"

टिप्पणी के अंत में उन्होंने लिखा, "आज २१ सितम्वर है, गांधीजी के मृत्यु साक्षात्कार का दूसरा दिन।" इस एक अर्थगर्भित वाक्य से गांधीजी के प्रति उनकी मार्मिक सहानुभूति प्रकट होती है।

२४ सितम्वर को गांधीजी का व्रत समाप्त हुआ। निराला ने उस दैवी दृश्य का अभिनन्दन किया जिसमे रवीन्द्रनाथ ने व्रत की समाप्ति पर गीताञ्जलि' से गीत गाया और कमला नेहरू ने गांधीजी को मीठे नींवुओं का रस पिलाया। (उप., संपा. टि.—११) इस व्रत के अवसर पर ही अछूतों के सम्वन्ध में 'पूना-पैक्ट' नाम का समझौता हुआ था।

अछूतोद्धार की चिरंतन समस्या हल करने के लिए अगले साल गांधीजी ने फिर आमरण अनशन किया। निराला को फिर गहरी चिन्ता हुई कि व्रत में गांधी-जी प्राण न दे दें। गांधीजी ने इक्कीस दिन का उपवास समाप्त किया; हरिजन समस्या पर सारे देश का ध्यान केन्द्रित हो गया। निराला ने प्राचीन काल के उपवासकर्ताओं – सेंट पाल, वुद्ध आदि—को स्मरण करते हुए लिखा, "महात्माजी ने अपने गले में फाँसी की रस्सी डाल ली थी, परन्तु हमारे देश के धन्य भाग्य कि प्रकृति ने उनकी रक्षा की। महात्माजी भारत के लिए एक दैवी प्रसाद है।" ('सुधा', १६ अगस्त '३३; संपा. टि.—४)

सत्याग्रह द्वारा अंग्रेजी राज का विरोध, अछूतोद्धार के लिए उपवास, अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा वनाने के लिए प्रचार—निराला की दृष्टि में गांधीजी को महापुरुष वनाने वाले ये तीन मुख्य कार्य थे। कांग्रेस के भीतर कौन नेता हिंदी वोलता है, कौन अंग्रेजी, निराला इसका हिसाव रखते थे। पंजाव के विद्यार्थियो में सुभापचन्द्र वोस ने व्याख्यान दिया; निराला ने टिप्पणी की—व्याख्यान में राष्ट्रभाषा पर एक शव्द भी नही था। "आप एक क्षण के लिए भी नही सोच सके कि आप पंजाव में भापण दे रहे है, जहाँ के प्राणों में हिन्दी का ही स्पंदन हो रहा है।" ('सुधा', दिसम्वर '२६; संपा. टि.—११)

लाहौर-कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू भापण करने उठे। कुछ ने कहा हिन्दी में वोलें, कुछ ने कहा अंग्रेज़ी में वोलें। उन्होने हिन्दी में भाषण किया। ('सुधा',

फरवरी '३०; संपा. टि.—३)

गांधीजी भारत में अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का पक्ष लेते रहे थे। कांग्रेस के भीतर अंग्रेजी की जड़ें बहुत गहरी जमी हुई थीं। कांग्रेस के भीतर, और कांग्रेसी नेतृत्व में चलने वाले स्वाधीनता आन्दोलन के भीतर हिन्दी को जो थोड़ी-सी जगह मिली थी, वह गांधीजी के कारण ही मिली थी। निराला ने लक्ष्य किया कि 'महात्माजी न होते तो हिन्दी के लिए इतनी आवाज भी न उठ पाती।' ('सुधा', दिसम्बर '२९; संपा. टि.—११)

भाषा, स्वाधीनता और वर्णव्यवस्था—इन तीनों विषयों में निराला ने गांधीजी का समर्थन किया किन्तु यह समर्थन संपूर्ण न होकर आंशिक ही था। निराला हर क्षेत्र में आमूल परिवर्तन के पक्षपाती थे, गांधीजी सुधार और समझौते के।

हिन्दी में रवीन्द्रनाथ नहीं हैं—गांधीजी की इस उक्ति के विरोध में निराला ने जो कहा-सुना, उसकी इतनी—अधिकतर अतिरंजित चर्चा हुई है कि गांधी-निराला का भौतिक-राजनीतिक मतभेद लोगों की आँखों से ओझल हो गया है।

निराला जिन दिनों गांधीजी के उपवासों के समर्थन में टिप्पणियाँ लिख रहे थे, उन्हीं दिनों अलका उपन्यास में वह गांधीवाद की आलोचना भी कर रहे थे। गरीब किसान बुधुआ को लकड़ी का व्यापारी महँगू समझाता है कि सुराज का अर्थ है किसानों का राज। महँगू गाँव का नेता है, "किसानों का, जमींदार से भी मिला हुआ, नेता" है। इस तरह के नेताओं की पौध कांग्रेस में बढ़ रही थी; ये नेता गांधीवाद का झंडा लेकर किसानों के जमींदार-विरोधी आन्दोलन को रोकने की चेष्टा कर रहे थे। इस नेताशाही की आलोचना प्रेमचन्द ने की, निराला ने की। महँगू की समझ में नहीं आता कि "यह पुलिसवाली सरकार और जमींदार लोग लगानवाला हक छोड़कर ख्वाब की तरह कैसे गायब हो जाएँगे। पर दूसरों की तरह समझाना उसकी आदत पड़ गई थी।" (पृ. ५८) इसलिए बड़े नेताओं की तरह महँगू भी बुधुआ को समझाता है: "गंधी महारानी का प्रताप ऐसा है कि उनके हाथ बँध जाएँगे, और बोल बंद हो जाएगा। तब ये किसानों के तलवे चाटेंगे।" (उप.) जमींदारों को लगान देना बन्द कर दिया जाएगा—महँगू कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी से सुनकर आया था।

बुधुआ पूछता है कि "लगान किसको दिया जाएगा?"

महँगू जवाब देता है, "किसी को नहीं, लगान दिया गया, तो सुराज कैसा? विद्यार्थीजी समझा रहे थे, अब के जब मैं कंपू गया था।"

पुलिस और जमींदार का मुकाबला किसान कैसे करेंगे, इसका जवाब विद्यार्थीजी के पास नहीं था। प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' में ही लिख चुके थे—'सत्याग्रह में अन्याय का दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया।' सन् '३० के आन्दोलन के बाद प्रेमचन्द की उक्ति और भी पुष्ट हो गई।

इस प्रसंग में निराला द्वारा गणेशशंकर विद्यार्थी के नाम का उल्लेख ध्यान

देने योग्य है। यह उल्लेख इस ढंग से किया गया है कि पाठक समझ ले कि लगान वाली समस्या का हल विद्यार्थीजी के पास नहीं था, फिर भी वह महँगू जैसों को कुछ-न-कुछ समझा-बुझाकर शान्त कर देते थे। निराला गांधीवादी नेतृत्व, गांधीवादी नीति की आलोचना कर रहे थे, गांधीजी से कोई व्यक्तिगत रागद्वेष यहाँ नहीं था। विद्यार्थीजी के लिए उन्होंने लिखा था, "राष्ट्र को भाषा के भीतर से कैसी आवश्यकता है, यह विद्यार्थीजी से अच्छा दूसरा नहीं समझ सकता। कारण, विद्यार्थीजी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र दोनों के वीर सेवक हैं।" ('सुधा', दिसम्बर '२६; संपा. टि.—१६) यह समर्थन आंशिक था, गांधीजी के समर्थन की तरह। पूर्ण समर्थन वह तब करते, जब इस समस्या का उत्तर मिलता कि किसान पुलिस और ज़मींदार के दमन का मुकाबला कैसे करें।

राजनीतिक पार्टियाँ जब किसी आन्दोलन की आन्तरिक समस्याएँ नहीं सुलझा पातीं, तब वे जनता में नेता के माहात्म्य का बखान करके उसके प्रति अन्धश्रद्धा जगाती हैं। महँगू ने जो गंधी महारानी के प्रताप की बात कही थी, वह किसी अपढ़ गँवार के मन की अनोखी उपज नहीं थी। अन्धश्रद्धा जगाने के लिए संगठित प्रचार किया गया था जिसमें संवादपत्रों की भूमिका प्रमुख थी। स्नेहशंकर के माध्यम से निराला ने अन्ध-व्यक्तिपूजा की आलोचना करते हुए कहा, "स्वतन्त्रता के नाम से देश घोर परतन्त्र है। संवादपत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति-विशेष की नीति के प्रचारक हैं।...जनता बड़ी असमर्थ होती है सावित्री! वह मनुष्य को बिना स्याह दाग का ईश्वर भी समझ लेती है, जो कमजोर को और भी कमजोर, परावलंबी कर देता है। संवादपत्रों में स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है। संपादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गीत नहीं जानते, अर्थात् उनके भीतर वैसी ही पोल भी है। वे दूसरे के हाथों की थपकियों से मधुर बोलते हैं—जनता वाह-वाह करती है, और बजानेवाले देवता को पुष्प-माला लेकर यथाभ्यास, जैसा सुझाया गया, पूजने को दौड़ती है। यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं।" (पृ. ४५)

राजनीतिक प्रचार का उद्देश्य होना चाहिए, जनता में स्वयं सोचने-विचारने की शक्ति उत्पन्न करना। इस शक्ति के उत्पन्न होने से ही मनुष्य स्वाधीन हो सकते हैं। किन्तु संवादपत्र स्वयं दूसरों की थपकियों से बजते हैं, वे जनता में नई चेतना का प्रसार नहीं कर सकते। मनुष्य में ईश्वरत्व का आरोप, उसके चमत्कारों में विश्वास, पुष्पमालाओं से उसकी पूजा—इस तरह आन्दोलन के अन्तर्विरोधों, उसकी कमज़ोरियों को छिपाना, यह स्वतंत्रता का परिणाम नहीं।

किसान जमींदारों के उत्पीड़न का मुकाबला कैसे करेंगे—मूल समस्या यह थी।

स्नेहशंकर कहते हैं, "हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है। संवादपत्रों में कानून के जानकारों का विज्ञापन होता है—वे ही इस देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है।" (पृ. ४४)

निराला कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल करने में विश्वास

न करते थे। उनकी मान्यता यह थी :

सिंही की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान !
एक मेपमाता ही
रहती है निर्निमेप—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जव
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू वहाती है;—
किन्तु क्या,
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नही—
गीता है, गीता है—
स्मरण करो वार-वार—
जागो फिर एक वार !

गांधीवाद और निराला के दृष्टिकोण मे यह अन्तर था।

गांधीवाद से असंतुष्ट होकर अनेक युवकों ने आतंकवाद का मार्ग अपनाया था। गांधीवाद से निराला के दृष्टिकोण का भेद लक्ष्य करते हुए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि निराला का दृष्टिकोण आतंकवाद से भिन्न, व्यापक और मौलिक रूप से क्रान्तिकारी है। निराला धार्मिक भेदभाव से लेकर वर्ग-भेद तक मिटाने के पक्षपाती है और उनकी इस वहुमुखी क्रान्ति की धुरी है किसान।

गाँधीजी स्वाधीनता आन्दोलन के प्रमुख सूत्रधार थे किन्तु सामन्त-विरोधी किसान-संघर्ष चलाकर अंग्रेज़ी राज का सामाजिक आधार खत्म करने के पक्ष में वह नही थे। निराला और गाँधी की राजनीति मे यह मौलिक भेद था।

राजनीति के अलावा समाज-सुधार—जैसे अछूतोद्धार—की समस्या को लेकर भी गाँधी और निराला के दृष्टिकोण भिन्न थे। अछूतोद्धार कैसे होगा, अछूतों के प्रति दया दिखाकर, मंदिरो मे प्रवेश करने की अनुमति देकर या द्विज और शूद्र के वीच खड़ी हुई पुरानी दीवारें ढहाकर, उच्च वर्णो के जीवन मे ही मौलिक परिवर्तन करके ? निराला का विश्वास था, ये पुरानी दीवारें ढहाये विना, उच्च वर्णो मे दंभ पैदा करनेवाली रूढियो का नाश किये विना हिन्दू समाज में द्विज और शूद्र का एकीकरण संभव नही है। गाँधीवादी विचारधारा जैसे किसान के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए किसान-ज़मीदार का भेद कायम रखती थी, वैसे ही अछूतो के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट करते हुए भी वह वर्ण-व्यवस्था —द्विज और शूद्र का भेद— कायम रखती थी। इसलिए किसी को आश्चर्य न होना चाहिए कि स्वाधीन भारत

में जाति-विरादरी का भेदभाव और भी वढ़ा।

इक्कीस दिन का उपवास समाप्त करने पर निराला ने 'सुधा' के जिस अंक में गाँधीजी को भारत के लिए दैवी प्रसाद कहा था, उसी अंक में उन्होंने सवर्णों के पुनर्गठन का यह नुस्खा पेश किया था : "इसलिए तोड़कर फेंक दीजिए जनेऊ, जिसकी आज कोई उपयोगिता नहीं, जो वड़प्पन का भ्रम पैदा करता है, और समस्वर से कहिए कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं, जितनी आपका नीच-से-नीच पड़ोसी चमार या भंगी रखता है। तभी आप महामनुष्य हैं।" ('सुधा', १६ अगस्त, '३३; संपा. टि.—१)

गाँधीजी और उनके अनुयायी ऐसा कोई आन्दोलन चलाने का विचार न कर रहे थे।

"महात्माजी लोकरुचि के वड़े जवर्दस्त परीक्षक हैं" ('सुधा', नवम्वर, '३२; संपा. टि.—'हिन्दुओं का जातीय संगठन') इस वाक्य में प्रशंसा के साथ प्रच्छन्न आलोचना भी है। लोकरुचि से टकराए विना हिंदुओं का पुनर्गठन संभव नहीं है। अभी रोटीवाले सवाल पर वल है, आगे चलकर वेटीवाला सवाल भी हल किया जायगा। "सव वर्णों में एकता हो जाने पर विवाह वाला आदान-प्रदान देश की वहुत वड़ी रक्षा कर सकता है।" (उप.) कांग्रेस के भीतर, और कांग्रेस-विरोधी हिंदू-संगठनों के भीतर, अधिकांश हिन्दुत्व-प्रेमी इस तरह के आदान-प्रदान से दूर रहे हैं।

हिन्दू और मुसलमान को मिलाने के लिए, द्विज और शूद्र का भेद मिटाने के लिए निराला जहाँ धार्मिक रूढ़ियों को नाश करने के पक्ष में थे, वहाँ गाँधीजी उनसे समझौता करते थे। दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण में यह अन्तर था।

इसी तरह राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर।

राष्ट्रभाषा का सवाल राष्ट्रीय एकता के सवाल से जुड़ा हुआ था। जिस भाषा को सवसे ज्यादा लोग वोलते-समझते हों, जिसे सवसे ज़्यादा आसानी से सीख सकते हों, वही भाषा राष्ट्रभाषा हो सकती है। गाँधीजी इस वात को खूब अच्छी तरह समझते थे। फिर भी उन्होंने यह सवाल उठाया कि किस भाषा का साहित्य कम समृद्ध है, किसका अधिक। यह सवाल उन्होंने क्यों उठाया?

गाँधीजी ने वड़ा प्रयत्न किया कि कांग्रेस के भीतर से अंग्रेज़ी निकल जाय, उसका सारा काम हिन्दी में हो, किन्तु इस कार्य में उन्हें सफलता न मिली। किसका साहित्य अधिक समृद्ध है, यह विवाद शुरू हो जाने पर लोगों का ध्यान इस वात से हट जाता था कि कांग्रेसी नेता स्वयं अपने संगठन में क्या कर रहे है। गाँधीजी की इच्छा कुछ भी रही हो, उनके कार्य का वस्तुगत परिणाम यही निकला कि कांग्रेस के भीतर से अंग्रेज़ी निकालने की उनकी अपनी असफलता पर पर्दा पड़ गया।

गाँधीजी ने कहीं कहा, संयुक्त प्रान्त की हिन्दी ठीक नहीं होती। निराला ने रुष्ट न होकर इस आलोचना का स्वागत किया। वह खुद भी सोचते थे, हिन्दी में

बहुत-सी कमजोरियां है, इन्हें दूर करना जरूरी है। उन्होंने लिखा, "एक बार महात्माजी ने स्वयं ऐसा भाव प्रकट किया था—युक्त प्रान्त की हिन्दी ठीक नहीं, अगर यहाँ कोई हिन्दी के अच्छे लेखक हैं, तो उनके साथ मेरा परिचय नहीं।" ('सुधा', १ अक्तूबर, '३३; संपा. टि.—२) निराला ने इस उक्ति के कारण की तलाश की। उन्होंने लिखा कि फारसी-उर्दू के प्रभाव से "भाषा-साहित्य के भीतर हमारी जाति टूटी हुई विकलांग हो रही है।" इसलिए गांधीजी की उक्ति सार्थक थी।

साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में गांधीजी ने साहित्य की समृद्धि का सवाल फिर उठाया। निराला ने इसके लिए मूलतः गांधीजी के हिन्दी-भाषी सलाहकारों को दोषी ठहराया। गांधीजी ने रामानन्द चटर्जी की प्रशंसा की कि उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी की सहायता से 'विशाल भारत' निकाला। निराला ने इस पर लिखा, "हमारा तो विचार है कि हिन्दी में बंगाली साहित्यिकों की धाक जमाने के विचार से रामानन्द बाबू ने बड़े परिश्रम से सम्पादक पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी को खोज निकाला है।" ('सुधा', जून, '३५; संपा. टि.—३)

हिन्दी के अश्लील साहित्य से गांधीजी को परिचित कराने में चतुर्वेदीजी ने काफी परिश्रम किया था। अपने भाषण में गांधीजी ने अश्लील साहित्य की आलोचना भी की। निराला ने लिखा, "उन्हें यह तो लोगों ने सुझाव दिया, पर यह न सुझाया कि हिन्दी नई विशालता और नए रूपरंगों में कहाँ तक पहुँची।" निराला ने इस पर भी आपत्ति की कि गांधीजी ने बंगला-गुजराती के अश्लील साहित्य पर कुछ न कहा। साहित्यिक प्रगति में, अपना पुराना साहित्य लेने पर, हिन्दी बंगला से पीछे नहीं आगे है—यह तर्क भी उन्होंने दिया जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

इन्दौर वाले भाषण में गांधीजी ने हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी शब्द जोड़कर एक नई समस्या खड़ी कर दी। निराला भाषा के मामले में शुद्धतावादी नहीं थे किन्तु गांधीजी के इस हिन्दुस्तानी-प्रेम में उन्हें राजनीतिक दाव-पेंच की गन्ध आयी। खिलाफत आन्दोलन में मुसलमानों का साथ देने वाले गांधीजी "हिन्दी की सीधी खिचड़ी शैली ही के पक्षपाती थे" और "यह काम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी उनसे बहुत पहले कर चुके थे।" (प्रबंध प्रतिमा, पृ. ३१) निराला द्विवेदीजी को हिन्दी का आदर्श गद्य-लेखक मानते थे; इसलिए भाषा की शुद्धता के नाम पर वह गांधीजी का विरोध करें, यह सवाल न था। विरोध राजनीतिक दाव-पेंच को लेकर था—"मैं समझता हूँ, नेता हिन्दुओं का नेता तो बन ही चुका है, मुसलमानों का भी बनना था। भूषण का आन्दोलन भी अर्थ रखता है।" (वप.)

गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जो प्रयत्न कर रहे थे, उनका परिणाम था हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी शब्द को जोड़ना। समझौते की राजनीति जोड़-तोड़ में विश्वास करती थी; निराला की नीति थी—हिन्दू और मुसलमान दोनों को धार्मिक रूढ़ियों के दलदल से निकालकर नये-सिरे से मनुष्य बनाना। इस रूढ़िवाद

के खिलाफ किसी पार्टी ने जमकर संघर्ष नही किया, इसलिए न जाति-पाँति का भेदभाव दूर हुआ, न हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम हुई। हिन्दी-उर्दू के बीच जो दरार थी, वह भी इसी कारण न पाटी जा सकी।

लखनऊ में गाँधीजी से अपनी मुलाकात का हाल लिखते हुए निराला ने अपने और गाँधीजी के दृष्टिकोण का दार्शनिक अन्तर स्पष्ट किया। वेदान्त का ज्ञान निरपेक्ष है, "वहाँ हिन्दू और मुसलमान का सवाल नही, वहाँ भापा भी वाह्य रूप छोड़ देती है, अर्थात् 'क' को चाहे 'क' लिखिये या 'के', कुछ नही आता-जाता। यही निरपेक्षता है। 'के' के पीछे लट्ठ लेकर पड़ने वाले पहली ही गति से सावित कर देते हैं कि वे पराधीन है, वे लड़ेंगे, समझौता नहीं करेंगे। मैं हिन्दी साहित्यिक की हैसियत से विनय के साथ कहता हूँ, देश के वर्तमान हिन्दू और वर्तमान मुसल-मान, वर्तमान सिख और वर्तमान पारसी, सापेक्षता में ही, पुरानी रूढ़ियो के पावंद रहने के कारण या अंग्रेजी पढ़कर यूरोप के नक्काल होने के कारण, निरपेक्षता से दूर हैं—वे अपने मन की चाहते हैं।" (उप., पृ. ३०)

पुरानी रूढ़ियों के पावंद रहते हुए न राजनीति की समस्या सुलझाई जा सकती है, न भापा की। निराला के राजनीतिक और भापा-सम्वन्धी विचारों में एक आन्तरिक संगति है, इसीलिए वह गाँधीवादी राजनीति की आलोचना करते है, तो उसी के अनुरूप गाँधीजी की भापा-नीति की भी आलोचना करते हैं।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा वनाया जाय——इस प्रचार से काँग्रेस के अखिल भारतीय नेताओं को क्या लाभ हुआ है?

गाँधीजी और राष्ट्रभापा के सम्वन्ध पर जो कुछ लिखा गया है, उसमें सामान्यतया इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न नही किया गया। निराला उन थोड़े से लेखको मे है जिन्होने इस प्रश्न का उत्तर दिया।

गाँधीजी ने कहा—हिन्दी को राष्ट्रभापा वनाओ। "उनके इस एक आवाज उठाने के साथ तमाम हिन्दीभापी उनके साथ हो गए—नेता को यही चाहिए। तिलक हिन्दी नही जानते थे, लोगो को मालूम होगा।" (उप., पृ. २८) अर्थ यह हुआ कि हिन्दीभापियों के समर्थन से गाँधीजी का अखिल भारतीय नेतृत्व स्थापित हुआ। गाँधीजी हिन्दी को राष्ट्रभापा वनाएँगे, इससे हिन्दीभापियों को स्वभावत: प्रसन्नता हुई। किन्तु हिन्दीभापी प्रदेश में हिन्दी का विकास कैसे हो, उसकी जातीय विशेपताओ की रक्षा कैसे की जाए, इस पर लोगों ने ध्यान देना जैसे वंद कर दिया। कुछ राष्ट्रभापा-प्रेमी कहने लगे कि पंजाव में फारसी-अरवी-वहुल हिन्दुस्तानी वोली जाए, युक्त प्रान्त मे खिचड़ी शैली, विहार मे कुछ अधिक संस्कृत, वंगाल वगैरह में प्रतिशत संस्कृत शव्द—"मै पूछता हूँ, उनकी निगाह के सामने नेतृत्व करने के सिवा जवान की सूरत सँवारने का भी कोई ध्यान है?" (उप., पृ. २९)

इस तरह राष्ट्रभापा के नाम पर हिन्दी के अपने जातीय रूप को विगाड़ने के प्रयत्न होने लगे। गाँधीजी ने "हिन्दी के द्वारा हिन्दीभापी पन्द्रह करोड़ जनता की भावनाजन्य स्वतन्त्रता वात-की-वात मे मार दी। लोग लट्ठ की तरह वजने लगे—

हिन्दी राष्ट्रभाषा है; सम्पादक हो, लेखक। वस्तु और विषय की यही पराधीनता है। गांधीजी की यही स्वाधीनता।" (उप.)

हिन्दी के लेखकों और संपादकों की पराधीनता—गांधीजी की स्वाधीनता—इस गूढ़ वाक्य का आशय यह है कि राष्ट्रभाषा का लालच देकर कांग्रेसी नेताओं ने अपना स्वार्थ सिद्ध किया, हिन्दी के सहज विकास में बाधा डाली। अब लोग भूल गए हैं, किन्तु निराला जिन दिनों यह लिख रहे थे, उन दिनों कांग्रेसी नेता यह प्रचार जोरों से करते थे कि राष्ट्रभाषा बनने के लिए हिन्दी अपना प्रादेशिक रूप छोड़े, सभी भाषाओं से शब्द लेकर अखिल भारतीय रूप धारण करे, कुछ का कहना था, लिंग-सम्बन्धी नियम खतम किए जाएँ, 'ने' का प्रयोग बन्द हो, इत्यादि। इस प्रचार का स्मरण करने से मालूम होगा, निराला की बात कितनी महत्त्वपूर्ण थी।

कांग्रेसी आन्दोलन ब्रिटिश सुधारों के खूंटे से बँधा रहा। मांटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधार; इन्हें नाकाफी समझकर और रियायतें लेने के लिए सन् '२०-'२१ का आन्दोलन और रियायतें देने के लिए अंग्रेजों द्वारा साइमन कमीशन की नियुक्ति; कांग्रेस का सन् '३० वाला आन्दोलन। अंग्रेजों द्वारा गोलमेज सम्मेलन; कांग्रेस द्वारा बहिष्कार, फिर उसमें शिरकत। अंग्रेजों द्वारा और रियायतें देकर सन् '३५ के कानून की घोषणा; कांग्रेस द्वारा विरोध, फिर मंत्रिपद-ग्रहण। मार्च, सन् '४२ में क्रिप्स-प्रस्ताव—केन्द्र में नई रियायतें देते हुए; अगस्त, सन् '४२ में भारत-छोड़ो आन्दोलन। सन् '४७ में भारत-विभाजन की योजना, कांग्रेस द्वारा विरोध, फिर स्वीकृति। हर नई रियायत देते हुए अंग्रेज मुस्लिम लीग के सहारे अलगाव वाली प्रवृत्तियों को मज़बूत करते जाते थे। अलग चुनाव क्षेत्रों की मांग की परिणति हुई देश के विभाजन में।

जो स्वाधीनता-आन्दोलन ब्रिटिश सुधारों के खूंटे से बँधा रहा, उसकी यही परिणति हो सकती थी। भाषा के क्षेत्र में जोड़-तोड़ की नीति भी ब्रिटिश सुधारों के खूंटे से बँधे रहने का परिणाम थी।

निराला का रास्ता दूसरा था। द्विज और शूद्र का भेद मिटाओ; धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करके हिंदू-मुसलमान को मिलाओ। कानून के सहारे स्वाधीनता-आन्दोलन न चलाओ, जमींदार के विरुद्ध किसानों का संघर्ष तेज करो। राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाओ; इस प्रसंग में किसका साहित्य अधिक समृद्ध है, किसका कम, यह सवाल मत उठाओ। राष्ट्रभाषा के नाम पर हिंदी का जातीय रूप न बिगाड़ो, नेतृत्व कायम रखने के लिए पन्द्रह करोड़ की भाषा के साथ खिलवाड़ मत करो, उसका सहज जातीय रूप ही राष्ट्रभाषा हो सकता है, उस रूप को विकसित होने दो।

निराला का रास्ता सही था। आज नहीं तो कल, उस पर चलने से ही देश की मूल समस्याएँ हल होंगी।

जवाहरलाल नेहरू और समाजवाद

भारतीय राजनीति में जवाहरलाल नेहरू की विशेष भूमिका यह थी कि सन् '२० के आन्दोलन की असफलता के बाद जब गाँधीजी के नेतृत्व में बहुत से नौजवानों की आस्था खत्म हो गई, तब जवाहरलाल नेहरू ने अपनी समाजवादी उग्र शब्दावली के द्वारा इन असंतुष्ट युवकों को कांग्रेसी नीति का अनुसरण करने के लिए बाध्य किया। गाँधीजी की नीति से असंतुष्ट युवको में मेरठ षड्यंत्र के बंदी थे जो भारतीय क्रान्ति में मज़दूरों की भूमिका प्रमुख मानते थे। इनमें सरदार भगतसिंह और उनके साथी थे जो सशस्त्र क्रान्ति द्वारा अंग्रेजी राज को खत्म करना चाहते थे। इनमें सुभाषचन्द्र बोस थे जिनके द्वारा पट्टाभि सीतारमैया के हराए जाने को गाँधीजी ने अपनी हार माना था। ये सब लोग मिलकर सन् '३० और '४० के बीच काँग्रेस को दक्षिणपंथी नेतृत्व से मुक्त नही कर सके तो इनकी अपनी कमजोरियों के अलावा इसका बहुत बड़ा श्रेय भारतीय राजनीति में जवाहरलाल नेहरू की भूमिका को है।

फरवरी, १९३० की 'सुधा' में नेहरू से सम्बन्धित एक विज्ञापन छपा था :

'भारतीय काँग्रेस के प्रथम साम्यवादी प्रेसिडेंट तथा नवयुवकों के प्यारे सम्राट् पं. जवाहरलाल नेहरू की जीवनी तथा जोशीले लेख और भाषण पढ़िए।'

वामपंथी नेता के रूप मे जवाहरलाल नेहरू के अभ्युदय से पहले 'प्रताप' के द्वारा गणेशशंकर विद्यार्थी ने, 'मर्यादा' के द्वारा रमाशंकर अवस्थी ने, अपने लेखो, भाषणों और पुस्तिकाओं द्वारा राधामोहन गोकुलजी ने हिंदी के माध्यम से, हिंदी-भाषी प्रदेश मे, समाजवादी विचारधारा का यथेष्ट प्रचार किया था। इसीलिए जवाहरलाल नेहरू जब काँग्रेस के सभापति चुने गए, तब 'सुधा' ने उन्हें काँग्रेस का प्रथम 'साम्यवादी प्रेसिडेंट' कहकर विज्ञापित किया।

इन्ही दिनों गणेशशंकर विद्यार्थी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति चुने गए। निराला ने इन दोनो की विजय का अभिनन्दन करते हुए लिखा, "युवकों की ऐसी विजय प्राचीनता-भक्त भारत में इधर शताब्दियो से नहीं देखने को मिली।" ('सुधा,' दिसंबर, '२९; संपा. टि.—१९)

शताब्दियों के बाद भारत नई करवट लेगा। इस महान् ऐतिहासिक परिवर्तन में युवाशक्ति का नेतृत्व करेंगे जवाहरलाल नेहरू। उस समय अधिकांश प्रगतिचेता साहित्यकारों और वकों को नेहरू से ऐसी ही आशा थी। लाहौर-कांग्रेस में उनके भाषण से विस्तृत उद्धरण देते हुए निराला ने उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखा, "वह नम्र तथा स्फटिक की तरह स्वच्छ हैं, और उनकी सत्यवादिता संदेह के परे है। उनके हाथो से जाति के स्वार्थ की किसी प्रकार हानि नहीं हो सकती।" ('सुधा', फरवरी, '३०; संपा. टि.—४)

सन् '३०-'३१ में आर्थिक संकट से पीड़ित भारतीय किसान जमींदारों से

संघर्ष करने को उत्सुक थे। नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि खुद कांग्रेस के अन्दर जमीदार भरे हुए थे, वे जमीदारों के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व क्या करते? विशेप रूप से अवध मे ताल्लुकेदारो के सताए हुए किसान नेहरू की ओर आशा-भरी दृष्टि से देख रहे थे कि वह लगानवदी आन्दोलन मे उनका नेतृत्व करेंगे। किन्तु नेहरू ने न तो अभी, न आगे फिर कभी, महात्मा गांधी और सरदार पटेल से अलग सघर्ष का कोई कार्यक्रम जनता के आगे रखा। निराला इस समय अवध के किसान-आन्दोलन को सतर्क दृष्टि से देख रहे थे, अपने जिले मे वह स्वय इस आन्दोलन मे भाग ले रहे थे। उन्होने निष्कर्ष निकाला कि कांग्रेस के नेतृत्व में सशक्त जमीदार-विरोधी आन्दोलन चलाया नही जा सकता।

सन् '३३ मे प्रकाशित होनेवाले अलका उपन्यास की पृष्ठभूमि मे सन् '३०-'३२ की राजनीतिक गतिविधि है; उपन्यास मे इस गतिविधि का मूल्याकन भी है। कांग्रेस के नेता दोनो तरफ रँगते है; वह किसानो के हिमायती है और जमीदारों का भी साथ देते है। क्रान्तिकारी युवक अजित रायबरेली के किसानों मे काम करना चाहता है। यह वही जिला है जिसमें जवाहरलाल नेहरू ने भी किसान-आन्दोलन चलाया था। लेकिन अजित कहता है, "कांग्रेस से न होगा तो स्वतन्त्र रहकर काम करेंगे।" (पृ. ५५)

कांग्रेस से स्वतत्र रहकर काम करने का अर्थ जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व से स्वतंत्र रहकर काम करना भी है।

अग्रेज़ो ने एक ओर सन् '३०-'३२ के आन्दोलन का दमन किया, दूसरी ओर गोलमेज सम्मेलन बुलाकर भारत को कुछ रियायते देने के लिए संवैधानिक योजना तैयार की। कांग्रेस ने पहले गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार किया, फिर उसमे भाग लिया; सन् '३५ के संवैधानिक सुधार-कानून का विरोध किया, फिर उसी कानून के अन्तर्गत चुनाव लड़कर प्रान्तो मे मंत्रिमंडल बनाए। जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ-कांग्रेस में—जहाँ उनका भापण सुनने को निराला उपस्थित थे—मंत्रि-मडल बनाने का विरोध किया किन्तु मंत्रिपद-ग्रहण के समर्थको—राजेन्द्रप्रसाद और सरदार पटेल—की नीति के मुकाबले कांग्रेस के भीतर या बाहर संघर्ष का कोई कार्यक्रम जनता के सामने नही रखा। निराला ने एक कविता लिखी—'वन-वेला'। जनता से अलगाव, थोथी अन्तर्राष्ट्रीयता, धनी परिवार की संस्कृति, विलायती शिक्षा पर गर्व, हिंदीभाषियो के प्रति उपेक्षा का भाव, मंच पर अभिनय से साधारण जनो को मुग्ध करने की कला—**होता फिर खड़ा इधर को मुख कर कभी उधर**—राष्ट्रीयता के नाम पर साहित्यकारो द्वारा ऐसे नेताओं की वंदना में सस्ते गीतों की रचना, पूँजीवादी अखबारो मे इनका धुँआधार प्रचार—निराला ने इन सबको अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर न केवल नेहरू वरन् एक विशेप प्रकार के बुद्धिजीवी वर्ग की ढुलमुल प्रवंचनापूर्ण नीति के प्रति जनता को सावधान किया।

मार्च, सन् '४२ में, ब्रह्मदेश में जापानी आक्रमण से अंग्रेज़ों की हालत नाज़ुक

हो जाने पर, क्रिप्स भारत पधारे और उनकी सुधार योजना से असंतुष्ट होकर कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। अंग्रेज़ो द्वारा जन-आन्दोलन का वर्बरतापूर्वक दमन किया गया और कांँग्रेसी नेता जेल भेज दिए गए। निराला ने इस समय एक कजली लिखी :

महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई।
भूखे-नंगे खड़े शरमाए, न आए वीर जवाहरलाल।

(बेला, पृ. ५४)

अंग्रेज शासकों ने जब-जब राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाया और कांँग्रेसी नेताओं को जेल में डाला, निराला ने शासकों का विरोध किया और नेताओं का पक्ष लिया। सन् '४३ में भारतीय जनता आशा कर रही थी कि जेल से छूटने पर नेता उसकी समस्याएँ हल करेंगे, उस आशा की सही झलक निराला के गीत मे है। किंतु गीत में जनता की यह आशा ही नहीं व्यक्त की गई, नेताओं को संकेत से यह बता भी दिया गया है कि समस्याओं को हल करने मे कितनी कठिनाइयाँ है।

कैसे हम बच पाएँ निहत्थे, बहते गए हमारे जत्थे,
राह देखते है भरमाए, न आए वीर जवाहरलाल।

जनता निहत्थी है, अंग्रेज सशस्त्र है; राह देखते भरमाए हुए लोग 'वीर' जवाहरलाल को पुकार रहे है। एक तरह से ये पंक्तियाँ जनता के लिए चेतावनी भी हैं : रास्ता पहचानो, दूसरों की राह न देखो। 'वीर' शब्द में गूढ़ व्यंग्य हो सकता है। उपर्युक्त गीत की समकालीन रचना निराला की ग़ज़ल है :

भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिल मे है।

(बेला, पृ. ७५)

वह कौन-सा भेद है जिसके खुल जाने की सूरत 'हमारे दिल मे' है ? भेद यही है कि कांँग्रेसी नेता मिल मालिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनकी मिलों की पूँजी देश को मिल जाय—उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण हो—तो कांँग्रेसी नेतृत्व की असलियत भी जाहिर हो जाय। इस गजल की समकालीन—**बेला** मे प्रकाशित—एक कविता में यह बात और भी साफ कही गई है :

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली,
खोलेंगे अँधेरे का ताला। (पृ. ७८)

निराला बहुत अच्छी तरह जानते थे कि अमीरों की हवेली मे किसानों की पाठशाला जवाहरलाल नेहरू न खुलवाएँगे, फिर भी अंग्रेज शासकों के दमन के विरुद्ध उन्होंने जेल के भीतर बंद जवाहरलाल को लक्ष्य करके जनता की तरफ से आवाज़ लगाई—**न आए वीर जवाहरलाल**। राष्ट्रीयता का यही तकाज़ा था; उस कजली का अर्थ यह नही था कि निराला की दृष्टि मे जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व

वास्तव में क्रान्तिकारी था।

जेल से छूटने पर जवाहरलाल नेहरू और भी लोकप्रिय हुए। सन् '४२ का आन्दोलन, सुभाषचन्द्र बोस की मुहीम, आजाद हिंद फौज के नेताओ के बन्दी बनाए जाने पर जनता का विक्षोभ, इन सभी से थोड़ा-बहुत प्रकाश लेकर नेहरू का नाम और भी महिमामडित हुआ। चोरबाजारियो को फांसी देने की धमकी से, अग्रेजो के जाते ही उद्योग-धन्धो के राष्ट्रीयकरण के वादे से उनकी लोकप्रियता बढ़ी। अग्रेज जिस तरह की आजादी देने जा रहे थे और काँग्रेसी नेता जिस तरह की आजादी लेने जा रहे थे, क्रिप्स प्रस्तावो के नए संस्करण, सन् '४७ के भारत-स्वाधीनता बिल को जवाहरलाल नेहरू ही समाजवाद के रस के साथ जनता के गले के नीचे उतार सकते थे।

सन् '४६ मे भारत में जनक्रान्ति का जबर्दस्त उभार आया। किसानो के संघर्ष, मजदूरो की हडतालें, पुलिस से छात्रों की टक्करें, कई जगह स्वयं पुलिस द्वारा विद्रोह, कराची, कलकत्ता, बंबई, विशाखापत्तनम् में अंग्रेजों का नाविको से सशस्त्र युद्ध—थोड़े से संगठित प्रयास की जरूरत थी और अग्रेज़ो की तमाम कूट-नीतिक योजनाएँ धूल में मिल जाती। युग-परिवर्तन के इस ऐतिहासिक क्षण मे नेहरू ने संयुक्त भारत की पूर्ण स्वाधीनता का कोई कार्यक्रम जनता के सामने न रखा; यही नही, उन्होने अंतरिम सरकार में शामिल होकर राज्यशक्ति के प्रयोग से तथा अहिंसा, गाँधीभक्ति और समाजवाद के प्रचार से जन-संघर्षो को दबाया और जनता को मार्गभ्रष्ट किया।

सन् '४६ मे अंग्रेज़ो ने छात्रो पर गोली चलाई, सड़कें खून से लाल हो गई। निराला ने इन युवकों का अभिनंदन करते हुए लिखा :

युवक जनों की है जान,
खून की होली जो खेली।
पाया है लोगो मे मान,
खून की होली जो खेली।

निराला संघर्ष के पक्ष में थे। नए पत्ते की अनेक कविताओ मे उन्होने किसानो के जमीदार-विरोधी संघर्ष का उल्लेख किया। 'महगू महगा रहा' मे उन्होने जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेसी नेतृत्व की विस्तृत आलोचना की। इस आलोचना का आधार यह है कि नेहरू जमीदारों और पूंजीपतियो के भी दोस्त हैं और जनता जब इनसे टकराती है, तब वह जनता के बदले उसके शत्रुओ का ही साथ देते हैं :

लेडी ज़मीदारों को आँखो तले रखे हुए
मिलों के मुनाफे खाने वालो के अभिन्न मित्र;
देश के किसानो, मजदूरो के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।

जनता के विरुद्ध ज़मीदारो और पूंजीपतियों के पक्ष-समर्थन का एक ही

कारण हो सकता था—विलायती राष्ट्र से समझौता। सन् '४३ से ही निराला अपनी रचनाओं में इस बात पर ज़ोर देने लगे थे कि काँग्रेसी नेता अंग्रेज़ों से समझौता करने वाले हैं। **पटली है बैठने को गोरे की साँवले से**—यह पंक्ति सन् '४३ में प्रकाशित **बेला** संग्रह की एक गज़ल में है। 'महगू महगा रहा' कविता का राजनीतिक महत्त्व यह है कि इसमें उन्होने सीधे 'पंडितजी' का नाम लेकर उन्हें विलायती राष्ट्र से समझौता करने के लिए, किसानों के विरुद्ध ज़मीदारों का साथ देने का दोषी ठहराया। यही नही, कानपुर में मज़दूरो पर गोली चली :

उसका कारण पंडितजी का शागिर्द है,
रामदास को कांग्रेसमैन बनानेवाला
जो मिल का मालिक है।

जवाहरलाल नेहरू के बहनोई रणजीत पंडित की अर्थी को लोग जब श्मशान ले जा रहे थे, तब उसके साथ चलनेवालों में निराला भी थे। उन्होंने देखा कि दिन की पाली खत्म करके जो मजदूर घर जा रहे थे, उन्होंने यह सुनकर कि यह जवाहरलाल नेहरू के बहनोई की अर्थी है, उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की :

निकले हैं मज़दूर
काम से छुटे किले के,
सुनकर नेहरूजी के
बहनोई की अर्थी,
हाथ मले, आह की
और टकटकी बाँध दी।

उन्हें नही मालूम था कि कानपुर मे उनके भाइयो पर गोली चलानेवालो मे पंडितजी के शागिर्द भी हो सकते हैं।

१९४७ के बाद जनता के मन से नेहरू के नाम का जादू धीरे-धीरे उतरता गया। निराला उन लोगो में सबसे पहले हैं जिन्होंने नेहरू के वादों के प्रति जनता को सावधान किया। सन् '४६ में ऐसे अनेक साम्यवादी नेता थे जो नेहरू के नेतृत्व की आलोचना करते थे। किन्तु सन् '४३ में जब वे काँग्रेस ही नही, मुस्लिम लीग के नेताओ की देशभक्ति को भी सराह रहे थे, और अन्य वामपंथी नेता नेहरू की आड़ लेकर साम्यवादियो को कोस रहे थे, तब एक निराला ही थे जिन्होने भविष्य-वाणी की थी—**पटली है बैठने को गोरे की साँवले से !**

सन् '३३ में हिंदीभाषियों पर नेहरू के नाम का जादू पूरी तरह छाया हुआ था। वे अपनी साहित्यिक संस्थाओं में उन्हे आमंत्रित-सम्मानित करके कृतार्थ होते थे। दो-एक अपवादों को छोड़कर हिंदीभाषी प्रदेश के राजनीतिज्ञ हिंदी-साहित्य की गतिविधि से अपरिचित, जातीय आत्म-सम्मान की भावना से वंचित थे। अन्य नेताओं की तरह वे भी साहित्यकारो को उपदेश देते थे—उन्हें कैसी भाषा लिखनी चाहिए, कैसा साहित्य रचना चाहिए। इनके मार्गदर्शक थे जवाहर-लाल नेहरू और इनका विरोध करनेवालो में थे प्रेमचंद और निराला; उन दिनो,

जब नेहरू के नाम का जादू हिंदीभाषियों पर पूरी तरह छाया हुआ था।

'पंडित जवाहरलाल नेहरू और हिंदी'—इस महत्त्वपूर्ण टिप्पणी मे, नाम के जादू की ज़रा भी चिन्ता न करते हुए, संयत शब्दो में, दृढ़ता और आत्मविश्वास से, निराला ने हिंदीभाषी जाति और हिंदी-साहित्य की ओर से नेहरू को यह उत्तर दिया :

"पडित जवाहरलाल नेहरू नवयुवको के आदर्श कहे जाते है। बहुत लोगो का कहना है, महात्माजी के बाद राजनीति मे उन्ही का नेतृत्व आ रहा है। वह देश की जातीय सस्था के सभापति भी हो चुके है। उनके त्याग की सहस्रो कठो से प्रशसा होती है। राष्ट्र के इतने प्रसिद्ध पुरुष राष्ट्रभाषा का कितना ज्ञान रखते है, इसका सवादपत्रो से एक पुष्ट प्रमाण प्राप्त हुआ है। अभी कुछ दिन हुए काशी मे, रत्नाकर-रसिक मडल की ओर से, पंडितजी को एक मानपत्र दिया गया। उस सभा मे समादर करनेवाले हिंदी के कई प्रधान स्तंभ मौजूद थे—प. रामचद्र शुक्ल, बाबू जयशंकर 'प्रसाद', प. कृष्णदेव प्रसाद गौड़ एम. ए. आदि। पं. रामचद्र शुक्ल ने मानपत्र दिया। उत्तर मे पं. जवाहरलाल नेहरू बोले, हिंदी मे अभी तक दरबारी ढंग की ही कविता हो रही है, स्वराज्य होने पर उस सरकार का फर्ज़ होगा कि तीन-चार सौ पुस्तकें दूसरी-दूसरी भाषाओ से अनूदित करावे। आपने प्रान्तीय भाषाओ का भी महात्म्य-कीर्तन किया।

"प. जवाहरलालजी उस जगह रहते है, जहाँ हिन्दी-साहित्य सम्मेलन है, जहाँ की केवल 'सरस्वती' हिंदी साहित्य का बहुत कुछ युगान्तर-इतिहास कह सकती है। पर पंडितजी को राष्ट्र के निर्माणोद्देश मे इतनी तल्लीनता रही कि राष्ट्र भाषा की कभी याद भी न हुई—उसकी शिक्षा राष्ट्र के लिए आवश्यक प्रतीत हुई ही नही। हमारे विचार से, राष्ट्र के लिए निकली हुई पंडितजी की जो प्रतिभा राष्ट्रभाषा के सेवको की समझ मे कम आयी है, वह अगर राष्ट्रभाषा के रूप से कुछ पुस्तको मे निर्गत हो, तो साहित्यिक अच्छी तरह समझ जाएँगे; पुनः पडितजी को भी मालूम हो जाएगा, जिन्हे वह कुछ देना चाहते हैं, उन्ही से प्राप्त करने की कितनी गुजायश है, और राष्ट्र के मैदान मे वह अपने को उनसे कितने आगे समझते है, राष्ट्रभाषा के मैदान मे वे उनसे और दूर तक पहुँचे हुए हैं या नही।

"हिंदीभाषियो को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पं. जवाहरलालजी हिंदी काव्य-साहित्य की वर्तमान प्रगति से कहाँ तक परिचय रखते हैं। आज जिस काव्य-साहित्य का हिंदी मे प्राबल्य है, युग है, वह दरबारी कविता की धारा है!!

"भाषण मे पडितजी ने यथेष्ट सयम रखा था, एक अनजान अज्ञात विषय पर जैसा रखता है···

"जो लोग वहाँ पडितजी का ऐसा अद्भुत भाषण सुनकर चुप रह गये, उन लोगो ने सभ्यता का विचार किया होगा। अन्यथा ऐसे विद्वत्तापूर्ण भाषण का उत्तर वे दे सकते थे! सम्मान देने के लिए बुलाकर विरोध करना उन्होने अपनी साहित्यिक धारा के अनुसार उचित न समझा होगा। हम हिन्दी साहित्यिको से

ऐसे स्थलों के लिए निवेदन करते हैं—वे इस दार्शनिक सत्य की रक्षा करें, यदि अपमान से बचना चाहते हैं—

'जो दूसरे को बड़ा मानता है, वह दूसरे से छोटा समझा जाता है।' "

वैसे तो राष्ट्रभाषा के विरोध में जो कुछ कहा जाय उससे सारे राष्ट्र का अपमान होता है किन्तु राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त हिंदी एक विशेष विराट् प्रदेश की जातीय भाषा भी है, इसलिए निराला ने जिस अपमान की बात लिखी, वह जातीय अपमान है, उससे बचने की सीख उन्होंने सारे राष्ट्र के साहित्यकारों को नही 'हिंदी साहित्यिकों' को दी।

गाँधीजी अंग्रेजी के अलावा गुजराती के लेखक थे, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी अंग्रेज़ी के अलावा तमिल के लेखक थे, जवाहरलाल नेहरू अंग्रेजी के अलावा और किसी भाषा के लेखक नही थे। गणेशशंकर विद्यार्थी हिंदी के लेखक थे लेकिन वे अब इस संसार में नही थे।

हिंदीभाषी प्रदेश मे नेहरूवाद की दो विशेषताएँ थीं : हिंदी भाषा और साहित्य की उपेक्षा, अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य से प्रेम, समाजवाद के नाम पर पूंजीवाद का समर्थन, राष्ट्रीयता के नाम पर साम्राज्यवाद से समझौता। नेहरू आम जनता के सामने हिंदी में ही भाषण करते थे; इस तरह वह तेजबहादुर सप्रू और सी. वाई. चिन्तामणि जैसे उदारपंथी नेताओं से भिन्न थे। उन्होने गाँधीजी के साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया, हिंदू या मुस्लिम हितों की रक्षा के नाम पर वह साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन में भाग लेने से कतराए नही। स्वाधीन भारत को उन्होंने पाकिस्तान या दक्षिण कोरिया की तरह अमरीकियों का अस्त्रागार नही बनने दिया, उन्होने उद्योग-धधो के क्षेत्र मे सार्वजनिक उद्योग कायम करके भारतीय अर्थतंत्र को दृढ़ किया और पूंजीवादी लूट में थोड़ी-सी कमी की।

किंतु सन् '३३ में नेहरू युवकों के हृदय-सम्राट् इसलिए न बने थे कि वह उदारपंथी नेताओं से चार कदम आगे थे। वह युवक-सम्राट् इसलिए बने थे कि कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेताओ की ढुलमुल नीति के मुकाबले वह साम्राज्यवाद से निर्णायक संघर्ष करके पूर्ण स्वाधीनता-प्राप्ति का लक्ष्य लोगो के सामने रखते थे, स्वाधीन भारत समाजवादी भारत होगा जिसमें राजाओं, जमीदारों और पूंजी-पतियो के लिए जगह न होगी, यह उद्देश्य घोषित करते थे। पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ ब्रिटेन से आर्थिक-राजनीतिक समझौता करना होगा, समाजवाद का अर्थ सामंती अवशेषों को कायम रखना और पूंजीवाद को विकसित करना होगा, लोगों ने इसकी कल्पना न की थी।

निराला ने लिखा, नेहरू राष्ट्रभाषा मे कुछ लिखें तो उन्हें मालूम हो जाएगा कि जिन्हें वह कुछ देना चाहते हैं, उन्हीं से प्राप्त करने की कितनी गुंजाइश है। निराला अपने वेदान्त के आगे न गाँधीवाद को स्वीकार करते थे, न नेहरूवाद को। व्यावहारिक वेदान्त के आधार पर वह गांधी से आगे बढ़कर अछूतों को गले लगाते

थे—किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं, अपने मानवता-प्रेम के कारण। उसी वेदान्त के आधार पर वह हर तरह के सामन्ती और पूंजीवादी शोषण का विरोध करते थे, सामाजिक क्रान्ति के लिए युवकों का आह्वान करते थे। भारतीय समाज में जब से वर्ण-व्यवस्था के बन्धन कठोर हुए, धार्मिक विद्वेष बढा, कबीर से लेकर निराला तक अनेक कवियों तथा दार्शनिको ने किसी न किसी रूप मे वेदान्ती विचारधारा का सहारा लेकर मनुष्यमात्र की महत्ता, समस्त मनुष्यों की समानता की घोषणा की। साम्य और भ्रातृत्व का यह स्वर विवेकानन्द की रचनाओं मे स्पष्ट सुना जा सकता है। साम्य का वह स्वर उनके स्वाधीनता-प्रेम, उनकी साम्राज्य-विरोधी चेतना से घुल-मिल गया हे।

सितंबर, '३२ की 'सुधा' में निराला ने 'रूस' शीर्षक टिप्पणी लिखी। इसमें रवीन्द्रनाथ के रूस-सम्बन्धी पत्रों का हवाला देते हुए उन्होंने साम्राज्यवादी देशों और सोवियत सरकार की नीति का भेद स्पष्ट किया। प्रबल साम्राज्यवादी शत्रुओं से घिरे रहने पर भी रूस दूसरों की तुलना में राष्ट्रीय आय का सबसे कम अंश सेना पर खर्च करता है, दूसरों की अपेक्षा जनसाधारण की शिक्षा पर वह राष्ट्रीय आय का अधिकांश खर्च करता है। अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा रूस ने अपने अर्थतंत्र को दृढ किया है। मजदूरो के स्वास्थ्य, उनके विश्राम की उचित व्यवस्था है। इसलिए "रूस आज सभी दलित देशों का आदर्श है।" निराला अपने व्यावहारिक वेदान्त की भूमि पर मनुष्य मात्र की जिस समानता का स्वप्न देखते थे, वह उन्हें सोवियत समाज मे साकार दिखाई दी: "वहाँ बड़प्पन के संस्कार ही अब नही रह गए।" मानव सम्बन्धो में इतना बड़ा परिवर्तन कि मेहनत करने वालो मे छुटपन का भाव खत्म हो जाय, रवीन्द्रनाथ को मुग्ध कर चुका था। निराला रवीन्द्रनाथ के रूस सम्बन्धी वृत्तान्त से अत्यंत प्रभावित हुए थे; उस प्रभाव की झलक इस टिप्पणी में है।

निराला अपने व्यावहारिक वेदान्त से प्रेरित होकर जहाँ शोषणमुक्त समाज व्यवस्था का स्वप्न देखते थे, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे वह युद्ध का बहिष्कार और विश्वशान्ति कायम रखने का समर्थन करते थे। सामाजिक अन्याय को दूर करने और राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए वह हिंसा का प्रयोग उचित मानते थे किंतु साम्राज्यवादी युद्धो मे जनसाधारण का रक्त बहे, यह उन्हे बहुत अनुचित कार्य लगता था। उनका विचार था कि एक ओर तो रूसी क्रान्ति के प्रभाव से एशिया और यूरोप के जन-आन्दोलन शक्तिशाली हुए है, दूसरी ओर उसकी विदेश-नीति विश्वशान्ति कायम रखने के उद्देश्य से प्रेरित है। सन् '३४ मे जब सोवियत रूस को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने की अनुमति मिली, तब निराला ने इस घटना का अभिनन्दन करते हुए अक्तूबर, '३४ की 'सुधा' में टिप्पणी लिखी—'रूस का राष्ट्रसंघ मे प्रवेश'। इस टिप्पणी मे तीन बाते उल्लेखनीय हैं। पहली यह कि सोवियत राष्ट्र का उत्थान मूलत. वहाँ की किसान जनता का उत्थान है। जो लोग उत्थान के लिए सोवियत राष्ट्र के उदय की आकांक्षा रखते थे, "वे उद्दाम ऐश्वर्य

के स्रोत पर तृण की तरह बहने वाले वैषयिक नहीं—वसुंधरा पर भी भूख से मरने वाले, चिंता से उन्निद्र किसान थे।" रूस ने पूंजीवादी राष्ट्रों के विरोध के सामने भुकने के बदले जनता की सामाजिक-सांस्कृतिक उन्नति के लिए जो प्रयत्न किया, उससे आज अधिकांश शिक्षित उसी के विचारों के पक्ष में जाति की उद्धार-कल्पना में लीन हो रहे हैं। टिप्पणी में दूसरी उल्लेखनीय बात अन्य देशों के जन-आन्दोलन पर रूसी क्रान्ति और समाजवादी व्यवस्था का प्रभाव है। पूंजीवादी सरकारों ने इसी प्रभाव से डरकर रूस को राष्ट्रसंघ से अलग रखा।

"इधर रूस के कृत्यों का बड़ी तेज़ी से यूरोप और एशिया के सुधारवादी, राष्ट्रीय भावना वाले देशों में प्रभाव फैलने लगा, और कई राष्ट्र उसी शक्ति से बहुत कुछ पुष्ट हो भी चले। यह देखकर पहले से शक्त दूसरे राष्ट्रों ने रूस को जाति-महत्ता से च्युत हिंदू की तरह राष्ट्र की पंक्ति से अलग कर दिया। रूस ने भी झुककर सलाम करने का नाम न लिया।"

विश्व-राजनीति की गतिविधि से मजबूर होकर पूंजीवादी राष्ट्रों ने सोवियत रूस को मान्यता दी और उसे राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया। वहाँ उसने विश्व-शान्ति कायम रखने की नीति राष्ट्रों के सामने रखी। टिप्पणी की तीसरी उल्लेखनीय बात इस विश्व-शान्ति से सम्बन्धित है।

"अब रूस की इज़्जत में किसी को शक नहीं रहा। इज्जत किस तरह हासिल की जाती है, रूस ने जैसी खूबी से साबित किया है, ईश्वर से हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि दूसरे मित्र-राष्ट्र भी विश्व के कल्याण के लिए वही पथ और वैसी ही कला का पाथेय ग्रहण करें। हमें पूर्ण विश्वास है, इससे किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न रह जाएगी और लोग शान्तिपूर्वक रह सकेंगे।"

निराला की रूस सम्बन्धी टिप्पणियों से स्पष्ट है कि जैसे राष्ट्रीय स्तर पर, वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वह समाजवादी व्यवस्था और समाजवादी राजनीति को समस्त देशों की जनता के लिए कल्याणकारी समझते थे। वैश्य-युग अर्थात् पूंजीवाद का युग समाप्त हो रहा है, किसान-युग अर्थात् समाजवादी व्यवस्था का अभ्युदय हो रहा है। साहित्य को इसी अभ्युदयशील युग के अनुकूल चलना है। 'किसान और उनका साहित्य' टिप्पणी ('सुधा', १६ जुलाई '३४) में उन्होने लिखा, "अब वैश्य-युग भी मनुष्यों के मन से दूर हो गया है—अब किसान या मजदूरों का युग है।"

वेदान्ती विचारधारा मनुष्य को क्रान्तिकारी बना सकती है, क्रान्ति-विरोधी भी। मार्क्सवाद के आधार पर विश्व-शान्ति कायम की जा सकती है और समाजवादी राष्ट्रों में ही आपसी टक्कर हो सकती है। आप बहस करते रहिए—सच्चे वेदान्त के अनुसार युग-विशेष में वर्णव्यवस्था का समर्थन उचित है या उसका खंडन। विचारधारा से अधिक महत्त्वपूर्ण एक तत्त्व और है—मनुष्य के संस्कार। निराला के किसान-संस्कार वेदान्ती विचारधारा के संपर्क से उन्हे स्वभावतः समाजवादी आदर्श की ओर खींच लाते थे; जवाहरलाल नेहरू के अभिजातवर्गीय

संस्कार समाजवादी विचारधारा के संपर्क में आकर भी उन्हें पूंजीवाद के समर्थन की ओर प्रेरित करते थे।

संस्कारो के वंधन अकाट्य नही है किन्तु किसी विचारधारा के ग्रहण मात्र से अपने आप कट भी नही जाते। हिंदी-उर्दू के सभी मार्क्सवादी लेखकों की तुलना में प्रेमचन्द और निराला का साहित्य अधिक प्राणवंत है, अधिक क्रान्तिकारी है—इसका यही कारण है।

इसलिए जब काशी के साहित्यकारो से सम्मानित होकर जवाहरलाल नेहरू ने कहा, हिंदी में अभी तक दरबारी ढंग की ही कविता हो रही है, तब निराला ने उत्तर दिया, पंडितजी अपने विचार राष्ट्रभाषा में भी लिखें तो उन्हे मालूम हो जाएगा कि जिन्हें वह कुछ देना चाहते है, उन्ही से प्राप्त करने की कितनी गुंजाइश है।

यह गर्वोक्ति सही थी। जवाहरलाल नेहरू की तुलना में प्रेमचन्द और निराला दलित जनता के सच्चे, ईमानदार और अडिग समर्थक थे। यहां साम्राज्यवाद और पूंजीवाद से किसी समझौते का प्रश्न न था। जहां तक भारतीय भाषाओं में लिखने-पढने का सवाल था, निराला और प्रेमचंद युग-निर्माता थे, जवाहरलाल नेहरू अंग्रेजी के प्रबल समर्थक, भारतीय भाषाओ के विकास में बहुत बड़ी बाधा थे।

वेदान्त और भारतीयता

निराला ने कहा—"ब्रह्म···"

जवाहरलाल नेहरू ने टोका—"ब्रह्म क्या ?"

निराला ने व्याख्या की—"ब्रह्म का मतलब सिर्फ़ बड़ा है, जिससे बड़ा और नहीं। किसी को ब्रह्म देखने के अर्थ है, उसके भौतिक रूप मे ही नही—सूक्ष्मतम आध्यात्मिक, दार्शनिक, वृहत्तर रूप मे भी देखनेवाले की दृष्टि प्रसारित है। पंडितजी, मैं अगर आपको ब्रह्म देखूं तो आप मेरी दृष्टि मे बड़े होंगे या वहत्तर दफा नेशनल कांग्रेस प्रिजाइड करने पर ?" (प्रबंध प्रतिमा, पृ. ४६-४७)

निराला की क्रान्तिकारी विचारधारा का स्रोत वह वेदान्त है जिसे वह सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र मे लागू करके हर तरह के रूढिवाद का विरोध करते है। अब प्रश्न है—ब्रह्म गोचर है, या अगोचर, या दोनों ?

'मैं अगर आपको ब्रह्म देखूं'—इन शब्दो से तो यही प्रकट होता है कि ब्रह्म गोचर है, वह कम से कम निराला को दिखाई देता है और प्रत्येक मनुष्य में दिखाई

देता है। किंतु जो गोचर हो, उसे देखना भारतवर्ष की विशेपता नही। उन्नीसवीं सदी मे देश-प्रेम की भावना से एक विचार यह उत्पन्न हुआ कि यूरोप भौतिकवादी है, भारत अध्यात्मवादी है; अध्यात्मवाद जड़ विज्ञान से श्रेष्ठ है। इस धारणा के अनुसार सांसारिक कार्यो में व्यस्त रहना ब्रह्म की साधना से च्युत होना है। राजनीतिक आन्दोलन भी सांसारिक कार्यो के अन्तर्गत है; जो लोग राजनीतिक आन्दोलनो से समाज को सुधारना चाहते है, वे पश्चिम की नकल करते है। संसार में भौतिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना, भौतिक जगत् का वैज्ञानिक अध्ययन करना, समाज के विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना—यह सब वेदान्त विरोधी कार्यवाही है। इस तरह की धारणाएँ उस समय तक राष्ट्रीय आत्मसम्मान जगाने में उपयोगी हो सकती हैं जिस समय तक जनता ने संघबद्ध होकर राजनीतिक आन्दोलन शुरू नही किया; जैसे स्वामी विवेकानंद के युग में। किंतु जब राजनीतिक आन्दोलन शुरू हो जाए, तब यही धारणाएँ प्रेरक होने के बदले विरोधी बन जाती हैं, सामाजिक-राजनीतिक समस्याओ के प्रति निराला के समान सजग लेखक में वे स्वभावतः अपने से विरोधी विचारों से टकराती हैं।

यूरोप की सभ्यता यूनान से आरंभ हुई। यूनान की सभ्यता वहिर्मुख, देश-विजयकामिनी थी। तभी से "पाश्चात्य सभ्यता इतिहास के जड़ प्रमाण पर विश्वास रखकर निर्मित हो रही है"; रोमन सभ्यता और भी वहिर्मुखी थी; आधुनिक अंग्रेज़ी सभ्यता 'उसी एक विजय-लक्ष्य से लक्ष्मी प्राप्त करने की ओर बढ़ रही है'; इसके विपरीत भारतीय साहित्य संसार से मुँह मोड़कर विकसित हुआ है, "उसका सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नही चाहता।" ('सुधा', फरवरी, '३३; संपा. टि.--१)

इसमे संदेह नही कि यूनान, रोम और ब्रिटेन ने बहुतों को गुलाम बनाया, युद्ध किए, निम्न स्तर पर सुख और ऐश्वर्य की साधना की। किन्तु इन देशो की संस्कृति के प्रतिनिधि होमर, वर्जिल और शेक्सपियर है, वहाँ के लुटेरे और दासों के व्यापारी नहीं। यूरोप के साहित्य और विज्ञान को साम्राज्यवादियों की बर्बरता से जोड़ देने पर वास्तव मे हम उस संस्कृति को भी छोड़ देते हैं, जो साम्राज्यवाद की विरोधी थी। भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नही चाहता—इस धारणा का खंडन स्वयं निराला ने अनेक बार किया है, उस पर यहाँ टिप्पणी करना व्यर्थ है।

यूरोप मे डारविन का विकासवाद धार्मिक अन्धविश्वासों के लिए बहुत बड़ी चुनौती बनकर आया। निराला स्वयं उस तरह के अन्धविश्वासो से लड़ रहे थे, डारविन की विचारधारा उनकी सहायक हो सकती थी। किंतु उन्होने डारविन का अध्ययन न किया था; सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उन्होने उसकी विचारधारा का सार-तत्त्व यह समझा कि मनुष्य बन्दर की औलाद है। ब्रिटेन के पादरियो और भारत के अकबर इलाहाबादी की तरह उन्होंने लिखा, "भारत में सृष्टितत्त्व ज्ञान से कहा गया है। डारविन के विकासवाद का क्रम परिणाम मनुष्य नही। मनुष्य ही

मनुष्य का परिणाम है।" ('साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म'?—प्रबंध प्रतिमा, पृ. ९७)

वंदर और मनुष्य के सम्वन्ध से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मनुष्य जाति ने अपने इतिहास मे कोई प्रगति की है, वर्बरता से सभ्यता की ओर उसका विकास हुआ है या सृष्टि के आरंभ में सतयुग था और उसके वाद पतन होते-होते कलियुग आ गया। यहूदियो और ईसाइयो मे यह धारणा प्रचलित थी कि आदिम मनुष्य एक सुरम्य उपवन मे सुखी-संतुष्ट जीवन विताता था, तव न मृत्यु थी, न रोग-शोक, न पाप, न परिश्रम। शैतान ने आदमी को ज्ञान का फल चखाकर उससे ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कराया, नंदन कानन का वह आनन्दमय जीवन समाप्त हो गया, सतयुग का अन्त हुआ। निराला का विचार था कि आरंभ मे मनुष्य ज्ञानी था; सृष्टि ज्ञान से हुई, अज्ञान से नही; वाद को भारतवासी इस पूर्ण ज्ञान की दशा मे अवनत होते गए; इस तरह का ह्रास भारत की विशेपता थी। वास्तव मे यह धारणा एशिया और यूरोप के अन्य धर्मो मे भी वद्धमूल थी। अन्तर इतना है कि वहाँ पतन ज्ञान का फल चखने से हुआ, यहाँ अज्ञान से। यह अन्तर भी नगण्य है क्योकि आदम ने जो फल चखा, वह सांसारिक ज्ञान का फल था। यहाँ जिस ज्ञान से सृष्टि हुई, वह सासारिक ज्ञान नही, ब्रह्मज्ञान था। पतन हुआ अज्ञान—अर्थात् सासारिक ज्ञान—के कारण, इसीलिए निराला ने कहा, भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नही चाहता।

हेमचंद्र जोशी और इलाचद्र जोशी ने लिखा था कि अपनी प्राथमिक अवस्था मे मनुष्य कला से अनभिज्ञ था। इस पर निराला ने टिप्पणी की, "आप लोगो का यह कथन सिद्ध करता है कि सृष्टि अज्ञान से हुई, यानी पहले लोग वेवकूफ पैदा हुए, अव तरक्की कर रहे हैं—कैसी अवैज्ञानिक वात है!" ('कला के विरह में जोशीवंधु', प्रवंध प्रतिमा, पृ १९६)

सृष्टि ज्ञान से हुई, इसका प्रमाण वेद है। "वेद कहते हैं कि सृष्टि ज्ञान से हुई है और उस ज्ञान को ही व्रह्म कहा है। उस व्रह्म या ज्ञानात्मक सत्ता मे अनादि-भाव, अनादि सृष्टि-वैचित्र्य वतलाए गए। ऐसे व्रह्म के जाननेवाले उस आदिम काल के मनुष्यो के संवंध में कहा गया कि संसार के रहस्यों के आप पूर्ण ज्ञाता हैं, आपकी मुट्ठी मे संसार एक वेर की तरह दवा हुआ है—'आप विश्व-वदर-कर हैं, यह विश्व आमलक समान आपके करतलगत हैं'।" (उप.)

संसार के रहस्य का ज्ञान संसार की गतिविधि का अध्ययन करके, अध्ययन के परिणामो को व्यवहार द्वारा परखकर प्राप्त नही हो सकता। यह जड़ विज्ञान का तरीका है। ब्रह्मज्ञान साधना से प्राप्त होता है अथवा व्रह्म की कृपा से। इसलिए निराला ने लिखा कि पाश्चात्य सभ्यता "इतिहास के जड प्रमाण पर विश्वास रखकर निर्मित हो रही है।" इतिहास के प्रमाण को जड़ कहकर काट देने से इल-हाम ही वच रहता है; श्रद्धा होने से ही उस पर विश्वास किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय आर्य क्या विज्ञान से परिचित नही थे? वे उससे परिचित थे

किन्तु उन्होंने उसे अपरा विद्या कहा था और 'यह अपरा, अविद्याजन्य, दु:खद है।' (उप., पृ. २०३) जो आनन्ददायक विद्या है, वह परा है, वह ब्रह्मज्ञान है। प्राचीन-काल मे जिन लोगो ने अपरा विद्या, विज्ञान अथवा माया में उन्नति की, उन्हें असुर संज्ञा दी गई। पुराणों में हिरण्यकशिपु, रावण, वाण, मधुकैटभ, रक्तवीज आदि असुरों के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है। उनकी राज्य परिचालना-शक्ति, शासन-शृंखला सुदृढ़ और सुशृंखल थी। किन्तु विराट् शक्ति से साक्षात्कार होते ही असुर नष्ट हो जाते हैं। नृसिह भगवान् को देखकर प्रह्लाद का कुछ नही विगड़ता, हिरण्य-कशिपु का नाश हो जाता है।

भारतवर्ष के पतन का कारण आसुर भावो की प्रधानता है। भारतवर्ष के आर्यो मे जिस कला का प्रचार था, "वह दैव थी, इसीलिए देवताओं के सद्गुण-संयुक्त पात्रों के चित्र यहाँ अंकित किए गए। इनके दर्शन से हृदय मे दिव्यता का विकास होता है।" (उप., पृ. १६८) इसलिए यहाँ कला में दिव्य भावना का विकास किया गया और 'आसुर भावों से भरसक वचने की कोशिश की गई है।' (उप.) ज्ञानी मोह से मुक्त होता है। जो भाव मोह के आकर्षण से पतित कर देते हैं, वे आसुर भाव हैं। हिन्दू जाति 'आदिम काल से ही' अपने समाज की रक्षा के लिए सूक्ष्म विचार करती आयी है, "उसका साहित्य इसका प्रमाण है। वह निर्मल आत्मा की प्राप्ति के लिए ही सचेष्ट रही है।" (उप.) निर्मल आत्मा को छोड़ा, भौतिक संसार में फँसे कि आसुर भाव मन पर छा गए और पतन-आरंभ हुआ।

भौतिक संसार को समझने की एक विद्या है जिसे विज्ञान कहते है। यह अपरा विद्या है, दु:खद है, माया है।

भौतिक संसार में मानव-समाज के विकास अथवा ह्रास को समझने की एक विद्या है जिसे इतिहास कहते हैं। यह इतिहास-विद्या जड़ प्रमाण को आधार मान-कर चलती हैं। भौतिकविज्ञान की तरह समाजविज्ञान भी जड़ है।

मानव-समाज की गतिविधि का महत्त्वपूर्ण अंग है राजनीति। हिरण्यकशिपु, रावण, वाणासुर आदि की राज्य-परिचालना-शक्ति, शासन-शृंखला विशाल और सुदृढ़ थी। राजनीतिक संगठन को इस तरह महत्त्व देना भौतिकवाद को ही प्रश्रय देना है। 'सुधा' की जिस टिप्पणी मे निराला ने ग्रीक सभ्यता के आधार पर विक-सित होनेवाली यूरोप की जड़ सभ्यता की आलोचना की थी, उसमे भारतीय संस्कृति के प्रसंग मे उन्हें चाणक्य का नाम याद आया था। चाणक्य निर्मल आत्मा की प्राप्ति के लिए सचेष्ट न होकर इस मायामय ससार मे राजनीति के साधक थे। निराला ने लिखा कि चाणक्य भारतीय साहित्य का कोई विकसित रूप नही हैं।

जवाहरलाल नेहरू से निराला ने कहा, 'राजनीति प्रभावित है पश्चिम से,' जबकि 'यहाँ सुधार ज्ञान मे हुआ' अर्थात् निर्मल आत्मा की प्राप्ति से।

जोशीवन्धुओ को उन्होंने समझाया, "जब आजकल की तरह, आसुरी शक्ति का औद्धत्य अनन्त को ग्रहण करता है, तब ग्रहण तो कर सकता है, पर तत्काल वह

आसुरी शरीर नष्ट-भ्रष्ट भी हो जाता है'''जिस घड़ी नृसिंह भगवान् हिरण्यकशिपु का मुकाबला करते हैं, तब विराट् की शक्ति में उनका साक्षात्कार होता है—अनन्त का वह अनुभव करता है, वह शरीर में निष्प्राण होकर उसमें परिसमाप्त होता है; परन्तु वह महाशक्ति का विकास प्रह्लाद का कुछ नहीं कर सकता।" (उप., पृ. २०३)।

निराला का वेदान्त यहां राजनीति, इतिहास और भौतिक विज्ञान का विरोध करता हुआ दिखाई देता है। वास्तव मे राजनीतिक कमजोरियों और वैज्ञानिक प्रगति मे पिछड़े होने के कारण भारत परतन्त्र हुआ किन्तु उन्नीसवीं सदी में अनेक देशभक्त अध्यात्मवाद को भारत की विशेषता बताकर जनता को राजनीति से विमुख होने का उपदेश देते थे। इस अध्यात्मवादी प्रचार से क्षुब्ध होकर रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था, "यूरोप ने कहा, 'भारतवासी बड़े आध्यात्मिक होते हैं, उन्हें भौतिक सुख-समृद्धि की परवाह नहीं होती।' बस, लिया सबने अपनी आध्यात्मिकता। देखिए, हमारे काव्य में भी आध्यात्मिकता है; यह देखिए हमारी चित्र-विद्या की आध्यात्मिकता, यह देखिए हमारी मूर्तिकला की आध्यात्मिकता।" ('काव्य मे रहस्यवाद')

निराला ने इन्हीं अध्यात्मवादियों की तरह अपने लेखों में जहां-तहां भारतीय कला और साहित्य मे देवत्व के विकास को महत्वपूर्ण बताया। "बौद्ध युग से अधिक कला-कौशल का काल शायद ही संसार में आया हो। उस समय भी भारतवर्ष की कला का रुख किस तरफ था, देवत्व के विकास की ही ओर था या नहीं इसका सहज ही निर्णय हो जाता है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १९८)

देव भाव, आसुर भाव, ब्रह्मज्ञान और भौतिकविज्ञान पाप और पुण्य की भावनाओं से जुड़ जाते हैं। देव भाव धर्म है, पुण्य है; आसुर भाव अधर्म है, पाप है। बाइबिल के शैतान की जगह यहां पुराणों के असुर आ जाते हैं। साहित्यकार के लिए उचित है कि वह पाप पर पुण्य की, शैतान पर खुदा की विजय दिखाए। डाक्टर जॉनसन ने मिल्टन के महाकाव्य 'पैराडाइज लॉस्ट' की महत्ता का एक कारण यह बताया कि उसमे पाप पर पुण्य की विजय दिखाई गई है। यूरोप के साहित्यकारों ने उस रूढ़ नैतिक दृष्टिकोण के विरुद्ध लम्बा संघर्ष करके साहित्य में यथार्थवादी धारा को पुष्ट किया। निराला ने देवासुर सिद्धान्त को साहित्य में लागू करते हुए मिथ्या आदर्शवाद के समर्थन मे भारतीय साहित्य की यह व्याख्या प्रस्तुत की :

"भारतवर्ष की तमाम शिक्षाओं की बुनियाद दैवी विकास के अनुकूल, अन्त तक ब्रह्म को प्राप्त कराने मे सहायक रही है। भारत के लोग बुरी भावनाओं को दबाते ही रहे हैं, समाज मे उनका विकसित रूप नहीं रहने दिया, और अगर रखा भी तो व्यंग्य के तौर से, ताकि जनसाधारण पर उनका प्रभाव न पड़े, लोगों की भावनाएँ कलुषित न हों। यहां जितने भी चरित्र-चित्रण साहित्य मे हुए, सब मे अन्त तक धर्म की ही विजय दिखलाई गई। 'यतो धर्मस्ततो जयः' की कहावत

आज भी पराधीन, पददलित भारतवर्ष रट रहा है। दक्षिण के मन्दिरों मे आज जितनी चित्रकारी दिखलाई पड़ती है, उसमे पाप और पुण्य के संग्राम में पुण्य की ही विजय प्रदर्शित की गई है। पाप और कलि के सैकड़ो व्यंग्य-चित्र है। इसी पुण्य की वदौलत दक्षिण के मुट्ठीभर ब्राह्मण करोड़ों अन्त्यजो पर शासन कर रहे हैं।" (उप., पृ. १९९)

ब्रह्म और माया, परा और अपरा विद्या, ब्रह्मज्ञान और जड़ विज्ञान, दैव और असुरभाव, पाप और पुण्य—इन सवके अन्त मे, सव भेदो की आधारशिला के रूप में ब्राह्मण और शूद्र का भेद। करोड़ो अन्त्यजों पर शासन करते हैं मुट्ठीभर ब्राह्मण—पुण्य की वदौलत !

शंकराचार्य महाज्ञानी, परम वेदान्ती थे। शूद्रो के प्रति उन्होंने कठोर नियम वनाए थे। ब्राह्मण ही ज्ञान के अधिकारी थे, इसलिए वे नियम आवश्यक थे। "शंकर की दृष्टि केवल चमक पर थी, और वह धर्म की रक्षा अधिकारियों में समझते थे।" (उप., पृ. २३२) उस समय ब्राह्मण का उत्कर्ष और शूद्र का उत्कर्ष वरावर न था। इसलिए दोनों के लिए दण्ड भी अलग-अलग थे। इसके सिवा 'लघु दण्ड से शूद्रों की बुद्धि भी ठिकाने न आती।' ('वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति'; चावुक, पृ. ७३) शूद्रों ने समाज की सेवा अवश्य की किन्तु उनके "जरा से उपकार पर सहस्र-सहस्र अपकार होते थे।" अपकार यह था कि द्विजो के शुद्ध समाज को शूद्रों के शरीर से निकले हुए दूषित परमाणु प्रतिक्षण अस्वस्थ करते थे। शूद्रो द्वारा किए हुए इस उत्पीड़न को सहते हुए ब्राह्मणों ने समाज की रक्षा के लिए कुछ कठोर नियम वना दिए तो कौन-सा वज्रपात हो गया !

शूद्रो द्वारा द्विजों के उत्पीड़न का रहस्य उद्घाटित करते हुए निराला ने लिखा, "उनके दूषित वीजाणु तत्कालीन समाज के मंगलमय शरीर को अस्वस्थ करते थे—उनकी इतर वृत्तियो के प्रतिघात प्रतिदिन और प्रतिमुहूर्त समाज को सहना पड़ता था। निष्कलुष होकर मुक्तिपथ की ओर अग्रसर होने वाले शुद्ध-परमाणुकाय समाज को शूद्रो से कितना वड़ा नुकसान पहुँचता था, यह 'मंडल' (सन्तराम के जाति-पाँति-तोड़क मंडल) के सदस्य समझते, यदि वे भोगवादी, अधिकारवादी, मानववादी—इस तरह जड़वादी न होकर, त्यागवादी या अध्यात्म-वादी होते। इतने पीड़नो को सहते हुए अपने जरा से वचाव के लिए—आदर्श की रक्षा के लिए—समाज को पतन से वचाने के लिए अगर द्विज-समाज ने शूद्रों के प्रति कुछ कठोर अनुशासन कर भी दिए, तो हिसाव मे शूद्रों द्वारा किए गए अत्याचार द्विज-समाज को अधिक सहने पड़े थे, या द्विज-समाज द्वारा किए गए शूद्रों को ?" (उप., पृ. ७३)

जाति-पाँति तोड़क मण्डल के सन्तराम को शांकर वेदान्त, अध्यात्मवाद और वर्णव्यवस्था का रहस्य समझाते हुए ही निराला ने ये शब्द लिखे थे। शूद्रो द्वारा किया हुआ द्विजों का उत्पीड़न अत्यन्त सूक्ष्म था, उत्पीड़न होता था उनके शरीर से निकले हुए वीजाणुओं से। इसीलिए ब्राह्मण अपने विशुद्ध परमाणुओ की रक्षा

के लिए शूद्रों के प्रति कठोर अनुशासन बरतते थे। वरना "शंकर को क्या पड़ी थी, जो शूद्रों को हीन और ब्राह्मणों को श्रेष्ठ बतलाते ?" (उप.)

इस परमाणुवाद की चर्चा जोशीबंधुओं वाले लेख में भी है। परमाणु दो तरह के होते हैं— दैव और आसुर। रूप, रस, गंध और स्पर्श द्वारा जिस प्रकार की भावना हृदय में प्रवेश करती है, मस्तिष्क में उसी प्रकार का नशा छा जाता है। "यदि पूर्वोक्त परमाणु दैवगुण-संयुक्त होते हैं, तो आत्मा में एक प्रकार के दिव्य आनन्द का स्फुरण होता है, और यदि वे तन्मात्राएँ (रूप, रस, शब्द, गन्ध या स्पर्श से आनेवाली) किसी विकृत भावना की, किसी आसुर प्रकृति की होती हैं, तो हृदय को उसी प्रकार का मोह, नशा या उन्माद आच्छन्न कर लेता है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १६८)

इसी धारणा के अनुसार शूद्रों के बीजाणु ब्राह्मणों के लिए घातक थे। द्विजों ने शूद्रों पर शासन किया दिव्यता की रक्षा के लिए। ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान के अधिकारी थे, इसलिए उन्हें विशेषाधिकार भी प्राप्त थे और ये विशेषाधिकार— शूद्रों की अधिकारहीनता के साथ— समाज की मर्यादा के अनुकूल थे। इस दृष्टि से विचार न करने पर "इधर दो हजार वर्षों के अन्दर के संसार के सर्वश्रेष्ठ विद्वान महा-मेधावी त्यागीश्वर शंकर शूद्रों के यथार्थ शत्रु सिद्ध हो सकते हैं।" किन्तु—"शूद्रों के प्रति उनके अनुशासन, कठोर से कठोर होने पर भी, अपने समय की मर्यादा से दृढ़ संबद्ध हैं।" (चाबुक, पृ. ६९)

द्विज और शूद्र के साथ आर्य और अनार्य का भेद जुड़ा हुआ है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया आर्यों ने। उनके समाज को धक्का लगता था अनार्य भावों से। इसीलिए शूद्रों के लिए उन्होंने कठोर नियम बनाए। जिन दो-चार शूद्रों ने अपना कर्म छोड़ा, "उनके हृदय में श्रद्धा आयी थी, वे अनार्य से आर्य हुए थे, और आर्यों ने उन्हें अपनाया था।" (उप., पृ. ७४)

आर्य और अनार्य के मिलने से द्विज और शूद्र वाला समाज बना। एक कार्य और हुआ। मूल आर्य भाषा अनार्यों के संपर्क से विकृत हुई, उसके अपभ्रंश रूपों से संसार की तमाम भाषाएँ निकलीं। संस्कृत से अपभ्रंश की ओर भाषा में यह ह्रास वैसे ही हुआ जैसे समाज में सतयुग से कलियुग की ओर!

जोशीबंधुओं को वेदान्त का रहस्य समझाते हुए निराला ने लिखा, सबसे प्राचीन ग्रन्थ है वेद—"संसार की सब प्राचीन भाषाएँ जिनके शब्दों के अपभ्रष्ट रूप सिद्ध हो रही हैं—अनार्यत्व प्राप्त मनुष्यों के उच्चारण की अक्षमता से विकृत, पश्चात निष्क्रान्त हैं।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १९७)

भारतीय भाषाओं का विकास कैसे हुआ? संस्कृत का ह्रास ही इनका विकास है। ज्ञान के साथ है शक्ति। विशुद्ध ज्ञान नष्ट हो गया, दैव भाव नहीं रहे, तब देववाणी भी न रही। "जब अन्य वर्ण-संप्रदाय प्रौढ़ हो चले, तब संस्कृत को प्रहार मिलने लगा। वह बालपन में बदल गई, सुख-लालसा प्रधान हो गई, ओज खलने लगा, लालित्य की प्यास बढ़ चली।" (प्रबन्ध पद्म, पृ ४८)

भक्ति आन्दोलन के साथ भारत की आधुनिक भाषाएँ साहित्यिक रूप मे विकसित हुईं। इस भक्ति आन्दोलन में वे अन्य वर्ण-संप्रदाय शामिल थे जो प्रौढ़ हो चले थे; इन्हीं से संस्कृत को 'प्रहार' मिला। यह सारी प्रक्रिया ब्रह्मज्ञान के उच्च स्तर से डिगने के कारण सम्भव हुई। 'शंकर का महान् मस्तिष्क धर्म' यहाँ स्थायी न रह सका क्योंकि "उनका आदर्श इतना ऊँचा था कि उस समय की क्रमश: क्षीण होती हुई प्रतिभा उस उज्ज्वलता को धारण नही कर सकी।" (उप., पृ. २३२) वैष्णवधर्म के साथ 'भारतवर्ष में दुर्बलता खूब फैली'; लोग मस्तिष्क धर्म अर्थात् ज्ञान भूल गए; "हृदय-धर्म के कारण यहाँ के लोग सुखो की कल्पना में भूल गए। चारित्रिक पतन हुआ।" शूद्र ब्राह्मणों की बराबरी करने लगे। "अपढ़ रैदास भी जब ईश्वर प्राप्त करने लगा, और नाम की महत्ता का प्रचार हुआ, तब बस फिर क्या, माला जपना मुख्य और अध्ययन गौण हो गया।" (उप., पृ. २३३)

चाहे जिस रास्ते से चलिए, पहुँचिएगा इसी नतीजे पर कि शूद्रों पर द्विजों के शासन के बिना अध्यात्मवाद की रक्षा नही हो सकती! जो विचारधारा इस वर्ण-व्यवस्था और अन्य सामन्ती अवशेषो का विरोध करती है, वह पश्चिम से प्रभावित है, अभारतीय है। वेदान्त विप्लव का, ध्वंस का विरोधी है। जो व्यक्ति वेदान्त को नही मानता, "वह भारतीय कहलाने का दावा नही कर सकता।" (चाबुक, पृ ७१) क्रान्ति का तरीका पश्चिमी है। "यूरोप से भारतवर्ष की महत्ता मे इतना ही फर्क है। यूरोप में प्रजा-विप्लव से लेकर आज तक जितने भी परिवर्तन हुए है, सब-के-सब तोड़क ही रहे हैं। यानी 'इसे नष्ट करो, तो वह दुरुस्त होगा'—इस विचार के आधार पर हुए है। इस तोड़क भाव का प्राधान्य वहाँ इसलिए है कि वहाँ के लोग भोगवादी हैं।...यह देश त्यागवादी है।" (उप., पृ. ७१-७२)

वेदान्त की व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है, स्वयं निराला ने की है। यहाँ उस व्याख्या की चर्चा है जो शुद्ध अध्यात्मवादी है, जो ब्रह्म को अगोचर ज्ञान-मय और संसार को मिथ्या और मायारूप मानती है। यह दृष्टिकोण भारत को अध्यात्मवादी और यूरोप को भौतिकवादी कहने के बाद भारतीयता के नाम पर उस राजनीतिक कार्यवाही का विरोध करता है जिसका उद्देश्य सामंती व्यवस्था को बदलना है। व्यवहार में यह अध्यात्मवाद वर्णव्यवस्था का समर्थक, उच्च वर्णों, विशेषकर ब्राह्मणो के प्रभुत्व का समर्थक सिद्ध होता है। राजनीति के साथ वह भौतिक विज्ञान और इतिहास का विरोध करता है। वैज्ञानिक इतिहास-लेखन को जड़ बताकर स्वयं पुराण-कथाओ को प्रमाण के रूप मे प्रस्तुत करता है। वेदो के बाद का सारा इतिहास उसे पतन का इतिहास मालूम होता है, आधुनिक भारतीय भाषाएँ संस्कृत का विकृत रूप, भक्ति आन्दोलन ज्ञानच्युत जनता का भावुकतापूर्ण आन्दोलन लगता है। साहित्य में इस दृष्टिकोण की माँग है कि पाप पर पुण्य की विजय दिखाई जाए। मनुष्य की भावनाओ को दैव और आसुर भावों मे बाँटकर वह प्राचीन साहित्य को भी इसी पाप-पुण्य की कसौटी पर परखता है। इस सारे

चिन्तन का केन्द्र है शंकराचार्य जिन्होंने ब्रह्म को एकमात्र सत्य कहा और शूद्रों के प्रति कठोर नियम भी बनाए।

निराला के मन मे ज्ञान के प्रति, शंकराचार्य के प्रति परम आस्था थी। उनका देश-प्रेम उन्हें वेदान्त-ज्ञान पर, शंकराचार्य पर गर्व करना सिखाता था। साथ ही अपने सामाजिक परिवेश, पारिवारिक किसान-संस्कारों और अपने जीवन-संघर्ष से उन्हें क्रान्तिकारी चिन्तन की प्रेरणा भी मिल रही थी। देश-प्रेम की भावना उन्हें सिखाती थी कि पुरानी जर्जर समाज-व्यवस्था को मिटा दिया जाय, इस देश को आधुनिक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र बनाया जाय जिसमे अन्य समुन्नत देशो की तरह साहित्य और विज्ञान का विकास हो। इस भावना से प्रेरित होकर उन्होने वेदान्त की भिन्न प्रकार की व्याख्या भी प्रस्तुत की।

वेदान्त और विकासवाद

'भारत' मे प्रकाशित विख्यात 'वर्तमान धर्म' लेख मे निराला ने पहले वेदान्त की वह व्याख्या की जिसके अनुसार भारत अपने नाम से ही धर्मात्मा है अर्थात् प्रकाशमय, ज्ञानमय, आध्यात्मिक सत्ता है। दूसरी व्याख्या को 'विरोधी पक्ष' की संज्ञा देते हुए उन्होने यों प्रस्तुत किया : "दूसरा विरोधी पक्ष जो सृष्टि को सिद्ध करता है, उसमे भले और बुरे का संस्थान देखता है, या प्रतिभा अथवा ज्ञान के साथ अज्ञान का संयोग करता है जैसे पूरे एक रूप के लिए दिन और रात का जोड़ा, एक ही व्योम या शंकर मे पृथ्वी के दो गोलार्द्ध जुड़कर एक, अलग-अलग दिन और रात मे प्रसन्न।"

जहाँ विशुद्ध पूर्ण ज्ञान है, वहाँ सृष्टि सिद्ध नही की जा सकती। जो सृष्टि को सिद्ध करता है, वह विरोधी पक्ष है, वह ज्ञान के साथ अज्ञान, भले के साथ बुरे का अस्तित्व भी मानता है। सृष्टि विशुद्ध ज्ञान से हुई, वह इस मान्यता का खंडन करता है। 'साहित्यिक सन्निपात् या वर्तमान धर्म' लेख मे ऊपर उद्धृत किए हुए वाक्यों की टीका करते हुए उन्होने लिखा, "दूसरा विरोधी पक्ष भी एक है। वह केवल ज्ञान नही मानता। 'विरोध' शब्द के द्वारा—सा तु निर्वीज. इस अज्ञान-रहित एकमात्र ज्ञान का विरोध-प्रदर्शन हुआ, एकमात्र ज्ञान से वहिर्मुख होना हुआ;—विना इस विरोध के इस सृष्टि-तत्त्व में उतरा नही जा सकता; कुछ कहा-नही जा सकता। सृष्टि तत्व तव है जव भला और वुरा दोनों हैं। इसलिए दूसरा पक्ष एकमात्र ज्ञान का विरोधी हुआ, जो सृष्टि को सिद्ध करता है। इसका काम सृष्टि मे

भले और बुरे का प्रदर्शन, ज्ञान के साथ अज्ञान को जोड़ना है। यह पक्ष ज्ञान और अज्ञान दोनों को मिलाकर पूरे एक की व्याख्या करता है...बात यह कि सृष्टि में भला और बुरा दोनो होते हैं—'जड़-चेतन गुण दोषमय विश्व कीन करतार।'" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. ९३-९४)

अगोचर ब्रह्म का प्रतिपादन ही वेदान्त नही है। गोचर सृष्टि का प्रतिपादन भी वेदान्त है। इस सृष्टि में ज्ञान के साथ अज्ञान, धर्म के साथ अधर्म, पाप के साथ पुण्य जुड़ा हुआ है। इन दोनों के संघर्ष से ही प्रगति सम्भव है। इस धारणा को विरोधी पक्ष कहकर निराला ने 'वर्तमान धर्म' और उसकी टीका मे विस्तार से प्रतिपादित किया किन्तु यह धारणा उनके लिए नई नही थी वरन् उनके साहित्यिक जीवन के आरम्भ से उनके साथ थी। 'समन्वय' के पाँचवे अंक मे 'भारत मे श्री रामकृष्णावतार' जो लेख छपा, उसमे भारत को नाम से ही धर्मप्राण विज्ञापित करने के बाद उन्होने लिखा, "परन्तु, धर्म को मानते हुए हमें अधर्म को भी मान लेना चाहिए। क्योकि सृष्टि मे ऐसी कोई वस्तु नही, ऐसा कोई शब्द नही, जिसका विरोधी गुण न हो...अमृत का गुणगान कीजिए तो विष को भी अपनी तान छेड़ते हुए देखिए।" इस पक्ष के समर्थन में तुलसीदास की वही 'जड़ चेतन गुण दोषमय' उक्ति उद्धृत करके सृष्टि-तत्त्व के साथ प्रगति-सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए, उन्होंने लिखा, "हर एक व्यक्ति—हर एक शब्द का विरोधी गुण उसकी प्रगति का निर्णय कर रहा है। संसार स्वयं अपने शब्दार्थ द्वारा अपनी गतिशीलता दर्शा रहा है। प्रगति भले और बुरे के संघर्ष से ही होती है...यदि विरोधी गुणो का त्याग व नाश कर दिया जाय तो संसार की प्रगति रुक जाएगी।"

संघर्ष के बिना प्रगति नही, संघर्ष होता है विरोधी गुणों में। जहाँ सृष्टि है, वहाँ ज्ञान के साथ अज्ञान है, वही प्रगति है। यह निराला का विरोधजन्य गतिवाद है—द्वंद्व सिद्धान्त—जिसे वह दर्शन, साहित्य और राजनीति मे लागू करते है। 'समन्वय' का लेख उन्होने १९२२ मे लिखा, वहाँ दार्शनिक स्तर पर उन्होने वह सिद्धान्त प्रतिपादित किया। सन् '२३ मे 'मतवाला' प्रकाशित होने पर नटराज के चित्र के नीचे आवरण पृष्ठ पर उनकी ये पंक्तियाँ छपी :

अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला।
पीते है जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।

इस तरह अमृत-विष का द्वंद्व उन्होने साहित्य मे घटित किया। दो वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ ठाकुर की युक्तियो का खंडन करते हुए जनता की सघबद्ध राजनीतिक कार्यवाही के समर्थन में उन्होने 'चरखा' निबंध लिखा। पाप और पुण्य के बिना केवल पुण्य या ज्ञान से सृष्टि नही होती, इस सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए उन्होने लिखा, "सृष्टि पाप और पुण्य, जड़ और चेतन दोनो के योग से होती है, केवल पुण्य या केवल चेतन से कभी सृष्टि का कारखाना चल नही सकता। और यदि पुण्य की किसी अच्छी चीज की सृष्टि के लिए कविवर विधाता के इतने कृतज्ञ हैं, तो पाप की सृष्टि करने के लिए, उन्हे चाहिए कि वे उतने ही उनके अकृतज्ञ भी हों और

यहां जो यह सोच रखा है कि बुरे की सृष्टि करते है लोग और भले की खास विधाता, यह बिलकुल कमजोर खयाल है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १०-११)

अपने समर्थन मे वह तुलसीदास का सहारा फिर लेते है किन्तु इस बार उनका यह दोहा उद्धृत करते है :

> वन्दौ विधिपद रेणु, भवसागर जिन कीन यह।
> सन्त सुधा शशि धेनु, प्रकटे खल विष वारुनी।

इस तरह द्वंद्व सिद्धान्त उन्होने राजनीति मे लागू किया। चरखा चलाना बुरा है तो इसके लिए विधाता जिम्मेदार क्यो नही है? बुराई के लिए मनुष्य ज़िम्मेदार, भलाई के लिए विधाता—यह सिद्धान्त गलत है। 'बुरे की सृष्टि करते है लोग और भले की खास विधाता' इस वाक्याश मे निराला सतयुग से पतित होकर कलियुग तक पहुँचने की धारणा का खंडन करते है। इस सतयुग-कलियुग धारणा के अनुरूप यह मत है कि ईश्वर का अंश, मनुष्य की आत्मा निर्विकार है; माया मे फँसकर अपना मूल-स्वरूप मनुष्य भूल जाता है। मोह मे फँसने के लिए जिम्मेदार है मनुष्य; आत्मा के शुद्ध चिन्मय रूप के लिए जिम्मेदार है ईश्वर! मानना चाहिए कि यह भी बिलकुल कमजोर खयाल है।

वर्तमान धर्म की टीका मे निराला ने दार्शनिक स्तर पर उसी द्वंद्व सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या की। यह सिद्धान्त जड़ विज्ञान मे है, वेदान्त मे भी। एक जगह जड विज्ञान और वेदान्त का भेद मिट जाता है जब वे ससार की सत्ता स्वीकार करके उसकी गति और परिवर्तन का अध्ययन करते है। द्वंद्व सिद्धान्त के सहारे पौराणिक प्रतीको की व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा कि गणेश विघ्नो का नाश करते है और विघ्नेश—विघ्नो के स्वामी—भी है। शिव रुद्र है, भयंकर है, कल्याणकारी भी है। "यहाँ भी एक पूरे रूप के लिए वे विरोधी गुण मौजूद है। Negative (प्रतिकूल) और Positive (अनुकूल) दोनो एक पूरे आवर्त के लिए जरूरी है। यह जड़ विज्ञान से भी सिद्ध हो चुका है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ ९८)

इस दृष्टिकोण से विचार करने पर ब्रह्म की पूर्णता तभी सम्भव है जब वह चेतन होने के साथ जड़ भी हो, अभौतिक होने के साथ भौतिक भी हो। हिमालय "शिव और पार्वती का सम्मिलित रूप है···वहाँ जल है और जड भी···गति है और स्थिति भी--चेतन है और जड़ भी—इसलिए शिव है और पार्वती भी।"(उप., पृ. ९५) इससे आगे बढ़कर सत्य यह है कि जो जड़ है, वह सदा जड नही रहता; परिवर्तित होकर वह चेतन बन सकता है और इसी प्रकार जो चेतन है, वह परिवर्तित होकर जड़रूप हो सकता है। लिखा है, "शिव जड भी है और चेतन भी, और ऐसी ही पार्वती भी। जब वह जड रूप धारण करते है तब वह चेतन; जब वह जड होती है तब वह चेतन। हम देखते है, जब महेश्वर कर्म करते है तब पार्वती जड़ है—पर्वत से पैदा होने मे पार्वती का जड़त्व ही सूचित है, और जब पार्वती पार्वत्य हरी-भरी चेतन प्रकृति है, तब शिव शवमात्र उस प्रकृति के आधार। अपने ही भीतर हमे यह तत्त्व मिल जाता है, शरीर की जडता न हो तो बुद्धि की चेतनता

सिद्ध नहीं होती; पुनः लिंग-शरीर, जो जड़ है, कारण-महाकारण तक गतिशील है, अतएव चेतन।"

शिव जो चेतन-स्वरूप हैं, वह प्रकृति के आधार बनकर शवमात्र रह जाते हैं और प्रकृति जो जड़ कहलाती है, वह 'हरी भरी चेतन प्रकृति' हो जाती है। इसी तरह मनुष्य का शरीर जड़ है, बुद्धि चेतन। किन्तु यह बुद्धि भौतिक मस्तिष्क से बाहर कहीं नहीं रहती। इसलिए अन्त में शरीर भी चेतन ही सिद्ध होता है।

संसार में जो वस्तुएँ जैसी दिखाई देती हैं, वे सब मूलरूप मे वैसी नही है। जिन तत्त्वो से कोई वस्तु बनी है, उनमे परिवर्तन-परिवर्धन होने से, तत्त्वों का अनुपात बदलने से, उस वस्तु का रूप बदल जाता है। ब्रह्म के भीतर यह सारी भौतिकता विद्यमान है, यही उसका ऐश्वर्य है जो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ मे परिवर्तित कर देता है। "सत्य यह है कि जो जगतसेठ विश्वेश है, उनका वैभव कण-कण में व्याप्त है; जबकि सोना-चाँदी, हीरे-मोती आदि विशेष-विशेष उपादानों से बनते है, और कोई भी वस्तु भिन्न रूप में, भिन्न उपादान में बदल सकती है, तब किसी भी स्थान की विभूति को हम उन सब ऐश्वर्य-गुणो से युक्त कह सकते हैं—'जो चेतन को जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि, भजहि जीवते धन्य।'" (उप., पृ. ११२)

जड़ और चेतन के बीच की दुर्लघ्य खाई जब मिट जाती है तब आस्तिक-नास्तिक का भेद मिट जाता है। "आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का चरम परिणाम एक ही है। यही ज्ञान-काण्ड है, जिसमे आस्तिक और नास्तिक दोनों हैं।" (उप., पृ. १०३) आस्तिकवाद और नास्तिकवाद एक ही ज्ञान के दो पक्ष हैं तो सुर और असुर भी एक ही सत्ता के दो रूप हैं। जो सुर को बड़ा मानकर साहित्य में देवत्व की स्थापना के पक्षपाती है, उनका उपहास करते हुए निराला कहते हैं, "अब हे कपि, कहो, असुर और सुर मे कौन बड़ा है? दोनों की वह एक ही माता कहती हैं, दोनों मेरे लड़के हैं, दोनो बराबर हैं, फिर भी अपने-अपने बड़प्पन के लिए दोनों लड़ते-झगड़ते रहते हैं—दोनों बर्र-बर्र, टर्र-टर्र किया करते हैं। मेढक, अब कहो, मेढक कौन है—हम या तुम?" (उप., पृ. ११६)

जहाँ विरोधी गुणो का संघर्ष है, वहाँ संसार है, प्रगति है। आरम्भ में ज्ञान ही ज्ञान होता तो इतिहास का अर्थ होता केवल ह्रास किन्तु जब ज्ञान के साथ अज्ञान जुड़ा हुआ है तब इतिहास में ह्रास के साथ प्रगति भी होनी चाहिए। पहले लोग नंगे रहते थे; फिर उन्होने वस्त्र बनाना और उनसे शरीर को ढकना सीखा। यह असभ्यता से सभ्यता की ओर विकास हुआ। बनारस में उनके एक गुजराती मित्र ने पीताम्बर धारण करके भोजन करने की बात चलाकर प्राचीन संस्कृति और आचार-व्यवहार की पवित्रता पर गर्व प्रकट किया, तब निराला के मन में यह प्रतिक्रिया हुई: "पहले के आदमी पीताम्बर पहनकर भोजन करते थे या दिगंबर होकर, यह सब बतलाना बहुत कठिन है। पर ज़रा अक्ल का सहारा लिया जाय, तो दिगम्बर रहना ही विशेष रूप से सनातन धर्म जान पड़ता है, कारण

सनातन पुरुष के बहुत वाद ही कपड़े का आविष्कार हुआ होगा और इस प्रथा को माननेवाले सिद्ध नागे महाराजो की इस समय भी कमी नही।" ('काव्य साहित्य,' 'माधुरी', नवम्बर, '३०; चावुक, पृ. ४७)

सनातन पुरुष के दिगम्बरत्व के वाद कपड़े का आविष्कार—यह हुई वन्य जीवन से सभ्यता की ओर प्रगति, सामाजिक विकास के सिद्धान्त की स्वीकृति।

वेद संसार के आदिग्रंथ है, ज्ञानमय है, दिव्य भावों से पूर्ण है। किन्तु आसुर-भावो का नितान्त अभाव हो, तो जीवन और साहित्य की पूर्णता असभव है। वैदिककाल मे, महाभारतकाल मे देवत्व के साथ आसुर भाव भी रहे हैं। उपर्युक्त निवंध मे उन्होने लिखा था, "वेदों मे मादक सोमरस की जैसी महिमा है, प्राय: सभी लोग जानते है; और मद्य के प्रचार का कहना क्या? जिस गुजरात में अव ताड़ी के पेड़ कट रहे है, वहाँ द्वापर मे अवतारश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी के वंशज यादवों ने शराव पीकर एक ही दिन मे अपना संहार कर लिया।"

निराला भारतीय इतिहास पर जव विकासवादी दृष्टि से विचार करते है तव ह्रास या प्रगति के लिए उनकी कसौटी होती है शूद्रों के प्रति द्विजों का व्यवहार। श्रीकृष्ण ने सवसे वडा काम यह किया कि 'दृप्त क्षत्रियो की शक्ति का नाश करा दिया।' (वर्तमान हिंदू समाज, 'सुधा', जनवरी, ३०; प्रबंध प्रतिमा, पृ. २३१) इस शक्ति का नाश करके ही वह धर्मराज्य स्थापित कर सके। इसके वाद "ब्राह्मणों के मस्तिष्क मे स्पर्द्धा ने प्रचंड रूप धारण किया," तव "भगवान् वुद्ध आए। अवकी ब्राह्मणो के शस्त्र-शास्त्र भी उड़ा दिए गए। वैदिक सभ्यता ही न रह गई।" (उप.) स्त्री-पुरुषों और सभी वर्णो के लोगो के एक साथ रहने के कारण वौद्धों का पतन हुआ। शंकराचार्य ने वौद्धो को परास्त करके वेदो का उद्धार किया। वर्णव्यवस्था की फिर प्रतिष्ठा हुई। ब्राह्मणो मे आचार-निष्ठा थी किन्तु वे 'हृदयहीन थे'। (उप.) इसलिए शंकर का महान् मस्तिष्क धर्म स्थायी न रहा; रामानुज ने हृदय धर्म चलाया। 'महाप्रभु श्री चैतन्य देव का वैष्णव-धर्म उदारता का प्रशान्त महा-सागर है।' (उप., पृ. २३३) 'वैष्णव-धर्म के अन्तर्गत भी जाति-पाँति का भेद नही रहा।' (उप., पृ. २३२)

निराला व्यवस्थित रूप से भारत का सास्कृतिक इतिहास लिखने न वैठे थे। उनकी व्याख्या मे वहुत-सी खामियाँ है, विशेषकर यह कि विचारधारा मे जो परि-वर्तन होते है, उनकी सामाजिक भूमि अस्पष्ट रहती है। बुद्ध, शंकर और रामानुज की विचारधाराओं का महत्त्व अन्य प्रकार से भी समझा-समझाया जा सकता है। किंतु यहाँ इस वात पर ध्यान देना है कि भारतीय इतिहास उनके लिए ह्रास की गाथा नही है, उसमे प्रगति भी है, विचारधारात्मक संघर्ष है और इस संघर्ष का सम्वन्ध वर्णव्यवस्था की रक्षा या विनाश से है।

वौद्धो का विरोध शंकर ने ज्ञान से किया, कवियो ने अपनी सहृदयता से। "वौद्धो की सहृदयता को छापकर हृदय के उभय कूलो को प्लावित कर जाने के लिए संस्कृत के महाकविगण इस समय कितने प्रयत्न पर हैं!" ('नाटक', 'सुधा',

१ सितम्वर, '३३; संपा. टि.—१) महाज्ञान शंकर के वाद रामानुज के विशिष्टाद्वैत ने 'दार्शनिक मधु-वर्पण कर भगवद्भावना से हृदय को सिक्त' कर दिया। (उप.)

वेदों में ज्ञान है, हिन्दी कविता में भी ज्ञान है। कवीर का जोड 'संसार में दुर्लभ' है; वह 'हिन्दी साहित्य का ज्ञान काण्ड' है; 'ऐसी अच्छी-अच्छी उक्तियाँ वेदों को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलतीं।' ('सुधा', दिसम्वर, '३२; संपा. टि.—१) विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो—"भारत के सिद्धान्त से यथार्थ विश्व-कवि यही है—कवीर, सूर और तुलसी जैसे महाशक्ति के आधारस्तम्भ।" ('पंतजी और पल्लव'; **प्रबंध पद्म**, पृ. १११)

आधुनिक साहित्य, जिसमे अन्य लेखकों के साथ निराला भी है, स्वभावतः वहुत से प्राचीन साहित्य की तुलना में प्रगतिशील होगा ही।

वैदिक भापा के वाद आधुनिक भापाओ के प्रसार तक ह्रास ही ह्रास है या कही प्रगति भी है ?

वेदमन्त्र उद्धृत करने के वाद उन्होंने लिखा, "मैंने दिखलाया है, उद्धृत वेद-मन्त्र मे व्याकरण तथा भावों की कैसी खिचड़ी है—कोई नियम नही। संस्कृत वालों ने इस भाव को दुरुस्त रखकर व्याकरण तैयार किया, कहने का ढंग और मार्जित किया।" (**प्रवन्ध प्रतिमा**, पृ. ८७) वैदिक भापा में मार्जन की गुंजाइश थी; संस्कृत का प्रसार विकास का सूचक हुआ।

वुद्ध ने जव अपनी तपस्या से ज्ञान की ज्योति फैलाई, तव "शिक्षा का माध्यम रहा उस समय की प्रचलित भापा। साधारण जनों को यह वात वहुत पसन्द आयी। कुछ काल के लिए भारत में सुख-शान्ति का साम्राज्य हुआ।" (उप., पृ. २३१)

जव धर्म से धम्म अथवा धरम रूप वना, तव भापा का पतन हुआ या उत्थान ? संस्कृत के वाद भापाओ के क्षेत्र मे ह्रास होता गया है, इस धारणा का खण्डन करते हुए निराला ने लिखा, "कुछ लोगो का कहना है कि समाज ज्यों-ज्यों मूर्ख होता गया, अपभ्रष्ट शव्दों की संख्या भी त्यो-त्यों दिन दूनी और रात चौगुनी की कहावत के अनुसार वढ़ती चली गई। मै यहाँ इस मीमांसा से प्राणों की सहृदयता की मीमांसा अधिक पसन्द करता हूँ। मेरे विचार से अचिरता की गोद में प्रचलित शव्दों की भी समाधि होती है—कुछ ही काल तक किसी प्रचलित शव्द को मनुष्य-समाज के अधर धारण करते है। फिर उसके परिवर्तित रूप से ही उनका स्नेह अधिक हो जाता है। अथवा उस शव्द का अपर रूप धारण प्रेम के कारण ही हुआ करता है।" ('पंतजी और पल्लव'; **प्रवन्ध पद्म**, पृ. १०१) इसलिए " 'धर्म' की अपेक्षा 'धम्म' मे ही लोगों को अधिक आनन्द मिलता था," तो इससे भापागत ह्रास सिद्ध नहीं होता।

व्रजभापा में वहुत-सा साहित्य रचा गया; खडीवोली का विकास वहुत कुछ व्रजभापा के विरोध की दिशा में हुआ। यह व्रजभापा जातीय जीवन के अनुकूल कहाँ तक थी? निराला उसी निवन्ध में कहते है, "कारीगरी के विचार से व्रजभापा-

काल में शब्दों की जो छानबीन हुई है, जिस-जिस प्रकार के परिवर्तन हुए है, भाषा-विज्ञान उन्हे बहुत ही ऊँचे आसन पर स्थापित करता है। सहृदयता उनकी व्याख्या मे अपने हृदय का रस निःशेष कर देती है।" (उप.)

यही नही, जातीय जीवन जैसा ब्रजभाषा में व्यक्त हुआ वैसा संस्कृत मे भी नही। "यहाँ, जातीय साहित्य के प्राणों की चर्चा करते हुए, यह कहना पड़ता है कि ब्रजभाषा मे भाषाजन्य जातीय जीवन था, जो बुद्ध के बाद के संस्कृत कवि और दार्शनिको मे नहीं।" ('मेरे गीत और कला'; प्रबंध प्रतिमा, पृ. २७१) यदि यह प्रगति नहीं तो प्रगति फिर किसे कहेगे ?

ब्रजभाषा के जीवन-चिन्ह खडी बोली में रहने चाहिए। क्या संस्कृत के तत्सम रूप भरने से हिंदी की जातीय विशेषता पुष्ट होगी ? "आज भी खड़ीबोली का शुद्ध रूप बहुतो को खटकता है" (उप.)। उसे ब्रजभाषा के अनुकूल ढलना चाहिए। श, ण, व की ध्वनियाँ ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप नही है। ये वर्ण 'खडीबोली के प्राणो को खटकते हैं।' कालिदास संस्कृत के श्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। वह सौन्दर्य के महान् कवि हैं किन्तु भाषा के माधुर्य को पहचानने पर ही सौन्दर्य की श्रेष्ठ अभि-व्यंजना सम्भव है। कालिदास की भाषा श-ण-व-ल ग्रस्त है; वह जातीय जीवन के आन्तरिक भाषागत माधुर्य से अपरिचित है। "जहाँ भावजन्य सौन्दर्य है, जो और मधुर— हृदय के और पास तक पहुँचा हुआ है, वहाँ कालिदास उठ नही पाते।" (उप., पृ. २७७)

चाहे भाषा पर विचार कीजिए, चाहे साहित्य पर—निराला की अनेक स्थापनाओ से यह धारणा पूरी तरह खंडित हो जाती है कि भारत का सांस्कृतिक इतिहास केवल ह्रास की गाथा है।

इतिहास की गति पर इस ढग से विचार करने पर यूरोप और भारत के बीच की खाई दुर्लंघ्य नही रह जाती। निराला का एक तर्क यह है कि यूरोप के विजातीय भाव भारतीय साहित्य की प्रगति के लिए आवश्यक है, वैसे ही जैसे संसार की प्रगति के लिए दैव भावो के साथ असुर भाव आवश्यक हैं। यूरोप के लोग शराब पीते है, फारसी साहित्य मे शराब का वर्णन है। शराब पीना आसुर भाव का परि-चायक है किन्तु हिन्दी कविता की प्रगति के लिए सात्विक गुण का विरोधी यह भाव भी आवश्यक है। "नशे की नींद के बाद ही जागरण का आनन्द मिलता है और जागरण की ज़रूरत के साथ नींद की भी आवश्यकता सिद्ध होती है। इसी तरह इन दिव्य भारतीयों को कुछ प्रसन्न करने के लिए आसुर शराबी भाव भी आवश्यक है।" ('काव्य साहित्य', चाबुक, पृ. ४९)

उनका दूसरा तर्क यह है कि यूरोप ने जो भौतिक प्रगति की, वह वांछनीय है; भारत को वैसी प्रगति करनी चाहिए थी, उसे न कर सकने से उसका पतन हुआ। 'वर्तमान हिंदू समाज' में उन्होंने लिखा कि महाराज विक्रमादित्य के युग मे जब 'संस्कृत फूली-फली कही जाती है,' 'अशिक्षा का काल' शुरू हो गया था। "अगर यह बात न होती, तो ग्रीक तथा रोमन सभ्यता के साथ-साथ भारतवर्ष की आधि-

भौतिक सभ्यता का विकास ही देख पड़ता ।" फिर प्राचीन भारतवासियो पर व्यंग्य करते हुए तर्क करते है कि यूनान में सौंदर्य की देवी वीनस की पूजा होती थी, संभव है 'इसलिए भारत को इसमे आसुरी भाव मिले हो ।' शायद यूनान से चन्द्रगुप्त को हेलेन के अतिरिक्त कुछ न मिला हो या उसने और उसकी तरह के दो-चार और लोगो ने 'सेना-निवेश या व्यूह-रचना आदि सामरिक नियम-कायदे सीखे हों ।' फिर भी भारत को जितना सीखना चाहिए था, उसने नही सीखा । "भारत ने रोम की राजनीति, दृढ़ व्यवस्था, मार्गो की सरलता—बड़ी-बड़ी प्रशस्त सड़कें बनवाना भी नही सीखा ।"

यहाँ इस बात पर बहस नहीं है कि निराला ने रोमन और भारतीय सभ्यता में जो वैषम्य दिखाया है, वह सही है या गलत; बहस इस बात पर है कि भौतिक सभ्यता अपने में महत्त्वपूर्ण है या नही । अध्यात्मवाद, दिव्यता, आर्यत्व आदि के नाम पर जो लोग देश की भौतिक प्रगति में बाधा देते है और दूसरो की सभ्यता से कुछ भी ग्रहण करना राष्ट्रीय आत्म-सम्मान के विरुद्ध समझते हैं, उन्हे लक्ष्य करके निराला कहते हैं, "किसी प्रकार का भौतिक सम्बन्ध, जिससे एक जाति अपर जाति से आदान-प्रदान करती है, राज्य की व्यवस्था बदलती तथा अनेक प्रकार के उत्कर्ष करती है, नही स्थापित किया । यह सब अज्ञान, पारस्परिक विरोध तथा व्यर्थ का स्वाभिमान जान पड़ता है। दूसरे मनुष्य को मनुष्य न समझना, यह वृत्ति बहुत पीछे मुसलमानों के शासन काल मे भी भारतवर्ष के लोगों की थी, और अब तक फीसदी ९८ लोगों की यही धारणा बनी हुई है ।"

भारत पर तुर्क-आक्रमणो के युग की चर्चा करते हुए इसी प्रसंग मे निराला कहते है, "दूसरे देशों मे गुप्तचर नही घूमते, वहाँ की राज्य-व्यवस्था की कोई खबर नही आती । म्लेच्छों से आर्यगण भला क्या सीखते ? उनके पास सीखने लायक था ही क्या ? भारत के सामाजिक पतन का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा ? जब शत्रु घर मे घेर लेता था, तब यहाँ के वीर तलवार उठाते थे । रहते संसार में थे पर उससे लापरवाह रहकर ही जीना चाहते थे। ये कुल बातें अशिक्षा तथा अगवस्था की सूचक हैं। इस औद्धत्य के जमाने में यहाँ की शूद्रशक्ति किस तरह प्रपीड़ित थी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।" (**प्रबंध प्रतिमा**, पृ. २३६)

ज्ञान संसार के प्रति उदासीन रहने मे नही है । ज्ञान है संसार को, संसार मे अपनी स्थिति को ठीक-ठीक समझने में; उस समझ के अनुसार कर्म करने से ही देश स्वतन्त्र रहकर अपनी संस्कृति का विकास कर सकता है। इतिहास और भौतिक जगत् के प्रति यह दृष्टिकोण अपनाने पर शूद्रो के प्रति द्विजो का व्यवहार न्यायपूर्ण नही लगता, वरन् विदेशी आक्रमणकारियों की सफलता का वह मुख्य कारण जान पड़ता है ।

निराला का भारत-यूरोप सम्बन्धी तीसरा तर्क यह है कि संसार के सभी देश एक-दूसरे से संबद्ध हैं, हवा की तरह विचार भी देशो की सीमाएँ लाँघकर एक

स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं, इसीलिए मनुष्य को राष्ट्रीय संकीर्णता से ऊपर उठकर उस स्तर पर विचार करना चाहिए जिस पर अनेक सास्कृतिक धाराएँ मिलकर एक मानव संस्कृति का निर्माण करती है। निराला के चिन्तन मे जैसे विरोधी गुणो के संघर्ष वाले सिद्धान्त का महत्त्व है, वैसे ही विभिन्न देशों की परस्पर संबद्धता के इस सिद्धान्त का। वास्तव मे यह द्वंद्व सिद्धान्त का ही दूसरा पक्ष है जो संसार की तमाम वस्तुओं-प्रक्रियाओं को एक ही भौतिक यथार्थ का परस्पर संबद्ध अंग मानकर उन्हे देखता-परखता है।

ज्ञान होने पर भारतीय जन राष्ट्रीय सकीर्णता से मुक्त होकर विश्वनागरिक बनते हैं। "भारत देश के लिए भी यही बात है। वह मिट्टी और जल के द्वारा तमाम देशों से जुड़ा हुआ है। ज्ञान इन जड़ और चेतन उभय प्रकारो के संयोग को देखकर सबके साथ सहयोग प्राप्त करता है। देश के लोग ज्ञान से ही उभय प्रकारो का संयोग देखकर, मिलकर आर्थिक और पारमार्थिक उन्नति कर सकेंगे।" **(प्रबंध प्रतिमा, पृ. ९३)**

'वर्तमान धर्म' की टीका में निराला ने भारत के ज्ञानमय रूप की व्याख्या करते हुए लिखा कि वह मिट्टी और जल के द्वारा दूसरे देशो से जुडा हुआ है; यह भौतिक सबद्धता आर्थिक और पारमार्थिक दोनों क्षेत्रों में भारत-यूरोप के सहयोग का आधार है।

रावण के दस सिर क्यो है? इसीलिए कि दसों दिशाओं से रावण संबद्ध है। मेघनाद मेघो से सम्बद्ध है। मेघनाद ही नही; "बादलो से भी हम युक्त है, अन्यथा उनकी गर्जना हम सुन नही सकते।" (उप., पृ. ११७) यहाँ भी विभिन्न देश-स्थित वस्तुओ की भौतिक सम्बद्धता की चर्चा है।

अन्य प्रसंग मे तद्भव शब्दो की व्याख्या करते हुए निराला कहते है, "प्रत्येक गति के साथ, प्रत्येक विवर्तन के साथ तमाम संसार संयुक्त है...यों भी एक जगह के साथ दूसरी जगह का अविच्छेद सम्बन्ध बना हुआ है।" ('एक बात', 'सुधा', नवंबर, '३२; प्रबंध पद्म, पृ. ४८)

इन उदाहरणो से प्रमाणित है कि निराला के तर्कशास्त्र मे विभिन्न देशो की परस्पर सबद्धता का सिद्धान्त एक दृढ़ आधारभूत स्थापना के रूप मे विद्यमान है। यह स्थापना संसार के भौतिक अस्तित्व की स्वीकृति पर ही निर्भर है।

भारत-यूरोप सम्बन्धी निराला का चौथा तर्क यह है कि विदेशी साहित्य के सभी भाव भारत के लिए विजातीय नही हैं, अंग्रेजी में अनेक लेखक ऐसे हो चुके हैं जो भारत-प्रेमी थे, या जिनका सौन्दर्यबोध भारतीय अभिरुचि के अनुकूल था। उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्वागत-योग्य है, हिन्दी लेखको के लिए अनुकरणीय है।

"हमारे काव्य-साहित्य की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए, तभी उसका कल्याण हो सकता है। पश्चिमी कवियो के हृदय में पूर्व के लिए अपार सहानुभूति उमड चली थी। उनका यही साहित्यिक पौरुष तथा प्रेम आज संसार भर मे फैला

हुआ है। वर्ड्सवर्थ और उनके मित्र कोलरिज ने पूर्व का वर्णन किया है।··· इंग्लैण्ड के कवियों में पूर्व के साथ शेली का प्रगाढ़ प्रेम देख पड़ता है। पूर्व के रहस्य-वादियों तथा सन्तों को वह चाव से याद करता है···कीट्स भी पूर्व की छवि से मुग्ध है। भारत का उल्लेख उसने भी किया है। भारत के अमर स्नेह में डूबा हुआ है। पूर्व देशों का इनमें सबसे ज्यादा ज्ञान वायरन को था···यह सब पूर्व के लिए इंग्लैंड का पद्य-प्रवाह है। पर हमारे साहित्य में क्या हो रहा है—यह भारतीय है, यह अभारतीय, असंस्कृत। नस-नस में शरारत भरी, हजार वर्ष से सलाम ठोंकते-ठोंकते नाक में दम हो गया, अभी संस्कृति लिए फिरते हैं।" ('काव्य-साहित्य'; 'माधुरी', नवम्बर' ३०; च.वुक, पृ. ५४-५५)

यहाँ विजातीय असुरभावों को मिलाने या उनसे संघर्ष करने का सवाल नही है। यह मानव-संस्कृति की वह सामान्य भूमि है जहाँ पूर्व और पश्चिम की विचार-धारा एक होती है।

दो वर्ष वाद उन्होने 'सुधा' (दिसम्बर, १९३२) में 'साहित्य का विकास' शीर्षक टिप्पणी लिखी जिसमे उन्होंने अंग्रेजी साहित्य के उत्कर्ष का एक कारण यह वताया कि उसके रचयिता विदेशी सभ्यता से परिचित थे। शेली की क्रान्ति-कारी विचारधारा, उसके स्वतन्त्रता-प्रेम की प्रशंसा करते हुए निराला उस जगह पहुँचते हैं जहाँ साहित्य क्रान्ति की प्रेरक शक्ति वन जाता है और स्वयं क्रान्ति-कारी आन्दोलन से प्रेरणा ग्रहण करता है।

"शेली तो भारत को वहुत ही प्यार करता था। अंग्रेजी राजधर्म के खिलाफ़ उसने कितनी ही पंक्तियाँ लिखी हैं···'Hell is a city much like London' इस तरह की पंक्तियों से उसने जो विचार-स्वातंत्र्य दिखलाया, आज वैसी विशेषता और स्वतन्त्रता का सभ्य यूरोप पक्षपाती है···वात यह है कि यही साहित्यिक विशालता, उदारता, स्वातंत्र्य जाति के भीतर पैठकर लोगों को तेजस्वी करते हैं। रूस की स्वतन्त्रता से पहले उसका साहित्य है। उन महावीर साहित्यिकों के एक-एक रक्त-कण से सहस्र-सहस्र वीर साहित्यिक समझदार पैदा हुए।

"हमारी हिंदी को ऐसी ही भावना से युक्त साहित्यिकों की आवश्यकता है। सत्य की रक्षा के लिए साहित्यिक अपने प्राणों का वलिदान कर दे। सत्य वही है, जो मनुष्य मात्र में है। ज्ञान में हिंदू, मुसलमान नही। विस्तार ही जीवन है। फैल-कर अपनी प्रतिभा, कर्म, अध्ययन, उदारता से समस्त ब्रह्माण्ड को अपनाना चाहिए। साहित्यिक उत्कर्ष और मुक्ति का यही मार्ग है। हिंदी में वहुत करना है, वहुत पड़ा है, वहुत पीछे हैं हम।"

विजातीय भावों से संघर्ष करने का सवाल नही। अपने देश में क्रान्तिकारी चिन्तन को विकसित करना, यूरोप की क्रान्तिकारी विचारधारा से उसका सम्वन्ध जोड़ना है। यह विचारधारा, यहाँ और वहाँ सामाजिक आन्दोलनों से जुडी हुई है। जिस सत्य को लेकर ये आन्दोलन हो रहे हैं, वह मनुष्य मात्र मे है। निराला इस सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता से ही हिन्दी जातीयता का सम्वन्ध जोड़ते है; 'वहुत करना

है, बहुत पड़ा है, बहुत पीछे हैं'—उनके मन में यह भाव पैदा होता है। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता जातीय भावना का तिरस्कार न करके उसे मार्जित और पुष्ट करती है। निराला सन् '३२ मे यह टिप्पणी लिखते हुए जहाँ पहुँचे थे, वहाँ उस समय के नए और पुराने लेखको को पहुँचने में अभी देर थी। निराला की यह टिप्पणी हिन्दी के तत्कालीन प्रगतिशील चिन्तन का निचोड है।

भारतीय साहित्य में निराला की यह युग-प्रवर्तक विचारधारा उनकी सूक्ष्म दार्शनिक दृष्टि, उनकी अचूक तर्क-पद्धति का परिणाम है जो संसार को गतिशील, विरोधी गुणों के संघर्ष को गति का कारण, विभिन्न देशो की परस्पर संबद्धता, मनुष्य की महत्ता, उसकी इहलौकिक सत्ता को स्वीकार करती है।

ब्रह्म और प्रकृति

वेदान्त दर्शन की प्रमुख समस्या है माया की व्याख्या।

कामायनी की आलोचना करते हुए निराला ने लिखा, "वास्तव मे सृष्टि-तत्त्व समझने के लिए माया की व्याख्या सबसे उत्तम है, यद्यपि हजारों वर्षों से आज तक बहुत कम लोगों की समझ में यह आयी है।" ('सुधा', अक्तूबर, १९३७)

बहुत कम लोगों की समझ में आयी है, इसका कारण यह है कि माया प्रवंचना मात्र नही है। वह ब्रह्म से अभिन्न है, शक्ति है, यह सारा संसार उसी का खेल है। वह उतना ही व्यापक है जितना ब्रह्म। ब्रह्म को सच्चिदानंद कहते हैं; सच्चिदानंद की व्यापकता से माया को अलग नही किया जा सकता। ब्रह्म यदि सूर्य है तो माया उसकी किरणें है। कठिनाई तब पैदा होती है जब दार्शनिक सूर्य को उसकी किरणो से अलग करके देखना चाहता है, जब वह सच्चिदानंद से ब्रह्म के समान व्यापक-शक्ति को निकालकर, केवल ब्रह्म को पाना चाहता है। एक व्यापकता से वह दूसरी व्यापकता को कैसे अलग करे? निरपेक्ष, अनादि, अनन्त सत्ता एक ही हो सकती है। वह चाहे ब्रह्म हो, चाहे शक्ति। यदि दोनो अभिन्न है तो उन्हे एक ही नाम से पुकारना चाहिए—माया और ब्रह्म, इन दो शब्दों की आवश्यकता क्या है?

शक्ति की व्यापकता के बारे मे निराला कहते है, "ब्रह्म की व्यापकता के साथ शक्ति की भी व्यापकता सिद्ध होती है। ब्रह्म और उसकी शक्ति दोनो अभिन्न है। सूर्य से उसकी किरणो को अलग नही किया जा सकता। ब्रह्म का जो स्वरूप

सच्चिदानंद है उसमें शक्ति की भी सत्ता विराजमान है। सत्, चित् और आनन्द विचार में भिन्न होते हुए भी वास्तव में एक है, सर्वव्यापी हैं, अतएव ब्रह्म के लक्षण हैं। किन्तु साथ ही, जिन अर्थों द्वारा वे सर्वव्यापी है वे अर्थ सर्वव्यापिनी शक्ति की ही सूचना देते हैं।" (संग्रह, पृ. ११)

समस्या यह है कि जिस सूर्य को उसकी किरणों से अलग नहीं किया जा सकता, उसे किरणों से अलग करके ही देखना है। स्वाभाविक है कि हजारों साल से माया की व्याख्या बहुत कम लोगों की समझ में आयी है।

इस समस्या का एक समाधान यह हो सकता है कि ब्रह्म को मायातीत कहने के बदले उसे मायामय कहा जाय। **सिया राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी।** विश्व में अकेले राम नही व्यापे; उनके साथ सीता भी है। किन्तु निराला की व्याख्या में महापुरुष वे हैं जो 'शक्ति के अहाते के बाहर भी चले गए हैं'; उन्होंने 'शक्ति की सीमा को पार करने के लिए' अनेक उपाय भी बताए हैं। (चयन, पृ. १५३) इस स्थापना से मालूम होता है कि शक्ति उतनी व्यापक नहीं, जितना ब्रह्म। यदि ब्रह्म के समान व्यापक हो तो शक्ति की सीमा पार करने की बात न कही जाय। तुलसीदास ने लिखा—**भव भव विभव पराभव कारिणि। विश्व विमोहिनि स्ववश विहारिणि।** इस तरह वह शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करते हैं किन्तु निराला कहते हैं, उनका (तुलसीदास का) महत्त्व इस बात में है कि "उससे भी बढ़कर पूर्ण अवस्था में ब्रह्म में लीन होकर पूर्णत्व की प्राप्ति करते हैं, जहाँ न संसार है, न मैं, और न तुम; है बस सच्चिदानन्द रूप।" (संग्रह, पृ. २९)

निराला के चिन्तन मे जो अन्तर्विरोध है वह यह कि एक ओर वह शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानकर उसे ब्रह्म के बराबर दर्जा देते हैं, दूसरी ओर वह उसकी सीमा पार करके ब्रह्म में लीन होने की कल्पना द्वारा उसे ब्रह्म से भिन्न, सीमित और घटकर मानते हैं।

'वर्तमान धर्म' की व्याख्या करते हुए ज्ञान और शक्ति को समकक्ष बतलाते हुए निराला कहते हैं, "ज्ञान और शक्ति, दोनो का परिणाम अनादि है, दोनों बराबर हैं, रूपकों में आकर अपना-अपना अर्थ प्रकट कर ब्रह्म की तरह निर्लिप्त।" प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २०३)

यहाँ अभिन्नता की जगह भिन्नता है, अद्वैत की जगह द्वैत है, एक अनादि की जगह अनादि हैं। इस अन्तर्विरोध से निकलने का एक अन्य मार्ग है—प्रकृति अद्वैत। सत्ता एक है—प्रकृति। वही अनादि, अनन्त और निरन्तर परिवर्तनशील है। ब्रह्म वगैरह कुछ नहीं।

कवि गुरुभक्तसिंह भक्त के प्रकृति निरीक्षण की प्रशंसा करते हुए निराला ने लिखा कि जो लौकिक और गोचर है, वही प्रकृति नही है; जो अव्यक्त, लोकोत्तर, अगोचर है, वह भी प्रकृति है। "जहाँ प्रकृति का स्वर सूक्ष्मतम, अश्रव्य, मौन, चिर समाप्ति में पारवाली आस्था प्राप्त करता है—जिसे लोकोत्तरानंद कहते हैं, वह

भी, प्रकृति की क्षीणतम अव्यक्त अवस्था है। स्वर, काव्य, रूप आदि में बँधी प्रकृति की प्रत्येक संज्ञा इसी अप्रकट अनादि स्थिति से संसार मे गोचर होती है और फिर अपने सुख-दुख का ससरण पूरा कर पूर्व स्थिति में विलीन हो जाती है।" ('सुधा', जुलाई '३३)

जो अप्रकट और अनादि है, वह भी प्रकृति है। जो प्रकट और वाह्य है, वह भी प्रकृति है। साहित्य मे मनुष्य के मन से लेकर पशु-पक्षी, नदी-पर्वत तक जितनी वस्तुओ और व्यापारों का वर्णन किया जाता है, वे सव प्रकृति के अन्तर्गत हैं। निराला का यह प्रकृति-अद्वैत अपने भीतर जड़ और चेतन दोनो को समेट लेता है।

'नाटक-समस्या' नाम के निवन्ध मे निराला शक्ति का तादात्म्य ब्रह्म से नही, अन्धकार से स्थापित करते है। ससार के रंगमच पर अनेक मोहक दृश्य दिखाने के वाद शक्ति 'अज्ञात तम मे अन्तर्धान होकर तादात्म्य प्राप्त करती है।' (प्रवंध प्रतिमा, पृ. ६३) सहज ही निराला का गीत याद आता है—**कौन तम के पार रे कह**। यह तम साधारण अंधकार नही है। यह मूल तत्त्व है जो शक्ति रूप में परिवर्तित होकर प्रवाहित होता है। वेदान्ती कहते है, शक्ति ब्रह्म मे—अनन्त प्रकाशमय ब्रह्म में—लीन होती है; निराला कहते हैं कि वह अनन्त, अनादि अन्धकार मे लीन होती है।

इस अन्धकार का दूसरा नाम है आकाश। आकाश के भीतर जड और चेतन, स्थूल और सूक्ष्म, पदार्थ और अर्थ सबकी स्थिति है। इसी आकाश मे अन्धकार है, इसी मे प्रकाश। 'एक बात' नाम के निवन्ध में लिखा है, "आकाश सभी पदार्थों या केवल अर्थों को रूपरेखा, शब्द और अर्थ देता है, क्योकि अवकाश के भीतर ही सान्त सन्निविष्ट मिलता है। आकाश नभ है, और प्रभा भी। गोद मे सूर्य को लेकर प्रभा अपने नभपति की प्रतिष्ठा की परिचायिका।" (**प्रवन्ध प्रतिमा**, पृ. ४५-५६)

निराला जिसे तम कहते है, आकाश कहते हैं, उसी को शून्य भी कहते है। "उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है।" (**प्रवन्ध पद्म**, पृ. १) 'एक वात' नाम के निवन्ध मे जो भूमिका आकाश की है वही भूमिका 'शून्य और शक्ति' में शून्य की है। सभी अर्थ और पदार्थ आकाश मे हैं, वैसे ही संसार के समस्त व्यापारों, वस्तुओं का उद्भव, उनकी स्थिति और प्रलय शून्य में ही सम्भव है।

किसी भी वस्तु के उद्भव से पहले शून्य है, उसकी प्रलय के वाद फिर शून्य है। "गणित की संख्या की तरह ससार के जीव और तमाम भावनाएँ दोनो तरफ से शून्यों से दवे हुए हैं।" (उप.) उद्भव से पहले शून्य, प्रलय के वाद शून्य। दोनो के वीच मे है वस्तु की स्थिति। दो 'नही' के बीच में एक 'है' दवा हुआ है। इसलिए कहा कि संसार के तमाम जीव, समस्त भावनाएँ—मूर्त और अमूर्त समस्त व्यापार —दो तरफ से शून्यो से दवे हुए है।

इन दो शून्यों के बीच में प्रकृति है। प्रकृति अपने चिरन्तन गतिशील रूप में दृष्टिगोचर न हो तो यह संसार न हो, केवल शून्य हो। निराला कहते है, "केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किए हुए है, दूसरे तरीके से, शून्य की ही व्याख्या करने में तत्पर।" (उप.)

जो शक्ति संसार को शून्य से अलग किए है, वही संसार के माध्यम से उसकी व्याख्या भी करती है। मूल तत्त्व है, एक—शून्य अथवा आकाश। शून्य पहले शक्ति बनता है, शक्ति फिर पदार्थ रूप में प्रत्यक्ष होती है। पदार्थ और शून्य के बीच में एक व्यवधान है—शक्ति। इस तरह शून्य संसार से अलग है, शक्ति के कारण। साथ ही संसार शक्ति का ही प्रत्यक्ष रूप है, इसलिए वह शक्ति द्वारा शून्य से जुड़ा हुआ भी है।

> कौन तम के पार—रे कह।
> अखिल पल के स्रोत, जल-जग
> गगन घन-घन धार—रे कह।

तम के परे कुछ नहीं है। अखिल विश्व की प्रवहमानता का स्रोत यही तम है। गगन की घनधारा बनकर प्रवाहित होता है। आधुनिक विज्ञान में जिसे फील्ड कहते हैं, वह निराला का तम, शून्य अथवा आकाश है। जिसे एनर्जी कहते है, वह निराला की शक्ति है। जिसे मास कहते है, वह निराला का पदार्थ या संसार है। आइन्स्टाइन ने सिद्ध किया कि मास एनर्जी का ही परिवर्तित रूप है। अनेक वैज्ञानिक यह मानते हैं कि एनर्जी के प्रवाह के लिए फील्ड चाहिए और यह फील्ड ही परिवर्तित होकर एनर्जी बनता है। कुछ वैसा ही सम्बन्ध निराला के शून्य, शक्ति और संसार का है।

शक्ति विश्वरूप मे यों प्रत्यक्ष होती है। "क्षण-क्षण विश्व पर अपार ऐन्द्र-जालिक शक्ति परियों से पंख खोलकर कलियों मे खिलती, केशर-पराग से युक्त प्रकाश में उड़ती, रंगे कपड़े बदलती, दिशाओ के आयत दृगों में हँसती, झरनों में गाती पुनः अज्ञात तम में अन्तर्धान होकर तादात्म्य प्राप्त करती है।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. ६३) शक्ति तम का परिवर्तित रूप है। स्वभावतः संसार-रूप में प्रत्यक्ष होने के बाद वह फिर उसी तम मे लीन हो जाती है।

यह शक्ति संचालित कैसे होती है? चेतन ब्रह्म के स्पर्श के बिना वह गति-शील कैसे होगी? निराला कहते हैं, जैसे यंत्र का आविष्कार बाहर से पहले वैज्ञा-निक के मन मे होता है, वैसे ही शक्ति का सचालक भीतर है।

लगता है, घूम-फिरकर वह फिर उसी चेतन ब्रह्म के ठौर पर लौट आए। किन्तु 'शून्य और शक्ति' निबन्ध मे चेतन 'हम' की बड़ी विचित्र व्याख्या है।

यन्त्र का आविष्कार मनुष्य करता है। मनुष्य का मन यन्त्र की उपज नहीं है। यन्त्र जड़ है; मनुष्य का मन चेतन है। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध क्या है?

निराला कहते है, "यंत्रकार के जिस 'हम' मे तैयार करने की शक्ति है, उसके उसी 'हम' की भौतिक शक्ति यन्त्र शक्ति में काम कर रही है, क्योकि 'हम' के

पंचतत्त्वों से अलग कोई छठा तत्त्व यन्त्र में नही लगा।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ३) मनुष्य का मन अभौतिक नही है; वह भूत का सूक्ष्म रूप है किन्तु है भौतिकता के अन्तर्गत। यन्त्र और मनुष्य के मन का परस्पर सम्बन्ध यह है कि 'हम' की भौतिक शक्ति यंत्र शक्ति मे काम करती है। जो पंचतत्त्व यन्त्र मे है, वही 'हम' मे। भेद है शक्ति के स्थूल और सूक्ष्म रूपो में। गुरुभक्तसिंह भक्त के काव्य पर निराला की टिप्पणी मे प्रकृति के जिस सूक्ष्मतम रूप का उल्लेख है, वह इस संदर्भ मे ध्यान देने योग्य है। प्रकृति का वह स्वर जो अश्रव्य है, मौन है, जो चिर समाप्ति में पारवाली आख्या प्राप्त करता है, जिसे लोकोत्तरानंद कहते है, 'वह भी प्रकृति की क्षीणतम अव्यक्त अवस्था है।' भेद व्यक्त और अव्यक्त, शक्ति के स्थूल और सूक्ष्म रूपों में है किन्तु चेतना और पदार्थ हैं एक ही शक्ति सूत्र से बँधे हुए।

छायावादी लेखको मे केवल निराला ऐसे हैं जिन्होने 'हम' की 'भौतिक' शक्ति का उल्लेख किया है। अधिकाश विचारक जड और चेतन का द्वैत भाव छोड़ नही पाते। मार्क्सवादी लेखक मैटर और स्पिरिट मे भेद करते हैं। उनके मैटीरियलिज्म और उनके विरोधियों के आइडियलिज्म मे इस भेद को लेकर कोई अन्तर नही है। अन्तर है मैटर और स्पिरिट को प्राथमिक और गौण मानने में। मैटीरियलिस्ट के लि ए मैटर पहले है, स्पिरिट बाद को; आइडियलिस्ट के लिए स्पिरिट—आइडिया, चेतना—पहले है, मैटर—वस्तु, भूत, पदार्थ—बाद को है। किन्तु मैटर और स्पिरिट दो अलग चीजे है, इस बारे मे मतभेद नही है।

'शून्य और शक्ति' मे निराला यह द्वैत भाव मिटा देते है। यत्नकार के 'हम' की शक्ति भौतिक है; यंत्र की शक्ति भी भौतिक है। जड़ और चेतन दोनों एक ही भौतिक शक्ति के विभिन्न रूप हैं जो पचतत्त्व मनुष्य मे है, वही यंत्र मे। 'हम' के पंचतत्त्वो से अलग कोई छठा तत्त्व यत्र मे नही लगा। आगे कहते हैं, "इस 'हम' का आविष्कार और वैज्ञानिक प्रगतियो की नाड़ी वंद एक बात है। 'हम' मरे हुए मन मे शून्य के सिवा कुछ नही; तब विज्ञान का आधार भी शून्य ही हुआ।"

सबसे पहले ध्यान जाता है इस बात पर कि विज्ञान का आधार शून्य है और वैज्ञानिक का मन भी शून्य है। एक ही आकाशतत्त्व वैज्ञानिक के मन से लेकर उसके समस्त आविष्कारो तक मे सचालित है। शून्य अथवा आकाश के परे कुछ नही है।

मनुष्य का मन यंत्रो का आविष्कार करता है, यंत्र मन का आविष्कार नही करते। प्रकृति के दो रूपों का यह सम्बन्ध है, एक है संचालक, दूसरा है संचालित। यदि मन का भी आविष्कार हो जाय तो वैज्ञानिक आविष्कारों का क्रम भी बन्द हो जाय। मन और पदार्थ—चेतन और अचेतन—के द्वंद्व के बिना प्रगति नही है। इसलिए निराला ने कहा—'हम' का आविष्कार और वैज्ञानिक प्रगतियों की नाड़ी वंद एक बात है। चेतन और अचेतन का द्वंद्व एक ही प्रकृति अद्वैत के अन्तर्गत है।

'हम' से शून्य का सम्बन्ध जोड़ते हुए निराला एक अद्भुत बात कहते है, 'हम' मरे हुए मन मे शून्य के सिवा कुछ नही। मन मरा हुआ क्यो है ? जो मन यंत्र का

आविष्कार कर रहा है वह अगर मुर्दा है तो क्या फिर यंत्र जिन्दा है ?

संसार में जहाँ भी सक्रियता है, वहाँ शक्ति है। इस शक्ति की एक निष्क्रिय पृष्ठभूमि है—आकाश, शून्य। हम जिस सक्रियता से परिचित होते है, वह शक्ति—प्रकृति—की है, उसकी निष्क्रिय पृष्ठभूमि शून्य—आकाश—की नही। शक्ति की जीवन सक्रियता के मुकाबले निष्क्रिय शून्य—आकाश—मुर्दा है। आकाश सर्वत्र है, उसके बिना शक्ति की गतिशीलता असम्भव है। मनुष्य की चेतना यदि शक्ति है, तो उसके लिए भी आकाशरूपी पृष्ठभूमि अनिवार्य है। मन का एक मरा हुआ रूप है—वह है आकाश। मन का एक जीवत रूप है—वह है सक्रिय चेतना। जीवंत चेतना का आधार है मुर्दा आकाश। इसलिए कहा, 'हम' मरे हुए मन में शून्य के सिवा कुछ नही। शिव और पार्वती के रूपक में निराला यही सत्य देखते हैं। "जब पार्वती पार्वत्य हरी भरी चेतन प्रकृति हैं, तब शिव शवमात्र, उस प्रकृति के आधार।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. ९६) चेतन प्रकृति—पार्वती—के आधार है शिव, जो शवमात्र हैं।

एक गीत मे लिखा :

> ज्ञान-तन्तु, तुम, जग अजान मन—
> शव-शिव-शक्ति महान। (गीतिका, पृ. ४७)

जो ज्ञानमय शक्ति है, उसका आधार है अजान-मन, शिव, जो शवरूप है। इसी अर्थ में निराला ने कहा—'हम' मरे हुए मन मे शून्य के सिवा कुछ नही।

इसलिए : "पृथ्वी शून्य, सूर्य शून्य, चन्द्र शून्य, तारे शून्य, जलकण शून्य, चिनगारी शून्य, हवा का आवर्त शून्य, अणु-परमाणु शून्य, स्वेद अंड-पिंड शून्य, प्रकृति का प्रत्येक बीज शून्य।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ४)इस शून्य से परे कुछ नही है। **कौन तम के पार—रे कह**। तम के पार कुछ नही है। यह निराला का प्रकृति अद्वैत है। कहना न होगा कि शून्य सापेक्ष अर्थ में ही शून्य है, वह सत्ता का पूर्ण अभाव नही है। वह शक्ति का आधार है; सत्ता का पूर्ण अभाव किसी चीज का आधार नहीं बन सकता। शून्य को शक्ति का आधार मानकर निराला उससे अपनी कला का सम्बन्ध जोड़ते है।

"इस शून्य के आधार पर सृष्टि अपनी सृज में ही बाँकपन या कला पैदा कर रही है। इसलिए सृष्टि सब रूपों में टेढ़ी है। युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, दिन भिन्न-भिन्न अपना विशिष्ट सौन्दर्य रखते है। प्रत्येक व्यक्ति की तिर्यक् दशा। यही कला और सौन्दर्य है।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ४)

निराला के प्रकृति-अद्वैत से कला की सार्थकता सिद्ध होती है; उसी से मनुष्य के इतिहास, उसके समस्त विकास की सार्थकता भी सिद्ध होती है। जहाँ केवल शून्य है, वहाँ विकास नहीं है। जहाँ पूर्ण सच्चिदानंद ब्रह्म है, वहाँ भी विकास नही है। विकास वहाँ है जहाँ शून्य शक्ति बनता है, फिर शक्ति संसार के समस्त पदार्थों, व्यापारों मे अपना चमत्कार दिखाती है। सांख्य दर्शन से अपने प्रकृति-अद्वैत का संबंध जोड़ते हुए निराला ने लिखा, "विकास को देखने या करने के अस्तित्व में

शक्ति का ही अस्तित्व है। शास्त्रानुसार शून्य और शक्ति अभेद हैं। फर्क इतना ही है कि जब शून्य मे स्थिति है, तब शक्ति का ज्ञान नही, क्योकि 'वह नही काँपता' सिद्ध है, और जब शक्ति का परिचय है, तब शून्य का ज्ञान नही, क्योंकि 'वह काँपता है', सिद्ध है।" (उप., पृ. ४)

जहाँ कंपन है, गति है, वहाँ शक्ति है। जहाँ कंपनहीनता, गतिहीनता है, वहाँ शून्य है। जहाँ शक्ति का अस्तित्व है, वहाँ विकास है, जहाँ शून्य है, वहाँ विकास का भी अभाव है।

द्वंद्व के बिना विकास नही। यह द्वंद्व छिड़ा है प्रकृति के दो रूपो मे। एक प्रकृति है मनुष्य के भीतर, दूसरी प्रकृति है मनुष्य के बाहर। इन दोनों के चिरन्तन संघर्ष का परिणाम है मानव जीवन का विकास।

मनुष्य का शरीर प्रकृति है, उसका मन, उसका गुण, उसका चरित्र—वह भी प्रकृति है। मनुष्य अपने गुण से दूसरों को वश मे कर लेता है। "जहाँ मन को वश मे करने की शक्ति होती है, वहाँ रूप की अदृश्य महाशक्ति का प्रकाश है, ऐसा समझना चाहिए।" ('सुधा', दिसम्बर '३३; सपा. टि.—१) जहाँ प्रकृति है, वहाँ रूप है; रूप चाहे मन का हो, चाहे शरीर का, है वह रूप ही।

मनुष्य के इस प्रकृति रूप मे बाह्य प्रकृति का संघर्ष ठना हुआ है। हीवेट रोड, लखनऊ की पगली भिखारिन 'प्रकृति की मारो से लड़ती हुई' मुरझा गई है। (**चतुरी चमार**, पृ. ४०) 'गरमी की तेज़ लू और बरसात की तीव्र धार पगली और उसके बच्चे के ऊपर से पार हो गई।' (उप., पृ. ४६) यह बाह्य प्रकृति है, निर्दय, कठोर, मनुष्य के दुख-सुख का विचार जिसे छू नही गया। इससे लड़ रही है दूसरी प्रकृति जो मनुष्य रूप मे प्रत्यक्ष होती है। "लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नही सोचता।" (उप., पृ. ४१) निराला के लिए पगली भिखारिन 'महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप' (उप., पृ. ४२) है। लाहौर काग्रेस मे गांधीजी के रूप मे 'अपार महाशक्ति' प्रत्यक्ष हुई। ('सुधा', फरवरी '३०; संपा. टि.—३) प्रकृति मारती है, प्रकृति जिलाती है। प्रकृति की मारों से पगली मुरझा गई, राणा प्रताप ने जब अकबर को पत्र लिखा, तब 'प्रकृति के विरोध-सघर्पो से' उनका मन पराजित हो गया था। ('सुधा', १ अक्तूबर '३३; संपा. टि.—१) किंतु गाधीजी ने आमरण अनशन किया; "प्रकृति ने उनकी रक्षा की।" ('सुधा', १६ अगस्त '३३; संपा. टि.—४)

प्रकृति मारती है, प्रकृति जिलाती है; इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उसके नियमों को पहचाने, उनके अनुसार काम करे। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर साम्राज्य-वाद और समाजवाद का संघर्ष हो रहा है। साम्राज्यवाद प्रकृति के नियमों को न मानकर समाजवाद के अस्तित्व का बराबर विरोध करता है। राष्ट्रसंघ मे राज-नीति का ऐसा चक्र चला कि "रूस की तरफ से सबके सब वक्र रहे। परन्तु प्रकृति किसी राजनीतिज्ञ या राष्ट्रसंघ की ब्याही हुई हिन्दू बीबी नही—वह—क्या कहते हैं नायिका-भेद मे उसे— वह नायिका है, जो स्वतन्त्र रहती है।" ('सुधा', अक्तूबर

'३४; संपा. टि.—४)

प्रकृति मनुष्य की इच्छाओं से स्वतन्त्र है। सामाजिक विकास के नियम, मनुष्य की इच्छाओ से स्वतन्त्र, अपना कार्य करते रहते हैं। इसलिए साम्राज्यवादियों को मजबूर होकर समाजवादी शक्ति—सोवियत संघ—को मान्यता देनी पड़ी।

हिन्दू समाज में उच्च वर्णो ने निम्न जनों पर अत्याचार किए। परिणाम यह हुआ कि "प्रकृति ने दृप्त हिन्दू समाज को जैसी मार, उसके दर्प की प्रतिक्रिया के रूप से, दी है, उससे अव सव लोग वरावर जमीन पर आ गए हैं।" ('सुधा', जून '३०; संपा. टि.—१०) इस स्थिति को मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति से वदल नहीं सकता। विवेक का तकाजा है कि भारतवासी वदली हुई परिस्थिति के अनुसार कार्य करें। परिवर्तन के नियमों को न समझकर जो पुरानी व्यवस्था से चिपके हुए हैं, वे विवेकहीन, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध, निराधार, इतिहास की दृष्टि से मृत समाजव्यवस्था की रक्षा कर रहे हैं। "इस प्राकृतिक स्थिति को कि उसने (प्रकृति ने) तमाम भारतवासियों को लाकर एक ही ज़मीन पर खड़ा कर दिया है, उसके भेद-भाव को दूर कर दिया है, न समझने वाले लोग कट्टरता की ही वुनियाद मज-वूत करते हैं, न कि वुद्धि की; और चूँकि इस तरह का प्रचलन हिन्दू समाज में है, इसलिए हिन्दू समाज किसी वुद्धि तथा विवेक के आश्रय पर नहीं खड़ा, किन्तु कट्टरता ही उसके इस विभिन्न अस्तित्व का एकमात्र आधार है। यदि वे लोग समाज को विवेक के अनुसार कायम रखें, तो कुल उलझनें सुधर जाएँ, और वरा-वर ज़मीन पर रहकर अपने-अपने गुणो तथा कर्मो के अनुसार एक वार सव लोगो को तरक्की करने के समान अधिकार प्राप्त हों, समाज का आमूल संस्कार हो जाए।" (उप.)

इतिहास की माँग है समाज का आमूल संस्कार। इस माँग को स्वीकार करना, उसके अनुसार आचरण करना विवेकशीलता का परिचय देना है। जो समाज विवेक की जगह कट्टरता के आधार पर कायम है, उसका समर्थन करनेवाले कट्टरता की वुनियाद मज़वूत करते है। परिणाम यह होता है कि कट्टर रूढ़िवादियों और आमूल संस्कार—सामाजिक क्रान्ति के पक्षपातियों के वीच संघर्ष छिड़ जाता है। निराला का प्रकृति-अद्वैत सामाजिक संघर्ष से उदासीन न होकर दार्शनिक स्तर पर उसकी अनिवार्यता सिद्ध करता है।

इस संघर्ष में एक समुदाय की शक्ति क्षीण होती है, दूसरे की शक्ति वढ़ती है। किसकी शक्ति वढ़ेगी, किसकी घटेगी—इसका फैसला इतिहास करता है। हिन्दू समाज मे ऊँचे और नीचे वर्णो के वीच वहुत फासला था। इस पर ध्यान देने से मालूम होगा कि "जो प्रकृति एक मौलिक शक्ति देना चाहती है, जव अनेकानेक विवर्तनों से वह जीर्णता को धूलिसात् करती रहती है, तव वह चिरकाल से उस जाति को सविशेष उपकरणो के भीतर से तैयार करती रहती है।" (प्रवन्ध-प्रतिमा, पृ.७६) इस नियम के अनुसार एक ओर "प्रकृति ने वर्णाश्रम धर्म के सुविशाल स्तंभो को तोड़ते-तोड़ते पूर्ण रूप से चूर्ण कर दिया है" (उप.), दूसरी ओर "प्रकृति ने स्वयं

ही शूद्रों के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया।" (उप., पृ. २३६) "प्रकृति ने ही साम्य की स्थापना कर दी, सब जातियों के एक ही कार्य तथा एक ही अधिकार कर दिए।" (उप, पृ. २३७)

प्रकृति-अद्वैत की सीख है कि समाज मे जिस साम्य स्थापना के लिए परिस्थिति तैयार हो चुकी है, उसे विवेकशील जन स्वीकार करें। न करेंगे तो पुरानी व्यवस्था के साथ खुद भी मिट जाएँगे।

माया की व्याख्या करना मुश्किल है। हजार साल से यह व्याख्या बहुत कम लोगो की समझ मे आई है।

यदि माया प्रवंचना है तो ससार प्रवचना है, जीवन और साहित्य प्रवंचना है। यदि माया ब्रह्म के आश्रित नही है तो सूर्य को उसकी किरणों से अलग करके देखना आवश्यक नही है। प्रकृति अद्वैत के अनुसार मूल तत्त्व एक है—शून्य। वह परिवर्तित होकर शक्ति बनता है, शक्ति परिवर्तित होकर ससार बनती है। यह संसार गतिशील है, उसकी गतिशीलता के—सामाजिक विकास के—वस्तुगत नियम है। मनुष्य विवेक से इन नियमो को पहचानता है। जो कट्टरपंथी हैं, वे इन नियमो को न पहचानकर विवेकशील जनो का विरोध करते है।

निराला का यह प्रकृति-अद्वैत उनके ब्रह्म वाले अद्वैत से ज्यादा भरा-पूरा, अधिक विज्ञानसम्मत, सामाजिक और साहित्यिक प्रगति को समझने के लिए अधिक उपयोगी है। माया और ब्रह्म के चिरन्तन अन्तर्विरोध से वह मुक्त है। समाज और साहित्य के प्रति निराला के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को वह तर्कसंगत ढंग से सार्थक सिद्ध करता है।

सामाजिक परिवर्तन और साहित्य

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की प्रगति के साथ साहित्य मे भी व्यापक परिवर्तन हुए। हमारा प्राचीन साहित्य महान् था किन्तु आधुनिक साहित्य, अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओ के साहित्य से पिछड़ा हुआ हो, यह बात राष्ट्रीय आत्म-सम्मान के प्रतिकूल है। आधुनिक साहित्य को न केवल अंग्रेजी साहित्य के वरन् भारत के प्राचीन साहित्य के भी समकक्ष होना है। सामाजिक क्षेत्र मे धार्मिक भेद-भाव, वर्णव्यवस्था का उत्पीड़न आदि सामन्ती अवशेष खत्म करके जैसे प्रगतिशील विचारक एक नये भारत का निर्माण करना चाहते थे, वैसे ही साहित्यिक क्षेत्र मे दरबारी काव्य-परम्परा की सीमाएँ तोड़कर लेखक आधुनिक साहित्य को नये युग

की विचारधारा के अनुसार समृद्ध और समर्थ वना देना चाहते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोवेल पुरस्कार मिला, इससे लेखकों मे नया आत्मविश्वास पैदा हुआ। पुराना साहित्य ही श्रेष्ठ नही है, नये साहित्य को विश्व-मान्यता प्राप्त हुई है, जो कार्य बँगला में हुआ है, वह अन्य भाषाओ में भी हो सकता है, इस भावना से प्रेरित होकर प्रथम महायुद्ध के वाद वाले युग मे भारतीय लेखक साहित्य-रचना मे प्रवृत्त हुए।

रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी कवि के रूप मे प्रसिद्ध हुए। हिन्दी के छायावादी कवि भी अपने को रहस्यवादी कहते थे। नये साहित्य के विरोधी कहते थे, ये सव संसार के माया-मोह मे फँसे हुए है, शृंगार की कविताएँ लिखते हैं, इनमें कुछ दुश्चरित्र भी हैं, फिर भी ब्रह्मज्ञान छाँटते हैं; वास्तव मे ये सव भारतीयता के विरोधी है, कविता मे ये जो भाव और विचार व्यक्त कर रहे हैं, वे यूरोप से उधार लिए हुए है या फिर बँगला की नकल है और चूंकि बँगलावालो ने खुद अंग्रेज़ी से वहुत-सा माल उधार लिया है, इसलिए हिन्दी की छायावादी कविता नकल की नकल है।

निराला ने इस विरोध का जवाव दिया। जिन मान्यताओं के आधार पर उन्होने यह जवाव दिया, उनका गहरा सम्वन्ध उनके दार्शनिक चिन्तन से है।

रूप-रस-गंध वाला संसार सुन्दर है। कवि इसके सौन्दर्य का चित्रण करे या उसे माया समझकर उसकी तरफ से अपना ध्यान हटा ले?

निराला ने साहित्य मे शृंगार-वर्णन का औचित्य सिद्ध करने के लिए वैष्णव कवियों का सहारा लिया। हिंदी और बँगला के ये कवि भक्त थे, फिर भी उन्होने नारी के सौन्दर्य की पूजा करके सिद्धि प्राप्त की। निराला मानते हैं कि उनकी यह शृंगार-साधना संन्यासी की साधना से भिन्न है, फिर भी "किसी अंश मे भी इस शृंगार के साहित्य को वेदान्त साहित्य के उपलब्ध ज्ञान के मुकावले मे न्यून नही रखा।" ('सुधा', नवम्बर '२९; संपा. टि.—१)

यह तर्क उनके लिए था जो भक्तों की नैतिकता के कायल थे किन्तु निराला उस शृंगार के समर्थक न थे जो भोगमुक्त हो। भक्त कवि राधा-कृष्ण के शृंगार का वर्णन करते थे किन्तु प्रत्यक्ष रूप में स्वयं भोगी होने का दावा न करते थे। निराला की स्थिति इन भक्तो से भिन्न थी। वह स्वयं भोगी थे और भोग को उचित ठहराने के लिए उनके पास दार्शनिक युक्ति भी थी। संसार मे विजय प्राप्त करने के लिए वीरता आवश्यक होती है। शृंगार भाव वीरता का विरोधी है। किंतु संसार मे विरोधी गुण के अस्तित्व के विना प्रगति असंभव है। इस तरह जो भाव वीरता का विरोधी जान पड़ता है, वह उसका प्रेरक और समर्थक भी वन सकता है।

निराला ने उन लोगो का मजाक उड़ाया जो शृंगार-रस के विरोधी थे, जो कवि-सम्मेलनों में शृंगार-रस की कविता सुनकर 'अपने रासभ-रव द्वारा, चिरकाल के प्रतिष्ठित ब्रह्मचर्य की घोषणा करने लगते हैं,' जो समझते हैं कि इस तरह की कविता सुनने भर से 'देवियों के पाक दामन मे सियाह धव्वे' लग जाएँगे, इसलिए "धीर, शान्त, उज्ज्वल, नम्र ब्रह्मचारिणी कुमारियो और एक पति-व्रताचरण-

परायणा सुधा-स्राविणी साक्षात् लक्ष्मी-सरस्वतियों को, उनके धैर्य-स्खलन का विचार कर स्थान ही स्खलित कर देने का महामंत्र दे डालते हैं।" निराला ब्रह्मचर्य सम्बन्धी परपरागत धारणाओ का मखौल उड़ाते है; स्पष्ट ही यह वेदान्त की परिचित भूमि नही है।

फिर वह तर्क करते है कि "वीर-रस का विरोधी शृंगार-रस ही प्रतिक्रिया के रूप मे अपने शत्रु को सजग किए रहता है।" इस धारणा को पुष्ट करने के लिए वह उदाहरण प्रकृति से देते हैं, "जिस तरह दिन को सिद्ध करने के लिए रात्रि की आवश्यकता है और रात्रि को सिद्ध करने के लिए दिन की, उसी तरह वीर के लिए शृंगार की और शृंगार के लिए वीर की आवश्यकता है। यदि इनमे से एक न रहा तो दूसरा रह ही नही सकता। यही रहस्य है और यही सत्य है।"

यह सत्य वेदान्त के सत्य से भिन्न है, यह रहस्य रहस्यवाद के रहस्य (अथवा प्रकाश) से भिन्न है।

एक तर्क और है। गृहस्थो का धर्म त्यागियो के धर्म से भिन्न है किन्तु ज्ञान पर दोनो का समान अधिकार है। गृहस्थ संत-साहित्य से प्रभावित हुए किन्तु मुग्ध सर्प की तरह उन्होने स्वतन्त्रता खो दी। इसका कारण यह है कि लोग ज्ञान-रहित कर्मों को गृहस्थ धर्म समझने लगे जैसे 'आग में घी जलाकर वायु-शोधन' करना। नवीन साहित्य 'जीवनोपाय को सरल तथा सुगम' करता है; वह 'संसार के लोगो को एक ही पदार्थ तथा ज्ञान के सूत्र से बाँध सकता है।' स्वभावत. वह संत-साहित्य से भिन्न होगा। "सतो के जितने परित्यक्त विषय रहे हैं, उनमे भी सत्य तथा शिव को प्रत्यक्ष कर उनका चित्र अंकित कर सकता है।" ('सुधा', जुलाई '३०; संपा. टि.—४)।

यहाँ निराला संत-साहित्य से—और इसलिए वेदान्त से—नये साहित्य की भिन्नता सूचित करते है। जो सतो के परित्यक्त विषय थे, वे सब नया साहित्य मे सत्य और शिव की प्रतिष्ठा के लिए अंकित हैं। वेदान्त और नये साहित्य मे यह अन्तर है।

प्रकृति सुन्दर है, उसका सौन्दर्य साहित्य मे चित्रण करने योग्य है। मनुष्य-जीवन है तो भोग भी है। जो कहते है कि कवि भोगी होकर ज्ञानी नही हो सकता, वे सिद्ध करें कि वे संसार मे भोग के बिना जीवित है। रूप-रस-गंध-स्पर्श के संसार मे रहना भी भोगी बनना है। यदि सच्चरित्रता का यह अर्थ किया जाय कि मनुष्य संसार से मुक्त होकर ब्रह्म मे लीन हो गया, तो जो भी ससार मे रहते है, वे दुश्चरित्र साबित हुए। "अनेक रस-रूपों को भोग करना, पाँच ज्ञानेन्द्रियों की भूमि मे उतरकर पंच कर्मेन्द्रियो का सहारा लेना, अर्थात् चरित्रहीन होना है।" ('सुधा', अगस्त '३२; सपा. टि.—२) तर्क यह है कि वेदान्त की शुद्ध भूमि पर रहते हुए साहित्य-रचना सभव है ही नही।

प्रश्न रूप-रस-गंध के संसार के चित्रण का ही नही था, न शृंगार के सामान्य चित्रण का ही प्रश्न था। आदर्शवादी विचारक आपत्ति इस बात पर करते थे कि जो

भोगी हैं, वे अपने को ज्ञानी कहते हैं; साहित्य में पुण्य का, नैतिक आदर्शों का चित्रण होना चाहिए, ये कवि पाप का चित्रण करते है जो मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है। इस सम्वन्ध में निराला ने लिखा कि केवल ब्रह्म उत्थान और पतन से परे है, "वह जीव-कोटि में नही आ सकता"; जहाँ तक जीव का सम्वन्ध है, "केवल उत्थान नहीं हो सकता, उसके साथ पतन लगा हुआ है।" (उप.) यहाँ वेदान्त के ब्रह्म को स्वीकार करते हुए भी निराला साहित्य को संसार से संवद्ध और वेदान्त की शुद्ध भूमि से दूर मानते हैं।

साहित्य में यथार्थ जीवन, यथार्थ मनुष्य का चित्रण होना चाहिए। जो लोग मनुष्य को खुदा या शैतान के रूप में देखते है वे अज्ञानी है। ये सब धर्म की रूढ़ भावनाएँ हैं। जव मनुष्यों ने 'और भी वृहत् सत्य के लिए' प्रयत्न किये, तव ये रूढ़ भावनाएँ मिट गईं। यदि मनुष्य के मुँह को पाप की स्याही रँग दे, तो उसका यथार्थ रूप न दिखाई देगा, "उसी तरह धर्म की सफेदी भी रँग देती है।" ('सुधा', नवम्बर '३२; संपा. टि.—१) जहाँ कला है, वहाँ संसार अवश्य होगा, जहाँ संसार है, वहाँ पुण्य के साथ पाप, उत्थान के साथ पतन, सत् के साथ असत् अवश्य होगा। "केवल सत्साहित्य का समर्थन हो नही सकता। केवल सत्-सत् लिखने से सृष्टि अधूरी रह जाएगी, दूसरों को वह कभी जँच नही सकती, उसमे कला का अभाव रहेगा।" (उप.)

उन दिनों गांधीवाद से प्रभावित अनेक लेखक साहित्य मे सदाचार की प्रतिष्ठा पर जोर दे रहे थे। दिल्ली में प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के मंच से प्रेमचन्द ने सदाचार की आवश्यकता पर भापण दिया। 'विशाल भारत' ने—निराला के अनुसार, 'आत्मपक्ष की पुष्टि' के लिए—भापण के अंश उद्धृत किए। इस आदर्श-वाद का खण्डन करते हुए निराला ने लिखा, "ऐसा आदर्शवाद किसी भी सुवोध विचारक को मान्य न होगा। क्योंकि वह इस तरह का है—केवल खाओ, प्रकोष्ठ साफ़ न करो।" जो लोग प्राचीन भारतीय साहित्य को अपने आदर्शवादी चौखटे में जड़कर उसकी व्याख्या करते थे, उनसे असहमति व्यक्त करते हुए निराला ने लिखा, "भारत के साहित्यिक ऐसे आदर्शवादी नही थे, सीता, सती, राम, शिव आदि उच्च से उच्च चरित्रो में इसीलिए उन्होंने दाग दिखलाएं है।" जो लोग वेदों और पुराणों का हवाला देकर आदर्श नैतिकता का चित्रण आवश्यक सिद्ध करते थे, निराला ने उनका भी विरोध किया। ऐसे लोगों में सनातनी और आर्य-समाजी दोनों थे। निराला ने वेदों और पुराणों की आदर्शवादी व्याख्या करने वालों के वारे मे लिखा, "सनातनी और आर्यसमाजी दोनो पुराणों और वेदों के यथार्थ साहित्य से दूर हैं। क्योंकि दोनों के शव्द अपने-अपने साहित्य के विज्ञापन के शव्द हैं। जिनमें प्रतिकूल कुछ भी नही रहता, केवल अनुकूल, केवल फ़ायदे की वातें।" (उप.)

यही साहित्य में आस्तिक और नास्तिक वाला सवाल भी उठता है। आदर्श-वादियों के अनुसार सारी नैतिकता का स्रोत है ईश्वर; जो नास्तिक है, वह अनैतिक

भी होगा। जिसे सत्साहित्य की सृष्टि करनी है, उसे नैतिक और आस्तिक होना चाहिए। निराला ने इस तर्क का उत्तर यह कहकर दिया कि "कलाकार के लिए नास्तिक और आस्तिक वाला सवाल नही···जो कलाकार है, वह आस्तिकता और भक्ति की कलाएँ जानता है। वह नास्तिकता की भी कलाएँ खीचता है।" (उप.)

जहाँ कला है, वहाँ सत् और असत् से मिश्रित जीवन की समग्रता है। जो साहित्यकार जीवन को उसकी समग्रता मे न स्वीकार करेगा, उसकी कला भी अधूरी रहेगी। वास्तविक सत्साहित्य वही है जिसमें असत् भी है। निष्कर्ष यह कि "सत्साहित्य की सृष्टि के लिए जीवन की सभी दिशाएँ आवश्यक है, क्योंकि कोई गिर जाता है, तो उसके गिरने के कारण है, वे साहित्य के लिए उतने ही जरूरी है, जितने उठने वाले कारण।" (उप.)

यहाँ तक निराला ने भोग और त्याग, सत् और असत्, उत्थान और पतन मे भेद किया किंतु इससे आगे वढ़ते हुए वह ऐसी तर्कभूमि पर पहुँचते है जहाँ सत् और असत् भिन्न होते हुए भी अभिन्न हो जाते है। यथार्थ को गहरी निगाह से देखने पर जो असुन्दर है, असत् है, पाप है, वह भी सुन्दर, ग्राह्य और जीवनदायी वन जाता है। लिखा है—"आत्मा से जव कि भले और बुरे का निराकरण नही हो सकता, एक ही आत्मा समुद्र मे दोनों अमृत और विप की तरह मिले हुए है—तव उस विष की परिव्यक्त सघन नीलिमा भी राम की श्याम शोभा वनती है।" ('सुधा', १ अक्तूवर '३३; संपा. टि.—१)

यूरोप में धार्मिक-नैतिक रूढियो के विरुद्ध, शेक्सपियर से मैक्सिम गोर्की तक, साहित्य मे जिस मानवतावाद का विकास हुआ, उसकी यह वहुत अच्छी, संक्षिप्त और तर्कसंगत व्याख्या है। प्रथम महायुद्ध के वाद प्रवुद्ध भारतीय साहित्यकार जिस लक्ष्य की ओर वढ़ रहे थे, उसका यहाँ स्पष्ट निर्देश है।

विरोधी गुणो के संघर्ष का द्वंद्व सिद्धान्त अपनाकर निराला ने साहित्य के सम्बन्ध मे जो मान्यताएँ स्थिर की थी, वे आदर्शवाद की विरोधी और साहित्य मे यथार्थवाद की पोपक थी। ससार को माया मानकर भी ये मान्यताएँ स्थिर की जा सकती थी, किन्तु उस स्थिति मे निराला को स्वीकार करना पड़ता कि साहित्य में समाज और मनुष्य के मन का जो चित्रण किया जाता है, वह माया है। इस माया-चित्रण को सार्थक करने के लिए उनके पास एक तर्क भी है कि यदि सासारिक सौन्दर्य के चित्रण के साथ ब्रह्म-चर्चा भी कर दी जाय तो साहित्यकार को माया और राम दोनो प्राप्त हो जाएँगे। 'मेरे गीत और कला' मे उन्होने 'जुही की कली' की जो व्याख्या की है, उसमें उनकी ब्रह्म और माया को मिलाने वाली यह तर्कपद्धति देखी जा सकती है। "कली सोने से जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप मे, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या-सी सामने आती है या नही, देखें···'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य मे उतरी हुई यह तस्वीर है या नही, परीक्षा करें।"

किन्तु निराला यह अच्छी तरह जानते थे कि 'जुही की कली' जैसी रचनाओ मे 'सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या' गौण है, मुख्य है श्रृंगार-वर्णन।

द्वंद्व-सिद्धान्त को अपनाकर उन्होंने जो साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ स्थिर कीं, वे उनके प्रकृति-अद्वैत के अनुकूल है। प्रकृति ही विभिन्न अवस्थाओं और रूपो में एकमात्र सत्य है, उसके सत्य होने से ही मनुष्य की समस्त सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यवाही सार्थक होती है। उनके इस प्रकृति-अद्वैत से साहित्य-सम्बन्धी दो मान्यताएँ फूटती है। एक यह कि भाषा, साहित्य और सामाजिक जीवन में मनुष्य को ऐश्वर्य चाहिए, उसे पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए; दूसरी यह कि साहित्य और सामाजिक जीवन का लक्ष्य है मनुष्य के दुख दूर करना, सुखी मानव समाज की स्थापना करना। ये दोनों मान्यताएँ परस्पर-विरोधी हो, यह आवश्यक नहीं। मनुष्य के दुख दूर किए जाएँगे तो समाज भौतिक रूप से समृद्ध होगा ही। किन्तु निराला के चिंतन मे ये दोनों मान्यताएँ परस्पर विरोधी होकर ही सामने आती हैं। कारण यह कि वह जानते है कि वह जिस ऐश्वर्य की बात कर रहे है, वह भावी समाज मे प्राप्त होने वाला लक्ष्य नहीं, वर्तमान समाज-व्यवस्था मे सुलभ होने वाला ऐश्वर्य है। यह ऐश्वर्य बड़े-बड़े राजाओं और जमीदारों को प्राप्त है। वर्तमान समाज में ऐश्वर्य प्राप्त करना है तो उन मानव-सम्बन्धो का औचित्य स्वीकार करना होगा जिनके रहते हुए ही यह ऐश्वर्य कुछ व्यक्तियों को सुलभ होता है। निराला का मन यह स्वीकार नही कर पाता, इसीलिए दोनो मान्यताएँ परस्पर टकराती हैं।

'बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार-वर्णना' लेख में उन्होने सोलह सहस्र व्रजबालाओं के साथ एक ही कृष्ण की एक ही समय 'संभोग, शृंगार क्रीड़ा' को— "प्रकृति के राज्य में संसार के नेत्रों ने आज तक जितने आश्चर्यकर विषय प्रत्यक्ष किए हैं", उनमें—सबसे अधिक विस्मयकर माना। इसे पुरुष और प्रकृति का विहार कहकर उचित सिद्ध किया जा सकता है किन्तु निराला भोग की सार्थकता या व्यर्थता पर विचार करते हैं; "अत्यंत सांसारिक धरातल पर, पुरुष और प्रकृति का ज्ञानमय विहार जहाँ छूट जाता है। शृंगार-रस प्रतिक्रिया रूप से वीर-रस को सजग किए रहता है, इस तर्क को विस्तार देते हुए आगे वह कहते है, "वीर्य की आवश्यकता क्यों है—भोग के लिए—चाहे राज्य-भोग हो या अन्य भोग, इसी तरह भोग या भंजन के बिना वीर्य भी नही बढ़ सकता···जो वीर है, वह भोगी अवश्य होगा।"

'वर्तमान धर्म' और उसकी टीका मे देवताओ के सेनापति कार्तिक में वीर और शृंगार रसो का यही सहअस्तित्व दिखाया गया है। वह "बड़े ऐयाश होने पर भी कर्म द्वारा ऐयाश नही, क्योकि आदर्श गृही वीर है। उनमे भोग की अतिशयता नही, गृही वीर वाला भोग है यद्यपि कल्पना मे उसकी अतिशयता भी है।

'वर्तमान धर्म' की टीका में निराला ने प्रकृति को 'ऐश्वर्य शक्ति' भी कहा है। (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. १०९) जो ऐश्वर्यशक्ति है, उससे मनुष्य को ऐश्वर्य प्राप्त होना ही चाहिए। इस ऐश्वर्य में राज्यभोग प्रमुख है। वैष्णव कवियो वाले लेख मे उन्होने भोग की चर्चा करते हुए राज्यभोग का नाम लिया, वह इसी ऐश्वर्य शक्ति की ओर संकेत करता है। निराला की कल्पना मे शृंगार-रस प्रतिक्रिया रूप से जिन

नायकों में वीर रस को सजग किए रहता है, वे सब राजा है, 'दो-एक आदर्श पुरुष महावीर और भीष्म की बातें और है।'

हिन्दी साहित्य को शक्ति चाहिए, यह ऐश्वर्यवाली शक्ति। किन्तु लेखक दरिद्र, जनता दरिद्र, भाषा भी दरिद्र! कहते हैं, "हिंदी मे एक जो सबसे बड़ी कमी है, वह है कथा-साहित्य में ऐश्वर्य-प्रदर्शन का अभाव। जिस तरह भाषा वैभव-विहीन है, उसी तरह भाव-प्रकाशन और चरित्र भी है। वे शक्ति के सौन्दर्य से किरणो के निर्झर की तरह नही चमकते।" ('सुधा', १६ नवम्बर '३३; संपा. टि.—१)

एक थे कालिदास जिन्होंने उपवन-वासिनी शकुंतला मे सभ्यता के चरम विकास का ऐश्वर्य प्रदर्शित किया, दूसरे हैं हिंदी लेखक जो ग्राम्य जीवन के चित्रण से संतोष कर लेते हैं। कालिदास की शकुंतला सभ्य से सभ्य मनुष्य के हृदय पर अधिकार कर लेती है, इसकी वजह क्या है?

"वजह वही, कालिदास सभ्यता के अन्तिम सोपान तक पहुँचकर वहाँ अपनी सत्ता को मिलाना जानते थे। आज हिंदोस्तान के वे गौरव के दिन नही रहे, इसलिए सर उठाते वक्त सर पर रखा हुआ सदियों की दासता का बोझ नीचे दबा देता है, और दुर्बल मनुष्य, शक्ति के अभाव के कारण, शक्तिवालों की बराबरी नही कर पाता—सर झुका लेता है —वे कमज़ोरियाँ फिर उस समुदाय पर सवार हो जाती हैं।" ('सुधा', अगस्त '३०; संपा टि —७)

कालिदास जिस सभ्यता के अन्तिम सोपान तक पहुँचे है, वह समृद्ध नगर-सभ्यता है। कालिदास से अधिक रसराज का सिद्ध कवि और कौन है? बँगला साहित्य में उच्च वर्गों के वैभव का चित्रण किया गया है। निराला कल्पना से वह सब साहित्य में लिखते हैं, उसी के अनुरूप भाषा में जगमगाहट पैदा करते हैं लेकिन हिंदीवाले कहते हैं, साहित्य जनता के लिए होना चाहिए, भाषा ऐसी होनी चाहिए कि सबकी समझ में आए। निराला तर्क करते है कि बड़े आदमियों के घर के साज-सामान, विलास के उपकरण गरीबों को सुलभ नही, फिर भी साहित्य में उनका वर्णन किया जाता है। ये सब "देश को उन्नत साबित करने के लिए सबसे जरूरी हो रहे हैं।" ('सुधा', अक्तूबर '३२; संपा. टि.—१) साहित्य गरीब जनता का चित्रण करके समृद्ध नही हो सकता।

निराला कहते हैं, "इतिहास में सम्राट और राजे-महराजे ही रहते हैं, सर्व-साधारण नही। फिर भाषा-साहित्य के लिए सर्वसाधारण वाला कारण कहाँ तक सर्वमान्य कहा जा सकता है?" (उप.)

ऐश्वर्यशक्ति वाले अद्वैत से जो भोग सम्बन्धी मान्यता फूटती है, उसकी यह चरम परिणति है। यह मान्यता इतिहास के सम्बन्ध में भ्रांतियाँ पैदा करने वाली, साहित्य मे यथार्थवाद का विरोध करने वाली है।

इसके विपरीत दूसरी मान्यता है जो प्रकृति अथवा माया का सम्बन्ध मानव-करुणा से जोड़ती है, जिसके अनुसार इतिहास में राजाओं का ऐश्वर्य तो है किंतु

उसका आधार जनसाधारण का उत्पीड़न है, इस मान्यता के अनुसार प्रगतिशील विचारक का लक्ष्य होना चाहिए सामाजिक क्रान्ति और उसी के अनुरूप साहित्य का विकास।

'अधिवास' (१९२३) कविता में निराला गति का सम्बन्ध संसार से जोड़ते हैं। जहाँ ब्रह्म है, वहाँ गति नही है। जहाँ गति है, वहाँ संसार है, दैन्य है, मानव-करुणा है, माया है। निराला इस 'माया' को छोड़ नही सकते, भले ही ब्रह्म छूट जाय। अधिवास वहाँ है जहाँ गति रुक जाती है-किंतु जब तक कवि में करुणा विद्यमान है, तब तक यह गति कैसे रुक सकती है? कवि ने 'मैं' शैली अपनायी है, दुखी को देखकर उसके हृदय पर दुख की छाया पड़ती है, वह उसे गले लगाता है और अपने को माया में फँसा हुआ पाता है,

फँसा माया में हूँ निरुपाय,
कहो, फिर कैसे गति रुक जाय?

दुखी के प्रति करुणा का भाव उसकी 'प्रगति' को अनन्त कर देता है—गतिहीन ब्रह्म के बदले अनन्त गतिशीलता वाली प्रकृति से वह तादात्म्य स्थापित करता है, ब्रह्म छूट जाता है किंतु उसे इसका खेद नहीं,

छूटता है यद्यपि अधिवास,
किंतु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।

'माया' में फँसे हुए निराला की यह अक्षय मानव-करुणा उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा का स्रोत है।

भक्त ने स्वप्न में दर्शन देने वाले महावीर से पूछा, "ये गरीब मरे जा रहे हैं—इसके लिए क्या होगा?" महावीर ने उत्तर दिया, "ये मर नही सकते, इनके लिए वही है, जो वहाँ के राजा के लिए है, इन्हें वही उभारेगा, जो वहाँ के राजा को उभारता है, तुम अपने मे रहो, दूर मत जाओ।" ('भक्त और भगवान', 'सुधा', दिसम्बर '३४)

निराला को इस ब्रह्म से संतोष न होता था जो राजा को उभारता था और उसकी दीन प्रजा को भी उभारता था या उभार सकता था। 'तुम अपने मे रहो' यह ज्ञान उनके विद्रोही मन को शान्त न कर पाता था।

भारतीय जनता और साहित्यकारों मे जो क्रान्तिकारी विचारधारा फैल रही थी, उसका कारण राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की प्रगति ही नहीं, उसकी असफलता भी थी। सन् ३० के बाद जैसे-जैसे गांधीवादी नीति से यह आन्दोलन साम्राज्यवाद से सत्ता छीनने मे असफल हुआ, वैसे-वैसे गांधीवाद को हटाकर उसकी जगह वामपंथी विचारधारा का प्रसार भी हुआ। हिन्दी साहित्य में प्रश्न उठा, साहित्य किसके लिए लिखा जाए? अप्रैल, १९३४ के 'विशाल भारत' में बनारसीदास चतुर्वेदी का लेख 'कस्मै देवाय' प्रकाशित हुआ।

निराला ने अब तक के अपने रचे हुए साहित्य पर निगाह डाली। उन्होंने देखा कि 'जुही की कली' मे कला की पूर्णता है, वह श्रमिक जनता को ग्राह्य होनी

चाहिए। मजदूर को निरक्षर, दरिद्र मजदूर ही नहीं बने रहना है। वह भी सौन्दर्य चाहता है, साहित्य का आनन्द चाहता है। जहाँ जीवन की पूर्णता है, वहाँ निराला का साहित्य उसे अवश्य पसंद आएगा। श्रमिक जनता और साहित्य के सम्बन्ध पर विचार करते हुए निराला ने लिखा :

"मज़दूर और साधारण लोगों का पक्ष क्यों लिया जाए, जब हम यह विचार करेंगे, तब इसी से उच्चता साबित हो जाएगी। मजदूरों का पक्ष इसीलिए तो लिया जाएगा कि मजदूरों के साथ न्याय हो, उन्हे पेट भर खाने को मिले, कष्ट के दिनो के लिए कुछ रखने को भी बच जाए, वे शिक्षित हों, समाज, देश, जाति तथा संसार के साथ मिलें, उससे सौहार्द करें। यहाँ इतने से ही देखिए, कला चढ़ती जा रही है—विकसित होती जा रही है, और बड़ी-से-बड़ी विशालता में परिणत। फिर यदि आज का कोई कवि या साहित्यिक प्रकृति की किसी साधारण वस्तु या विषय को इसी प्रकार परिपुष्ट करता हुआ कला का विकास दिखलाए, तो क्या आप ऐसा कह सकते हैं कि इस कार्य से आपके उस कार्य का साम्य न हुआ ?" ('सुधा', १६ जून, '३४; संपा. टि.—१)

मजदूर आन्दोलन का लक्ष्य है मज़दूर को उसकी वर्तमान अवस्था से उत्कर्ष की ओर ले जाना। यही उत्कर्ष कला मे है या होना चाहिए। इसलिए दोनों में कोई विरोध नही। यहाँ तक तो विरोध न होने की बात हुई। किन्तु इसके आगे एक प्रश्न है: छायावादी कवियों ने श्रमिक जनता और क्रान्ति के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, उसे लोग क्यो भूल जाते हैं ?

निराला ने प्रश्न किया : "फिर अगर आप विशेष (बल) मज़दूर-पक्ष के ही विषय पर देते हों, तो क्या आप कह सकते है कि हिन्दी के आधुनिक कलाकारों का उधर ध्यान नही गया ? आप जो इस भाव की धारा को हिंदी में बहाना चाहते हैं, क्या आपको हिंदी का आधुनिक साहित्य देखकर यह समझने का समय नही मिला कि यह धारा हिंदी मे नये युग के प्रारम्भ से बह रही है ?"

निराला की टिप्पणी साहित्य को क्राति से अलग नही रखती, न वह साहित्य को मजदूर-आन्दोलन की तात्कालिक आवश्यकताओ तक सीमित करती है। वह साहित्य मे प्रकृति-वर्णन, कला के उत्कर्ष, साथ ही श्रमिक जनता की आशा-आकांक्षाओं और संघर्षों के चित्रण का समर्थन करती है। यहाँ प्रश्न उठता है, साहित्य और राजनीति का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? निराला राजनीति को साहित्य से निकालते नही हैं किन्तु साहित्य को अधिक व्यापक मानते है। लिखा है, "साहित्य का राजनीति के साथ उतना ही सम्बन्ध है, जितना साहित्य का उसके शाखा-साहित्य से। इससे अधिक महत्त्व एक साहित्यिक कार्यकर्ता उसे देगा तो साहित्य के सार्वभौमिक विचार से वह लक्ष्य से च्युत कहा जायगा। एक साहित्यिक की दृष्टि में किसी भी समय राजनीतिक की महत्ता साहित्य की महत्ता से ज़्यादा नही रही।" ('सुधा', अक्तूबर '३०; संपा. टि.—४) इसी दृष्टि से वह समाज मे राजनीतिज्ञ और साहित्यकार के महत्त्व को तौलते हैं।

निराला जिस राजनीति का अकसर जिक्र करते हैं, वह क्रान्तिकारी राजनीति नहीं, सुधारवादी राजनीति है। इस सुधारवादी राजनीति को पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त है। बड़े-बड़े अखबार इस नीति का प्रचार करते हैं, उस नीति पर चलने वाले लोग नेताओं का गुणगान करते हैं। जो साहित्यकार इनके पिछलगुए हैं, वे धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जो स्वतन्त्र विचार के हैं, साहित्य और समाज में धूल फाँकते हैं।

निराला ने संन्यासी की व्याख्या की कि जो सत्य को जनता तक पहुँचाए वह संन्यासी है। किन्तु 'सत्य' को जनता तक पहुँचाने का ठेका पूंजीपतियों के पास है। "सम्वाद-पत्रों के सहारे पूंजीपति ही ज्ञान देने वाले, 'सत्' से न्यास करने वाले, सत्य-संवाद प्रकाशित करने वाले बन गए। फलतः जो दल उनके साथ आया, उनके अधीन रहा, वह उन्ही का प्रचार सत्य के तौर पर उद्देश सिद्धि के लिए करने लगा। इस तरह घात-प्रतिघातो से स्वार्थ का प्राधान्य लेकर दुनिया ही बदल गई। भारत दुनिया से बाहर नहीं, बल्कि विशेषता खोकर यूरोप के और भी अधीन है। अतएव अयोग्य के पीछे ही जोर से डंका बजाने वाला क्रम भी जारी हुआ।" ('सुधा', १ नवम्बर '३३ ; संपा. टि.—१) यह हुआ पूंजीवाद और राजनीति का सम्बन्ध। इस सम्बन्ध के कारण अयोग्य पुजता है, साहित्य में दलबन्दी पनपती है। जो नया लेखक है, वह अपने पैरों खड़ा नहीं हो सकता जब तक किसी गुट मे शामिल न हो। निराला के अनुसार हिन्दी के ८० फीसदी साहित्यकार अपनी साहित्यकारिता का प्रमाण देने के लिए किसी बड़े साहित्यिक का डंका बाँधते हैं।

दूसरी ओर "यथार्थ साहित्य-निर्माता आज भी उसी प्रकार अपमान का भार रखे झुके हुए जाति, भाषा तथा साहित्य की ओर देखते-देखते चुपचाप सरस्वती के इंगित पर चले जा रहे हैं; कोई साथ नही; अक्षम, अज्ञान, रीतिवादग्रस्त असाहित्यिको के विष-बुझे व्यंग्य-बाण सहते जा रहे है।" (उप.)

ऐसे साहित्यकारों के सामने दो ही रास्ते है, स्वयं झोंपड़ियो में रहते हुए वे दूसरों के विलास-वैभव के सपने देखें या फिर उनसे नाता जोड़ें जो उन्हीं की तरह अभावग्रस्त और अपमानित हैं। निराला इन दोनों रास्तों पर चले थे और उनकी जागरूकता का यह प्रमाण है कि वे इन दोनों रास्तो के बीच में जो फासला है, उसे पहचानते थे।

डलमऊ में कुल्ली भाट की पाठशाला में अछूत बालकों को देखकर निराला के बड़प्पन के भाव वैसे ही गायब हुए जैसे लखनऊ में हीवेट रोड के फुटपाथ पर पगली भिखारिन को देखकर हुए थे।

अन्तर्विरोध तो बहुत साहित्यकारों में होते है किन्तु उन्हें देखनेवाली निराला की सी साफ दृष्टि कम ही में होती है।

उचित है कि भारत के अभावग्रस्त, स्वाधीनचेता साहित्यकार क्रान्तिकारी सामाजिक आन्दोलनों का साथ दें। क्रान्ति और साहित्य के सम्बन्ध में निराला कहते हैं :

"क्रान्ति साहित्य की जननी है। नवीनता तभी पैदा होती है, और साहित्य का रथ कुछ कदम आगे बढता है। इसे ही जीवन भी कहते हैं। ऋतु के बदलने पर जिस तरह पृथ्वी एक नये रूप से सजती है, उसी तरह क्रान्ति-जन्य नवीनता से साहित्य।" ('सुधा', फरवरी '३५; संपा. टि.—१७) यह सही है कि समाज में ऐश्वर्य नही है, कम से कम उनके पास नही है जो दैनिक जीवन की साधारण आवश्यकताएँ भी पूरी नही कर सकते। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि लेखक कल्पना जगत् मे घूमे और वहाँ विलास-वैभव के महल खड़े करे क्योंकि "उपन्यास वास्तविक जीवन के चित्र रखता है।' (टिप्पणी 'उपन्यास साहित्य और समाज' पर है।) समाज की स्थिति यह है: "जो दशा हमारे सामाजिक जीवन की है, उसमे दृश्यमान ऐसी कोई भी बात नही, जो सभ्य-समाज के मुकाबले के चरित्र उपन्यास-लेखकों को दे सके।" किन्तु इस समाज मे क्रांतिकारी विस्फोट के लिए पर्याप्त सामग्री है। साहित्यकार चाहे तो आदर्शवादी रचनाएँ करें, विलास-वैभव के सपने देखे, साहित्य को काल्पनिक ऐश्वर्य से समृद्ध करें—

"या क्रान्ति की लहर उठाएँ, और खूबी से उसे बहाते चलें, जब तक समाज का नवीन रूप उसके अनुकूल न हो जाए। वर्तमान पीड़ितों का जो मसाला समाज मे है, वह भी उसे उड़ाने के लिए काफी है। ऐसी सक्षम रचनाएँ इस साहित्य को नया जीवन दे सकेंगी।" (उप.)

क्रान्ति की ओर उन्मुख प्रकृति-अद्वैत से जो दूसरी साहित्य-सम्बन्धी मान्यता फूटती है, वह यह है।

हिन्दी साहित्य : आन्तरिक संघर्ष

निराला के दार्शनिक विचार इस संसार से दूर किसी कल्पनालोक की उपज नही हैं, भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य की यथार्थ समस्याओ से उनका बहुत गहरा सम्बन्ध है। उन्होने धार्मिक रूढियों, पौराणिक देवी-देवताओ के प्रति अन्ध-श्रद्धा, मूर्तिपूजा, साम्प्रदायिक भेदभाव, शूद्रों पर द्विजों के अत्याचार का विरोध किया, मनुष्यमात्र की समानता की घोषणा की और इस सारी कार्यवाही को उचित ठहराने के लिए दार्शनिक तर्क प्रस्तुत किए। अपनी क्रान्तिकारी दृष्टि से साहित्य की परिधि उन्होंने विस्तृत की, पुरानी संकीर्ण रूढ़ियाँ तोड़कर उन्होने नये भावो और विचारो के आयात के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यह सारी कार्यवाही किसी शान्तिपूर्ण, संघर्षहीन कल्पना जगत् मे नही, हिन्दी संसार की ठोस, गतिशील,

संघर्षमय परिस्थितियों में सम्पन्न हुई। अकसर सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक और साहित्यिक स्तरों पर निराला के विरोधी एक ही तरह के लोग थे। ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि निराला सामन्ती समाज-व्यवस्था और उसकी तमाम सांस्कृतिक रूढ़ियों के विरोध में उठ खड़े हुए थे।

निराला से पहले साहित्य और समाज की पुरानी रूढ़ियाँ तोड़ने का काम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और उनके समसामयिक लेखकों ने किया था। इन्होंने नये विषयों पर साहित्य-रचना आरम्भ की, विशेष रूप से गद्य का विकास किया किन्तु रीतिवादी परम्परा उनके युग में काफी दृढ़ बनी रही जिसका एक परिणाम यह हुआ कि कविता की भाषा ब्रज थी, गद्य की खड़ी बोली। बीसवी सदी के प्रारंभिक दो दशकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त आदि के प्रयत्न से रीतिवादी धारा और कमजोर हुई, कविता मे खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई, गद्य का और अधिक विकास हुआ। इस समय के अधिकांश लेखकों की सामाजिक चेतना—गाधी युग से पहले के --पूँजीवादी उदारपंथ की सीमाओ के भीतर काम करती है। यह उदारपंथ एक ओर देश की वन्दना करता है, दूसरी ओर जार्ज पंचम की स्तुति करता है, पौराणिक देवी-देवताओं के प्रति आस्थावान् है। वह जाति-पाँति का विरोधी है किन्तु आदर्श रूप मे वर्णव्यवस्था का समर्थक भी है। वह राष्ट्रीय एकता मे विश्वास करता है किन्तु हिन्दू सभ्यता, मुस्लिम सस्कृति उसके लिए दो अलग इकाइयाँ है। भाव-बोध की दृष्टि से वह उपयोगितावाद का कायल है; साहित्य से स्पष्ट शिक्षा मिले, उसमें आदर्श चरित्र हों, नैतिक उपदेश हो, भाषा सरल और सुबोध हो, यह उसकी माँग है।

सन् '२० के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रसार के साथ छायावादी साहित्य का विकास होता है। गांधीवादी राजनीति पर पुराने उदारपंथ का काफी गहरा असर है यद्यपि वह उस असर को कम भी करती है, राष्ट्रीय आन्दोलन को पहले से अधिक व्यापक बनाकर समाज की रूढ़ियो को तोड़ने और नये साहित्य को रचने की प्रेरणा भी देती है। किन्तु भाव-बोध की दृष्टि से सरल सुबोध भाषा मे उपयोगी साहित्य ही उसके लिए उच्चकोटि का साहित्य है।

राष्ट्रीय आन्दोलन गांधीवादी राजनीति तक सीमित नही है। वह जनता के नये स्तरों को आन्दोलित करता है, संघर्ष के नये तरीके अपनाता है, गांधीवाद से हटकर, नई विचारधाराओं से प्रेरित होकर वह समाज मे आमूल परिवर्तनो की माँग करता है। विशेष रूप से सन् '३० के बाद उसमे यह परिवर्तन लक्षित होता है।

गांधीवादी स्वाधीनता आन्दोलन के प्रतिनिधि कवि है मैथिलीशरण गुप्त। सन् '२० से पहले की पूँजीवादी उदारपंथी मान्यताएँ ओढ़े हुए वह सन् '२० के बाद वाले युग में पदार्पण करते है और अपने नये-पुराने कृतित्व के बल पर राष्ट्र-कवि की प्रतिष्ठा पाते है।

निराला एक सीमा तक गांधीवाद के साथ है, उस सीमा तक जहाँ गांधीवाद

वर्णव्यवस्था, हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव, अंग्रेजो की दासता का विरोधी है। किन्तु निराला समाज में जिस आमूल परिवर्तन के पक्षपाती है, वह गाधीवाद की सीमाएँ नही स्वीकार करता। वह चोटी और दाढी को मिलाकर नही, दोनो का सफाया करके—हिन्दू धर्म और इस्लाम, दोनो की साम्प्रदायिक रूढ़ियों को मिटाकर—सामान्य मानवता की भूमि पर हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं। हरिजनों का मन्दिर-प्रवेश उनके लिए काफी नही है; वह मूर्तिपूजा के ही विरोधी हैं, उन सन्तों की तरह जिन्होने मन्दिर मे मूर्तिपूजन के अधिकार के लिए न लड़कर देवता और मूर्ति दोनो का बहिष्कार करके निर्गुण ब्रह्म की साधना की। निराला के लिए पूंजीपति जनता के धन के संरक्षक नही है, वे जनता के शोपक है जो राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों दोनों को अपनी धुन पर नचाते है। अग्रेजी राज से मुक्ति पाने के लिए निराला जमीदार-विरोधी किसान-संघर्षो को अनिवार्य समझते हैं; गांधीवाद इस तरह के वर्ग-संघर्प को भारतीय संस्कृति का विरोधी मानता है।

कोई आश्चर्य नही कि रीतिवादी आचार्यो से लेकर गांधीवादी अथवा अराजकतावादी पत्रकारो तक हिन्दी लेखको का बहुत बड़ा दल, निराला के विरोध में संगठित हो गया। छायावादी लेखकों में निराला का विरोध सबसे अधिक हुआ, इसका कारण यह था कि स्वाधीनता आन्दोलन की वे तमाम प्रवृत्तियां जो गांधीवाद की सीमाएँ तोड़कर आगे बढ रही थी, निराला मे केन्द्रित हो गई थी। इसके साथ ही उनकी साहित्यिक अभिरुचि मे वह सब कुछ था जो सरल सुबोध भापा मे लिखे हुए राष्ट्रीय उद्बोधनों और नैतिक उपदेशों की सीमाएँ पार कर जाता है।

पद्मसिंह शर्मा बिहारी सतसई के टीकाकार, रीतिवादी धारा के प्रतिनिधि आलोचक, हाली और अकबर के प्रशंसक, हाली के अनुकरण पर मैथिलीशरण गुप्त को भारत-भारती की रचना के लिए प्रेरित करने वाले, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति, छायावाद के परम विरोधी आर्यसमाजी विद्वान् थे। उनका चिन्तन, रसग्रहण एक ऐसे तर्कसम्मत, बौद्धिक नही, बुद्धिमानी के स्तर पर होता था कि शास्त्र की रेखा लाँघकर कोई नया विचार वहाँ घुस न पाता था। काव्य में उदात्त क्या है, इसकी पहचान न हो सकती थी। पद्मसिंह शर्मा हाली के प्रेमी थे, निराला गालिब के। हाली स्पष्ट कथन की भूमि पर विचरण करने वाले कवि हैं, गालिब गहरे गोता लगाने वाले। पद्मसिंह शर्मा को न रवीन्द्रनाथ पसन्द थे, न निराला, पंत भी नही।

महावीरप्रसाद द्विवेदी मैथिलीशरण गुप्त की भापा सँवारते थे, गोपालशरण सिंह को हिन्दी का श्रेष्ठ कवि मानते थे, रवीन्द्रनाथ की कविता उनके पल्ले न पडती थी, छायावादी कविता के वह विरोधी थे क्योकि निराला-पत-प्रसाद अपने विरोध से नही, अपने कृतित्व से वह साफ-सुथरा महल ढहा रहे थे जिसे इतनी लम्बी साधना के बाद उन्होंने खड़ा किया था।

रामचन्द्र शुक्ल भौतिकवादी विचारक हैकेल की पुस्तक 'विश्व प्रपंच' के

अनुवादक, उसके भूमिका लेखक, भौतिकवादी दार्शनिक लॉक से प्रभावित होनेवाले ऐडीसन के आलोचना-सिद्धान्तों को आत्मसात् करने वाले, तुलसी और जायसी के प्रेमी, लोक-संग्रह पर वल देने वाले, रहस्यवाद के विरोधी होने पर भी विचार-धारा में वहुत जगह महावीरप्रसाद द्विवेदी और पद्मसिंह शर्मा से दूर और निराला तथा प्रसाद के निकट थे। अनेक दृष्टियो से विचारधारा में प्रगतिशील होने पर भी, शुक्ल जी भाववोध की उसी दुनिया में रहते थे जिसके सम्राट् महावीरप्रसाद द्विवेदी थे।

वनारसीदास चतुर्वेदी अराजकतावादी थे, गांधीजी के भी परम भक्त थे, पद्मसिंह शर्मा और महावीरप्रसाद द्विवेदी उनके लिए साहित्य मे उच्चतम शिखर थे जैसे राजनीति में महात्मा गांधी। वह रवीन्द्रनाथ के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे किन्तु गुरुदेव के काव्य मे उन्हें रस न मिलता था। वह व्रज भापा काव्य के प्रेमी थे और आधुनिकों मे श्यामसुन्दर खत्री की रचनाएँ उन्हे वहुत प्रिय थी। निराला का विरोध संगठित करने मे उनकी भूमिका अद्वितीय थी।

इन थोड़े से नामों की चर्चा से निराला के विरोध की दिशा, संघर्प मे टकराने वाली विचारधाराओं, इन विचारधाराओं की पोपक सामाजिक शक्तियो, साहित्यिक अभिरुचियों की भिन्नता का पता लग जाएगा। संक्षेप मे निराला न केवल सामन्ती व्यवस्था, उसकी विचारधारा और उसकी साहित्यिक अभिरुचि से टकराए थे वरन् भारतीय पूँजीवाद, उसकी ढुलमुलयकीन सामाजिक विचारधारा और उसकी कुंठित साहित्यिक अभिरुचि से भी टकराए थे।

अनेक गांधीवादी विचारक रीतिवाद के विरोधी इसलिए थे कि उसमें शृंगार की अतिशयता थी, समाज के लिए उपयोगी विचारों की कमी थी। निराला रीतिवाद का विरोध इसलिए नहीं करते कि उसमें शृंगार अधिक है; उनके विरोध का कारण यह है कि उसमें शृंगार का उत्कर्ष नही है। कालिदास, रवीन्द्रनाथ, वर्ड्सवर्थ और पंत की रचनाओं से नारी-सौन्दर्य के चित्र देकर वह रीतिवादी सौन्दर्यवोध की तुलना में शृंगार के वास्तविक उत्कर्ष का समर्थन करते है। ('सुधा', नवम्वर १९२९; संपा. टि.—११) वंगाल के वैष्णव कवियों में शृंगार का जैसा उदात्त चित्रण है वैसा देव, विहारी, मतिराम के यहाँ नहीं मिलता। (वंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना, 'माधुरी', अगस्त-सितम्वर, १९२८) रीतिवादी शृंगार-वर्णन में चमत्कार-प्रेम अधिक, सौन्दर्य-प्रेम कम है। रवीन्द्रनाथ रस में डूवते हैं, विहारी तटस्थ रहते है; "विहारी चित्रण कुशलता दिखाने की फिक्र में रहते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषय मे मिल जाते हैं।" (कविवर विहारी और रवीन्द्र; चावुक, पृ. १७) हिन्दी आलोचना की सीमाएँ वास्तव में रीतिवाद की सीमाएँ हैं, इसलिए "केवल रस अलंकार और नायिका-भेद की सीढ़ियों से चढ़ना-उतरना काव्य-ज्ञान का प्रकृष्ट परिचय नही।" ('सुधा', जुलाई '३३; संपा. टि.—१)

महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल भी रीतिवाद के विरोधी है किन्तु

उनके और निराला के रीतिवाद-विरोध मे अन्तर है। वे उस उदात्त शृंगार के कायल नही जो निराला को प्रिय है। 'नग्न सौन्दर्य की ज्योति मे अश्लीलता की जरा भी सियाही नही लग पाई', बंगाल के वैष्णव कवियों में शृंगार का यह उत्कर्ष द्विवेदीजी या शुक्लजी का आदर्श नही। द्विवेदीजी शृगार रस के प्रेमी थे किन्तु साहित्यालोचन मे अपनी वह अभिरुचि नियन्त्रित किए रहते थे। शुक्लजी प्रकृति के सौन्दर्य पर तो मुग्ध हो लेते थे, नारी के सौन्दर्य को साधारणतः लोकमंगल की भावना का विरोधी समझते थे। इस तरह रीतिवाद का विरोध करते हुए भी द्विवेदी-शुक्ल और निराला मे अपना अन्तर्विरोध था। पद्मसिंह शर्मा से ऐसा द्विधा-सम्बन्ध न था। उनसे खुली टक्कर थी; "कुछ विहारी की कल्पना है, उस पर पद्मसिह जी भी कल्पना लड़ाते हैं। वहुत जगह चमत्कार पैदा करने में विहारी से जो कुछ कोर-कसर रह जाती है उसे पद्मसिह जी पूरा कर देते है।" (चावुक, पृ. १७)

निराला के लिए शृंगार मनोरंजन का साधनमात्र नही है। वह काव्य में शृंगार की ऐसी अभिव्यंजना चाहते है कि कुछ समय के लिए पाठक की चेतना मूर्च्छित हो जाए। यह स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रवल भावोद्गार की आकांक्षा नही है; यह सघन ऐन्द्रिय अनुभूति की चाह है जो कुछ विशिष्ट स्वभाव के कवियो मे मिलती है। निराला ने विद्यापति के लिए लिखा था, "भावुकता की मादक शक्ति विद्यापति मे भी है, वड़ी ही तीव्र, जैसे नागिन का ज़हर।" ('माधुरी', अगस्त-सितम्वर '२८) नागिन के ज़हर का ऐसा आकर्पण न रीतिवादी कवियो में है, न निराला के समकालीन दूसरे छायावादी कवियो मे। इससे तुलनीय है परिमल के सम्वन्ध मे निराला का वह वाक्य जो उन्होंने पत को लिखा था, " 'पल्लव' से कोई हानि नही, भय भी नहीं, वल्कि आनन्द ही है; पर 'परिमल' कभी-कभी, किसी-किसी वन्य झाड़ के जिस चटखारे से निकलता है, दिमाग ही फूंक जाता है, अस्वस्थ भी कर देता है।"

रीतिवाद मे ऐन्द्रियता यथेष्ट है किन्तु उसमे वह तीव्रता नही जिसका उल्लेख निराला ने विद्यापत्ति की चर्चा मे किया है। रीतिवाद मे रस है किन्तु उसमे वह गहराई नही जो कवीर, तुलसी, मीर और गालिव मे है। ('सुधा', नवम्बर '२६; सपा. टि.—१०) रीतिवाद मे चित्र हैं, भाव है, पर दोनो मे उच्च स्तर पर सामंजस्य नही है। निराला के लिए रूप-रस-गन्ध अभिन्न रूप से मनुष्य के भावो से जुड़े हुए है। सुन्दर वस्तु देखकर मन मे जो भावात्मक प्रतिक्रिया होती है, वह एक तरह का नशा है। 'रूप, रस, शव्द, गन्ध और स्पर्श द्वारा जिस प्रकार की भावना हृदय मे प्रवेश करती है, उस समय मनुष्य के मस्तिष्क मे उसी प्रकार का नशा छा जाता है।' ('कला के विरह मे जोशी वन्धु', प्रवन्ध प्रतिमा, पृ. १६८) निराला रस, ध्वनि, अलकार के विरोधी नही; उनके लिए कविता मे इनका उपयोग चमत्कार, प्रदर्शन के लिए नही, भाव और चित्र के उत्कर्ष के लिए होता है। कला की पूर्णता मे इनका उचित सामंजस्य होना चाहिए। 'जुही की कली' मे

"केवल अलंकार, रस या ध्वनि नहीं, उनका समन्वय है। इस तरह एक कला पूर्ण हुई है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ.२६०)

स्वभावतः निराला का यह दृष्टिकोण न केवल रीतिवादी सौन्दर्यबोध का विरोधी है वरन् पूंजीवादी नैतिकता और उपयोगितावाद का भी विरोधी है। प्रत्येक साहित्य में ऐसे लोग मिलेंगे जो "स्थूल उपयोगितावाद से साहित्य के उत्कर्ष का अन्दाज़ा लगाते हैं। वे कहते हैं, जिस साहित्य में जनता के हित की जितनी शक्ति है, कसौटी मे वह उतना ही खरा, उतना ही उपयोगी और उतना ही मूल्यवान है।" ('सुधा', जून '३३; संपा. टि.—१) निराला को यह कसौटी स्वीकार नही, स्थूल उपयोगितावाद के बदले वह साहित्य की सूक्ष्म उपयोगिता स्वीकार करते हैं। वह साहित्य मे क्रान्तिकारी विचारधारा के समर्थक हैं, क्रान्तिकारी विचारधारा के साथ उत्कृष्ट सौन्दर्यबोध भी उन्हे प्रिय है।

अनेक स्थलों पर वह इस रोमांटिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं कि कवि को तल्लीन होकर विषय का चित्रण करना चाहिए। रवीन्द्रनाथ महान् है क्योंकि 'विहारी को सदा अपने कवि होने का ज्ञान वना रहता है—विहारी खुद नायिका नही वन जाते', जवकि रवीन्द्रनाथ 'अपने विषय में मिल जाते है।' (चाबुक, पृ. १६-१७) उपन्यासकार तव तक अपनी कला में सफल नही हो सकता जव तक वह उस सभ्यता की 'श्री तथा शोभा में स्वयं आत्मविस्मृत नही हो जाता' जिसका वह चित्रण कर रहा है; 'केवल दर्शक की तरह दूर रहकर एक दूसरे वायुमंडल मे साँस लेकर, तटस्थ रहकर उसके चित्रों को सफलता से खीचना चाहता है, तव तक प्रायः वह असफल ही होता है।' (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २२३) निराला तटस्थता का विरोध करते है, आत्मविस्मृत होकर चित्रण करने की सलाह देते है। रचना गद्य की हो चाहे पद्य की, आत्मविस्मृत होकर लिखना सफलता के लिए आवश्यक है। स्वच्छंदतावादी लेखकों में साधारणतः जैसा दृष्टिकोण मिलता है, वैसा ही यहाँ निराला का है।

जैसे ब्रह्म और शक्ति को लेकर निराला मे दो तरह की धारणाएँ है, वैसे ही साहित्य में इस आत्मविस्मृत होकर लिखने के आदर्श को लेकर भी दो धारणाएँ हैं। यह आत्मविस्मरण भाव-विह्वलता की विशेपता है; जो आत्मविस्मरण का समर्थक है, वह साहित्य को भावोच्छ्वास भी मानता है। निराला की मेधा इतनी समर्थ है, उनका विवेक इतना जाग्रत है कि वह काव्य को भावोच्छ्वास मानने को तैयार नही। साहित्य मे आलोचना के महत्त्व की चर्चा करते हुए निराला ने भावोच्छ्वासमात्र वाली कविता का विरोध करते हुए लिखा, "हृदय का महत्त्व लेकर निकलने वाली कविता भी यदि विचार और शृंखला से संवद्ध नही तो शैशव-संलाप की तरह भावोच्छ्वासमात्र है, उससे साहित्य को कोई वड़ी प्राप्ति नही हो सकती।" ('सुधा', जुलाई '३३, संपा. टि—१)

इस वाक्य में 'शैशव-संलाप' शब्द ध्यान देने योग्य है। टी. एस. इलियट ने शेली की रचनाओ से 'ऐडोलेसेंट' मन का सम्बन्ध सन् '३३ मे जोड़ा था। निराला

ने भी शैशव-संलाप की बात सन् '३३ में लिखी थी। जलियट की बात प्रसिद्ध हुई; निराला की बात दबी रह गई। सिद्ध यह हुआ कि निराला भावोच्छ्वास वाली छायावादी काव्यधारा की कमजोरी पहचानते थे। काव्योत्कर्ष के लिए भावगरिमा के साथ विचार और शृंखला के महत्त्व पर बल देते थे। आत्मविस्मृति की जगह यह तटस्थता की स्वीकृति है। यहाँ देश-विदेश के अनेक रोमांटिक कवियो से उनका दृष्टिकोण भिन्न था। छायावादी कवियो के आपसी मतभेद का विचारधारा-सम्बन्धी कारण यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है।

निराला काव्य मे भावों का अस्तित्व स्वीकार करते थे किन्तु रीतिवादी और सामान्य छायावादी धरातल से भिन्न स्तर पर। उनके लिए विशुद्ध भाव की सत्ता न थी। रामचद्र शुक्ल की तरह वह भाव से इन्द्रिय-बोध—मनुष्य के रूप-रस-गंध-स्पर्श-शब्द-सम्बन्धी अनुभव—को संबद्ध मानते थे। इन्द्रियबोध की सघनता के साथ वह भावो की तीव्रता आवश्यक समझते थे। यहाँ तक कि देश के नही तो विदेश के कई रोमांटिक कवि उनका साथ देते। किन्तु इससे आगे बढ़कर वह साहित्य मे परस्पर-विरोधी भावो की सत्ता स्वीकार करते थे। 'वीररस का विरोधी शृंगार-रस ही प्रतिक्रिया के रूप से अपने शत्रु को सजग किए रहता है।' ('माधुरी', अगस्त-सितम्बर '२८) ससार के रंगमंच पर जीव-जन्तु 'मधुर और भीषण कल-रवोद्गारो से' अभिनय करते है। (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. ६३) स्वामी विवेकानन्द की कविता का अनुवाद नाचे उस पर श्यामा प्रकाशित करते हुए निराला ने उस पर टिप्पणी लिखी, "इस कविता मे यथाक्रम कोमल और कठोर भावों के चित्र दिख-लाए गए हैं। कोमलता सभी चाहते हैं, परन्तु कठोर भाव कोई नही चाहते, सब उससे दूर रहना चाहते है। परन्तु यदि कोमलप्राणता दारिद्र्य, दुःख, रोग, व्याधि आदि देखकर भयविह्वल होती हो, तो वह कोमलता वास्तव में दुर्बलता और कापुरुषता है। उसे दूर कर सदा मृत्यु को भरबाँह भेंटने के लिए तैयार रहना ही वीरत्व और मनुष्यत्व है।" ('समन्वय', आषाढ़, संवत् १९८१)

रोमांटिक कविता मे—कविता से अधिक रोमांटिक काव्य-सिद्धान्त मे एक तरह के भाव व्यक्त करने पर जोर दिया जाता है। आई. ए. रिचार्ड्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिंसिपिल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' मे इस धारणा का खंडन करते हुए अनेक भावों के, परस्पर-विरोधी भावो के भी, संगठन का महत्त्व प्रति-पादित किया। रिचार्ड्स की यह पुस्तक सन् '२४ मे प्रकाशित हुई थी; संयोग की बात, निराला ने ऊपर की टिप्पणी सन् '२४ मे लिखी थी।

आई. ए. रिचार्ड्स ने अरस्तू के कथार्सिस से विरोधी भावो के संतुलन का सिद्धान्त जोड़ा। आदर्श है मन की शाति, भावो के विरोध का शमन। निराला का उद्देश्य है गति; विरोधी भावो के सह-अस्तित्व से क्रान्तिकारी प्रेरणा का जन्म।

हिन्दी मे जिस समय कोमलकान्त पदावली की धूम थी, उस समय निराला ने कोमलता के साथ परुषता की आवश्यकता पर बल दिया। छायावादी कवियो के आपसी मतभेद का यह दूसरा वैचारिक कारण था।

समस्त रीतिवादी और स्वच्छंदतावादी कवियों की लीक छोड़कर निराला ने एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जहाँ कविता मे भाव न हों, सुन्दर चित्रण न हो, केवल ऊँचे दर्जे की चिन्तन-प्रक्रिया हो, केवल विचार हो, वहाँ भी श्रेष्ठ काव्य, सरस काव्य सम्भव है। आधुनिक साहित्य समस्या-मूलक है, उसमे अनेक समस्याओ का विवेचन होता है। मानना होगा कि यह विवेचन बहुत लोगों को अच्छा लगता है, सरस मालूम होता है, इसलिए साहित्य में 'विवेचना-रूपी रस' भी है। ('सुधा', १ अगस्त '३४; संपा. टि.— ३) काव्य मे विचारो के महत्त्व पर किसी छायावादी कवि ने इतना जोर नही दिया जितना निराला ने।

जो व्यक्ति चिन्तन का महत्त्व स्वीकार करता है, वह गद्य और आलोचना का महत्त्व भी स्वीकार करेगा। काव्य को गद्य से श्रेष्ठ मानना अनेक देशों की सामान्य साहित्यिक परम्परा है। पुराने ज़माने में जो लोग गद्य लिखते थे— बाण-भट्ट से लेकर वाल्टर पेटर तक—उनका प्रयत्न यह रहता था कि उसमें वैसा ही चमत्कार पैदा करें जैसा काव्य मे सुलभ था। अनेक आधुनिक हिन्दी लेखक अंग्रेजी शब्दावली का अनुसरण करते हुए कविता और कहानी को तो रचनात्मक (क्रिएटिव) साहित्य मानते हैं, आलोचना को अरचनात्मक! निराला का दृष्टिकोण यहाँ भिन्न है।

आलोचना के महत्त्व के बारे में निराला कहते है, "आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में उसे ही प्राप्त है।" ('सुधा', जुलाई '३३; संपा. टि.—१) आलोचना का महत्त्व अस्वीकार करने के बदले निराला ने समकालीन हिन्दी आलोचना की सीमाएँ बतलाई, उसे रस, अलंकार, नायिकाभेद की गलियाँ छोड़कर यथार्थ जीवनदर्शन की विस्तृत भूमि पर आने को कहा। उपर्युक्त वाक्यों के बाद उन्होंने भावोच्छ्वास वाली कविता का जो विरोध किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोचना-कार्य कवि-कर्म का ही अभिन्न अंग है। 'आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है' इसलिए कविता को शैशव-संलाप की स्थिति से बचाने के लिए 'विचार और शृंखला' आवश्यक है। 'हृदय का महत्त्व लेकर निकलने वाली कविता' काफी नही है; मस्तिष्क का महत्त्व लेकर निकलने वाली आलोचना आवश्यक है। आलोचना और भाव-प्रकाशन एक ही साहित्यिक कर्म—रचना—के अन्तर्गत है।

निराला की दृष्टि मे मेधा, विवेक, चिन्तन का ऐसा महत्त्व है कि वह चाहते है कि आदर्श आलोचक आदर्श कवि से अधिक समर्थ हो। कहते है, "काव्य की बारीकियाँ समझने के लिए आलोचक को कवि से अधिक समर्थ होना चाहिए।" ('सुधा', अगस्त '३२; संपा. टि.—१) इसी के अनुरूप गद्य का महत्त्व है। कविता में प्रचलित और लोकप्रिय कोमलकान्त पदावली से गद्य की भाषा का भेद करते हुए निराला ने लिखा था, "कविता की भाषा से मनोरंजन तो होता है परन्तु वह जीवन-संग्राम के काम की नही होती। दूसरे कविता-प्रिय मनुष्य कल्पना-प्रिय हो जाता है। उससे काम नही होता।" ('भाषा की गति और हिन्दी की शैली',

'समन्वय', आश्विन १९८०) निराला ने कविता की विशेष शब्दावली का सम्बन्ध कल्पना से जोड़ा है। कोमलकान्त पदावली की सजावट कल्पनाशीलता से जुड़ी हुई है। कल्पना के गुन गाते रोमांटिक कवि अघाते नही। निराला सन्, '२३ मे कह रहे है कि कल्पना अपने मे काफी नही है; काम करना है, इसलिए उस भाषा का व्यवहार करना चाहिए जो जीवन संग्राम मे काम की हो। कल्पना और यथार्थ मे इसी तरह भेद करते हुए उन्होने सन् '३० में लिखा कि हिन्दी मे कल्पना प्रबल है, वास्तविकता कम है; अंग्रेज़ी मे यथार्थवादी साहित्य का विकास हुआ, 'यह समय भाषा-साहित्य मे तब आता है, जब जाति अत्यन्त कर्मठ होती है', जब स्वप्नो के प्रभात का सब स्वर्ण दुपहर की धूप मे गल जाता' है। ('सुधा', जनवरी '३०; संपा. टि.—९)

आलोचना, गद्य, कर्मठता, जीवन-संग्राम—ये सब निराला के चिन्तन मे परस्पर सम्बद्ध है। कल्पना की अतिशयता, कोमलकान्त पदावली, आत्मविस्मृति —ये सब भी परस्पर सम्बद्ध है। एक छायावाद का सबल पक्ष है, दूसरा निर्बल। निराला के चिन्तन में दोनों पक्ष है, दोनों में द्वंद्व है किन्तु अनेक स्थलों पर निर्बल पक्ष की भर्त्सना करते हुए वह सबल पक्ष को ही स्वीकार करते हैं।

निराला के लिए आलोचना और कविता की भाषा मे मौलिक अन्तर नही है। कविता जब कल्पनालोक छोड़कर जीवन-संग्राम के निकट आएगी, तब वह कोमल-कान्त पदावली की भूमि छोड़कर गद्य की भाषा के निकट आएगी। जब गद्य जीवन-संग्राम की भूमि छोड़कर कल्पना-लोक की ओर उड़ेगा, तब उसकी भाषा भी कोमलकान्त पदावली के निकट होगी। यहाँ प्रश्न सरलता और क्लिष्टता का नही है, प्रश्न है जीवन-सग्राम के अनुकूल अथवा प्रतिकूल भाषा का। जो शब्द-चयन कल्पना की अतिशयता से जुडा हुआ है, वह क्लिष्ट भी हो सकता है, सरल भी। रीतिवादियो का आदर्श है प्रसाद-गुण-युक्त सरल भाषा। किन्तु यह भाषा निराला के लिए जीवन-संग्राम की भाषा नही है। सन् '३३ मे उन्होने फिर लिखा था, "गद्य जीवन-सग्राम की भी भाषा है।" ('सुधा', १ अक्तूबर '३३; संपा. टि.—२) इससे विदित होगा कि निराला के चिन्तन मे गद्य और जीवन-संग्राम कैसे परस्पर सम्बद्ध है। गद्य की सी भाषा का प्रयोग वह कविता में करना चाहते है, वह सरल होगी या क्लिष्ट—यह सदर्भ पर निर्भर है।

कविता, उपन्यास, नाटक—निराला के लिए इनकी चित्रण-कलाएँ अलग-अलग है। भाषा के अनेक भेद हैं क्योंकि लक्ष्य अनेक प्रकार के है। छायावादी कल्पनाशील कविता के लिए निराला कहते है, "कविता लिखने के समय जब चित्र के चन्द्र को अधिक प्रकाशमान करना पड़ता है, तब भाषा के शब्दो को यथाशक्ति प्रांजल कर देने की आवश्यकता है। शब्दो के सूर्य की किरणें चित्र को और द्युति-मान कर देती है। प्राचीन गौरव के प्रति लोगों की श्रद्धा आकर्षित करने का विचार हो, तो कविता की भाषा खुले हुए पुष्प की तरह पूर्ण विकच होनी चाहिए।" ('सुधा', जनवरी, '३०; संपा. टि.—१०)

शब्दों को अधिक प्रांजल करना, शब्दों के सूर्य की किरणों से चित्र को और द्युतिमान करना, प्राचीन गौरव के प्रति श्रद्धा आकर्षित करना—ये सब उस कल्पना-लोक की बातें हैं जो जीवन-संग्राम से दूर है। इस कल्पना-लोक की कविता के दो भेद हैं—एक वह जिसमें बाहरी प्रकृति का चित्रण है, दूसरी वह जिसमें भीतरी प्रकृति का चित्रण है। बाहरी प्रकृति के चित्रण में, निराला के अनुसार, नामवाचक संज्ञाओं का विशेष उपयोग होना चाहिए, भीतरी प्रकृति के चित्रण में भाववाचक शब्द आने चाहिए। नामवाचक संज्ञाओं के प्रयोग से सौन्दर्य का चित्रण होता है, भाववाचक संज्ञाओं के प्रयोग से भावों का।

वास्तव में यह भेद कृत्रिम है। चाहे बाहरी प्रकृति का चित्रण हो, चाहे भीतरी का, दोनों तरह की संज्ञाओं का प्रयोग सम्भव है। मूल बात यह है कि जीवन-संग्राम वाली भाषा में इन्हीं संज्ञाओं का प्रयोग एक ढंग से होता है, कल्पनालोक वाली भाषा में दूसरे ढंग से। उपर्युक्त टिप्पणी में निराला यथार्थवादी चित्रण के बारे में कहते हैं, "परन्तु ग्राम्य-चित्रों या अशिक्षित जनों के मनोभावों का चित्रण करने के समय भाषा बहावदार, स्वच्छ, सरल लिखनी चाहिए।" यही बात उन्होंने 'सुधा' की उस टिप्पणी मे कही है जिसमे गद्य को जीवन-संग्राम की भाषा बताया है। जब भाषा बहती हुई, प्रकाशनशील हो, तभी उत्तम साहित्य की सृष्टि होती है। "भाषा-विज्ञान की बड़ी बात यह है कि जल्द से जल्द, अधिक से अधिक भाव लिखे और बोले जा सकें।" इसलिए सरल भाषा लिखना बहुत कठिन है; कठिन भाषा लिखना भी सरल नही है।

कठिन भाषा, जो संदर्भ के अनुसार उचित हो, अभी लिखी नहीं जाती; "अभी मुश्किल और ठीक-ठीक मुश्किल लिखने की दो-एक को छोड़कर किसी भी साहित्यिक को तमीज़ नहीं।" ('सुधा', अक्तूबर '३२; संपा. टि.—१)

मुश्किल लिखना आसान है; 'ठीक-ठीक मुश्किल' लिखना आसान नहीं है। मुसीबत की जड़ है 'ठीक-ठीक'।

लोग कहते हैं, भाषा सीधी-सादी होनी चाहिए। लेकिन मुख्य बात है, भाव कैसा हो। निराला कहते है, "मुमकिन है एक दिन लोग यह भी कहने लगें कि भाव सीधे होने चाहिए।" (उप.) निराला भाव-वक्रता के प्रेमी है, सीधी भाषा में भाव-वक्रता का प्रकाशन और भी कठिन है।

भाषा क्लिष्ट हो चाहे सरल, कोमल हो चाहे परुष, है वह मनुष्य के चिन्तन और भावजगत् से संबद्ध। इसी कारण कल्पना-जगत् और जीवन-संग्राम की भाषा मे अन्तर है। किन्तु जैसे आलोचना कवि-कर्म का अभिन्न अंग है, वैसे ही भाषा साहित्यकार की रचना-प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। "भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा मात्र से बदलने वाली देह है।" ('सुधा', १ अक्तूबर '३३; संपा. टि.—२) भाव और भाषा का सम्बन्ध प्राण और देह का सम्बन्ध है।

निराला भाषा शब्द का व्यवहार लोक-प्रचलित अर्थ में कर रहे है। पंत की भाषा प्रसाद की भाषा से भिन्न है, इसका यह अर्थ नही है कि पंत हिंदी लिखते थे

और प्रसाद बँगला। रचना के अनुरूप भाषा बदलती है—निराला के इस कथन का आशय है—शब्द-चयन, मुहावरो का प्रयोग आदि रचना की भाव-प्रकृति के अनुसार बदलते है। जैसे युद्ध-भूमि मे कुशल सेनापति चक्रव्यूह रचता है, शत्रुदल को परास्त करने के लिए उचित अस्त्रों का उपयोग करते हुए सैन्य-संचालन करता है, वैसे ही कुशल रचनाकार भाव-विचार-चित्र संगठित करके अभिव्यंजना के क्षेत्र में शब्दों के अस्त्र-शस्त्र द्वारा अव्यक्त को परास्त करके व्यक्त कला की विजय-ध्वजा फहराता है। निराला कहते हैं, "रचना युद्ध-कौशल है और भाषा तदनुकूल अरूप। इस शास्त्र का पारंगत वीर साहित्यिक ही यथासमय समुचित प्रयोग कर सकता है।" (उप.) कला का प्रदर्शन भी तभी होता है।

कला भावोच्छ्वास में नहीं है, दार्शनिक विचारों का अम्वार लगा देने में नही है, शब्द-चयन में नही है, रस-ध्वनि अलंकार में नही है, कला है रचना में जिसके अन्तर्गत ये सब है। मौलिकता भावोद्गार मे नही, रचना-कौशल में देखी जाती है। " 'रचना' शब्द मे ही बनाना अर्थात् नवीनता लगी हुई है।" ('सुधा', नवम्बर '३४; संपा. टि.—१५) निरपेक्ष रूप मे न कोई भाव पूर्णतः मौलिक होता है, न विचार। प्रतिभाशाली कवि वह है जिसमे रचना-कौशल है। यह कौशल सुनार की कारीगरी नही है जिसे प्रयत्न करने से साधारण बुद्धि का आदमी भी प्राप्त कर ले। वह दस्तकारी का हुनर नहीं है; वह श्रेष्ठ प्रतिभा की उपज है। निराला शास्त्र का हवाला देते है—**प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।** प्रतिभा पांडित्यमात्र नही है किन्तु पांडित्य उसका विरोधी नही, सहायक होता है: "सहसा प्रतिभा में यदि पांडित्य मिल जाय, तो सोने में सुगन्ध का काम देता है। उसकी कृतियाँ बहुत ठोस होने लगती है।" यदि पांडित्य और प्रतिभा का संयोग हो जाय, "जैसा गोस्वामी तुलसीदास में हो गया था," तो यह भाषा और साहित्य के लिए परम सौभाग्य की बात होगी। (उप.) निराला तुलसीदास के इसी आदर्श को आधुनिक हिन्दी साहित्य में चरितार्थ करना चाहते थे।

रस, ध्वनि, अलंकार से सम्बन्धित निराला की स्थापनाएँ रीतिवाद से भिन्न है। सौन्दर्यबोध और साहित्य के क्रान्तिकारी उद्देश्य मे निराला उपयोगितावादी नैतिक उपदेश-प्रेमी साहित्यकारों से दूर है। भावोच्छ्वास, कल्पना, विवेक, आलोचना, गद्य आदि के बारे में उनकी धारणाएँ समकालीन छायावादी चिन्तन से भिन्न हैं। छायावादोत्तर नये कविता-सम्बन्धी चिन्तन में रचना-कौशल और भाषा की व्याख्या पर काफी बल दिया गया है किन्तु इस चिन्तन मे भाषा और रचना-कौशल को विशुद्ध रूप मानने की प्रवृत्ति है। यह चिन्तन एक तरह का रूप-वाद है जो साहित्य की समग्रता को छोड़कर उसके बाह्य रूप पर ध्यान केन्द्रित करता है। निराला के चिन्तन की विशेषता है—भीतरी तत्त्व और बाहरी रूप की परस्पर सम्बद्धता को देखना। **गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।** तुलसीदास की यह मान्यता निराला की भी है। भाषा और रचना-कौशल पर ध्यान केन्द्रित करके कोई चाहे कि साहित्यकार के सामाजिक अनुभव, उसके वैचारिक

दृष्टिकोण, भावात्मक स्तर के विवेचन से बचे तो यह संभव नही है।

राजनीति और दर्शन की तरह निराला ने साहित्य सम्वन्धी विचारधारा के क्षेत्र मे जो संघर्ष किया, उसका महत्त्व न केवल उनके युग के लिए था, वरन् आज के लिए भी है। उससे न केवल रीतिवादी, गांधीवादी और समकालीन छायावादी साहित्यिक प्रवृत्तियों की सीमाओं का ज्ञान होता है, वरन् वर्तमान काल में जो रूपवादी प्रवृत्तियाँ चित्र-विचित्र वेश धारण करके साहित्य में वैज्ञानिक चिन्तन का दावा करती हैं, उनकी सीमाओं का भी पता चलता है। निराला की साहित्य-सम्वन्धी विचारधारा अन्तर्विरोधों से मुक्त नही है किन्तु उसके प्रवाह की मूल दिशा का पता लगाना कठिन नही है। यह प्रवाह घनिष्ठ रूप से उनके काव्य-सृजन और कथा-लेखन से सम्वद्ध है।

भावबोध

स्वाधीनता-प्रेम

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के वाद राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के उभार का समय हिंदी साहित्य में कवि निराला का अभ्युदयकाल भी है। सन् '२० से सन् '४७ तक स्वाधीनता-प्राप्ति की आकांक्षा उनके साहित्य की मौलिक प्रेरणा है। हिन्दी मे उनकी पहली प्रकाशित कविता जन्मभूमि पर है—**जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी**। दूसरे महायुद्ध के दौरान 'चोरी की पकड़' उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा, "स्वदेशी आन्दोलन की कथा है···इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है।" दूसरे महायुद्ध के वाद राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के नये क्रान्तिकारी उभार के दिनों मे इलाहावाद के विद्यार्थियो ने वीरता से जव साम्राज्यवादी दमन का मुकावला किया, तव उनका अभिनन्दन करते हुए निराला ने नये उल्लास से लिखा :

> निकले क्या कोंपल लाल
> फाग की आग लगी है,
> फागुन की टेढ़ी तान,
> खून की होली जो खेली। (**नए पत्ते**, पृ. १०४-५)

भारत स्वाधीन हुआ किन्तु जिस स्वाधीन भारत का स्वप्न निराला देख रहे थे, वह साकार न हुआ। साहित्य में अवसरवादिता, चाटुकारिता की वाढ़-सी आ गई, उच्चवर्ग समृद्ध हुए, निम्नवर्ग को दैन्य से मुक्ति न मिली। निराला ने इस स्थिति का भावचित्र खीचा :

> मंदिर में वंदी हैं चारण,
> चिंघर रहे है वन में वारण,
> रोता है वालक निष्कारण,
> विना-सरण सारण भरणी है। (**अर्चना**, पृ. ५१)

साहित्यिक जीवन के आरंभ से लेकर आखिरी दौर तक साहित्य के विभिन्न रूपों मे और उसके विभिन्न स्तरो पर देश को सुखी, स्वाधीन और समृद्ध देखने की आकाक्षा उन्हे प्रेरित करती है।

भाववोध और कला की दृष्टि से निराला-साहित्य के अनेक स्तर हैं। इनमें एक स्तर विशुद्ध प्रचारात्मक है जहाँ उनकी निगाह हिंदी के उन पाठकों पर है जो वहुत कम पढ़े-लिखे है किन्तु जिनकी राजनीतिक चेतना को निखारना वह अपना

कर्तव्य समझते है। 'मतवाला' में 'निराला' नाम के साथ जो पहली कविता छपी है, वह इसी प्रचारात्मक स्तर पर लिखी गई है।

वढ़ गई शोभा सखी सावनी सलोनी हुई
वड़े भाग्य भारत के गए दिन आए फिर !
'रक्षा' से वँधे है भारतीयों के कोमल कर,
मंगल मनाती क्यो न, रहा क्यो कलेजा चिर ?
तारो इन सुनहलों के आगे सितारे मात
अथवा प्रकाश रहा वादल दलों से घिर ?
देख करतूत ऐसी वीरवर सपूतों की
भारत का गर्व से उठेगा या झुकेगा सिर ?

कंगालो का कत्ल अहो इस 'राखी' के रँग मे छिपा,
भूत, भविष्यत्, वर्तमान है दीनो का तीनों लिपा !

('मतवाला', २६ अगस्त '१६२३; यह 'मतवाला' का पहला अंक भी है।)
उस समय जिस तरह की भाषा और शैली मे राजनीतिक कविताएँ लिखी जाती थी, राखी पर निराला की रचना उन्ही के अनुरूप है। त्योहारों, पौराणिक वीरों के वहाने राष्ट्रीय आत्मसम्मान का भाव जगाने और अंग्रेजों का विरोध करने की प्रवृत्ति भी उस समय की कविताओ मे देखी जाती है। यही प्रवृत्ति राखी पर, 'मतवाला' के दूसरे अंक में 'कृष्ण-महातम' पर कविताओ मे है। 'कृष्ण-महातम' व्रजभाषा में है; कवि का नाम छपा है—'पुराने महारथी'। कृष्ण काले, राधा और अन्य गोपियाँ गोरी; दोनो मे प्रेम; लेकिन अव ?

पै अव ऐसो हाल कि 'काले' हाथ पसारे।
धेला भर भी प्रेम लेत 'गोरन' सो हारे।

'मतवाला' के तीसरे अंक मे पुराने ढंग की सानुप्रास शब्दावली का सहारा लेते हुए निराला चेतावनी देते हैं :

चूम चरण मत चोरों के तू,
गले लिपट मत गोरो के तू,
झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ मे मान।

यह कविता भी 'निराला' नाम के साथ छपी है। स्पष्ट है कि यह छद्मनाम मूलतः रहस्यवादी अथवा छायावादी कविता रचने वाले के लिए प्रयुक्त न हुआ था। निराला के प्रचारमूलक काव्य की यह शैली वरावर निखरती गई; जवाहरलाल नेहरू को जेल से छुटकारा न मिलने पर, विजयलक्ष्मी पंडित के पतिदेव के निधन पर उनकी कविताओ मे इस शैली का स्वच्छ कलात्मक रूप मिलेगा।

देशवासियो की पराधीनता देखकर निराला के मन में अनेक भाव उदय होते हैं, कभी वह आत्मग्लानि से पीड़ित होते है, कभी मन अवसादग्रस्त हो जाता है, कभी अतीत का स्मरण करके जनता में राष्ट्रीय आत्मसम्मान का भाव जगाते है,

पराधीनता से समझौता करने वालों पर क्रुद्ध होते है। उन्होंने 'मतवाला' के दो अंकों (२३, ३० अगस्त, '२४) में एक कविता लिखी थी—'स्वाधीनता पर'। पराधीन देशवासियो की मोहनिद्रा से क्षुब्ध होकर वह कहते है :

मेरे साथ मेरे विचार—
मेरी जाति—
मेरे पददलित—
मौन हैं—निद्रित है—
स्वप्न में भी पराधीन !

जनता का दैन्य देखकर भारत माता की एक उदास मूर्ति उनकी आँखो के सामने आ जाती है :

जागे मेरे उर मे तेरी
मूर्ति अश्रुजल-धौत विमल। (**गीतिका**, पृ. २०)

पुरानी इमारतों के खंडहर देखकर उन्हे भारत का गौरवमय अतीत याद आता है। वे खंडहर वर्तमान भारत से कहते है—जैमिनि, पतंजलि, व्यास जैसे ऋषि, राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन और भीष्म जैसे वीर यही खेले और बड़े हुए थे। (**अनामिका**, पृ. ३०) मुगलो के शासनकाल में भारत ने नये वैभव के चित्र देखे किन्तु वह वैभव भी खत्म हो गया; आज मीनार स्तब्ध हैं, मकबरे मौन है। (उप., पृ. ६३) शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसे वीरो ने स्वाधीनता के लिए युद्ध किया किन्तु उनकी विरासत को लोग भूल गए है :

शेरों की माँद में
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार ! (**परिमल**, पृ. १७५)

निराला-काव्य में अनेक भावो का स्रोत है, उनका देश-प्रेम।

भारतीय चिन्तन-पद्धति मे ज्ञान, भक्ति और कर्म—ये तीन योग प्रसिद्ध है। विद्वानों के अनुसार इनमे किसी एक के सहारे मनुष्य को ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है। निराला के लिए पूर्ण ज्ञान का अधिष्ठान है भारत, हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का आधार है भारत, जीवन के समस्त कर्मो का लक्ष्य है भारत। निराला की एक प्रिय कल्पना थी, भारत अपने शब्दार्थ से ही ज्ञानमय है। भा अर्थात् प्रकाश; भारत अर्थात् प्रकाशवान्। 'वर्तमान धर्म' में उन्होने इसी अर्थ-विचार से भारत के बारे में लिखा था, "भारत अपने नाम से ही धर्मात्मा है। इसलिए भारत की सीमा जैसी भी लकीरों से निश्चित की जाए, वह असिद्ध है, ज्ञान के द्वारा।" इस पर उनकी टिप्पणी है, "संस्कृत में 'भारत' भरत से बना है (भरं तनोति, तन्+उ), पर भारत का अर्थ मैंने किया है—भाः+रत (भासि रतः), जो ज्ञान मे रमा हुआ है।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. ९२) स्वाधीनता की प्रेरणा यहाँ व्याकरण-ज्ञान से टकराती है। निराला व्याकरण की चिन्ता न करके 'भारत' मे, नये अर्थ-विचार से, निराकार वेदान्त-ज्ञान को साकार देखते है। 'तुलसीदास' में इसी ज्ञानमय भारत

का सूर्यास्त होता है; तुलसीदास की काव्य-साधना इसी भारत का अपार भ्रम हरने के लिए है। शिवाजी का संघर्ष ज्ञानमय भारत की प्रतिष्ठा के लिए है :

आएगी भाल पर
भारत की नयी ज्योति। (परिमल, पृ. २०७)

गुरु गोविन्दसिंह ने इसी भारत की साधना करके मरणलोक के उस पार मन को पहुँचा दिया था— **जहाँ आसन है सहस्रार**। बीसवी सदी मे भारतवासी जब अपना ज्ञान-रूप भूल गए—**पराधीन भारत की प्रज्ञा क्षीण हुई जब**— तब उनके उद्धार के लिए रामकृष्ण परमहंस का अवतार हुआ। (नये पत्ते, पृ. ८६)

वेदान्त-ज्ञान का अधिष्ठान है भारत। वह सनातन है। उसे संतों, कवियो, योद्धाओं ने देखा, उसकी सृष्टि उन्होने नही की। मनुष्य की आत्मा के समान वह मोहाच्छन्न हो जाता है, फिर अपना मुक्त, असीम, ब्रह्म-रूप पहचानता है। कौन किसके कारण महान् है—भारत ज्ञानमय होने से अथवा ज्ञान भारतीय होने से ? निश्चित है कि वेदान्त का सम्बन्ध यूनान से होता तो निराला के लिए वह उतना महत्त्वपूर्ण न होता। वेदान्त उनके लिए विश्व का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है क्योंकि वह भारतीय है। *जो ज्ञान असीम है, वह प्रत्यक्ष होता है राष्ट्रीय सीमाओ वाले भारत में*। सन् '४२ मे उन्होने गीत लिखा था :

भारत ही जीवन धन,
ज्योतिर्मय परम-रमण,
सर-सरिता वन-उपवन। (अणिमा, पृ. ६७)

यह साकार भारत—सर-सरिता-वन-उपवन वाला भारत— निराकार ज्ञान का अधिष्ठान, ज्योतिर्मय परम-रमण है। कौन किसका प्रेरक है—वेदान्त देशप्रेम का या देशप्रेम वेदान्त का ? निराला ने ज्ञान को भारत से, निर्गुण को सगुण से जिस तरह बाँधा है, उससे सिद्ध है कि मूल प्रेरणा देशभक्ति की है, निराला के मन मे वेदान्त का रूप उसी ने स्थिर किया है। यह हुआ ज्ञानयोग।

निराला की धार्मिक आस्था, उनकी भक्ति का आधार भारत है। उनकी रचनाओ मे देवी सरस्वती, काली, महावीर आदि देवताओं की प्रतिष्ठा है। शिक्षा, संस्कार, परिवेश—अनेक कारणो से उनके मन में भक्तिभाव का उदय होना स्वाभाविक है। देवी-पूजा अवध मे भी होती है, बंगाल में विशेष; परम वेदान्ती रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द मे दुर्गा या काली के प्रति यह भक्तिभाव अनेक स्थलो पर झलकता है। निराला की कविता में जब राम परास्त होते है, स्वयं को धिक्कारते हैं, सीता का उद्धार, विभीषण का राजतिलक असम्भव स्वप्न-सा लगता है, तब वह विजय-प्राप्ति के लिए दुर्गा की ही पूजा करते हैं। किन्तु निराला की दुर्गा कृतिवास की पारंपरिक दुर्गा नहीं है। जाम्बवान की सलाह है— **शक्ति की करो मौलिक कल्पना**। यह मौलिक कल्पना रावण के पास नही है; राम अपनी मौलिक कल्पना से उसकी पारंपरिक साधना को व्यर्थ कर देंगे। कल्पना की मौलिकता किस बात मे है ? राम कहते है :

देखो, वन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना हैं इसकी, मकरन्द-विन्दु;
गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु;
दशदिक्-समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्वर में हुए दिगम्वर अर्चित शशि-शेखर;
लख महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व—
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व।

जो सामने प्रत्यक्ष भूधर है, पार्वती उसी की 'कल्पना' हैं। यथार्थ है भारत का एक पर्वत; कल्पना हैं पार्वती। दसो दिशाएँ उनके हाथ है, आकाश रूप मे शिव उनके मस्तक पर हैं, गरजता हुआ सिन्धु ही सिंह है और जिस असुर को दुर्गा ने मारा है, वह मानव के मन में है। शक्ति की कल्पना मे मौलिकता यह है।

अन्य कविता में इस कल्पना की आवृत्ति है। स्वामी विवेकानन्द कैलास की यात्रा करते हैं। हिमालय का दिव्य सौन्दर्य देखकर लगता है मानो

दुर्गा की रूपरेखा यहीं से ली गई हो···
पदतल राक्षस ताल,
महिषासुर का प्रतीक। (नये पत्ते, पृ. १००)

किसी को भी असुर बना दो, क्या फर्क पड़ता है? मानव का मन असुर हो चाहे हिमालय का कोई ताल; मुख्य वात यह कि भारत के किसी पर्वत को ही देखकर पार्वती की कल्पना की गई है। एक कविता में वह पर्वत दक्षिण भारत का है, दूसरी में उत्तर भारत का।

दुर्गा की मौलिक कल्पना का आधार है भारत।
दुर्गा से भी एक शक्ति और बड़ी है—महावीर।

रावण और दुर्गा से राम त्रस्त हुए है, महावीर नहीं। वह **अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय शरीर** है। सिंह के समान गरजने वाले सिन्धु को मथते हुए वह सघन अंधकार उगलने वाले आकाश को अपने अट्टहास से कँपा देते है। शिव वहुत स्पष्ट शब्दों में दुर्गा को सावधान करते हैं:

इन पर प्रहार,
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार।

स्वयं राम जिस शक्ति को पूजते हैं, वह महावीर को परास्त नहीं कर सकती। यह अपराजेय योद्धा भी—निराला की कल्पना में—भारत रूप है।

'भक्त और भगवान्' कहानी मे भक्त को स्वप्न में महावीर दिखाई देते है। उसका मन ऊपर आकाश मे है, नीचे समस्त भारत—"पर यह भारत न था—साक्षात् महावीर थे; पंजाव की ओर मुँह, दाहिने हाथ में गदा—मौन शब्द-शास्त्र, वंगाल के दाएँ-वाएँ पर हिमालय पर्वत की श्रेणी, वगल के नीचे वंगोपसागर; एक घुटना वीरवेश-सूचक—टूटकर गुजरात की ओर वढ़ा हुआ एक पैर प्रलम्व—

अँगूठा कुमारी अन्तरीप, नीचे राक्षस-रूप लंका-कमल—समुद्र पर खिला हुआ।"
(चतुरी चमार, पृ. ७९)

यह महावीर की 'मौलिक कल्पना' हुई; इसका भी आधार है भारत।

महावीर किसी के सामने श्रद्धा-विनत है तो अपनी माता अंजना के सामने। 'राम की शक्तिपूजा' में वही उन्हें समझा-बुझाकर आकाश से धरती पर उतारती है। 'भक्त और भगवान्' कहानी में महावीर भक्त को अपनी माता के दर्शन कराते है: "वत्स, यह मेरी माता देवी अंजना हैं।" भक्त देखता है कि महावीर का चिह्न—सिंदूर—सिर पर धारण किए उसकी स्वर्गीया पत्नी खड़ी है। पत्नी का नाम है—सरस्वती। परम शक्तिशाली महावीर श्रद्धा-विनत हैं अजना अथवा सरस्वती के सामने। और यह सरस्वती भारत रूपा है।

भारति, जय, विजय-करे
कनक-शस्य कमल धरे। (गीतिका, पृ. ७१)

भारत-रूपा होने से वह कनक-शस्य धरा है। उनके चरणों के नीचे शतदल के समान लंका है, सिर पर हिमतुषार का शुभ्र मुकुट है, गले मे गंगा का ज्योतिर्मय हार है। भारतभूमि ही निराला की भारती है।

भारती का सबसे भव्य और विराट् चित्र नये पत्ते संग्रह की रचना 'देवी सरस्वती' मे है। भारत का देशगत और कालगत रूप, वैदिक और लौकिक संस्कृत का वाङ्मय, सूर, तुलसी, कबीर, मीरा का काव्य, भारतीय भाषाओं मे 'प्रान्तीय सभ्यता का आलेखन', डफ और मंजीरो के साथ गाए हुए किसानो के लोकगीत—सब कुछ इन सरस्वती मे है। भारत की प्रत्यक्ष धरती—वही सरस्वती है·

हरी भरी खेतो की सरस्वती लहराई,
मग्न किसानो के घर उन्मद बीज बधाई।

तुलसीदास के लिए गिरा अनयन थी; निराला के लिए वह सनयन है:

छवि की विश्वमोहिनी, कवि की सनयन कविता।

भारतरूपा सरस्वती दूसरो को देखती है, स्वयं भी दिखाई देती हैं।

सरस्वती की इस मौलिक कल्पना का आधार है भारत।

यह हुआ निराला का भक्तियोग।

निराला के समस्त कर्मफल, उनकी समस्त साधना मातृभूमि को अर्पित है।

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हो तेरे चरणों पर, माँ
मेरे श्रम-संचित सब फल। (गीतिका, पृ. २०)

इस मातृ-मूर्ति का ध्यान करते हुए वह मृत्यु-पथ पर बढ़ने का प्रण करते हैं; पराधीन देश को मुक्त करने के लिए प्राण भी देने पड़ें तो स्वीकार है:

क्लेदयुक्त अपना तन दूंगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल। (उप.)

भक्तियोग और कर्मयोग यहाँ मिल गए हैं। जिस देवी के लिए वह अपना शरीर

तक देने को उद्यत हैं, वह दुर्गा, महावीर, सरस्वती न होकर साक्षात् भारतमाता है। निराला के श्रम-संचित फल इन्हीं के चरणो पर अर्पित हैं।

कर्म अनेक प्रकार के है; इनमें सैनिक कर्म और कवि-कर्म मुख्य है। शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह के सैनिक कर्म भारत की मुक्ति के लिए, उसके ज्ञानमय रूप की प्रतिष्ठा के लिए है। तुलसीदास कवि हैं; उनके कवि-कर्म का उद्देश्य भी वही है।

देवी-देवता अनेक—उनका आधार एक, भारत।

कर्म भी अनेक—उन सबका लक्ष्य एक, भारत।

निराला मे ज्ञान, भक्ति और कर्म—तीनों योगों के समन्वय का आधार है, उनका देशप्रेम।

महात्मा गांधी द्वारा संचालित राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से लोगों मे जैसी देशभक्ति उत्पन्न हुई, निराला का देशप्रेम उससे भिन्न है। गांधी जी सत्य और अहिंसा के प्रयोग कर रहे थे, उनमे एक प्रयोग भारत को स्वाधीन करना था। निराला की आस्था का आधार, उनके समस्त कर्मो का लक्ष्य है भारत। गांधीवादी आन्दोलन द्वारा प्रभावित राष्ट्रीय कविता के रचयिता हैं मैथिलीशरण गुप्त। यह कविता मनुष्य के गूढ़ भाव-स्रोतों को नही छूती। निराला की कविता एक ओर प्रचारात्मक है, और उसका यह रूप निखरता हुआ कलात्मक बनता जाता है; दूसरी ओर उनकी कविता में आस्था का गहरा स्पर्श, परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की शक्ति, द्रष्टा की सी तन्मयता का भाव है जो हिन्दी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। **नरजीवन के स्वार्थ सकल**—इस गीत मे कवि और उसकी इष्टदेवी में दृष्टि का विलक्षण आदान-प्रदान है। एक ओर वह चाहते है कि उनके हृदय में मातृभूमि की अश्रुजल धौत मूर्ति जागे और वह उसे मन भर देखते रहें, दूसरी ओर वह चाहते हैं कि भारतमाता भी उन्हें अपनी सजल दृष्टि से देखें—

मुझे देख तू सजल दृगो से
अपलक, उर के शतदल पर।

रहस्यवादी रचनाओं में तो ऐसी तन्मयता और भाव-विह्वलता के दर्शन होते है किंतु देशप्रेम पर लिखी हुई कविताओं में भाषण अधिक, मार्मिकता कम होती है। निराला के चिन्तन मे भारत और भारती एक-दूसरे से अलग नही है, इसीलिए उनमे द्रष्टा का आलोक और भक्त की विह्वलता है।

कांग्रेसी स्वाधीनता आन्दोलन और निराला की राजनीतिक चेतना में यह अन्तर भी है कि निराला के लिए स्वाधीनता आन्दोलन अभिन्न रूप से सामाजिक क्रान्ति से जुड़ा हुआ है। देश के नाम पर वह देश की जनता को भूलते नही; देश को स्वाधीन होना है इसी जनता के सुखी समृद्ध जीवन के लिए। इसी कारण स्वाधीनता आन्दोलन और सामाजिक क्रान्ति परस्पर सम्बद्ध हैं।

क्रान्ति की आकांक्षा

निराला क्रान्ति के कवि है, उस क्रान्ति के जिसका लक्ष्य भारत को विदेशी पराधीनता से मुक्त करना ही नही, जनता के सामाजिक जीवन मे मौलिक परिवर्तन करना भी है। क्रान्तिकारी परिवर्तन की यह आकांक्षा २६ दिसम्वर, सन् '२३ के 'मतवाला' में प्रकाशित उनकी कविता 'धारा' से लेकर सांध्यकाकली में प्रकाशित अन्तिम दौर की शिवताण्डव वाली कविता तक अनेक रूपों में, भाव-वोध के अनेक स्तरो पर व्यक्त हुई है।

कही धारा, कही वादल, कही शिव और काली, कही पुराने पत्तों का झरना और नये पत्तों का आना—निराला ने क्रान्ति के चित्रण के लिए अनेक प्रतीको का उपयोग किया है। क्रान्ति का जो रूप सवसे पहले पहचान मे आता है, वह विनाशात्मक है; विभिन्न प्रतीको का उपयोग करने वाली रचनाओ मे यह विनाशात्मक रूप खूव उभरकर आया है। किन्तु इस विनाश से पहले शताब्दियो की घुटन, लाखो मनुष्यों का दारुण हाहाकार है जो क्रान्ति से ही शान्त होता है, वही क्रान्ति को अनिवार्य वनाता है। क्रान्ति वे करते है जो दुखी हैं, दूसरो के दुख को पहचानते है। क्रान्ति की मूल प्रेरणा मानव-करुणा है जो मनुष्य का दुख दूर करना चाहती है। क्रान्ति का विनाशात्मक उद्देश्य तात्कालिक और अस्थायी है; उसका मूल उद्देश्य रचनात्मक और स्थायी है। 'धारा' कविता मे निराला कहते है :

> आज हो गए ढीले सारे वन्धन,
> मुक्त हो गये प्राण,
> रुका है सारा करुणा-क्रंदन।

करुणा-क्रंदन को रोकना, वन्धनो को ढीला करना सामाजिक क्रान्ति का उद्देश्य है। इसी प्रकार 'उद्वोधन' (अनामिका, पृ. ६७) कविता मे जव वह निष्ठुर झकार द्वारा वीणा से भैरव निर्जर राग उठाने की वात कहते है, तव उन्हें शताब्दियों तक चलनेवाला जनता का करुणा-क्रंदन याद आता है। कहते है :

> वहा उसी स्वर मे सदियो का दारुण हाहाकार
> सञ्चरित कर नूतन अनुराग।

दारुण हाहाकार को समाप्त करना, यही क्रान्ति का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही क्रान्ति का अस्थायी विनाशात्मक रूप आवश्यक होता है।

आकाश से स्पर्धा करने वाले पर्वतों का गर्व धारा के प्रखर वेग से ध्वस्त हो जाता है। उसका जल-प्रवाह देखकर लगता है कि शिव का ताण्डव हो रहा है। पर्वतों के उपलखण्ड वहाती हुई वह ऐसे आगे वढ़ती है मानो नरमुडमालिनी कालिका हो। किन्तु इस धारा के श्याम वक्ष पर स्वर्ण-किरण-रेखाएँ भी खेल रही हैं और उस प्रलय-लीला के वीच किरणो का स्पर्श पाकर एक कली खिल गई है :

एक पर दृष्टि ज़रा अटकी है,
देखा एक कली चटकी है। (परिमल, पृ. १२५)

यह क्रान्ति का रचनात्मक पक्ष है।

श्यामा का नृत्य होगा, असुरों की मुंडमालाओं से वह सज्जित होगी, झंझा उसकी भेरी है, वीणा के तार टूट जाएँगे, कोमल छंद वंद -होगे किन्तु इसके साथ निर्जन वन के वृक्ष अपने कर-पल्लवो से ताल देंगे। विनाश के साथ निर्माण-क्रान्ति से दोनों कार्य संपन्न होगे। ('आवाहन', परिमल, पृ. १२७)

आँधी आएगी, आकाश मचल उठेगा, पीले पत्ते उड़ जाएंगे; साथ ही नये पत्तों के लिए रास्ता खुलेगा, धरती और आकाश नई सुगन्ध से भर जाएँगे। ('उद्‌बोधन', अनामिका, पृ. ६७) यहाँ भी क्रान्ति के दोनों पक्ष है।

बादल की वज्र हुंकार सुनकर संसार काँप उठता है; वज्रपात से बड़े-बड़े पर्वत क्षत-विक्षत हो जाते है; समाज के धनी जन आतंक-अंक पर अपनी अंगनाओ से लिपटे रहनेपर भी काँप उठते है किन्तु बादल का गर्जन सुनकर पृथ्वी के हृदय से सोते हुए अंकुर फूट पड़ते है, नये जीवन की आशा से वे आकाश की ओर देखते है, छोटे पौधे वर्षा-जल पाकर लहलहा उठते हैं, वे बादल को संकेत से बुलाते है, बादल का ज्ल अट्टालिका पर नही ठहरता, वह कीचड़ में पहुँचकर वहाँ कमल खिलाता है। 'परिमल' की बादलराग (६) कविता मे क्रान्ति के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है।

घन गर्जन से भर दो वन—इस गीत मे भूधर थर्राते हैं; तरु-पल्लवों पर नया जीवन बरसता है (गीतिका, पृ. ५७) **बादल गरजो**—(अनामिका, पृ. ८२) धरती निदाघ के ताप से जल उठी है, उसके हृदय को शीतल कर दो, धरती को नया जीवन, नई कविता दो।

निराला ने गजल लिखी :

लू के झोंके झुलसे हुए थे जो, भरा दौगरा उन्ही पर गिरा।
उन्हीं बीजो के नये पर लगे, उन्ही पौधो से नया रस झिरा।

(बेला, पृ. ८९)

लू से जो झुलसे हुए है, क्रान्ति का भरा दौगरा उन्ही को नया जीवन देता है।

शिव का ताण्डव :

डमड डम डमड डम
डमरू निनाद है।
ताण्डव नीचे शिव
प्रवाद उन्माद है। (सान्ध्य काकली, पृ. ८४)

क्रान्ति का विनाशकारी रूप—ताण्डव के अतिरिक्त—इन दो पंक्तियो से स्पष्ट हुआ है :

संहारिणी बडी
उठती अबाध है।

इस रचना मे समुद्र के बड़े-बड़े जलचरों की व्याकुलता चित्रित करने के साथ

निराला छोटी-सी सीपी को नही भूले। **सीप के सुभग क्षण**—यह लिखकर क्रान्ति के दूसरे रचनात्मक पक्ष की ओर उन्होंने संकेत कर दिया है।

निराला कुछ प्रतीको को दोहराते हैं, किसी कविता मे ये प्रतीक विस्तृत रूप मे आते है, कही संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में। उनकी क्रान्ति-सम्वन्धी रचनाओं को एक साथ पढ़ने से उनकी प्रतीक-योजना स्पष्ट होती है। धारा उपलखण्डों को वहाती हुई नरमुंडमालिनी कालिका जैसी लगती है। 'आवाहन' में इस नरमुंड-मालिनी श्यामा का वर्णन है। धारा की प्रलय-लीला देखकर शिव का ताण्डव याद आता है; शिवताण्डव वाले गीत मे उसी को निराला फिर स्मरण करते है। सत्ताधारी वर्ग के प्रतीक है पर्वत; धारा इन्ही का गर्व चूर करती है। वादल के वज्रपात से यही क्षत-विक्षत होते हैं। धारा का वेग क्रान्ति के अदम्य वेग का परिचायक है; 'आवाहन' के 'उत्ताल तरंग भंग' में धारा के उसी वेग की प्रतिध्वनि है। शिवताण्डव वाले गीत में समुद्र की विक्षुब्ध जलराशि का चित्रण है किन्तु निराला ने जिस संहारिणी को अवाध उठते हुए दिखाया है, वह समुद्र से अधिक धारा—अथवा समुद्र के अन्दर उसकी एक धारा—है। **वहती कैसी पागल उसकी धारा**—'धारा' का यह पागलपन निराला फिर याद करते है, शिवताण्डव के **प्रवाद उन्माद है**—इन शव्दो मे। धारा पृथ्वी पर वहती है, आकाश से भी गिरती है।

> वार-वार गर्जन
> वर्पण है मूसलधार—

वादल-राग (६) के मूसलधार वर्पण में धारा प्रच्छन्न रूप मे विद्यमान है। अन्य वर्पा गीत मे उसका रूप अधिक स्पप्ट है:

> झर झर झर झर धारा झर
> पल्लव-पल्लव पर जीवन— (गीतिका, पृ. ५७)

यह वही गीत है जिसमे घन का गर्जन सुनकर भूधर थर्राते है। आकाश से झरने वाली धारा विनाश न करके तरु-पल्लवो को नया जीवन देती है। कली के हृदय की गंध भी एक धारा है जो अवरोध पार करके धरती-आकाश में नया सौन्दर्य भर देती है। गंध की धारा जल-प्रवाह के ही समान है:

> रुद्ध जो धार रे
> शिखर निर्झर झरे—। (उप., पृ. ७३)

क्रान्ति का केन्द्रीय प्रतीक है वादल। भयानक गर्मी के वाद उसके दर्शन होते हैं। ग्रीष्म का त्रास सामाजिक उत्पीड़न का प्रतीक वन जाता है। 'वादल-राग' का विप्लवी वीर जग के दग्ध हृदय पर अपनी छाया लेकर आता है। इसी तरह तप्त धरा के उर को वह शीतल करता है। (अनामिका, पृ. ८२); लू के झोंको से झुलसे हुए जनो को वह नया जीवन देता है। (वेला, पृ. ८६) वर्पा के साथ ग्रीष्म का अभिन्न सम्वन्ध है; ग्रीष्म के ताप से ही वादल का जन्म होता है। वर्षा के साथ नये पत्तों का आना, किसानों का खेत मे हल चलाना, सारी पृथ्वी का हरियाली से

ढँक जाना अन्य क्रियाएँ हैं जो वादल को क्रान्ति का सार्थक प्रतीक बनाती हैं। किन्तु निराला सारी बात प्रतीकों के माध्यम से ही नही कहते; 'वादल राग' मे धनी वर्ग के साथ खेत में खड़ा हुआ दुर्वल किसान भी मौजूद है। अनेक रचनाओं में प्रतीक-योजना छोड़कर निराला सीधे जनता की बात करते है।

निराला की क्रान्तिकारी भावधारा का स्रोत उनकी गंभीर मानवीय करुणा है। जो दलित और उपेक्षित है, वे निराला के स्नेह-भाजन हैं। दीन जनों के लिए भी निराला ने अनेक प्रतीक अपनाए हैं। रजकण सदियों से दूसरों के पद-प्रहार सहता आया है, लोग उसे नीच कहते है, वह अपना अपमान चुपचाप सह लेता है। (परिमल, पृ. १४५)। दूसरा प्रतीक है प्रपात। पर्वत से वहता, पत्थरों से टकराता, अन्धकार मे भटकता है, फिर भी शान्त मन से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। (उप., पृ. १४२) प्रतीक-योजना छोड़कर निराला दीन जनों का प्रत्यक्ष वर्णन करते हैं। एक भिक्षुक है जो चुपचाप आँसुओं के घूंट पीकर रह जाता है (उप., पृ. ११५), विधवा, जिसे कोई धीरज नही वँधा सकता, कोई जिसके दु.ख का भार हल्का नहीं कर सकता (उप., पृ. १११), वेज़मीन किसान वुधुवा, मार खाने से जिसके मुँह से खून वहने लगता है (अलका, पृ. ६६), निम्न जातियों का प्रतिनिधि चतुरी- -"मेरे ही नही, मेरे पिताजी के, वल्कि उनके भी पूर्वजों के मकान के पिछ-वाड़े, कुछ फासले पर, जहाँ से होकर कई और मकानों के नीचे और ऊपर वाले पनालों का, वरसात और दिन-रात का शुद्धाशुद्ध जल वहता है, ढाल से कुछ ऊँचे एक वगल चतुरी चमार का पुश्तैनी मकान है।"—वह चतुरी; लखनऊ में हीवेट रोड पर ठंड मे वच्चे के साथ भूखी, सिकुड़ती पगली भिखारिन, पद्मदल (अर्थात् महिपादल) राज्य का विश्वम्भर जिसने पेट मल कर राजा को समझाया था, "भूखों मर रहा हूँ—खाने को कुछ नही है" (चतुरी चमार, पृ. ३७), 'तुलसीदास' के पीड़ित शूद्रजन —

चलते-फिरते, पर निःसहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय—

'दान' कविता का भिखारी—कंकाल शेष पर मृत्युप्राय— (अनामिका, पृ. २४)
'सेवा-प्रारंभ' के अकाल-पीड़ित नर-नारी—

दुवले पतले जितने लोग
लगा देश भर को ज्यों रोग,
दौड़ते हुए दिन में स्यार
वस्ती में—वैठे भी गीध महाकार (उप., पृ. १७६)

महायुद्ध के दौरान गहरे आर्थिक संकट के दिनो में महँगाई और भुखमरी के शिकार—

वेश-रूखे, अधर-सूखे,
पेट-भूखे, आज आये

हीन-जीवन, दीन-चितवन,
क्षीण आलंबन बनाये। (बेला, पृ. ६२)

ये सब साम्राज्यवाद से पीड़ित जन थे। फिर पंचवर्षीय योजनाओं और अकूत विदेशी ऋण से समृद्ध नौकरशाही के स्वाधीन भारत मे निर्धन किसान—

सूख गया किसान एकाकी
रोया, रही न लेखा बाकी,
कर्म धर्म को करके साखी
दुहरी डगर भरी, शीत की।
गहरी विभावरी शीत की,
काँपी पाले से अरहर की।
डाली गुनागरी (शीत की) (सांध्यकाकली, पृ. ५६)

अभ्युदय काल से अन्तिम दौर तक निराला के मन पर ये दीन जन छाए रहे; उनके प्रति अगाध करुणा ही क्रान्ति की ओर उन्हें प्रेरित करती है। विप्लवी बादल से नया जीवन पाकर जो छोटे पौधे खेतो मे लहलहा उठते हैं, वे यही दीन जन हैं, निराला जिनके भविष्य के सपने देखते हैं।

निराला के चिंतन मे क्रान्तिकारी वीर और जनता का गहरा संबंध है, दोनो एक-दूसरे को परखते, एक-दूसरे की बात समझते है। विप्लवी वीर आतंकवादी नही, किसानों का पक्ष लेकर लडनेवाला क्रान्तिकारी है। फिर भी उसमें और किसान जनता में थोडा फासला है; वह जनता का ही अभिन्न अंग नही है। सन् '३० के बाद की रचनाओ मे यह फासला प्रायः खत्म हो जाता है। क्रान्ति करना क्रान्तिकारियो का ही काम नही है; क्रान्ति जनता करती है, तभी वह सफल होती है। यद्यपि निराला की प्रतीक-योजना मे विशेष अन्तर नही आया, फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उनकी क्रान्ति सम्बन्धी चेतना में परिवर्तन हुआ है और परिवर्तन यह हुआ है कि उनकी कविताओ में जनता की क्रान्ति-सम्बन्धी भूमिका और स्पष्ट हुई है, क्रान्ति का उद्देश्य और स्पष्ट हुआ है। यह पुराने ढंग की सामंत-विरोधी क्रान्ति नही जैसी फ्रान्स मे हुई थी, न यह अंग्रेजों को निकालकर पूंजीवाद के विकास की क्रान्ति है जैसी दूसरे महायुद्ध के बाद अनेक उपनिवेशो मे हुई, यह नये ढग की जन-क्रान्ति है जिसमें न केवल गाँव के किसान वरन् शहर के शोषित जन भी सत्ता पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ते है। भारत के ऐतिहासिक विकास के पूर्णतः उपयुक्त यह समाजवाद की ओर उन्मुख सामन्त-विरोधी क्रान्ति है। समाजवाद की ओर उन्मुख इसलिए कि न केवल जमीदारी-जागीरदारी खत्म की जाएगी, वरन् आंशिक रूप से पूंजीपतियों के अधिकार भी नियन्त्रित किए जाएँगे।

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ—बेला की इस कविता मे पहली पंक्ति से ही संकेत मिलता है कि जनता स्वयं क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल हो रही है।

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला—

इन पंक्तियों में क्रान्ति का सामंत-विरोधी रूप देखा जा सकता है।

सारी संपत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की वने—

यहाँ क्रान्ति का वह रूप है जो समाजवाद की ओर उन्मुख है। यह गांधीवादी सत्ता-परिवर्तन नहीं है, यह तथ्य निराला ने कविता की अन्तिम पंक्ति से स्पष्ट कर दिया है :

काँटा काँटे से कढ़ाओ।

यह स्वाभाविक था कि कांग्रेसी नेता जिस ढंग से स्वाधीनता आन्दोलन का संचालन कर रहे थे, और जिस तरह की सौदेवाज़ी करके अंग्रेज़ों से स्वाधीनता लेने जा रहे थे, उससे निराला को सन्तोष न हो। अनेक रचनाओं मे उन्होने इस समझौते की नीति का विरोध किया। **पटली है वैठने को गोरे की साँवले से**—**बेला** में इस तरह की अनेक पंक्तियाँ हैं जिनसे समझौतावादी नीति के प्रति निराला की भावना व्यक्त होती है। निराला ने इससे भी वड़ा काम यह किया कि दूसरे महायुद्ध के वाद भारत में जो क्रान्तिकारी उभार आया, उसका अनुपम चित्रण किया। उन सभी क्रान्तिप्रेमी कवियों के पास प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी उभार देखने की निगाह नही होती जो एक अव्यक्त, अगोचर इष्टदेवी के रूप मे क्रान्ति का स्तवन करते है। निराला सच्चे क्रान्तिकारी कवि थे, इसका प्रमाण **नये पत्ते** मे 'झींगुर डटकर वोला', 'छलाँग मारता चला गया', 'डिप्टी साहव आए', 'महगू महगा रहा' जैसी कविताएँ हैं जिनमें अपने अधिकारों के लिए संघवद्ध होते हुए किसानों के संघर्ष और उस संघर्ष की कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। इनमे विप्लवी वादल का गर्जन-तर्जन नही, कोई प्रतीक-व्यंजना नही, यथार्थवाद की भूमि पर—भाववोध के नये स्तर पर—इनकी रचना हुई है और इन्ही मे क्रान्तिकारी उभार का वह ठोस चित्रण है जो क्रान्ति सम्वन्धी कवि-कल्पना से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

निराला और अन्य वेदान्ती क्रान्तिकारियों मे अन्तर यह है कि निराला भौतिक समृद्धि को वांछनीय समझते हैं। व्यापार, उद्योगीकरण, अन्य देशों से आर्थिक सम्वन्ध—ये सव निराला के चिन्तन मे सफल क्रान्ति के अन्तर्गत हैं। उनका एक गीत है :

जागो, जीवन-धनिके!
विश्व-पण्य-प्रिय वणिके! (**गीतिका**, पृ १५)

धनिका, वणिका, विश्व-पण्य —गीत के ये शव्द सार्थक है। समृद्धि की इस देवी से निराला की प्रार्थना है कि वह जनता के लिए 'वहु जीवनोपाय' प्रस्तुत करे। जीवनोपाय जुटाने के लिए विश्व-पण्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। लोग कहते है कि सरस्वती और लक्ष्मी में वैर है किन्तु निराला इस वैर-भाव की धारणा को स्वीकार नहीं करते। सच्चा ज्ञान जनता की भौतिक उन्नति का विरोधी नही,

भौतिक उन्नति के नये मार्ग दिखाने वाला है। जिसे वह वणिके और धनिके कहकर संबोधित करते हैं, उसी को भारती, ज्ञान की देवी भी मानते हैं :

भारति, भारत को फिर दो वर
ज्ञान-विपणि-खनिके।

जो लक्ष्मी है, वही सरस्वती है; जो ज्ञान है, वह भौतिक समृद्धि के लिए भी है। 'भक्त और भगवान' कहानी मे इस प्रतीक-योजना की पुष्टि हुई है। भक्त की पत्नी का नाम सरस्वती था; स्वप्न में वह पति से कहती है, "मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी वन गई हूँ।" (चतुरी चमार, पृ. ७६)। इस पर निराला की टिप्पणी है कि यह छल भक्त को हँसाने के लिए था। अवश्य छल था किन्तु यह छल उसकी आकाक्षा की पूर्ति है कि जो उसके लिए सरस्वती है, वह लक्ष्मी भी हो। 'राम की शक्तिपूजा' में शक्ति की जो मौलिक कल्पना प्रत्यक्ष होती है, उसमें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों साथ-साथ है :

हैं दक्षिण मे लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग।

गीतिका के जागो जीवन-धनिके की तर्कसंगत परिणति 'राम की शक्तिपूजा' में है।

क्रान्ति की सार्थकता जनता की भौतिक समृद्धि मे है—यद्यपि यह उसकी एकमात्र सार्थकता नही; वेदान्ती क्रान्तिकारियों से निराला के चिन्तन की यह भिन्नता है।

गांधीवाद से निराला के चिन्तन की भिन्नता हिंसा-अहिंसा के प्रश्न को ही लेकर नही है, क्रान्ति के भीतरी सामाजिक तत्त्व को लेकर भी है। निराला आधुनिक वैज्ञानिक साधनो के, देश के नवीन औद्योगिक विकास के पक्षपाती हैं। उनका भारत कुटीर-उद्योगो के स्वायत्त ग्राम-समाजो का भारत नही है। गीत गुंज में आधुनिक भारत के नव-निर्माण की रूपरेखा यह है :

वदला जीवन जग का; गदला
वहा, देख, देखते कहाँ गया !
विद्या की आँखो नूतन कला,
नये गीत, नये वाद विच्छुर,
नये यान, यात्री नये नये,
नये प्राण, नई रेल-पेल के;
वैज्ञानिक साधन सवके लिए। (पृ. 53)

जग का जीवन वदला; व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुआ। जो कुछ गँदला था, सामन्ती अवशेप, पुरानी रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास, वह सव वह गया। नये वाद, नये गीत, नई कला, इनके साथ नये यान, नये यात्री,- वैज्ञानिक साधनो का उपयोग आरम्भ हुआ।

आधुनिक विज्ञान से पूर्ण लाभ उठाते हुए भारत का विकास हो, निराला की यह धारणा विश्व-पण्य वाली कल्पना के अनुरूप है : औद्योगिक विकास न होगा तो

दुनिया से व्यापार सम्बन्ध कैसे कायम होंगे ?

गांधीवाद से निराला का मतभेद वैज्ञानिक साधनों के उपयोग को लेकर है। साथ ही वह वैज्ञानिक साधनों का उपयोग 'सब के लिए' चाहते हैं, मुट्ठीभर पूंजीपतियों के लिए नहीं। उनका यह विचार कि **सारी सम्पत्ति देश की हो**—इस धारणा के अनुरूप है। निराला पूंजीपतियों को जनता की सम्पत्ति का संरक्षक नहीं मानते। वह सम्पत्ति के—वड़े उद्योग-धन्धों के—राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हैं: **देश को मिल जाय वह पूंजी तुम्हारी मिल में है। (वेला, पृ. ७५)**

जवाहरलाल नेहरू वैज्ञानिक साधनों के उपयोग, देश के उद्योगीकरण, वड़े उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे थे। किन्तु उनकी कथनी और करनी मे वड़ा अन्तर था। उनके नेतृत्व में देश के उद्योगीकरण से मुट्ठी भर आदमियों ने लाभ उठाया, पूंजीवाद का तेज़ी से विकास हुआ, सम्पत्ति के एकाधिकारी रूप आँखों के सामने आए, विदेशी ऋण पर निर्भरता, नौकरशाही की समृद्धि भी देखने को मिली।

अर्थ के गर्त में सर्प जैसे पड़े
धनिक जन सजग होकर हुए है खड़े—

वेला के इस गीत (पृ. ७७) तथा अन्य रचनाओ में निराला जनता को देशी पूंजीवाद के प्रति वार-वार सावधान करते हैं। सन् '४५-'४६ में महात्मा गांधी और पं. जवाहरलाल नेहरू के भाषणों से, उनकी नीति से, **नये पत्ते** की रचनाओं मे निराला ने जो कुछ कहा है उसकी तुलना की जाय, तो यह सत्य प्रकट होगा कि क्रान्तिकारी जन-उभार के समय गाधी-नेहरू की राजनीति एक छोर पर थी, तो निराला की राजनीति दूसरे छोर पर।

निराला का क्रान्तिकारी दृष्टिकोण उन संकीर्ण राष्ट्रवादियों से भिन्न है जो भारत की उपासना करते हुए भारतीय जनता का दुख-दर्द भूल जाते हैं, जिन्हें सामंती पूंजीवादी उत्पीड़न दिखाई नही देता, जो देश के विकास के लिए समाजवाद को अनावश्यक समझते है। निराला जिस क्रान्ति का स्वप्न देखते है, उसकी परिणति वर्ग-उत्पीड़न को समाप्त करके समाजवादी व्यवस्था की रचना में है। स्वभावत: संकीर्ण राष्ट्रवादी न होकर निराला रंग, जाति, भाषा से परे मनुष्यमात्र के वन्धुत्व की घोपणा करते है :

मानव मानव से नही भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नही क्लिन्न;
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर। **(अनामिका, पृ. १९)**

किसी भी सरोवर में कमल खिले, है वह कमल ही। काला हो या गोरा, यूरोपीय

हो चाहे अमरीकी, है वह मनुष्य। सम्राट् एडवर्ड अष्टम् ने राजसिंहासन छोड़कर —निराला की दृष्टि में—बीसवी सदी की नई अन्तर्राष्ट्रीय सभ्यता का परिचय दिया था।

जन-जन के जीवन में सहास,
है नहीं जहाँ वैशिष्ट्य धर्म का
भ्रू विलास—

वहाँ सिंहासन त्यागने पर एडवर्ड का स्थान है। वैशिष्ट्य-धर्मों से परे जहाँ जनता का जीवन है, वहीं सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता है। इस कारण एडवर्ड अष्टम् यूरोप और अमेरिका को मिलाने वाले है।

तुमसे हैं मिले हुए नव
योरप—अमेरिका।

जो वास्तव मे क्रान्तिकारी है, वह निराला की तरह संकीर्ण राष्ट्रवादी धारणाओं से मुक्त होगा।

निराला की क्रान्ति-सम्बन्धी कविताएँ औसत प्रगतिवादी रचनाओ से भिन्न है। प्रगतिवादी कवियों ने पूँजीवाद के खिलाफ तो बहुत लिखा लेकिन साम्राज्यवाद और उसके मुख्य सहायक सामन्तवाद के बारे में वे सामान्यतः चुप रहे। निराला-साहित्य में भारतीय क्रान्ति का सामन्त-विरोधी पक्ष जैसा उभरकर आया है, वैसा प्रेमचन्द के अलावा किसी हिंदी लेखक की रचनाओं में उभरकर नही आया। औसत प्रगतिवादियों और निराला मे यह अन्तर है कि अंग्रेजी राज मे पूँजीवाद को कोसनेवाले कविगण भारत के स्वाधीन होने पर समाजवाद की बातें भूल गए। अनेक लेखकों ने समाजवाद को तानाशाही का पर्यायवाची मानकर तरह-तरह से पूँजीवाद का समर्थन किया। निराला की क्रान्ति सम्बन्धी भावधारा सन् '४७ के बाद भी प्रवाहित रहती है।

अपने युग की विचारधाराओ के बीच निराला की दृष्टि उन्नत है। वह परिवेश को देखती है, भविष्य को भी। प्रभामंडलो से आतंकित न होकर वह सामाजिक सम्बन्धों के आन्तरिक सूत्रों तक पहुँचती है। इसीलिए क्रान्तिकारी कवियों मे निराला का स्थान अन्यतम है।

नया मानवतावाद

निराला हिंदी-साहित्य मे नये मानवतावाद के प्रतिष्ठापक है। संसार की आलोचना करके वैराग्य की शरण लेने वाला मनुष्य उनके साहित्य का केन्द्रबिन्दु नहीं है।

उनका मानव साधारण मनुष्य की तरह जीता है, सांसारिकता से बँधा हुआ कर्म करता है, संघर्ष में भाग लेता है और उसके कर्म और संघर्ष का लक्ष्य इसी संसार में अपना या दूसरों का कल्याण है। निराला-साहित्य मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम है; अन्य मनुष्यों की तरह पराजय की पीड़ा और हानि का अनुभव उन्हें भी होता है। यह पीड़ा और हानि नर रूप में ब्रह्म की लीला नही है; वह नर का सहज मानवोचित व्यवहार है। निराला के लिए वेदान्त का अर्थ राजनीतिक संघर्ष से कतराना नहीं, उसमें भाग लेना है। उनके साहित्य के केन्द्र मे वह मनुष्य है जो श्रम करता है, सम्पत्ति और सुख के साधनों से वंचित है, विपम परिस्थितियों से जूझता है, गिरता है, फिर आगे वढ़ता है। निराला हिंदी-साहित्य में मनुष्य की कर्मठता, वीरता, धैर्य, आन्तरिक द्वंद्व, उसकी अपार जिजीविपा के चित्रकार है।

निराला का मानवतावाद हिंदी साहित्य मे उनके अभ्युदयकाल से आरम्भ होता है और अन्तिम दौर तक निरन्तर गहरा होता जाता है। साहित्य में उन्होने जिस मानव की प्रतिष्ठा की है, वह रीतिवादी काव्य के अतिरंजित वर्णनों का नायक नही है; वह अनेक क्रान्तिकारी कवियों का अतिमानव नही है जिसका चिर-उन्नत शिर देखकर हिमालय का शिखर नतशिर हो जाता हो। निराला ने जिस वीरता का चित्रण किया है वह जीवन-संग्राम की वीरता है, वह उस मनुष्य की वीरता है जो दु:ख और पराजय, संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अवरोधों से भली-भाँति परिचित है।

'वादल राग' का विप्लवी वादल अतिमानव के सवसे निकट है। उसके वज्र-प्रहार से भूधर क्षत-विक्षत होते हैं, समाज के आतंकवादी शोपक उसकी वज्र-हुंकार से ही काँप उठते है। किन्तु यह विप्लवी वीर दु:ख से परिचित है, दूसरो के दु:ख से ही नहीं, स्वयं भी दु:ख का अनुभव कर चुका है। निराला की कविता यों शुरू होती है :

> तिरती है समीर-सागर पर
> अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
> जग के दग्ध हृदय पर
> निर्दय विप्लव की प्लावित माया।

एक तरफ जग का दग्ध हृदय है, दूसरी तरफ वादल स्वयं दुख की छाया है। नीचे अस्थिर सुख, ऊपर दुख की छाया—यह है निराला का क्रान्तिकारी वीर। दुख की इस अनुभूति के कारण वह अतिमानव वनने से वच जाता है।

प्रलय का सा ताण्डव करती हुई धारा जव वहती है तव सारे वन्धन ढीले हो जाते हैं। ये किसके वन्धन है? वड़े दम्भ से जो भूधर खड़े हुए थे, वे उस धारा के ही मार्ग के अवरोध थे। वे उसे वालिका समझे थे; अव उनके उपलखंड वहाती हुई वह क्षुद्र धारा कालिका वन गई है। कवि ने जिस करुणा-क्रन्दन के रुकने की वात कही है, वह क्या इसी वालिका का करुणा-क्रन्दन नही है? धारा क्रान्ति की अतिमानवी देवी नही है; दुख से परिचित, सतत विकासमान वालिका से कालिका

बनने वाली नारी है।

'आवाहन' की श्यामा साक्षात् देवी है; अगुर उसके मार्ग के अवरोध हैं किन्तु वे नगण्य हैं। उनके मार्ग में एक अन्य अपराजेय शत्रु है—मृत्यु। श्यामा का नृत्य अमरता और मृत्यु का कभी न खत्म होने वाला संघर्ष है:

> भैरवी भेरी तेरी झंझा
> तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा।

जैसे राम और रावण का युद्ध हो, वैसा कुछ श्यामा से मृत्यु का यह पंजा लड़ाना है। मृत्यु परास्त हो जाएगी, केवल अमर जीवन रहेगा, ऐसा कोई संकेत कविता में नहीं है। विप्लवी बादल यदि युग की छाया है तो 'आवाहन' की श्यामा मृत्यु का साक्षात्कार करने वाली मानव-शक्ति है। मानव-शक्ति इसलिए कि जो मानवेतर है, उसके लिए मृत्यु नहीं। संसार के शरीरधारी जीव ही मर्त्य हैं; मृत्यु उन्हीं के लिए है। मृत्यु से उन्हीं का संघर्ष है।

जागो फिर एक बार (२) के गुरु गोविन्दसिंह इसी मृत्यु के भय पर विजयी होते हैं, दूसरों को विजयी होना सिखाते हैं:

> अभय हो गए थे तुम
> मृत्युञ्जय व्योमकेश के समान,
> अमृत सन्तान!

मृत्यु से श्यामा के पंजा लड़ाने वाली बात यहाँ और स्पष्ट हो गई है। मृत्यु से संघर्ष है मानव-शक्ति का। गुरु गोविन्दसिंह का मार्ग अवरोधों से भरा हुआ है और इन अवरोधों का सारतत्त्व है एक महा अवरोध—मृत्यु-भय। इस अवरोध पर विजय पाने के बाद--

> सवा सवा लाख पर
> एक को चढ़ाऊँगा,
> गोविन्दसिंह निज
> नाम जब कहाऊँगा—

यह अतिमानव वीर की अतिशयोक्ति नहीं रह जाती।

जागो फिर एक बार (२) में मनुष्य की वीरता के साथ उसकी कायरता की अनुभूति, इस अनुभूति के साथ ग्लानि और आक्रोश के भाव छिपे हुए हैं। सिंहों की माँद में आया है आज स्यार—इस पंक्ति में ये सब भाव ध्वनित हैं। इस पंक्ति और उनमें ध्वनित भावों की आवृत्ति 'महाराज शिवाजी का पत्र' में है:

> सिंह भी क्या स्वांग कभी
> करता है स्यार का?

जागो फिर एक बार (२) से अधिक शिवाजी के इस पत्र में देशवासियों की निष्क्रियता, पराधीनता से समझौता, आत्मसम्मान के अभाव के प्रति रोष और ग्लानि के भाव सजग हैं।

किंतु हाय ! वीर राजपूतों की
गौरव-प्रलम्ब ग्रीवा
अवनत हो रही है आज तुमसे महाराज…
हाय री यशोलिप्सा !
अन्धे की दिवस तू—
अन्धकार रात्रि सी।

औरंगज़ेब को विजयी बनाने मे राजपूत सामन्तों के योगदान से यहाँ ऐसी आत्म-ग्लानि का भाव उदय हुआ है, जो व्यक्तिगत न होकर राष्ट्रीय है। शिवाजी का प्रयत्न इस आत्मग्लानि के भाव को दूर करने के लिए है। यह प्रयत्न सरल नही, अतिमानव का लोकोत्तर चमत्कार नही। 'राम की शक्तिपूजा' के राम जिस संशय से ग्रस्त होकर कुछ समय के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाएँगे, उसका पूर्वाभास 'महाराज शिवाजी को पत्र' में है :

सोचता हूँ अपना कर्त्तव्य अव—
देश का उद्देश,
पर, क्या करूँ मैं,
निश्चय कुछ होता नही—
द्विधा में पड़े हैं प्राण।

द्विधा मे अतिमानव वीरों के प्राण नही पड़ते; उनके लिए इच्छा करना भर काफ़ी है, विजय सुलभ होने में देर नही लगती। निराला के शिवाजी मानव है, अतिमानव नही। द्विधा का कारण यह है कि यदि वह राजा जयसिंह से मिल जाएँ तो उनके शत्रु कहेगे कि डरकर मिल गया है; यदि युद्ध करें तो दोनों ओर हिंदुओं का खून बहेगा। इस द्विधा की स्थिति पर विचार करते हुए हृदय से आह निकल पड़ती है :

हाय री दासता !
पेट के लिए ही
लड़ते हैं भाई-भाई !

देश की परिस्थितियों से उत्पन्न हुई वेदना शिवाजी का हृदय वेध डालती है। साथ ही 'बादल-राग' के विप्लवी वीर की तरह यहाँ भी शिवाजी को दूसरों के दुख की मार्मिक अनुभूति हुई है। जिस योद्धा को जनता के दुख की अनुभूति नही, उसकी वीरता क्रूरता है, वीरता का प्रदर्शन मात्र है। रीतिवादी कवियों के वीर-रस में इस दुखात्मक अनुभूति का अभाव है; निराला के उदात्त, करुणामिश्रित, ओजपूर्ण काव्य और उस शास्त्रानुमोदित परम्परागत वीर काव्य में यही अन्तर है।

शिवाजी राजपूत वीर जयसिंह को सीख देते है :

तपा तलवार
सन्ताप से निज जन्म भू के
दुखियों के आँसुओं से
उस पर तुम पानी दो।

क्रान्तिकारी वीर की तलवार पर जो पानी चढ़ाया जाता है, वह दुखियों की आँखों मे है। जिसने वे आँखें नही देखीं, वह वृथा ही जन्मभूमि का नाम लेता है, वह जन्मभूमि के सन्ताप से परिचित नही।

'धारा', 'आवाहन', 'वादल राग' (६), 'जागो फिर एक बार' (२) और 'महाराज शिवाजी का पत्र'—इन कविताओं को इस क्रम से पढ़ा जाय तो निराला के मानवतावाद के विकास की दिशा समझ मे आ जाएगी। अतिमानव की जो झलक प्रारंभिक रचनाओ मे है, वह क्रमश. क्षीण होती जाती है; सामान्य मानवता का वोध और गहरा होता जाता है। जैसे-जैसे आन्तरिक ग्लानि और पीड़ा का वोध तीव्र होता है, वैसे ही जिन परिस्थितियो से संघर्ष करना है, उनकी रूपरेखा और साफ़ दिखाई देती है। उसी अनुपात मे मनुष्य की दृढ़ता, सघर्ष मे पैर जमाए रहने की क्षमता भी मानो वढ़ती जाती है।

निराला के नायक योद्धा हैं, कवि है, साधारण श्रमिक और सम्पत्तिहीन भिखारी हैं। तुलसीदास कवि हैं; उनका कवि-कर्म किसी भी शस्त्रधारी योद्धा के कर्म से कम वीरतापूर्ण नही है। तुलसीदास ने अपना कवि-कर्म तव आरम्भ किया जव देश के समस्त योद्धाओ के अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गये थे। निराला की 'तुलसीदास' रचना कवि-कर्म की उदात्त विजयगाथा है। सव कुछ व्यर्थ हो जाय, काव्य-साधना कभी व्यर्थ नही होती। जो वीर थे, उन्होंने वीरगति प्राप्त की; जो कायर थे, वे नई सत्ता के स्तम्भ वने। देश के उद्धार का वीड़ा उठाया कवि ने। आसक्ति, कुतर्क और विरोधी सस्कारो से जूझते हुए, रत्नावली की सहायता से, तुलसीदास अपने लक्ष्य की ओर वढ़ते हैं।

राम योद्धा हैं, ज्ञानी हैं, राजा हैं। पराजय के क्षणो मे सीता की छवि राम के मन मे कौध जाती है। तुलसीदास की मुक्ति रत्नावली को छोड़ने में थी, राम की सिद्धि सीता को पुन: प्राप्त करने मे है। राम का लक्ष्य पापियो का उद्धार करना अथवा पुण्यात्माओं के लिए स्वर्ग रचना नही; राक्षसो का पराभव, लका मे विभीषण का राजतिलक, सीता के साथ अयोध्या लौटकर राज्य सँभालना यही लौकिक उद्देश्य है।

राम अकेले नही है, उनके साथ एक विशाल सेना है, लक्ष्मण हैं, सौ शक्तियों में महाशक्ति महावीर है। चतुरी चमार भी अकेला नही है, उसके साथ गाँव के और किसान हैं, स्वय कवि निराला है। चतुरी श्रमिक है, उस संसार को वहुत कम पहचानता है जिससे उसे संघर्ष करना है। लेकिन वह जीवन-संग्राम मे परास्त होकर भागता नही है। उसकी आँखो मे आँसू नही, होठों पर मुसकान है। सत्तू वाँधकर, रेल छोड़कर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर, दूसरी पेशी के वाद पैदल ही लौटकर हँसता हुआ चतुरी वोला—"काका, जूता और पुरवाली वात अव्दुल-अर्ज मे दर्ज नही है।"

'गोदान' में धनिया जहाँ पछाड़ खाकर गिरती है, मानवतावाद मे उसके वाद की कड़ी है निराला का चतुरी चमार।

चतुरी एक पूरे आन्दोलन के वहाव के साथ आगे वढ़ता है किन्तु 'देवी' कहानी की पगली भिखारिन अकेली है। सड़क है, जुलूस है, नेता है, फिर भी पगली अपने वच्चे के साथ अकेली है। सामने होटल में कवि हैं, उनके मित्र हैं किन्तु इनकी सहायता सीमित है। वे जीवन-संग्राम में पगली की रक्षा नही कर पाते। एक शक्ति की पूजा 'राम की शक्तिपूजा' में है, एक शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन 'देवी' कहानी में है। निराला की यह शक्ति भी खूब है। अप्रत्याशित अवसरों पर अद्‌भुत रूपों में प्रकट होती है। उनकी शक्तिपूजा का राष्ट्रीयता से, जनतंत्र से, मानवतावाद से क्या सम्वन्ध है, इन पंक्तियों मे देखा जा सकता है।

"महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे वढ़कर ज्ञान देने वाला और कौन-सा होगा? राम, श्याम और संसार के वड़े-वड़े लोगों का स्वप्न सव इस प्रभात की किरणों में दूर हो गया। वड़ी-वड़ी सभ्यता, बड़े-बड़े शिक्षालय चूर्ण हो गए। मस्तिष्क को घेरकर केवल यही महाशक्ति अपनी महत्ता मे स्थित हो गई। उसके वच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, और उसमें—क्या कहूँ, क्या देखा।"

भारत का एक रूप गदाधारी महावीर हैं, दूसरा रूप पगली का यह वच्चा है। एक महाशक्ति वह है जो राम के मुख में लीन हो जाती हैं; दूसरी महाशक्ति यह हैं जो पगली के रूप में प्रत्यक्ष हैं। महाशक्ति प्रत्यक्ष होती है पगली के जीवन-संघर्ष में, उसके अटूट धैर्य, उसकी अपराजेय वीरता में। यह वीरता साहित्य में स्वीकृत नही। यह उस महाशक्ति की वीरता है जिसके आगे सभ्यता और शिक्षालय चूर्ण हो जाते हैं। जो साहित्य इस सभ्यता और इन शिक्षालयों से वँधा हुआ है, उसमें वह वीरता स्वीकृत नही है। निराला का मानवतावाद उसी वीरता का प्रतिष्ठापक है, यही उसकी विशेषता है।

वीरता के साथ दुख की अनुभूति। पगली की वीरता अपने लिए, अपने वच्चे के लिए है; उसे अपने दुख का वोध है, अपने वच्चे के दुख का भी। वह पगली है, गूँगी है, फिर भी अत्यन्त सहृदय है। सहृदयता के विना दुख का वोध नहीं होता।

"पेड़ की छाँह या किसी खाली वरामदे में दोपहरी की लू में ऐसे ही एकटक कभी-कभी आकाश को वैठी हुई देख लेती होगी।' मुमकिन है, इसके वच्चे की हँसी उस समय उसे ठंडक पहुँचाती हो। आज तक कितने वर्षा-शीत-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नही। लोग नैपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते है। पर यह कितनी वड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता।"—यह उसकी वीरता और दुख की अनुभूति का रूप है।

"डेढ़-दो साल के कमज़ोर वच्चे को माँ एक मूक भाषा सिखा रही थी—आप जानते हैं, वह गूँगी थी। वच्चा माँ को कुछ कहकर न पुकारता था, केवल एक नज़र देखता था, जिसके भाव में वह माँ को क्या कहता था, आप समझिए; उसकी माँ समझती थी;"—यह उसकी सहृदयता का रूप है।

पगली का संघर्ष जितना मानव-समाज से है, उतना ही प्रकृति से। जो महाशक्ति पगली मे प्रत्यक्ष होती है, वह मानवशक्ति ही है क्योकि प्रकृति के आगे

उसकी एक नही चलती। डवल निमोनिया में उसकी मृत्यु होती है।

'चतुरी चमार', 'देवी', 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा'—ये सब तीन-चार साल के भीतर की रचनाएँ है जो वाहर से भिन्न दिखने पर भी आन्तरिक रूप से परस्पर सम्बद्ध है। इन सभी मे विभिन्न स्तरों पर मनुष्य के संघर्ष और उसकी वीरता की कहानी है। इस सघर्ष से जूझते हुए मनुष्य मृत्यु के निकट पहुँचता है, शरीर क्षीण और ध्वस्त हो जाता है, फिर भी भीतर की दमक कम नही होती। दुर्बल, संघर्परत, मृत्युग्रस्त मनुष्य भी कितना सुन्दर हो सकता है!

"मैं देख रहा था, ऊपर के धुएँ के नीचे दीपक की शिखा की तरह पगली के भीतर की परी इस संसार को छोड़कर कही उड़ जाने की उड़ान भर रही थी ...मेरी आँखों को उसमे वह रूप देख पडा, जिसे मैं कल्पना मे लाकर साहित्य में लिखता हूँ; केवल वह रूप नही, भाव भी।" यह उस पगली भिखारिन का सौन्दर्य है।

मृत्यु से पहले जीवन की यही दिव्य आभा निराला ने कुल्ली के दुर्बल क्षीण शरीर मे देखी।

"देखा, चेहरा एक दिव्य आभा से पूर्ण है, लेकिन देह पहले से दुवली, जैसे कुल्ली समझ गए है, जीवन की संध्या हो गयी है, अव घर लौटना है। कविता का दिव्य रूप और भाव सामने जड शरीर मे देखकर पुलकित हो उठा।"

'राम की शक्तिपूजा' मे युद्ध का जैसा रोमाचकारी वर्णन है, वैसा यहाँ कुछ नही है। फिर भी कुल्ली योद्धा है। रूढिवादियों का विरोध सहते हुए मुसलमान स्त्री से विवाह करते हैं, अछूत वालको को पढाते है, राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं की उपेक्षा की चिन्ता न करके अकेले ही अपने मार्ग मे आगे वढ़ते है। कुल्ली ने शक्तिपूजा नही की, कोई शक्ति उनके मुख में विलीन नहीं हुई; उनमें महाशक्ति प्रत्यक्ष नही हुई, निराला को उनमें 'कविता का दिव्य रूप' दिखाई देता है, उस कविता का दिव्य रूप जिसकी साधना तुलसीदास ने की थी, जिसका स्रोत निराला के लिए मनुष्य के दुख और संघर्ष में था।

कुल्ली को देखकर निराला ने लिखा—"मनुष्यत्व रह-रहकर विकास पा रहा है। देखकर मैंने सिर झुका दिया।"

'राम की शक्तिपूजा' के वाद यों निराला का मानवतावाद निरन्तर विकसित हो रहा था। जिस शक्ति के आगे उनका सिर झुका था, वह मनुष्य की शक्ति थी। वही अव उनकी कविता, उनकी सरस्वती थी।

कुल्ली के सगे-भाई-जैसे विल्लेसुर है। उनके मन का ढाँचा पगली भिखारिन के दिमाग से कही मिलता-जुलता है—कुछ सनकी, कुछ वेवकूफ—पर जीवट मे वह कुल्ली जैसे हैं। ब्राह्मण वाली प्रतिष्ठा की चिन्ता न करके वकरियाँ पालते हैं, सारे गाँव का मुकावला करते है। जीवन-सघर्ष का उद्देश्य, वहुत सीधा सा, अपने अस्तित्व को कायम रखना है। निराला विल्लेसुर की दु:खानुभूति और वीरता के वारे मे कहते है: "विल्लेसुर, जैसा लिख चुके है, दुख का मुँह देखते-देखते उसकी

डरावनी सूरत को बार-बार चुनौती दे चुके थे। कभी हार नहीं खाई।" कथा के अनेक पृष्ठों मे जो चित्रित किया गया है, भाव रूप में यही उसका सारांश है।

अप्सरा का चंदन, अलका का प्रभाकर, **चोटी की पकड़** का दूसरा प्रभाकर, **प्रभावती** की जमुना, **काले कारनामे** का मनोहर विभिन्न रूपों मे जनता के उसी वर्ग की सेवा करते है जिसके प्रतिनिधि चतुरी, कुल्ली और बिल्लेसुर है। अधूरे उपन्यास **चमेली** में, **नये पत्ते** की कविताओ मे निराला इसी वर्ग के उत्थान, संघर्ष और कठिनाइयों का चित्रण करते हैं। निर्धन, निम्नतम भारतीय जनता का जीवन-संघर्ष—यही निराला के मानवतावाद की अन्तर्धारा है।

निराला ने साहित्य मे जिस मानवतावाद की प्रतिष्ठा की, उसके विकास का इतिहास भारतीय जन-आन्दोलन के उतार-चढ़ाव का इतिहास है। पहले दौर में निराला उस विप्लवी वीर के गीत गाते है जिसमें अतिमानव की झलक है। सन् '३० के बाद की रचनाओं मे यह झलक खत्म हो गई है, मनुष्य अपने आन्तरिक और बाह्य संघर्षो की पूर्णता मे चित्रित किया जाता है। सन् '३०-'४० के दशक की रचनाओं में निराला की मानवीय सहानुभूति और गहरी होती है, मृत्यु की पूर्व-वेला में जीवन की आखिरी दमक का सौन्दर्य वह मनुष्य मे देखते है। दिव्य शक्ति वाला भाव पीछे छूट जाता है, मानव शक्ति का रूप ही आँखो के सामने रह जाता है। दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद एक नई क्रान्तिकारी भावना निराला के मानवतावाद मे घुल-मिल जाती है। करुणा से अधिक इसमें आक्रोश है; दुख की अनुभूति से अधिक इसमें सामूहिक संघर्ष की ललक है। स्वाधीन भारत मे जनता के क्रान्तिकारी उभार समाप्त हो गए; निराला के साहित्य मे वह ललक भी न रही किन्तु एक थिराई हुई करुणा, जिन मनुष्यो की मुक्ति के सपने उन्होने सन् '४६ तक देखे थे, उनके प्रति गहरी सहानुभूति 'अर्चना' से 'सान्ध्य-काकली' तक देखने को मिलती है।

आराधना में कही गाँव के साधारण श्रमिको का चित्र है (**धान कूटता है**), कही हल जोतकर घर लौटने वाले किसान-परिवार का दृश्य है (**खेत जोतकर घर आए हैं**), कही 'नये पत्ते' के व्यंग्य बोल फिर सुनाई देते है (**मानव जहाँ बैल घोड़ा है**)—कहीं खिन्नता (**मानवदेव हाथ मलता है,**), कही निराशा (**बंद हुई जब उर की आशा, समर विजय की तब क्या आशा**), कही विजय में विश्वास (**मानव के तन केतन फहरे**), निराला की मानवीय करुणा निमित्त-भेद से अनेक रूपों में व्यक्त हुई है।

दुख और पराजय का ज्ञान, संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अवरोधो का चित्रण, मनुष्य के धैर्य और उसकी वीरता की अभिव्यंजना—निराला के मानवतावाद की विशेषताएँ हैं। उनके देशप्रेम से, उनकी क्रान्तिकारी भावना से, उनका मानवतावाद पूर्णतः संबद्ध है। इन तीनों को एक साथ देखने से ज्ञात होगा कि आधुनिक भारत की छवि कितनी गहराई से उनके साहित्य मे आँकी गई है। उस छवि के अनुरूप ही निराला-साहित्य की गरिमा का मूल्यांकन होगा।

नवनिर्माण और विनाश

निराला के साहित्य में कविता और क्रान्ति का गहरा सम्बन्ध है। उनके क्रान्तिकारी वीर या तो स्वयं कवि है, या कविता और संगीत के प्रेमी है। विप्लवी बादल के पास एक भेरी है जो अपने गर्जन से धनी वर्ग को कँपाती है, साथ ही उससे कोमल स्वर भी फूटते है, जिन्हे सुनकर पृथ्वी के हृदय से नये अंकुर फूटते हैं। बादल-सम्बन्धी अन्य कविता में इस मधुर कोमल संगीत का विस्तार से वर्णन है :

स्वरारोह, अवरोह, विघात,
मधुर मन्द्र, उठ पुनः पुनः ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन,
सुरभित उद्यान। (परिमल, पृ. १५५)

क्रान्ति के रचनात्मक और ध्वंसात्मक पक्षों की तरह कविता या संगीत भी दो तरह का है। 'उद्‌बोधन' कविता मे एक गर्जन-तर्जन वाला स्वर है :

गरज-गरज घन अन्धकार में गा अपने संगीत,
बधु, वे बाधा-बन्ध-विहीन (अनामिका, पृ. ६७)

इस स्वर के साथ पुराने बन्धनों का नाश, प्राचीन रूढ़ियो का ध्वंस, पीले पत्तो का झरना आदि क्रियाएँ सम्बद्ध है। दूसरा स्वर कोमल और रचनात्मक है :

पुनर्वार गाएँ नूतन स्वर, नव कर से दे ताल,
चतुर्दिक् छा जाए विश्वास।

'अनामिका' के **बादल गरजो** गीत मे यही दोनो प्रकार का संगीत है। गरजने वाला स्वर पहली पंक्ति से ही स्पष्ट है। आगे बिजली और वज्र रखनेवाला बादल ललित कल्पना का प्रेमी भी है :

ललित ललित काले घुँघराले,
बाल कल्पना के-से काले।

ललित कल्पना और क्रान्तिकारी कविता मे कोई आन्तरिक विरोध नही है। जो क्रान्तिकारी है, वह क्रान्ति के अलावा जीवन के अन्य कार्य भी करता है। वैसे ही कवि; क्रान्ति के गीत गाने के अलावा वह सौन्दर्य और शृंगार की रचनाएँ भी करता है। **परिमल** मे उन्होने बादल को लक्ष्य करके जो लिखा था—**आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास,** वही भाव 'अनामिका' वाले गीत मे है। जीवन मे ध्वंस है, रचना है, दुख है, सौन्दर्य और शृंगार है। निराला अपने साहित्य मे जिस कवि को प्रतिष्ठित करते है, वह समग्र जीवन को व्यापक दृष्टि से देखता है, एक ही पक्ष लेकर नही चलता।

अनामिका वाले गीत मे निराला ने कवि और क्रान्तिकारी मे तादात्मय स्थापित किया है :

विद्युत्-छवि उर मे, कवि, नव जीवन वाले !

सामाजिक क्रान्ति में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है; यह भी सत्य है कि सामाजिक क्रान्ति सार्थक तब है जब उससे भाषा और साहित्य का विकास हो। इसीलिए निराला-साहित्य मे कवि और क्रान्तिकारी का यह तादात्म्य है। स्वभावतः उनकी अनेक रचनाएँ ऐसी है जो समाज और साहित्य दोनो के सन्दर्भ मे सटीक बैठती है। **जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन**—'गीतिका' के इस गीत मे सामाजिक रूढ़ियों का विरोध है, साहित्यिक रूढ़ियों का भी। 'उद्बोधन' कविता मे नये-पुराने पत्ते साहित्य और समाज दोनो के लिए सार्थक प्रतीक है। साहित्य और समाज की रूढ़ियाँ परस्पर सम्बद्ध है; स्वभावतः जो परिवर्तन एक क्षेत्र मे होगा, वह दूसरे क्षेत्र को प्रभावित करेगा। फिर भी साहित्य की अपनी सत्ता है। यह सत्ता सापेक्ष रूप मे स्वतन्त्र है, साहित्य के परिवर्तन और विकास की अपनी समस्याएँ है। निराला साहित्य-जगत् की अपनी विशिष्ट क्रान्ति के कवि भी है।

साहित्य-जगत् की यह क्रान्ति एक ओर प्राचीन रूढियो का नाश करने वाली है, दूसरी ओर वह जीवन्त साहित्यिक परम्परा की रक्षक भी है। समाज की अपेक्षा साहित्य मे परम्परा की रक्षा के प्रति निराला का आग्रह अधिक है।

> विश्व की ही वाणी प्राचीन
> आज रानी बन गई नवीन— (**गीतिका**, पृ. ७८)

यहाँ पतझर के बाद वसंत में जैसे प्रकृति नया जीवन पाती है, वैसे ही प्राचीन साहित्यिक परम्परा नए युग में परिवर्तित होती हुई संवर्धित और विकसित होती है।

> फूटो फिर, फिर से तुम,
> रुद्ध कंठ सामगान ! (उप., पृ. ६८)

यहां ज्ञान और साहित्य की प्राचीन परम्परा ही पुनरुज्जीवित होकर पश्चिम के हिंसक साम्राज्यवाद को चुनौती देती है।

अन्य परम्परावादियो और निराला मे यह अन्तर है कि जहाँ बहुत-से संस्कृत-प्रेमियों के लिए आधुनिक भाषाओं के उत्थान के साथ भारतीय साहित्य की गरिमा लुप्त हो गई, वहाँ निराला के लिए नवीन भाषाओ का उत्थान नये विकास का सूचक भी है। संस्कृत और हिंदी, प्राचीन परम्परा और आधुनिक साहित्य परस्पर कैसे संवद्ध है, इसका विशद चित्रण 'नये पत्ते' की 'देवी सरस्वती' कविता मे है।

> राग रंग की रामायण दुख की गाथा से
> पूरी हुई ! सँभाले जैसे स्वर भाषा के
> अधिक मनोहर—

संस्कृत और हिन्दी का यह सम्बन्ध है। निराला इस कविता मे कालिदास, हर्ष आदि के साथ हिंदी कवियों को बराबरी वाला स्थान देते हैं। उनके आदर्श कवि तुलसीदास संस्कृत के नहीं, हिंदी के कवि है। वास्तव मे निराला तुलसीदास को जिस संस्कृति से संघर्ष करते हुए, प्रथमतः उससे प्रभावित होते, दिखाते है,—

अब स्मर के शर-केशर से झर
रँगती रज-रज पृथ्वी, अंबर;

वह वाल्मीकि-व्यास से भिन्न, संस्कृत की शृंगार-परम्परा है जिससे कालिदास का सीधा सम्बन्ध है।

हिंदी के आधुनिक साहित्य का विकास रीतिवादी रूढियों का तीव्र विरोध करते हुए ही सम्भव हुआ है। निराला में एक ओर तुलसी-कबीर-दादू-मीरा-रैदास के रिक्थ के प्रति सम्मान की भावना है, दूसरी ओर रीतिवादी रूढियो का तीव्र विरोध है। 'मित्र के प्रति' कविता (अनामिका, पृ. १०) मे हिंदी-साहित्य के इस आन्तरिक सघर्ष का चित्रण हुआ है। प्राचीनपंथी साहित्यप्रेमी नई कविता को नीरस मानकर उसकी रचना वंद करने को कहते है। निराला इस साहित्यिक द्वंद्व के चित्रण के लिए लू और बादल के क्रान्ति-सम्बन्धी परिचित प्रतीको का उपयोग करते है। ग्रीष्म के त्रास से जो जल सूखकर बादल बना था, वही अब नये साहित्य के रूप मे धरती पर बरस रहा है। 'मित्र के प्रति' कविता में जो बात विस्तार से कही गई है, वही अत्यत सारगर्भित, संक्षिप्त और प्रभावशाली ढग से, उन्ही प्रतीको की सहायता से इस कविता मे कही गई है:

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल;
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आलवाल;
बन्द हुआ गुञ्ज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम-उर बन्धु, नील-मेघ-माल।

(अनामिका, पृ. १६०)

इस साहित्यिक संघर्ष का केन्द्र निराला स्वयं थे; इसलिए ये कविताएँ जितनी सामान्य साहित्यिक संघर्ष पर घटित होती है, उतनी ही निराला के अपने विशिष्ट जीवन पर। **जला है जीवन यह**—निराला का जीवन जला है, हिंदी का जीवन जला है। निराला के मन की आशाएँ, उल्लास, विषाद, निराशा, वीरतापूर्ण कर्म, त्रास, दुःस्वप्न——यह सब कुछ कही-न-कहीं हिंदी के इस आन्तरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है। निराला के बिना हिंदी का यह संघर्ष नही समझा जा सकता, इस संघर्ष के बिना निराला नही समझे जा सकते; न व्यक्तित्व, न कृतित्व !

निराला का जीवन हिंदीमय है; हिंदी उनके लिए साहित्य-साधना का माध्यम है; अपने मे स्वयं एक साध्य है। भारत देश और इस देश की जनता की तरह निराला की आस्था, श्रद्धा, सर्वाधिक प्रेम का अधिष्ठान है भाषा। असह्य पीड़ा के क्षणो में वह सारा दुख **यह हिंदी का प्रेमोपहार** कहकर स्वीकार करते है, संघर्ष के विकट क्षणों मे अप्रतिहत विश्वास से वह भाषा का गौरव-गीत गाते है:

बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे भाषा अमृत-निर्झर,
उमड़ प्राणो से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर।

(गीतिका, पृ. ६४)

ये जो धरती से उठकर आकाश पर छा जाने वाले प्राणों के स्वर हैं, वे हिंदी भाषा

के स्वर हैं। छन्द की गति से, उदात्त शब्द-सौन्दर्य से, भाव-चित्र की गरिमा से निराला जिसका भविष्य चित्रित कर रहे है, वह आधुनिक हिंदी है। प्रशस्त परंपरा वाली, नवयुग में नवजीवन से दीप्त यह हिंदी-भाषा निराला के लिए किसी भी देवी-देवता से अधिक पूज्य है:

वन्दूँ पद सुन्दर तव;
छन्द नवल स्वर-गौरव!
जननि, जनक-जननि-जननि-
जन्मभूमि भाषे! (उप., पृ. ८१)

वह जननी है, माता और पिता की जननी है, अपनी और सब पूर्वजो की जन्मभूमि की वह भाषा है। निराला उस मातृभाषा की वंदना कर रहे हैं। इसी भाषा के वर्ण चमत्कार पर, उसके शब्दों के ध्वनि-सौन्दर्य पर वह रीझते है। आधुनिक हिंदी कविता मे यह भाषा अपना नया रूप पाती है:

वर्ण-चमत्कार;
एक-एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार। (उप., पृ. ९२)

जिसके पद-पद में नई भावधारा प्रवाहित है, उसी भाषा के अगणित गीत आकाश में गूंजते है। इसी भाषा के द्वार पर आकर निराला संघर्ष का सारा कष्ट भूल जाते हैं, वही उन्हें वह वर मिलता है जिससे अवसन्न अवस्था में भी मन प्रसन्न हो उठता है। रहस्यवादी को जो आनन्द ब्रह्मदर्शन से मिलता है, निराला को तीव्र दुखानुभूति के बाद, वैसा ही आनन्द भाषा की साधना के बाद, साहित्य मे सिद्धि प्राप्त करने पर मिलता है। ऐसा धीर विजयोल्लास का स्वर निराला मे भी अन्यत्र दुर्लभ है:

समझ क्या वे सकेंगे भीरु मलिन-मन,
निशाचर तेजहत रहे जो वन्य जन,
धन्य जीवन कहाँ,—मात:, प्रभात-धन,
प्राप्ति को बढ़ें जो गहें तव पद अमर—
प्रात तव द्वार पर,
आया, जननि, नैश अन्ध पथ पार कर। (गीतिका, पृ. १००)

निराला ने यह आत्मविश्वास सुदीर्घ संघर्ष के बाद प्राप्त किया है। आरंभ में कंठ रुद्ध है, राग अधूरा है, जिस मंदिर मे अनेक राग-रागिनियाँ गूंज रही है, वहाँ अपना गीत सुनाने का साहस नहीं होता। (अनामिका, पृ. ४०) मन का संकोच, कवि रूप में स्वीकृत होने की आशा, दुलार पाने की आकांक्षा—निराला सब कुछ उसी जननी से कहते हैं:

पहनो यह माला माँ, उर मे मेरे ये संगीत,
खेलें उज्ज्वल, जिनसे प्रतिपल थी जनता भयभीत।
(परिमल, पृ. ९५)

जनता की अवज्ञा, फिर भी कवि रूप में अपनाए जाने की लालसा, अपनी सीमित

प्रतिभा का विचार, फिर भी आत्म-समर्पण का बल—निराला की स्वतःस्फूर्त गेयता का अमोघ स्रोत है उनका भाषा-प्रेम।

धन्य कर दे माँ, वन्य प्रसून (गीतिका, पृ. ३४)—इस गीत का वन्य प्रसून कवि स्वयं है। हृदय में गन्ध है किन्तु दल बंद होने से बाहर नहीं निकली; निराला मलय स्पर्श की बाट जोहते है कि गंध बह निकले और वह प्रसून :

वंदना करे छंद में झूम।

भाषा की वंदना के प्रसंग में फूल वाले प्रतीक का उपयोग वह अकसर करते हैं।

अनगिनित आ गए शरण में जन, जननि,—
सुरभि-सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि !

(गीतिका, पृ. १८)

इस गीत में सुरभि-सुमनावली द्वारा वह कवियों की ओर संकेत कर रहे है या सामान्य जनों की ओर ? जिस जननी का स्मरण करते हैं, वह सरस्वती है या आदिशक्ति ? जैसे निराला की अनेक रचनाएँ साहित्य और समाज दोनों पर लागू होती है, वैसे ही उनके अनेक गीत सरस्वती और आदिशक्ति—भाषा और प्रकृति— दोनों पर लागू होते हैं। शक्ति और सरस्वती में निराला के लिए विशेष अन्तर नहीं। शक्ति एक है; भाषा के रूप में भी वह प्रत्यक्ष होती है। 'राम की शक्तिपूजा' में श्यामा के साथ सरस्वती है ही। जिस जननी की शरण में अनगिनत जन आए है, वह उस देवी से भिन्न नही जिसके लिए नतशिर होकर वह कहते है :

वन्दूँ पद सुन्दर तव;
छन्द नवल स्वर-गौरव !

उसकी कृपा से जो सुरभि-सुमनावली खुलती है, उसमे वह वन्य प्रसून भी है जो छंद में झूमकर वंदना करना चाहता है।

छंद में झूमता हुआ स्वर, स्वर मे वंदना का भाव कुछ इस प्रकार होगा :

तव भक्त भ्रमरों को हृदय मे लिए वह शतदल विमल
आनंद-पुलकित लोटता नव चूम कोमल चरण तल।

(अनामिका, पृ. ३३)

ये कोमल चरणतल वीणावादिनी के है; उनके पास जो कमल झूम रहा है, उसी में वे भ्रमर है जो उसकी वंदना करते हैं। जैसे मातृभूमि की सजल मूर्ति के लिए निराला ने लिखा था कि वह उसे देखे और वह भी उन्हे देखती रहे, वैसे ही वह सरस्वती को अपना वंदना-गीत सुनाते है, उसकी वीणा का मधुर स्वर सुनते भी है :

वह रही है सरस तान-तरंगिनी,
वज रही वीणा तुम्हारी संगिनी। (उप.)

भाषा की देवी से निराला वैसे ही आत्मीयतापूर्ण भावो का आदान-प्रदान करते है, जैसे मातृभूमि से।

अनामिका की 'वीणावादिनी' का छंद जैसे झूमता हुआ चलता है, वैसा ही

लहराता हुआ स्वर 'वेला' के इस गीत का है :

वीन की झंकार कैसी वस गई मन में हमारे।
धुल गई आँखें जगत की, खुल गए रवि चंद्र तारे।

भाव-वोध के अनेक स्तर हैं जहाँ से निराला का यह वंदना वाला स्वर फूटता है। अनगिनित आ गए शरण में जन जननि, वीन की झंकार कैसी वस गई मन में हमारे, तव भक्त भ्रमरों को हृदय में लिए वह शतदल विमल—इन तीनों रचनाओं के छन्द की गति में जो समानता है, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनके भाव-वोध का स्तर एक ही है जो सरस्वती की कल्पना से स्पंदित हुआ है।

स्वर हिलोरें ले रहा आकाश मे
काँपती है वायु स्वर-उच्छ्वास में—

(अनामिका, पृ. ३३)

आकाश में स्वर की हिलोरें, भावों से आन्दोलित निराला के मन से फूटता हुआ छंद। प्रेरक शक्ति—सरस्वती।

गीत-गुंज मे मानो आत्मीयता और गहरी हो गई हो, सरस्वती अव शारदा जी हो गई हैं, वसन्त की माला भी पहने हैं :

वरद हुई शारदा जी हमारी,
पहनी वसन्त की माला सँवारी।

सांध्यकाकली में—अन्त समय तक—वह भाषा और साहित्य की इस देवी का स्मरण करते हैं। अव शरण मे जाना आवश्यक नही, किसी भी तरह का वंदन-स्तवन आवश्यक नही; दर्शन ही यथेष्ट है। वीणा के स्वर वादलों से घिरे गगन-मण्डल मे गूंज रहे हैं और कवि की दृष्टि चरणों से ऊपर उठती हुई नाक और आँखों तक पहुँच गई है :

दीप्ति नयनो की सुहावन,
नाक का हिल रहा मीना।

चरणों से नयनों तक पहुँचने में जैसे एक युग वीत गया हो, मानो निराला का सारा जीवन इसी यात्रा में खप गया हो। लेकिन वहाँ नज़र ठहरती नहीं; टकटकी वँधी है मीना पर।

अनेक रूपों में निराला ने सरस्वती को याद किया है। वह संघर्ष से अलग, संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सिद्धि है, वह दुखी संघर्परत कवि को प्यार-दुलार से ढाढ़स वँधाने वाली माँ है, वह संघर्ष में सक्रिय प्रेरणा देने वाली शक्ति भी हैं। तुलसीदास की रत्नावली ऐसी ही सरस्वती में परिवर्तित हो जाती है :

देखा, शारदा नील-वसना
हैं, सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना।

निराला के भाव-वोध की एक विशेषता यह है कि देवियों और प्रतीकों से वँधे रहने पर भी वह ठोस यथार्थ की धरती को भूलते नहीं हैं। सरस्वती की उपासना का अर्थ है कठिन जीवन-संघर्ष; साहित्यिक संघर्ष और जीवन-संघर्ष परस्पर संवद्ध हैं।

हिंदी साहित्य का आन्तरिक संघर्ष एक ओर रीतिवाद से मुक्ति पाने के लिए है, दूसरी ओर वह हिंदी भाषा और साहित्य की जातीय प्रतिष्ठा के लिए भी है। हिंदी मे क्या है, हिंदी भी कोई भाषा है, आधुनिक हिंदी कविता पागलों का प्रलाप है—इस तरह की सूक्तियों का उत्तर निराला ने 'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' कविता में दिया है। प्रसाद का साहित्य हिंदी भाषा और हिंदी-भाषी जनता की श्रेष्ठ उपलब्धि है। जो हमसे आगे बढ़े हुए है, वे प्रसाद का साहित्य देखें; वह अन्य भाषाओं के उन्नत साहित्य के समकक्ष है।

बढ़े हुए जो, उनकी आँखों पर आँखें रख
बातचीत कर सकते है हम, अब कोई पख
लगा नही सकता, दीनता हमारी पहली
नही रही वह। (अणिमा, पृ. ३१)

आधुनिक साहित्य के लिए जितने लोग प्रयत्नशील है, उनके संचालक है जयशंकर प्रसाद। भाषा की भूमि युद्ध-भूमि है; जयशंकर प्रसाद प्रधान सेनापति है। एक चतुरग सेना **जागो फिर एक बार** (२) के गुरु गोविन्दसिंह के पास थी, एक चतुरंग सेना साहित्यकार जयशंकर 'प्रसाद' के पास है :

हे चतुरंग, तुम्हारी विजय-ध्वजा धारण कर
खड़े सुमित्रानन्दन, देवी, मोहन, दिनकर।

प्रसाद विदा हुए, अपनी गौरव-ध्वजा दूसरो को दे गए कि भाषा की मान-प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष मे आगे बढ़ें।

यह युद्ध निराला के जीवन मे है; अनेक महारथियों के प्रहारो का वह लक्ष्य है। 'सरोज स्मृति' में वह उस साहित्य-समर को याद करते है जिसमे

एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण,
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल।

आखिरी दौर मे वह सरस्वती की नाक मे हिलती हुई मीना देखते है और पुराने शर-क्षेप और रणकौशल को याद भी करते हैं।

ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर—

अपनी अन्तिम कविता के भीष्म स्वयं सेनापति निराला है। प्रसाद के बाद उनकी चतुरंग सेना का संचालन उन्ही ने किया; अब वह संचालन-काल समाप्त हुआ :

बीत चुका है दिक् चुंबित चतुरंग, काव्य, गति-
यति वाला।

शरीर शिथिल है, मृत्यु निकट है। निराला पुराने युद्ध के दिन याद करते है—

मल्ल मल्ल की
मारें मूर्च्छित हुईं, निशाने चूक गए हैं,
झूल चुकी है खाल ढाल की तरह तनी थी।

निशाना चूका नहीं है। मृत्यु परास्त है, कविता जीवित है।

ऐसा था भाषा और साहित्य को लेकर निराला का संघर्ष। एक क्रान्ति समाज में, उससे मिलती-जुलती, फिर भी भिन्न स्तर की दूसरी क्रान्ति साहित्य में। जीवंत परम्परा का उद्धार, जर्जर रूढ़ियो का वहिष्कार। एक संघर्ष तुलसीदास का, दूसरा प्रसाद का, तीसरा निराला का, इनके साथ अन्य साहित्यकारो का। हिंदी-भाषी जनता का ध्यान, सरस्वती के विभिन्न रूपों मे, दुख, ग्लानि, आशा, विजयोल्लास के क्षणों में निराला के साथ रहता है। ज्योति के पत्र पर लिखे हुए राम-रावण के अपराजेय समर की तरह जीवन के अन्तिम क्षणो तक उस युद्ध की स्मृति निराला के साथ रहती है।

प्रकृति-पूजा

निराला ने जितनी कविताएँ व्रह्म पर लिखी हैं, उनसे अधिक माया, प्रकृति अथवा शक्ति पर लिखी है।

वेदान्ती कवि के लिए उचित था कि वह अगोचर मायातीत व्रह्म के गीत गाता; माया की चर्चा करता तो सन्तों और वैरागियों की तरह स्वयं और दूसरों को उससे सावधान करने के लिए। किन्तु निराला-साहित्य में माया का इतना अधिक वखान है कि लगता है, व्रह्म से अधिक उनकी साधना का लक्ष्य माया है।

'अधिवास' उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में है। इसमे उन्होंने अधिवास अर्थात् व्रह्म को छोड़ने और माया में फँसने की वात लिखी थी।

गीतिका में किसी का माया-रथ सुन्दर कानन में रुक जाता है (पृ. ६७), किसी के हृदय मे वाँसुरी वजती है और

हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी (पृ. १०४)

वेला मे वह देह की माया की जोत का ध्यान करते हैं (पृ. २६), **अर्चना** में—

पैर उठे, हवा चली।
उर उर की खिली कली…
खुले सर्ग, दिव्य वेद,
माया हो गई भली। (पृ. २८)

अभ्युदय-काल से आखिरी दौर तक निराला विभिन्न अवसरो पर अनेक संदर्भों में माया का स्मरण करते है।

निराला-साहित्य मे माया की भूमिका अनेक प्रकार की है। वह मानवीय

करुणा है जो कवि को प्रेरित करती है कि वह अपने दुखी भाई को गले लगाए। (परिमल, पृ. १०६) वह किसी दुखी की आह है या विधवा की चिन्तारूपी चिता (उप., पृ. ८५), वह क्रान्तिकारी शक्ति है जो जीर्ण-शीर्ण प्राचीन को जला देती है, वह जनता को स्वाधीनता की ओर बढ़ने की प्रेरणा दे सकती है :

मां, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर,
देवव्रत नरवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन। (गीतिका, पृ. ३७)

युद्ध मे जब मनुष्य परास्त होता है, तब इसी शक्ति की साधना करता है। रावण से परास्त होने पर राम ब्रह्म की नही, शक्ति की पूजा करते हैं। युद्ध, क्रान्ति, संघर्ष, स्वाधीनता-आन्दोलन से इस प्रकृति, शक्ति अथवा माया का गहरा सम्बन्ध है।

वह कवि की साधना का लक्ष्य है, उसके हृदय की प्रेरणा भी है। तुलसीदास को राम नही दिखाई देते, ब्रह्म प्रत्यक्ष होकर उन्हे आनन्द-विह्वल नही करता, उनकी पत्नी—अरूप-लग्न योगिनी के समान, साहित्य की देवी सरस्वती के समान—प्रेरित करती है। इस शक्ति का एक काम निराला की सुख-दुख की बातें सुनना, कठिन समय में उन्हे ढाढस बँधाना है :

रहेगे अधर हँसते, पथ पर, तुम
हाथ यदि गहो। (अनामिका, पृ. ११६)

जब-तब निराला प्रकृति को ब्रह्म के साथ याद करते है, 'तुम और मैं' कविता मे सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ प्रकृति का गुण-कीर्तन है। अन्यत्र जो प्रकृति जगत् की पलको पर आसीन है, वह प्रिय के ध्यान मे लीन है :

प्रकृति बैठी पालने, अतंद्र
जगत् के पलको पर आसीन…
खुला जीवन मे प्रणय-सुहाग,
कला प्रिय-अकल-ध्यान मे लीन। (गीतिका, पृ. ७८)

जो कला है, परिवर्तनशील प्रकृति है, वह अकल ब्रह्म का ध्यान करती है। तुलसीदास मे जिस अरूप-लग्न योगिनी का उल्लेख है, वह इस गीत की प्रकृति की तरह अकल अथवा अरूप ब्रह्म का ध्यान करती है।

अधिकतर यह शक्ति अपने मे पूर्ण, अनादि और अनन्त दिखाई देती है, उसे किसी आधार की आवश्यकता नही :

बहती निराधार
पृथ्वी गगन मे, अतनु में सुतनु-हार (गीतिका, पृ. ६६)

वह स्वयं ज्ञानमय है, इसलिए अपने से परे किसी अन्य ज्ञानमय सत्ता का ध्यान उसके लिए आवश्यक नही है .

तिमिर तर, प्रभा-दृगो मे ज्ञान
उतर आयी, तुम ले उपहार। (उप., पृ. ६४)

यह ज्ञान निराकार नही; शक्ति की विशेपता यह है कि वह रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श के द्वारा मनुष्य को अपना परिचय देती है। वह जो पृथ्वी-गगन मे निराधार वहती है, शव्द और वर्ण से संसार को भर देती है :

शव्द-स्वर के भरे
रागिनी के हरे—
नाचती ऋतु, चपल,
पुष्प-लोचन नवल। (उप., पृ. ६६)

कौन तम के पार ?—इस गीत में गगन से जो घनधारा वहती है, वह गन्धमय, स्पर्शमय है :

गन्व-व्याकुल-कूल उर सर…
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर, सर। (उप., पृ. १२)

शक्ति का प्रवाह रूप-रस-गंधमय है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योकि शक्ति पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—इन पाँच तत्त्वों में प्रत्यक्ष होती है और इन पाँच तत्त्वों के गुण हैं रूप, रस, स्पर्श, शव्द, गंध।

भारतीय दर्शन मे जो पाँच तत्त्व प्रसिद्ध हैं, वे सब शक्ति के प्रतीक हैं, शक्ति के विभिन्न रूप है। शक्ति एक है, अद्वितीय है, इसलिए ये पाँच तत्त्व देखने मे पाँच हैं, वास्तव मे तत्त्व एक है। जो आकाश है, वही वदलकर पृथ्वी बनता है; जो पृथ्वी है वह जल वनती हैं; जो जल है, वह हवा अथवा आकाश वन जाता है। यह निराला का प्रकृति-अद्वैत दर्शन है जो अनेक कविताओ मे तरह-तरह से चित्रित हुआ है।

'सरोज-स्मृति' में निराला ने पुत्री में उसकी माता की छवि देखकर—अथवा अपनी पहली श्रृंगार-भावना को परिवर्तित रूप मे साकार देखकर—लिखा : **आकाश वदलकर वना मही**। उपमा देने के लिए उन्होंने ऐसा लिख दिया हो, यह वात नहीं है। यह उनकी दर्शन-सम्मत अत्यन्त सारगभित उक्ति है। आकाश वदल कर पृथ्वी वनता है, पृथ्वी भी वदलकर आकाश वनती है।

जान लेने को ज़मी से आसमाँ जैसे वना। (वेला, पृ. ७४)

यह उक्ति भी दर्शन-सम्मत है; केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिए निराला ने वैसा नही लिखा। 'सरोज-स्मृति' में जहाँ निराला ने दृष्टि का वर्णन किया है, वहाँ शक्ति से पंच-तत्त्वों का सम्वन्ध उपर्युक्त दार्शनिक धारणाओ के अनुकूल है।

क्या दृष्टि ! अतल की सिक्त धार
ज्यों भोगावती उठी अपार,
उमडता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील,
पर वँधा देह के दिव्य वाँध,
छलकता दृगों में साध-साध।

जो दृष्टि है, आँखों में ज्योति है, वह पृथ्वी के अन्तस से उठी हुई धारा—गंध

अथवा जल की धारा—भी है। जो रूप देह की पृथ्वी में बँधा है, वह प्रकाश वनकर आँखो में छलकता भी रहा है। जो गंध है, वह अग्नि भी है। 'वन-वेला' में—

वह शिखा नवल
आलोक स्निग्ध भर दिखा गई पथ जो उज्ज्वल,
मैंने स्तुति की—'हे वन्य वह्नि की तन्वि नवल।'

वनवेला अग्नि की शिखा है, वह वह्नि की नवल तन्वी है। 'सरोज स्मृति' में निराला सरोज को पहले रागिनी कहते है, फिर उसे अग्नि से जोड़ते है। जैसे गंध अग्नि है, वैसे ही शब्द अग्नि है।

मेरे स्वर की रागिनी वह्नि
साकार हुई दृष्टि मे सुघर।

कौन तम के पार गीत मे आकाश ही जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि के रूप मे प्रत्यक्ष होता है। निराला-काव्य मे पॉच तत्त्वो का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व है। ये तत्त्व आपस में नही लडते। संघर्ष है तो मनुष्य और प्रकृति मे, पंच-तत्त्वो के एक रूप मनुष्य और अन्य रूप वाह्य प्रकृति में। 'राम की शक्ति पूजा' इस नियम का अपवाद है।

राम का सघर्ष रावण से है, उस शक्ति से है जो रावण का साथ दे रही है। यह शक्ति विभाजित है; श्यामा रावण के साथ है; महावीर राम के। अद्भुत व्यापार यह है कि शक्ति-विभाजन के साथ पाँचो तत्त्व भी विभाजित हैं। आकाश रावण के साथ है; राम के चारो ओर अधकार उगलता है। उसी के माध्यम से राम को रावण का अट्टहास सुनाई देता है। आकाश का साथी समुद्र है जो राम को अप्रतिहत गर्जन से डराता है। पृथ्वी रावण से त्रस्त है। **राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल**; इसी पृथ्वी की पुत्री सीता को रावण वन्दी वनाए है। राम पराजय से दुखी होकर पृथ्वी-तनया की कुमारिका-छवि का स्मरण करते हैं। किंतु पर्वत अचल है; शक्ति की मौलिक कल्पना का आधार है। रावण की विजय के समय आकाश और जल सक्रिय हैं, पृथ्वी त्रस्त है, वायु स्तब्ध है, अग्नि क्षीण है, पर्वत पर केवल एक मशाल जल रही है।

महावीर की ओर से जव विरोधी क्रिया आरम्भ होती है तव उञ्चासों पवन समुद्र को मथ डालते है। जिस आकाश मे रावण का अट्टहास सुनाई दिया था, उसे महावीर अपने अट्टहास से कँपा देते हैं। अग्नि के रूप मे जहाँ छोटी-सी मशाल जलती थी, वहाँ स्वयं महावीर वज्रांग तेजघन है। पृथ्वी राक्षसपदों से टलमल होने के वदले दुर्गा रूप मे शान्त, सुन्दर और शक्तिमयी है। शक्ति जव राम के मुख मे लीन हुई तव महावीर और दुर्गा दोनों राम की ओर हो गए। शक्ति का विभाजन खत्म हुआ; पच-तत्त्वों का आन्तरिक संघर्ष भी समाप्त हुआ। जो समुद्र सिंह के समान अप्रतिहत गरजता था, वह दुर्गा के चरणप्रान्त पर पड़ा है। गरजता अव भी है किन्तु अप्रतिहत रूप मे नही। राम उसे देखकर धन्य कहते हैं—**धन्य सिंह**

गर्जित। उसे अपना प्रतीक भी मानते हैं।

शक्ति का विभाजन, पंचतत्त्वों का आन्तरिक संघर्ष 'राम की शक्ति पूजा' की विशेषता है। अन्य कविताओं में प्रकृति एक और अविभाज्य है। पंचतत्त्व प्रकृति के ही अनेक रूप हैं। वे सब मूलतः एक हैं, शक्ति हैं। विभिन्न ऋतुओं मे पृथ्वी का परिवर्तित सौन्दर्य उसी शक्ति का सौन्दर्य है :

चकित चपला के नयन नव,
देखती हो भूशयन तव,
मन्द लहरा पट पवन, रव
छा रहा सब देश। (गीतिका, पृ. ४८)

चपला के रूप में तेज, भूशयन के उल्लेख में पृथ्वी, पट जैसा लहराता पवन, सर्वत्र छा जाने वाले शब्द के माध्यम से, आकाश और वर्षा के रूप मे, जल—पाँचों तत्त्व मेघ के घन केश वाली प्रकृति प्रिया के रूप में लक्षित हैं।

सखि, वसन्त आया—(उप., पृ. ३)। वसन्त में प्रकृति अपने पाँचों तत्त्वों से सज गई है। आकाश मे कोयल का स्वर गूँज रहा है, हवा में फूलों की गन्ध है, जल में कमल खिले हैं, पृथ्वी पर स्वर्णशस्य का अंचल लहराया है और चारों ओर फैले प्रकाश में वन-यौवन की माया है। पाँच तत्त्व; उनका सम्मिलित सुन्दर रूप—प्रकृति।

सोचती अपलक आप खड़ी—(उप., पृ. ४)। उसके नेत्र नील गगन मे है, समीरण उसका वसन हिला जाती है, हृदय के हीरक हार की चमक मे प्रकाश है, वह स्नेह-भरी लौटी—इसमे जल-तत्त्व की ओर संकेत है। वह विरह वृन्त की कुंदकली है—पृथ्वी की ओर संकेत है। पाँचो तत्त्व से संवद्ध नारी रूपा प्रकृति।

वादल में आए जीवन-धन—(उप., पृ. १३)। पहले आकाश जहाँ वादल आया है; फिर हवा जिससे शरीर पुलकित है; लक्ष्य पार करनेवाली तेजरूप चितवन; फिर वर्षा; अन्त मे धरती पर नये अंकुर। वादल आए और—

मुक्त हुए आ स्नेह के क्षितिज
रूप-स्पर्श-रस-गन्ध-शब्द धन।

पहले पाँचो तत्त्वों की ओर संकेत; अन्त मे उनके गुणों का स्पष्ट उल्लेख। यह स्पष्ट उल्लेख सिद्ध करता है कि निराला जान-बूझकर गीतों मे पंचतत्त्व वाली गोचर प्रकृति का चित्रण करते हैं।

रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी—(उप., पृ. १४)। तप करने में तेज, समीर-माला जपने में वायु, शैलसुता होने में पृथ्वी, उर-सर के स्नेह से भरे जाने में जल, आकाश रूप शिव को वरण करने में आकाश।

दृगों की कलियाँ नवल खुलीं—(उप., पृ. १७)। प्रणय-श्वास हवा, ज्योति-तप्त मुख में तेज, स्नेह के सरोवर में जल, अलख-सखा के रूप में आकाश, जहाँ दृगों की कलियाँ खिली हैं, वहाँ सन्दर्भ से ज्ञात पृथ्वी।

अनगिनित आ गए शरण में जन, जननि—(उप., पृ. १८)। मधु ऋतु

अवनि में पृथ्वी, कमल जिससे खिले है, वह स्नेह, आनन्द की ध्वनि जहाँ तरंगित है, वह आकाश, ऊर्ध्व गगन मे मुक्तिमणि अर्थात् सूर्य, सुरभि सुमनावली से गध पर विशेप वल। शक्ति के रूप-रस-गन्धमय प्रवाह मे निराला को सवसे पहले और सवसे अधिक गन्ध का परिचय मिलता है। जो प्रकृति-प्रिया दिशाओं के सहस्र-दश दलो के वीच वैठी है, वह सौरभ द्वारा अपना परिचय देती है: **बह रहा प्रतिपल सौरभ ज्ञान।** (उप., पृ. ७४) जो विश्व की सुघर छवि है, निराला उसे **सुरभि, मुकुलशयन** कहते है। (अनामिका, पृष्ठ १९४) कली के मर्म से फूटने वाली गंध दिगन्त मे व्याप जाती है। गध की धारा से शून्य के शत-शत रंध्र भर जाएँगे। (गीतिका, पृ. ७२)

जग का एक देखा तार—(उप., पृ २२)। यह तार शक्ति का है जो वर्ण और गंध मे, अनेक रूपो मे व्यक्त होता है। शक्ति वायुरूप मे फूलो की सुगन्ध चारों ओर विखेर देती है।

> गंध शत अरविन्द नन्दन विश्व वन्दन सार,
> अखिल-उर रञ्जन निरञ्जन एक अनिल उदार।

शक्ति प्रकाश है जिससे फूल खिलते हैं, फूलो के रंग दिखाई देते है, रंग-विरंगे फूलो की गंध से मन प्रसन्न होता है। निराला-काव्य मे प्रकाश दो तरह का है; एक प्रकाश रहस्यवादियो का जो लोकोत्तर है, जिससे फूलो की वर्ण-गध का कोई सम्वन्ध नही है; दूसरा प्रकाश लौकिक है, हवा की तरह, जिसके विना वर्ण और गन्ध का अस्तित्व नही।

> रश्मि ऋजु खीच दे
> चित्र शत रंग के,
> वर्ण - जीवन फले,
> जागे तिमिर अन्ध। (गीतिका, पृ. ७३)

निराला की रचनाओ मे प्रकाश और किरण का उल्लेख वार-वार किया गया है। किरण या प्रकाश व्यापक शक्ति का प्रतीक है, प्रतीक का आधार भी, क्योकि जिन अनेक रूपो मे मनुष्य को शक्ति का वोध होता है, उनमे एक प्रकाश भी है। जहाँ प्रकाश होगा, वहाँ उसके आसपास अक्सर वर्ण-गन्ध वाले फूल भी होंगे। ऊपर जो चार पंक्तियाँ उद्धृत की गई है, वे उस गीत मे है जिसमे वन्धन तोड़कर, दिशा-ज्ञान भूलकर, गंध के वहने का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य गीत मे:

> रश्मि, नभ-नील पर,
> सतत शत रूप धर,
> विश्व-छवि मे उतर,
> लघु-कर करो चयन! (उप., पृ. ९)

विश्व-छवि में उतरकर रश्मि जो चयन करती है, उसका अर्थ अनेक रंगोवाले फूलो का खिलना है।

प्रकृति पंचतत्त्वमय है और एकतत्त्वमय भी। पाँचो तत्त्व मूलतः एक है, तव

प्रकृति को पाँचो मे देखा जा सकता है, किसी एक में भी। शक्ति अग्निरूपा है, **अरणियों की अग्नि तू दिक् दृगों की पहचान।** (उप., पृ. ६२) वह आकाश है जो नक्षत्रों के सुमन खिलाती है : **गगन घन विटपी सुमन नक्षत्र-ग्रह, नव ज्ञान।** (उप., पृ. ६२)

पंचतत्त्वमयी, रूप-रस-गंध-स्पर्श-शब्द से कवि का मन प्रसन्न करनेवाली प्रकृति से निराला की शृंगार-भावना संबद्ध है। अनेक रचनाओं में वह उसे प्रिया कहते हैं। 'माया' कविता मे पूछते हैं कि माया किसी के चित्त की कालिमा है या किसी की कमनीयता है। अधिकतर माया अथवा प्रकृति का सम्बन्ध कमनीयता से है, कालिमा से नही। माया कालिदास के विरही यक्ष की व्यथा है, दुष्यन्त की शकुन्तला है, कौशिक-मोह की मेनका है, चित्त-चकोर की विधुकला है, तरु की वनिता-लता है, वसंत-विभावरी की रम्यता है, सावन की घन-घटा है।

> या कही सुन्दर प्रकृति वन सँवर कर
> नृत्य करती नायिका तू चंचला
> या कही लज्जावती क्षिति के लिए
> हो रही सरिता मनोहर मेखला ?

'गीतिका' के अनेक गीतों में 'माया'' कविता के इन्ही प्रतिमानों का विस्तार किया गया है।

कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना ? (गीतिका, पृ. ३२) यह प्रकृति की देवी है जो कवि के मन में, उसके चारों ओर उल्लास भरती और बिखेरती है। मलय पवन मे उसके तन की गन्ध है, वादल उसकी अलकावली है, चन्द्र उसका मुख है, तारे हार हैं, प्रकृति का समस्त गोचर सौन्दर्य प्रत्यक्ष है। **तुम्हें ही चाहा सौ-सौ वार**—(उप., पृ. ६४) वन में खिले हुए फूल, भ्रमर की लालसा, नेत्रों में ज्ञान। **विश्व-नभ-पलकों का आलोक**—(उप., पृ, ८०) उसके सौन्दर्य की तरंगें संसार मे चारों ओर उमड़ती दिखाई देती है। **रही आज मन में, वह शोभा जो देखी थी वन में**—(उप., पृ १०१) आकाश मे वादल, हरियाली का लहराता हुआ सागर, अप्सराओं के समान नाचती हुई कलियाँ।

मेरे जीवन में हँस दीं हर—(अनामिका, पृ. १९४) वर्षा मे प्रकृति का उल्लास, उसकी हँसी कवि के मन मे और वाहर संसार में चारों ओर। सम्राट् एडवर्ड अष्टम ने जव राजसिंहासन छोड़ा, तव उसी प्रकृति-प्रिया के स्पर्श से प्रणय की प्रियङ्गु-शाखा खिल उठी थी। (उप., पृ. १८) वसन्त में फूलो का सौन्दर्य देखकर निराला को अन्तिम दौर में भी प्रकृति प्रिया के रूप मे याद आती है :

> तूलि के रँग खुली कलियाँ, गूँजती पट् पदावलियाँ,
> महकती गलियाँ, सुरभि का गान तेरा ही वहाँ है।
>
> (आराधना, पृ. ३५)

कूची तुम्हारी फिरी कानन में—(गीत-गुज, पृ. २६) वही माया वन को विभिन्न रंगो में रँग रही है।

तुम आओ, गुहाओ, हमारी गली;

उजली कर दो तरु-तरु की कली। (सांध्यकाकली, पृ. ६६)

टेक पुरानी है; स्वर की भंगिमा बदली हुई है। आत्मीयता पहले से मानो ज्यादा बढ़ गई हो।

प्रकृति में सभी तत्त्व हैं, भाव और रस हैं। शृंगार के साथ उसमें करुण और वीभत्स की स्थिति भी है। वह कवि की प्रिया है, माता भी। सकल गुणों की खान, प्राण तुम —(गीतिका, पृ. ७७) गीत की प्रथम पंक्ति से लगता है, प्रिया को संबोधित कर रहे हैं। किन्तु जो देवी सकल गुणों की खान है, वह वीणा भी बजाती हैं:

कमलासन पर बैठ, प्रभा-दान,

वीणा-कर करती स्वर-साधन।

'भक्त और भगवान' कहानी मे भक्त की पत्नी का नाम सरस्वती है। रत्नावली तुलसीदास के सामने शारदा रूप मे परिवर्तित हो जाती है। वसन्त के दिन देवी सरस्वती की पूजा होती है और उसी दिन कुठाएँ भी टूटती हैं, वसन्त की हवा लगने से धरती का धैर्य छूटने लगता है:

कूजित पिक-उर-मधुर-कंठ, कुंठा सब टूटी;

मुक्त समीरण से धीरता धरा की छूटी। (नये पत्ते, पृ. ७४)

प्रकृति मे मातृत्व है, प्रेयसीत्व है; उसमे जीवन है, मृत्यु भी है; प्रकाश के साथ अन्धकार है।

खोलो दृगों के द्वय द्वार,

मृत्यु-जीवन ज्ञान-तम के

करण, कारण-पार। (गीतिका, पृ. ४६)

उसके नेत्रो मे मृत्यु है, जीवन है, ज्ञान है, अन्धकार है। यह रहस्यवादियों का प्रकाश नही है जिसमे मृत्यु और अन्धकार तिरोहित हो जाते हैं; यह निरन्तर परिवर्तनशील प्रकृति है जिसमे मृत्यु के बिना जीवन की कल्पना नही की जा सकती, जिसमें अन्धकार की सत्ता से ही प्रकाश का बोध सार्थक होता है।

तुम्हारे सुन्दरि, कर सुन्दर

मिलाए हुए वर अमर-मर! (उप., पृ. ६६)

अमर और मर, जीवन और मृत्यु दोनों के वर उसके हाथों मे हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म की कल्पना से जीवन-मृत्यु वाली प्रकृति की धारणा भिन्न है। निराला-साहित्य मे जिसका वारंवार स्तवन है, वह मायातीत नही, मायामय है, स्वयं माया है। वह पंचतत्त्वो से परे नही, पचतत्त्वमय है, स्वयं उन पाँचों तत्त्वो का मूल तत्त्व है। वह विशुद्ध ज्ञानमय नही, अज्ञानमय भी है; उसमे प्रकाश के साथ अन्धकार, जीवन के साथ मृत्यु, शृंगार के साथ वीभत्स भी है। निराला-काव्य मे प्रकृति-अद्वैत-दर्शन इस तरह चरितार्थ होता है।

'पंचवटी-प्रसंग' निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में है। माया-विरोधी ब्रह्म के दर्शन सबसे पहले यही होते है। **परिमल** की कुछ रचनाओं मे पुरुष देवता का स्मरण है, **गीतिका** मे प्राय: उसका अभाव है, **अनामिका** मे जहाँ-तहाँ फिर उसकी झलक मिलती है, **अणिमा** और **बेला** की युद्ध-कालीन रचनाओं मे वह काफी उभरता है, फिर स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद **अर्चना** मे उसकी गरिमा कुछ कम हो गई है, **आराधना** में और कम, **गीत-गुंज** और **सान्ध्यकाकली** में यह गरिमा शून्यवत् है। निराला-साहित्य मे ब्रह्म के वैभव का यह इतिहास काफी दिलचस्प है।

माया और ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध भी दिलचस्प है। कही तो दोनों का शान्तिपूर्ण ही नही, प्रेमपूर्ण सहअस्तित्व है, कही माया का नाश करके ही सच्चिदानंद अपना वास्तविक वैभव प्रकाशित करते हैं। 'पंचवटी प्रसंग' के राम लक्ष्मण को वेदांत-ज्ञान समझाते है। व्यष्टि और समष्टि मे जहाँ भेद दिखाई देता है, उसका कारण भ्रम है। इस भ्रम का ही नाम माया है। व्यष्टि और समष्टि में जो चिद्घन आनन्द रूप समाया हुआ है, वह मायातीत है। मनुष्य मुक्त तब होता है जब वह सच्चिदानंद रूप में मिल जाता है। 'पंचवटी प्रसंग' में, **हमें जाना है जग के पार**—**परिमल** के इस गीत में, **परिमल** की अन्तिम रचना 'जागरण' में माया की निन्दा की गई है और यह दिखाया गया है कि माया अथवा भ्रम का नाश करके ही ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति संभव है।

अर्चना में बहुत स्पष्ट प्रार्थना की गई है : **माया का संहार करो हे !** (पृ. ७) अन्य गीत में उनकी कामना है कि मन काम, क्रोध, मद, लोभ, दंभ से मुक्त हो और—**फूट-फूटकर माया रोए**। (उप., पृ. ४८) **परिमल** की 'जागरण' कविता के आरंभ में उन्होने लिखा था :

> प्रथम विजय थी वह—
> भेदकर मायावरण···

अर्चना के एक गीत मे यही भाव, प्राय: उन्ही शब्दो मे दोहराते है :

> भजन कर हरि के चरण, मन !
> पार कर मायावरण, मन ! (पृ. ७८)

आराधना में कहते हैं :

> ज्ञान की तेरी तुरी है,
> आसुरी माया दुरी है। (पृ. ८७)

माया के साथ 'आसुरी' विशेषण जोड़कर उन्होंने किसी दूसरी माया की ओर संकेत कर दिया है जो आसुरी नही है। उस माया के साथ ब्रह्म का पवित्र स्नेह-सम्बन्ध है :

किरण की राखी प्रकृति ने
हरित कर बाँधी विभव के ।

राखी बाँधने वाली बहन है प्रकृति; विभव ब्रह्म जिसके राखी बाँधी गई है ।

'राम की शक्ति पूजा' मे राम का मन मायावरण पार कर जाता है, फिर भी वह शक्ति की पूजा करते हैं और अन्त मे शक्ति उनमे समा जाती है । यदि माया शक्ति है तो उसका आवरण पार करना, फिर भी उसकी पूजा करना, अन्त मे उसे आत्मसात् करना परस्पर विरोधी क्रियाएँ हैं । यहाँ दैवी और आसुरी माया का भेद भी नही है क्योंकि जो शक्ति रावण की सहायक है, उसी की पूजा करना राम का उद्देश्य है ।

माया की भूमिका अनेक प्रकार की है; वैसे ही ब्रह्म की । 'तुम और मैं' कविता में ब्रह्म प्रेममयी का कंठहार है, गंध और पराग है, वसंत है, कामदेव है, कृष्ण है, सुरापान है । यदि सांसारिक आनन्द के लिए प्रतीक चुनना हो तो इस ब्रह्म से बखूबी काम चल सकता है । 'अर्चना' का गीत है ·

तुम जो सुथरे पथ उतरे हो,
सुमन खिले, पराग बिखरे ओ ! (पृ. १७)

फूलों और पराग के बीच यह पुरुष देवता वैसे ही है जैसे गीतिका मे प्रकृति देवी । किंतु वह अकेला नहीं है, उसके साथ अधर-उरोज-सरोज-वनाली के रूप मे प्रकृति-प्रिया भी है । निराला की शृंगार-भावना एकमेवाद्वितीयम् से टकराती है; बाल ब्रह्मचारी जैसे सच्चिदानंद उन्हें पसन्द नहीं । शिव के साथ पार्वती, विष्णु के साथ लक्ष्मी, कृष्ण के साथ राधा भी होनी चाहिए । निराला-साहित्य में एक ब्रह्म वैष्णव कवियो की परम्परा के अनुरूप सगुण और लीलाप्रेमी है, दूसरा शांकर अद्वैत परंपरा के अनुरूप निर्गुण और मायातीत है । तीसरा ब्रह्म और है जो न लीलाप्रेमी है, न मायातीत है; वरन् इसी संसार के सौन्दर्य मे प्रत्यक्ष होता है । कालिदास और जयशंकर प्रसाद की आनन्दवादी परम्परा के अनुरूप यहाँ माया और ब्रह्म का द्वैत-भाव मिट जाता है; ब्रह्म संसार से परे न होकर उसमें अन्तर्निहित है ।

आँख आँख पर भाव बदल कर,
चमके हो रंग-छवि के पल भर,
पुन: खोलकर हृदय-कमल कर,
गन्ध बने अभिधान तुम्हारा । (अर्चना, पृ. ५)

यह रंग-छवि वाला ब्रह्म है जो आँख-आँख पर चमकता है, हृदय-कमल खिलाता है, गन्ध द्वारा अपना परिचय देता है । यहाँ माया और ब्रह्म में विशेष अन्तर नही; दूसरी पंक्ति में 'चमके हो' की जगह 'चमकी हो' लिख दिया जाय तो कोई अन्तर न आयेगा । मूल बात है प्रकृति का सौन्दर्य ।

चौथा ब्रह्म—भक्तो की परम्परा के अनुरूप—दीनबन्धु और करुणामय है । 'अधिवास' कविता में निराला ने ब्रह्म को करुणा-ममता से परे मानकर उसे छोड़ने की बात लिखी थी; भर देते हो (परिमल, पृ. १०३) कविता में वही ब्रह्म कुसुम-

कपोलों से अश्रुकण पोंछ लेता है। मूल बात है करुणा; यदि ब्रह्म करुणामय है तो ठीक, नहीं है तो हमें उससे सरोकार नहीं।

तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर
जो द्वार-द्वार फिर-फिर
भीख माँगता कर फैलाकर। (अणिमा, पृ. १७)

वह करुणामय है तो उसे दीनजनों की ओर ध्यान देना चाहिए। इससे थोड़ा आगे बढ़ने पर ब्रह्म स्वाधीनता-आन्दोलन और सामाजिक क्रांति से संवद्ध हो जाता है। जो यौवन जीर्ण हुआ है, उसमें वह नया जीवन भरे, प्रतिजन को सफल करे :

छल का छुट जाय जाल
देश मनाए मंगल। (बेला, पृ. ८१)

जो ब्रह्म का उपासक है, वह स्वाधीनता का उपासक है। वह देश को, देश के प्रत्येक नागरिक को स्वाधीन देखना चाहता है। गरीबों और दलितों को गले लगाना भ्रम कैसे हो सकता है ?

और लगाना गले उन्हें —
जो धूलि-धूसरित खड़े हुए हैं—
कब से प्रियतम, है भ्रम ? (अनामिका, पृ. १८५)

न संसार माया है, न संसार मे रहनेवाले माया हैं, न उनकी स्वाधीनता और पराधीनता का प्रश्न माया है। सिद्धान्त यह है :

है चेतन का आभास
जिसे, देखा भी उसने कभी किसी को दास ? (उप.)

ब्रह्म को सामाजिक क्रान्ति से जोड़ना निराला की अपनी विशेषता है। ब्रह्मवादी किसी व्यक्ति को दासरूप में नहीं देख सकता।

पाँचवाँ ब्रह्म रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रहस्यवादी परम्परा के अनुरूप है। चारो तरफ प्रकाश और आनन्द, अन्धकार का नाम नहीं,

गई निशा वह, हँसी दिशाएँ,
खुले सरोरुह जगे अचेतन। (गीतिका, पृ. ५९)

निराला की पुस्तकों में जहाँ भी इस ब्रह्म की झलक मिलती है, उसके आगे-पीछे अन्धकार और दुख से भरी हुई कविताएँ भी है। इनके बीच मृगमरीचिका के समान यह अन्धकारनाशक ब्रह्म कवि का मन मोहित करके उसकी काल्पनिक इच्छापूर्ति का साधन बनता है। माया शब्द अपने लोक-प्रचलित अर्थ में किसी के लिए सटीक प्रयुक्त हो सकता है तो इस ब्रह्म के लिए। करुणा-ममता से परे दुख और अन्धकार को अस्वीकार करनेवाला यह ब्रह्म छलना मात्र है।

इस प्रकार निराला-काव्य में अनेक ब्रह्म हैं अथवा ब्रह्म की भूमिका अनेक प्रकार की है। माया और ब्रह्म में अनेक समानताएँ हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण भेद भी। प्रकृति के सौन्दर्य से, मानव करुणा से, राष्ट्रीय स्वाधीनता और सामाजिक क्रांति से ब्रह्म का सम्बन्ध वैसे ही है जैसे माया का। किन्तु माया का एक रूप वह है जो सुख के

साथ दुख, जीवन के साथ मृत्यु लिए हुए है, जिसकी व्यंजना 'मतवाला' के **अमिय गरल शशि सीकर रविकर** छन्द में हुई है। ब्रह्म दुख दूर कर सकता है किन्तु स्वयं दुखरूप नही है। मृत्यु और शक्ति से गहरा सम्बन्ध प्रकृति का है, ब्रह्म का नही। ससार को प्रकाश और आनन्द से भरने का काम मुख्यत: ब्रह्म का है, प्रकृति का नही। प्रकृति जिस आनन्द का स्रोत है वह अधिकतर रूप-रस-शब्द-गन्ध-स्पर्श वाला आनन्द है, अगोचर आध्यात्मिक आनन्द नही। निराला ने अपनी भक्तिपरक रचनाओ मे जहाँ प्रकृति की वंदना की है, वहाँ आत्मीयता अधिक है, स्नेह है, मृत्यु का वरण करने की चुनौती भी है। जहाँ प्रभु और दास वाला सम्बन्ध है, वहाँ प्रकृति से अधिक ब्रह्म ही इष्टदेव बनकर सामने आते है। काम, क्रोध, मद, लोभ से छुटकारा पाने की प्रार्थना भी वह प्रभु से ही ज़्यादा करते है।

निराला की भक्तिपरक सगुणोपासना और निर्गुणपंथी रहस्यवादी भावना मे आत्म प्रवचना का एक सामान्य तत्त्व है: कल्पना मे सिद्धि-प्राप्ति का सुख वास्तविकता से बच निकलने का प्रयास। किन्तु उनकी भक्ति का सम्बन्ध अपने और जनता के दैन्य से, मानवीय करुणा से भी है। जहाँ उन्होने भक्त बनकर ब्रह्म अथवा माया से विनय की है, वहाँ उन्हे जितना ध्यान अपना है, उतना ही दूसरो का। निराला के भक्ति-काव्य की यह विशेपता है कि उसमे जितनी उनकी दृष्टि करुणामय पर लगी है, उतनी ही करुणा के पात्रों पर।

दलित जन पर करो करुणा—(अणिमा, पृ. १४)

यह दलित जन निराला है, अन्य दलित जन भी; भक्ति-भावना के स्तर पर निराला और दलित जनो का तादात्म्य। **भज भिखारी, विश्व-भरणा**—(अर्चना, पृ. ३)। भिखारी निराला है, अन्य जन भी; वैसा ही दीन जनो से तादात्म्य।

माँ अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से वारो। (उप., पृ. १०८)

जिनमे नरक-त्रास से उबरने की आकाक्षा है, वह निराला स्वय है, भारतीय जन भी हैं। निराला जिससे विनय करते है, उसके पास अकेले पहुँचते हैं, भक्तों की भारी भीड़ के साथ भी।

आए नत वदन शरण
जग के उद्धत जनगण। (बेला, पृ. ८६)

जो उद्धत थे, वे अब नतवदन है। निराला स्वयं किसी से कम उद्धत नही, उनके साथ गीत मे भूतपूर्व उद्धतों का पूरा एक समाज है। **सान्ध्य-काकली** मे उनकी कामना है कि—

बसी फिर वही बजाए गति
जन-जन की बढे जानकी-रति। (पृ. ६८)

जो काम हो, सबके साथ मिलकर हो, सबके लिए हो।

भक्तो की कोई इष्ट देवी होती है, कोई इष्ट देवता होता है जिसकी वन्दना वे विशेष रूप से करते हैं। तुलसीदास शंकर भवानी आदि की वन्दना कर लेते हैं,

मुख्य रूप से आराध्य हैं राम। निराला के लिए भक्ति का ऐसा कोई अच्युत आधार नही। कही राम, कहीं शिव, कही ब्रह्म, कही माया, भक्ति के अधिष्ठान परिवर्तनशील है, अपरिवर्तनशील है केवल दीनजनों के प्रति करुणा का भाव। इसमें आत्म-करुणा का वोध भी शामिल है। किन्तु यह भी अपरिवर्तनशील है, सापेक्ष रूप मे। निराला का मन ज्ञान छोड़कर भक्ति-मार्ग पर चलने को आसानी से राजी नही होता। वह ज्ञान और भक्ति के समन्वय की ओर बढ़ते है,

> विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
> व्याधि-शयन जर्जर मानव-मन,
> ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
> करुणा-करों उतारो, तारो। (अर्चना, पृ. १०८)

ज्ञान आकाश मे है, वह करुणा द्वारा धरती पर उतारा जाएगा, तव व्याधिग्रस्त मानव-मन नरक-त्रास से मुक्त होगा। किंतु जहाँ ज्ञान है, वहाँ शक्ति है, जहाँ शक्ति है वहाँ विजय है, फिर प्रभु या अन्य किसी की करुणा की आवश्यकता क्यों हो ?

निराला के मन में भक्ति की सार्थकता को लेकर सन्देह है। 'पंचवटी प्रसंग' की सीता के लिए ज्ञान-चर्चा जटिल है, वह भक्ति-कथा सुनना चाहती है। राम का विचार है कि भक्ति, कर्म और ज्ञान तीनों योग एक ही हैं, किन्तु लक्ष्मण का विचार है कि ब्रह्म में लीन होकर आनन्द वन जाना हेय है, भक्त रूप मे ब्रह्म से अलग रहते हुए आनन्द पाना श्रेयस्कर है। क्या प्रभु का स्नेह भक्त को सुलभ होगा ? निराला का मन दग्ध मरुस्थल के समान है; आशा है, किन्तु पूर्ण विश्वास नही है कि प्रभु का स्नेह उसे हरा-भरा कर देगा। (गीतिका, पृ. ४५) ब्रह्म करुणामय है तो लोग गलियो में भीख माँगते हुए क्यो घूमते है ? (वेला, पृ. १०८) ज़रूरत पड़ने पर आँख वचाकर प्रभु निकल जाते हैं, उनकी दया-ममता से हमे लाभ ? (उप., पृ. ४३) अनेक गीतों में निराला अपने मन के संशय से मुक्त होने की घोपणा करते हैं। विपम वन्धन छूट गए, विपमय वासना दूर हुई और **संशय की गई गंध।** (अर्चना, पृ. १०) यह संशयपीड़ित मन की काल्पनिक इच्छापूर्ति है। जव वह प्रार्थना करते हैं : **शंका की पंकिलता खोओ** (सान्ध्यकाकली, पृ. ५६), तव वह उस शंका के प्रति सजग होने का परिचय देते है जो उनके मन से मिटी नही है।

भक्ति के प्रति शंका है, ज्ञान के प्रति भी शंका है। निराला के तुलसीदास तर्क करते है, संसार में विरोध के विना प्रगति नहीं है; संन्यास का विरोधी भाव है शृंगार; तव शृंगार-भाव छोड़ने और संन्यास लेने से क्या प्रगति रुक न जाएगी ? वैष्णव कवियों की शृंगार-वर्णना वाले निवन्ध मे शृंगार रस का औचित्य सिद्ध करने के लिए निराला ने जिस तर्क का आश्रय लिया था, उसी की आवृत्ति 'तुलसीदास' मे है। अन्त में रत्नावली ही उनका शृंगार-भाव नष्ट करके उन्हें संन्यास लेने को वाध्य करती है; शंका पर ज्ञान की विजय होती है। 'सरोज-स्मृति'

के आरम्भ में निराला इसी ज्ञान का भरोसा करके गर्व से कहते हैं :

मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ, अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।

किन्तु कविता जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, यह प्रकाश पीछे छूटता जाता है। अन्त मे निराला एक तरह के घोर अन्धकारमय नियतिवाद के निकट पहुँचते हैं जहाँ जीवन की सारी साधना व्यर्थ है, जहाँ जीवन के समस्त कर्म शीत के शतदल के समान भ्रष्ट हो जाते है।

'राम की शक्ति-पूजा' मे शक्ति की पूजा है, ज्ञान की नही। 'तुलसीदास' वाला ज्ञान व्यर्थ हो चुका है; शक्ति की साधना द्वारा 'सरोज-स्मृति' के अन्ध-नियतिवाद से निकलने का यहाँ विकट प्रयास है। कविता के आरम्भ मे ही राम के संशय का उल्लेख है :

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय।

यह संशय ज्ञान के प्रति है, दैवी विधान के प्रति है। 'सरोज-स्मृति' मे जैसे निराला के समस्त कवि-कर्म व्यर्थ हो गए, वैसे ही यहाँ राम के ज्योतिर्मय अस्त्र बुझ जाते हैं। दिव्यास्त्रो का बुझना ज्ञान की अव्यर्थता के प्रति शका उत्पन्न करता है। अन्याय के सामने ज्ञान की पराजय देखकर—**शंकाकुल हो गए अतुल बल शेष शयन**। यदि संसार मे मनुष्य के परे कोई नैतिक शक्ति है तो वह राम का साथ क्यों नही देती ? **अन्याय जिधर, है उधर शक्ति**—यह दैवी विधान राम की समझ मे नही आता। रावण अधर्मरत, राम धर्मरत; राम पराये, रावण उनका अपना सगा। यह कहाँ का न्याय है ? मनुष्य को ही न्याय-व्यवस्था कायम करनी है, इसी के लिए शक्ति-साधना आवश्यक है। अंध-नियतिवाद से निकलने का यह रास्ता है।

शक्ति-साधना के लिए क्या योग आवश्यक है ? जो ज्ञानी होता है, क्या वह योगी भी होता है ? भक्त भी क्या योगी हो सकता है ? निराला के गद्य-लेखो मे इन प्रश्नो का स्पष्ट उत्तर नही है किंतु उनके चिंतन पर योग-सम्बन्धी विचारधारा का गहरा प्रभाव बहुत जगह देखा जा सकता है। रामचरितमानस के सात काण्ड, उनकी व्याख्या के अनुसार,योगियों के सात चक्र है। **जागो फिर एक बार** (२) में सप्तावरण-मरण-लोक भेदकर सहस्रार तक पहुँचने का उल्लेख है। ये सात लोक वही सात चक्र हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम का मन—समाराधन गहन होने पर—एक चक्र से दूसरे चक्र तक चढ़ता हुआ आज्ञा-चक्र तक आ पहुँचता है। जैसे वह सहस्रार पार करने को होता है, दुर्गा आकर आखिरी कमल उठा ले जाती हैं।

'तुलसीदास' कविता मे जहाँ तुलसी का मन आकाश मे उठता चला जाता है, वहाँ इसी चक्र को पार करने की क्रिया का साकेतिक वर्णन है। 'राम की शक्ति-पूजा' मे महावीर की आकाश-यात्रा भी इसी प्रकार की है। विचित्र बात है कि महावीर इतनी लम्बी यात्रा कर आए और किसी ने पूछा भी नही कि कहाँ गए

थे ! पूछना आवश्यक न था क्योंकि वह अपनी जगह से हिले तक नहीं; सारी क्रियाएँ मानसिक थी। इसका अन्य प्रमाण भी है। राम के लिए लिखा है कि उनका मन ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर पार कर गया। राम आसन मारे जप कर रहे थे, तब भी मन इन देवताओं का स्तर पार कर गया। वैसे ही महावीर बैठे रहे, फिर भी वहाँ पहुँच गए जहाँ शिव का निवास है। जब दुर्गा आखिरी कमल उठा ले जाती हैं तब राम का मन विद्युत् गति से बुद्धि के दुर्ग तक पहुँच जाता है। इसी गति से महावीर शंकर के निवास तक पहुँचते हैं।

मन का चक्रों पर चढ़ना और कुंडलिनी का जाग्रत होना एक ही बात है। राम के मन की विद्युत् गति इस कुंडलिनी की ही शक्ति है। 'तुलसीदास' में चेतनोर्मियों के प्राण विषम वज्र-द्वार तोड़ने के लिए जो ज्ञानोद्धत प्रहार करते है, वह इस कुंडलिनी की चक्रभेदन क्रिया ही है।

> सोई घेर गगन का मन, फन
> कुण्डली-नगन-लीन विश्व-जन
> देखी मणि जागे, परिवर्तन,
> गया मोह-अज्ञान, यान तुम। (गीतिका, पृ. ७७)

जो गगन का मन घेर कर सोई है, वह कुंडलिनी है। 'राम की शक्ति-पूजा' में श्यामा समग्र नभ को आच्छादित किए हुए है। दोनों जगह आकाश मन का प्रतीक है और जो उसे घेरे हुए है, वह शक्ति है।

निराला के योग-सम्बन्धी चिन्तन की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। योग से जो सिद्धि प्राप्त होती है, उससे मनुष्य को कही भी ब्रह्म के दर्शन नही होते, ऋतंभरा, विशोका, ज्योतिष्मती जैसी कोई चीज दिखाई नही देती। सिद्धि प्राप्त होने पर योगी ब्रह्म मे लीन हो जाय, ऐसा कोई चमत्कार नही होता। निराला का ध्यान शक्ति प्राप्त करने की ओर है, ब्रह्म में लीन होने की ओर नही। तुलसीदास जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह भी एक प्रकार की शक्ति है; **जागी योगिनी अरूप लग्न** कहकर रत्नावली के संदर्भ में उन्होने शक्ति-साधना की ओर संकेत किया है। राम का पूजा कार्य जब समाप्त होता है तब मायावरण भेद जाने पर ब्रह्म के नही, शक्ति के दर्शन होते हैं। चमत्कार यह है कि राम शक्ति मे लीन नही होते, शक्ति लीन होती हैं राम मे। सहस्रार तक पहुँचना, फिर नीचे उतरकर संसार में काम करना—यह प्रक्रिया 'तुलसीदास' में है, 'राम की शक्ति-पूजा' में है। निराला के लिए योग का उद्देश्य संसार से मुक्त होना नही, शक्ति संचय करके फिर इसी संसार में संघर्ष करना है।

योग का मौलिक सम्बन्ध है शक्ति से। योग ज्ञानी के लिए है, भक्त के लिए भी। **अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय शरीर**—महावीर राम-भक्ति साकार है, वैसे ही योगी हैं जैसे राम शक्ति के अगाध भंडार। भक्त भी ज्ञानी जैसा शक्तिशाली हो सकता है यदि वह निःस्वार्थ सेवा करे। राम और महावीर मे अन्तर यह है कि महावीर जब आकाश से उतरे तब प्रभुपद गहकर फिर दीन हो गए। यह

दैन्य-भाव पराजय के सबसे दुखद क्षणों में भी राम के मन पर हावी नहीं होता। राम के पास एक अपराजेय मन है—

जो नही जानता दैन्य, नही जानता विनय।

वह शक्ति की पूजा करते है लेकिन दीनभाव से मुक्त रहकर। महावीर आकाश मे माता की छवि देखकर विनम्र हुए और नीचे उतर आए; राम ने दुर्गा को आत्मसात् कर लिया।

निराला का सहज भाव दैन्य और कातरता के विरुद्ध है। अनेक भक्तिपरक रचनाओ में दैन्य-प्रदर्शन के बदले दृढ संकल्प की सूचना है। **बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे भाषा अमृत निर्झर; फूटो फिर, फिर से तुम, रुद्ध कंठ सामगान**—ऐसे गीतों मे संकल्प द्वारा सिद्धि प्राप्त करने में विश्वास है, दैन्य प्रदर्शन नही।

सान्ध्यकाकली के गीत मे निराला ने लिखा था, विकृत भाव की भक्ति भगा दो। (पृ. ४८) यह विकृत भाव वाली भक्ति कौनसी है? जहाँ शक्तिहीनता है, केवल दैन्य-प्रदर्शन है, जीवन की अस्वीकृति है, वहाँ विकृत भक्ति है।

नई शक्ति, अनुरक्ति जगा दो,
विकृत भाव की भक्ति भगा दो।

जहाँ शक्ति होगी, अनुरक्ति होगी, वहाँ सहजभाव की भक्ति होगी, विकृतभाव वाली नही। **सान्ध्यकाकली** का यह गीत क्रान्ति के प्रतीक बादल पर है। जल बरसता है, धरती काँप उठती है, आम के पत्तों मे नया जीवन, तरुणी के अधरों में नया रंग दिखाई देता है, युवक जनो के हृदय मे नया उल्लास भर जाता है। यह सब जीवन की स्वीकृति है जो भक्ति को विकृत होने से बचाती है। इस दृष्टि से विज्ञान और साहित्य की जो साधना की जाएगी, वह बोझ उठाने वालों को भार-मुक्त करेगी।

निराला-काव्य मे यदि कही ज्ञान, भक्ति और कर्म का उचित समन्वय है तो यहाँ। देश और जनता के प्रति भक्ति, वैज्ञानिक उपायो का आलम्बन, कर्म द्वारा मुक्ति के लक्ष्य की सिद्धि।

यह गीत उन्होंने मृत्यु से दो वर्ष पूर्व लिखा था।

आकाश और धरती

विख्यात है कि रूमानी कवि कल्पना के आकाश मे विचरण करते है। छायावादी कवियों के बारे मे यह धारणा विशेष रूप से प्रचलित है कि वे संसार से नाता तोड़

कर अनन्त की ओर पलायन करते है। किंतु जिस दर्शन में आकाश भी एक तत्त्व है, उसमे मनुष्य भागकर जाएगा कहाँ ? धरती से उड़ा तो आकाश में पहुँचा; पाँच तत्त्वो के संसार से वाहर फिर भी न गया। जहाँ अगोचर सत्य की वात है, वहाँ पृथ्वी और आकाश में विशेष अन्तर नही। चाहे धरती पर चलो, चाहे आकाश में उड़ो, रहोगे इसी पंचतत्त्वों वाले भौतिक जगत् में। इसलिए मुक्ति तव मिलेगी जव पृथ्वी और आकाश दोनों के मिथ्या होने का वोध हो जाएगा, ज्ञान तव मिलेगा, जव भौतिक संसार से हर तरह का सम्वन्ध मिट जाएगा। निराला जव निर्गुण निराकार व्रह्म की चर्चा करते हैं, तव वह इसी प्रकार माया से नाता तोड़ लेते हैं। यह निराला-काव्य का एक पक्ष है।

निराला-काव्य में सामान्यतः जिस संसार का चित्र मिलता है, उसमें धरती और आकाग परस्पर संवद्ध हैं। धरती छोड़कर आकाश में विचरने से मुक्ति पाने का सवाल नही, धरती और आकाश दोनो की अलग-अलग भूमिका है। तुलसीदास, राम, महावीर आकाश में ऊँचे चढ़कर फिर धरती पर लौट आते हैं। आकाश मन है, कल्पना है। जैसे योगियों का पहला और सवसे नीचे वाला चक्र मूलाधार आख़िरी और सवसे ऊपर वाले चक्र सहस्रार से जुड़ा हुआ है, वैसे ही निराला के लिए धरती आकाश से जुड़ी हुई है।

आकाश को देखने वाले इसी धरती पर हैं। कुंदकली की आँखें नील गगन की ओर हैं, वह खिली है धरती पर। (**गीतिका**, पृ. ४) आकाश में अरुण को देखने वाली नील कमल कलिकाएँ धरती पर वहने वाली शिशिर समीर से काँप उठती हैं। (उप., पृ. ८) जो पंक-उर स्नेह पाने से पंकज वन गए है, वे ऊर्ध्व दृग होकर गगन मे मुक्तिमणि देखते हैं; सुरभि-सुमनावली धरती पर है, मुक्तिमणि गगन में। (उप., पृ. १८) आकाश के तारे जिसका हार है, मेघ जिसके केश हैं, चन्द्रमा जिसका मुख है, वह प्रकृति देवी फूलो के सौरभ से घिरी हुई है। गन्ध पृथ्वी का गुण है, इसलिए उसका शीश भले आकाश में हो, चरण उसके पृथ्वी पर हैं।

चाँदनी रात मे गंगा-तट के दृश्य का वर्णन करते हुए निराला ने लिखा : **वैठा देखता हूँ तारतम्य विश्व का सघन**। ('नर्गिस', '**अनामिका**', पृ. १८६) जहाँ विश्व के सघन तारतम्य का वोध है, वहाँ धरती और आकाश एक ही यथार्थ के दो अभिन्न अंग हैं यद्यपि दोनों की भूमिका अलग-अलग है। यदि आकाश कल्पना है तो पृथ्वी देह है। पृथ्वी स्थूल है, इसलिए हेय है, आकाश सूक्ष्म है, इसलिए महान् है, निराला के अनुसार यह तर्क-पद्धति गलत है।

सूक्ष्मतम होता हुआ जैसे तत्त्व ऊपर को
गया श्रेष्ठ मान लिया लोगो ने महाम्वर को
स्वर्ग त्यो धरा से श्रेष्ठ, वड़ी देह से कल्पना।

विश्व के तारतम्य मे जैसे पृथ्वी और आकाश दोनों आवश्यक है, वैसे ही मानव-जीवन मे देह और कल्पना आवश्यक है। कल्पना को वड़ा मानकर देह को अस्वीकार करना गलत है।

आकाश से धरती पर अप्सरा के समान उतरती हुई ज्योत्स्ना उतनी सुन्दर नही है जितनी अंधकार पार करके आकाश पर चढती हुई नर्गिस की सुगन्ध। निराला काव्य मे धरती से रूप-रस-गन्ध-शब्द का ऊर्ध्व-संचरण अनेक स्थलो पर देखा जा सकता है। मानव-चेतना की आधारभूमि है मानव-संवेदन। इस संवेदन-भूमि से कटकर भाव और विचार की कोई सत्ता नही। नवम्बर सन् '२१ की 'प्रभा' मे प्रकाशित अपनी कविता 'अध्यात्म-फल' में निराला ने लिखा था :

खेत मे पड भाव की जड़ गड़ गई,
धीर ने दुखनीर से सीचा सदा।

निराला के भावो की जडें खेतों मे हैं, सुख के भावों की, दुख के भावो की भी। यही से कल्पना की लताएँ आकाश की ओर लहराती हुई पल्लवित और विकसित होती है।

बुझे तृष्णाशा विपानल झरे भापा अमृत निर्झर
उमड़ प्राणो से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर।

(गीतिका, पृ. ६४)

जो स्वर आकाश मे छा जाते है, वे धरती के स्वर है, वही प्राणों से उमड़ने वाले स्वर है। यह धरती की शक्ति का ऊर्ध्व-संचरण है।

धरती के भीतर अन्धकार के अनेक स्तर पार करती हुई वनवेला की सुगन्ध ऊपर आती है, लगता है कि वह मस्तक पर अतल की अतुल वास लेकर ऊपर उठी है। (अनामिका, पृ. ८७) ऐसे ही अन्धकार का पथ पार कर नर्गिस की सुगंध आकाश की ओर बढती है। रूप-रस-स्पर्श-शब्द के संसार मे गन्ध की भूमिका मानव-जीवन मे काम-चेतना की भूमिका है। धरती से सुरभि का फूटना और मानव-मन में प्रणयभाव का उदय होना—दोनो क्रियाएँ एक साथ सम्पन्न होती है।

आज वह याद है वसन्त,
जव प्रथम दिगन्त-श्री
सुरभि धरा के आकांक्षित हृदय की
दान प्रथम हृदय को
था ग्रहण किया हृदय ने। ('रेखा', अनामिका, पृ. ७७)

धरती और देह—दोनों का आन्तरिक स्पन्दन निराला एक साथ सुनते है। उन्होने अपने कविता-संग्रह का नाम रखा— **परिमल**। यह नाम धरती की गन्ध, देह के संगीत का प्रतीक है। **परिमल मधु लुब्ध मधुप करता गुंजार**—(परिमल, पृ.६५) परिमल का लोभी यह भ्रमर निराला का आनन्दकामी मन है। धरती को पुलकित करती हुई परिमल के शीतल पलक मारकर जो हवा चलती है ('पारस', उप. ६४) वह प्रणय का संदेश लेकर आती है। पृथ्वी की गन्ध लिए वसन्ती हवा का स्पर्श-सुख मिलने पर निराला को सहज ही रमणी के अंगराग का स्मरण हो आता है—**सुरभि सुमन्द में हो जैसे अंगराग गन्ध**। ('रेखा', अनामिका, पृ. ७१) 'गीत-गुंज' मे—**खिली चमेली देह-गन्ध मृदु** (पृ. ४१); 'रेखा', की अंगराग-गन्ध को

निराला फिर याद कर रहे हैं।

अंगराग-गन्ध में विशेष रूप से अलक-गंध उन्हें प्रिय है। वनवेला की सुगन्ध से प्रसन्न होकर उनका मन सीधा प्रेयसी की अलकों के पास पहुँचता है:

खोलीं आँखें आतुरता से, देखा अमन्द
प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गंध।

चाँदनी रात में निशा का शीतल स्पर्श और—

वायु व्याकुल कर रही है चयन
पलक-उपवन-गंध अन्ध-चपल। (अणिमा, पृ. १०१)

एक-दो फूल नहीं, अलकों का पूरा उपवन है। निराला-काव्य में देह, पृथ्वी, गन्ध, सृजन, तृप्ति का पूरा दर्शन है। यह दर्शन वेदान्त से घटकर नहीं; उसका ज्ञान भी मुक्ति के लिए आवश्यक है। 'पंचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण पूछते हैं—**प्रलय किसे कहते हैं?** राम उत्तर देते हैं—**मन, बुद्धि और अहंकार का लय प्रलय है**। प्रलय की यह व्याख्या वेदान्त के अनुकूल है। एक प्रलय और है—प्रणय का। इसका उल्लेख 'प्रेयसी' में है: **प्रणय के प्रलय में सीमा सब खो गई!** (अनामिका, पृ. ४) सीमाएँ खो जाने पर मन और बुद्धि का नाश नहीं होता; दो प्रेमियों के मन और बुद्धि मिलकर एक हो जाते हैं। निराला प्रणय की अनुभूति का वर्णन करने के लिए सुरभि के उसी परिचित प्रतिमान का उपयोग करते हैं—

मृदु सुरभि सी समीर में
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,
मन में मन जी जी में।
(जागो फिर एक बार (१), परिमल, पृ. १७२)

वेदान्त की प्रलय के समानांतर यह प्रणय की प्रलय है। वेदान्ती के लिए मूर्त सौन्दर्य छलना है; निराला के लिए उसका ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। ज्ञानी को चिढ़ाते हुए कहते हैं:

देख तुम्हारी मूर्ति मनोहर
रहें ताकते ज्ञानी (गीतिका, पृ. २४)

जिसे सम्बोधित किया है, वह कल्पना के कानन की रानी है। रातभर जिस युवती ने प्रणय-केलि की है, वह सवेरे तृप्ति और मुक्ति की छवि जैसी लगती है:

वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी। (उप., पृ. २)

इसी भाव की आवृत्ति 'प्रेयसी' मे है। वृन्त पर नग्न-तनु कली के समान जो युवती उपवन में विहार करती है, वह छिन्नहार होकर भी मुक्ता-सी निःसंग रहती है। (अनामिका, पृ. ३) उसका यह निःसंग भाव ही उसकी मुक्ति है। मुक्ता वाला उपमान दोनों जगह एक ही अर्थ की ओर संकेत करता है।

दो प्रेमियों की दृष्टि मिली; प्रणय से दोनों के शरीर काँप उठे। उनके मिलन की परिणति है ज्ञान और मुक्ति।

समझे युग रागानुग मुक्ति रे—
ज्ञान परम, मिले चरम युक्ति से। (गीतिका, पृ. ९९)

स्नेह की सरिता के तट पर जो युवती दो कमल-घट भरे हुए चल रही है, उसकी आँखों में अंकपित ज्ञान है; उसका यह ज्ञानमय सौन्दर्य देखकर सभी 'श्रुतिधर'—तथाकथित ज्ञानी और पंडित—चकित रह जाते हैं। (उप., पृ. ४२) मनुष्य के लिए मृत्यु और अन्धकार का त्रास तब उत्पन्न होता है जब वह अपने हृदय में 'सौरभ के सरण द्वार' वन्द कर लेता है। परिमल की तरह मन को वहने दो, नया जीवन अवश्य मिलेगा। (उप., पृ. ५१)जब जीवन सुलभ है, तब 'मृत्यु के विवर' में क्यों रहा जाय? ससार की गुहा, सामाजिक जीवन के प्राचीन गर्त से निराला को शिकायत यह है कि यहाँ 'मधुगन्ध लुब्ध' वायु नही है। (उप., पृ. ९३) स्वभावत: इस ज्ञान की परिणति है सृजन। धरती में बीज, बीज से विटप, विटप से लिपटी हुई यौवन-लता, फिर जीवन का कलरव, यह है ज्योति और ज्ञान का मिलन :

सिक्त बीज, भर उगा विटप नव,
लिपटी यौवन-लता, पराभव
भान, उभय सुख-जीवन कलरव
मिले ज्योति और ज्ञान ! (उप., पृ. ९१)

यदि एक ज्ञान ब्रह्म का है तो दूसरा ज्ञान संसार का है; एक मुक्ति संसार छोड़ने मे है तो दूसरी मुक्ति संसार मे रहने, मानव का सहज धर्म निवाहने मे है। जहाँ भी ज्ञान शब्द का व्यवहार हो, उसे वेदान्त-ज्ञान का समानार्थी न मान लेना चाहिए।

तरु और लता—यौवन और प्रणय के चित्रण के लिए सनातन काल से कवि इन प्रतिमानों का उपयोग करते आये हैं। निराला के प्रकृति-अद्वैत दर्शन मे धरती की जो भूमिका है, उसे देखते हुए वे पुराने प्रतिमान नये अर्थ से दीप्त हुए हैं। जो मन संवेदन-भूमि से बँधा हुआ है, अपनी जड़ों से धरती का रस खीचता है, वही तृप्ति-सुख का अनुभव करता है, उसी की सृजन शक्ति जीवन मे प्रतिफलित होती है। ऊपर उद्धृत किए हुए गीत मे जैसे विटप के साथ यौवन लता है, वैसे ही 'प्रेयसी' में जब तारुण्य की लहर उठी तब अपने ही तरु-तन को घेरकर युवती ज्योतिर्मय लता-सी बन गई। (अना., पृ. १) पृथ्वी के सौन्दर्य और सृजन शक्ति के चित्रण के लिए प्रतीक रूप में उमा निराला को प्रिय है क्योंकि वह शैलजा है, धरती से उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जो रूखी डाल वासन्ती वसन धारण करेगी, वह शैल-सुता है; शिव-संपर्क से वह संसार को स्वाद-तोष-दल वाला मधुर फल देगी। (गीतिका, पृ. १४)

धरती के सौन्दर्य, वैभव और सृजनशीलता की ऋतु है वसन्त। देश और काल परस्पर सम्बद्ध है। धरती हँसती है, वर्ष हँसता है।

फिर वर्ष सहस्र पथो से
आया हँसता मुख आया। ('वासन्ती', परिमल, पृ. ६९)

वसन्त ऋतु निरन्तर प्रवहमान काल की उल्लास-व्यंजना है। वन मे कोयल का स्वर गूँज उठा। शब्द, गन्ध, रस और वर्णो की छवि सर्वत्र दिखायी दी। यह देश का सौन्दर्य है, काल का सौन्दर्य है :

प्रथम वर्ष की पाँख खुली है। (अर्चना, पृ. ३२)

वर्ष का यह उल्लास शीत का विरोधी है; सूर्य की किरणों से वह उसे वेध डालता है; सूर्य की किरणें पृथ्वी और आकाश का हर्ष भी प्रकट करती है :

वर्ष के कर हर्ष के शर
विंध गया है शीत, कोयल ! (उप., पृ. ७७)

काल, विश्व के सघन तारतम्य में, देश से सम्बद्ध है, जैसे आकाश पृथ्वी से। यदि पृथ्वी आनन्द से पुलकित है तो आकाश जड, स्थिर अथवा केवल शून्य नहीं है। चुंबन का स्पर्श-सुख देती हुई वसन्त-समीर धरती के अलावा आकाश को आनन्द से चंचल कर देती है :

प्रथम चकित चुम्बन सी सिहर समीर
कँपा त्रस्त अम्बर का छोर।

('प्रथम प्रभात', परिमल, पृ. ८३)

यहाँ अम्बर त्रस्त होकर काँपता है किन्तु यह त्रास वास्तविक भय का सूचक नही, सुख की अतिशयता से भी त्रस्त होना सम्भव है। वसन्त मे जब रंग-विरंगे फूलों से पग-पग भूमि रँग जाती है, तब सुख के भय से वन-श्री वैसे ही काँप उठती है जैसे वसन्ती हवा चलने से आकाश :

सुख के भय काँपती प्रणय-क्लम
वन-श्री चारुतरा। (गीतिका, पृ. ४९)

यह वन-श्री प्रकृति की रचना शक्ति से दीप्त है। वृक्ष के भीतर की लाली और भी गहरी लाल हो गई है, वसन्त के आने पर वह कलियो के रूप-वैभव मे फूट पड़ी है :

तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर
खुली रूप-कलियों मे पर भर— (उप.)

पृथ्वी के पग-पग रँग जाने, जागने, जगमगाने और धन्य होने मे उसकी सृजन-शीलता के प्रतिफलन की ओर संकेत है। इस गीत में जिसे वन-श्री कहा गया है, वह पशु-पक्षी-वनस्पति समेत समस्त प्रकृति की छवि है। रूप-रस-शब्द-गंध-स्पर्श के अलग-अलग वोध जहाँ एक ही उल्लास की धारा मे घुल-मिल जाते है, वहाँ इस व्यापक वन-श्री का वोध होता है। इसी को अन्य गीत में निराला ने वन-यौवन की माया कहा है। (उप., पृ.३)

रूप-रस-शब्द-गंध-स्पर्श-वोध की एक विशेपता यह है कि रूप, गंध आदि परिवर्तित होकर शब्द वन जाते है। उल्लास की अतिशयता मानो रूप-रस-वोध की सीमाएँ मिटाकर उन्हें अन्य सूक्ष्म स्तर पर पुनर्गठित करती है। यह स्तर सूक्ष्म है, किन्तु अतीन्द्रिय नही; सूक्ष्मता है रूप या रस के वोध मे, शब्द या गन्ध की

छाया पहचानने मे। यदि धरती और आकाश, देश और काल परस्पर सम्बद्ध हैं तो मनुष्य के विभिन्न इन्द्रियबोध ही परस्पर सम्बद्ध क्यों न होंगे ? वसन्त मे जो पत्रो की हरियाली है, वह दिखायी ही नही देती, सूक्ष्म स्वरों में सुनायी भी देती है :

फूट हरित पत्रों के उर से
स्वर सप्तक छाये। (गीत, परिमल, पृ. ४०)

इसी का भाव-विस्तार एक अन्य प्रसिद्ध गीत में है :

अमरण भर वरण-गान
वन-वन उपवन-उपवन
जागी छवि, खुले प्राण। (गीतिका, पृ. ७)

जो रूप वन-उपवन की छवि है, वही प्रकृति का अमर संगीत बनकर भी सुनाई देता है।

वसन्त कवि के इन्द्रिय-बोध की शक्ति को एक साथ जगाता है। रूप-रस-गंध का सारा संसार उत्तेजक बनकर चेतना को चंचल कर देता है। कही रंग-रूप की अतिशयता है, लगता है, प्रकृति ने सारे जंगल पर बहुत से रंगों मे डुबोकर कूची फेर दी है—**कूची तुम्हारी फिरी कानन में** (गीत-गुंज, पृ. ४), कही बौरों की गंध पर भौंरे टूट रहे है (पृ. ४), कही सौरभ के फौवारे छूटे (आराधना, पृ.६३), वहार के दिन सुगंध भार के दिन भी है (बेला, पृ. ३१), कलियो के अधरो से गंध फूटी और उनका राज़ खुल गया (उप., पृ.३२), कही फूलों के रूप मे पीली ज्वाला के पुंज दिखायी देते हैं (अर्चना, पृ. ३१), भौंरों और कोयल का शब्द बागों में वार-वार गूंज उठता है, सारा सौन्दर्य रूप-रस-गन्ध की कामना पूरी कर देता है।

होली का उत्सव वसन्त के चरम उत्कर्ष का उत्सव है। निराला ने प्रारंभिक रचनाओं से लेकर आखिरी दौर तक होली पर बहुत कुछ लिखा है। आरंभ में जहाँ होली का विवरण मात्र है, वहाँ आगे चलकर रसबोध और सूक्ष्म होता गया है; कहाँ धरती का सौन्दर्य है, कहाँ रमणी का, यह कहना कठिन हो जाता है। विशेष बात यह कि किसी भी दौर मे उनके मन मे प्रसन्नता का भाव बुझता नही। कभी-कभी तो लगता है कि अन्तिम दशक में यह भाव और भी थिराया हुआ, शान्त किन्तु भीतर से ऊर्जस्वित हो गया है। परिमल की 'वासन्ती' कविता में होली का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होने लिखा था :

फागुन का फाग मचे फिर,
गावें अलिगुंजन होली,
हँसती नव हास रहें घिर,
बालाएँ डालें रोरी। (पृ. ६८)

फागुन का यही फाग अर्चना मे परिवर्तित होकर कितना सूक्ष्म और सरस हो गया है :

फागुन के रंगराग बाग वन फाग मचा है,
भर गये मोती के झाग, जनों के मन लूटे हैं। (पृ. ३३)

मोती के झाग में रूप- रस-गंध की छवि का ज्वार प्रत्यक्ष हो गया है।

वसन्त और होली के उल्लास से भारतीय जन-जीवन के उल्लास का सम्वन्ध है। निराला प्रकृति के सौन्दर्य में डूवते है, लोक-सस्कृति और लोक-संगीत मे भी डूवते हैं। होली की धुन से मिलकर, प्रकृति और नारी के शृंगार-चित्र और भी निखर उठते है; वसन्त की छवि मानो चित्रो मे ही नही, सरस भदेस शव्दो में, लोक-गीत की धुन मे व्याप गई हो। **नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली**— वसंत और शृंगार का वातावरण प्रस्तुत करने वाला यह गीत, **गीतिका** की अन्य रचनाओं से अपनी शैली में भिन्न, निराला के भावी विकास का सूचक है। गीत मे शृंगार-चित्र शयन-कक्ष के भीतर का है किन्तु शव्दों में, गीत की धुन में, **गुलाल भरे, खेली होली** जैसी पदयोजना में शयन कक्ष के वाहर का वातावरण समाया हुआ है। इससे मिलता-जुलता **गीतिका** का दूसरा गीत है :

मार दी तुझे पिचकारी,
कौन री, रँगी छवि वारी ?

'फूल सी देह' कहकर निराला ने प्रकृति के वैभव का स्मरण-भर करा दिया है। **बेला** में गजलो का अंवार है; लोकधुने दव गई है लेकिन कुछ पंक्तियो की धुन वही है जो नयनो के डोरे लाल की है :

देह की माया की जोत, जीभ के सीप के मोती,
छन-छन और उदोत, वसन्त-वहार वने तुम। (पृ. २६)

गज़लों मे निराला ने वहार पर वहुत कुछ कहा है किन्तु उसमे कारीगरी ज्यादा है। मन का सहज उल्लास वही प्रकट होता है जहाँ वसन्त-वर्णन के साथ लोक धुनें घुल-मिल जाती हैं। **अर्चना** मे ऐसे गीत अनेक हैं :

फूटे है आमो मे वौर भौर वन-वन टूटे है।
होली मची ठौर-ठौर सभी वन्धन छूटे है। (पृ. ३३)

यह लोकोत्सव में शास्त्रीय मर्यादाओ का उल्लंघन करने वाले आनन्द की सहज अभिव्यक्ति है। **आराधना** मे होली के आनन्द के साथ अवसाद की एक झलक है, मानो वसन्त अव विदा हो रहा हो :

गोरे अधर मुसकाई हमारी वसंत विदाई।
अंग अंग वलखाई हमारी वसंत विदाई। (पृ. ६४)

निराला काव्य मे प्रकृति-सौन्दर्य का अनुपम चित्रण है, उसका अपना एक दर्शन है। यह दर्शन उनके गद्य-लेखो मे वैसा ही निरूपित नही हुआ, जैसा काव्य मे दिखाई देता है। इस दर्शन में पृथ्वी और आकाश, देश और काल परस्पर संवद्ध है। धरती या देह समस्त सौन्दर्य की आधारभूमि है। भाव और कल्पना की जड़े मानव-संवेदनो में हैं। सघन इन्द्रियवोध से ही भाव और विचार कल्पना के आकाश की ओर उठते है, इसलिए आनन्द केवल मन का आनन्द नही, तन का आनन्द भी है, वसन्त की छवि केवल प्रकृति में नही, मानव-जीवन मे भी है। आनन्द की अति-शयता में रूप-रस-गन्ध आदि का वोध तरल होकर परिवर्तित हो जाता है, वसंत

की श्री सूक्ष्म संगीत बन जाती है। प्रकृति और मानव-जीवन के इस सुख-सौन्दर्य का ज्ञान भी वेदान्त ज्ञान के समकक्ष ज्ञान कहलाने का अधिकारी है। उस ज्ञान से जो तृप्ति मिलती है, वह भी एक तरह की मुक्ति है, भक्तो और ज्ञानियो की मुक्ति से भिन्न, फिर भी मुक्ति।

कामचेतना

निराला नारी के सौन्दर्य, पुरुप और नारी की कामचेतना और उस चेतना की स्वाभाविक परिणति के कवि है। पुरुप के सौन्दर्य का वर्णन उनके गद्य मे तो जहाँ-तहाँ है, किन्तु काव्य मे उनके ध्यान का केन्द्र है नारी का सौन्दर्य। उनकी कहानियो में जिन युवतियो का चित्रण किया गया है, उनमे काफी समानता है; कविता मे जिनकी रमणीयता का उल्लेख है, उनमे काफी विविधता है। अनेक स्वच्छंदतावादी कवियों की रचनाओ में जिस अतृप्ति अथवा काल्पनिक कामेच्छापूर्ति की झलक मिलती है, निराला-काव्य मे उसका प्राय अभाव है। रूप और यौवन के वर्णन में ऐसे भावावेश की झलक मिलती है जो रीतिवादी काव्य मे दुर्लभ है। यह भावावेश परंपरागत नैतिकता और सामाजिक रूढियो की सीमाएँ पार कर जाता है। सीमाएँ पार करने पर भी रीतिवादी कवियों की तरह निराला कामोत्तेजना का सामान नही जुटाते; उत्तेजना नियंत्रित रहती है जिससे उनके शृंगार-काव्य में एक प्रकार की उदात्त भंगिमा के दर्शन होते है। रमणीयता के इस भाव से वह कभी वेदान्त का सामञ्जस्य स्थापित करते है, कभी उसे वेदान्त का समकक्ष अथवा उससे मुक्त मानते है।

मानव-शरीर मे यौवन का प्रवेश निराला के लिए विस्मय और कुतूहल का विपय है। धरती के हृदय से जैसे वसत मे स्वर-सप्तक फूट पड़ते हैं, वैसे ही युवती के प्रणय-दोलित शरीर मे भावसुमन खिल जाते है। ('गीत', परिमल, पृ. ४०) कुछ समय के लिए मुग्धा की लज्जित पलको पर यौवन की छवि अतीत शिशुता के साथ आँख-मिचौनी खेलती जान पडती है। ('यमुना के प्रति', उप., पृ. ४४) यौवन की तरंग अपने प्रकाश से युवती को ज्योति की लता बना देती है किन्तु यह प्रकाश गन्धमय है, उसके शरीर मे फूलो के गुच्छे खिले हुए है। 'प्रेयसी' मे निराला इस रूप का वर्णन रहस्यवादियो के अनेक रूढ़ उपादानो द्वारा करते है। (अनामिका, पृ. १) 'प्रेयसी' में यौवन एक तरंग है, 'रेखा' मे यौवन तट है जहाँ तक बहता हुआ सौन्दर्य का स्रोत आ पहुँचा है। (उप., पृ. ६९)

जहाँ रूप है, वहाँ यौवन है, जहाँ यौवन है, वहाँ रूप है। कहीं रूप जल है, यौवन प्रकाश है; कहीं यौवन प्रकाश है, रूप जल है। 'रूप की सजल प्रभा' ('भ्रमर गीत', परिमल, पृ. ६२) में जल और प्रकाश दोनों तत्त्वों का मिश्रण है। यौवन को पवन से कंपित होते देखकर, गन्ध से प्रणय का आह्वान पाकर निराला सौन्दर्य के प्रति अपनी तात्त्विक दृष्टि—पंच-तत्त्वों से बँधी हुई दृष्टि—का परिचय देते हैं।

निराला-काव्य में जो रूपसी है, युवती है, वह प्रणय-लालसा से परिचित है। जो अपने को अनजान मुग्धा कहती है, वह मुग्धा हो सकती है, अनजान नहीं।

तुम मदन पञ्चशर हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान। ('तुम और मैं', परिमल, पृ. ७८)

यह मुग्धा पञ्चशर मदन का प्रभाव जानती है, अनजान शब्द का व्यवहार उस प्रभाव को प्रत्यक्ष देखने के लिए करती हैं। परिमल की 'शेफालिका' मे निराला ने ऐसी ही मुग्धा का चित्रण किया है। यौवन-उभार ने कंचुकी के बंद खोल दिए है, वह पल्लव पर्यंक पर सो रही है किन्तु उसके लालसी कपोलो मे मूक आह्वान है।

अत्यन्त प्रिय है निराला को युवती का वह चित्र जहाँ वह तपस्विनी-सी अपने प्रिय के ध्यान मे मग्न दिखाई देती है। **गीतिका** के चौदहवें गीत में शैलसुता अपलक तप करती हुई दिखाई देती हैं, सातवे गीत की **निश्चल कर रही ध्यान मे** उन्ही ध्यानमग्न देवी की ओर संकेत है। यह ध्यान ब्रह्म की प्राप्ति के लिए नही, पुरुष के सम्पर्क से अपना नारी-जीवन सार्थक करने के लिए है। 'वहू' कविता (परिमल, पृ. १३६) एक तरह से अपवाद है जहाँ युवती नव वसंत की किसलय कोमलता है किन्तु—

विषय-वासना तुच्छ, उसे कोई परवाह नहीं है।

अनेक रचनाओं मे निराला पुरुष को सोता हुआ—शरीर की आँखे भले खुली हों, कामचेतना वाली आँखें वन्द किए हुए—दिखाते है। **जागो फिर एक बार** (१) मे जो प्रकृति वर्षों तक पुरुष को जगाने मे असफल होकर कहती है—**कब से मैं रही पुकार**, वह मानो अनेक युवतियों की सम्मिलित आकाक्षा का चित्र है। 'पंचवटी प्रसंग' की रूपगर्विता शूर्पणखा इसी तरह अपने काम्य पुरुष के मन में प्रणय-भावना जगाने मे असफल रहती है। पुरुष नारी को पुकारे—निराला-काव्य मे ऐसा कम होता है। जिसे वासना का श्रुति-मधुर शब्द पहले सुनाई देता है, वह नारी है। ('प्रभाती', परिमल, पृ. ३६) वह पुरुष से कहती है :

वंद तुम्हारा द्वार !
मेरे सुहाग-शृंगार !
द्वार यह खोलो—!
सुनी भी मेरी करुण पुकार ?
ज़रा कुछ वोलो ? ('अंजलि', उप., पृ. १२०)

ऐसी ही लालसा-विह्वल **गीतिका** की वह युवती है जो अपने मर्म पर मनोज्ञ भ्रमर

के उतरने का आह्वान करती है। (पृ. ४०) आह्वान कहीं मूक है, कही मुखर; पुरुष को वह किसी न किसी रूप मे सुनाई अवश्य देता है। 'तुम और मैं' की उपमान-शृंखलाओं मे 'तुम' नही, 'मै' के स्वर की झंकार है और यह 'मैं' पुरुष नही, नारी है।

स्वभावत: उससे आँखे मिलाना पुरुष के लिए आसान काम नही। **गीतिका** के समर्पण मे निराला ने स्वर्गीया पत्नी को स्मरण करते हुए लिखा था—"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मै आँखें नही मिला सका", किन्तु आँखें न मिला पाने का कारण हिंदी का प्रकाश ही नहीं है :

हारी नही, देख, आँखे—
परी नागरी की—

('अपराजिता', अना., पृ. १४३)

यह नागरी अपनी ओर देखने वाले को हिन्दी के प्रकाश से परास्त नही कर रही; उसकी आँखों में एक चुनौती है जिससे देखने वाले का मन सिहर उठता है। किसान की नई वहू नयनो का नागरिक व्यापार नही जानती। उसकी आँखें साम्राज्ञी है; भले ही वे अपनी शक्ति से अपरिचित हों, किंतु उनमें है शासन का भाव अवश्य। (उप., पृ. १४६) सुन्दर आँखों की उपमा नर्गिस से दी जाती है। निराला की कविता में नर्गिस प्रणय के नयन जैसी, टकटकी बाँधकर, कवि को देखती रहती है, किन्तु कवि उसकी सुगन्ध से तृप्त होकर आँखें बंद कर लेता है। यह क्रिया आकस्मिक नही है। **गीतगुंज**, मे कमरख की जो आँखे वन का सौदा कर आई है, वे कुछ हरकर लाई हैं, या हरी गई हैं, कवि निश्चित रूप से कुछ नही कह सकता। (पृ. ७) अन्य गीत में खेल सीख चुकी आँखों में विजली की कौंधन है; उनमें वही अपराजिता वाला भाव है। (**गीतगुंज**, पृ. २४) उपवन में जो चमेली खिली है, वह **अनामिका** की परी नागरी अथवा नर्गिस की तरह अपराजिता है : **अपराजिता नयन की सुनियत**। (उप., पृ. २५) नारी के रूप-वर्णन मे निराला के लिए नेत्रो का अन्यतम स्थान है और इन नेत्रों के सौन्दर्य के प्रति उनकी भावदृष्टि उनकी सामान्य काम-चेतना से प्रभावित है। काम-व्यापार मे प्रेरक शक्ति है नारी; इस भूमिका के अनुरूप उसकी आँखें हैं अपराजिता।

पुरुष को पराजित करने की शक्ति जैसे आँखों मे है, वैसे ही उसे विह्वल और मदान्ध करने की शक्ति अलकों मे है। पृथ्वी की सुरभि के उल्लेख के साथ निराला को अलक-गन्ध याद आती है। 'यमुना के प्रति' में पहले निष्पलक चितवन का एक चित्र, फिर **अलक-सुगन्ध-मदिर सरि शीतल** का प्रवाह; यह क्रम स्वाभाविक है। आँखो मे विजली तो अक्सर चमकती है, निराला अलको मे भी विजली चमकते देखते है :

कौंधी चपला अलक-बन्ध की। (**गीतगुंज**, पृ. २३) रूपगर्विता नारी यदि कहे कि **मैं वेणी कालनागिनी हूँ** तो इसमें आश्चर्य न होना चाहिए।

नेत्रों और अलकों की विजलियाँ कुछ समय के लिए रात के अँधेरे में छिप

जाती हैं, तब प्रकृति-प्रेमी पुरुष सक्रिय होता है। रहस्यवादी कवि प्रकाश और सूर्य के गीत गाते हैं; निराला का मन अन्धकार में रमता है। न केवल दु:ख और संघर्ष का चित्रण करने वाली कविताओं में अन्धकार है, सुख-सौन्दर्य वाली रचनाओं मे भी प्रकाश से अधिक अन्धकार है, प्रकाश है तो चाँदनी का, जिसमें प्रखरता नही शीतलता है। 'जुही की कली' में चाँदनी रात, 'शेफालिका' में नक्षत्र दीप्त कक्ष, प्रिय की सेज की ओर जाती हुई निशा के रूप में अभिसारिका ('गीत', परिमल, पृ. ६५), किंकिणी और नूपुर बजने से गीतिका की द्विधाग्रस्त रमणी (पृ. ६), अणिमा के अलक-उपवन-गन्ध वाले गीत में—निशा का यह स्पर्श शीतल,—निराला के अन्धकार प्रेम का परिचय उनके अनेक गीतों में मिलता है। निशा का स्पर्श शीतल है; अन्धकार समस्त इन्द्रियों के लिए सुखद है। अपराजित आँखो का सामना करना आवश्यक नहीं। निराला के क्रीड़ाजगत् का वातावरण अन्धकारमय है, अथवा ज्योत्स्नामय, उसमें पुरुष के लिए सुखद स्थिति वह है जब प्रिया सो रही हो, या सोने का अभिनय कर रही हो। जूही की कली सोती रहती है; निद्रा-लस बंकिम विशाल नेत्रों में बिजली छिपाए रहती है। निर्दय नायक उसकी सुन्दर सुकुमार देह झकझोर डालता है, फिर भी वह जागकर क्षमा नही माँगती। सोने का अभिनय किए पड़ी रहती है। शेफालिका पहले सोती रहती है, फिर गगन से चुम्बन झरने पर जाग पड़ती है। प्रभातकालीन प्रकाश कवि को पसन्द नहीं है। एक कविता का शीर्षक है—'जागृति में सुप्ति थी।' जो और लोगों के जगाने का समय है, वह उसके सोने का है। जब और लोग सोते थे, तब वह जागता था। 'जुही की कली' और 'शेफालिका' रचनाओं का शीर्षक हो सकता था—'सुप्ति में जागृति थी'। प्रभातकालीन जागरण में उसे शांति का नही क्लान्ति का अनुभव होता है।

'जागृति में सुप्ति थी'—(परिमल, पृ. १६६) कविता की नायिका सवेरे उठकर शराब पीती है। सभी नायिकाएँ गृहवधुओ की तरह पति की प्रतीक्षा करती हुई सो नही जाती। उनमें अनेक यथेष्ट निर्लज्ज है, कामकलाओं में प्रवीण और आक्रामक है। 'जागृति मे सुप्ति थी' कविता की सुराप्रेमी नायिका कोई वारवनिता है। 'यमुना के प्रति' कविता में गोपियों के कटाक्ष और उनके नृत्य का वर्णन करते हुए निराला नर्तकियों की कला का भाव-चित्र प्रस्तुत करते हैं:

> वह विलोल हिल्लोल चरण, कटि
> भुज, ग्रीवा का वह उत्साह।

इससे तुलनीय है 'प्रभावती' में विद्या का नृत्य। विद्या शुभ्र वस्त्रधारिणी सरस्वती जैसी लगती है, इससे उसके रमणीत्व का विरोध नही। जब वह ताण्डवनृत्य मे विनाश का निर्मम भाव व्यक्त करती है, तब उसके साथ एक श्रृंगार-चित्र भी आँखो के सामने आता है—'जैसे सत्य-सत्य नटराज नारी से बँधकर प्रगट हो गए।' (पृ. १५९) फिर जब वह 'सौन्दर्य की भावना में रँगकर स्वप्न की ज्योतिर्मयी प्रेयसी बनी हुई' (पृ. १६०) नाचती है, तब उसके प्रत्येक अंग की गति

देखकर लगता है कि 'साकार सुरभि समीर पर चल रही है' (उप.); साकार सुरभि अर्थात् रतिभाव प्रत्यक्ष।

गीतिका (पृ. १०३) मे मञ्जु गुञ्जर धर नूपुर शिञ्जित चरणो की गति मे, कंकण की कण-कण, किंकिणी की किण-किण, नूपुरो की रणन-रणन ध्वनि (उप. पृ. ६) मे उन्ही नर्तकियो के घुंघरुओ की ध्वनि है जिनके चरण-कटि के उत्साह का वर्णन निराला ने 'यमुना के प्रति' कविता मे किया था। जीवन के अन्तिम चरण में किसी मेटिनी वाली का नाच देखकर उन्हे कल्पना-जगत् की अप्सराएँ फीकी लगी और यथार्थवादी स्तर पर उन्होने अपने कला प्रेम की अभिव्यक्ति इस प्रकार की :

> नाची क्या अप्सरा कोई जैसा कि तू,
> भाव के हाथ-पाँवों के चाले तलू,
> चली गरदन कमर कैसी, कैसी भी रन,
> कोई रह न गया न हुआ जो सना।
> मेटिनी वाली वारी दे वारी धना। (सान्ध्य काकली, पृ. ८०)

निराला-साहित्य की अन्य नायिकाएँ कल्पना-लोक मे पहुँचकर जहाँ अपना वेश वदलकर कला का प्रदर्शन करती है, वहाँ यह मेटिनी वाली नर्तकी अपने वास्तविक रूप मे स्टेज पर सहज भाव से नाचती है। इससे निराला की कल्पना और उनके यथार्थ अनुभव का सम्वन्ध समझने मे मदद मिलती है।

'यमुना के प्रति' कविता मे हास्य-मधुर निर्लज्ज उक्ति वाली गोपी (परिमल, पृ. ५३), गीतिका मे नागिन की तरह प्रिय के कंठ से लगकर अधरासव पान करने वाली नायिका (पृ. ३१), प्रकृति-रूप मे वह शुभ्रकिरण वसना जिसे न लाज है, न भय (गीतिका, पृ. ३२), परिमल की सन्ध्यासुन्दरी जो मदिरा की नदी वहाती आती है और थके हुए जीवो को अपने अंक पर सुलाती है—ये सव जुही की कली से भिन्न, काम-केलि मे नारी की पहल, पुरुष की तुलना मे नारी के आक्रामक-रूप का परिचय देती हैं।

निराला के लिए सौन्दर्य और प्रेम का वर्णन पूरा नही होता जव तक पुरुप और नारी के शारीरिक मिलन की ओर किसी न किसी रूप मे संकेत न किया जाए। जुही की कली भी आखिर आँखें खोल ही देती है; चकित चितवन चारो ओर फेरकर प्रिय के संग रंग खेलकर हँसती और खिल उठती है। जुही का प्रेमी पवन है; शेफालिका का प्रेमी आकाश है। अन्य कविताओ मे मनुष्य का मन आकाश पार करना चाहता है, यहाँ आकाश सुरभिमय समीरलोक पार करना चाहता है। सुरभि की व्यंजना वही है जो अन्य कविताओ मे। प्रवृत्ति मार्ग से नायक योगियो की सिद्धि चाहता है। लक्ष्य है सातवी सीढी—सहस्रार; मार्ग है चित्तवृत्तियो के निरोध के वदले सुरभिमय समीरलोक को पार करने की वृत्ति।

> पहुँच कर प्रणय-छाए
> अमर विराम के
> सप्तम सोपान पर।

यह सिद्धि प्रेमी और प्रेमिका, आकाश और सुरभि की अधिष्ठात्री शेफाली, दोनों की है। यद्यपि एक रात खिलकर शेफाली ज़मीन पर गिर पड़ती है, किन्तु सौन्दर्य और स्नेह की यह क्षणिक परिणति ही अमरता है :

पाती अमर प्रेम धाम,
आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह को आली, शेफाली झर जाती है।

भक्त और ज्ञानी भावसागर से पार उतरने के बड़े-बड़े जतन करते हैं; एक रास्ता आदि रस की निष्पत्ति का है। 'यमुना के प्रति' मे इस मार्ग की चर्चा करते हुए निराला पुन: शृंगार-साधना को ज्ञान और वैराग्य के समकक्ष ठहराते है :

वह स्वरूप-मध्याह्न-तृषा का
प्रचुर आदि-रस, वह विस्तार
सफल प्रेम का, जीवन के वह
दुस्तर सर-सागर का पार। (परिमल, पृ. ५३)

जीवन का सर हो चाहे सागर, है वह दुस्तर; उसे पार करने का रास्ता सफल प्रेम का विस्तार है। 'तुम और मैं' कविता में जो देवी ब्रह्म को दुस्तर भवसागर कहती हैं और स्वयं उसके पार जाने की अभिलाषी है, वह उसी आदिरस के विस्तार वाले पथ की अनुगामिनी हैं। भवसागर पार करके लोग ब्रह्म तक पहुँचना चाहते है, यहाँ शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म स्वयं दुस्तर भवसागर है! तब आदिरस के विस्तार के अलावा चारा क्या है? **गीतिका** में जो रमणी अपने प्रिय को 'तृप्ति-प्रेम-सर' कहती है (**नयनों में हेर प्रिये** इत्यादि; पृ. ५) वह 'यमुना के प्रति', 'तुम और मैं' आदि रचनाओ में तृप्ति चाहने वाली महिलाओं की तरह प्रेममार्गी है।

इस तृप्ति का वर्णन निराला अनेक गीतों मे अनेक प्रतीकों द्वारा करते है। **स्पर्श से लाज लगी**—(**गीतिका**, पृ. ३१) की नायिका जो उरगी के समान अधरासव पान करती है, रस की वैसी ही परिणति चाहती है जैसी शिव के लिए तप करने वाली शैलसुता। रस के निर्झर झरे, स्नेह का मेह बरसा, भव-बाधा दूर हुई :

उगा अमर-अंकुर उर भीतर,
संसृति भीति भगी।

भयप्रद संसृति मे प्रेम के अंकुर की अमरता, क्षण-भंगुर संसार में पुरुष और नारी के प्रेम की विजय है। मेघ के घन केश वाली निरुपमा सुन्दरी (**गीतिका**, पृ. ४८) रस-वर्षण के बाद—शेफाली की तरह—अपने को नि:शेष कर देती है। यही उसके जीवन की पूर्णता है। रचना का सोमरस पीकर वह प्रणय के यज्ञ में होम देती है; सिद्धि रूप में अमरत्व वाला तीसरा नेत्र खुल जाता है :

पी प्रचुर रचनामृत शुचि सोम,
सुरति की मूर्ति, प्राण मख होम;

लख लिया निज केशों में व्योम—
तीसरा नयन प्रकाश अमर।

केशों में व्योम देखने की क्रिया द्वारा छवि के प्रसार और युवती में उस रूप के ज्ञान की ओर संकेत है। इस 'ज्ञान' की चर्चा 'यमुना के प्रति' में कुछ विस्तार से की गई है :

वह सहसा सजीव कंपन द्रुत
सुरभि-समीर, अधीर वितान,
वह सहसा स्तंभित वक्षःस्थल,
टलमल पद, प्रदीप निर्वाण;
गुप्त-रहस्य-सृजन-अतिशय श्रम,
वह क्रम-क्रम से संचित ज्ञान,
स्खलित-वसन-तनु-सा तनु अमरण,
नग्न, उदास, व्यथित अभिमान।

रीतिवादी कवियों ने काम-केलि का वर्णन करने में कलम तोड़ दी है; इस बात की ओर उनका ध्यान कम गया है कि यह केलि मानव की सृजन-लीला है। इस लीला की अनेक अवस्थाओं का मार्मिक चित्रण ऊपर की पंक्तियों में है। यहाँ निराला इन अवस्थाओं को जीवन का सामान्य व्यवहार समझकर चित्रित करते हैं, उनमें न तो नैतिकतावादी की निषेध भावना है, न रीतिवादी का कामोद्दीपन लक्ष्य, न स्वच्छंदतावादी का कल्पना-विलास।

नारी के लिए पुरुष का रति-व्यापार अक्सर निर्दय, पीडादायक फिर भी सुखद होता है। जुही की कली का प्रेमी निर्दय है, झोंकों की झड़ियों से सुकुमार देह के अलावा गोरे कपोल भी मसल देता है। 'बादल राग' (२) में बादल विप्लव का प्लावन है, अपार कामनाओं का प्राण भी है।

श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न—इस पंक्ति से उसके आक्रामक उच्छृंखल व्यवहार का पता चलता है। कहीं नारी आक्रामक है, कहीं पुरुष। अधिकतर आक्रामक नारी ही होती है। पुरुष और नारी दोनों की समान सक्रियता का चित्रण निराला ने प्राकृतिक प्रतीकों के सहारे 'वनबेला' में किया है। ऊपर है सूर्य, नीचे है पृथ्वी। पृथ्वी के किसलयों बँधे पर्वत-उरोज, पिक-भ्रमर गुंज में प्रणय-गान; उस गान से प्रिया का आह्वान सुनकर तपन-यौवन प्रखर से प्रखरतर हुआ। तत्पश्चात्—

ऊर्जित, भास्वर
पुलकित शत शत व्याकुल कर भर
चूमता रसा को बार-बार चुंबित दिनकर
क्षोभ से, लोभ से, ममता से,
उत्कण्ठा से, प्रणय के नयन की समता से,

सर्वस्व दान
देकर, लेकर, सर्वस्व प्रिया का सुकृत मान।
दाव में ग्रीष्म
भीष्म से भीष्म बढ़ रहा ताप,
प्रस्वेद, कम्प,
ज्यों-ज्यों सुख उर में और चाप—
और सुख-झम्प;
निःश्वास सघन
पृथ्वी की—बहती लू : निर्जीवन
जड़-चेतन !

छन्द की गति और शब्दों की ध्वनि से निराला ने असम्भव को सम्भव कर दिया है। कविता का उदात्त स्वर उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओं के समकक्ष है। दिनकर रसा को बारबार चूमता है, उससे चुम्बित भी होता है। प्रणय के नयन की समता द्वारा परस्पर सहयोग के भाव की पुष्टि की गई है। क्षोभ, लोभ, ममता, उत्कंठा के भाव एक साथ उठकर प्रेमी के आन्तरिक भाव-मंथन का परिचय देते है। प्रेमी सर्वस्व लेता है, देता भी है। प्रस्वेद कम्प दोनों ओर है, जो चाप है, वह युग-उर मे है। और अन्त मे लू-सी बहती सघन नि.श्वास; जड़ और चेतन दोनो मूर्च्छित।

गीत-गुंज के **मालती खिली** गीत में पृथ्वी कर-पीड़न से और सुन्दर दिखाई देती है —**कर-पीड़न से मधुरतरा**; 'बनबेला' मे जिस व्यापार का वर्णन विस्तार से किया था, उसकी ओर यहाँ संक्षेप में संकेत है। अनेक गीतो में निराला तृप्ति से निखरते हुए नारी-सौन्दर्य का चित्रण करते है। सुख के क्षण ही नही, उन क्षणों की स्मृति भी सुखदायक है :

मधु-ऋतु-रात, मधुर अधरों की पी मधु सुधबुध खोली,
खुले अलक मुँद गए पलक दल, श्रम-सुख की हद होली,
बनी रति की छवि भोली। (**गीतिका**, पृ. ४४)

निराला का मन इस छवि पर मुग्ध है। लोक-संस्कृति में, वेदान्त और संन्यास की निषेध भावनाओं से मुक्त, जीवन के सुख और सौन्दर्य की जो अगाध चाह है, वह इस गीत मे चारो ओर से सिमटकर मानो एकाग्र हो गई है। निराला ने बहुत से होलीगीत लिखे हैं और इनमें लोक-सुलभ रस की धारा निर्बाध प्रवाहित है।

मनुष्य का जीवन सीमित है, रस निःसीम है। विद्यापति ने जन्म भर किसी का रूप देखा; फिर भी उनके नेत्र तृप्त न हुए, उसी प्रकार निराला का मन बार-बार तृप्त होता है, फिर भी अतृप्त बना रहता है। निराला ने इस अतृप्ति पर भी एक गीत लिखा है :

वह कौन प्यास बुझकर न रही,
वह कौन साँस जो चली सही,
वह किस फँसने की रही कली—

खुलकर न रही, मधु ने टेरा।
यह जी न भरा तुमरो मेरा। (सांध्य काकली, पृ. ४२)

तृप्ति और अतृप्ति का द्वंद्व—ऐसा ही मानव-जीवन जिसका चित्रण अनेक छंदों-रूपों मे निराला ने अपने काव्य-साहित्य मे किया है।

ऋतुचक्र

वसन्त का सखा है कामदेव। निराला का शृंगार-लोक फूलो से महकता है, उसमें साँझ-सवेरे और रात को वसन्ती हवा चलती है। दोपहर उसमें नही होती। ऋतुओं की गतिविधि के साथ मानो निराला की कामचेतना के उतार-चढ़ाव नियमित होते हों। ऋतु संहार की परंपरा मे प्रत्येक ऋतु कामोद्दीपन के अनुकूल है; निराला के लिए उस दिशा मे वसन्त ऋतु का महत्त्व अन्यतम है। उससे जो रस बच रहता है, वह वर्षा के लिए है।

वसन्त संयोग की ऋतु है। उस ऋतु में प्रेमी एक-दूसरे से बिछुड़े हुए वियोग के गीत गाते हों, निराला-काव्य मे ऐसा अवसर कम आता है। संयोग और वियोग—दोनों से जिसका सम्बन्ध है, वह वर्षा ऋतु है। 'परिमल' मे **अलि घिर आए घन पावस के**—यह गीत एक वियोगिनी का है जो प्रियतम को रोककर अपने पास न रख पाने पर अपनी अक्षमता से दुखी है। **घन आए घनश्याम न आए**—अर्चना के इस गीत में वही वियोग का भाव है। गीतगुंज के **बादल रे, जी तड़पे मे प्राणों के घन श्यामगगन से न बरसे,** वियोगिनी नायिका का वही दुख है। इन गीतों में जहाँ-जहाँ वियोग की चर्चा है, साधारणतः वह दुख नारी का है, पुरुष का नही। कालिदास के यक्ष की तरह निराला-काव्य में पुरुष अपनी प्रिया के लिए वर्षा मे अधीर नही होता। वर्षा के वियोग-संगीत में निराला अधिकतर नारी-हृदय की भावना व्यंजित करते हैं (अथवा पुरुष का वह भाव जो नारी को अपनी प्रतीक्षा मे व्याकुल देखना चाहता है)। पुरुष वाली भाव-दृष्टि मे वर्षा आनन्द की ऋतु है, यदि नारी दुखी है तो पुरुष उसके दुख दूर करने का अभिलाषी है। **ग्राम वधू सुख से दुख भूले** (गीतगुंज, पृ. ३६), वर्षा मे कवि की यह प्रार्थना है। एक आंसू दुख के हैं, दूसरे सुख के है। वर्षा की बूंदें देखकर आँसुओ की याद बरबस हो आती है। निराला उन आँसुओ को भी देखते हैं जो सुख की अतिशयता से ढुलक पड़े है।

बूंदों सुख के आंसू ढलकर
पृथ्वी के उर आए। (उप., पृ. ४५)

वन, पर्वत और आकाश पर वादलों के छा जाने पर पुरवाई के झोंके खाती हुई जो युवती घर से निकली है, वह मन में संयोग की चाह लिये है। (उप., पृ. ३२) रंग-विरंगे कपड़े पहने झूला झूलती, दुकूल उड़ाती हुई युवतियाँ मन का उल्लास प्रकट करती हैं। (उप., पृ. ३३) प्रकृति का सौन्दर्य, नारी और पुरुष का उल्लास, गन्ध के सुपरिचित प्रतीक के साथ, एक गीत में अनूठे ढंग से यों व्यक्त हुआ है :

मडलाई सुगन्ध से नभ—
रम्भा के रंग उठे (उप., पृ. ३८)

तृप्ति का यह भाव पुरुष मे ही नही, नारी में भी है। **पारस, मदन हिलोर न दे तन**--(उप., पृ. ३०) यह उक्ति नारी की है। वह मदन-हिलोर से डरती है, साथ ही मधु की गलियों में नूपुर वजते हुए भी सुनती है। तृप्ति का भाव गीत की अंतिम पंक्ति में है—**घर विछड़े आए मनभावन। सान्ध्यकाकली** (पृ. ५८) के उस गीत में जहाँ वाँहों के घट उलटे होकर छलक रहे हैं, पुरुष की तृप्ति का भाव इस पंक्ति में है:

पारस गात, मधुर रस वरसे।

पारस शब्द और वर्षा का कोई रहस्यात्मक सम्वन्ध मन में है। सारी रात वाते होती रही, सवेरे आँख न खुली। पुरवाई के झोंके लगे और—

पारस पास की राग रँगे है,
काँपी सुकोमल, गात तुम्हारी। (वेला, पृ. २५)

आकाश से वादल ही नही वरसते, जवानी भी वरसती है :

जगी सुरति चोटी चढ़ने की,
यौवन की वरसात तुम्हारी।

अनामिका में निराला का एक वर्षा-गीत है : **पथ पर मेरा जीवन भर दो।** (पृ. ८१) जलरूप में धरती से मिलने, नदियों और तालों में भर जाने की आकांक्षा इस गीत में है। यह लोक-संस्कृति और जनजीवन से तादात्म्य स्थापित करने की आकांक्षा भी है। इससे श्रृंगार भाव का सम्वन्ध यह है कि नारी वस्त्र उतारकर जव स्नान करेगी तव जलरूप से कविहृदय उसकी छवि को अपने भीतर समा लेगा।

दूर ग्राम की कोई वामा
आए मन्द चरण अभिरामा,
उतरे जल में अवसन श्यामा,
अंकित उर-छवि सुन्दरतर हो!

लोकगीतों की परंपरा से भिन्न स्तर पर, फिर भी लोक-सस्कृति के मूल तत्त्व सँजोए हुए, निराला की श्रृंगार-भावना व्यक्त करने वाला यह भी एक वर्षागीत है।

स्त्री-पुरुष के प्रेम, उनके संयोग-वियोग के जो अनेक चित्र निराला ने दिए हैं, उनमे प्रकृति से मनुष्य के भावों का सम्वन्ध जोड़ना उनके लिए अनिवार्य नही है।

न उन्होने यांत्रिक ढंग से कुछ विशेष ऋतुओं के साथ मनुष्य के कुछ विशेष भावों का सम्बन्ध जोड़ लिया है। विरह की भावना वह वर्षा के संदर्भ में व्यक्त करते हैं, शिशिर के संदर्भ मे भी : विरह परी-सी खड़ी कामिनी, इत्यादि। (गीतिका, पृ. ८) उन्होने कामचेतना की अभिव्यक्ति के लिए भावो की कोई निश्चित रूढ़ियाँ नहीं बनाई। मानव-जीवन मे संयोग-वियोग-जन्य भावो की जो विविधता है, निराला उसे चित्रित करते हैं।

सुमन भर न लिए, सखि वसंत गया — (परिमल, पृ. ३७) इस कविता में एक नारी की वेदना है जो वसन्त मे भी वियोगिनी अथवा एकाकिनी बनी रही है। 'विफल वासना' में नारी के उस असन्तोष का चित्रण है जो प्रेमी का हृदय जीतने में असफलता से उत्पन्न हुआ है। (उप., पृ. १३८) किसी गीत मे नारी रात सुख से बिताती है, प्रेम अवैध है, प्रेमी रात में ही आता है, वह उससे सामाजिक व्यवधान पार करने को कहती है। (गीतिका, पृ. ९६) अन्यत्र मर्यादा का भय नारी को है, और पुरुष दुखी मन से उलाहना देते हुए कहता है :

> लाज लगे तो
> जाओ, तुम जाओ ! (उप., पृ. १०३)

ऐसे समाज में जहाँ जाति और धर्म की रूढ़ियाँ प्रबल हो, उनसे मनुष्य के प्रेम की टक्कर होना स्वाभाविक है। सामाजिक क्रान्ति के समर्थक निराला इस टक्कर का चित्रण भी करते है। 'प्रेयसी' कविता में नारी की उक्ति है :

> दोनों हम भिन्न-वर्ण,
> भिन्न-जाति, भिन्न-रूप,
> भिन्न-धर्मभाव पर
> केवल अपनाव से प्राणों में एक थे। (अना., पृ. ८)

यहाँ प्रेम जाति-धर्म की विभाजन रेखाएँ ही नही मिटा देता, रूप की भिन्नता को भी प्रेम की राह में आड़े आने नहीं देता। निराला जिस अपनाव का चित्रण करते हैं, वह शारीरिक मिलन का विरोधी न होने पर भी, कुछ और गहरे उतरकर प्राणों का मिलन भी है। 'प्रेयसी' कविता की युवती सामाजिक मर्यादाएँ लाँघकर प्रेमी के साथ चल देती है। वह सजग है, अधिक व्यवहारकुशल है, पुरुष जब मोह मे सुधबुध खो देता है, वह अनुरक्ति मे भी निःसग बनी हुई उसे सँभालती है। एक डूब रहा है, दूसरा उसे सँभाले हुए है, वह रहे है दोनों प्रेम की धारा में—निराला ने प्रेमियों की इन सूक्ष्म मनोदशाओ का चित्रण एक से अधिक बार किया है :

> रूप के द्वार पर
> मोह की माधुरी
> कितने ही बार पी मूर्च्छित हुए हो प्रिय,
> जागती मैं रही,
> गह बाँह बाँह मे भर कर सँभाला तुम्हे। (उप., पृ. 9)

तुलसीदास में निराला ने 'रत्नावली' के लिए जहाँ लिखा है—सोते पति से वह

रही जाग—वहाँ यही भाव है।

परिमल में एक कविता है 'रास्ते के फूल से'। इसमें प्रेम के दो साधकों का उल्लेख है जिन्होंने विवाह-प्रथा तोड़कर एक-दूसरे को अपनाया है; पुरोहित, मन्त्र-पाठ, तरह-तरह के कर्मकाण्ड की चिन्ता न करके एक-दूसरे को स्नेह से अपनाकर उन्होंने वास्तव में पाणिग्रहण-प्रथा सार्थक की है। फूल कहता है :

जब दो साधक प्रीति-साधना-तत्पर,
प्रीति-अर्चना की रचना मुझसे ही की थी सुन्दर
रस्में अदा हुई थी मुझसे—
मैं ही था उनका आचार्य,—
कोमल कर था मिला कमल-कर से जब
सिद्ध हुआ मुझसे ही उनका कार्य। (पृ. ११३)

हमारे समाज मे जितनी रुकावटें प्रेम करने वाली नारी की राह में हैं, उतनी पुरुष के मार्ग में नहीं हैं। निराला-साहित्य में नारी बार-बार प्रेम करने के अपने अधिकार के लिए लड़ती, प्रेमी को प्रोत्साहन देती, अपने संघर्ष की विजय पर उल्लसित होती है।

मैं लिखती, सब कहते
तुम सहते, प्रिय, सहते। (गीतिका, पृ. २१)

सामाजिक दृष्टि से जो प्रेम अवैध है, उसी के कारण पुरुष को बहुत कुछ सहना पड़ता है। पुरुष की पीड़ा की चर्चा करके वह एक तरह से उसे ढाढ़स बँधाती है। उसे समझाती है—तुम न होते तो मैं किसे क्या लिखती ? इसलिए लोगों को जो रुचे, कहने दो; जब मन मे चाह है, तब मैं तुम्हे चाहती हूँ। इस तरह लोकापवाद का सामना करने के लिए वह उसे अपने स्नेह का संबल देती है।

प्यार करती हूँ अलि, इसलिए मुझे भी वे करते है प्यार।
बह गई हूँ अजान की ओर, तभी यह बह जाता संसार।

गीतिका (पृ. ३६) के इस गीत में भी प्रेम के लिए संघर्ष करती हुई नारी का चित्र है। अजान की ओर बहने में प्रेम के लिए सब कुछ त्यागने का भाव है; संसार के बह जाने का अर्थ है, समाज से अलग होना, पुरानी रूढ़ियो से मुक्त होना। आगे जब कहती है—

टूट गए सब आट-ठाट, घर,
छूट गया परिवार।

तब सामाजिक बन्धन तोड़ने का भाव और पुष्ट होता है।

बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु !
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु !

अर्चना (पृ. ३७) के इस गीत में अवैध प्रेम करने वाली नारी पुरुष को सावधान करती है, लोक-लाज का भय दिखाती है, किन्तु इस बहाने उसी ठाँव अपनी नाव बाँधने के लिए पुरुष को आमन्त्रित भी करती है।

नारी अपने संघर्ष में पुरुष को साथ लेती है, उसे उत्साहित करती है, जब-तब स्वय भी हारती, उदास होती, पुरुष का सहारा चाहती है। विश्व के समर मे—सामाजिक रूढ़ियो के विरुद्ध सघर्ष मे—वह जब हारती है (आराधना, पृ. ८९), तव वह शान्ति के लिए पुरुष के गले का हार वनकर उसका सहारा लेती है। इस सहारे के लिए वह उसे सर्वस्व—अपना अस्तित्व—अर्पित कर चुकी है। संसार मे इससे अधिक सुन्दर और आनन्दमय दूसरा तत्त्व नही है।

वेदान्ती·निराला पक्के प्रेममार्गी कवि है।

मृत्यु मनुष्य के प्रेम को और भी सुन्दर, और भी वांछनीय वना देती है। आराधना की उपर्युक्त कविता मे नारी कहती है कि विश्व में जव दूसरा प्रभात फैलेगा, तव मुझमें देने को कुछ न रह जाएगा। काल ने प्रणय के प्रसार की सीमाएँ वाँध दी है; न जीवन निरवधि है, न प्रेम। इसलिए समय के प्रसार पर रोक लगते देखकर मनुष्य उस कमी को प्रेम की गहराई से पूरा करता है। प्रेम निरवधि न हो, अगाध तो हो सकता है। इसी अगाध तत्त्व की ओर सकेत आराधना की उस कविता में है।

जहाँ मृत्यु भविष्य की आशंका न होकर इस जीवन में घटित हो चुकी है, वहाँ एक हद तक प्रसार की सीमा टूट गई है। जो साथी बच रहा है वह यदि मृत्यु के साथ अपने पूर्व-प्रेम को भुला नही देता तो काल की सीमा तोड़कर स्मृति में उस प्रेम को सँजोए रखता है, मृत्यु पर विजय पाता है।

> एक वार फिर भी यदि अजान के अन्तर से उठ आ जाती तुम,
> एक वार भी प्राणों की तम-छाया मे आ कह जाती तुम···
> मैं न कभी कुछ कहता,
> वस, तुम्हें देखता रहता! (परिमल, पृ. ६०)

जव तक शरीर है, तव तक उसका आकर्पण है। शरीर के न रहने पर तन और मन का ऐसा आकर्पण वना रहे, जीवन मे यह स्थिति कम देखने को मिलती है। जैसे दान्ते गैवियल रोसेटी ने पत्नी एलिज़ावेथ सिड्डेल की मृत्यु के बाद वलपूर्वक उसका ध्यान करके कल्पना से 'वेआता वेआत्रिक्स' मे उसकी अनुपम छवि आँकी थी, वैसे ही परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की शक्ति का परिचय निराला की इस कृति से मिलता है जो उनकी प्रेम-सम्वन्धी रचनाओं का सिरमौर है। पूर्व सुख को याद करके जितना आनन्द मिलता है, उतना ही मृत्यु के स्मरण से दुःख। हर्प, ग्लानि, मिलन की आकांक्षा, निराशा के भाव एक साथ ऐसे उद्वेलित हुए है कि प्रेम मन का एक भाव न होकर चेतना की समस्त कार्यवाही वन गया है। मृत्यु के वाद कल्पना मे जहाँ मिलन है, वहाँ प्रकाश नही, प्राणों की तम छाया है। अतीत से वर्तमान की तुलना करने वाली कवि की चितवन चकित और थकी-सी रह जाती है। आनन्द और वेदना का यह मन्थन शव्दो द्वारा अभिव्यक्त नही हो सकता; चकित और थकी हुई चितवन ही उस ओर संकेत कर सकती है। वियोग यहाँ क्षणिक न होकर जीवन पर्यन्त, मृत्यु से उत्पन्न होने वाला वियोग है; इस वियोग

में तपकर प्रणय और भी उज्ज्वल हो गया है। ऐसे मृत्युञ्जयी उज्ज्वल प्रेम का चित्रण निराला ने 'प्रिया के प्रति' कविता में किया है।

मानव जीवन में सुख है, दुख है; प्रकृति में वसन्त है, वर्षा है; ग्रीष्म और शिशिर भी हैं। कुछ रूमानी कवि प्रकृति को दिव्य, सुखद, आदर्श रूप में चित्रित करते हैं। निराला उनसे भिन्न उसके दुखद, उग्र, अप्रिय रूप का चित्रण भी करते हैं। गर्मी की लू और धूल का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण 'वनवेला' मे है :

> यह सान्ध्य समय,
> प्रलय का दृश्य भरता अंवर,
> पीताभ, अग्निमय, ज्यो दुर्जय,
> निर्धूम, निरभ्र, दिगन्त प्रसर,
> कर भस्मीभूत समस्त विश्व को एक शेप,
> उड़ रही धूल, नीचे अदृश्य हो रहा देश।

चारों तरफ जैसे आग लगी हो लेकिन धुएँ का नाम नही; आकाश में रंग है लेकिन ये साँझ के अंवर-डंवर नही, आकाश निरभ्र है, धूल उड़ने से निर्धूम प्रकाश पीला पड़ गया है। इस प्रलय की व्यापकता ऐसी है कि धूल के नीचे सारा देश अदृश्य हो गया है। ग्रीष्म का यह ताप क्षणिक न होकर दीर्घकालीन है, इसका उल्लेख आगे की दो पंक्तियों मे है :

> तप तप मस्तक
> हो गया सान्ध्य नभ का रक्ताभ दिगन्त-फलक।

मस्तक आकाश का ही नहीं, कवि का भी तपा है, कविता में उसके भावोद्‌गारों से स्पष्ट है। केवल वनवेला इस तापत्रास को सहती हुई अपने मस्तक पर धरती की गन्ध लेकर ऊपर उठती है, आकाश और कवि के मस्तक को शीतल करती है।

निराला का मन जहाँ धरती की गन्ध से खेलता, वसन्त समीर मे पेंगे भरता है, वहाँ वह धूलि से, धूलि मे लिपटे हुए जन-साधारण से तादात्म्य भी स्थापित करता है :

> धूलि में तुम मुझे भर दो।
> धूलि धूसर जो हुए पर
> उन्हीं के वर वरण कर दो। (अणिमा, पृ. १६)

दर्शन और विचारधारा की सीमाओं के उस पार मन की गहराई से उमड़ा हुआ निराला का यह सहज भाव है, किसान-वालक का भाव जो धूल में खेला है, जिसके संस्कार धूल मे मरने-खपने वाले किसानों के संस्कार है।

निराला-साहित्य में जिस धरती का वार-वार उल्लेख किया गया है, वह दो तरह की है। एक धरती वह जो पाँच तत्त्वों में एक तत्त्व है, जिसका गुण गन्ध है, जो वसन्त मे युवती-सी सज उठती है, वर्षा में जिसके हृदय मे नवजीवन के अंकुर फूटते है; दूसरी धरती वह जो निराला के जनपद की परिचित धरती है, जिसमे नदियाँ, तालाव, खेत, खलिहान हैं, जहाँ धूल उड़ती है, वर्षा होती है, किसान हल

जोतते हैं। वास्तव में धरती एक है—वस्तुगत रूप से ही नही, निराला के मन में, आत्मगत रूप से भी। उसे देखने और चित्रित करने के दृष्टिकोण मे भिन्नता है। वैसे तो विश्व की, सारे भारत की धरती एक है, फिर भी इस धरती का रंग-रूप, उसकी उर्वरा-शक्ति, उसमें उगने वाली शस्य-सम्पदा और वनस्पति का सौन्दर्य अलग-अलग तरह का है। निराला धरती की अमूर्त कल्पना के कवि नही, अवध की धरती के गायक हैं। उनके वर्षागीतों में जिस आनन्द की अभिव्यक्ति हुई है, उसका गहरा सम्बन्ध जेठ-वैशाख की लू के अनुभव से है। वह जग के 'दग्ध' हृदय पर विप्लव के बादल को बरसते हुए देखते है, वह 'तप्त' धरा के उर को शीतल करने के लिए बादल को बुलवा देते हैं, वह लू के झोंकों से झुलसे हुए किसानों पर भरा दौगरा गिरते देखकर प्रसन्न होते हैं। 'दौंगरा' जैसे ठेठ जनपदीय शब्द का व्यवहार करके वह जता देते है कि लू कहाँ चली थी और पानी किस धरती पर बरसा था।

निराला ने परिमल काल की रचनाओं से लेकर सान्ध्यकाकली के गीतो तक वर्षा पर बहुत सी कविताएँ लिखी। पहले दौर की रचनाओ मे ही लोकगीतों वाली कला का स्पर्श है : **अलि घिर आये घन पावस के**—जैसे इस गीत मे। बाद की रचनाओ मे यह स्पर्श और भी दृढ होता गया है। अनामिका में बहुत दिनों बाद खुला आसमान, अखाड़े मे जोड़ करने जाते हुए तगड़े-तगड़े नौजवान, पनघट पर लड़कियो की भीड़,—वैसा ही दृश्य बेला में—

किसान खेतो मे, लड़के अखाड़ो मे आए,
बारहमासी गाती हुई लड़कियो के दल देखे। (पृ. ३८)

लड़कियाँ ही नही, उनके साथ निराला भी बारहमासी गाते है, कजली गाते है :

फिर लगा सावन सुमन भावन, झूलने घर-घर पड़े;
सखि, चीर सारी की सँवारी झूलनी, झोंके बढ़े।
वन मोर चारो ओर बोले, पपीहे पी-पी रटे,
ये बोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हटे।

(आराधना, पृ. ६६)

यह बारहमासी।

पुरवाई की हैं फुफकारे, छन-छन ये विस की बौछारें;
हम है जैसे गुफा में समाए, न आये वीर जवाहरलाल।

(बेला, पृ. ५४)

यह कजली।

लोक-संगीत के आधार पर यहाँ कभी रागों के ठाट बाँधे गए थे। सावन में बादलों को उमड़ते-घुमड़ते देखकर निराला का मन पुरानी बंदिशों के राग में लहराता है :

बिक मद, गरजे बदरवा,
चमकि बिजुली डर पावे,

सुहावे सघन झर, नरवा
कगरवा-कगरवा। (सान्ध्यकाकली, पृ. ४३)

जैसे ऊपर उद्धृत हुई एक पंक्ति में 'दौगरा' शब्द है, वैसे ही यहाँ 'नरवा'। ये बादल कहाँ की धरती के ऊपर गरज रहे हैं, उसकी सूचना देता है जनपदीय शब्द 'नरवा'।

'देवी सरस्वती' कविता (नये पत्ते, पृ. ६५-८०) में भारत और सरस्वती का जो विराट् चित्र उन्होंने खींचा है, वह उनकी जनपदीय धरती का प्रसार है। लू और तपन की वैसी ही तीव्र अनुभूति यहाँ है, जैसी अन्यत्र। इस तपन की अनुभूति के कारण सरस्वती अपना भारतव्यापी प्रसार खोकर एक कुएँ में समा जाती है :

तुम हो शीतल कूप-सलिल जामुन छाया-तल,
लदे आम के बागों से जीवन का सम्बल।

आम और जामुन के पेड़ों की घनी छाँह में लू से परेशान आदमी के लिए कुएँ का ठंडा पानी—सरस्वती का अद्भुत किंतु अत्यन्त सार्थक रूप यह है।

ग्रीष्म के ताप के बाद वर्षा और भी सुहावनी लगती है। निराला झूलो मे झूलती हुई लड़कियाँ देखते, उनका गीत सुनते है, साथ ही वह खेती करते हुए किसानों को भी देखते है। खेती-सम्बन्धी जिस विविध कार्यवाही का वह वर्णन करते हैं, उसकी पारिभाषिक शब्दावली उनके जनपद की है, खेतों मे जो अन्न पैदा होते दिखाते हैं, वह उनके जनपद का है। रवीन्द्रनाथ के काव्य मे धान की जैसी प्रचुरता है, निराला-काव्य में उसका वैसा ही अभाव है। यह बात नहीं कि अवध मे धान पैदा न होता हो, किन्तु निराला जिस क्षेत्र की धरती का स्मरण करते है, वह धान की उपज के लिए विख्यात नही है।

खेत 'पाँसे' गए, उनमें पाँस अर्थात् खाद डाली गई। किसान हल जोतते हुए बैलो से 'वाह-वाह' कहता है, निराला उसके शब्दों में सरस्वती की वीणा का स्वर सुनते हैं :

ऐसे वाह वाह की वीणा बजी सुहाई।

फसल कटने के बाद, खलिहान में 'मड़ कर'—मड़नी माड़ने के बाद—घर लाई जाती है। खेतो में जो बीज डाले जाते है, वे चने, जौ और मटर के है, गेहूँ, अलसी, राई, सरसों के हैं। सरस्वती मटर के पुष्पों के सौरभ से घिरी हैं, सरसो के पीले फूलों की साड़ी पहने है, जिसमें अलसी के नीले फूलो की किनारी भी है। खलिहान मे जो फसल कटकर आती है, वह चने, मटर, जौ, गेहूँ, सरसो की है। किसान जिस पर्व पर गंगा नहाने जाते है, वह कतकी है। वे जो गीत गाते है वे फाग और होली हैं।

मिट्टी के सबब दूध-ऐसा था पानी—'खजोहरा' मे यह मार्मिक पंक्ति अवध की धरती के लिए ही सार्थक है। निराला इस अवध की धरती के गायक है, उस पर रहने वाले लोगो के जीवन के चितेरे हैं। उनके गद्य-साहित्य में इस धरती और जनजीवन का और भी स्पष्ट उल्लेख है; वह उनके काव्य का मूलाधार भी है।

आत्मप्रवञ्चना

निराला काल्पनिक इच्छापूर्ति, आत्मप्रवंचना और रहस्यवादी रूढ़ियों के कवि भी है। उनके साहित्य मे इस तरह की प्रवृत्तियाँ उनकी साम्राज्यविरोधी क्रांतिकारी चेतना, उनके यथार्थोन्मुख मानवतावाद के आड़े आती है, उसे कमजोर करती है। ये प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य मे आरम्भ से लेकर अन्त तक रहती है और अनेक स्तरों पर उस साहित्य को प्रभावित करती है।

एक स्तर वेदान्त ज्ञान का है जहाँ संसार को माया कहकर आनन्दमय ब्रह्म की प्राप्ति का, माया से मुक्त होने का दावा किया जाता है। इससे मिलती-जुलती रहस्यवादी काव्य की वह रूढ़ि है जिसके अनुसार जड़-जंगम, समस्त संसार आनन्द-मय प्रकाश में डूबा हुआ दिखाई देता है। एक स्तर भक्ति का है जहाँ प्रभु से या शक्ति की देवी से ऐसी प्रार्थना की गई है जिसका विफल होना अनिवार्य है। निराला के विनय-गीत दो तरह के है। एक गीत ऐसे जहाँ उनके दुःख और संघर्ष की तीव्र अभिव्यक्ति है; दूसरे वे जहाँ उनके आराध्य प्रभु या देवी, संसार के दुख-सुख से दूर, अपना चिन्मय प्रकाश फैलाए रहते है अथवा कवि की प्रार्थना मानकर बहुत आसानी से उसके जीवन को आनन्द और प्रकाश से भर देते है।

परिमल के आरम्भ मे प्रार्थना है: जग को ज्योतिर्मय कर दो। यह देवी ससार से ऊपर कही दिव्य लोक मे रहती है, इसलिए पृथ्वी पर अपने कोमल पद रखती हुई ऊपर से धीरे-धीरे उतरेंगी, हँसती हुई अपना पथ आलोकित करेंगी, संसार में नया जीवन भर देंगी।

पृथ्वी का महत्त्व यहाँ क्षीण हो गया है। आकाश और पृथ्वी एक ही सघन तारतम्य मे बँधे रहने के बजाय एक-दूसरे से अलग हो गए है। जो कोमल पद-गामिनी है, उसे पृथ्वी पर बिखरे हुए पत्थरों और काँटो का ज्ञान नही है। जग को ज्योतिर्मय करना, नूतन जीवन भरना रहस्यवादी रूढ़ियो के अन्तर्गत है; गीत मे न वेदना की गहराई है, न आनन्द का उत्कर्ष।

जैसे इस गीत मे आकाश की देवी को धरती पर उतरना है, वैसे ही एक और 'प्रार्थना' (परिमल, पृ. ३४) मे किरणमयी देवी को निराला के गगन-मन मे उतरना है। यद्यपि इनका संबंध छवि-मधु-सुरभि से काफी गहरा है, फिर भी कवि की इच्छा है कि वह उसे अर्थात् कवि को 'ईश्वर-मज्जित' कर दें, 'शुचि चन्दन-वन्दन-सुन्दर' बना दें। प्रार्थना में जिस फल-प्राप्ति की आशा है, वह प्रवंचना है।

इस किरणमयी के समान करुणा की किरणों वाले देव है ('भर देते हो', परिमल, पृ. १०३) जो कवि के अन्तर मे एकाध बार नही, निरंतर आते है, अपने कर-कमल बढाकर उसका व्यथाभार हल्का कर जाते है, किरणों से कवि के अश्रु पोछकर जीवन में नव प्रभात भर देते है। इस कविता मे दुख की अभिव्यंजना वास्तविक है, प्रभु को द्रवित करने के लिए वेदना का अभिनय नही किया गया,

किन्तु प्रभु ने दुख दूर कर दिया और जीवन में नव प्रभात भर दिया, यह रहस्यवादी रूढ़ि के अनुरूप काल्पनिक इच्छापूर्ति है।

गीतिका में निराला जहाँ अज्ञान की रात बीत जाने और चारों ओर आनन्द और ज्ञान के प्रकाश के भर जाने की बात करते है (पृ. ५९), वहाँ रहस्यवादी काव्य की रूढ़ि का निर्वाह मात्र है। 'सरोज-स्मृति' में यह दावा कि ज्योतिस्तरणा के चरणो पर रहकर कवि ने प्रकाश पाया है, कविता के अगले भाग में दुख की अनुभूति से कट जाता है। 'राम की शक्ति पूजा' में यह धारणा कि राम के अपने मनोवल, सैन्यवल और रणनीति के अलावा कोई शक्ति वाहर से आकर उन्हे जिता देगी, छलना है। यही कारण है कि कविता का अंतिम अंश उतना प्रभावशाली नही है जितना पहला। आकाश मे पहुँचकर दुर्गा को परास्त कर सकने वाले महावीर का भाव जैसा उदात्त है, वैसा फूल चुराने वाली देवी के सामने आँख निकालकर रखने को उद्यत होने वाले राम का नही। राम का वह मन जो कभी हारता नही, थकता नहीं, स्वयं पीड़ित होकर देवी को प्रसन्न करने के वदले और वड़े-वड़े काम कर सकता है।

अणिमा में आधुनिक सभ्यता के 'वैज्ञानिक जड़ विकास' पर गौतम बुद्ध की विचारधारा की विजय का चित्रण करके, उन्हें मानव के मन में—**भर दे तो हो** के देव की तरह—वार-वार उतरते दिखाकर निराला ज्ञान-सम्वन्धी मायाजाल रचते हैं। वैज्ञानिक जड़ विकास की आलोचना, साम्राज्यवाद के प्रति उनका आक्रोश, वुद्ध की करुणा और ज्ञान का वखान उनकी देशभक्ति सूचित करता है, वह अलग वात है।

अर्चना मे 'ज्योति के पंख' लगाकर आकाश मे उड़नेवाले देवता का अन्तस्तल अभियान (पृ. ५), उसकी छवि में आँखों के नहा लेने पर मिथ्या के सभी भास का छूटना (पृ. २३), कनक-किरण फूटने पर भय वाधा (भव-वाधा ?) से मुक्त होना (पृ. ५०), **आराधना** मे राम-राम कृष्ण-कृष्ण जपने पर दिव्य लोक दिखाई देना (पृ. १२), सेवा-ग्रहण करनेवाले प्रभु से शरीर को 'शुद्ध सत्व' से भरने की प्रार्थना (पृ. २४), हरि-भजन करके भवसागर पार करने का उपदेश (पृ. ५१), दिन मे, रात मे, शरीर में, आँखों में केवल ज्योति ही ज्योति देखना :

> ज्योति प्रात, ज्योति रात,
> ज्योति नयन, ज्योति गात।
> ज्योति चरण, ज्योति चाल,
> ज्योति विटप, आलवाल—(पृ. ५४)

ये सव क्रियाएँ छायावादी काव्य की रूढ़ियाँ वन गई हैं।

छायावादी काव्य की पलायन वृत्ति निराला-साहित्य मे मुख्यतः उपर्युक्त ज्योतिवाद मे प्रकट होती है। उन्होने इस संसार से भाग कर सुख-सन्तोष के कल्पना-लोक में आश्रय लेने का भाव प्रकट किया है। **हमें जाना है जग के पार** (**परिमल**, पृ. ९३)—निराला की एक ऐसी ही कविता है जिसमे यह भाव वहुत

स्पष्ट व्यक्त हुआ है। निश्छल प्यार, मोहमुक्त ज्ञान, ज्योति के खिले हुए सहस्रों रूपोवाले आदर्श कल्पना-लोक मे सदा शीतल मंद समीर वहती है, होंठो पर हँसी और आँखो मे प्रभातकालीन प्रकाश ही दिखाई देता है।

निराला के लिए अधिक स्वाभाविक वह कल्पना है जिसमे सांसारिक सुख हो और वेदान्त-ज्ञान का प्रकाश भी। दुविधा में दोनो गए, माया मिली न राम—ऐसी दुविधा न रहे। राम और माया का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व वना रहे। जुही की कली सो रही है। उसका प्रेमी पवन दूर देश से आकर उसके साथ क्रीड़ा करता है, उसकी सुन्दर सुकुमार देह को झकझोर डालता है, उसके कपोल मसल देता है। यह सव माया का सुख है। फिर जुही की कली जागी, वह अन्धकार से प्रकाश की ओर, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या-सी, तमसो मा ज्योतिर्गमय की तस्वीर-सी सामने आई, यह वेदान्त-ज्ञान का प्रकाश हुआ। ('मेरे गीत और कला', **प्रवन्ध-प्रतिमा**, पृ. २६०) वास्तव मे माया और राम का यह समन्वय कविता मे है नही, निराला ने अपनी व्याख्या मे उस पर आरोपित किया है। उनकी व्याख्या सही हो तो कहना होगा कि शेफालिका समय से पहले जग गई। जव उसका प्रेमी आकाश सुरभिमय समीर-लोक को पार करना चाहता है, तव वह न तो सो रही है, न सोने का अभिनय कर रही है। 'जागृति मे सुप्ति थी'—इस कविता मे अन्धकार से प्रकाश की ओर गति नही है; गति उल्टी है, प्रकाश से अन्धकार की ओर। इसका यह अर्थ नही कि निराला ने यहाँ मनोभावो का कुशल चित्रण नही किया। उनका महत्त्व इस वात मे नही है कि शृंगार-चित्रण मे दार्शनिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करते है, वरन् इस वात मे है कि विभिन्न परिस्थितियो मे मनुष्य के विभिन्न सूक्ष्म मनोभावों की सही तस्वीर खीचते हैं। फिर भी यह सही है कि वे रस-विदग्धा युवतियो को ज्ञान की आभा से मडित करके प्रसन्न होते है। यथा—

> अलख सखा के ध्यान-लक्ष्य पर
> डूवी, अमल धुली। (**गीतिका**, पृ. १७)

जागो फिर एक वार (१) मे आतुर उर वसन मुक्त कराके प्रेयसी सुप्ति को सुखोन्माद में परिवर्तित करने को उत्सुक है, किन्तु वह एक-दो दिन से नही, कई हज़ार वर्षो से, प्रियतम को जगा रही है। पुरुष और नारी के स्वाभाविक मानवीय सम्वन्ध को, दिव्यता की उपलब्धि के लिए, निराला ब्रह्म और प्रकृति का सम्वन्ध वना देते है।

'देवी' कहानी में निराला ने लिखा था, 'फाकेमस्ती मे भी मैं परियो के ख्वाव देखता रहा', उद्देश्य यह था कि साहित्य के नरक को स्वर्ग वना दें। नरक पर भी जवर्दस्त कविता लिखकर साहित्य को समृद्ध किया जा सकता है; साहित्य स्वर्ग वनता है यथार्थ को गहराई से पहचानने और उसका चित्रण करने से। फाकेमस्ती छिपाकर परियों के ख्वावों से कवि जहाँ अपना मन वहलाता है, वहाँ उसकी कल्पना मनुष्य के मन को उठाने के वदले उसे गिराती है।

नाम है 'ज्योतिर्मयी'। विधवा है, दुखी है किन्तु वह "कमल की पंखड़ियों-सी

उज्ज्वल बड़ी-बड़ी आँखों से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चंद्रिका" है, मुस्कराई तो "सुकुमार गुलाब के दलों-से लाल-लाल होंठ जरा बढ़े, मर्मरोज्ज्वल मुख पर प्रसन्न-कौतुक-पूर्ण एक ज्योतिश्चक्र खोलकर यथास्थान आ गए।" (लिली, पृ. २३)

दूसरी युवती पद्मा—"चन्द्रमुख पर षोडश कला की शुभ्र चंद्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली-सी प्रणय के वासन्ती मलय-स्पर्श से हिल उठती विकास के लिए व्याकुल हो रही है।" (उप., पृ. ९) निराला कविता के भावों को उलटा करके गद्य को सजाते हैं। जो भाव कविता के वातावरण में खप जाते हैं, वे कहानी के अधिक यथार्थपरक वातावरण में भावुकतापूर्ण और निरर्थक जान पड़ते हैं।

प्रणयश्वास के मलय-स्पर्श से
हिल-हिल हँसती चपल हर्ष से— (गीतिका, पृ. १७)

गीतिका मे प्रणय के मलय-स्पर्श से आँखें हिलती और हँसती है, कहानी में युवती की समस्त काया हिल उठती है। शेफाली के लालसी कपोलों में व्याकुल विकास था, यहाँ पूरी युवती विकास के लिए व्याकुल हो रही है।

अन्य युवती कमला—"सोलहवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खिली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।" (लिली, पृ. ३७)

युवती के सौन्दर्य का वर्णन हो और कली, उसकी गन्ध की चर्चा न हो, ऐसा हो नही सकता। 'अप्सरा' में कनक—नाट्यशाला में शकुन्तला का अभिनय करती हुई—"आश्रम के उपवन की वह खिली हुई कली अपने अंगो की सुरभि से कंपित दर्शको के हृदय को संगीत की एक मधुर मीड़ की तरह काँप कर उठती हुई देह की दिव्य द्युति से, प्रसन्न-पुलकित कर रही थी।" (पृ. २३) इससे यदि उस कंठ-लगी उरगी की तुलना की जाय जो मौन अधरासव पान करती है, या उस नायिका से की जाय जिसके नयनो के डोरे लाल हैं, जो रात-भर जागने के बाद सवेरे कहती है—रही यह एक ठिठोली, तो यह तथ्य प्रकट होगा कि निराला की काम-चेतना, उनके नारी-सम्बन्धी अनुभव गद्य की अपेक्षा पद्य मे अधिक व्यंजित हुए है। कथा-साहित्य की नायिकाओं की अपेक्षा काव्य-साहित्य की नायिकाओ में अधिक सजीवता और विविधता है। वह गद्य में अपने स्वप्नदर्शी मन को जितनी छूट देते हैं, उतनी पद्य मे नही। गद्य के दिवास्वप्नो में नारी कल्पना के परिधान में बैठी हुई आती है; कविता में निराला का मन एकाग्र होकर, जो अनुभव किया है, उसी को विसूरता हुआ चित्रित करता है। कविता में उनकी काम-चेतना अधिक यथार्थ-वादी ढंग से अभिव्यंजित हुई है, इसका एक कारण यह भी है कि कहानियों का गद्य ज्यादा लोगों की समझ मे आता था, कविता थोड़े ही समझते थे। कविता के संसार में निराला खुल सकते थे, कथा-संसार में लोक-मर्यादा का ध्यान था। और बहुत-सी बातों मे वह लोक-मर्यादा का उल्लंघन करते थे, काम-सम्बन्धी कार्यवाही के

चित्रण में सावधान रहते थे। प्रस्वेद, कंप, ज्यों-ज्यों युग-उर में और चांप—यह सब कविता मे है, गद्य मे नही।

अप्सरा का वातावरण रूमानी है, उसमे कनक-सम्बन्धी कल्पनाएँ उतना खटकती नही, किन्तु अलका मे किसान-जमीदार-संघर्ष की सीधी यथार्थ भूमि है, उसमें शिशिर की स्नात ज्योत्स्ना-रात-सी स्निग्ध, शुभ्रवसना, दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्त दृष्टि, सघन केशो के अन्धकार मे दिन और रात का दिव्यार्थ रूपक (पृ. ३९)—यह सब कथा के यथार्थवादी रग से मेल नही खाता, उसे फीका भी करता है।

एक स्वप्न यौवन और सौन्दर्य का, दूसरा संपत्ति और वैभव का। यह वैभव नर के लिए है, नारी के लिए भी। अप्सरा मे कनक—"वह भी महाराज कुमारी है" (पृ. १५५), उसकी पेशवाज़ जलाई जाती है, तो उसमें दो सेर सोना निकलता है। (पृ. २२७) प्रभावती राजकुमारी है ही। सजती है तो प्रति अंग नीलमों, हीरो और मोतियो से जगमगा उठता है। वसंती रंग की, सच्चे कामवाली, रत्नजटित साड़ी पहनती है तो साडी और आभरणो की झुलसती स्निग्ध द्युति से आकाश की शशिकला को परास्त कर देती है। "मस्तक पर अर्द्ध चन्द्राकृति, सोने के लता-भुजो से आयत, ललित चूडामणि,—ऊपर श्वेत कोमल पक्ष, मध्य मे नीलम, दोनो ओर कन्नियो पन्नो के फूलों मे, वड़े से छोटे, क्रमानुसार हीरे; नाक मे एक और मणिविन्दु; पदम्राग की कंठी ; ऊँचे पुष्ट वक्ष पर शुभ्र मुक्ताओ की हारावलि; हाथो मे मणि-युक्त विविध भुज-वध, ककणादि, कटि मे रिणिन्-कारिका, सप्तावृत्ति, श्लथ किंकिणी; पदों मे नूपुर, पायल आदि; मुक्त केश, वासित; अधरों मे ताम्बूल रस-राग; आयत सलज्ज आँखों मे क्षीण प्रलंब कज्जल-रेखाएँ। पुतलियो मे चपल रहस्य-हास्य; प्राणो मे मृदु-मृदु प्रणय स्पन्द।" (पृ. २७)

सौभाग्य से कविता मे किसी नायिका को निराला ने इतने गहने नही पहनाए जितने उपन्यास की नायिका प्रभावती को। गहनों से उसका शरीर ढकते मानो वह अघाते नही और गहने भी क्या! हीरे, पन्ने, नीलम, पद्‌मराग, मुक्ता,—पूरे एक म्यूजियम का सामान! जिससे विवाह होता है, वह भी राजकुमार है। अप्सरा का नायक कम से कम नाम से राजकुमार है। कनक का प्रेमी वनकर वह उसकी संपत्ति, मकान, मोटर, नौकर-चाकर—सबका स्वामी बन जाता है।

'परिवर्तन' कहानी का नायक है सूरज। वह राजा की ड्योढ़ी के जमादार का लड़का है। कहानी के अन्त मे पता चलता है कि जो ड्योढ़ी के जमादार बने हुए थे, वह वास्तव मे राजा थे। इस तरह सूरज राजपुत्र सिद्ध हुआ। 'निरुपमा' की नायिका ज़मीदार है; उसका प्रेमी लन्दन का डी. लिट्.। विवाह होने पर ज़मीदारी का मालिक वह भी हो गया।

यह सब स्वप्न है, मन की कमज़ोरी है, निराला जानते है। उपन्यासो मे इसका प्रमाण देते है कि उनके नायक आत्मप्रवंचना के शिकार है। फिर भी काल्पनिक इच्छापूर्ति का आकर्षण इतना प्रवल है कि उससे अपने को बचा नही पाते। कनक

के साथ मोटर में वैठकर राजकुमार चलता है तो उसे "एक अज्ञात मनोहर प्रदेश मे राजकन्या की तलाश में विचरण करते हुए पूर्वश्रुत राजपुत्र की कथा याद आई। राजकुमार निर्लिप्त द्रष्टा की तरह यह सोने का स्वप्न देखता रहा।" (पृ. ६३) इच्छापूर्ति के सपने परियो की कहानियों जैसे है जिनमे राजकुमार अन्त में सफल होगा, परी से उसका व्याह होगा। परियों की कहानियों-जैसे सपने निराला की अनेक कहानियों और उपन्यासों मे हैं। उनका मन इनसे खेलता है, निर्लिप्त द्रष्टा की तरह उन्हें पहचानता है कि ये सव छलना है, फिर भी एक कहानी खत्म होने पर उससे मिलती-जुलती कहानी फिर शुरू करता है।

निराला अप्सरा के राजकुमार की वेहोशी का वर्णन करते हुए कहते हैं, "वेहोशी के वक्त कल्पना के लोक में तमाम सृष्टि उसके अनुकूल हो जाती, कनक उसकी, छायालोक उसके, वाग-इमारत, आकाश-पृथ्वी सव उसके।" (पृ. १२५) एक वाक्य में निराला के कल्पना-विहारी मन की इससे अच्छी व्याख्या नही हो सकती। वह एक तरह की वेहोशी है जो यथार्थ पर रंगीन सपनो का पर्दा डाल देती है। सव कुछ जो प्रतिकूल है, यह वेहोशी की हालत में अनुकूल जान पड़ता है। सुन्दर, धनाढ्य प्रेयसी, वाग़, इमारत—सव कुछ मिल जाता है।

इच्छापूर्ति एक तरह की नहीं है। जैसी इच्छाएँ हैं, वैसी उनकी पूर्ति है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने की चाह है, नायक किसी भारतीय यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट अथवा लंदन का डी. लिट्. होगा। अभिनेता वनना चाहता है, लेखक वनकर वहुत-सा धन कमाना चाहता है, यह भी होगा। अप्सरा का नायक अभिनयकौशल में दक्ष है! 'सफलता' कहानी का नरेन्द्र लेखक है, नाटककार है, खूव धन कमाता है। उसका व्याह आभा से होता है जो नृत्य-संगीत की शिक्षा पाकर श्रेष्ठ अभिनेत्री वन जाती है, नर्तकी-अभिनेत्री कनक की तरह।

एक इच्छा संन्यासी वनने की भी है। जो सिद्धि रामकृष्ण मिशन के साधुओं को मिली, वह निराला को भी मिलनी चाहिए। सिद्धि से भी महत्त्वपूर्ण वात यह कि समाज में जो अपमान मिलता रहा है, वह सिद्धि-प्राप्ति की ख्याति से दूर हो जाएगा। सिद्धि से अधिक महत्त्वपूर्ण है, सिद्धि-प्राप्ति की ख्याति। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' कविता (**अणिमा**, पृ. ६८) में पछाँही युवक को मन्दिर मे घुसने की आज्ञा नही है। उसके वारे में एक व्राह्मण कहता है :

> ऐसा भी आदमी पंक्ति में वैठाला गया
> जिसके माँ वाप का पता आज तक न लगा! (पृ. ८०)

इस अतिरंजित अपमान की भावना को दूर करने का काल्पनिक साधन भी उतना ही अतिरजित है। स्वामी प्रेमानन्द के शरीर से एक ज्वाला निकली, व्राह्मण यह देख कर स्तंभित रह गया, श्रीकृष्णजी स्वामीजी में आ गए। व्राह्मण को विश्वास न हुआ, आँखें रगड़कर फिर देखा। दिखाई दिया : **कृष्णजी की नील कान्ति, ज्योतिर्मयी घनीभूत स्वामीजी की देह में। आनन्द के परमाणुओं का फौवारा छुटा।** इस चमत्कार से अपमानित पछाँही युवक का सम्वन्ध यह है कि

ज्योति की सी रेखा से
स्वामी जी के साथ पश्चिमीय का शरीर बँधा। (पृ. ६६)

स्वामीजी बँध गए कृष्ण से, युवक बँध गया स्वामीजी से। अपमानित करने वाला ब्राह्मण खड़ा देखता ही रहा।

सामाजिक अपमान से मुक्त होने के दो मार्ग हैं, कनक जैसी श्रीसम्पन्न महिला से विवाह अथवा प्रेमानन्द जैसे संन्यासी से ज्योतिवाला वन्धन। इच्छाओं को प्रेरित करनेवाली सामाजिक स्थिति एक-सी है; इच्छापूर्ति के तरीके अलग-अलग है।

स्वामी प्रेमानन्द वाली 'अनुभूति' का वर्णन 'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' निबन्ध मे भी है। स्वामी सारदानन्द ने गले पर मंत्र लिख दिया; इसके कुछ दिन वाद निराला को लगा, "राम कृष्ण मिशन के साधु मुझे खींच रहे हैं।" आगे चलकर दर्शनशास्त्र के एम. ए. एक साधु स्वयं निराला की तरफ खिचने लगे। "इसके वाद एक दिन स्वप्न देखा —ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की वाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।" (चतुरी चमार, पृ. ५८)

ये साधुओ की ओर खिचे, एक साधु इनकी ओर खिचा—यह एक दिवास्वप्न हुआ। इस दिवास्वप्न में दूसरा स्वप्न—ज्योतिर्मय समुद्र में श्यामा की वाँह पर मस्तक रखे लहरों पर हिल रहे है।

अप्सरा के राजकुमार को वेहोशी में पृथ्वी आकाश सव अनुकूल जान पड़ते है। वैसी ही वेहोशी वाली अनुकूलता यहाँ है। 'देवी' मे उन्होने लिखा कि फाके-मस्ती में भी परियों के ख्वाव देखते रहे, एक ख्वाव अप्सरा का, दूसरा ख्वाव श्यामा का। 'राम की शक्ति-पूजा' में जैसे शक्ति राम के वदन में लीन होती है, वैसे ही कृष्णजी से शक्ति निकल कर स्वामी प्रेमानन्द में लीन होती है। उस ज्योति से वँध जाते है निराला।

निराला अपनी वेहोशी पहचानते हैं। जव सपने मिटाना शुरू करते है तव न अप्सरा को वख्शते है न वेदान्त और देवताओं को, न अपने को। मोहभंग की प्रक्रिया अतिरंजित और विकृत भी हो जाती है।

मोहभंग : विकृति

निराला वेहोशी में काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने देखते है, होश आने पर उन्हें मिटा देते हैं। इच्छापूर्ति के सपने देखने मे मन की कमजोरी प्रकट होती है; सपने मिटाने

में हमेशा मन की ताक़त जाहिर नही होती। उनके जीवन में कोई ऐसा समय होता जब वह सिर्फ बेहोशी की हालत मे सपने देखते और मोहभंग होने पर नये दौर में अपनी स्वप्नशीलता से लड़ते हुए यथार्थवाद की ओर बढ़ते, तो शायद उनके साहित्य को दो हिस्सों में बाँट देना संभव होता—एक मोह का साहित्य, दूसरा मोहभंग का साहित्य, और एक को पलायनवादी, दूसरे को यथार्थवादी कह-कर हम उनके विकास की सीधी रेखा निश्चित कर लेते। किन्तु ऐसी स्थिति है नहीं। जिन दिनो उन्होने इच्छापूर्ति के सपने देखे, उन्ही दिनों साहित्य मे साहस से यथार्थ जीवन का चित्रण भी किया। जिसे छायावादी कविता कहते है, उसे केवल काल्पनिक इच्छापूर्ति का साहित्य मानना भ्रम है। यदि उस कविता की समस्त आधारभूत मान्यताओं का उपहास किया जाय, तो उस उपहास मे कही न कही विकृति अवश्य होगी।

निराला ने अपनी जिन रचनाओं में काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपनों को मिटाया है, वे सन् '४२ में प्रकाशित उनके कविता-संग्रह **कुकुरमुत्ता** में है। मोहभंग के साथ भावबोध में कही-कही विकृति उत्पन्न हुई है तो वह मुख्यतः इन्ही रच-नाओ मे। इनमें केवल विकृति नहीं है, यथार्थवाद के नये तत्त्व हैं, यह भी असंदिग्ध है, **कुकुरमुत्ता** संग्रह के अलावा 'देवी', **कुल्ली भाट** जैसी रचनाओ में जहाँ-तहाँ वह उपर्युक्त कोटि के मोहभंग का परिचय देते है।

'देवी' कहानी के आरम्भ में उन्होंने लिखा, "बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा।" शब्दों के जाल मे मक्खियाँ मारने की क्रिया की व्याख्या उनके इस वाक्य से होती है: "पर फाकेमस्ती मे भी मैं परियो के ख्वाब देखता रहा।" सन् '२० से '३३ तक निराला ने परियों के ख्वाब ही न देखे थे, दुख की सूरत भी देखी थी, बहुत तरह के संघर्षो से गुजरे थे, वह सब अनुभव साहित्य को दिया था। बारह साल तक शब्दों का जाल बुनने और परियो का ख्वाब देखने की बात मान ली जाय तो मोहभंग के साथ उनके भावबोध मे विकृति की शुरुआत भी हो जाती है। किन्तु 'देवी' कहानी में निराला अपनी कविता के लिए लड़ते है, जो लिखा है उसे खुराफात मानने को तैयार नही हैं, पुरानी रूढियो का विरोध करने के कारण उनके खिलाफ़ जो मोर्चाबन्दी हुई, उसकी सीधी आलोचना करते है। इसका अर्थ है, वह परियों के ख्वाब देखने को आंशिक रूप से ही सत्य मानते है।

निराला ने वैभव के स्वप्न देखे। इन वैभव के सपनों को विवेक के प्रहार से चूर-चूर करते हुए उन्होंने 'देवी' मे लिखा, "बड़ा राज्य, बड़ा ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप, तलवार, गोले-बारूद, बंदूक-किर्च···अट्टालिका, उपवन आदि-आदि सब बड़े-बड़े—इतने कि वहाँ तक आँख नही फैलती, इसलिए कि छोटे समझें, वे कितने छोटे हैं।" (**चतुरी चमार**, पृ. ३९)

यह मोहभंग और आत्मालोचना का सही रूप है।

निराला ने पृथ्वी और आकाश के बीच शुभ्र किरणवसना के दिव्य रूप का

कीर्तन अनेक बार किया था, 'देवी' में प्रकृति और नारी उस दिव्य रूप के बदले पार्थिव रूप मे, अधिक यथार्थ रूप मे दिखाई देती है : "उम्र पच्चीस साल से कम। दोनों स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारों से लडती हुई, मुरझा कर, मुमकिन है किसी को पच्चीस साल से कुछ ज्यादा जँचे, पास एक लड़का डेढ साल का खेलता हुआ। ससार की स्त्रियो की एक भी भावना नहीं।" (पृ. ४०)

निराला-साहित्य मे अलका-निरुपमा-अप्सराओं की जो लम्बी कतार है, उसमे पुत्रवती नायिका एक भी नही है। जो विधवाएँ हैं, वे भी सन्तानहीन नवोढाओ जैसी है। गीतों मे युवती के पुत्रवती होने की शुभकामना सांकेतिक रूप से जहाँ-तहाँ व्यक्त हुई है किन्तु पुत्रवती नायिका यह अकेली पगली है जिसमे संसार की स्त्रियों की एक भी भावना नही। पुष्ट स्तनों के स्वप्न के बदले यहाँ खुले हुए स्तन हैं जो पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरुपम का उपहास करते हैं। परियों के ख्वाब के बदले यहाँ "पगली के भीतर की परी इस संसार को छोड़कर कही उड जाने की उड़ान भर रही थी।" (पृ. ४१) निराला ने यह सब देखा और लिखा यह उनके साहस और मानवीय सहानुभूति का परिचायक है।

निराला के मन मे गन्ध के प्रति प्रवल आकर्षण है। उसे प्रतीक बनाकर अनेक कविताओ मे उन्होने उसका उत्कृष्ट कलात्मक उपयोग किया है। गुलाव फूलों में रूप-रस-गन्ध के लिए प्रसिद्ध है। शूर्पणखा के मन मे राम का सौन्दर्य गुलाव जैसा है किन्तु अपने प्रति आदिरस का संचार न होते देखकर राम निर्गन्ध कुसुम जैसे लगते हैं :

> सोचा था गुलाव जिसे
> निकला छिः जंगली निर्गन्ध कुसुम। (परिमल, पृ. २३०)

यहाँ कवि के मन में गुलाव के प्रति कोई ऐसा मोह नहीं है जिसे भंग करना आवश्यक हो। एक प्रसिद्ध महिला पर बँगला मे कविता लिखी; उसके अन्तिम अंश का भावार्थ उन्ही के शब्दों मे : "खुशवू उड़ी—तुम्हारी आँखो और मुख पर गुलाव खिले।" (अणिमा, पृ. ५२) यहाँ गुलाव का अपना कोई दोष नही यद्यपि वह सौन्दर्य के दिवास्वप्न से अवश्य जुडा हुआ है। फाकेमस्ती मे परियों के ख्वाब देखने की तरह निराला ने अक्सर—हमेशा नही—गन्दगी मे रहते हुए सुगन्ध के सपने देखे। इन सपनों से जी उचाट हुआ तो गन्दगी के सपने देखे। सचाई दोनों सपनो मे है किंतु दोनों में सुगन्ध और दुर्गन्ध का चित्रण—पूरे वातावरण को देखते हुए—कुछ अतिरंजित है। नवाव के वाग में वेला, चमेली, जुही, नर्गिस,—सुर्ख, धानी, चंपई, भाँति-भाँति के रंगों के फूल—खिले हुए है :

> एक सपना जग रहा था
> साँस ले तहज़ीव की
> गोद मे तरतीव की।

निराला ने तहज़ीव का यह सपना वहुत देखा है, कही हीरे-जवाहरात मे

जगमगाता हुआ, कहीं फूलों में रंग-रूप और गन्ध से दमकता-महकता हुआ। इस सपने की प्रतिक्रिया :

जगह गन्दी; रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों मे; ज़िन्दगी की लन्तरानी...
विलविलाते कीड़ें; विखरी हड्डियाँ;
सेल्हरों की, परों की, थीं गड्डियाँ;
कहीं मुर्गी, कही अण्डे,
धूप खाते हुए कंडे।
हवा वदवू से मिली,
हर तरह की वसीलीई पड़ रही।

प्रणय श्वास के मलय-स्पर्श के वाद यह 'हवा वदवू से मिली।' जीवन मे गन्दगी और सफाई, सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों है, साहित्य में दोनों का चित्रण होना चाहिए—जिनके साहित्य-शास्त्र मे वीभत्स भी एक रस है, उन्हें इस स्थापना पर आपत्ति विशेप रूप से न होनी चाहिए। शास्त्र में वीभत्स और भयानक को रस मानने पर भी काव्य-रचना में जिन्होंने आदिरस को प्रधानता दी, उनके भाववोध की सीमाएँ तोड़कर निराला ने सड़ते हुए पानी और सेल्हरों की गड्डियो का चित्रण किया, वहुत अच्छा किया। किन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि सुगन्ध से दुर्गन्ध अच्छी है और श्रृंगार से वीभत्स श्रेष्ठ है। गुलाव को वैभव और रूप-गन्ध का प्रतीक मानकर कुकुरमुत्ता जव उसे गाली देना शुरू करता है, तव वह वास्तव मे कुतर्क करता है कि सफाई से गंदगी श्रेष्ठ है।

कुकुरमुत्ता ने गुलाव को कैपिटलिस्ट कहा, उसे अमीरों का प्यारा वताया, उस पर साधारणों से अलग रहने का दोष लगाया। इससे कुछ प्रगति-प्रेमी आलोचकों ने उसे सर्वहारा वर्ग का प्रतीक मानकर उसका काफी वंदन अभिनन्दन किया है। कुकुरमुत्ता की तर्क-योजना जिस वर्ग-दृष्टि का परिचय देती है, वह प्रोलीटेरियट की नही; लुम्पेन प्रोलीटेरियट की वर्ग-दृष्टि है, शहर के आवारा टटपूँजियों का दृष्टिकोण जो क्रान्तिकारी संगठन और संघर्प का रास्ता छोड़कर अराजकतावादी नीति अपनाता है। सर्वहारा वर्ग के वारे में उसकी राय क्या है, वह इन पंक्तियों से ज़ाहिर होती है :

मैंने वदले पैतरे
जहाँ भी शासक लड़े।
पर है प्रोलेटेरियन झगड़े जहाँ
मियाँ वीवी के, क्या कहना है वहाँ।

शासकों की लड़ाई और मियाँ वीवी की लड़ाई—दोनो में उसे समान रस मिलता है। मियाँ वीवी की लड़ाई को वह खास तौर से प्रोलीटेरियन विशेषण से विभूपित करता है। जहाँ इस तरह के झगड़े हों, वहाँ मानो सर्वहारा संस्कृति का परिचय विशेप रूप से मिलता है!

अपनी इस अराजकतावादी भूमिका के अनुरूप कुकुरमुत्ता देश की सांस्कृतिक विरासत की ओर गलत रुख अपनाता है। प्रकृति में एक ही शक्ति व्याप्त है, वह इस दर्शन का मखौल करता है। कुकुरमुत्ता सुबह का सूरज है, शाम का चाँद है। ब्रह्म के समान उसकी व्याप्ति का चित्रण वेदान्त का उपहास है, उसका सही मूल्यांकन नहीं।

> मैं कुकुरमुत्ता हूँ,
> पर बेन्ज़ोइन वैसे,
> बने दर्शन शास्त्र जैसे।

बेन्ज़ोइन दर्शनशास्त्र का जो भी सम्बन्ध हो, कुकुरमुत्ता ने दर्शनशास्त्र से अपना नाता जोड़कर उसे—भारतीय दर्शन को— उपहासास्पद ही बनाया है। भारतीय दर्शन में वेदान्त निराला के मन में सर्वोपरि है, इसलिए यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि यहाँ कुकुरमुत्ता के माध्यम से उन्होंने वेदान्त का उपहास किया है।

यह उपहास-क्रिया भारतीय कवियों के प्रसंग में और भी स्पष्ट हो जाती है। दुनिया के सभी कवियों ने रस चुराया है कुकुरमुत्ता से, उसमें गोते लगाए हैं वाल्मीकि-व्यास ने! कुकुरमुत्ता से 'पोथे' निकाले हैं भास-कालिदास ने। रवीन्द्रनाथ जैसे विश्वकवि उसके किनारे—मानो वह प्रकाश और आनन्द का सागर हो—खड़े हुए टुकुर-टुकुर ताकते रहे। लेकिन स्वयं कुकुरमुत्ता क्या है? लेखकों में लंठ जैसे खुशनसीब! लंठ लेखक के मुकाबले व्यास-वाल्मीकि-कालिदास को नीचा दिखाना कुकुरमुत्ता की तर्क-योजना के अनुकूल है। सुगन्ध से यदि दुर्गन्ध श्रेष्ठ है तो व्यास-वाल्मीकि से लंठ लेखक श्रेष्ठ क्यों न होगा?

निराला ने गोरी, नवयौवना, मुग्धा नायिकाओं का चित्रण बहुत जगह किया था, अब उन्होंने काली, नकचिपटी, चेचक मुँह दाग, कानी लड़कियों पर ध्यान केन्द्रित किया। आँखों-आँखों में प्रेम-व्यापार, नयनों के नयनों से गोपन संभाषण के उपरान्त उन्होंने प्रेम-व्यंजना की यह शैली अपनाई:

> बाह्मन का लड़का
> मैं प्यार उसे करता हूँ।
> जात की कहारिन वह,
> मेरे घर की है पनिहारिन वह,
> आती है होते तड़का,
> उसके पीछे मैं मरता हूँ। (कुकुर., पृ. ३३)

कुकुरमुत्ता ने मियाँ-बीवी के झगड़ों के साथ जिस तरह सर्वहारा-संस्कृति को जोड़ा था, उसी के अनुरूप यह प्रेम-निवेदन की 'सर्वहारा' पद्धति है। यह यथार्थवाद का विकास नहीं, उसकी विकृति है।

स्नेह की सरिता के तट पर युगल घट भरे हुए जो नायिका चलती है (गीतिका, पृ. ४२), उसके घड़ों को तुच्छ सिद्ध करते हुए उपर्युक्त कहारिन बड़ा

मटका लेकर आती है। वह कोयल की तरह काली है, व्याह नहीं हुआ, **तभी भड़का दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ**। रानी नाम की लड़की और भी कुरूप है, उसका भी व्याह नही हुआ। वह चेचक मुँह दाग, काली, नकचिपटी, गंजा सर, एक आँख कानी है। जैसे कुकुरमुत्ता में उन्होंने सारी गंदगी वटोरकर एक ही जगह उसका ढेर लगाने का प्रयत्न किया है, वैसे ही यहाँ कुरूपता दर्शाने के लिए जितने तत्त्व हो सकते थे, उन्होने एक ही जगह सजा दिए है। यह भी रोज घड़ों पानी भरती है लेकिन सौभाग्य से इसे कोई वड़ा मटका नही उठाना पड़ता। उसका व्याह न होगा, यह सोचकर उसकी माँ दुखी होती है। माँ का दुख देखकर रानी रोने लगती है लेकिन आँसू एक आँख में आते है। जो आँख कानी है, वह **ज्यों-की-त्यों रह गई करती निगरानी**। निराला ने सहानुभूति के हल्के स्पर्श से कविता को विकृत होने से वचा लिया है, फिर भी कुरूपता का चित्रण अतिरंजित है, यह प्रभाव मन पर पड़ता ही है।

'खजोहरा' में अधेड़ उम्र की स्त्री ताल में नहाती है। नहाती हुई, नहाने के वाद नदी या ताल से वाहर खड़ी हुई नंगी-अधनंगी स्त्रियों का चित्रण रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वहुत जगह किया है। उनकी ऐसी ही कविता है 'विजयिनी' जो निराला को वहुत प्रिय थी। उस रूमानी भावुकता का उपहास करते हुए उन्होने लिखा—**उतरीं ज्यों टैगोर की विजयिनी हों**। यहाँ तक ठीक। किन्तु आगे इस अधेड़ स्त्री का जैसा चित्रण किया गया है, वह नारी जाति के प्रति निराला की सहज उदार भावनाओं के प्रतिकूल है :

> पैठी वुआ ताल में जैसे हथनी,
> मारे डर के काँपने लगा पानी।
> लहरें भगी चढ़ने को किनारे पर,
> रेला पानी वुआ ने वाँहों में भर।
> नीव के खंभों से पैर कीच् मे थे,
> जाँघ से छाती तक अंग वीच में थे।

रवीन्द्रनाथ की कविता में कामदेव विजयिनी नायिका से क्षमा माँगता है, यहाँ पर क्षमा माँगने को मदन जैसा डाल पर वड़ा-सा खजोहरा वैठा था। खजोहरा शरीर पर गिरा, खुजली मची और वह स्त्री धोती वदले विना घर को यों भागी मानो नीलगाय को मात दे रही हो ! माँ ने जव पूछा—खुजली कहाँ हो रही है तो स्त्री ने कहा, कोई जगह नहीं वची ! एक अधेड़ स्त्री की परेशानी यहाँ परिहास का विपय है। यह वही लुम्पेन प्रोलीटेरियट वाला दृप्टिकोण है; इसे यथार्थवाद का विकास मानना गलत है। पहले स्नान करती हुई नग्न युवतियों को सपनों मे देखने का मोह, फिर उन सपनों को मिटाने में मोहभंग की विकृति।

'स्फटिक-शिला' मे निराला ने फिर एक सद्य.स्नाता युवती का चित्रण किया है। काली, नकचिपटी कुरूपता यहाँ गायव हो गई है। थोड़े-से परिवर्तन से रवीन्द्रनाथ की विजयिनी यहाँ फिर अवतरित हो गई है। वसन्त—या खजोहरा

—की जगह स्वयं कवि उसके सौन्दर्य का प्रत्यक्षदर्शी है। वर्णन इस प्रकार है :

आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहा कर,
गीली धोती सटी हुई भरी-देह मे, सुघर
उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,
आयत दृगों का मुख खुला हुआ, लेता हर
जो कुछ अपना-पर।
कहीं मे नहीं वदन काँपता,
कुछ भी, संकोच, नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए स्तनों पर पड़ी थी निगाह
चोंच-सी जयन्त की, नही है जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कितने वे दिव्य स्तन, होंगे कितने कठोर।
काँप उठा मेरा मन,
याद आई जानकी;
कहा, तुम राम की—
कैसे दिये दर्शन !

मोह और मोहभंग के बीच निराला का मन कैसे झूलता था, यह कविता उसका प्रमाण है। रवीन्द्रनाथ की विजयिनी का सपना आँखो से मिटता नहीं, 'खजोहरा' में उसका रंग-रूप, रेखाएँ, सब-कुछ बलपूर्वक मिटा दिया; 'स्फटिक शिला' मे वे रेखाएँ फिर उभर आई, उनमें रंग-रूप भर गया, सपना फिर साकार हुआ। जयन्त की चोंच-जैसी कवि-दृष्टि स्तनों से हटती नही। निराला ने दुष्ट मन को मरोड़ने की बात लिखी है। यह दुष्ट मन किसका है। अवश्य ही कवि का। युवती के आयत दृगों वाला खुला हुआ मुख, दुष्ट मन को मरोड़कर, जो कुछ अपना-पराया है, हर लेता है—वाक्य-रचना इस प्रकार की है। 'पंचवटी-प्रसंग' में निराला सीता को लक्ष्मण की निगाह से देखते है। 'राम की शक्तिपूजा' में आँखो पर ध्यान केन्द्रित है; सब-कुछ सांकेतिक, मर्यादित। कुकुरमुत्ता में जैसे राम का धनुष अपनी दिव्यता खोकर कुकुरमुत्ता के समतुल्य हो जाता है, वैसे ही जानकी के प्रति निराला का मन दिव्यभाव-दृष्टि खोकर जयन्त की दृष्टि बन जाता है। फिर वह अपने को सँभालते हैं। उनके मन का काँपना ही उसका सँभलना है। वह युवती राम की है, जानकी के समान दिव्य है, कवि उसके दर्शन पाकर धन्य होता है। 'सौन्दर्य लहरी' के शंकराचार्य की तरह सौन्दर्य पूजा के साथ भक्तिभाव जोड़कर निराला अपने मन की उच्छृंखलता को नियन्त्रित करते हैं। अन्यत्र जैसे वेदान्त के स्पर्श से निराला शृंगार को दिव्यता प्रदान करते है, वैसे ही यहाँ भक्तिभाव उभारकर सौन्दर्य पूजा को उच्छृंखल होने से बचाते हैं। ऐसा है मोह और मोहभंग का द्वन्द्व कुकुरमुत्ता के लेखक के मन में।

निराला ने तुलसीदास पर कविता लिखी, उन्हें भारत का अन्धकार हरनेवाले महापुरुष के रूप में चित्रित किया। 'राम की शक्तिपूजा' मे राम और महावीर का उदात्त चित्रण किया। फिर महापुरुषत्व का उपहास करना शुरू किया। **कुल्लीभाट** की शुरुआत इसी उपहास वृत्ति से होती है। तुलसीदास ने 'अपने अनुभव सव कहऊँ' आदि लिखकर, निराला के विचार से, यह सिद्ध किया कि वह पुरुष थे, महापुरुष नही। हिन्दी में 'गुरुघंटाल' की तरह 'महापुरुष' मे भी उपहास की व्यंजना है। निराला का यह आशय होता कि तुलसीदास महापुरुष नहीं, पुरुष ही हैं, तो आपत्ति की कोई वात न थी। किन्तु उनका यह आशय नही है। जवानी मे होश आने से लेकर बुढ़ापे मे होश जाने तक 'उनमें पुरुषत्व ही प्रधान रहा।' पुरुषत्व के प्रधान रहने की व्याख्या वह आगे करते हैं।

"मुझसे कवि भगवतीचरण कहते थे—कविवर रामनरेश त्रिपाठी जानते है, वहुत आधुनिक रिसर्च है—तुलसीदास गर्मी से मरे थे; यह पता नही चला—गर्मी रत्नावली से मिली—कहाँ से; वाहुक की रचना के वक्त वाँह का दर्द गर्मी के कारण हुआ। कुछ हो, मैं ऐतिहासिक नहीं, समझा कि तुलसीदास जी पुरुष थे, महापुरुष नही; महापुरुष अकवर था—दीन-ए-इलाही चलाया, हर कौम की वेटी व्याही, चेले वनाए।"

पहले कविता मे रत्नावली को अरूपलग्न योगिनी वनाया, फिर यह शंका प्रकट की कि तुलसीदास को गर्मी शायद रत्नावली से मिली हो। कविवर रामनरेश त्रिपाठी जानते हैं—यह प्रमाण उन्होने ऐसे प्रस्तुत किया मानो त्रिपाठी जी उग्र हो और उन्होने देखा हो कि सोनागाछी मे निराला क्या कर रहे थे। **कुल्लीभाट** में निराला का मोहभंग ही नही, एक नये मोह-स्वप्न की रचना भी है। रत्नावली को योगिनी के वदले सामान्य नारी रूप में, तुलसीदास को परमज्ञानी सिद्ध कवि के वदले संघर्षशील, मानव सुलभ भावनाओं के, कवि के रूप मे देखें, यह वात तो स्वागत योग्य होगी। किन्तु भगवतीचरण वर्मा और रामनरेश त्रिपाठी की आड़ लेकर 'अपने अवगुन' और 'वाहु-पीड़ा' का जो सम्वन्ध उन्होने गर्मी से जोड़ा है, वह अक्षम्य और निराधार तो है ही, वह इस मुग्ध भाव का सूचक भी है कि मुझे वीमारी हुई तो क्या हुआ, तुलसीदास को भी तो हुई थी।

मोहभंग के साथ मोह के एक नये सपने की शुरुआत!

कुल्ली वीमार हुए। निराला ने पूछा—क्या हुआ है? साले ने कहा, "गर्मी ...नीचे का पेट तक सड़ गया है—सेरों पस निकलता है, इतनी वदवू आती है कि कोई छन भर नही ठहर सकता।"

निराला देखने गए। "प्रवेश करते ही ऐसी वदवू आई कि जान पड़ा, एक क्षण नही ठहर सकूँगा। हिम्मत करके खड़ा रहा।"

कुल्लीभाट निराला की अत्यन्त सशक्त और महत्त्वपूर्ण रचना है, फिर भी यह सत्य है कि उसमें दूसरे के वास्तविक अथवा कल्पित यौन रोग से सन्तुष्ट होने की प्रवृत्ति विद्यमान है। इस पुस्तक में निराला ने अपने वारे मे वहुत कुछ लिखा

है किंतु अपने यौन रोग का उल्लेख कही नही किया। मोहभंग और यथार्थ-दर्शन की प्रक्रिया इतनी कठिन है। पुस्तक में कुल्ली पुरुष है, निराला महापुरुष।

कुकुरमुत्ता, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चतुरी चमार ऐसे पात्र है जिनसे निराला को अपने बड़प्पन का बोध होता है (केवल 'देवी' की पगली भिखारिन में उनके बड़प्पन के भाव समा जाते हैं)। इनके द्वारा वे उन सब बड़े आदमियो को नीचा दिखाते है जो अपने बड़प्पन से उन्हे छोटे होने का एहासस कराते थे। जो बड़े है, वे इन सब पात्रों की तुलना मे छोटे है; निराला स्वय इनसे बड़े है। इसीलिए कुकुरमुत्ता से निराला का तादात्म्य नही, वह उसके सहारे दूसरो का परिहास करते है, फिर स्वयं उस पर हँसते है। लेखको में लंठ जैसे खुशनसीब कुकुरमुत्ता है, निराला नहीं। निराला उससे श्रेष्ठ है। कुल्ली, चतुरी, बिल्लेसुर—इन सबके सहारे निराला दूसरों पर हँसते है, इन पर भी हँसते है। उनके साथ खड़े होकर कही आत्मगरिमा के प्रच्छन्न बोध से उन्हें संतोष होता है। मोहभग को कमजोर करने वाला यह भी मोह का एक रूप है।

इस मुग्ध भाव के बावजूद निराला ने ऐसी कृतियों मे गहरी मानवीय सहानुभूति का परिचय दिया है और नये यथार्थवाद का विकास किया है, यह भी सत्य है।

हास्य और करुणा

मोह के सपने टूटते है तो निराला हँसते है। उनकी इस हँसी मे कही अपने बड़प्पन का भाव छिपा है, कही दूसरो को नीचा दिखाकर तुष्ट होने का भाव है, साथ ही इस हँसी मे द्रष्टा की तटस्थता, अपने ऊपर हँसने की ताकत भी है। बड़प्पन के सपनो मे खोए हुए मन को आसमान से धरती पर उतारकर निराला खुद पर हँसते हुए कहते है, "बड़े होने के खयाल से ही मेरी नसे तन गईं, और नाममात्र के अद्‌भुत प्रभाव से मैं उठकर रीढ सीधी कर बैठ गया। सडक की तरफ बड़े गर्व से देखा, जैसे कुछ कसर रहने पर भी बहुत कुछ बड़ा आदमी बन गया होऊँ।" (**चतुरी चमार**, पृ. ४१) यहाँ निराला होश मे आने पर अपनी बेहोशी पर हँसते है। बडप्पन के भाव बेहोशी के कारण है; दूसरों का दुख देखकर यह बेहोशी दूर हो जाती है और दिवा-स्वप्नों के मोह के प्रति वह सचेत होते है।

कुकुरमुत्ता में जहाँ उन्होंने लिखा है,

ख्वाब मे डूबा चमकता हो सितारा,
पेट में डंड पेलते चूहे, जबाँ पर लफ्ज प्यारा

यहाँ वह 'देवी' कहानी मे कही हुई फाकेमस्ती मे परियो के ख्वाव देखने वाली वात दोहराते है। यह वात आंशिक रूप मे छायावादी कविता और निराला-साहित्य पर लागू होती है; उस हद तक उनका व्यंग्य अपने ऊपर है और सार्थक है। 'देवी' मे उन्होने वारह साल तक मकड़े की तरह शव्दों का जाल बुनने की वात लिखी थी; **कुकुरमुत्ता** के जवाँ पर लफ्ज़ प्यारा मे उसी शव्दों के जाल वुनने की ओर संकेत है। मोह दिवा-स्वप्नों का ही नही, उन स्वप्नों को रूपायित करने वाले शव्द-शिल्प का भी है। निराला इस मोह को तोड़ते है। 'देवी' और **कुकुरमुत्ता** की भाषा में कही आन्तरिक समानता है।

'कुकुरमुत्ता' में प्रच्छन्न व्यंग्य उसकी वड़प्पन की भावना पर भी है। कुकुरमुत्ता सवको तुच्छ सिद्ध करके स्वयं वड़ा वनता है, यह प्रयत्न अपने मे हास्यास्पद है। कुकुरमुत्ता पहाड़ी से सिर उठाकर, 'ऐंठ कर' वोलता है; वोलने की इस अदा से साबित होता है कि जितना वड़ा वह वन रहा है, उतना वड़ा है नही। वालिश्तों से अपनी ऊँचाई नाप कर जव कहता है,

डेढ़ वालिश्त और ऊँचा हूँ चढ़ा

तव 'देवी' कहानी मे निराला का अपना नख-शिख-वर्णन याद आ जाता है, "मेरे ग्रीक कट, पाँच फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्वे, जरूरत से ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढ़ों के कसरती वदन को देखकर किसी को आतंक न हुआ।" निराला 'कुकुरमुत्ता' में इसी वड़प्पन के भाव पर हँसते हैं।

व्रह्म की उपमा ऊर्णनाभि से दी गई है। ऊर्णनाभि अपने भीतर से सृजन करता है, फिर उस सृष्टि को मिटा भी देता है। यही ऊर्णनाभि—लोक-प्रचलित शव्द मकड़े के रूप मे—'देवी' में विराजमान है। दुनिया से अलग हटकर, ज्ञान का सारा भंडार अपने भीतर मानकर, जो रूमानी लेखक अपने उद्‌गारों और अनुभूतियो से साहित्य को सजाने मे विश्वास करते है, उन पर व्यंग्य है। व्रह्म की-सी निरपेक्ष सृजनशीलता कुकुरमुत्ता में भी है :

और अपने से उगा मैं,
विना दाने का चुगा मैं,
कलम मेरा नही लगता,
मेरा जीवन आप जगता।

यहाँ निराला ने भाववादी दर्शन और 'छायावादी' धारणाओ पर व्यंग्य किया है। आगे जव कुकुरमुत्ता गुलाव से कहता है—**पानी मै, तू बुलबुला**—तव स्वयं को व्रह्म और गुलाव को माया वताकर वह माया-व्रह्म सम्वन्धी धारणाओ के प्रति वेदान्त-प्रेमियों को सचेत करता है। 'तुम और मै' कविता के व्रह्म-माया सम्वन्ध की अच्छी पैरोडी है यह—**पानी मैं, तू वुलवुला।**

छायावादी काव्य और हास्य-व्यंग्य-प्रेम परस्पर विरोधी माने जाते है। निराला ने 'मतवाला' की टिप्पणियो से लेकर 'सुधा' और 'माधुरी' मे अपने आलोचनात्मक लेखों तक निरन्तर हास्य-व्यंग्य-प्रेम का परिचय दिया है। उनकी यह

चित्तवृत्ति **देवी, चतुरी चमार, कुल्लीभाट** आदि कलात्मक गद्य-रचनाओं में और विकसित होती है। **कुकुरमुत्ता** जैसी पद्य-रचनाओ मे तो है ही, **परिमल, अनामिका, गीतिका** और वाद की अन्य कविता-पुस्तकों में भी 'गंभीर' भाव-प्रकाशन के साथ यह वृत्ति जहाँ-तहाँ अपना चमत्कार दिखा जाती है। निराला के भाव-वोध की यह विशेपता है; हिंदी के छायावादी काव्य में वह अन्यत्र दुर्लभ है।

ढके हृदय में स्वार्थ लगाए ऊपर चन्दन,
करते समय नदीश-नन्दिनी का अभिनन्दन—

ये पक्तियाँ **परिमल** की 'रास्ते के फूल से' कविता मे है; **अनामिका** की 'दान' कविता में उन्होने पूजा-पाठ का पाखण्ड रचने वालो के वारे मे जो कुछ कहा है, उससे वे तुलनीय हैं।

परिमल मे एक कविता है 'वदला'। फूल के मधु पर मुग्ध भौरा उससे वाते करता है,

सुनो, अहा फूल,
जबकि यहाँ दम है,
फिर क्या रंजोगम है,
पड़ेगी न धूल,
मैं हिला-झुला झाड़-पोछ दूँगा,
वदले मे ज्यादा कभी न लूँगा,
वस, मेरा हक मुझको दे देना,
अपना जो हो, अपना ले लेना।

कुकुरमुत्ता के लहजे की यह पेशगी है। न केवल शैली में भौरे की उक्ति कुकुरमुत्ता के भापण के समान है, वरन् यथार्थ वोध का स्तर भी उस कविता की याद दिलाता है। प्रेम के सप्तम सोपान पर पहुँचने के वदले फूल की धूल झाड़ने मे वह अपनी सारी कमाई खो देता है, रूप और यौवन-वल खोता है, थककर सो जाता है। यौवन और सुख को कल्पना से अधिक भव्य वनाने के वदले निराला उसका अधिक परि-चित, यथार्थ रूप चित्रित करते है।

'जलद के प्रति' कविता मे निराला भौरे वाले लहजे मे जलद से वातें करते हैं।

ऐ निर्वन्ध ! —
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-वादल ! —

की मोहक मन्द्र ध्वनि के वदले वह जलद से साधारण वोलचाल की शब्दावली का प्रयोग करते हुए कहते है,

भौएँ तान दिवाकर ने जब भू का भूषण जला दिया,
माँ की दशा देखकर तुमने तव विदेश प्रस्थान किया।
वहाँ होशियारो ने तुमको खूब पढ़ाया, वहकाया;
'द' जोड़ ग्रेड वढाया, तुम पर जाल फूट का फैलाया।

'जल' से 'जलद' कहा, समझाया भेद तुम्हे ऊँचे बैठाल,
दाएँ बाएँ लगे रहे जिससे तुम भूलो जाती ख्याल।

यहाँ भी भाव-बोध के स्तर की भिन्नता केवल शैली तक सीमित नही है; बादल के प्रति कवि के दृष्टिकोण मे भिन्नता है। बादल सर्वजयी क्रान्तिकारी योद्धा न होकर परदेस जाने वाला साधारण माँ का बेटा है। परदेस में बड़े बनने, घरवालों को भूल जाने के पर्याप्त अवसर हैं। निराला उन होशियारों पर हँसते है जो उसे बहकाते हैं, जल से जलद बनाकर आसमान में उड़ने और धरती को भूल जाने की बात कहते हैं। वह बादल से प्रसन्न होते हैं कि वह आसमान में उड़ने के बाद फिर धरती पर बरसता है, अपना अस्तित्व मिटाकर 'प्रीति बेलि' बोता है, जीवन सार्थक करता है।

जो वृत्तियाँ हास्य-व्यंग्य-प्रेम की विरोधी समझी जाती है, निराला उनसे हास्य और व्यंग्य का सामंजस्य स्थापित कर लेते है, यह उनके भाव-बोध की अन्य विशेषता है। 'जलद के प्रति' कविता मे पृथ्वी और बादल के प्रति अपनी करुणा और सहानुभूति से वह हास्य-व्यंग्य को मिला देते हैं, कारण यह कि जिससे सहानुभूति है, उसके विरोधियो के प्रति वैसा ही घृणा, उपेक्षा अथवा क्रोध का भाव है। इस तरह करुणा और सहानुभूति से—एक ही कविता में—वह हास्य और व्यंग्य का सामंजस्य स्थापित करते हैं। शिवाजी के पत्र में वीर भावना के साथ जयसिंह के प्रति तीव्र व्यंग्य का सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। **अनामिका** की 'दान' कविता में भिखारी के प्रति करुणा और पाखंडी भक्त के प्रति व्यंग्य का सामञ्जस्य है। 'सरोज स्मृति' में एक ओर दुख की करुण अभिव्यंजना है, दूसरी ओर कविता वापस करने वाले सम्पादकों और 'कान्यकुब्ज-कुल-कुलाङ्गार', समाज के ठेकेदारो के प्रति आक्रोश और व्यंग्य है। दोनों में सामंजस्य इसलिए है कि जो आक्रोश के पात्र हैं, वही अंशतः दुख के कारण भी हैं।

जब आदमी बहुत दुःखी होता है, तो कम बोलता है, चुप हो जाता है, कभी-कभी हँसने भी लगता है। ज्यादा क्रोध में वह कभी बात सीधी न कहकर व्यंग्य का सहारा लेता है। निराला-साहित्य मे हास्य-व्यंग्य के ये सब रूप मौजूद हैं। **अनामिका** में एक कविता है 'सच है'। विरोधियो की निंदा सुनते-सुनते निराला परेशान हो गए हैं, हृदय में जितना क्रोध है, उतना ही दुख है। खुलकर नही हँसते; क्रोध और शोक को दबाते है और यह दबाव अन्तर्मुखी व्यंग्य के रूप में प्रकट होता है, अन्तर्मुखी इसलिए कि वह आक्रामक होकर व्यंग्य का प्रयोग नही करते, रक्षात्मक उद्देश्य से विरोधियों की कही हुई बात, नई भंगिमा से दोहराते हुए, उसकी व्यर्थता सिद्ध करते हैं।

यह सच है—
तुमने जो दिया दान दान वह,
हिंदी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन-ताका ज्ञान वह,

सच्चा कल्याण वह अथच है—
यह सच है। (पृ. ४४)

यहाँ निराला काल्पनिक इच्छापूर्ति का सहारा न लेकर, साहित्य के लिए, अपमान के अनुभव का कलात्मक उपयोग करते है। 'वनवेला' में अपमान का यही भाव आक्रामक रूप मे व्यक्त होता है, बहिर्मुख व्यंग्य राजनीतिक और साहित्यिक मंच पर तरह-तरह के अभिनय करने वालों को वेध डालता है। प्रयत्न अब भी यही है कि किसी से कुछ न कहें, चुपचाप प्रहार सहते हुए अपने रास्ते आगे बढते जायं। वनवेला उनके आक्रोश प्रकट करने के ढंग से प्रसन्न नही है। वह उनके स्पर्श को अपवित्र कहती है क्योंकि उन्होने अपनी स्थिति की अवहेलना की है।

निराला जितना ही अपने मन का भाव दबाते है, उतना ही वह कूट शैली के नजदीक पहुँचते है। गीतिका में 'नूपुर चरण रणन' वाली शैली छोडकर कहते है,

चलता तू, थकता तू,
रुक-रुक फिर बकता तू,
कमजोरी दुनिया हो, तो
कह क्या सकता तू ?
जो धुला उसे धो क्यों ?
रे, कुछ न हुआ, तो क्या ?
जग धोका, तो रो क्या ? (पृ. ५२)

देखने में लगता है, निराला संसार के मिथ्या और सत्य होने की बात कह रहे है लेकिन चलने, थकने और रुक-रुककर बकने में एक संघर्षरत, थके हुए मनुष्य—स्वयं निराला—का चित्र है, यह आवागमन की सुपरिचित पीड़ा नही है। दुनिया ही ऐसी है, मनुष्य का मूल्य नही समझती, तब उससे लड़कर आदमी क्या फल पाएगा ? थकान, उदासी, बेबसी; इनके साथ संसार के प्रति एक व्यंग्यपूर्ण उपेक्षा का भाव। यह कूट शैली नही है लेकिन उसके बहुत पास—निराला के स्वतः संभाषण की—शैली है।

अणिमा मे कई कविताएँ ऐसी हैं जिनमे निराला ने अपने कूट शैली वाले व्यंग्य का उपयोग किया है। प्रभात और ज्ञान एक ही पाठशाला में पढे हुए दो साथी हैं। प्रभात नाम से ही प्रकाश की सूचना मिलती है किन्तु जीवन का अनुभव ऐसा है कि प्रकाश के बदले अँधेरा ज्यादा दिखाई देता है। प्रभात के लिए निराला कहते हैं,

राह बचाता चला, गठी फिर भी
चड्ढी, हो गई उछाह से अनबन।

अनेक उपन्यासों और कहानियों में जो प्रभाकर, दिवाकर आदि नाम धारण किये हुए युवक अवतरित होते है, वही निराला यहाँ प्रभात हैं। ज्ञान से कहते है, तेरा साथ मिलने पर और कुछ न चाहिए। वह ज्ञान वेदान्त ज्ञान है।

कहा ज्ञान ने, 'फिर तू कैसा प्रभात,
अगर हटाई न हटी वैसी रात ?'

निराला का दुख उनके वेदान्त ज्ञान के लिए चुनौती है। वह कभी ज्ञान को देखते हैं, कभी दुख को, कभी खुद अपने को। आदमी राह बचाता चले, फिर भी कोई आकर चढ़ी गाँठ ले, यह परिस्थिति की विडंबना है। 'कला के विरह में जोशी-बन्धु' लेख मे निराला ने इस परिस्थिति का चित्रण यो किया था, "कभी सोचा था, दलबंदी के दलदल मे न फँसूँगा, मार का जवाब प्यार से दूँगा; परंतु 'आपन चेती होय नहि, हरि-चेती तत्काल' की आफत का पहाड़ हरि की इच्छा से मुझी पर टूटा।"

दलबंदी के दलदल से दूर रहने का भाव—**अणिमा** के 'राह बचाता चला' मे; आफत का पहाड़ मुझी पर टूटा—यह भाव नई प्रतीक योजना के साथ यो व्यक्त हुआ—'गठी फिर भी चढ़ी'। निबंध के पैराग्राफ में आगे जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यहाँ दे दिया है—**हो गई उछाह से अनबन**। निबंध मे निराला दूसरों पर ज़्यादा हँस रहे है; अपनी मुसीबत पर हँसते है तो उसमे करुणा का भाव कम है। कविता में करुणा का भाव सघन है; ज्ञान और प्रभात की बातचीत मे अपनी दशा पर व्यंग्यपूर्ण मुसकान है। निबंध मे प्रसार है, व्यंग्य बहिर्मुख है। कविता में प्रसार की जगह संकोच, बहिर्मुख की जगह व्यंग्य अन्तर्मुखी है। इस तरह निराला की कूट शैली का विकास होता है जिसमे करुणा और हास्य का सामंजस्य है। **अगर हटाई न हटी वैसी रात** मे एक चुनौती, संघर्ष के लिए आह्वान भी है।

अणिमा की उपर्युक्त कविता मे जैसे ज्ञान और प्रभात है, वैसे ही 'यह है बाजार' कविता मे दुखिया और सुखिया है। दुखिया पति है, सुखिया उसकी ब्याहता नही, बैठाई हुई स्त्री है। सुखिया की बहुत-सी फर्माइशें है; वह उन्हे पूरी नही करना चाहता, फिर भी बेबस होकर बाज़ार चलने को तैयार होता है :

चलने को हुआ जैसे बड़ा समझदार।

सुखिया के दंद-फंद में फँसकर दुखिया कैसे अपना नाम सार्थक करता है, इस पर व्यंग्यपूर्ण हँसी, साथ ही दुखिया के प्रति सहानुभूति।

दुनिया मे दीन, ईमान, कविता, कला, नाते, रिश्ते—सब कही-न-कही अर्थ की डोर से बँधे है। मनुष्य अपने को विशुद्ध धर्मात्मा समझता है, अपने कलाकार होने का दंभ करता है, निराला इस परिस्थिति पर हँसते है किंतु हँसी बहुत संयत है क्योकि मनुष्य की विवशता—उसके ज्ञान की सीमाएँ देखकर—उनके मन में कही अवसाद का भाव भी उत्पन्न होता है :

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
लोग है, महफिल है,
नग़मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,

शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है।   (अणिमा, पृ. १०३)

शैली **कुकुरमुत्ता** की याद दिलाती है।

दुनिया से लड़ाई, वचकर निकल जाने के दाँव-पेच, फिर भी सिद्धान्तो के मामले मे समझौता न करने का संकल्प; 'सरोज स्मृति' मे जिस शरक्षेप और रण-कौशल का चित्रण उन्होंने स्पष्ट विवरणात्मक शैली मे किया था, वेला मे उसी का चित्रण अव आत्म-संभाषण वाली कूट शैली में करते है :

हाथ वचा जा, कटने से माथ वचा जा,
अपने को सदा लचा जा;
सोच न कर मिला अगर कोना। साथ न होना। (पृ. २८)

भय, सतर्कता, संकल्प, व्यंग्यपूर्ण परिस्थिति का वोध—सव वहुत ही संक्षिप्त रूप मे—एक साथ। करुणा का भाव प्रवल हो रहा है, हास्य की ध्वनि उसमे डूव-सी गई है।

आने जाने से पहले, कैसे तुम दहले ? (वेला, पृ. ५२); **सारे दावपेच खुले पेचीदगी आने पर** (उप., पृ. ६६); **मुहोमुह रहे, एक पेड़ पर दो डालो के काँटे जैसे** (नये पत्ते, पृ. २७); **तवला दोनों हाथ आया हथियार** (उप., पृ. ३३); **दीठ वँधी, अँधेरा उजाला हुआ, सेंधों का ढेला, शकरपाला हुआ** (उप., पृ. ३६) आदि कविताओ मे हँसी कही ज्यादा खुली हुई, कही करुणा मे डूवी हुई, वात करने का ढंग वही कूट शैली का, चित्रण का विषय निराला और वाहर की दुनिया का सम्वन्ध।

अर्चना मे एक गीत है :

वन जाय भले शुक की उक से,
सुख की दुख से अवनी न वनी।   (पृ. ६)

वही सुखिया और दुखिया की आपसी अनवन की तसवीर है। इस अनवन पर निराला की हँसी शव्दार्थ से नहीं, शव्दो की ध्वनि से व्यक्त होती है, यथा—

कटती पटती पट जाय तही,
तन की मन से तनती न तनी।

करुणा और हास्य का मिश्रण **अर्चना** की कुछ अन्य कविताओ मे है, **छोड़ दो, न छोड़ो टेढ़े** (पृ. ६७); **गवना न करा, खाली पैरों रस्ता न चला** (पृ. ८४); **चंग चढ़ी थी हमारी, तुम्हारी डोर न टूटी,** (पृ. २२) इत्यादि।

इन कविताओ मे स्वतः संभाषण की शैली है। निराला कभी-कभी व्रह्म या माया से इसी शैली मे वातें करते है मानो उन्हें इसकी चिन्ता न हो कि व्रह्म उनकी वात समझता है या नही अथवा व्रह्म को साधारण पाठक से ज्यादा समझदार मानते हों, जो वात दूसरे नही समझते, उसे वह समझ लेगा, ऐसा सोचते हो। ज्ञान की गरिमा अथवा भक्ति के आवेश के वदले यहाँ विडंवनापूर्ण परिस्थिति का वोध है। **गीतगुंज** मे—

बुझी दिल की लगी न मेरी
तो क्या तेरी वात वनी।
चली कोई न चलाई चाल
तो क्या तेरी घात वनी। (पृ. २८)

आराधना के गंभीर गीतों के वीच कहीं कवीर की-सी उलटवाँसी,

ऊँट वैल का साथ हुआ है।
कुत्ता पकड़े हुए जुआ है। (पृ. ७२)
मानव जहाँ वैल घोड़ा है,
कैसा तन मन का जोड़ा है? (पृ. ७३)

कहीं शब्दों के साथ खिलवाड़ जो परिस्थिति पर उनकी व्यंग्यपूर्ण हँसी का सूचक है :

हलके-हलके हल के न हुए,
दलके-दलके दलके न हुए,
उफले-उफले फल के न हुए,
वेदाने थे तो दाने क्या? (पृ. ३०)

कभी-कभी शब्दों के साथ यह खिलवाड़ मन का उल्लास प्रकट करता है जैसे **सान्ध्यकाकली** की 'ताक कम सिनवारि' अथवा 'वारि वन वनवारि' रचनाओं में किन्तु **अणिमा** से **आराधना** तक की कविताओं में इस तरह की शब्द-क्रीड़ा सामान्यतः व्यंग्यपूर्ण हँसी की सूचना देती है और यह हँसी न्यूनाधिक मात्रा मे करुणा-मिश्रित होती है।

'देवी' कहानी में निराला खुद पर, समाज पर हँसते हैं, साथ ही पगली भिखारिन और उसके वच्चे के प्रति मन में गहरी ममता और करुणा का भाव है। 'चतुरी चमार' मे निराला दुनिया पर, दो-चार जगह चतुरी पर हँसते है, साथ ही चतुरी और उसके परिवार के प्रति उनके मन में गहरा प्यार है, चतुरी के संघर्ष के प्रति आदर और प्रशंसा का भाव है। 'राजा साहव को ठेंगा दिखाया' मे वैभव के वे सव उपकरण हैं जिन्हे देखकर निराला अपने दिवास्वप्नों का जाल वुनते थे; किन्तु यहाँ उन्हें ठुकराकर वह भूखे विश्वंभर पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। ठेंगा दिखाने में जितनी हँसी है, उससे ज्यादा विश्वंभर के प्रति करुणा और राजा के प्रति आक्रोश है।

कुल्लीभाट और **विल्लेसुर वकरिहा** मे हँसी के फव्वारे छूटते हैं किन्तु हँसी की चकाचौंध के नीचे वेदना का काला अँधेरा है। **कुल्लीभाट** मे ही निराला ने ससुराल-यात्रा के रोचक प्रसंगों के साथ जीवन के सवसे दुखद अनुभवो का वर्णन किया है। दर्शनशास्त्र, वेदान्त, व्रह्मज्ञान की कसौटी है दुख। रहस्यवादी कवि संसार को ज्ञान और प्रकाश से जगमगाता देखते है। निराला का विचार है कि उन्हें भी ज्योति दिखाई दी थी। महिषादल में साधु के मिलने की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा, "मुझे ज्योति भी दिखी। पहले 'जुही की कली' लिखते वक्त दिखी थी, तव नही

समझा था। अबके एक साधु ने पहचान करा दी।" (पृ. ७७-७८)

यह ज्योति-दर्शन सत्य है या प्रवंचना ?

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने यह ज्योति देखी थी; निराला उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे ? कुल्लीभाट लिखते समय निराला के मन में इस ज्योति-दर्शन के प्रति अब भी मोह है, साथ ही रवीन्द्रनाथ की और अपनी परिस्थितियों के भेद पर ध्यान देते हुए वह ज्योति-दर्शन पर हँसते भी है। गर्मी की लू झेलते हुए ससुराल-यात्रा के पहले दौर में वह गाँव से स्टेशन जा रहे है।

'वाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोंका आया कि एक साथ कुंडलिनी जैसे जग गई, जैसे वर-पुत्र पर पडी सरस्वती की कृपा-दृष्टि की तारीफ मे रवि वावू ने लिखा है—एके बारे सकल पर्दे घुचिए दाओ तारे। (एक साथ ही उसके कुल पर्दे हटा देती हो।) वह प्रकाश दिखा कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है; रवि वावू को आराम-कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड़ पर, मुझे गलियारे मे, लू विरोध करती हुई कह रही थी—"अब ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।" (पृ. २८)

कुंडलिनी, योग, सहस्रार, वर पुत्र पर सरस्वती की दृष्टि, चारों ओर ज्ञान और आनन्द का प्रकाश, रहस्यवादी कवियो की 'एक्सटैसी', आनन्द में विह्वल होकर उन्मत्त की-सी दशा—निराला सब पर हँसते है। सामने है लू; पत्नी और परिवार के अन्य जनो की मृत्यु की स्मृति। वह प्रकाश दिखा कि मोह दूर हो गया। काहे का मोह दूर हुआ ? संसार का मोह या ज्योतिदर्शन का मोह ?

पत्नी की मृत्यु के वाद निराला गंगा किनारे बैठे थे। कुल्ली ने आकर कहा, "मैं जानता हूँ, आप मनोहरा को वहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की ही जगह मार देता है, होश कराने के लिए।" (उप., पृ. ७२)

होश आने पर आदमी क्या देखता है ? दुख या आनन्द का प्रकाश ? वेहोशी किस वात मे है, दुख को भूलने मे या उसके प्रति सजग रहने मे ? यदि दुख को भूलना होश की निशानी है तो ईश्वर चाह की जगह मार क्यों देता है ? मार से आदमी दुख पाता है, दुख की चेतना उसे अपने और संसार के प्रति सजग करती है, आनन्द के सागर में डूबने-उतराने के सपने चूर-चूर हो जाते हैं। कुल्लीभाट में निराला अपना दुख देखते है, कुल्ली और अछूत वालको का दुख देखते है, यही सच्चा ज्ञान है।

विल्लेसुर के लिए निराला ने लिखा' : 'दु:ख का मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को वार-वार चुनौती दे चुके थे। कभी हार नही खाई।" (विल्लेसुर वकरिहा, पृ ४७)

अपने जीवन मे यह काम निराला ने भी किया। आत्म-प्रवंचना का रूप कोई हो—चाहे आदमी वड़प्पन के सपने देखे, चाहे ज्ञान और प्रकाश के सागर मे डूबे—उससे मुक्त होने पर ही मन मे यह ताकत पैदा होती है कि दुख की डरावनी सूरत को वह साहस से देखे, उसे चुनौती दे, उससे हारे नही। निराला ने इस तरह के

अनुभव अपनी कविता में वयान किए हैं। उनकी यह दुःखानुभूति उनके ज्योतिदर्शन से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

संघर्ष

निराला दुख, संघर्ष और मृत्यु के कवि है। **जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा**— सन् '२१ में इस कविता से लेकर सन् '६१ मे **पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है** तक निराला-काव्य में दुख, संघर्ष और मृत्यु का यह क्रम वरावर चलता रहा है।

मनुष्य और उसके परिवेश का अन्तर्विरोध दुख का मूल कारण है। इस अन्तर्विरोध का जो स्तर होगा, उससे मिलता-जुलता दुख का स्तर होगा। अन्तर्विरोध सह्य और सामान्य है तो दुख भी सह्य और सामान्य होना चाहिए। किन्तु *क्या* सह्य है, *क्या* असह्य; यह सहने वाले मन पर भी निर्भर है। मनुष्य और परिवेश का अन्तर्विरोध कितना तीव्र है, यह परिवेश की वस्तुगत विशेषताओं के अलावा तीव्रता अनुभव करनेवाले मन की आत्मगत विशेषताओं पर निर्भर है। निराला का मन साधारण शक्ति वाला औसत मन नहीं है; उसमें सृजनशीलता की अपार क्षमता और कष्ट सहने मे अद्भुत दृढ़ता है। जिस परिवेश से वह टकराते है, वह भी अपनी जगह से टस से मस होने वाला नहीं, विराट् और व्यापक होने के साथ वह आक्रामक भी है।

'देवी' कहानी में निराला ने अपने और परिवेश के अन्तर्विरोध का वहुत स्पष्ट चित्रण किया है। जो निराला के लिए जीवन है, वह औरों के लिए मृत्यु है। 'इसीलिए मेरी कद्र नही हुई। मुझे वरावर पेट के लाले रहे।' इन दो छोटे से वाक्यों में निराला ने अपने दुख के दो मुख्य कारणो का उल्लेख कर दिया है। कद्र न होना, साहित्य का तिरस्कार, समाज और साहित्य में उनका विरोध —यह एक कारण है। इस विरोध का एक भौतिक परिणाम यह निकलता है कि कवि के जीवन में साधारण सुख-सुविधाओं का अभाव रहा। अन्तर्विरोध का एक पहलू आर्थिक है। साहित्य की दुनिया में रहनेवाले कलाकार को रोटी-कपड़े जैसी क्षुद्र वस्तुओं की चिन्ता न हो, ऐसी वात नही है। 'सरोज स्मृति' मे उसी अन्तर्विरोध का चित्रण करते हुए निराला ने पुनः आर्थिक पक्ष पर वल दिया है :

> धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
> कुछ भी तेरे हित न कर सका।

जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मै स्वार्थ समर।
शुचिते, पहना कर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न:
अपने आँसुओं अतः विवित
देखे है अपने ही मुख-चित।
सोचा है नत हो वार-वार—
यह हिन्दी का स्नेहोपहार··· (अनामिका, पृ. ११९)

यहाँ निराला ने अन्तर्विरोध के आर्थिक पक्ष पर वल देते हुए उसे हिन्दी में अपने साहित्य के विरोध से जोड़ दिया है। पक्ष दो है—आर्थिक और सांस्कृतिक; उनसे निर्मित इकाई है—निराला का परिवेश।

'देवी' कहानी मे निराला ने परिवेश से अपने सम्वन्धों के वारे में लिखा है कि वह अपनी समझ मे साहित्य को नरक से स्वर्ग वना रहे थे, "इसलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गई; अव मौत से जैसे दूसरी दुनिया में जाकर मै उसे लाश की तरह देखता होऊँ।" निराला से जो दुनिया दूर होती गई, वह उनका परिवेश है; वह दुनिया दूर होने के अलावा निराला के लिए मर भी चुकी है। पूँजीवादी-सामन्ती समाज-व्यवस्था मे कलाकार के मन मे आत्मनिर्वासन और अकेलेपन की भावना इस तरह व्यक्ति और व्यवस्था की टक्कर से, जर्जर रूढियो और नये मूल्यो के संघर्ष से उत्पन्न होती है।

निराला ने लिखा—"अव मौत से जैसे दूसरी दुनिया में जाकर"। परिवेश की अपनी दुनिया है, निराला की अपनी दुनिया। निराला के लिए परिवेश मृत है तो परिवेश के लिए निराला मृत है। निराला और उन जैसो को मृत मानकर उनका मास नोच-नोच कर जिन्होंने खाया है और अपनी दुनिया आवाद की है, वे परिवेश के संरक्षक और कर्णधार है। निराला इनके वारे में कहते है, " 'दूवर होत नहीं कवहूँ पकवान के विप्र, मसान के कूकर' की सार्थकता मैंने दूसरे मित्रो में देखी, जिनकी निगाह दूसरों की दुनिया की लाश पर थी। वे पहले फटीचर थे, पर अब अमीर वन गए है, दो-मंजिला मकान खड़ा कर लिया है, मोटर पर सैर करते है। मुझे देखते है, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरों मे कहते है—'हाँ, अच्छा आदमी है; जरा सनकी है।' फिर वड़े गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते है।"

'देवी' मे, 'राम की शक्तिपूजा' मे निराला यह हँसी वरावर सुनते है, कही गहरे पैठकर मित्र हँसते है, कही अन्धकार में रावण का अट्टहास गूँज उठता है।

'देवी' और 'सरोज स्मृति' में निराला ने जिस तरह विस्तार से परिवेश का चित्रण किया है, उस तरह अन्यत्र नहीं किया किन्तु कहीं सूक्ष्म, कही कुछ अधिक विस्तृत रूप में, वह परिवेश मौजूद अवश्य है। इस परिवेश से निराला की टक्कर उनके दुख का मूल कारण है।

परिमल में ऐसी रचनाएँ काफी हैं जिनमें वसंत और यौवन की विदाई पर, अपने अथवा देश के सुखद अतीत के बीत जाने पर, जीवन में प्रेम की विफलता अथवा अस्थिरता पर खेद प्रकट किया गया है। यह खेद शोक नही बन पाया क्योंकि जिस अन्तर्विरोध से वह उत्पन्न हुआ है, उसका स्तर साधारण है। दीन और भिक्षुक के प्रति निराला की करुणा का स्तर जैसे भावुकता का है, वैसे ही प्रणय-सौन्दर्य की अस्थिरता-विफलता को लेकर उनके खेद का स्तर भी भावुकता का है।

जैसे खेद और शोक—इन दो शब्दो के अर्थ में भेद है, वैसे ही अंग्रेज़ी के ट्रैजिक और पैथेटिक—इन दो शब्दों के अर्थ में भेद है। दुख से सम्बन्ध दोनों का है किन्तु जो पैथेटिक है, वह ट्रैजिक नही। काव्य की श्रेष्ठता उसके ट्रैजिक होने मे है, पैथेटिक होने में नही। जहाँ संघर्ष है, परिवेश का विरोध सशक्त है, उससे टक्कर लेने वाले व्यक्ति का मनोबल दृढ़ है, वहाँ उदात्त स्तर पर मानव-करुणा व्यक्त होती है। वही ट्रैजेडी है। शेष सब पैथेटिक है।

'यमुना के प्रति' कविता में आकाश-वीणा को झंकारने वाले देवदूतो के गीत सुनकर निराला यमुना से पूछते हैं :

बता, बता, अपने अतीत के
क्या तू भी गाती है गान ?

यह स्तर भावुकता का है। परिमल की 'आदान-प्रदान' कविता में अपने अतीत का स्मरण करते हुए निराला गीत गाते हैं और पूछते है :

कठिन शृंखला बजा-बजाकर
गाता हूँ अतीत के गान,
मुझ भूले पर उस अतीत का
क्या ऐसा ही होगा ध्यान ? (पृ. ९२)

यह स्तर ट्रैजेडी का है। शृंखला के बजने से कवि के प्रतिरोध, असामान्य विरोधी परिस्थिति में भी उसके गीत गाते रहने की क्षमता का ज्ञान होता है। वर्तमान उसके लिए कारागार के समान है; उस स्थिति में वह सुखद अतीत का स्मरण करता है। दृढ़ मनोबल और धैर्य से परिवेश का सक्रिय विरोध करने पर ट्रैजेडी के स्वर फूटते है। इस विरोध में दुख सहते हुए मनुष्य यदि विजयी होता है तो, यूनानी नाट्य परंपरा के अनुसार, वह भी ट्रैजेडी है; यदि वह परास्त होता है, भीतर से टूटता है, तो वह भी ट्रैजेडी है। प्रश्न यह है कि टूटने वाला मन कितना समर्थ था; जिन परिस्थितियो के दबाव से टूटा है, उनमें कितनी ताकत थी।

जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा—दिल हिल उठता है, कड़ी मारों से। निराला का आदर्श है वह वीर जो चारों ओर से प्रहार सहता हुआ चुपचाप अपने

मार्ग पर चला जाता है। उन्हें दृढ़ विश्वास है कि उसे सिद्धि प्राप्त होगी; अपने बारे में भी सोचते हैं कि उन्हें इसी प्रकार सिद्धि मिलेगी अथवा मिल चुकी है। 'अध्यात्म फल' में कड़ी मारें पड़ी पर चूं भी न कर पाए। तो भी मुक्ति की युक्ति से मिलकर भाव खिल गया। 'विफल वासना' (परिमल, पृ. १३९) में जो पुष्प 'प्रकृति के निर्दय आघातों से' छिन्न हो जाते हैं, वे कुछ कहते नहीं, रोकर रह जाते हैं। कवि (उप., पृ. १७९) 'निर्मम' संसार के सहस्रों वार झेलता है, अपने मुख से मुंह मोड़कर दूसरों को जीवन देता है।

हे महान् ! सोचते हो दुःख-मुक्ति,
शक्ति नवजीवन की ।

शक्ति-साधना और दुख से मुक्ति के संघर्ष का यह सम्बन्ध है।

कवि और क्रांतिकारी योद्धा का एक प्रतीक है निर्झर। इसमें और बादल वाले प्रतीक में अन्तर यह है कि विरोधी शक्तियां निर्झर के लिए बहुत प्रबल हैं, सफलता के लिए उसे विकट संघर्ष करना पड़ता है। 'स्वागत' कविता (पृ. १०४) में निराला कहते हैं :

कितने ही विघ्नों का जाल
जटिल, अगम, विस्तृत पथ पर विकराल;
कंटक, कर्दम, भय-श्रम निर्मम कितने शूल...

सांकेतिक ढंग से यहाँ परिवेश का बोध कराया गया है; कांटों और कीचड़ से भरी हुई राह भयप्रद है। रास्ते में वन्य पशु और हिंस्र निशाचर हैं, ऊपर से उपल-वृष्टि होती है, ग्रीष्म का ताप और जाड़े की ठिठुरन सहनी होती है। किंतु निर्झर अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहता है; मेहनत से घबराता नहीं है, मेहनत करता है और उसे सफलता मिलती है। कवि की तरह यह निर्झर भी दूसरों को नवजीवन देता है। परिवेश की कटुता और संघर्ष की तीव्रता का चित्रण यहाँ भावबोध के जिस स्तर का परिचय देता है, वह ट्रैजेडी का उदात्त स्तर है। वनवेला पर इसी तरह जब ऊपर से प्रखर उपल-प्रहार होता है, तब वह अपने वृन्त पर नाचती है। वृन्त पर खिलने से पहले संसार का ताप-त्रास ढोती हुई 'कर्म जीवन के दुस्तर क्लेश' भेद कर ऊपर उठती है। नर्गिस—वनवेला की तरह—वंदनीय है क्योंकि वह धरती के भीतर का अंधकार पार करती हुई आकाश की ओर उठी है।

निराला अपनी सिद्धि का चित्र खींचते हैं :

प्रात तव द्वार पर,
आया, जननि, नैश अंध पथ पार कर। (गीतिका, पृ. १००)

निर्झर के रास्ते में जो कांटे थे, वे यहाँ भी हैं। उनसे लाभ यह हुआ कि कवि सोया नहीं; जागता रहा। विपत्ति के प्रति सजग होने का भाव; जो दुख मिला, उससे नया आत्मबोध, संसार के प्रति जागरूकता। उपल यहाँ भी हैं किन्तु ऊपर से नहीं गिरे, वे पैरों मे लगते हैं। धैर्यवान् आत्मविश्वासी कवि को वे उत्पल जैसे लगते हैं। 'स्वागत' कविता मे निर्झर को हिंस्र निशाचर परेशान करते थे; गीतिका मे

उनकी उपेक्षा करते हुए निराला ने लिखा—

समझ क्या वे सकेंगे भीरु मलिन-मन,
निशाचर तेजहत रहे जो वन्य जन। (पृ. १००)

ये सब उसी परिवेश के प्रतिनिधि है जिससे निराला जूझ रहे हैं। यह जूझना भी दो तरह का है। एक जूझना वह जिसमे कवि चुपचाप मार खा लेता है, प्रहारों को अपनी सहनशीलता से व्यर्थ कर देता है, शत्रु को उत्तर अपनी कलात्मक सृजनशीलता से देता है। दूसरा जूझना वह जिसमें उलटकर वह शत्रु-दल पर आक्रमण करता है।

उच्च नैतिक आदर्श निराला को प्रेरित करते है कि वह पहले ढंग से ही जूझें। 'वनवेला' में वह परिवेश की तीखी आलोचना करते है, फिर अपने भाव-विस्फोट पर स्वयं लज्जित होते हैं। निराला अपने भावों को दवाने में सफल नही हो रहे है, नियंत्रण की सीमा तोड़कर भावोद्गार उन्हें व्यथित करते हैं—यह स्थिति वनवेला की वर्जना से स्पष्ट होती है।

भावों को दवाना कितना कठिन है! जाग्रत अवस्था में आदमी उन्हें दवाये भी रहे, स्वप्न में दमन का वाँध टूटने पर आँसू उमड़ ही आएँगे, निराला इस सारी प्रक्रिया से भली-भाँति परिचित हैं। परिमल में एक कविता है 'स्वप्न-स्मृति' जो यों शुरू होती है :

आँख लगी थी पल-भर,
देखा, नेत्र छलछलाए दो। (पृ. १३४)

लता से टूटे हुए फूलों की तरह, कवि की नैतिक भावना को ठुकराकर सोते समय जव उसका मन वेवस है, तव आँखो में आँसू छलछला आते है। तुरन्त जागकर कवि अपना मन टटोलता है, जानना चाहता है, उसकी इच्छा के विपरीत आँखों में आँसू आ कैसे गए। मन के भीतर उसे जो दिखाई देता है, उससे वाहर—नैतिक मन के संकल्प—की तुलना करते हुए लिखा है :

भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,
वाहर अचल धैर्य था उनके उस दुखमय जीवन का;
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिन्धु-अनल की
वाहर थी दो वूंदें—पर थी शान्त भाव में निश्चल—
विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थल की।

भीतर दमन, वाहर धैर्य; भीतर अग्नि, वाहर जल; भीतर जलधि की विकलता, वाहर निश्चल शान्त भाव। निराला आँसुओ के धैर्य और शान्त भाव के वारे मे जो कुछ कहते है, वह उनके मन की नैतिक भावना व्यक्त करता है। जिसे वह दवा रहे हैं, वह मन की विकलता है जो मर्यादा लाँघकर आँखों में आँसू वन गई है।

भावो को दवाए रहने के विकट प्रयत्न के वाद आँखों मे जो आँसू आए हैं, वे भावुकता के प्रमाण नहीं, वे घनीभूत शोक की व्यंजना हैं। 'राम की शक्तिपूजा' मे राम धैर्य के अवतार है। आकाश और सागर सव-कुछ चंचल और क्षुब्ध है,

केवल राम पर्वत की तरह उस अंधकार में अपनी जगह स्थिर हैं। उन राम के पराजित मन से उमडते हुए दो आँसू आँखों से नीचे गिर पड़ते हैं। राम की आँखों मे आँसू आना कैसी असाधारण घटना है, इसकी ओर हनुमान की प्रतिक्रिया से कवि ने सकेत किया है,

ये अश्रु राम के आते ही मन मे विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार।

जो मन भीतर से टूट रहा है, वह कितना धैर्यशाली था, यह शक्ति सागर के उद्वेल होने से प्रकट हुआ। इससे तुलनीय है 'सरोज-स्मृति' में निराला के अपने आँसुओं की ओर संकेत :

अपने आँसुओं अंतः विंवित
देखे है अपने ही मुख-चित।

ये उस व्यक्ति के आँसू है जिसने लिखा था;

खंडित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक—

जिसकी कामना है कि वह अपनी सारी पराजय हिन्दी का स्नेहोपहार मानकर चुपचाप स्वीकार कर ले। इलाहाबाद के रास्ते पर पत्थर तोड़ती हुई मज़दूर स्त्री की आँखों मे उन्होने वह मनोबल देखा जो स्वयं उनके पास न था,

देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नही। (अना., पृ. ८०)

मार खाए और रोए नही, निराला का आदर्श यह है।

नत नयनों में स्थिर दो वल
अविचल उर—(परिमल, पृ. ३४)—यह आदर्श।

गीतिका में जहाँ कहते है, **भक्ति-नत-नयन मै चलूँ अविरत सबल** (पृ. ९७), वहाँ उसी आत्म-नियंत्रण के आदर्श के प्रति उनकी श्रद्धा व्यक्त हुई है। **दे मै करूँ वरण**—गीतिका का यह गीत, **वनवेला, तुलसीदास सरोज-स्मृति, राम की शक्ति-पूजा**—इन सभी रचनाओ में एक तत्त्व सामान्य है, मन को नियंत्रित करने का प्रयास। किन्तु मन को नियंत्रित रखने का अर्थ हमेशा चुपचाप मार खाना नही होता। राम की शक्ति-साधना रावण को परास्त करने के लिए है।

'सरोज-स्मृति', 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा'—इन तीनों कविताओं में युद्ध का वर्णन है। 'सरोज-स्मृति' में एक 'स्वार्थ समर' है जिसमें कवि हारता है, जिसमें विजयी होना वह वहुत सम्मानप्रद नहीं समझता। दूसरा युद्ध साहित्यिक है जिसमें चारो ओर से प्रहार होते है और निराला अपने को महारथी के समान घिरा हुआ पाते है। इस युद्ध मे वह दूसरो का शरक्षेप और रणकौशल देखते भर है, स्वयं प्रहार नही करते। किन्तु 'राम की शक्तिपूजा' में राम बार-बार प्रहार करते है और उनका प्रयास व्यर्थ जाता है। फिर प्रहार की तैयारी के लिए वह दुर्गा की पूजा करते है।

प्रत्येक कविता में निराला कल्पना करते है कि युद्ध बंद हो गया है, अब शायद शान्ति का समय आएगा। किंतु वह समय आता नही है। 'तुलसीदास' में बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा ठाना हुआ युद्ध समाप्त हो गया; धरती स्वच्छ हुई, आकाश खिल गया लेकिन तुलसीदास अब दूसरे युद्ध की तैयारी में हैं। वह अपने संस्कारो पर विजयी होकर मन साधते है और मन को साधने का अर्थ है, विचार-भूमि पर देवताओं और असुरो का युद्ध। गीतिका में निराला ने जिन तेजहत निशाचरों की उपेक्षा की थी, वे 'तुलसीदास' में उपेक्षा के नही, दंड के पात्र हैं।

होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर···
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल मायाकर।

ईश—राम—एक ओर; मायाकर—निशाचर—दूसरी ओर। कविता के आरंभ में एक युद्ध समाप्त हुआ, उसके अंत में दूसरा युद्ध आरंभ हुआ।

'सरोज-स्मृति' में उन्होने कल्पना की, युद्ध का चीत्कार समाप्त हुआ; उनकी साधना सफल हुई यद्यपि धन-सम्मान की दृष्टि से वह परास्त हुए। कविता में प्रहार सहने के अलावा कविता वापस करने वाले संपादकों से लेकर कान्यकुब्ज कुलांकारों तक शत्रुदल पर उन्होंने अनेक वार किए। ये वार व्यर्थ हुए, ऐसा भाव कविता मे नही है। 'राम की शक्तिपूजा' के आरंभ में युद्ध समाप्त हुआ; राम सारी स्थिति का विहंगावलोकन करते हुए शक्तिपूजा द्वारा दूसरे युद्ध के लिए तैयार होते है। 'तुलसीदास' के अन्त में असुरों पर देवताओ की विजय का मधुर स्वप्न है। काफी विश्वास से, आत्म-विश्वास और प्रसन्नता के साथ निराला यह स्वप्न चित्रित करते है किन्तु 'राम की शक्तिपूजा' मे ऐसा उल्लास या आत्म-विश्वास कही चित्रित नही है। शक्ति राम के वदन मे लीन हुई और कथा समाप्त।

राम के विरोधी निशाचर परास्त हो जाएँगे, यह आत्मविश्वास डिगने-सा लगा था। इस विश्वास का स्थान एक नियतिवाद लेता जाता है जिससे मनुष्य टकराता है, घेरा तोड़ नही पाता, सिर थामकर बैठ जाता है। 'सरोज-स्मृति' मे एक ओर भाग्य के अंक खंडित करने का इरादा है, भविष्य के प्रति अशंक दृष्टि है, दूसरी ओर कविता के अंत मे, भाग्य द्वारा स्वयं खंडित होने, अपनी अशंक दृष्टि की तुलना में अदृष्ट के अधिक शक्तिशाली होने का चित्र है :

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हो भ्रष्ट शीत के से शतदल !

कर्मशील मनुष्य और नियति का कभी न समाप्त होनेवाला संघर्ष। मनुष्य कर्म द्वारा इस नियति को बलपूर्वक मोड़कर उसे अपने अनुकूल बनाना चाहता है किन्तु मुड़ने के बदले नियति खुद उसे भीतर से तोड़ देती है। कवि-कर्म पर वज्रपात हो, यह रास्ते में माथा पकड़कर बैठ जाने की स्थिति है। शीत के शतदल की तरह

कर्मो का भ्रष्ट होना मनुष्य की पराजय, नियति की विजय है।

'सरोज-स्मृति' को पढ़ने से लगेगा कि यह पराजय का भाव विशेष परिस्थितियां मे कन्या की मृत्यु से उत्पन्न हुआ है। कन्या की मृत्यु एक ऐसी घटना है जिसने निराला को परिवेश से अपने सम्बन्धो के बारे मे लिखने को विवश किया किन्तु जैसे परिवेश से टक्कर पुरानी है, वैसे ही नियति के सामने पराजित होने का भाव भी पुराना है। 'सरोज-स्मृति' से लगभग नौ वर्ष पहले जीवन चिरकालिक क्रंदन—इस गीत मे निराला ने कर्म पर वज्रपात वाला वही भाव व्यक्त किया था,

हो मेरी प्रार्थना विफल,
हृदय कमल के जितने दल
मुरझायें, जीवन हो म्लान··· (अना., पृ. ६२)

नियति के सामने पराजित होने का यही भाव 'वनवेला' की इन पंक्तियो मे है :

हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण में गया हार !

'राम की शक्तिपूजा' मे दुर्गा की मूर्ति समग्र नभ को आच्छादित किए हुए है। वह नियति का विराट् प्रतीक है। उसी शक्ति के कारण आकाश अंधकार उगलता है, रावण पराजित नही होता, राम के सारे अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ सिद्ध होते है। राम इस नियति से—नियति द्वारा रक्षित रावण से—युद्ध करना चाहते है किन्तु मन कहता है, विजय प्राप्त न होगी, विरोधी शक्ति अत्यंत प्रवल है। युद्ध करने का उत्साह और पराजित होने का भय राम के मन को दो विरोधी दिशाओ में खीच रहे हैं।

कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार।

राम विभीषण से अपने इसी भय की बात कहते है : मित्रवर, विजय होगी न समर। दुर्गा जब कमल का फूल उठा ले जाती है तब निरंतर विरोध के सामने पराजित होने के विचार से राम के मन मे आत्मग्लानि का भाव पैदा होता है। वह स्वयं को धिक्कारते हैं, वैसे ही जैसे 'सरोज-स्मृति' और 'वनवेला' में निराला अपने जीवन की व्यर्थता पर दुखी होते है।

नियति से परास्त होने पर मनुष्य के लिए मृत्यु ही शेष रहती है, नियति पर विजय पाने का अर्थ है मृत्यु पर विजय पाना। जीवन चिरकालिक क्रंदन गीत मे नियति से परास्त होने पर निराला ने मृत्यु को वरण करने की इच्छा प्रकट की है :

शून्य सृष्टि मे मेरे प्राण
प्राप्त करें शून्यता सृष्टि की,
मेरा जग हो अन्तर्धान।

किन्तु मृत्यु यहाँ जीवन का अन्त नही है। निराला को आशा है कि मृत्यु के बाद एक नया जीवन शुरू होगा जिसमे इस जीवन के अन्धकार का अभाव होगा। गीत के अंत में प्रश्न है :

तव भी क्या ऐसे ही तम में
अटकेगा जर्जर स्पंदन?

इस गीत मे निराला की मृत्यु-कामना जीवन-संघर्ष में विजयी होने के लिए नही, उस संघर्ष से वच निकलने के लिए है। जिस रचना में उन्होने अपने वज्र कठोर अन्तर् को झकझोरने की चुनौती दी है, उसी मे यह पराजय का भाव भी है जिसकी चरम परिणति है मृत्यु-कामना।

मृत्यु को वरण करने का एक अर्थ और है: जीवित रहना, जीवन-संघर्ष मे मृत्यु-जय होना। जो दुर्गा विराट् नियति के रूप में समग्र नभ को आच्छादित किए हुए है, वह मृत्यु-रूपा भी है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा था, **केहु नाहि चाय मृत्यु-रूपा एलोकेशी और सत्य तुमि मृत्यु-रूपा काली।** निराला ने इसी का अनुवाद किया था,

मृत्यु रूपिणी मुक्त कुन्तला
माँ की नही किसी को चाह···
मृत्यु-स्वरूपे माँ, है तू ही
सत्य-स्वरूपा, सत्याधार। (अना., पृ. ११०)

'राम की शक्तिपूजा' में राम इन्ही मृत्यु-स्वरूपा की शक्ति को आत्मसात् करते है। यह नियति के सामने पराजय स्वीकार करना नही, उसे पराजित करने के लिए उससे उसकी शक्ति छीन लेना है।

निराला इस मृत्युरूपा शक्ति की वंदना करते है, उससे दुख दूर करनेवाला पदराग रंजित मरण माँगते हैं:

दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पदराग रंजित मरण। (गीतिका, पृ. ९७)

यह मृत्यु जीवन का अत करने के लिए नही, संघर्ष मे नई शक्ति-प्राप्ति के लिए है। इसलिए यह प्रार्थना है कि भीरुता के पाश छिन्न हों, मार्ग के अवरोध दूर हो, कवि जीवन के प्रलोभन समुपकरण पार करे। संकल्प यह है कि सामने जो शक्ति का अकूल सागर है, उसे कवि पवन के समान धैर्य से पार करेगा।

अणिमा में एक गीत है:

उन चरणो मे मुझे दो शरण।
इस जीवन को करो हे मरण। (पृ. १२)

जीवन को मरण में परिवर्तित करने का अर्थ उसे समाप्त करना नही, मृत्यु से शक्ति पाकर सफलतापूर्वक जीवित रहना है। इसलिए गीत में आगे कहते है:

वोलूँ अल्प, न करूँ जलपना,
सत्य रहे, मिट जाय कल्पना।

मृत्यु का अर्थ यदि जीवन की समाप्ति है तो कम या अधिक वोलने का प्रश्न ही सामने कैसे आया? कम या अधिक वोलना तव तक है जब तक जीवन है। अंतिम पंक्तियो मे जहाँ सृष्टि से दृष्टि उठने, लोक-आलोक-संतरण करने की वात है, वहाँ जीवन

को समाप्त करने की आकांक्षा नहीं है वरन् विरोधी—गर्हित मूल्यों वाले—परिवेश से निगाह उठाकर नया लोक-आलोक-संतरण करने का भाव है—**धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण** में जैसे तरण है, वैसे ही यहाँ संतरण।

शक्ति मृत्युरूपा है, वह मृत्यु की शत्रु भी है। यदि मृत्यु को वरण करने का अर्थ जीवन-संघर्ष में अधिक समर्थ होकर भाग लेना है तो मृत्युरूपा शक्ति मृत्यु की शत्रु भी हुई। स्वामी विवेकानन्द की पंक्तियों का अनुवाद करते हुए निराला ने काली को मृत्यु-स्वरूपा कहा, 'आवाहन' कविता मे उन्होने काली को मृत्यु से पंजा लड़ाने वाली—मृत्यु का पंजा मरोड़ देने वाली—शक्ति कहा :

भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा।

(परिमल, पृ. १२७)

मृत्यु से लड़ने, उसे पास न फटकने देने का भाव निराला-काव्य मे अनेक बार व्यक्त हुआ है।

पैर उखाड़े रह कजा के, हाथ जब तक चलता है,
बैठने मत दे किसी को, याद तू जब तक न कर।

(बेला, पृ. ७६)

कज़ा के पैर उखाड़ दे—जीवन-संघर्ष मे विजयी होने के लिए निराला की यह ललकार है। मौत के सामने घुटने टेकने के बदले वह खुद को और दूसरों को लड़ने और मेहनत करने की सलाह देते है।

पथ पर वे मौत न मर,
श्रम कर तू विश्रम-कर। (उप., पृ. ६२)

मृत्यु का वरण करते हुए श्रम करने का ऐसा उत्साह कम ही कवियो मे देखा जाता है। श्रम से थककर परिमल की कविता 'विस्मृत भोर' में निराला ने लिखा था :

जहाँ हाय, केवल श्रम, केवल श्रम,
केवल श्रम, कर्म कठोर...
केवल अन्धकार, करना वन पार
जहाँ केवल श्रम घोर। (पृ. १४०)

माथे का पसीना पोछते हुए मौत से निगाह मिलाकर बेला में निराला फिर हिम्मत से कहते है :

बिना अमर हुए यहाँ काम न होगा,
बिना पसीना आए नाम न होगा। (पृ. ६६)

अमर होने का अर्थ जीवन मे मृत्यु को वरण करना है अथवा उससे लड़ना है। अमर होकर किसी अमरावती मे निवास करने के बदले उसी संसार में रहकर पसीना बहाना होगा।

निराला चुपचाप प्रहार सहते हैं, आगे बढकर वार भी करते हैं, माथा पकड़कर जमीन पर बैठ जाते हैं लेकिन फिर उठकर खड़े होते हैं, नियति से टकराते हैं, मौत

की तरफ देखते हैं, फिर अपने काम मे लग जाते है। दुख से मुक्ति पाने के लिए अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से ऐसा ही निराला का दीर्घकालीन संघर्ष है।

तू कभी न ले दूसरी आड़,
शत्रु को समर जीते पछाड़— (वेला, पृ. ६३)

उनका यह दृप्त विजयाकांक्षी स्वर—परिवेश के कोलाहल के ऊपर—उनकी रचनाओं में अंत तक सुनाई देता है।

अन्तर्द्वन्द्व

कवि का एक संघर्ष परिवेश से, दूसरा अपने मन के भीतर। मन जितना संयत, सधा हुआ होगा, वाहर के संघर्ष में उतना ही समर्थ होगा। निराला अपने मन में जो दुख, क्षोभ और ग्लानि के भाव दवाते हैं, उनमे सवसे विकट है अपमान का भाव। यदि आत्मा अमर है, कवि ने ज्ञान का प्रकाश देखा है, तो अपमान का भाव भी मिथ्या है। किन्तु **फँसा माया में हूँ निरुपाय,** निराला का मन करुणा और सहानुभूति के कारण ही माया में नही फँसा, वह मान-अपमान की भावना के कारण भी माया मे फँसा है। इस भावना को वह नियंत्रित रखना चाहते हैं। किंतु वह वार-वार नैतिक मर्यादा तोड़ देती है। निराला व्यथित होते हैं, फिर उस अपमान की ज्वाला को अपने जीवन की प्रेरणा वना लेते है। मृत्यु यदि शक्ति है तो ज्वाला, विष, अपमान भी शक्ति हैं।

कण को प्रतीक वनाकर निराला उसके ठुकराए जाने में अपने अपमानित होने का भाव व्यक्त करते है। जो ठुकराते है, उनके पैरो को कण और कोमल वना देता है।

किन्तु हाय, वे तुम्हे नीच ही है कह जाते। (परिमल, पृ. १४६)

यहाँ कण सव-कुछ चुपचाप सह लेता है क्योंकि उसका लक्ष्य विरज अथवा ब्रह्म को पाना है। 'देवी' कहानी मे जिन लोगो की निगाह निराला को पसन्द नही, वे उन्हें ऐसे देखते है "जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो।" यह निगाह निराला को अपमानित करती है। उन्हे सनकी समझकर वे लोग "गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते है।" यह हँसी निराला को अपमानित करती है। अपमान की वातें याद करते हुए निराला इन हँसनेवालो को वहुत कुछ सुना देते है, उन्हें सुझाते हैं कि भाव के साथ वे-भाव की पड़ी हो तो सँभाल लीजिएगा। अपमान की भावना तैयारी के विना ही भाषण देने को मजवूर करती है; नैतिक आदर्श कहता है, ऐसा

भाषण देना अनुचित है। 'वनवेला' में साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों के मायाजाल पर भाषण है, मन स्वीकार नही करता कि भाषण उचित है। महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ बातचीत में जगह-जगह यह अपमानित होने का भाव फूट पड़ता है। 'मित्र के प्रति' कविता (अनामिका, पृ. १०) में उन रूढ़िवादियों को उत्तर देते हैं जो आधुनिक कविता को नीरस मानते हुए उसे बंद करने को कहते हैं। 'हिंदी के सुमनो के प्रति' कविता (उप., पृ. ११४) में निराला लोक-प्रसिद्धि पाने वाले कवियों द्वारा स्वय को अपमानित महसूस करते हुए ब्राह्मण समाज में ज्यों अश्रुत लिखकर अपनी स्थिति की व्याख्या करते हैं। अन्य कविता—'उक्ति'—मे उनके अपमानित होने का रूप अधिक स्पष्ट होता है :

वहु-रस साहित्य विपुल यदि न पढ़ा—
मन्द सवों ने कहा,
मेरा काव्यानुमान यदि न वढ़ा—
ज्ञान, जहाँ का रहा··· (उप., पृ. ११६)

ज्यादा पढ़े-लिखे नही हैं, काव्यशास्त्र नही जानते, जो लिखते हैं वह नीरस है—साहित्यकारों के समाज से वहिष्कृत होने का भाव निराला के मन में अपमान के कारण है। वह वहिष्कृत रहे हों चाहे न रहे हों, वहिष्कृत होने का भाव उनमे जरूर है और इस भाव के पैदा होने से मन मे अपमान की आग सुलग उठती है। 'सरोज-स्मृति' में वह सोचते है कि भले ही आज अपमानित हों, कल तो उनका सही मूल्यांकन होगा, तब सरस्वती की कला का रंग सबसे ज्यादा उन्हीं के रूप में निखरेगा—

वाञ्छित उस किस लाञ्छित छवि पर
फेरती स्नेह की कूची भर।

जो छवि वाञ्छित है, वह लाञ्छित भी है। इसी लाञ्छित होने के भाव के वारे में निराला ने 'गीतिका' में लिखा—

लाञ्छना इंधन, हृदय तल जले अनल। (पृ. ९७)

वातावरण मे विपाक्त गन्ध है, विपवेलि की गन्ध। एक गन्ध वनवेला की है जो सुगन्ध की सुरा पिलाती है; एक गन्ध उस विषवेलि की है जो उन्मत्त जनो के वातावरण मे लहलहाती है। यह गन्ध निराला का अपमान कर जाती है, कहना चाहिए, सारा वातावरण कवि को अपमानित करने वाला है। अणिमा में गीत है :

मत्त हैं जो प्राण,
जानते हैं कव किसी का मान ?
वेलि विप की फैलकर जो खिल गई,
गन्ध जिसकी हवा के उर मिल गई,
वह विना समझे हृदय में हिल गई,
कर गई अपमान। (पृ. ५७)

निराला ने माया के वारे में विकल्प प्रस्तुत किया था,

तू किसी वन की विषम विष-वल्लरी
या कि मंद समीर गन्ध-विनोद की ? (**परिमल**, पृ. ८५)

मंद समीर जो गन्ध ले आती है, उसके बदले 'अणिमा' मे विषवल्लरी की गन्ध है और उसका सम्बन्ध अपमान से है। जयशंकर प्रसाद ने भी बहुत अपमान सहा था; अपमान का विष पीकर उन्होंने जातीय साहित्य को अमर कर दिया :

पिया गरल, पर किया जाति-साहित्य को अमर।
(**अणिमा**, पृ. २७)

गरल पीकर ही वह जातीय साहित्य को अमर कर सकते थे। जो शक्ति गरल में है, वह अमृत में नहीं। जिसने जाति को अपमानित होते देखा है, अपनी भाषा और साहित्य की हीन दशा से दुखी हुआ है, इस दुख और अपमान का विष पीकर जो साधना में तत्पर हुआ है, वही जातीय साहित्य को अमर कर सकता है।

दुःख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
शंकर की स्मर-शर की हाला। (**आराधना**, पृ. २)

सुखी होने पर सभी जीते रह सकते है; प्रशंसा उसकी करनी चाहिए जो दुःख को जीवनीशक्ति में बदल दे। दुःख की ज्वाला पीकर मनुष्य मरने के बदले नया जीवन, नई शक्ति पा सकता है। यह शंकर की हाला है जो मनुष्य की क्षुद्र वासनाओं का नाश करती है। वह स्मर शर की हाला है क्योंकि दुख और अपमान का विष वासनाओं को जिलाता नही, मारता है।

दुर्गा मृत्युरूपा है; शिव गरलपायी है। जैसे मृत्यु शक्ति देती है, वैसे ही विष। **गीतिका** में लिखा :

दे मैं करूँ वरण
जननि दुःखहरण पदराग रंजित मरण।

यह मरण शक्ति देने वाला है, वैसे ही अपमान की ज्वाला भी।

लाञ्छना इंधन, हृदय तल जले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल।

लाञ्छना का ईंधन हृदयतल मे अनल को निरन्तर प्रज्वलित किए रहता है। भक्ति से आँखें नत करके कवि इस ज्वाला को जीवनीशक्ति बना लेता है। यह भक्ति साधारण वैष्णव भक्ति नही, शक्ति के उपासक की भक्ति है जो प्राण-संघात के सिन्धु को पार कर जाना चाहता है। एक ओर प्राण शक्ति का सागर, दूसरी ओर उसे पार कर जाने को इच्छुक कवि। एक ओर आकाश को आच्छादित किए हुए दुर्गा, दूसरी ओर उन्हे आत्मसात् करने वाले राम। दोनों जगह शक्ति का काट शक्ति से होता है। भक्ति-नत नयनों की भक्ति इस तरह की है। शक्ति पूजा का एक रूप है, दुख और अपमान का विष पीकर साहित्य को अमर कर देने की साधना। जयशंकर प्रसाद ने यह विष पिया, निराला ने पिया। **गीतिका** में जो आग लाञ्चना के ईंधन से जलती है, वही **आराधना** में है। **दुख के सुख जियो, पियो ज्वाला** —यह ज्वाला वही अपमान की ज्वाला है, गीत की अगली पंक्तियो

से स्पष्ट हो जाता है :

शशि के लाञ्छन हों सुन्दरतर,
अभिशाप समुत्कल जीवन वर
वाणी कल्याणी अविनश्वर···

निराला यहाँ भी लाञ्छन का स्मरण कर रहे हैं। जो लाञ्छित है, उसे और भी सुन्दर बनना है। सुन्दर बनने के लिए ही ज्वाला को पीना आवश्यक है। 'सरोज-स्मृति' मे उन्होने लिखा था कि जो लाञ्छित है, वह सरस्वती का कृपा-पात्र है किन्तु कविता के अन्त मे कवि-कर्म पर वज्रपात करके निराला ने लाञ्छित कवि को सुन्दर बनाने की प्रक्रिया समाप्त कर दी थी। सत्रह साल बाद लाञ्छित को सुन्दर ही नही, सुन्दरतर बनाने के लिए उन्होने फिर प्रक्रिया आरंभ की :

दुख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
शंकर की स्मर शर की हाला।

ज्वाला पीकर जीवित रहना आसान काम नही। विष जब हज़म नही होता तब शरीर को भस्म करने लगता है।

मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हो गरल-अनल,
जलता यह जीवन असफल।

('पतनोन्मुख', परिमल, पृ. ३६)

यहाँ असफल जीवन जल रहा है, जलन से नई शक्ति नही मिल रही। यह जलन प्रतिपल है, बहुत दिनों तक है। लगता है, विष से दग्ध शरीर-विटप की डालो से पल्लव-प्राण झरने ही वाले हैं। विष पीकर अमर बनना निराला के लिए सुखद कल्पना नही है; उस विष की जलन का अनुभव उन्होने किया है, उससे शक्ति पाकर उन्होंने साहित्य रचा है। यह संघर्ष बड़ा विकट है और उसके दौरान अनेक बार उन्होने मृगमरीचिका से जलन को शान्त करने का प्रयास किया है।

परिमल की 'स्मृति-चुम्बन' रचना मे यौवन-वन की कोई शकुन्तला अपने चुम्बन से उनके जीवन का प्याला भर जाती है। कवि का मन है दग्ध मरुस्थल; युवती है शरद की चाँदनी के समान—शारदीय चंद्रिका-सी दग्ध मरु के लिए। जलन से शक्ति पाने के बदले निराला उसे कल्पना की चाँदनी से ढँक देते है। 'मित्र के प्रति' कविता (अनामिका, पृ. १०) में नई कविता के प्रतीक के रूप में लू और धूप से झुलसी हुई भूमि का चित्रण करते हैं। आठ पहर हहर-हहर गरम हवा चलती है, सूर्य के ताप से ताल सूख जाते है, हरे-भरे वृक्ष झुलसकर रूख हो जाते हैं। यह सब ताप-त्रास व्यर्थ नही है क्योंकि :

इसी ज्वाल में लहरे
हरे ठौर ठौर।

किन्तु यह हरियाली वर्षा की है, जलन यहाँ शक्ति नहीं बनी। ग्रीष्म की सार्थकता यह है कि उससे वर्षा होती है किन्तु ग्रीष्म अपने मे सार्थक नही, शक्ति का कारण

नहीं। अनामिका की अन्य रचना 'उक्ति' में ताप का भाव वैसा ही प्रवल है, वैसे ही ताप की सार्थकता आकाश पर वादलों के छा जाने में है। किन्तु यहाँ जलन प्रतीक की सीमाएँ लाँघकर सीधे कवि-जीवन में दिखाई देती है :

जला है जीवन यह आतप मे दीर्घकाल;
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आलवाल। (पृ. ९०)

अर्चना में निराला सावन के वादलों को याद करते हुए शक्ति की देवी से मृत्यु और ताप का वरदान न माँगकर उससे ताप शीतल करने को कहते हैं :

दाव-दहन की श्रावण, वरुणा। (पृ. १०)

सावन मे वरुणा जैसे जल से भर जाती है, वैसे ही शक्ति की देवी अपनी करुणा से निराला का अन्तर्दाह शीतल कर देगी। जल से भरी हुई वरुणा **सान्ध्यकाकली** में कलकल करता हुआ सरोवर वन जाती है; नीचे है वही दग्ध मरुस्थल : **विकच मनोमरु पर सर कलकल।** (पृ. ६०) निराला कल्पना करते हैं कि भक्ति का सरोवर उनके मन-मरुस्थल पर लहरा रहा है। मरुस्थल है सत्य, उस पर लहराता हुआ सरोवर है मरीचिका।

ज्वाला को शक्ति वनाने का आत्म-संघर्प एक दिन में समाप्त नही होता। जीवन चिरकालिक क्रन्दन की तरह वह भी अभ्युदय से अवसान तक चलता रहता है। निराला अनेक कल्पनाओं से मन वहलाते हैं, फिर होश आने पर कहते हैं :

दुःख के सुख जियो पियो ज्वाला !

परिमल की 'स्मृति-चुम्वन' कविता में यौवन-वन की शकुन्तला शरद की चाँदनी की तरह दग्ध मरुस्थल को शीतल करती है; **परिमल** की 'कवि' शीर्पक रचना में निराला दग्ध मरुस्थल से ही दाह लेकर उससे शक्ति पाने और उस शक्ति को काव्य में ढालने का दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

हे महान् ! सोचते हो दुःख मुक्ति,
शक्ति नव जीवन की।
सूख जाता हृदय तव,
ज्वालाएँ नित्य नव उमड़ती—
उस अनल कुण्ड की
वाह्य रस-रूप राग
आहुति ही होते है,
मूर्त नव जीवन के रूप तव निकलते
प्राणों के प्राण—
अभिधान शत वर्पो के—
हार्दिक आह्वान जहाँ आता है अखिल लोक
शोकातुर, पाता जीवन-विधान। (पृ. १८०)

हृदय से ज्वालाएँ उमड़ती हैं तव वाह्य रस-रूप-राग उनमें भस्म हो जाते हैं। यही स्मर-शर की हाला है, वह हृदय में स्मर के शर के समान नही लगती, वह

स्मर के लिए शर के समान है, उसका नाश करने वाली है। आराधना में निराला ने दुख के सुख जीने, ज्वाला पीने की जो बात लिखी, उसे बीज रूप में नहीं, काफी विस्तार से वह वर्षों पहले परिमल में कह चुके थे! जिस अनल-कुण्ड में रस-रूप-राग की आहुति पड़ती है, उसी से नये जीवन के रूप निकलते हैं, यही रूप देखकर शोकातुर जनों को जीवन का नया विधान मिलता है। दुख से मुक्ति तब नहीं मिलती जब मरुस्थल पर शरद की चाँदनी छा जाती है, मुक्ति तब मिलती है जब दुख की ज्वाला ही रूप-रस-राग को भस्म करके नया शक्ति-तत्त्व बन जाती है।

अनामिका मे एक गीत है 'मरण-दृश्य'। मृत्यु की देवी कहती है :

मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु मे
आई हुई न डरो! (पृ. १३६)

यह उसी तरह की मुक्ति है जिस तरह की 'कवि' में है। 'मरण-दृश्य' में शक्ति ने जो स्नेह-चुम्बन दिए थे, वे गरल के प्याले बन गए हैं, वह कवि से उन्ही को पीने का आग्रह करती है। ये गरल के प्याले दुख के प्याले हैं, यह सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाता है। शक्ति ने कवि को जो नई निधि ला दी है, वह 'दुख की विधि' है। कल्पना के आकाश मे उड़ने के बदले अब वह जलधि-जीवन मे तैरता है। यह जलधि जीवन दुख का जलधि भी है। दुख-मुक्ति का मार्ग शक्ति-साधना का मार्ग है।

बेला में एक गीत है :

फूलो के कुल काँटे, दल, बल।
कवलित जीवन की कला अकल। (पृ. २६)

यहाँ विष, असगुन और सोच है, काँटे हैं, कलाकार की रचनात्मक क्षमता का विनाश है किन्तु जिस ताप ने सबको झुलस दिया है, वह अपने मे शक्ति है। जो कला ताप मे कवलित हो गई है, वह इस शक्ति से फिर विकसित होती है।

पल्लव-ज्वाला उर की पाली,
सुर की वाणी फूटी उत्कल।

वाणी फूटने का कारण वह ज्वाला है जो उर में पाली गई थी। अर्चना में गीत है :

दीप जलता रहा, हवा चलती रही...
काल खलता रहा, कला फलती रही। (पृ. १६)

दीप के जलने और काल के खलने में वही ज्वाला पीने का भाव है; यही साधना है जिससे कला सफल होती है।

एक संघर्ष बाहर संसार मे, एक संघर्ष मन के भीतर। दोनों संघर्ष एक-दूसरे से जुड़े हुए है। निराला की जलन का सम्बन्ध उस परिवेश से है जो उनके साहित्य का तिरस्कार करता है, उनकी सामाजिक स्थिति पर हँसता है। दुख और अपमान की ज्वालाएँ इसी से फूटकर निराला के मन-मरुस्थल को दग्ध करती हैं। उन ज्वालाओं को पीकर उसी परिवेश से जूझने के लिए वह शक्ति संचय करते हैं। अकसर वह इस परिवेश को कारागार के रूप मे चित्रित करते है।

गहन है यह अन्ध कारा,
स्वार्थ के अवगुंठनों से हुआ है लुंठन हमारा।

(अणिमा, पृ. ६५)

अध्यात्मवादियों के लिए यह संसार कारागार है, मनुष्य की देह कारागार है जिसमें आत्मा वन्दी है। निराला इस आशय से संसार को कारागार नही कह रहे हैं। संसार कारागार इसलिए है कि यहाँ मनुष्य आपस में मिलकर मनुष्य की तरह नहीं रहते, स्वार्थ के कारण सव एक-दूसरे से जुदा हैं।

वोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेरकर—

स्वार्थों में वँधे हुए मनुष्य निराला को गैर समझते हैं, वही 'देवी' कहानी वाला भाव—गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते है। संसार कारागार लोगों के इस व्यवहार के कारण है।

प्रसाद के सम्वन्ध में इसी कारागार को याद करते हुए निराला ने लिखा—**अन्धकार कारा यह, वन्दी हुए मुक्ति घन।** इन्ही प्रसाद ने गरल पिया और जातीय साहित्य को अमर किया। संसार के कारागार होने, कवि के गरल पीकर साहित्य को अमर करने में यह सम्वन्ध है। जिस संसार में रहते हुए कवि को लगता है कि वह कारागार में है, उसी के उत्पीड़न से उसे लगता है कि वह विष पी रहा है।

वेला और अर्चना के अनेक गीतों में वह इस कारागार के अंधकार को दूर करने के लिए देवता से प्रकाश देने की प्रार्थना करते है। कही प्रकाश की आशा है, कहीं केवल दुर्भेद्य अंधकार का चित्रण है। प्रत्येक स्थिति में एक वात स्पष्ट होती है कि निराला अपने परिवेश में स्वयं को अकेला पाते है। वह वंदीगृह में है तो अकेले है, उससे वाहर हैं तो अकेले हैं।

वाहर मैं कर दिया गया हूँ।
भीतर पर, भर दिया गया हूँ। (वेला, पृ. ५१)

समाज से निकाले जाने का भाव है—**व्राह्मण समाज में ज्यों अछूत** की तरह। आत्म-निर्वासन से जो कष्ट होता है, उसे दूर करने का उपाय है, अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति। अन्य परिस्थितियों में जैसे यह ज्ञान साथ नही देता, वैसे ही आत्म-निर्वासन और अकेलेपन का कष्ट अध्यात्मज्ञान की कल्पना से दूर नही होता।

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला। (अणिमा, पृ. २०)

यह अकेलापन वुढ़ापा आने के कारण ही नहीं पैदा हुआ। एक मेला है जो निराला से दूर हटता जा रहा है, वैसे ही जैसे लोग मुँह फेरकर वोलते हैं। अकेलापन तव और वढ़ जाता है जव अध्यात्मज्ञान वाला सहारा भी छूट जाता है। जीवन के वहुत से नदी-नाले पार करने के वाद **हँस रहा यह देख, कोई नहीं भेला।** भेला का अर्थ स्वयं निराला ने लिखा, 'पुराने ढंग की नाव'। यह पुराने ढंग की नाव

अध्यात्मज्ञान की है। उस ज्ञान की कल्पना से वह बहुत खेले थे, इसीलिए उसे गायब होते देखकर उन्हें हँसी आती है। यह सान्ध्य वेला है, जब रवि अस्त हुआ और ज्योति के पत्र पर राम-रावण का अपराजेय समर लिखा हुआ रह गया।

सान्ध्य वेला के बाद रात आती है। कारागार मे अन्धकार और सघन हो जाता है।

> इस गगन में नही दिनकर,
> नही शशधर, नहीं तारा। (अणिमा, पृ. ६५)

यह आकाश उस संसार के ऊपर छाया हुआ है जिसमें लोग मुँह फेरकर बोलते हैं। चन्द्र-ताराहीन अमानिशा का यह आकाश सघन अन्धकार उगलने ही वाला है। आस-पास कही गरजता हुआ समुद्र भी होगा :

> कल्पना का ही अपार समुद्र यह,
> गरजता है घेरकर तनु, रुद्र यह,
> कुछ नही आता समझ मे,
> कहाँ है श्यामल किनारा।

पर्वत के नीचे राम अकेले हैं। आस-पास वानर और मित्रगण नही हैं, न लक्ष्मण है, न आकाश मे छलांग मारने वाले महावीर। पट्चक्रों को पार करके सहस्रार तक पहुँचने वाला राम का मन नही है। ज्योतिहीन प्रगाढ़ अन्धकार, रुद्र के समान गजरने वाला सागर और कवि का यह विनीत, सरल भाव—कुछ नहीं आता समझ में, कहाँ है श्यामल किनारा। यह लिखने के लिए काफी साहस चाहिए।

'राम की शक्तिपूजा' मे अंधकार उगलते हुए आकाश और गरजते हुए सागर के बीच अपने मे खोए हुए राम के माध्यम से निराला आत्म-निर्वासन की भावदशा-का चित्रण करते हैं। यहाँ परिवेश विभाजित है। एक भाग मे आकाश, समुद्र, शिव, काली, रावण और राक्षस-सेना हैं, दूसरे भाग में लक्ष्मण, महावीर, जाम्बवान, सुग्रीव और वानर-सेना हैं। पहला भाग राम के त्रास का कारण है; दूसरा भाग राम का सहायक है किन्तु उससे घिरे होने पर भी राम अपने में खोए हुए हैं; सीता से प्रथम मिलन और जीवन की अनेक पराजयो की स्मृति मे डूबे हुए हैं। कल्पना की आँखों से निराला जितना साफ पहले भाग को—विरोधी परिवेश को—देखते हैं, उतना साफ दूसरे भाग—अनुकूल परिवेश—को नही। परिवेश से टकराकर बार-बार हारने से जो भय मन में पैदा हुआ है, वह निर्वासित मन का त्रास है। इस त्रास को दूर करने के लिए शक्तिपूजा है जिसमें मुख्य अध्यवसाय राम का है और आन्तरिक है। अणिमा के अनेक गीतो मे परिवेश का वह दूसरा—अनुकूल—भाग गायब हो गया है, केवल पहला प्रतिकूल भाग बचा है। इस भाग में चन्द्र-तारा-हीन आकाश है, गरजता सागर है और मनुष्य हैं जो मुँह फेरकर बोलते हैं।

अर्चना मे यह त्रास का भाव और भी स्पष्ट रूप में अंकित हुआ है :

शिशिर की शर्वरी*
हिंस्र पशुओं भरी।
ऐसी दशा विश्व की विमल लोचनों
देखी, जगा त्रास, हृदय संकोचनों
काँपा कि नाची निराशा दिगम्बरी। (पृ. ११)

विश्व की दशा देखकर निराशा नाच उठती है—**नाचे उस पर श्यामा** की कल्पना पर व्यंग्य-सा करते हुए। 'राम की शक्तिपूजा' मे दुर्गा आकाश को आच्छादित किए है, यहाँ आकाशव्यापी निराशा है, दिगम्बरी बनकर शिव और काली का स्थान मानो उसने पा लिया हो। किन्तु निराला कल्पना करते हैं कि माता ने किरण-हाथ बढ़ाकर उन्हे भय से मुक्त कर दिया। फिर कल्पना की चाँदनी को बलपूर्वक मिटाकर निराला उस वन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जिसमें शिशिर की शर्वरी वाले वन्य पशु भरे हुए हैं।

निविड़ विपिन, पथ अराल;
भरे हिंस्र जन्तु व्याल। (उप., पृ. ४०)

यहाँ प्रकाश देने वाली किरण का पता नही है। दुर्निवार रूप से अंधकार बढता आता है। जलाशय का नाम नही, कही कोई देवालय भी नही। जनशून्य इस अरण्य मे—

जगता है केवल भय
केवल छाया विशाल।

समुद्र के किनारे राम के पास पर्वत पर जो एक मशाल जल रही थी, वह भी यहाँ बुझ गई है।

अंधकार के दृढ़ कर
बँधा जा रहा जर्जर
तन उन्मीलन निःस्वर,
मन्द्र चरण मरण-ताल।

यह निराला का मृत्यु-दर्शन है, आत्म-निर्वासन और त्रास की चरम परिणति।

समुद्र का गर्जन छूटा जा रहा था। **घन तम से आवृत धरणी है**—(अर्चना, पृ. ५१) इस गीत में अन्धकार है, वन में चिघरते हुए हाथी है और गरजता हुआ समुद्र है, 'राम की शक्तिपूजा' की शब्द-योजना की याद दिलाता हुआ :

शत संहत आवर्त-विवर्तो
जल पछाड़ खाता है पर्तो,
उठते हैं पहाड़, फिर गर्तो
धँसते है, मारण-रजनी है।

त्रास के प्रतीक अनेक हैं, कही आकाश और समुद्र, कही वन और हिंस्र पशु, कहीं

* 'अर्चना' मे पाठ है 'शिविर की शर्वरी'। मेरी समझ मे शिशिर की जगह शिविर छप गया है।

ये सब मिले हुए। जो एक है और नही बदलता, वह है त्रास का भाव जो परिवेश से टकराने और बार-बार पराजित होने से पैदा हुआ है।

निराला ने ज्वाला पीकर जो शक्ति अर्जित की थी वह नष्ट नही हुई। जीवन और मृत्यु की संधि रेखा पर खड़े हुए वह जो कुछ देखते-सुनते है, उसे गीत में लिखते जाते हैं। यह निःसंग दृष्टि उन्हे उस शक्ति से ही मिली है। निराला जंगल में हाथियों की चिघाड़ के साथ रात मे किसी बालक का रोना सुनकर दुखी होते हैं :

रोता है बालक निष्कारण। (उप.)

हृदय मे करुणा का स्रोत सूखा नही है।

मृत्यु

निराला ने मृत्यु पर बहुत लिखा है और आरंभ से ही लिखा है। कहीं मृत्यु का भय है, यह भय कि दुनिया मे कुछ किये बिना ही चल देना पड़े। उस भय के साथ यह आशा है कि अभी मृत्यु न आएगी, यह तो जीवन का आरंभ ही है।

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमे कहाँ मृत्यु
है जीवन ही जीवन ('ध्वनि', परिमल, पृ. १०५)

वह आशा करते है कि मृत्यु के बाद नया जीवन आरभ होगा, ब्रह्म अथवा शक्ति के दर्शन से सारा त्रास दूर हो जायगा। ('परलोक', उप., पृ. ५९) कभी शक्ति की देवी को जीवन और मृत्यु दोनो से समन्वित मानकर उसकी वंदना करते हैं, कभी देवी को मृत्यु-रूपा मानकर उसके सौन्दर्य का बखान करते है। कहीं मृत्यु से जीवन को भस्म होता हुआ देखते हैं, कही मृत्यु को वरण करके नयी शक्ति प्राप्त करने की बात सोचते है। मृत्यु एक लंबी रात है जिसमे शक्ति या ब्रह्म का प्रकाश सहारा देगा। दुख की रात प्रकाश में न बदल जायगी, केवल दुख सहने लायक हो जायगा। **पावन करो नयन** (गीतिका, पृ. ९)—इस गीत मे जो किरण दिन मे सारे संसार को प्रकाशित करती है, दुःखनिशा मे वह कवि के स्वप्न की सुघर जागृति बनकर उसे सान्त्वना देगी।

प्रतिद्वंद्वी रूप में मृत्यु अटल है; उससे निपटने के पैतरे अलग-अलग है।

वेदना बनी :
मेरी अवनी। (अर्चना, पृ. ४२)

जो धरती अपने अन्तर मे फूलों की गन्ध छिपाये थी, चेतना का मूलाधार थी, वह

अब काँटों से भर गई है। निराला का दुःखी मन पुकारता है—करुणामयी, आकर उबारो।

समय की गति बहुत धीमी है, उतना ही गहरा पीड़ा का बोध है :

ये दुःख के दिन
काटे हैं जिसने
गिन-गिन कर
पल-छिन, तिन तिन (उप., पृ. ६२)

आँसुओं का हार पिरोया है। आशा है, दुःखनिशा में प्रियतम को हार पहनाकर उसका मुँह देखेंगे।

'बेला' में ग़जल है :

मुसीबत में कटे हैं दिन, मुसीबत में कटी रातें···
जो हस्ती से हुए है पस्त समझे है वही क्या है,
गुजरती जिन्दगी के साथ हरकत से भरी बातें। (पृ. ६९)

जीवन की समाप्ति का नाम ही मृत्यु नही है; जो दुख मनुष्य प्रतिदिन, प्रतिक्षण सहता है, वह भी मृत्यु है। यह दुख मनुष्य को पस्त और बेबस कर देता है, संसार को देखने-पहचानने की शक्ति शिथिल हो जाती है, सामने के दृश्य दुःस्वप्न की तरह मन पर छा जाते हैं।

'राम की शक्तिपूजा' में परास्त सेना शिविर की ओर लौटती है। मान लीजिए, यह सेना परास्त होने के साथ अपने सेनापति का शव लिये वापस आ रही है। निराला के मन मे ज्योति के पत्र पर राम-रावण के अपराजेय समर का जो चित्र लिखा हुआ था, वह एक शवयात्रा देखकर इस तरह दुःस्वप्न में परिवर्तित होता है :

धूसर साम्ध्य समय विषमय भरता है क्रन्दन;
अन्तरिक्ष से झरता है निस्तल अभिनन्दन
नैसर्गिक आत्माओ का; प्रशमित नारी-नर
चले आ रहे हैं अरथी के साथ मार्ग पर
चरण मंद; भाषा के जैसे अश्रुभार रथ,
स्रस्त वेश, दिग्देश-ज्ञान-गत, शिरश्चरण-श्लथ,
मुक्तिवर्ग नागरिक, सर्ग देश के भाव के,
मुँदे हुए आश्वासन, श्वसन विसर्ग स्राव के,
हृदयोच्छ्वसित वाष्प से होकर प्रहत निरन्तर
ऊर्ध्व और अधप्रशमन और क्षोभ के है स्वर।

'राम की शक्तिपूजा' की शब्द-योजना की प्रतिध्वनि यहाँ स्पष्ट सुनी जा सकती है : प्रशमित है वातावरण—प्रशमित नारी-नर; श्लथ धनु गुण—शिरश्चरण श्लथ; कटिबन्ध स्रस्त—स्रस्त वेश; खो रहा दिशा का ज्ञान—दिग्देश-ज्ञानगत; स्वर रुधिर स्राव—विसर्गस्राव, इत्यादि। शब्द-योजना की प्रतिध्वनि इस बात का

प्रमाण है कि इलाहाबाद में आर. एस. पंडित की शवयात्रा देखकर निराला जब उस दृश्य का वर्णन कर रहे थे, तब उनके मन में 'राम की शक्तिपूजा' की पदयोजना घुमड़ रही थी। वह उस शब्द-योजना की प्रतिध्वनि सुन रहे थे; संध्या समय शवयात्रा का दृश्य 'राम की शक्तिपूजा' के दृश्य से घुल-मिल गया। पराजित सेना की यात्रा शवयात्रा बन गई। राम ने जो शक्ति-साधना की, वह मानो व्यर्थ हो गई।

घने बरगदों की कतार, पर फड़काते खग,
आँख मूँद लेने के लिए विकल सारा जग।

(नये पत्ते, पृ. ८२)

सारा संसार ही मृत्यु का ग्राम बना हुआ मालूम होता है। निराला संज्ञाशून्य-से, स्वप्न मे चलते हुए मनुष्य की तरह सारा दृश्य देखते हैं। फिर जुलूस के साथ चलने वाली जनता के जोरदार नारे उनके स्वप्नस्थ मन को झकझोरकर जगा देते हैं। लोग उतने त्रस्त-ध्वस्त नही है जितने वे निराला को दिखाई देते है। होश में आने पर सारा दृश्य यथार्थ रूप मे दिखाई देने लगता है। दूर-दूर से यात्री गंगा-स्नान को आए है, यह किला है, काम खतम करके वहाँ से मजदूर निकले हैं, पुल के पार बाईं तरफ से स्टेशन से लगा हुआ रास्ता गंगा के बाँध को गया है। रास्ता छोड़कर अब जुलूस रेत पर चल रहा है। चिता सजाई गई, सारे कृत्य पूरे हुए, चिता जल उठी, यह एक वीर की चिता है जो देश के लिए लड़ा था। निराला पूरे होश में चिता को देखते है :

लहक रही है अपराजेय वीर को लेकर।

अर्द्ध-संज्ञाशून्य होकर अरथी के साथ चलना, फिर पूर्ण संज्ञा प्राप्त करके शेष कृत्य देखना--होश और बेहोशी का यह नाटक निराला की अनेक कविताओं में, उनके जीवन में बहुत दिनो तक हुआ। मानो बहुत दिनो तक मृत्यु उनके साथ आँख-मिचौनी खेलती रही हो।

एक गीत मे लिखा था : निशितम डाल मौन मेरा खग। (गीतिका, पृ. ४५) अंधकार की डाल पर निराला का मन-पंछी चुपचाप बैठा हुआ है। यह संज्ञाहीनता की दशा है। फिर वह उड़ता है और अपने संगीत से संसार की रगो को रँग देता है। यह संज्ञा प्राप्त करने की दशा है। संज्ञाहीनता मे कवि स्वयं को ही अशक्त और निस्तेज नही देखता, सारा संसार उसे मृत्यु-ग्रस्त जान पड़ता है। जिस संसार की रगो को उसका संगीत रँग देता है, वह प्रसुप्त है; जिस निशितम डाल पर खग बैठा है, वह प्रसुप्त संसार की प्रतीक है। शवयात्रा वाली कविता मे घने बरगदो के भीतर कही पक्षी पर फड़काकर रह जाते हैं; लगता है, सारा जग आँखें मूँद लेने को है।

एक गीत मे देश के लिए लिखा :

शक्तिहीन तन निश्चल,
रहित रक्त से रग-रग। (गीतिका, पृ. ८९)

निराला को अपनी रगें रक्तहीन मालूम होती हैं, अपना शरीर शक्तिहीन जान पड़ता है। यह अर्द्ध-संज्ञा-शून्यता की दशा वह देश पर आरोपित करते हैं।

एक पत्र मे उन्होने लिखा था, "जिगर लिखते है, ठीक; मैं भी लिखूंगा। अभी आकाश ताका करता हूँ।" ('निराला की साहित्य साधना', प्रथम खंड, पृ. ३९७)

दुख मे वेसुध होकर मनुष्य कैसे आकाश देखता है, निराला अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ में पहचान चुके थे। 'परिमल' की एक कविता मे कण के वहाने लिखा था :

ताक रहे आकाश,
वीत गए कितने दिन—कितने मास ! (पृ. १४६)

'देवी' कहानी की पगली भिखारिन धूप और लू मे किसी पेड़ की छाँह या खाली वरामदे में वैठी हुई 'एकटक कभी-कभी आकाश को' देख लेती है। 'सरोज-स्मृति' में स्वयं निराला—-

लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश।

दुख की चोट से आदमी कुछ देर के लिए सुध-वुध खो वैठे वैसी यह दशा है।

भवभूति ने लिखा था :

दहति हृदयं गाढ़ो द्वेगं द्विधा तु न भिद्यते।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतसाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।

प्रगाढ़ उद्वेग हृदय को कचोटता है लेकिन उसे तोड़ नही देता। विकल काया मूर्च्छित हो जाती है किन्तु चेतना का साथ नही छूटता। भीतर जलन होती है पर शरीर भस्म नही होता। विधाता मर्मच्छेदी प्रहार करता है किन्तु जीवन का नाश नही करता।

अर्द्ध-संज्ञाशून्यता की दशा में केवल इतना ज्ञान रहता है कि जलन हो रही है, शेष वोध नष्ट हो जाता है।

वलभद्र दीक्षित पढ़ीस की मृत्यु पर निराला ने लिखा, "वह नस मेरी कट चुकी है जिसमे स्नेह सार्थक है; अपने-आप दिन-रात जलन होती है।" (निराला की साहित्य साधना, प्रथम खंड, पृ. ३९३)

यह वही अर्द्ध-संज्ञाशून्यता की स्थिति है जिसमें केवल पीड़ा का वोध है—दिन-रात जलन होती रहती है; शेष वोध नष्ट हो गया है—वह नस कट चुकी है जिसमे स्नेह सार्थक है।

स्नेह निर्झर वह गया है।
रेत ज्यो तन रह गया है। (अणिमा, पृ. ५५)

स्नेह का निर्झर वह गया है; और सव वोध नष्ट हो गए हैं—स्नेह की नस कट चुकी

है। शरीर रेत-जैसा—रक्तहीन, अशक्त, संज्ञाशून्य—रह गया है। निराला ने जब भारत के शक्तिहीन, निश्चल-तन होने, रग-रग के रक्तरहित होने की बात लिखी थी (गीतिका, पृ. ७६), तब उनकी आँखों के सामने अपनी यही संज्ञाशून्यता की दशा थी।

इस दशा की परिणति है—रचना-क्षमता का विनाश। निराला को लगता है कि अब कविता न लिख पाएँगे।

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है—'अब यहाँ पिक या शिखी
नही आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नही जिसका अर्थ —
जीवन दह गया है।' (अणिमा, पृ. ५५)

निशितम डाल सूख गई है। उस पर कोई पंछी चुपचाप बैठा हो, वह स्थिति नही है, अब वहाँ गाने वाला कोई पंछी आता ही नही। निराला को लगता है, कविता लिखने की शक्ति क्षीण हो गई है; अब जो लिखेंगे, वह अर्थहीन होगा। जीवन दह गया है—इतना ही बोध शेष है। शक्तिक्षीणता पर ऐसा सशक्त गीत रचते हैं, यह निराला के आन्तरिक संघर्ष का प्रमाण है। कविता के अवसाद के नीचे प्रच्छन्न वीरभाव है : संज्ञाशून्य को देखने की शक्ति बनी हुई है, उस दशा पर कविता रचने की शक्ति बनी हुई है।

निराला ने कामना की थी कि पथ पर उनका जीवन वर्षा के जल की तरह भर जाय, उसमे कोई अवसन श्यामा स्नान करने को उतरे। स्नेह-निर्झर के वह जाने पर अब किसी श्यामा के आने की संभावना नही।

अब नही आती पुलिन पर प्रियतमा
श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा।
वह रही है हृदय पर केवल अमा :
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

एक अमानिशा 'राम की शक्तिपूजा' मे थी, एक यहाँ है। वहाँ राम दिखाई देते थे, सिर पर मशाल जल रही थी, शक्ति-साधना की संभावना थी, यहाँ कवि अलक्षित है, वह अपना अलक्षित होना कह गया है, अपनी रचना-क्षमता के विनाश की सूचना दूसरों को दे गया है।

नूपुर के सुर मन्द रहे,
जब न चरण स्वच्छन्द रहे। (अणिमा, पृ. ६)

नूपुरों के सुर मन्द हो गए, छन्द रचने की शक्ति नष्ट हो गई। चरण स्वच्छन्द नहीं है, संसार का बोध मानो जड़ हो गया है। पहले आकाश से निर्मल राका उतरी थी, लगा था, इष्टदेव ने हँसकर कवि की ओर देखा है। प्राणो को झंकृत करके नये छंद बज उठे थे। अब वह प्रकाश उसी आसमान में लौट गया, कवि ने बहुत चाहा कि

उस प्रकाश को, उन छंदों को अपने पास रोके रहे किन्तु वह सफल न हुआ :

नयनों के ही साथ फिरे वे
मेरे घेरे नही घिरे वे,
तुमसे चल तुममें ही पहुँचे
जितने रस आनन्द रहे।

जीते हुए मनुष्य को दुख की तीक्ष्ण पीड़ा में जो मृत्यु का अनुभव होता है, उसमें सबसे तीक्ष्ण अनुभव इस भय की प्रतीति है कि उसकी रचना-क्षमता नष्ट हो गई है।

दुखता रहता है अब जीवन,
पतझड़ का जैसा वन-उपवन। (आराधना, पृ. २२)

भीतर का रस सूखता जाता है, एक रग दुखती है जिससे पता चलता है कि शरीर जीवित है। चेतनाभूमि के जितने हिस्से मे रस सूख गया, उतने मे संज्ञा लौटकर न आई। वृक्ष सूखकर बीज बनता जा रहा है।

डालियाँ बहुत-सी सूख गईं
उनकी न पत्रता हुई नई,
आधे से ज्यादा घटा विटप
बीज को चला है ज्यों क्षण-क्षण।

वृक्ष फिर से बीज बनता जा रहा है; जो डालें सूख गईं, वे सदा को सूख गईं, जिनमें थोड़ी जान है, वे भी सूखती जा रही हैं। यह जीवन में मृत्यु का साक्षात्कार है। वृक्ष जब बीज बनने को होता है, तब उसकी जर्जर छाया मानो बीज के सामने आकर खड़ी हो जाती है।

धीरे-धीरे हँसकर आईं
प्राणों की जर्जर परछाईं। (अर्चना, पृ. ३६)

छाया-पथ पहले से और घना हो गया है, रास्ते में पंक-कर्दम की भरमार है, अंधकार आँखों से सूर्य का प्रकाश ओझल किये है। ऐसे में मृत्यु का प्रकाश दिखाई देता है : **मृत्यु की प्रथम आभा आई।** मृत्यु प्रसन्न मुद्रा मे है, कवि की वीरता पर बलि-बलि जाती है। **अवसन्न भी हूँ प्रसन्न मैं प्राप्तवर** का दूसरा रूप यह है :

पिछले कुछ खेल समाप्त हुए,
जो नहीं मिले वर प्राप्त हुए,
बीसों विष जैसे व्याप्त हुए,
फिर भी न कहीं तुम घबराईं।

जो वर सरस्वती से न मिले थे, वे मृत्यु से मिल गए। जीवन में मृत्यु का दर्शन—इससे बड़ा वर और क्या होगा ? विष निराला के शरीर में व्याप्त हैं; किन्तु उन्हें लगता है, वह उनकी परछाईं है जो इन विषों से पीड़ित है, वह उसे शाबाशी देते हैं कि बीसों विष व्याप्त होने पर भी वह घबराई नहीं।

निराला जीवन मे मृत्यु को इतने निस्संग भाव से देख रहे है कि अपना शरीर

परछाईं जैसा लगता है; परछाईं शरीर से संवद्ध, फिर भी स्वतंत्र है। मृत्यु की प्रक्रिया शरीर से मुक्त होकर स्वतंत्र वस्तुगत प्रक्रिया वन जाती है। यह दुखता रहता है अव जीवन के वाद की स्थिति है, दहति हृदयं गाढो द्वेगं के वाद की दशा, जव जलन का एहसास भी नही रहता। पीड़ा पहले अर्द्ध-संज्ञाशून्यता की दशा मे पहुँचाती है, फिर अर्द्ध-संज्ञाशून्यता नई पीड़ाहीन संज्ञा मे परिवर्तित हो जाती है। अव मन के सामने केवल एक दृश्य, है, मृत्यु का दृश्य, उसका रंग, रूप, आकार, वह सव जो पहले आत्मगत था, अव मानो वस्तुगत वन गया हो।

डूवा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छल छल। (गीतिका, पृ. ७६)

सघन स्तव्ध अंधकार, मंद गंधभार पवन, आकाश ध्यानमग्न, कमल दल मुँदे हुए, नील ज्योति के वसन, नील नयनों मे हँसी, मृत्यु की देवी की छवि पर निराला का मन मुग्ध हो उठता है।

अस्ताचल रवि, जल छल छल छवि,
स्तव्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन। (उप., पृ. ९८)

वही संध्या का समय, संध्या के छल-छल दृगो की जगह विशाल छल-छल जलराशि। आकाश की जगह विश्वकवि स्तव्ध है। नदी पर नाव है, उसमे एक स्त्री वैठी है। ऊपर नीले मेघ हैं, नीचे अमित नील जल दोलित है, रवि ने अंतिम किरण नौका पर वैठी हुई उस देवी को अर्पित कर दी।

नील जलधि जल,
नील गगन तल,
नील कमल दल,
नील नयन द्वय···
नील कुसुम-मग
नील नग्न-नग,
नील शील-जग
नील कराभय। (अर्चना, पृ. ७६)

जल, आकाश, हवा, फूल, पक्षी, पर्वत—सव पर एक ही नीलिमा छाई हुई है। यह मृत्यु की नीलिमा है, एक विराट् वर्ण-संगीत—अमरण भर वरण गान का विरोधी संगीत—जिसे देखकर डर नही लगता। निराला अपने स्वप्न पर मुग्ध होकर उसे नील कराभय की संज्ञा देते हैं। (कर, किरण, प्रकाश, नीली किरणों का प्रकाश जो अभय करने वाला है।)

फिर सारा दृश्य सिमटकर एक ही केन्द्रीय मूर्ति मे घनीभूत हो जाता है; निराला संकेत से मूर्ति और उसकी पार्श्वभूमि दोनो का वर्णन करते हैं:

नील नयन, नील पलक;
नील वदन, नील झलक।

नील-कमल-अमल-हासी,
केवल रवि-रजत-भास,
नील-नील आस-पास,
वारिद नव नील छलक।

नयन, पलक, वदन, झलक—सब केन्द्रीय मूर्ति के है। कमलहास मूर्ति का है, दृश्य में भी कमल हैं। कमल खिलने के लिए प्रकाश चाहिए; प्रकाश नही है, केवल रवि-रजत भास है। आकाश में नीले वादल है, आस-पास सब तरफ वही नीलिमा का संगीत है।

नील नीर पान निरत
जगती के जन अविरत,
नील नाल से अवनत,
तिर्यक-अति-नील अलक।

नील नीर पीने वाला कवि अकेला नही; जीवन मे मृत्यु दृश्य देखने वाले और भी हैं। नील नाल से एक तिर्यक् नील अलक लटकी हुई है। यह नील अलक मृत्यु की देवी की है, नाल जैसी उसकी गर्दन है जिस पर से होती हुई तिरछी लट नीचे को आती है। उस तिर्यक् नील अलक के सौन्दर्य पर निराला रीझे हैं; मृत्यु के भय का चिह्न नही है।

फिर यह नीलिमा भी तिरोहित हो जाती है। विश्व अपनी पूर्णता में साकार हो उठता है, शून्य के रन्ध्र भर जाते हैं क्योंकि मृत्यु जीवन की पूर्णता है।

ऊर्ध्व चन्द्र, अधर चन्द्र,
माझ मान मेघ मन्द्र।
क्षण-क्षण विद्युत् प्रकाश,
गुरु गर्जन मधुर भास,
कुज्झटिका अट्टहास
अन्तर्दृग विनिस्तन्द्र।
विश्व अखिल मुकुलबन्ध,
जैसे यतिहीन छन्द,
सुख की गति और मन्द,
भरे एक-एक रन्ध्र। (आराधना, पृ. १३)

सूर्य नही है, चन्द्र है। चन्द्रमा ऊर्ध्व स्तर पर है; अधर मे उसका प्रकाश फैला है। धरती तक उसका प्रकाश नही आता, वीच मे घने वादल है। विजली चमकती है, बादल गरजते है, कुज्झटिका का अट्टहास सुनाई देता है। भीतर की वे आँखें जिनमे तन्द्रा नही है, यह सब देखती और सुनती है। अखिल विश्व मुकुलवन्ध के समान है, फूल खिलने के वाद फिर जैसे अपने दल समेट ले। विश्व का यह रूप ध्वनि की पूर्णता का रूप है, उस छन्द के समान है, जिसमें यति नही है। सुख की गति और मंद हो गई है; जीवन के सारे वोध सिमटकर समाप्त होने वाले है। यह समाप्ति

जीवन की पूर्णता भी है। कली की रुद्ध गन्धधारा ने ध्वनि बनकर शून्य के रन्ध्र भर दिए थे—

> मधुर कलरव भरे
> शून्य शत-शत रन्ध्र— (गीतिका)

वैसी ही रन्ध्र भरने की बात यहाँ है।

निराला ने मृत्यु पर बहुत लिखा है और आरम्भ से ही लिखा है। कहीं मृत्यु का भय है, कही मृत्यु का वरण करके नई शक्ति प्राप्त करने की बात है। प्रतिद्वंद्वी रूप में मृत्यु अटल है; उससे निपटने के पैंतरे अलग-अलग है। जीवन और मृत्यु की द्वाभा मे वह अपनी अर्द्ध-संज्ञाशून्यता के, रचनाशक्ति के विनाशभय के गीत गाते हैं। एक स्थिति ऐसी है जिसमें मृत्यु प्रतिद्वंद्वी नही, उत्पीड़क नही; निराला के विनिस्तन्द्र अन्तर्दृग उसकी छवि देखते, रीझते, उसे जीवन की सहज परिणति के रूप में स्वीकार करते हैं।

कला

वक्तृत्वकला

किसी कवि की निन्दा करना हो तो लोग कहते है—कविता क्या लिखता है, भाषण करता है। कविता और भाषण दो अलग विधाएँ मान ली गई हैं; वे एक-दूसरे से भिन्न ही नही, विरोधी भी हैं। कविता मे भाषण हो, यह अत्याचार कविता-प्रेमी पाठक सहने को तैयार नही है। रामायण और महाभारत मे भाषणो की भरमार है जिनमे कुछ अत्यन्त प्रमादपूर्ण हैं और कुछ कविता रूप मे असफल है क्योंकि भाषण रूप मे वे असफल है। सिसरो और लौञ्जाइनस जैसे प्राचीन यूरोपीय लेखकों ने भाषण-कला को काव्यकला के समकक्ष माना है, कभी-कभी दोनों में भेद नही किया। लौञ्जाइनस ने काव्य में उदात्त तत्त्व की चर्चा करते हुए कवि होमर के साथ प्रसिद्ध भाषणकर्ता देमस्थनीज से उद्धरण दिए हैं। शेक्सपियर के नाटकों और बायरन की अनेक कविताओं में उस पुरानी वक्तृत्वकला के दर्शन होते हैं। वर्तमान काल मे यूरोप और भारत—दोनो जगह इस साहित्यिक कला का ह्रास होता गया है। आधुनिक हिन्दी में इस कला का प्रायः अभाव है; केवल निराला-काव्य में उसका पूर्ण विकास हुआ है।

'पंचवटी प्रसंग' में राम वेदान्त पर और लक्ष्मण सेवा के महत्त्व पर भाषण करते है और ये भाषण असफल हैं। इसका कारण यह है कि निराला वक्तृत्वकला को रामकृष्ण परमहंस के वेदान्त से और तुलसीदास की भक्ति से दब जाने देते है। यहाँ वक्तृत्वकला मे किसी के तर्कों का खंडन नहीं करना, किसी को प्रभावित नही करना, किसी तनाव और घुमाव-फिराव के बिना अपनी बात कह देना है। प्रलय किसे कहते हैं? मन, बुद्धि और अहंकार का लय प्रलय है। इस तरह।

किन्तु 'पंचवटी प्रसंग' के तीसरे अंश में जहाँ शूर्पणखा आती है, वक्तृत्वकला का वैभव सहसा प्रकट हो जाता है। वह रूप-गर्विता नारी है जो अपनी विजयगाथा का स्मरण करके मन को आश्वस्त कर रही है। उसे उन अप्सराओं से ईर्ष्या है जिन्हे देवों और दानवों ने समुद्र को मथकर निकाला था। वह विधाता को बूढ़ा कहकर उस पर हँसती है, स्वयं अपने नख-शिख का वर्णन करती है, ऋषियो-मुनियो के धैर्य छूट जाने पर प्रसन्न होती है। वह सौन्दर्य से पराजित होने वाले पुरुषों पर व्यंग्य करती है किन्तु अपनी विजय पर बहुत अधिक विश्वास प्रकट करने से स्वयं प्रच्छन्न व्यंग्य का शिकार होती है। यह रूप-गर्विता नारी अब राम से परास्त होगी—यह भाव पाठक या श्रोता के मन में उत्पन्न होता है। शूर्पणखा के भाषण के समय उसके

साथ राक्षस नहीं हैं, न उसके सामने ऋषि-मुनि हैं। किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ये सब परिवेश में इधर-उधर कहीं विद्यमान हैं; शूर्पणखा किसी संघर्ष के केन्द्र में है, यह बात पाठक उसके भाषण से समझ जाता है। भाषण में इस तरह एक नाटकीयता है जो वक्तृत्वकला को निखारती है। राम और लक्ष्मण के भाषणों मे इसी नाटकीयता का अभाव है।

परिमल की भूमिका मे निराला ने कवित्त के बारे में लिखा था, "नाटक आदि के समय इसे काफी प्रवाह के साथ पढ़ भी सकते है। आज भी हम रामलीलाओं मे, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद के समय, वार्तालाप मे इस छन्द का चमत्कार प्रत्यक्ष कर लेते हैं···नाटकों में सबसे अधिक रोचकता इसी कवित्त-छन्द की बुनियाद पर लिखे गए स्वच्छन्द छन्द द्वारा आ सकती है।" कवित्त और मुक्तछन्द की चर्चा करते समय निराला के सामने आत्मविस्मृति की दशा मे भाव-प्रकाशन की समस्या नही है; उनके सामने नाटक है, नाटकीयता है। उनका विचार था कि मुक्तछन्द नाट्यकला के लिए विशेष उपयुक्त है किन्तु उसी छन्द का उपयोग राम, लक्ष्मण और सीता ने भी किया है, वहाँ नाट्यकला के लिए उसकी विशेष उपयोगिता मानो खत्म हो जाती है। मुख्य बात छन्द की नहीं, नाट्यकला की है।

महाराज शिवाजी का पत्र एक लम्बी वक्तृता है। इसमें पत्र-लेखन-कला नहीं, भाषणकला है। कविता मानो लिखी इस उद्देश्य से गई है कि मंच पर कुशल अभिनेता उचित भावभंगी के साथ उसे पढ़कर दर्शकों को प्रभावित करेगा। वक्ता एक है किन्तु पृष्ठभूमि में औरंगज़ेब, जयसिंह, देशव्यापी घटनाचक्र है। एक संघर्ष समाप्त हो चुका है, दूसरे की तैयारी है। शिवाजी जयसिंह का आत्मसम्मान जगाते हैं, उत्साहित करते है, पीठ थपथपाते हैं, फिर उसकी भर्त्सना भी करते हैं। भर्त्सना का प्रमुख लक्ष्य औरंगज़ेब है, गौण रूप से जयसिंह। भाषण के ओजस्वी प्रवाह से वह श्रोता को झकझोर देते है, उसे सोचने का मौका नही देते। तर्क प्रस्तुत करने के साथ शिवाजी जयसिंह को भावात्मक स्तर पर उत्तेजित करते है। भाषण-कला की सफलता का यह रहस्य है। किन्तु भाषण लंबा है और कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ शिथिलता है।

जागो फिर एक बार (२) मे प्रवाह अधिक संयत, नाटकीयता का रंग और गहरा है। सेना है, युद्ध है, पराजय है, पराजय स्वीकार करने वालो की भर्त्सना है। वेदान्त है किन्तु नाटकीयता पर हावी होने के बदले वह उसके आश्रित है। मूल ध्येय वेदान्त का प्रतिपादन नहीं, युद्ध में विजय-प्राप्ति है। पूरी कविता किसी एक व्यक्ति का भाषण है किन्तु बीच मे वह सीधे एक श्रोता से कहता है,

पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नहीं,
कालचक्र में हो दबे
आज तुम राजकुँवर !—समर सरताज !

शिवाजी की जगह गुरु गोविन्दसिंह हैं; जयसिंह की जगह यह राजकुँवर। वेदान्त

के सहारे वीरता का भाव जगाने के साथ आत्म-समर्पण करने वालों पर व्यंग्य भी किया गया है। शिवाजी के पत्र की विशेपताएँ यहाँ सिमटकर और भी तीव्र रूप से उभरकर सामने आती हैं।

कविता में **जागो फिर एक बार** की कड़ी कई वार दोहराई जाती है। वक्तृता की एक लहर समाप्त होने पर इस कड़ी की आवृत्ति होती है; हर वार उसकी सार्थकता मानो वढ़ती जाती है। इस तरह की आवृत्ति—यद्यपि ठीक इसी ढंग से नहीं—अनेक वक्तृताओं में मिलेगी। निराला ने जो नया काम किया है, वह यह कि प्रत्येक लहर को दूसरी से, सामान्य तर्कभूमि पर, जोड़ा नहीं है। हर मंज़िल पर नया दृश्य, नई तर्क-योजना, भावोत्तेजन की नई सामग्री। शेरों की माँद में स्यार के आने के वाद **सत श्री अकाल, भाल अनल धक-धक कर जला**। सिंहनी और मेपमाता के व्यवहारों का वैपम्य दिखाने के वाद अचानक राजकुँवर का सम्वोधन। ऊपर से प्रवाह विच्छिन्न है, भीतर से अविच्छिन्न। गति की प्रत्येक भंगिमा के साथ नया विस्मय, नया भावोत्कर्ष। अपने नाट्यकौशल से निराला ने वक्तृत्वकला को इस तरह निखारा है।

शृंगार और सौन्दर्य के स्तर पर इससे मिलती-जुलती कला का प्रदर्शन **जागो फिर एक वार** (१) में है। वक्तृता नारी की है, उद्देश्य है सोते हुए पुरुप को प्रभावित करना। वीती रातों की स्मृति, प्रकृति के भावोद्दीपक आलंवन, हृदय में तृप्त होने की आकाक्षा, प्रेमी की वैसी ही प्रगाढ़ निद्रा, भावों का ऊहापोह, **जागो फिर एक वार** की आवृत्ति से व्यंग्यपूर्ण निराशा का वोध, समस्त वक्तृत्व-कौशल मानो एक वार नहीं, वार-वार परास्त होता हो। वेदान्त यहाँ भी है किन्तु शृंगार भाव से दवा हुआ है; सोते हुए पुरुप पर क्रोध आता है, हज़ारों वर्प हो गए और वह प्रकृति-प्रिया की पुकार नहीं सुनता!

अन्य वक्तृताओं से अन्तर यहाँ यह है कि अनेक श्रोताओं की जगह एक ही श्रोता को प्रभावित करना उद्देश्य है किन्तु वह एक भी सो रहा है।

'वादल राग' (४) का श्रोता सो तो नहीं रहा लेकिन वहरा जरूर है। **जागो फिर एक वार** की नारी की तरह कोमल कंठ से वह विनती नहीं करता। उसकी मधुर मन्द्र ध्वनि वन-उपवन पर छा जाती है। परिणाम :

वधिर विश्व के कानों में
भरते हो अपना राग।

निराला इस वादल के स्वागत में भापण करते हैं, आकाश और पृथ्वी के वीच उसके संगीत की प्रशंसा करके उसे फिर गाने के लिए उत्साहित करते हैं किन्तु है वह उनके सामने शिशु ही (यद्यपि अनन्त का शिशु है)।

मुक्त शिशु! पुनः पुनः एक ही राग अनुराग।

'वादल राग' (२) में स्वागत भापण का उद्देश्य और भी स्पप्ट है। स्वागत भापण क्या है, क्रान्ति के लिए ललकार है। सावन घोर गगन का सम्राट् कहकर निराला उसका आत्म-सम्मान जगाते हैं। आत्म-सम्मान के जगाने पर यह विप्लव का

जलधर भय के मायामय आँगन पर बरसेगा। वह बरसे, बिना बरसे भाग न जाए, इसलिए वक्तृत्वकला आवश्यक हुई। शिवाजी के पत्र और जागो फिर एक बार (२) से 'बादल राग' (२) की समानता इस बात मे है कि तीनों कविताओं मे उद्देश्य श्रोता को उत्तेजित करके उसे कर्ममय जीवन की ओर उन्मुख करना है।

'बादल राग' (६) में निराला का दूसरा स्वागत भाषण है और यह पहले वाले से और भी जोरदार है। इसकी विशेषता यह है कि निराला कविता के आदि, मध्य और अन्त में करुणा का भाव जगाकर बादल को वीर कर्म के लिए ललकारते है। आरम्भ में ही अस्थिर सुख पर दुख की छाया तैरती है किन्तु यह दुख ऊपर उडकर नही चला जाता। धरती में जहाँ कीचड़ है, वहाँ भी दुख है; कमल से नीर छलकता है। रोग-शोक से पीड़ित शैशव का सुकुमार शरीर है, भले ही वह यह सब दुख हँसकर सह लेता हो। अन्त में जीर्ण-बाहु, शीर्ण-शरीर अधीर कृषक है जिसका सार चूस लिया गया है और जो हाड़ो के बल ही जी रहा है। शिवाजी के पत्र में जहाँ-तहाँ करुणा का पुट है किन्तु वीर भावना के साथ करुणा का ऐसा गहरा मिश्रण यही है। बादल की शक्ति, उद्धत पर्वतो को ध्वस्त करने की क्षमता से जर्जर कृषक की दशा का वैषम्य प्रकट करके निराला बादल को उत्तेजित करते हैं, साथ ही यह कहकर उसे प्रोत्साहित भी करते हैं कि सजग सुप्त अंकुर उसे आशा से देख रहे है, अपना सिर भी ऊँचा कर रहे है, छोटे पौधे हर्ष से हँस भी रहे हैं। जिसे परास्त करना है, उसकी कमजोरी पर व्यंग्य करके बादल को आश्वस्त करते हैं। ये जो अंगना अंग से लिपट करके भी बादल का गर्जन सुनकर आतंक अक पर कॉप रहे है, उन्हें परास्त करना कौन बड़ी बात है !

इस वक्तृता की एक विशेषता यह भी है कि निराला बादल से सीधे अपील नही करते कि वह भय के मायामय आँगन पर बरसे। उसे जो कुछ करना है, वह सब उसे सकेत से बताते हैं। व्यंजना की इस वक्रता से भाषण का प्रभाव कम न होकर और बढ गया है। साथ ही तर्क-योजना अमूर्त स्तर पर न होकर बादल, पौधे, कृषक, धनी वर्ग—इन सबकी स्थिति के मूर्त चित्रण द्वारा सम्पन्न हुई है। केवल बीच-बीच मे कही टिप्पणियों के तौर पर निराला इस मूर्त चित्रण का मर्म स्पष्ट करते जाते है जैसे— विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' उदात्त शैली मे निराला का अन्यतम भाषण है। यहाँ सम्राट् को प्रभावित या उत्तेजित करना नही है, प्रभावित करना है मंच के सामने बैठे हुए श्रोताओ को। संबोधित हैं एडवर्ड किन्तु वह निराला के सामने नही, कहीं पार्श्वभूमि मे छिपे हुए है। उनकी प्रशस्ति से पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए श्रोताओ को उत्तेजित करना है। कविता मे दो तरह की भव्यता और गरिमा का चित्रण है और दोनो में परस्पर वैषम्य है। एक ओर सात समुद्रो को पार करता हुआ साम्राज्य है, लक्ष्मी का मणि-लाल-जटित महासद्म, देवेश्वर के उपयुक्त सिंहासन है, दूसरी ओर वह महाशक्ति है जिसके दीपक सूर्य-चन्द्र हैं, जिसके स्पर्श से प्रणय की प्रियंगु-शाखा खिली हुई है। निराला संकेत करते है कि आँखो में

चकाचौंध पैदा करने वाले साम्राज्य के वैभव का आधार काले-गोरे का भेद, जन साधारण का उत्पीड़न है। इस कलुषित वैभव के मुकाबले बीसवी सदी मे ज्ञान के महाम्बुधि का गर्जन है; इस गर्जन से धन-वैभव वैसे ही परास्त होता है जैसे बादल के गर्जन से धनी अपने आतंक अंक पर काँप उठते है। यह ज्ञान का स्वर साहित्यिक स्वर भी है जो धन और मान के बाँध को जर्जर कर देता है। एडवर्ड अष्टम ने इस मानवतावादी संस्कृति को अपनाया है, सिंहासन छोड़कर जनसाधारण की पृथ्वी पर पैर रखा है, एक नये सांस्कृतिक आधार पर यूरोप और अमेरिका को मिलाया है। साम्राज्य का सप्त समुद्र व्यापी प्रसार भव्य है, यूरोप और अमेरिका को मिलाने वाली नई संस्कृति का प्रसार और भी भव्य है। इन दोनों भव्यताओ के वैषम्य का चित्रण करके निराला कविता में नाटकीय द्वन्द्व की सृष्टि करते है। ज्ञान की भव्यता साम्राज्य की महिमा पर—कवि के कुछ स्पष्ट कहे बिना ही—व्यंग्य बन जाती है। निराला की वक्तृत्वकला का उद्देश्य श्रोताओं को इस संस्कृति के पक्ष में प्रभावित करना है।

'बादल राग' (६) की तरह यहाँ भी कविता के प्रत्येक चरण में तर्क-योजना की एक कड़ी समाप्त होती है; तर्क-योजना अमूर्त कथन के द्वारा नहीं, मूर्त चित्रण के साथ अग्रसर होती है। जो भव्यता इस चित्रण मे है, वही छन्द की उदात्त गति में है। भाषा की वन्दना करते हुए निराला ने जिन स्वरोर्मियो का ध्यान किया था (गीतिका, पृ. ८१), वे यहाँ हैं। शब्दों की ध्वनि और छन्द के विषम प्रवाह से निराला यहाँ श्रोता को जितना आन्दोलित करते हैं, उससे अधिक चकित और स्तब्ध कर देते हैं। इस कविता का ध्वनि-प्रवाह अपने मे—सापेक्ष रूप से स्वतन्त्र—वक्तृत्वकला है।

निराला की अनेक रचनाओं मे, जिनका उद्देश्य ही उद्बोधन है, इसी भाषण-कला का चमत्कार है। **अनामिका** में कविता है 'उद्बोधन'। शुरू यों होती है :

> गरज-गरज घन अंधकार मे गा अपने संगीत,
> बंधु, वे बाधा बन्ध विहीन।

जिसे धारा-प्रवाह भाषण कहते है, वह शब्दों के ध्वनि-प्रवाह से यहाँ व्यंजित होता है। एक ओर सदियों का दारुण हाहाकार, दूसरी ओर नूतन अनुराग संचरित करने की क्षमता; एक ओर पीले निर्जीव पत्र, दूसरी ओर पृथ्वी से आकाश तक नये जीवन का उल्लास। इन दोनों के वैषम्य से नाटकीयता की सृष्टि। निष्ठुर झंकार से नये सुकोमल जीवन को लाने का प्रयास—यह विस्मयजनक विरोधाभास। तर्क-योजना के साथ मूर्त चित्रण, एक ही बात कई तरह से दोहराकर श्रोता को प्रभावित करने का प्रयास। एक ललकार, एक चुनौती जिससे श्रोता-'बन्धु' को उठकर खड़े हो जाना पड़े।

निराला इस वक्तृत्वकला का उपयोग लंबी कविताओं मे ही नही, गीतों मे भी करते हैं।

जीवन की तरी खोल दे रे
जग की उत्ताल तरंगों पर (गीतिका, पृ. ५५)

—यह स्वयं को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास है। सामने समुद्र का प्रसार दिखाने के बाद अकर्मण्यता पर स्वयं—अथवा श्रोता—को धिक्कारते हुए अनुकूल परिस्थितियों की ओर संकेत करके उत्साह का भाव जगाते हैं। इसी तरह बेला में,

तू कभी न ले दूसरी आड़,
शत्रु को समर जीते पछाड़। (पृ. ६३)

भविष्य की संभावनाओं के प्रति विश्वास जगाकर मन को आश्वस्त करना, संघर्ष में नये साहस से फिर एक बार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना कवि का उद्देश्य है। जिन गीतों में उद्देश्य देश के मनोबल को दृढ़ करना, जनता को संघर्ष के लिए प्रेरित करना है, उनमें भी धीर, संयत, ओजपूर्ण ध्वनि-प्रवाह के साथ वक्तृत्वकला का ही उपयोग किया गया है।

फूटो फिर, फिर से तुम
रुद्ध-कंठ सामगान! (गीतिका, पृ. ६८) अथवा—
जागा दिशा-ज्ञान;
उगा रवि पूर्व को गगन में, नव-यान! (उप., पृ. ८५)

इस तरह के गीतों में वक्तृत्वकला गेयता में घुल-मिल गई है किन्तु इन गीतों को पढ़ा जाय, जोर से पढ़कर सुनाया जाय, तो उनकी शब्द-योजना का उद्देश्य प्रकट हो जाएगा कि वक्तृत्वकला की भंगिमाओं से श्रोता को प्रभावित करना है, उसे भाव में डूवा हुआ न छोड़कर कर्म में प्रवृत्त करना है।

'राम की शक्तिपूजा' का प्रारंभिक अंश—रवि हुआ अस्त से लेकर रावण सम्वरं तक—एक वक्तृता है।

कविता शुरू होती है **लौटे** युग दल से अथवा कहें कि नाटक शुरू होता है सेनाओं की वापसी के वर्णन से। राम रंगमंच पर आ जाते हैं और अन्त तक दर्शक के सामने से हटते नहीं। किन्तु मंच पर उनके आने से पहले कथावाचक पूर्व घटनाओं की सूचना देता है, श्रोताओं को नाटक की मूल घटनाओं के प्रति सचेत करता है। लोकमंच की परंपरा से कथावाचक भी बोलता है, नाटक के पात्र भी। 'राम की शक्तिपूजा' का प्रारम्भिक अंश उसी कथावाचक का अत्यन्त ओजस्वी भाषण है। यह कथावाचक अभिनेता भी है। कुशल अभिनयकला के बिना उसका भाषण पढ़ा ही नहीं जा सकता। संघर्ष में जितने विरोधी तत्त्व हैं, उन्हें उसने एक ही जगह समेटकर, युद्ध की भीषणता, वीरता का प्रदर्शन, पराजय, निरन्तर प्रयास, इन सब का घटाटोप-चित्रण करके श्रोता को चकित और क्षुब्ध, विस्मित और विमुग्ध कर दिया है। कविता के अगले अंशों में निराला का ध्यान राम और उनके परिवेश पर केन्द्रित रहता है, यहाँ उनकी निगाह दर्शकों की ओर भी है, देखना चाहते हैं अठारह पंक्तियों में फैले हुए उनके काव्य के सबसे लंबे वाक्य के अजस्र ध्वनि-प्रवाह का प्रभाव उन पर कैसा पड़ता है। इस भाषण में ओज की जितनी मात्रा है,

उतनी राम के किसी भाषण में नहीं। उसकी तुलना केवल महावीर की उड़ान के वर्णन से की जा सकती है।

महावीर के आकाश में पहुँचने पर शिव दुर्गा को सचेत करते है कि इनसे युद्ध करने पर हार होगी। उनका कथन भाषण नही, पर नाटक का संवाद अवश्य है। किंतु इसके बाद अंजना जब हनुमान की भर्त्सना करती हैं तब वह एक भाषण ही दे डालती है और उसमें उनके दाँव-पेंच कुछ निराले ही दिखाई देते है। उद्देश्य अन्य भाषणों की तरह श्रोता को उत्तेजित करना नही वरन् व्यंग्य और भर्त्सना द्वारा उसके उत्तेजित मन को शान्त करना है। लड़कपन के उद्धत व्यवहारों से माँ को कष्ट हुआ है, अपने दुख की ओर संकेत करके अंजना महावीर को चुप कर देती हैं, बोलने का अवसर ही नही देती। तुम सेवक हो, सेवक की तरह रहो; स्वामी की आज्ञा बिना यहाँ शिव और दुर्गा से लड़ने-भिड़ने कैसे आ गए? अंजना से यह फटकार सुनकर हनुमान चुपचाप, नम्र होकर नीचे उतर आते हैं।

अंजना के भाषण मे कोई ज़ोरदार तर्क नहीं है किन्तु उन्होने उस अस्त्र का प्रयोग किया है जिसका प्रयोग स्त्रियाँ अकसर करती है, अपने दुख की ओर संकेत करके विरोधी को निरस्त्र कर देती है। फिर जब स्त्री माता हो, तब पुत्र महावीर ही क्यो न हो, हारना तो उसे पड़ेगा ही। इसके बाद विभीषण का लंबा भाषण है, अत्यंत कलापूर्ण, निराला की वक्तृताओं में बड़ी चतुराई और कौशल से रचा हुआ भाषण। यह नाटक का साधारण संवाद नही है, साधारण स्वर में राम से विभीषण की बातचीत नहीं है। सामने पूरी सभा है, विभीषण सबोधित करते है राम को, लक्ष्य है सभा को प्रभावित करना, सभा के बीच राम को लज्जित करना, लज्जित करके युद्ध के लिए फिर उत्तेजित करना। लक्ष्मण-महावीर आदि की वीरता का वर्णन करके वह सभा को अपने पक्ष में करना चाहते है, फिर कूटनीतिक ढंग से राम पर यह आरोप लगाते है कि वह युद्ध से पीठ फेर रहे है। यह भी कैसी कायरता कि जब सीता से मिलने का समय आया तब राम 'निर्दय' होकर अपना हाथ खीच रहे है। विभीषण राम पर व्यंग्य करते है, उनकी भर्त्सना करते हैं, फिर स्वयं प्रच्छन्न व्यंग्य और भर्त्सना के शिकार होते है। उन्हें याद आता है, रावण ने उनके लात मारी थी। इससे स्वयं उत्तेजित होकर लड़ने के बदले वह खेद प्रकट करते है कि उन्हें लात मारने वाला रावण सीता को कष्ट देगा, अपनी सभा मे बैठकर जीत की डीग मारेगा। विभीषण के कूटनीतिक भाषण का स्वार्थपूर्ण उद्देश्य अंतिम पक्ति से उद्घाटित हो जाता है,

मैं बना किंतु लकापति, धिक, राघव, धिक धिक!

विभीषण अपने उद्देश्य में सफल हुए क्योंकि उनका भाषण सुनकर—'सब सभा रही निस्तब्ध'। राम चुपचाप भाषण सुन लेते हैं जैसे 'ओजस्वी शब्दो' के प्रभाव से उन्हें कोई वास्ता न हो। विभीषण ने ओजस्वी भाषण दिया पर उसकी ओजस्विता ही उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी है क्योंकि मूल उद्देश्य दूसरे के सहारे लंका का राज पाना है। फिर भी राम की आँखों में आँसू आ जाते है; उनके मन

में वैसे ही पराजय की भारी वेदना है, विभीषण उत्तेजक का काम करते हैं। तटस्थ भाव से भाषण सुनने पर भी वेदना द्रवित हो उठती है। ऐसी है विभीषण की भाषण कला।

उसके बाद राम संयत होकर स्वयं लंबा भाषण देते है किन्तु यह भाषण जितना दूसरों के लिए है, उतना ही स्वयं के लिए। वह एक तरह का स्वगत-कथन है जिसमें दूसरो को प्रभावित करने के बदले अपनी मनोदशाओं को देखने, उनका विश्लेषण करने का प्रयास अधिक है। इस स्वगत-कथन की कला वक्तृत्वकला से भिन्न है और उस पर अलग से विचार करना आवश्यक है।

निराला की वक्तृत्वकला उनके भावबोध से संबद्ध है। यह उस कवि की कला है जो अन्तर्मुखी होकर एकान्त में जीवन नही बिताता वरन् दूसरों का सामना करता है, उन्हे प्रभावित करना जानता है। इस कला का सम्बन्ध एक हद तक राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से है, उस आन्दोलन में सुने हुए भाषणों से है। 'बादल राग' (६), 'जागो फिर एक बार' (२) और 'महाराज शिवाजी का पत्र' जैसी कविताओं में आन्तरिक साम्य है, कवि करुणा और वीरता के भाव जगाकर श्रोता को संघर्ष के लिए उत्साहित करता है। यह आन्तरिक साम्य स्वाधीनता आन्दोलन के प्रभाव के कारण है। काव्य का ओजपूर्ण प्रवाह इस वक्तृत्वकला की विशेषता है। निराला अमूर्त तर्क योजना छोड़कर, या उसके साथ, जितना ही मूर्त चित्रण का सहारा लेते हैं, उतना ही यह कला सफल होती है। इस वक्तृत्वकला मे यथेष्ट विविधता है। उसका उपयोग वीरता के अलावा शृंगार की भूमि पर भी होता है। उद्देश्य की भिन्नता के साथ वक्तृता के दाँव-पेंच भी बदलते हैं। भावों और स्थितियों का वैषम्य प्रदर्शन, कही खुलकर, कही प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य, इस कला की नाटकीयता का प्रमाण है। गीतों से लेकर लंबी कविताओं तक इस कला का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

स्वगत

राम कहते है : यह दैवी विधान समझ में नही आता कि शक्ति ने अधर्मरत रावण को अपनाया, धर्मरत राम को पराया माना। यह सब शक्ति का खेल है; न्याय-अन्याय के विवेक से उसका कोई सम्बन्ध नही है। राम युद्ध की बात सोचते हुए पुराने दृश्यों मे खो जाते हैं। लक्ष्य पर बार-बार उन्होंने वार किए किन्तु वे सब विफल हुए। अपने सहयोगियों को विचलित होते देखकर वह युद्ध के लिए जितना

ही उद्यत होते, उतना ही शक्ति की आँखों से आग की चिनगारियाँ छूटने लगतीं। अन्त में उन्होंने राम से आँखें मिलाई; पुरुष परास्त हुआ, राम के हाथ से धनुष की डोरी खिंची ही नहीं।

पराजय के क्षण में वीर की मनोदशा का चित्रण—यह है राम का स्वगत-कथन। एक हद तक राम विभीषण को उत्तर भी दे रहे हैं, कारण बता रहे हैं कि युद्ध मे विजय क्यों नहीं मिल रही। साथ ही वह आत्म-विश्लेषण कर रहे हैं, जानना चाहते है, कमज़ोरी कहाँ है। अस्त्रों में कोई दोष नहीं, उनमे संपूर्ण संसार को जीतने की सामर्थ्य है। फिर भी वे व्यर्थ हो गए। सामने एक दैवी विधान है जिससे पार पाना राम के वश मे नहीं। इस नियति से टकराने पर जो गहरी वेदना राम के मन मे उत्पन्न होती है, न्याय और नैतिकता से शून्य ससार मे अपने से बड़ी शक्ति द्वारा पराजित होने पर वीर योद्धा की मर्मवेदना राम के स्वगत-कथन मे है। ट्रैजेडी के जिस स्तर पर निराला कविता रच रहे है, उसका सबसे मार्मिक अंश यह स्वगत-कथन है। एक द्वंद्व राम और रावण से बीच है, दूसरा द्वंद्व राम के मन मे है। बाह्य द्वंद्व से यह राम का अन्तर्द्वंद्व जुड़ा हुआ है; दोनों के वैषम्य और सामंजस्य से नाटक में पूर्णता आती है। राम के मन में कहीं ईर्ष्या का भाव भी है। राम को अपने अंक में लेने के बदले शक्ति रावण को अपने अंक में लिए है और एकदम निर्लज्ज भाव से लिए है। मानो चन्द्रमा सारे संसार को अपना लांछन दिखा रहा हो। ईर्ष्या, गर्व, पराजय की ग्लानि, अपने पक्ष के न्यायपूर्ण होने का विश्वास, नियति से पार न पाने पर घोर निराशा—राम के मन मे जो भाव-मथन हो रहा है, उसका चित्रण है उनके स्वगत-कथन में।

निराला ने 'वनवेला' मे लिखा :

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार !

राम-रावण के युद्ध की संध्या की तरह यहाँ भी 'प्रलय का दृश्य' उपस्थित है, आकाश पीताभ, अग्निमय है मानो 'दुर्जय' हो। 'मर्माहत स्वर' भरकर निराला एकान्त में बैठते हैं, फिर उनका स्वगत-कथन आरम्भ होता है—मैं भी राजपुत्र होता तो क्यों अपमानित होकर जीवन बिताता। विदेश मे शिक्षा मिलती, लार्ड घराने के युवकों के साथ दावतें उड़ाता, देश में लौटने पर नेता बन जाता, लोगों के सामने समाजवाद की बातें करता, 'राष्ट्रीय' कवि वंदना के गीत रचते।

निराला आँखें बन्द करके यह सब सोचते है, नियति के अन्याय का विश्लेषण करते हैं। वनवेला की सुगन्ध उन्हें जगा देती है, तभी 'खोली आँखें आतुरता से', उससे पहले आँखें बन्द किये हुए वह मंच पर विलायत से लौटे हुए नेता का अभिनय देख रहे थे, उस अभिनय की नकल उतार रहे थे। पत्रों के प्रतिनिधि दल में हलचल मच गई है, हाथों में कैमरा लिए वे नेता के पास उसका संदेश पाने को दौड़ते है। नेताजी सभ्य बनकर इधर-उधर मुँह घुमाते हुए खड़े हो जाते है, सिर झुकाते हैं, देश को समानता और साम्यवाद का संदेश देते है। स्वर में बड़ी दृढ़ता है, भीतरी

खोखलापन छिपाने के लिए। निराला इस दृढ़ता पर हँसते हैं, नेता के समूचे अभिनय पर हँसते हैं, उसकी नकल उतारते हुए हँसते हैं। नाटक के भीतर जैसे दूसरा नाटक हो, छाया-नाटक, जिसमे पात्र मूक अभिनय करते हैं, उनके होठ हिलते हैं, लगता है बोल रहे हैं, किन्तु सुनाई कुछ नहीं देता। आशय समझ मे आता है कि देश को साम्यवाद का उपदेश देकर अपना खोखलापन छिपा रहे है। स्वर मे दृढ़ता है, वह शायद मुख-मुद्रा से जानी जाती है। निराला मन की व्यथा को इस तरह नाटकीय रूप देते हैं। मन मे व्यथा है, ग्लानि है, अपनी उच्चता और दूसरो की तुच्छता की प्रतीति है, दुख के साथ तीव्र व्यंग्य भाव, हास्य और विनोद भी है। ऐसा भाव-मंथन निराला के स्वगत-कथन में है। यह स्वगत-कथन एक बड़े नाटक का अंश है जिसमे निराला आत्म-ग्लानि का भाव दबाकर उसे नई शक्ति मे परिवर्तित करना चाहते है। शक्ति बाहर से आकर राम के वदन मे लीन न होगी, निराला को शक्ति अपने मन के भीतर से ही पाना है।

'सरोज-स्मृति' मे निराला का स्वगत-कथन। कल्पना-नेत्रो के सामने दिवंगता पुत्री है, स्मृति मे जीवन का सुदीर्घ समर, उसमे कवि की पराजय है:

> लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
> हारता रहा मैं स्वार्थ समर।

वही पराजय की वेदना, दूसरो के सामने हीन ठहराए जाने की ग्लानि। नई बात यह कि इस पराजय से निराला ही नही, परिवार के अन्य जन भी पीड़ित होते है। विशेष रूप से कन्या की पीड़ा मन को उद्विग्न करती है, अपनी आँखो के आँसुओं मे परिवार के दुखी जनो के प्रतिबिम्ब उन्होने देखे है। नियति से वश नही है; वह उसकी दुत्कार को हिन्दी का स्नेहोपहार कहकर स्वीकार करते हैं, कटु व्यंग्य से वह मन का भार हल्का करते हैं। गर्व है, आत्मविश्वास है कि जहाँ साहित्य की सच्ची परख है, वहाँ अपनी प्रतिभा के प्रमाण निराला दे चुके है। उन्हे वह युद्ध याद आता है,

> एक साथ जब शत घात घूर्ण
> आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
> देखता रहा मैं खड़ा अपल
> वह शरक्षेप, वह रण-कौशल।
> व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
> क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कंठ-फल।

युद्ध समाप्त हुआ, उसे याद करते हुए निराला का स्वगत-कथन; राम-रावण का युद्ध समाप्त होने पर इसी प्रकार राम का स्वगत-कथन। दोनों जगह अतीत-स्मरण, अन्तर्मुखी विश्लेषण। निराला का विश्वास कि लांछित छवि ही वांछित सिद्ध होगी, कन्या की अकाल मृत्यु से उत्पन्न शोक, कोलाहल करने वाले विरोधियों पर व्यंग्य, विरोधी भावों का संघर्ष, मन की अशान्ति का चित्रण। यह है उनका स्वगत-कथन। इसके बाद नाटक के भीतर नाटक—सरोज जब सवा साल की थी, तब से उसकी मृत्यु तक के दृश्य निराला कल्पना के नेत्रों से देख जाते हैं। नितान्त मूक अभिनय

नही है। बीच मे दूसरों के स्वर भी सुनाई देते है, फिर भी निराला देखते ही ज्यादा है। तेल में भीगे चमरौवे जूतों से बाहर निकाले हुए विप्र-चरणो के स्मरण से उनकी घ्राणशक्ति जाग्रत होती है और उस दुख में भी उन्हें जोर से हँसी आ जाती है।

"बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा"—एकदम यथार्थवाद के धरातल पर 'देवी' कहानी मे निराला का स्वगत-कथन। पुरानी बातों को याद करते हैं, एक दिन का युद्ध नही, बारह साल का युद्ध है। चक्रव्यूह रचा था, यह सोचकर कि उससे साहित्य-शक्ति का संचालन ठीक होगा किन्तु जो सोचा था—नियति का व्यंग्य—फल उल्टा हुआ। अजब विरोधाभास कि दिन काटे फाकेमस्ती में, ख्वाब देखे परियों के। उस पर भी विडंबना यह कि परियों के ख्वाब देखकर साहित्य-शक्ति का संचालन करना चाहा। इस स्वगत-कथन में निराला दूसरों पर व्यंग्य करते है, स्वयं भी उस व्यंग्य के शिकार है। बीबी के हाथ मे सीता-सावित्री पुस्तकें देकर जो स्वयं बगल में चौरासी आसन दबाये घूमते है, निराला उन पर हँसते है। बड़े आदमियो के बड़प्पन पर व्यंग्य करते है। अपनी कद्र न होने से अपमानित, दूसरो की हँसी से क्षुब्ध, मुझे बराबर पेट के लाले रहे—यह सोचकर दुखी होते है। अतीत-दर्शन, आत्म-विश्लेपण, विरोधी भावो का संघर्ष यहाँ भी है।

'सरोज-स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा' और 'वनवेला' से पहले निराला ने 'देवी' कहानी लिखी थी। उन लंबी कविताओ में स्वगत-कथन का जैसा उपयोग उन्होंने किया है, उसका अभ्यास उन्होने पहले 'देवी' में किया। इन रचनाओ के स्वगत-कथनों में आन्तरिक साम्य है: पराजय और अपमान का भाव, परिवेश के अन्यायपूर्ण व्यवहार से क्षोभ, बीती बातों का ध्यान, आत्मविश्लेपण। इन विशेपताओ को पहचान लेने पर ज्ञात होगा कि वे कहीं इक्का-दुक्का, कही सम्मिलित रूप से निराला-काव्य मे आरम्भ से विद्यमान है।

जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा—'अध्यात्म-फल' नाम की इस प्रारम्भिक कविता में निराला भाव देखते है, भाव की जड़ देखते हैं, अतीत में झेले हुए दुख याद करते हुए मुक्ति की बात सोचते हैं। **दीन का तो हीन ही यह वक्त है**—इस उक्ति मे आत्मग्लानि के साथ एक तरह के नियतिवाद की झलक मिलती है। जब समय ही विरुद्ध है, तब मनुष्य का प्रयत्न क्या करेगा ?

परिमल की 'ध्वनि' कविता मे मृत्यु का भय है, साथ ही यह आशा और उत्कंठा है कि यह जीवन बहुत दिनों तक बना रहे। इस स्वगत-कथन में विश्लेपण कम है, बसन्त के स्वप्न से मन को आश्वस्त करने का भाव अधिक है।

'अधिवास' कविता मे वह विवाद करते हैं, अगोचर मायातीत ब्रह्म श्रेष्ठ है या गोचर ससार की माया। किसे अपनाना श्रेयस्कर है ? जो ब्रह्म है, वह अधिवास है, वहाँ गति नहीं, चिरन्तन शान्ति और आनन्द है। किन्तु वहाँ करुणा नही है, मानवीयता भी नही है। कवि इस मानवीयता के संसार को कैसे छोड़े ? निराला

वेदान्त के पक्ष में तर्क कम उपस्थित करते है, मान लेते है कि लोग उन तर्कों से परिचित होगे। विरोध में ही तर्क अधिक देते है। दुखी भाई को कैसे गले लगाया--यह दिखाकर करुणा को मूर्त नाटकीय रूप देते है। वेदान्त की व्याख्या करते हुए नेपथ्य से एक स्वर सुनाई देता है : अधिवास वहाँ है जहाँ गति रुकती है। इसी के विरुद्ध निराला तर्क करते है कि जव तक दुख है तव तक करुणा है, जब तक करुणा है तव तक गति है। इसलिए निर्णय यह है कि अधिवास छूटता है लेकिन इसमे दुखी होने की कोई वात नही है।

'वृत्ति' (परिमल, पृ. ६३) जैसी कविता मे निराला दुखपूर्ण स्थिति का विश्लेपण करते है, मन को समझाते हैं, कि तुम्ही नही, सभी लोग इस संसार मे ठगे गए है। इसलिए चिन्ताएँ और वाधाएँ आती है तो आएँ, मनुष्य को उन्हें सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। यहाँ किसी तरह के उद्‌वोधन का प्रयास नही है; ससार की दुखपूर्ण परिथितियो मे मनुष्य का जैसा वंधनपूर्ण अस्तित्व है, उसे स्वीकार करना है। यद्यपि ऊपर से लगता है, कविता मे तर्क नही किया गया, केवल एक भावदशा का चित्रण किया गया है किन्तु चिन्ताओं और वाधाओं की स्वीकृति के पक्ष में जो तर्क दिए गए है, वे अप्रत्यक्ष रूप मे इस स्वीकृति के विरोधी तर्कों का खडन करते हैं। कविता वास्तव मे निराला के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करती है। जहाँ अन्तर्द्वन्द्व है, वहाँ किसी न-किसी रूप मे स्वगत-कथन है और यह स्वगत-कथन निराला के मन की उस व्यथा को प्रकट करता है जो वेदान्त की भूमि छोड़ने पर उनके मन में उत्पन्न होती है।

> चिन्ताएँ, वाधाएँ,
> आती ही है, आएँ;
> अंध हृदय है, बन्धन निर्दय लाएँ।

विडंबना यह है कि संसार मे मनुष्य स्वतंत्र नही, वंधन निर्दय है और इन वंधनो मे रहते हुए ही उसे जीवन सार्थक करना है, जो भी स्वतंत्रता प्राप्त हो सके, प्राप्त करनी है। कठिनाई यह है कि मनुष्य अपने सीमित ज्ञान के कारण परिवेश पर पूरी तरह हावी नही हो पाता—अध हृदय है, इसलिए वंधन और भी निर्दय हैं। मैं ही क्या, सव ही तो ऐसे छले गए—यह कहकर निराला वन्धनो की—नियति की—निर्दयता को विश्व-व्यापी मानते हुए उसे स्वीकार करते है।

'युक्ति' और 'परलोक' कविताओं (परिमल, पृ. ५८-५९) में निराला विवाद करते है, जीवन कव समाप्त होगा, समाप्त होने के वाद दूसरा जीवन शुरू होगा या नही, आँखें मूंदने पर अनन्त ब्रह्म के दर्शन होगे या नही। दोनो कविताओ मे निराला प्रश्न करते हैं, उनका निश्चित उत्तर नही देते। यह स्थिति उनके मन की दुविधा सूचित करती है। वही अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति जिसका सम्वन्ध स्वगत-कथन से है।

शिवाजी जयसिंह के नाम अपने पत्र में एक जगह कहते है :

सोचता हूँ अपना कर्तव्य अब—
देश का उद्देश,
पर, क्या करूँ मै,
निश्चय कुछ होता नही—
द्विधा मे पड़े है प्राण ।

यह द्विधा की स्थिति शिवाजी के पत्र में, उससे अधिक निराला की अन्य अनेक रचनाओं में व्यक्त हुई है। निराला अपने स्वगत-कथनों में इस द्विधा की स्थिति से निकलने का वार-वार प्रयास करते है।

पास हीरे, हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान (गीतिका, पृ. २५)

संसार अंधकूप है, स्पर्शमणि तू स्वयं है। निराला वेदान्त के सहारे द्विधा की स्थिति से निकलने का प्रयास करते है। गीत लंवा है, तर्क श्रृंखला मे पुनरावृत्ति है; कारण यह कि वेदान्त-विरोधी तर्क मन में वार-वार उभरते हैं और निराला उन्हें तरह-तरह से शान्त करते हैं।

मनुष्य की चेतना रूपवान है या रूपहीन? वेदान्त कहता है—रूपहीन, विरोधी कहते है—रूपवान। निराला कहते है—जो रूपहीन है, उसे रूपवान् वनना है। मन को संसार के विंव वैसे ही ग्रहण करने हैं जैसे निर्मल जल तट-छाया ग्रहण करता है। निराला मन को समझाते हैं कि ब्रह्म के दर्शन न हुए—अधिवास छूट गया—तो कोई अफसोस नही, आग्रह है कि अपनी अरूप दृष्टि से संसार का रूप समेट लें—

दृष्टि अरूप, रूप लोचन-युग
वाँध, वाँध, कवि, वाँध पलक-भुज। (गीतिका, पृ. ६९)

रूप को वाँधने का अर्थ स्वयं वन्धन में फँसना है किन्तु वन्धन में फँसे विना मुक्ति नही। जीवन का विरोधाभास ऐसा ही है।

एक अन्य गीत में इसी से मिलते-जुलते विरोधाभास की पुष्टि है:

वह कितना सुख जव मै-केवल,
जीवन-जीवन से वँधा सुफल! (उप., पृ. ९५)

जो मैं-केवल है, एक और अद्वितीय है, वह सुफल होता है जीवन-जीवन से वँधकर! जो जीवन से भिन्न है, वह विफल है, जो मिला है, वह सुफल है।

फिर कहते हैं:

रे, कुछ न हुआ, तो क्या?
जग धोका, तो रो क्या? (उप., पृ. ५२)

घुली हुई आत्मा को याद करके संसार के व्यवहार को भुला देना चाहते है। दुनिया धोखा इसी अर्थ में नही है कि वह माया है, लगता है कि है किन्तु वास्तव में नही है। एक-दूसरे अर्थ में भी वह धोखा है; उसके मूल्य, मानक, मूल्यांकन की कसौटियाँ सब मिथ्या है। कहते हैं—

कमजोरी दुनिया हो, तो

कह क्या सकता तू ?

जो है नही, उसके कमज़ोर शहज़ोर होने का सवाल नही। दुनिया की कमजोरी यह है कि वह दूसरों का मूल्य नही समझती। इसलिए—

चलता तू, थकता तू,

रुक रुक फिर बकता तू।

निराला के स्वगत-कथन मे भाव-मंथन, आत्मविश्लेपण, द्विधा की स्थिति, विवाद के अलावा यहाँ एक नई चीज दिखाई देती है : निराला स्वयं को देखते है, स्वयं से बाते करते है। स्वयं को जब देखते है तब थकान, अकेलेपन और मृत्यु के समीप होने के भाव प्रबल होते है। **अणिमा** और **अर्चना** के अनेक गीतों में इस तरह का स्वगत-कथन विशेष है।

'तुलसीदास' मे निराला कहते है :

बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति ?

गतिहीन ज्योति को कहाँ सुरति ?

रति-रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति—केवल क्षति।

यह उसी तरह का तर्क है जैसा **गीतिका** के कुछ गीतो में है। बन्धन के बिना गति नही है। जहाँ बन्धन नही है वहाँ—उस अधिवास मे—गति रुक जाती है। जहाँ गतिहीनता है, वहाँ सुख नही है। 'तुलसीदास' मे निराला वेदान्त के पक्ष और विपक्ष मे कई तर्क देकर उस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते है जो उनकी रचनाओं में 'अधिवास' लिखने के समय से मिलता है। स्वभावतः इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने के लिए निराला स्वगत-कथन की कला का उपयोग करते है। इतने बड़े पैमाने पर उन्होने इस कला का उपयोग अन्यत्र नही किया। कविता के सौ बन्दों मे लगभग चालीस बंद इस स्वगत-कथन ने घेरे है।

चौदहवें बंद मे तुलसीदास अपने मित्रो के साथ चित्रकूट पहुँचते है, फिर आँखे बन्द करके ध्यान में डूब जाते है। तेंतालीसवे बंद मे आँखे खोलते है—

आया मन निज पहली स्थिति पर;

खोले दृग।

अगले तीन बदो मे यात्रा पूरी करने के बाद सब लोग घर लौटते है। सैंतालीसवे बंद से निराला उस सौन्दर्य का वर्णन करते है जो तुलसीदास को चारो ओर दिखाई देता है। इसे देखने वाली आँखे तुलसीदास की है, इसलिए उसके वर्णन को स्वगत-कथन के अन्तर्गत मानना चाहिए। इक्यावनवे बंद से बाकायदा सोचने की प्रक्रिया आरम्भ होती है और चौवनवें बंद में समाप्त होती है। इस तरह चौदहवे बंद से लेकर चौवनवे बंद तक थोड़े से व्यवधान के साथ तुलसीदास का स्वगत-कथन ही चलता है।

तुलसीदास के चिन्तन का ढंग लगभग वैसा ही है जैसा 'राम की शक्तिपूजा', 'वनवेला' और 'सरोज-स्मृति' मे राम और निराला का है। तुलसीदास आँखे बन्द

करके छाया-नाटक देखते हैं। प्रकृति जो कुछ कहती है, वह चित्रों में; मन में जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे भी दिखाई देते हैं।

वह भाषा—छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा मे रँग कर,
वह भाव कुरल-कुहरे से भरकर भाया।

भाषा आभा के समान है, ऐसी आभा जो कुछ छिपती है, कुछ खुलती है। भाव कुहरे जैसा है। दूसरा दृश्य; धुँधली तट-रेखा, बीच मे तरंगाकुल सागर, जल में अस्फुट छाया। प्रकृति का स्वर सुनाई देता है। प्रकृति जड़ है। अहल्या की तरह ज्ञान से उसका उद्धार करना है। इसके बाद फिर छाया-नाटक। आकाश, वहाँ अनेक रंगों की तरंगें, उन्हें पार करता हुआ तुलसीदास का मन। वहाँ से भारत दिखाई देता है, भारत का दैन्य, पराजय, पीड़ा सब दिखाई देता है। मानसिक दासता की तरंग के उस पार जो ज्ञान है उसकी सहायता से भारत को मुक्त करना है। फिर तुलसीदास की चेतना ज्ञानोद्धत प्रहार करके संस्कारों के विषम वज्रद्वार तोड़ना शुरू करती है। उसी समय मन के आकाश मे तारिका जैसी रत्नावली की छवि दिखाई देती है। 'राम की शक्तिपूजा' मे महावीर को मन के आकाश की ऊँचाइयों से नीचे उतारने का काम अंजना करती हैं; यहाँ वह काम रत्नावली का है। तुलसीदास उस आकर्षण से बँध जाते है और फिर अशक्त होकर नीचे उतर आते है। नीचे प्रकृति के सौन्दर्य का नाटक दिखाई देने लगता है। पत्नी की छवि से मिलती-जुलती प्रकृति की छवि है, **गिरि-वर उरोज, सरि पयोधार** (पयोधार मातृत्व-सूचक है यद्यपि वर्णन प्रिया-प्रकृति के सौन्दर्य का है)। लेकिन यह सौन्दर्य वह आँखें बन्द किए ही देख रहे है। आँखें खोलने पर आसपास का दृश्य, बैठे हुए मित्र—सब-कुछ जैसा था, वैसा दिखाई दिया। घर लौटने पर प्रिया-प्रकृति के उसी सौन्दर्य का विस्तार, फिर तर्क कि बंधन से ही प्रगति और सुख संभव है।

इस स्वगत-कथन की विशेषताएँ: तुलसीदास तर्क करते है, अमूर्त तर्क-योजना के साथ छाया-नाटक देखते है। वेदान्त और शृंगार को लेकर मन मे द्वंद्व है; तर्को का तूफान ही नहीं, भावो का संघर्ष है, उसका चित्रण स्वगत-कथन मे है। शृंगार के विरोध में करुणा है जो संसार त्यागने के लिए उत्तेजित करती है, वह करुणा जो शूद्रों, पदंदलितों की दशा के ध्यान से उत्पन्न हुई है। एक अव्यक्त विरोधाभास कि संसार त्यागना है, संसार में ही लौट आने के लिए। नारी बाधा है संसार की सेवा करने के मार्ग मे। दूसरा विरोधाभास: वह नारी ही तुलसीदास को मुक्त करती है, सेवा-मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। आत्मग्लानि और पराजय की वेदना यहाँ भी है किन्तु उसका सम्बन्ध तुलसीदास के व्यक्तिगत जीवन से नहीं, देश के जीवन से है। 'वनवेला' और 'सरोज-स्मृति' मे निराला अपनी ग्लानि और पराजय का चित्रण करते है; तुलसीदास की अपेक्षा उस चित्रण मे भाव-सघनता अधिक है। उसी तरह 'राम की शक्तिपूजा' में राम की ग्लानि और पराजय की पीड़ा अधिक मार्मिक है। 'तुलसीदास' में मुख्य द्वंद्व विजय और पराजय के भावो में

नही है; द्वंद्व है शृंगार और संन्यास के भावों में। यह द्वंद्व स्वगत-कथन की नाटकीय पद्धति से चित्रित हुआ है और वह कविता का मेरुदण्ड है। कविता के आरम्भ मे युद्ध और पराजय का वर्णन और अंत मे तुलसीदास के गृह-त्याग का वर्णन सार्थक है इसी अन्तर्द्वन्द्व के सदर्भ मे।

'राम की शक्तिपूजा' मे शृंगार और संन्यास के द्वंद्व का पूरी तरह अभाव हो, ऐसा नही है। राम का एक स्वगत-कथन आया न समझ में यह दैवी विधान से शुरू होता है; उससे पहले उनका एक स्वगत-चिंतन और है जिसमे सीता दिखाई देती है। लगभग वैसे ही जैसे 'तुलसीदास मे रत्नावली दिखाई देती हैं। 'तुलसीदास' मे रत्नावली नभतम की-सी तारिका सुघर है, 'राम की शक्तिपूजा' में सीता अंधकार-घन मे जैसे विद्युत् है। राम को दिखाई देता है: विदेह का उपवन, लताओ की ओट से प्रथम दर्शन, नयनो का नयनो से गोपन संभाषण, पलको का उत्थान-पतन; प्रकृति का वैसा ही सौन्दर्य जैसा तुलसीदास देखते है, काँपते हुए किसलय, झरते पराग समुदाय, जीवन-परिचय गाते हुए खग, स्वर्गीय ज्योति-प्रपात। पराजय की पीड़ा भूलकर काफी देर तक राम शृगार-भाव मे डूबे रहते हैं। यह शृंगार युद्ध के लिए प्रोत्साहित करता है। एक बार शिवधनुष तोड़ने को हाथ फिर उठ जाता है। किन्तु यहाँ शिव नही, उनके भक्त रावण के अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करते हैं। राम को अपने दिव्यास्त्र बुझते हुए दिखाई देते है, आकाश मे महाशक्ति है जो राम का रण-कौशल व्यर्थ कर देती है। राम फिर शृंगार-भाव में लौट आते है—

खिच गए दृगों में सीता के राममय नयन।

इस शृंगार-भाव पर, पराजय मे राम के मोह पर, रावण हँसता है और राम की आँखो में आँसू आ जाते है।

यह स्वगत-चिन्तन अमूर्त कथन का सहारा छोड़कर मूर्त चित्रण के सहारे आगे बढ़ता है। निराला इस चित्रण मे राम के मुग्ध मन की कमजोरी से आकाशव्यापी शक्ति का वैषम्य दिखाते है। इस शक्ति को परास्त करना राम के वश मे नहीं; उसे चिरब्रह्मचर्यरत महावीर ही परास्त कर सकते है क्योकि राम की तरह वह 'शृंगार-युग्मगत' नही हुए। शृंगार और संन्यास का द्वंद्व यहाँ भी है किन्तु संन्यास के प्रतीक महावीर है, राम नही। फिर भी राम को विजय तभी मिलेगी जब महावीर की तरह वह भी मन का आकाश पार कर जायेंगे। महावीर अंजना की बात मान-कर उतर आए थे; राम उतरेंगे नही। सहस्रार तक पहुँचने से पहले स्वयं दुर्गा कमल-पुष्प उठा ले जाती है। रत्नावली से मिलती-जुलती भूमिका दुर्गा की है—वामा वह पथ में हुई वाम सरितोपम। रत्नावली ने तुलसीदास को ज्ञान दिया, दुर्गा स्वयं राम के वदन मे लीन हो गईं। शृंगार और संन्यास का द्वन्द्व 'राम की शक्तिपूजा' मे है किंतु गौण रूप मे वैसे ही जैसे ग्लानि और पराजय की पीड़ा 'तुलसीदास' मे है किंतु गौण रूप मे। पर गौण हो चाहे मुख्य, उसे व्यक्त करने की कला है वही स्वगत-कथन अथवा स्वगत-चिंतन की।

पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है—निराला का अंतिम स्वगत-कथन

है। जिस विष की ज्वाला पीकर उन्होंने बार-बार नई जीवन-शक्ति पाई थी, वह विष भी बुझा हुआ है किन्तु हृदयकुंज में अभी आशा का प्रदीप जलता है, वैसे ही जैसे उस भयावनी काली रात में समुद्र के किनारे राम के निकट पर्वत पर मशाल जल रही थी। जीवन के सारे युद्ध समाप्त हो चुके है, अब भीष्म शरों की कठिन सेज पर लेटे हैं। राम के वार विफल हुए थे, यहाँ भी—मारें मूर्च्छित हुईं, निशाने चूक गए हैं। मृत्यु समीप है, फिर भी आशा है,

पुनः सवेरा, एक और फेरा हो जी का।

शृंगार और संन्यास का द्वन्द्व नहीं, न आत्मग्लानि और पराजय की पीड़ा, यह जीवन और मृत्यु का चिरंतन द्वन्द्व है, अमिट जिजीविषा और अपरिहार्य विनाश का द्वंद्व। बीते हुए जीवन की सफलता पर गर्व है--ऐसा गर्व जैसा निराला की अन्य किसी कविता में नहीं है; साथ ही लम्बे संघर्ष की समाप्ति पर दुख है, वह शरक्षेप, वह रण-कौशल देखने, उसमें भाग लेने का समय समाप्त हो गया है। सफलता के आनन्द और मृत्यु के विषाद में अद्भुत संतुलन है इस कविता मे। परिस्थिति को और स्वयं को देखने, जो देखते हैं, उसका विश्लेपण करने की क्षमता यहाँ भी वैसी ही है जैसी 'वनवेला' मे या 'राम की शक्तिपूजा' में। केवल दृष्टि और भी सधी हुई, दृष्टि का नियन्तामन और भी धैर्यवान है; तार्किक विश्लेषण और भावगांभीर्य में सामंजस्य और भी कलापूर्ण है।

स्वगत-कथन चाहे निराला का हो, चाहे किसी पात्र का, वह मन की स्थिति को नाटकीय रूप देने की क्षमता का परिचय देता है। उसमे विश्लेपण है, भाव-गांभीर्य है, चित्रमयता है। अमूर्त विवेचन के साथ—कहीं-कहीं उसे एकदम हटा-कर—निराला मूर्त चित्रण की कला प्रदर्शित करते हैं। इस कला द्वारा वह दार्श-निक स्तर पर विरोधी विचारों का संघर्ष, भावात्मक स्तर पर मन के संशय और द्विधा की स्थिति का चित्रण करते हैं। स्वगत-कथन उनके मुक्तको में है, गीतों में है, लम्बी कविताओं मे उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। **जब कड़ी मारें पड़ीं दिल हिल उठा** से लेकर **पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है** तक निराला भिन्न प्रकार की रचनाओं में भिन्न स्तर पर, नये-नये रूपों में इस कला का उपयोग करते है। उनके साहित्य में यह कला निरन्तर निखरती जाती है।

संवाद

निराला स्वगत-कथन की शैली मे खुद से बातें करते हैं, नाटकीय-संवाद की शैली मे दूसरों से भी बातें करते हैं। वह विवेक से जैसे अपनी स्थिति का विश्लेपण

करते हैं, वैसे ही अपनी स्थिति समझाने के लिए दूसरों से तर्क करते हैं, वह स्वगत-कथन मे अपने मन की द्विधापूर्ण स्थिति, संशय, ग्लानि आदि व्यक्त करते हैं, वैसे ही संवाद शैली मे, दूसरों से तर्क करते हुए, वह मन का आक्रोश, क्षोभ अथवा विश्वास प्रकट करते है। सूरदास के गीतों में कृष्ण, राधा, गोपियाँ, ऊधो, यशोदा कोई-न-कोई किसी से बोलता ही रहता है। सूरदास अपनी ओर से कम बोलते हैं, जब बोलते है तब श्रोता रूप मे आसपास कहीं कृष्ण भी होते हैं। निराला उन कवियों की तरह नही हैं जो भाव में डूबकर गाने लगते हैं, सुननेवाला सामने हो चाहे नही। उनकी वक्तृत्वकला से मिलती-जुलती उनकी संवादकला है जिसमें कभी वह, कभी अन्य व्यक्ति दूसरे से बातें करता है।

बैठ लें कुछ देर—परिमल की पहली कविता, एक व्यक्ति दूसरे से बातें कर रहा है; **तम गहन जीवन घेर** में परिवेश की ओर, रंगमंच पर वक्ता के पीछे फैले हुए अंधकार की ओर संकेत है। नाटकीय संवाद है, उसी के अनुरूप जीवन के विरोधाभास, व्यंग्यपूर्ण वैषम्य चित्रित है। ये दोनों—वक्ता और श्रोता—पथिक है अन्त और अनन्त के—दो विरोधी तत्त्वो का संतुलन। भाषा अपना काम करती है मूकता की आड मे। जीवन चुप, निर्द्वन्द्व रह जायगा—स्थिरता प्राप्त करेगा—उत्थान-पतनाघात से। कविता मे नाटकीयता केवल इसलिए नही है कि एक व्यक्ति दूसरे से कुछ कह रहा है, वरन इसलिए कि प्रति पद पर उसके कथन में वक्रता है, वस्तुओं, विचारो और भावों में वैषम्य प्रदर्शन और संतुलन है।

एक दिन थम जाएगा रोदन—('निवेदन', परिमल, पृ. ३२)। वियोग की संभावना, पुनर्मिलन की आकांक्षा, दूसरी बार न मिलने पर न पहचाने जाने का भय, एक व्यक्ति से दूसरे की उक्ति, भाषा मुखर नही मौन, 'गगन-तम' और 'प्रभापल' के परस्पर विरोधी बिंबों की योजना।

'शेष' : (उप., पृ. ३७), एक स्त्री अपनी सखी से बातें कर रही है। प्रकृति से जो संदेश मिला, वह संवाद के रूप में यहाँ लिखा गया, पुरुष ने नारी का हाथ पकड़कर जो कुछ कहा, वह भी सवाद रूप में लिखा गया। उक्ति के भीतर उक्ति जैसे नाटक के भीतर नाटक। सखी से नारी की उक्ति, उस उक्ति में पुरुष की उक्ति। पृष्ठभूमि में डूबता हुआ सूरज, कमल पर दुख-किरण, वन अवसन्न। वियोग-व्यथा अथवा यौवन में अतृप्ति के चित्रण के लिए एक छोटा नाटकीय आयोजन।

इसके विपरीत संयोग का सुख, फिर थकान; दूसरा नाटक, भौंरे और फूल की बातचीत। भौंरा फूल को अपनी तर्क-योजना से फुसलाता है :

> सुनो, अहा फूल,
> जब कि यहाँ दम है,
> फिर, क्या रंजोगम है—(परिमल, पृ. ६५)

निराला को पारसी रंगमंच की सवाद-शैली पसन्द नहीं थी लेकिन यहाँ भौंरे के बोलने के ढंग से लगता है, उसने पारसी रंगमंच पर काफी नाटक देखे हैं।

गीतिका में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें पुरुष या स्त्री एक-दूसरे से बातें करते हैं।

नयनों में हेर प्रिये,
मुझे तुमने ये वचन दिये—(पृ. ५)

शुरुआत पुरुष की उक्ति से, फिर उसमें नारी की उक्ति। पुरुष मरण और जीवन दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं के कारण जाम पिये हैं। झंकार जो तार से निकलकर हवा में विलीन हो जाती है, उससे पुरुष बँधा हुआ है। जो हीरे हैं, वे जड़ है, सीमित हैं, पर उनके हीरे हैं इसलिए अपार ज्योति लिये है। एक ओर नारी की तृष्णा है। तृष्णा शान्त नहीं होती, चाहे नारी की हो, चाहे पुरुष की। दूसरी ओर उस तृष्णा के लिए पुरुष है तृप्ति का सरोवर। कविता के संवाद में यह विरोधी वस्तुओं और भावों का सामंजस्य और संतुलन।

मैं लिखती, सब कहते;
तुम सहते, प्रिय, सहते। (उप., पृ. २१)

लिखती है स्त्री, सहता है पुरुष। अजब विरोधाभास है। **जग धोका तो रो क्या** की तरह स्त्री तर्क करती है,

होते यदि तुम नहीं,
लिखती मैं क्या कहो?

इस होने ने मिटाया नहीं, बनाया है। अवश्य वह गालिब के विपरीत अपने नहीं, दूसरे के होने की बात कर रही है। लिखने के साथ एक भिन्न क्रिया बहने की है लेकिन बहने के साथ स्थिर रहने का चमत्कार भी है:

मैं लिखती या बहती
स्रोत पर तुम्हारे ही रहती।

यह स्थिति पुरुष को ही नहीं, स्त्री को भी प्रिय है क्योंकि वह उसकी आवृत्ति चाहती है:

इसी तरह उर पर रख, मधुर,
कहो, तुम कहो:
(जब) चाह, तुम्हें चहते,
तब कहते, सब कहते।

इस तरह के तर्कयोजना वाले संवादों में साधारणतः शृंगार के संचारी व्यभिचारी भाव सतह के नीचे रहते हैं; यहाँ वे नीचे से उठकर सतह के ऊपर आ गए है। अंतिम पंक्तियों में पारसी रंगमंच वाली संवादशैली की हल्की झलक है।

अनामिका में कविता है 'मित्र के प्रति'। कविता यदि किसी के प्रति हो तो साधारणतः उसमें वक्ता एक ही होता है—कवि। यहाँ भी वक्ता एक है किन्तु उसकी उक्ति के भीतर दूसरो की उक्ति है। नेपथ्य की ओर देखकर निराला कहते हैं:

कहते हो, 'नीरस यह
वन्द करो गान'। (पृ. १०)

मित्रो की उक्ति अमूर्त कथन से शुरू होती है, फिर सरोवर, हंस, कमल, जल-तरंग की ध्वनि, पवन के मल्लार के प्रतिमानो से जगमगा उठती है। इन सुन्दर, दर्शन-प्रिय, श्रुति-सुखद-प्रतिमानो पर निराला व्यंग्य करते हैं: जहाँ जल होगा, वहाँ मेढक होगे, उनकी टर्र-टर्र भी होगी। फिर लू, ताप और ग्रीष्म के द्वारा नई कविता की स्थिति का चित्रण करते हुए वह वर्पा तक पहुँचते है। वर्पा के वाद—उपमानो की जमीन छोड़कर, 'सोचो तो' कहते हुए—निराला नई कविता में मित्र छंद से अमित्र छंद के वँधने के चमत्कार की ओर ध्यान दिलाते है। मित्र-अमित्र का सह-अस्तित्व मोर और साँप की पूँछो के जुड़ने के समान ही आश्चर्यजनक है। निराला मित्र शब्द का दूसरा सामान्य अर्थ लेते हुए अपनी कविता के आलोचकों से कहते है: तुम्हीं ने प्रिय मित्र को छोड़कर, मुँह मोड़ लिया है।

अचानक अमूर्त तर्कयोजना के आगे एक विराट् विव आ जाता है—**अपार तिमिर सागर**। अमूर्त कथन की ज़मीन छोड़कर इस तरह विव को उपस्थित करने में नाटकीयता है। अपार तिमिर सागर की सार्थकता इस जगह यह है कि तर्क-योजना की एक कड़ी यहाँ समाप्त होती है, निराला मित्र और अमित्र को मिलाने वाली उदारता से मित्र की उपेक्षा करने वाली संकीर्णता की तुलना करते हैं। फिर तर्क-योजना के क्लाइमैक्स के तौर पर कविता के उस चरण को समाप्त करते हुए पूछते है:

इसी रूप में रह स्थिर,
इसी भाव में घिर घिर,
करोगे अपार तिमिर—
सागर को पार?

जो स्थिर है, वह सागर क्या पार करेगा? इस विरोधाभास से निराला अपने आलोचको की विवेकहीनता सिद्ध करते है, संघर्प की कठोरता की ओर संकेत करते हुए आलोचकों की जड़ता पर हँसते हैं।

जो जीर्ण-शीर्ण पत्र डालो से गिरे हुए जहाँ-तहाँ पड़े थे, उन्ही से प्राचीनता-पंथियो को प्यार था। इसीलिए उन्हें नई कविता—अर्थात् छायावादी कविता—से कष्ट हुआ। प्राचीनता-पंथी जव कमरे में आराम कर रहे थे, तव वाहर उन्हे अप्रसन्न करने वाली नई कविता की गर्म हवा शोक-चिह्न जलाकर अशोक विटप को रँग रही थी, साहित्य और समाज मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रही थी। तिमिर सागर को पार करने की क्षमता संकीर्ण भावों मे स्थिर रहने वालों मे नहीं थी किन्तु यह हवा समुद्र मे जाकर तूफान-वरपा कर देती है, विपम विघ्नों की नाव उलट देती है, कविता की भापा के सारे अर्थ ही वदल जाते है:

उलट दिया अर्थागम
वनकर तूफान।

अब वह तूफान शान्त हो गया है। त्रास नहीं है, इसलिए रक्षा करो—यह पुकार भी नहीं है। ग्रीष्म के ताप से जल सूखकर ऊपर उड़ा, सीप मे गिरकर मोती बना, उन्ही मोतियों की माला अब सरस्वती के कंठ की शोभा बढा रही है। तर्कयोजना पूरी हुई।

पुरानी रीतिवादी कविता निर्जीव हो गई है; नई कविता ने कठिन संघर्ष से गुज़रते हुए उसका स्थान ले लिया है—निराला का मूल कथ्य यह है। इसे सीधे न कहकर मित्र के और अपने संवाद द्वारा नाटकीय ढंग से कहते है। तर्कयोजना में विषम भावों, विचारों और वस्तुओं के संगठन द्वारा वह श्रोता को विस्मित करते हैं, अपने पक्ष का औचित्य और विरोधी पक्ष की जड़ता सिद्ध करते है। उद्देश्य वैसा ही है जैसा वक्तृत्व कला में किन्तु वहाँ वक्तृत्व कला मे नाटकीयता है, यहाँ नाटकीयता में वक्तृत्व कला है। दो विरोधी पक्षो की सीधी टक्कर है, दोनों अपनी-अपनी बात कहते हैं—यह नाटक है। नाटक का उद्देश्य श्रोता को एक ही पक्ष, कवि के पक्ष मे प्रभावित करना है—यह वक्तृत्व कला है। कविता में तर्कयोजना मात्र नही है। संघर्ष की आँच में झुलसने की याद बार-बार लू और ताप के बिंबों से ताज़ा कर दी जाती है। कविता मे क्षोभ की जगह दृढ आत्मविश्वास है—तर्क-योजना के नीचे सुदृढ़ भाव-भूमि है।

'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र'—(अना., पृ. ११४) मे संवाद की जगह निराला की उक्ति है। बोलने वाले है अकेले निराला, सामने सम्बोधित हैं रीति-वादी मित्रों की जगह समकालीन छायावादी कवि। रीतिवादी परास्त हुए—'मित्र के प्रति' में यह विश्वास है। छायावादी कवियों में वह श्रेष्ठ नही माने जाते—यह क्षोभ 'हिन्दी के सुमनो के प्रति पत्र' मे है। गर्व है कि **मै ही वसंत का अग्रदूत;** अपमान की पीड़ा है कि जो अग्रदूत है, वह इस समय **ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत है।** फूल रंगीन है; निराला पढ़कर फेंके हुए पत्र के समान है। महत्त्व-पूर्ण वस्तु फल है, न कि रँगा धागा बांधे हुए फूल। उस फल के भीतर जो कड़वा, त्यागा हुआ बीज है, वही आलोचक निराला हैं। निराला की अनेक रचनाओ मे जीर्ण-शीर्ण पत्रों को उड़ाने की बात है; यहाँ कविता के आरम्भ मे वह स्वयं जीर्ण पत्र बनते है, फिर रंगरूप पर गर्व करने वाले सुमनों को निष्फल, दिखाऊ सौन्दर्य वाला, प्रतिभाहीन सिद्ध करते हुए स्वयं कविता के अन्त मे फल के बीज बन जाते है। तर्कयोजना रूपक में बँधी है, पत्रो और सुमनों का वैषम्य प्रदर्शन है। निराला आरम्भ से लेकर कविता के मध्य तक पत्र है, फिर सुमन के अन्तर को पार कर जाने वाला फल—फल का बीज बनते हैं। सुमन अपनी जगह स्थिर रहते है। पत्र और फल की दो भूमिकाएँ निबाहने के कारण तर्कयोजना में थोड़ी शिथिलता आ गयी है। कारण यह हो सकता है कि क्षोभ का भाव दब नही रहा है। जब वह कहते है—**ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे,** तब पाठक को लगता है, थोड़ी-बहुत तो है और वह ईर्ष्या विवेक को डिगा देती है।

'वनवेला' मे निराला के स्वगत-कथन के अलावा कवि और वनवेला का संवाद

है। स्वगत-कथन में ऐसी भावात्मक तीव्रता है कि उसके आगे संवाद फीका लगता है। वनवेला उपदेश देना शुरू करती है : जीवन के मेले मे बाहरी वस्तुओं की चमक-दमक है, इसलिए बड़े-छोटे का भेदभाव है; जहाँ ज्ञान है, वहाँ बड़प्पन और छुटपन की कसौटी दूसरी है। कवि उस उपदेश को सत्य और सुन्दर मानते हुए स्वीकार करता है। वेला की उक्तियों में कही उस संघर्ष, क्लेश और पीड़ा का आभास नही है जो निराला के स्वगत-कथन मे विष बनकर प्राण-प्रतिष्ठा करता है। इसीलिए स्वगत-कथन की तुलना मे शेष संवाद फीका है।

एक उपदेश रत्नावली का है 'तुलसीदास' में, नाटकीय, अत्यन्त प्रभावशाली। वास्तव में उपदेश प्रच्छन्न है; प्रकट है धिक्कार, प्रताड़ना। वह शुरुआत ही धिक्कार से करती है—**धिक्! धाये तुम यों अनाहूत**। रत्नावली पिता के घर मे अपमानित हुई है, उसकी वाणी में रोष है; **राम के नहीं काम के सूत कहलाए**—इस उक्ति से पति की भर्त्सना करती है, उस भर्त्सना में ही उपदेश निहित है। तुलसी के स्वगत-कथन के मुकाबले रत्नावली की उक्ति फीकी नहीं पड़ती।

एक उपदेश जाम्बवान का है, 'राम की शक्तिपूजा' में। यह एक कुशल सेनापति द्वारा नीति-निर्धारण है। कवि पाठक को वहाँ ले आया है जहाँ विभीषण की वक्तृता के बाद सभा निस्तब्ध हो गयी है; फिर राम गतिरोध की स्थिति का वर्णन करके चुप हो जाते है। युद्धभूमि में दुर्गा से आँखें मिलाने पर राम के हाथ बँधे रह गये हैं। आगे क्या हो ? कोई मार्ग नही सूझता। उस स्थिति में जाम्बवान नई नीति निर्धारित करते है : शक्ति की मौलिक कल्पना करो, आराधन का उत्तर दृढ़ आराधन से दो। एक स्थिति से दूसरी की ओर नाटकीय संक्रमण सम्भव हुआ; जाम्बवान के उपदेश की यह सार्थकता है। जाम्बवान की उक्ति विभीषण के सुरचित भाषण का उत्तर है। एक में कृत्रिम ओजस्विता, आन्तरिक कायरता, राम पर व्यंग्य, क्षुद्र स्वार्थपरता है; दूसरी मे राम के प्रति गहरी सहानुभूति है, उनके सोये हुए आत्म-विश्वास को जगाने का प्रयास है, सहज दृढता है, राम पर ही नही, पूरी सेना पर विश्वास है। राम के स्वगत-कथन में सेना गौण है :

> विचलित लख कपिदल, क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
> झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों।

कपिदल विचलित है; उसे सँभालने वाले केवल राम हैं। जाम्बवान की उक्ति में सेना को वैसा ही महत्त्व दिया गया है जैसा कथावाचक के प्रारम्भिक भाषण में। राम एकान्त में शक्ति-साधना करें, उनकी अनुपस्थिति मे सेना मोर्चा सँभाले रहेगी। जाम्बवान विश्वास से, वृद्ध सेनापति के अधिकार से कहते हैं :

> छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंदन !

इस एक पंक्ति से जाम्बवान के चरित्र की गरिमा, राम के प्रति उनका अमित स्नेह व्यक्त होता है। वही राम से कह सकते है, कुछ दिन न लडो; कुछ न बिगड़ेगा। फिर वह युद्धभूमि के लिए सैन्य-संचालन की रूपरेखा तैयार कर देते है। कौन नायक होगा, कौन दक्षिण भाग में होगा, कौन वाम भाग में, कौन मौका पड़ने पर

दूसरों की मदद के लिए पहुँचेगा—जाम्बवान अपने नैतिक-सैनिक नेतृत्व से नाटक के घटना-प्रवाह की दिशा बदल देते है। नाटकीय संवाद की दृष्टि से, इस कारण, निराला को सबसे अधिक सफलता 'राम की शक्तिपूजा' में मिली है।

निराला की एक तर्क-पद्धति यह है कि वह प्रश्नों की झड़ी लगा देते है, जिससे प्रश्न करते हैं, उसे बोलने का मौका नही देते।

लीक छोड़कर कहाँ चलूँ ?
दाने के बिन क्या तलूँ ?
फूला जब नही क्या फलूँ ?
क्या हाथ बटाते हो ? —
आँख बचाते हो।— (अर्चना, पृ. ४३)

जब मदद की जरूरत थी, तब दी नहीं; उस पर हाथ बटाने का दावा ! कैसा विरोधाभास है, फूल तो आया नही, फल की माँग हो रही है ! प्रत्येक प्रश्न में एक तर्क है, प्रत्येक तर्क में मन का आक्रोश है। निराला तर्क कर रहे है विधाता से। सिद्ध यह कर रहे है कि उसने जो दुनिया बनायी है, वह अन्तर्विरोधो से भरी है; उन अन्तर्विरोधों से पीड़ित होने वाले मनुष्य से सफल जीवन बिताने की आशा करना व्यर्थ है। इस व्यर्थता के लिए मनुष्य उत्तरदायी नही है।

दाने के बिना क्या तलूँ ? ऐसा ही प्रश्न निराला **सान्ध्य काकली** की एक कविता में करते है :

नही जो बीज तो खेत में बो क्या ?

ब्रह्म और माया वाला द्वन्द्व निराला यहाँ भी निपटा रहे है। शंकर हों चाहे न हो, अन्नपूर्णा का होना आवश्यक है। इनके बिना क्या किससे लोगे, क्या किसको दोगे? धर्म, कर्म, रूप, गुण, शरीर तभी हैं जब माया है।

विश्व-संसार है तभी है माया,
धर्म-कर्मादि है गुण, रूप, काया;
नही तो किसी को दो क्या व लो क्या ?

निराला अपने प्रश्नों से उस दर्शन की व्यर्थता सिद्ध कर रहे है जो संसार को अस्वीकार करता है। अन्तिम पंक्ति अन्नपूर्णा से सम्बन्धित आरम्भिक पंक्ति की प्रतिध्वनि है : **अन्नपूर्णा बिना लो क्या व दो क्या ?** यह प्रतिध्वनि अपने मे नाटकीय है; इसके सिवा वह अन्नपूर्णा से सांसारिक व्यवहारों का सम्बन्ध स्पष्ट करती है। निराला ये प्रश्न किससे कर रहे है, शिव या ब्रह्म से, अन्नपूर्णा अथवा माया से, स्वयं से अथवा श्रोता से ? जिससे भी प्रश्न करे, उनके प्रश्न करने में कला है, प्रश्नो की शृंखला से सुनिश्चित तर्कयोजना है, द्विधा की स्थिति से निकलने का प्रयास है। कथ्य यह है कि संसार की सार्थकता है शक्ति की वास्तविकता के कारण; उसे नाटकीय रूप देते हैं निराला अपनी प्रश्नावली द्वारा। प्रत्येक प्रश्न मे व्यंग्य है जो विरोध-पक्ष की विवेकहीनता प्रमाणित करता है।

कौन तम के पार ?—(रे, कह) (गीतिका, पृ. १२)

इस गीत में निराला का कथ्य वही है जो सान्ध्य काकली के उपर्युक्त गीत में है। उसे वह नाटकीय रूप देते हैं प्रतीक-योजना द्वारा। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—भिन्न प्रकार से विश्व में ये सब तत्त्व सक्रिय हैं, परस्पर परिवर्तनशील हैं, अन्त में एक ही तत्त्व के आश्रित हैं, वह है शून्य, आकाश अथवा अन्धकार। इन पाँच तत्त्वों की गतिशीलता से ही गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि का बोध होता है; निराला पूछते हैं, यह रूप-रस का बोध वास्तविक है या छलना—

निशा-प्रिय-उर शयन सुखधन
सार या कि असार?—(रे कह)

निराला के सामने वेदान्ती है जो संसार को मिथ्या कहता है। इसलिए प्रश्न करने के बाद वह चुप नहीं रहते, हर बन्द के बाद 'रे कह' की आवृत्ति से उत्तर देने के लिए उसे ललकारते हैं। वह उत्तर नहीं देता, उत्तर देने का अवसर ही नहीं पाता। पृथ्वी से आकाश तक और आकाश से पृथ्वी तक उसे सघन अन्धकार में हिला-झुलाकर निराला उसकी शास्त्रार्थकला व्यर्थ कर देते हैं। संसार माया है, मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है—इस धारणा के विरुद्ध जो कुछ कहना है, उसे मूर्त चित्रण के साथ, प्रश्नों द्वारा श्रोता पर व्यंग्य करते हुए, संयत आवेश के साथ निराला इसी ढंग से कह सकते थे।

भावबोध के अनेक स्तरों पर निराला इस नाटकीय संवाद-शैली का उपयोग करते हैं। जो बात सीधे कही जा सकती है, उसे वह वक्रता से कहते हैं, वक्ता और श्रोता को आमने-सामने खड़ा करके संवाद-शैली में कहते हैं। सीधे भावोद्गार की तुलना में इस वक्र-कथन द्वारा भावाभिव्यक्ति सघन हो उठती है। भाव सीधे प्रवाहित न होकर प्रच्छन्न या प्रकट रूप में विरोधी भाव से टकराता है। कविता इस भीतरी तनाव से, आन्तरिक स्पंदन से गतिशील होती है। विवेक इस सारी गतिशीलता को नियंत्रित रखता है। दार्शनिक स्तर पर विचार मंथन, भावात्मक स्तर पर मन के उद्वेग, क्या गीत और क्या लम्बी कविता—दोनों में सफलता से चित्रित होते हैं। लम्बी कविता में संवाद कथा के प्रसार, कथा-प्रवाह को मोड़ने, वक्ताओं के चरित्र-वैषम्य को प्रदर्शित करने में सहायक होते हैं। व्यंग्य इन संवादों की प्राण-शक्ति है। न्यूनाधिक मात्रा में मूर्त चित्रण, भाव-प्रवणता और तर्कयोजना का संतुलन इनकी विशेषता है।

कविता का नक्शा

आदमी जैसे नक्शा वनाता है, फिर नक्शे के अनुसार मकान वनाता है, वैसे निराला पहले नक्शा वनाते है, फिर कविता रचते है। कोई काम वह हमेशा एक ही ढंग से नहीं करते, यह रचना-पद्धति भी वह छोड़ देते है। फिर भी उनकी वहुत-सी कविताओं में उनका नक्शा पहचाना जा सकता है। 'मेरे गीत और कला' में 'जुही की कली' की व्याख्या करते हुए उन्होंने अपना नक्शा समझाया है: कली कविता के आरम्भ में सोती है, फिर सोते से जागती है, प्रिय से मिलती है; मन के अन्धकार के वाद है जागरण, 'मैं इसे ही परिणति कहता हूँ और उत्कृष्ट कला का एक उदाहरण।' (प्रवन्ध प्रतिभा, पृ. २६०) 'वादल राग' (२), **मौन रही हार**, आदि अन्य रचनाओं की जो व्याख्या निराला ने की है, उसमे उन्होंने अपनी तर्क-योजना की रूपरेखा समझाई है। प्रत्येक रचना मे गति है, विकास है, तर्क की रेखाओं के अनुरूप भाव और मूर्ति विधान की इमारत खड़ी की जाती है। कविता जिस स्थिति से शुरू होती है, उसी में खत्म नहीं होती; खत्म होने तक स्थिति वदलती है और उसका वदलना तर्कसंगत होता है, प्रथम स्थिति यदि कारण है तो अन्तिम स्थिति उसका परिणाम है। यह वात अलग है कि जुही की कली सोने के वाद जागती है, 'जागृति मे सुप्ति थी' का नायक जागने के वाद फिर सो जाता है या सो जाना चाहता है, **जागो फिर एक वार** (१) का नायक अन्त तक सोता ही रहता है।

निशा के उर की खुली कली—(परिमल, पृ. ६४) निशा के वहाने अभिसारिका का चित्रण है। चलना चाहती है, नूपुर वज उठते हैं, लाज से रुक जाती है। भय के साथ प्रीति भी है: **प्रीति-भीति काँपे पग उर मन।** भीति के कारण रुकती है; प्रीति उसे आगे ठेलती है। भय को दूर करके हँसती हुई आगे वढ़ती है। प्रिय की शैया के पास पहुँचकर आँखे खोलने के वदले उन्हें वन्द कर लेती है। यह प्रीति-भीति की तर्कसंगत परिणति है, भले ही आँखे मूंदने के कारण वह सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या न वन पाई हो। हवा के एकाएक चलने और वन की मर्मर ध्वनि सुनने के साथ निराला कविता को समाप्त कर देते हैं, यह सोचकर कि अक्लमंद को इशारा काफी है। किन्तु **स्पर्श से लाज लगी**—(गीतिका, पृ. ३१) मे पहले स्पर्श, तत्पश्चात् चुम्वन, पुन. उस क्रिया का विस्तार: **मौन पान करती अधरासव**, अंत में परिणति:

> मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर
> वरस गये रस-निर्झर झरझर।

रस-निर्झर के वरसने के वाद उर भीतर अमर अंकुर भी उगा। यह अंकुर विशुद्ध भावात्मक हो सकता है, सन्तति के वीजरूप मे दैहिक और भौतिक भी हो सकता है। **रुखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी**—(उप., पृ. १४) इस गीत में शुरुआत

पार्वती की तपस्या से होती है, खात्मा होता है कुमार-जन्म की भविष्यवाणी से :

मधुव्रत मे रत वधू मधुर फल
देगी जन को स्वाद-तोष-दल।
ऐसे ही मेघ के घन केश— (उप., पृ. ४८)

मे पहले पवन पट लहराया, फिर वह आकाश से उतरकर शिखर पर बैठी, फिर रस-वर्षा :

निर्निमेष खड़ी सुघर अयि,
लख रही निज शेष।

साधारणत: मेघ की याद आते ही ग्रीष्म की तपन मे जलकणों के ऊपर उठने से लेकर प्यासी सूखी धरती पर जल के वरसने तक सारी प्रक्रिया निराला की आँखों के सामने घूम जाती है। इसका विस्तार से वर्णन 'जलद के प्रति' कविता (**परिमल**, पृ. ७४) मे है। 'वादल राग' (३) मे उसी ओर सकेत है। **धरा के खिन्न दिवस के दाह !** दाह के वाद सूर्य से चयन को सफल करता हुआ वादल आकाश में चढ़ जाता है, वहाँ गरजता और गाता है, अंत मे फिर धरती पर लौटने की संभावना :

आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास। 'उक्ति' (**अनामिका**, पृ. १९०) में पहले जीवन जला, फिर आकाश में मेघमाला दिखाई दी। ऐसी ही परिणति रूपक द्वारा मित्र के प्रति मे। **वादल गरजो**—(उप., पृ. ८२) मे शुरुआत गरजने से, खात्मा धरती को शीतल करने से। 'प्रसाद के प्रति' (**अणिमा**, पृ. २७) मे वारहमासा का ताना-वाना लेकर निराला उनका जीवन चित्रित करते हैं। पहले वसन्त के समान प्रसाद सरसी के हृदय पर लहर उठा गए, फिर

पके खेत लहरे, सोना ही सोना चमका,
सुखी हुए सब लोग, देश में जीवन दमका।

शरत् हेमंत पार करके खेत कटने की नौवत भी आई :

खेती ज्वार वाजरे की आई कट-कट कर,
सुखी हुए सब जन अपने-अपने सुन्दर घर।

प्रसाद ने जीवन के आरभ में नये साहित्य की शुरुआत की थी, प्रमाण के समय वह उसे समृद्ध दशा में छोड़ रहे थे। वारहमासे का यही ताना-वाना 'देवी सरस्वती' कविता मे नक्शे का काम देता है। आचार्य शुक्ल के प्रति 'श्रद्धाञ्जलि' (**अणिमा**, पृ. २६) मे निराला शुरुआत अमानिशा से करते हैं, फिर द्वितीया, तृतीया पार करते हुए खात्मा चतुर्दशी से करते है। यहाँ नक्शा उन्होने ज्योतिष के आधार पर वनाया है।

एक गीत है : **पावन करो नयन !** (**गीतिका**, पृ. ९) पहले किरण आकाश से उतरकर धरती को रूप-रग से जगमगा देती है। फिर सूर्यास्त; अपने दल मूँदे हुए कमल, उस पर जल की वूँद। उस वूँद पर दुख की लंबी रात मे स्वप्न की जागृति की तरह वह किरण जो अव सीधे सूर्य से नही, चंद्रमा के माध्यम से धरती पर आती है। प्रवाह यहाँ प्रकाश से अंधकार की ओर है; चन्द्रमा की किरण स्वप्न की

जागृति है। रात दुख की है; उसमें सहारा देने वाला सपना बनती है वह किरण। निराला के तर्क का ढाँचा यहाँ उनकी मार्मिक वेदना को अभिव्यक्त करने मे सहायक होता है।

'तुलसीदास' के आरंभ मे भारत के प्रभापूर्य सूर्यास्त का वर्णन है, अंतिम पंक्ति में स्वभावतः सूर्योदय का उल्लेख है। मुग़ल शासन से सूर्य का अस्त हुआ, तुलसी की साधना से उदय होगा; सारी घटनाएँ निराला इस ढाँचे के अन्दर सजाते है। जब उन्होंने सूर्यास्त की बात लिखी, तब वह पूर्व में सूर्योदय की आभा भी देख रहे थे। 'राम की शक्तिपूजा' में सूर्य अस्त हुआ, राम-रावण के युद्ध की स्मृति, फिर घोर अंधकारमयी निशा, उस अंधकार में सारे द्वंद्व, अंत में राम के वदन मे लीन होती हुई महाशक्ति। 'वनवेला' में प्रलय-संध्या का दृश्य, अंत में प्रातःकाल पूजा के लिए वनवेला का चयन।

ढाँचा बनाने की यह पद्धति कही तो कला के उत्कर्ष में सहायक होती है, कही नहीं : **पावन करो नयन** में प्रकाश के बाद अंधकार का आना, उस अंधकार में भी जागते रहने—नींद में स्वप्न देखने—की प्रबल आकांक्षा उस तर्कयोजना से संवद्ध होकर सफलतापूर्वक व्यक्त होती है। 'देवी सरस्वती' और 'प्रसाद के प्रति' रचनाओं में इसी तरह देश की सांस्कृतिक विरासत और आधुनिक साहित्य का विकास चित्रित करने के लिए बारहमासे वाला साँचा बड़े काम का साबित होता है। किन्तु 'तुलसीदास' मे यह साँचा कमज़ोर-सा है। कविता के जोरदार अश युद्ध और तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व से संवद्ध है, अन्त में रत्नावली के योगिनी रूप के वर्णन से। इनकी तुलना मे सूर्योदय कमज़ोर लगता है, मात्र एक रूढ़ि का पालन। वास्तव में जिस उदात्त स्तर पर सूर्यास्त का चित्रण हुआ है, उसी पर सूर्योदय का नहीं हुआ। इसी तरह 'राम की शक्तिपूजा' में इतना अंधकार है और इतना गहरा है कि जिस ज्योति के पत्र पर राम-रावण का अपराजेय समर लिखा गया है, वह अंधकार के नीचे कहीं छिप गया है। कविता के अन्त में महाशक्ति राम के वदन में लीन हुई, यह सही है, किन्तु उनके लीन होने के समय रात बीत चुकी थी, सवेरा हो गया था, कहीं स्पष्ट उल्लेख नही है। जब राम का मन सहस्रार पार करने को होता है, तब रात का दूसरा पहर है। दुर्गा कमल का आखिरी फूल उठा ले जाती हैं। राम नेत्रकमल चढ़ाने को होते हैं तब एक स्वप्न साकार हो उठता है : सामने दुर्गा है, दाएँ लक्ष्मी, बाएँ सरस्वती है। यह एक सपना है जो प्रभात की किरणो से मेल नहीं खाता। कविता के आरम्भ में पराजय का दुःस्वप्न है, कविता के अन्त मे वर-प्राप्ति का सुख-स्वप्न। इन दो स्वप्नों में वैषम्य है किन्तु संतुलन नही। पहला स्वप्न प्रबलरूप से उद्वेगपूर्ण है, यथार्थ को समर्थरूप से अभिव्यक्त करता है; दूसरा स्वप्न यथार्थ से विमुख, सुखद कल्पना है जिसमें अन्तर्निहित भावशक्ति क्षीण है। यह सुख-स्वप्न चाहे राम ने रात्रि में देखा हो चाहे प्रातःकाल, है वह कमज़ोर। 'राम की शक्तिपूजा' के तर्कसंगत गठन में यह कमज़ोरी है। गठन की इस कमज़ोरी का सम्बन्ध निराला के भावबोध और उनकी विचारधारा से

है। जीवन में संघर्ष और पीड़ा को चमत्कार से दूर करने का प्रयास कविता के ढाँचे को कमज़ोर बनाएगा ही। ऐसी ही कमजोरी 'वनवेला' के ढाँचे में है। निराला अपने अन्तर्द्वन्द्व को शांत करना चाहते है वनवेला के आत्मसमर्पण वाले आदर्श से। अन्तर्द्वन्द्व की तीव्रता के मुकावले वह आत्मसमर्पण का आदर्श निर्जीव लगता है। जीवन में जो ट्रैजेडी है उसे उसी रूप मे स्वीकार करने से यह कमज़ोरी दूर हो सकती है या फिर—

दुख के सिख जियो पियो ज्वाला।
शंकर की स्मरशर की हाला।

'सरोज-स्मृति' मे निराला का परिचित संरचना-क्रम टूट जाता है। आरम्भ मे उन्होने लिखा कि पिता से पहले कन्या संभवतः स्वर्ग इसलिए गयी कि पिता अक्षम है, दुस्तर ग्रंधकार मे उनका हाथ पकड़कर वह उन्हे पार ले जाएगी। कन्या स्वयं शुक्ला प्रथमा है जो श्रावण नभ का अंधकार पार कर जाती है। अन्धकार को पार करने के चित्र निराला के मन मे हैं; वे सकेत करते हैं, कविता की परिणति के वारे मे वह किस तरह की रूपरेखा तैयार कर रहे थे। किन्तु कविता के अंत तक पहुँचते-पहुँचते यह रूपरेखा मिट जाती है, अंधकार को पार करके प्रकाश तक पहुँचने के मोहक सपने चूर हो जाते हैं। सरोज नानी की गोद मे खेली और पली थी, उसी मे उसने महामरण को वरा। महामरण को याद करते हुए निराला अंधकार को पार करके प्रकाश तक पहुँचने की वात भूल जाते है या कह नही पाते। अपने कवि-कर्म से कन्या का तर्पण करते हुए वह कविता समाप्त करते है। इस कविता का अंत—उसकी परिणति—जितना प्रभावशाली है, उतना अन्य किसी लम्बी कविता का नही। न 'तुलसीदास', न 'वनवेला' न 'राम की शक्तिपूजा'—कोई भी, कविता के प्रभावशाली अन्त की दृष्टि से, 'सरोज-स्मृति' का मुकावला नहीं कर सकती। यहाँ कविता के पूर्व-निश्चित तर्कसंगत ढांचे का टूटना ही उसकी सवसे वड़ी सफलता है।

निराला की कुछ कविताएँ ऐसी है जिनमें भावोद्गारो की लड़ियाँ है, इनमे कोई आन्तरिक तर्कयोजना नही है, ये लड़ियाँ स्वेच्छानुसार वढ़ाई-घटाई जा सकती हैं। भावोद्गारों के समान वे जो चित्र खीचते है, वे विखरे हुए हैं। इनमें छाया-वादी कविता के भावुकता-जन्य दोप सवसे ज्यादा हैं। भाव मे गहराई नही है, वैसे ही चितनक्रिया मे शिथिलता है। चित्र हल्के और अस्पष्ट रेखाओं वाले हैं। जटिल जीवन-नद मे तिरने और डूवने वाली स्मृति कवि से प्रेमालाप करती है, अतीत के गान सुनाती है। शैशव की याद, चुंबन की प्रथम हिलोर, सुखवृन्तों से गिरती हुई कलियाँ, प्रणयपीड़ित अस्फुट वोल···यह क्रम मनचाहे ढंग से वढ़ाया जा सकता है। 'स्मृति' (परिमल, पृ. ६६), 'वासन्ती' (उप., पृ. ६७), 'वसन्त समीर' (उप., पृ. ८०), 'यमुना के प्रति' (उप., पृ. ४१) जैसी रचनाओं मे निर्माण के वदले भावोद्गारों की लड़ियाँ है। इनके अनेक अंश सशक्त है किन्तु कुल मिलाकर रचनाएँ कमज़ोर है। इसके विपरीत 'नयन', 'माया' जैसी कविताओं मे

उपमानों की शृंखला है, फिर भी रचना में आन्तरिक संगति है। तर्कयोजना नहीं है, फिर भी भावबोध के स्तर पर उपमानों में परस्पर-संबद्धता है और उससे यह संगति उत्पन्न होती है। नयन अल्पजल में विकल मीन है, किसी की प्रतीक्षा मे रात बीत जाने पर दीन-से दिखाई देते हैं, फिर पथिक से उनकी बातचीत शुरू हो जाती है। ('नयन', परिमल, पृ. ७१) केन्द्र में नेत्र हैं; उपमान उनकी करुण दशा पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए है। माया के उपमान परस्पर-विरोधी विकल्प उपस्थित करके निराला के संशयग्रस्त मन का चित्र खीचते है। माया किसी के चित्र की कालिमा है या किसी कमनीय की कमनीयता है; वह किसी दीन की आह है या किसी तरु की वनिता-लता है। 'तुम और मै' कविता मे तुग हिमालय शृग से लेकर कुंद इन्दु अरविन्द शुभ्र और निर्मल व्याप्ति तक निराला उपमानों से सौन्दर्य, सुख और ऐश्वर्य का वातावरण निर्मित करते है जिसमें ब्रह्म का ज्ञानमय प्रकाश खो जाता है। फिर भी यह सत्य है कि उपमान शृंखला को कहाँ तक बढ़ाया जाय, कहाँ उसे तोड़ा जाय, यह कवि की इच्छा पर है। कविता के परिमाण को निश्चित करने वाला उसी में अन्तर्निहित कोई नियम नही है। निराला ने आगे चलकर न केवल 'वासन्ती' और 'यमुना के प्रति' वाली रचना-पद्धति छोड दी वरन् 'तुम और मैं' की पद्धति भी त्याग दी।

अनेक रचनाओं मे निराला तर्कयोजना की कड़ियाँ बीच-बीच मे छोड़ते जाते है। इसका यह अर्थ नही है कि उनके सामने रचना की रूपरेखा नही है; अर्थ केवल यह है कि योजना की सभी रेखाओं को वह समानरूप से उभारना नही चाहते। एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक संक्रमण को आकस्मिक बनाकर वह नाटकीयता से श्रोता को विस्मित कर देना चाहते है, इसलिए तर्क की कुछ कड़ियाँ छोड़ जाते है। एक साधारण-सी मिसाल इस कला की है: 'आदान-प्रदान' (परिमल, पृ. ६२)। कविता की पहली चार पंक्तियों मे कवि कठिन शृंखला बजाकर अतीत के गान गाता है; अगली चार पंक्तियाँ असंबद्ध लग सकती है: शिशु माता के वक्षस्थल पर भूला गान पाते है; माताएँ भी शिशु के अधरों पर अपनी मुसकान पाती हैं। कविता के पहले अंश को दूसरे अंश से जोड़ने वाली कड़ी गायब है:

> कठिन शृंखला बजा-बजाकर
> गाता हूँ अतीत के गान,
> मुझ भूले पर उस अतीत का
> क्या ऐसा ही होगा ध्यान?
> शिशु पाते है माताओं के
> वक्षःस्थल पर भूला गान,
> माताएँ भी पाती शिशु के
> अधरो पर अपनी मुसकान।

तर्क की कड़ी छोड़ दी गई है किन्तु पूरी तर्कयोजना समझ मे आती है। अतीत मां के समान है। कवि जब उसे याद करता है, तब अतीत के लिए भी उचित है कि

वह कवि का ध्यान रखे। कविता के पहले अंश में जो प्रश्न किया गया है, दूसरे अंश मे उसी का उत्तर है। **जागो फिर एक वार** (१) मे इसी तरह तर्क की कड़ियाँ छोड़ी गई है; फिर भी वक्ता और श्रोता पर आदि से अन्त तक ध्यान केन्द्रित रहता है, इसलिए पाठक ज्यादा झटके नही खाता। किन्तु **जागो फिर एक वार** (२) मे ये कड़ियाँ और वेरहमी से तोड़ी गई है; ध्यान एक ही वक्ता-श्रोता के जोड़े पर केन्द्रित नही रहता। इस कविता मे **जागो फिर एक वार** (१) से नाटकीयता अधिक है, एक वंद से दूसरे वंद तक पहुँचने मे पाठक को और तगड़े झटके लगते है। विस्मय का भाव उतना ही वढ़ता है। यह सव कविता के सुनियोजित रचना-विधान के अन्तर्गत सम्पन्न होता है।

कौन तम के पार—इस गीत में प्रत्येक वंद दूसरे से असंवद्ध, प्रत्येक पंक्ति दूसरी पंक्ति से अलग-थलग जान पड़ती है। वहुत से पाठको को सारे शव्द उखड़े हुए, वाक्य-विन्यास निरर्थक लगें तो आश्चर्य नही। किन्तु इस गीत की असंवद्ध-सी दिखनेवाली पंक्तियों के नीचे वहुत मज़वूत ढाँचा है जो निराला की पंचतत्व वाली प्रतीक-योजना पर ध्यान देने से समझ मे आ जाता है। निराला ने तर्क की कड़ियाँ जान-वूझकर छोड़ दी है, गीत को अधिक प्रभावोत्पादक वनाने के लिए।

निराला इस कला का उपयोग तत्सम-प्रधान शव्द-योजना वाली छायावादी-सी रचनाओ में करते है, उसका उपयोग वोलचाल के शव्दो वाली यथार्थवादी-सी रचनाओ मे भी करते हैं। एक की मिसाल है : **कौन तम के पार** जिसकी शव्द-योजना इस तरह की है :

गन्ध - व्याकुल - कूल-उर - सर,
लहर-कच कर कमल-मुख पर,
हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर,
गूंज वारवार !

इससे भिन्न शैली मे **नये पत्ते** की रचना है 'दगा की'।

चेहरा पीला पड़ा।
रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े।
आँख का अँधेरा वढ़ा।
सैकडो सदियाँ गुजरी।
वड़े-वड़े ऋषि आए, मुनि आए, कवि आए,
तरह-तरह की वाणी जनता को दे गए।
किसी ने कहा कि एक तीन है,
किसी ने कहा कि तीन तीन है।
किसी ने नसें टोईं, किसी ने अँगूठे चूमे।
लोगो ने कहा कि धन्य हो गए।

कविता का एक चरण पूरा हुआ। कविता के वाक्य असंवद्ध लगते है क्योंकि जो संदर्भ वाक्यो में निहित है, उसे अलग से नही वताया गया। पुरानी समाज-व्यवस्था

में जनता पिसती रही, काव्य और धर्मशास्त्र रचे जाते रहे, ईश्वर एक है या ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों अलग-अलग देवता हैं, बड़ी बहसें हुई, जनता ने बहकावे में आकर संपत्तिशाली वर्गों की पूजा की। पूरे चरण में आन्तरिक संगति है। निराला अमूर्त तर्कयोजना के बदले चित्र प्रस्तुत करते हैं और इन चित्रों में आन्तरिक क्रमबद्धता है। दूसरा चरण शुरू होता है तब तर्कयोजना की कड़ी फिर टूटी हुई लगती है; सामान्य कविता-पाठक को दो चरणों के बीच की यह खाली जगह विशेष कष्ट देती है। लगता है, इसी मे गिर पड़ेगा, दूसरी तरफ के कगार पर न चढ़ पाएगा। दूसरा चरण यों शुरू होता है :

मगर खँजड़ी न गई।
मृदंग तबला हुआ,
वीणा सुरबहार हुई।
आज पियानो के गीत सुनते हैं।
पौ फटी।
किरनो का जाल फैला।
दिशाओ के होठ रँगे।
दिन मे वेश्याएँ जैसे रात में।
दगा की इस सभ्यता ने दग़ा की।

लोगों के धन्य-धन्य कहने के बाद अचानक खँजड़ी और मृदंग की चर्चा होने लगी। दोनों चरणों का परस्पर सम्बन्ध समझ मे नही आता। निराला तर्क करते है कि जो लोग सम्पत्तिशाली वर्गों के बहकावे में आकर स्वयं को धन्य मानते रहे हैं, उनकी संस्कृति में कोई मौलिक परिवर्तन नही हुआ। आदिकाल से अब तक खँजड़ी बजाते रहे। वीणा से सुरबहार, मृदंग से तबला, नये वाद्य पियानो का चलन—ये सब सांस्कृतिक परिवर्तन होते रहे हैं किन्तु दिशाओ के होंठ रँगने और वेश्याओं के सजने से सभ्यता की जो नई चमक-दमक दिखाई देती है, वह धोखा है। इस सभ्यता ने लोगों को भरमाकर उनसे दगा की है। अंतिम पंक्ति में तर्कयोजना की परिणति स्पष्ट हो जाती है।

निराला इस तरह जहाँ तर्क की लड़ियाँ छोड़ते है, वहाँ किसी-न-किसी रूप में व्यंग्य रहता है। जिन कविताओं में दूसरों की आलोचना करते हैं, जो मूलत: व्यंग्य-प्रधान हैं जैसे 'दगा की', वहाँ यह रचना-कौशल विशेष सहायक होता है। व्यंग्य जहाँ-तहाँ अलग वाक्यो में नही, कविता की संरचना मे अन्तर्निहित होता है। नये पत्ते में 'दगा की' के बाद कविता है 'चर्खा चला'। इस दूसरी कविता में तर्कयोजना की कड़ियाँ छोड़ी नहीं गई; सभ्यता के विकास की जानी-पहचानी मंजिलें गिनाई गई हैं। सास्कृतिक विरासत में क्या सुरक्षित रखना है, इस पर ज़ोर है। कविता में व्यंग्य और नाटकीयता का अभाव है। तर्क की कड़ियाँ छोड़ने से निराला किस तरह के प्रभाव उत्पन्न करते है, यह दोनों कविताओं की तुलना करने से ज्ञात होगा। अणिमा में 'चूँकि यहाँ दाना है', आराधना मे 'ऊँट बैल का साथ हुआ है', 'मानव

जहाँ बैल-घोड़ा है' आदि रचनाओं में निराला उसी तर्क शृंखला को तोड़ने वाली कला का प्रयोग करते है। इस कला का सबसे प्रसिद्ध प्रयोग उनकी गद्य-रचना 'वर्तमान धर्म' है।

स्थापत्य

स्थापत्यकार अपनी रचना-सामग्री से खाली जगह भरता है। जहाँ शून्य है, वहाँ लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई वाली इमारत वह खड़ी करता है, उसके विभिन्न अंगो में सन्तुलन स्थापित करके सौन्दर्य की सृष्टि करता है। कविता जिस शून्य को भरती है वह कल्पना मे है। जिस क्षण कविता आरम्भ होती है, उस क्षण से लेकर अन्त होने तक वह एक निश्चित काल-खंड घेरती है, इस काल मे वह गतिशील रहती है। साथ ही उस निश्चित अवधि मे बढ़ते हुए वह शून्य को भी घेरती है, उसकी गति उस रेखा के समान नही है जिसमे लम्बाई तो है, चौड़ाई नही है।

स्थापत्यकार ईंट, पत्थर, गारा, चूना आदि रचना-सामग्री का उपयोग करके आकाश का कोई पूर्व-निश्चित भाग घेरता है। कवि की रचना-सामग्री है भाषा। शब्दों का प्रयोग करता है वह उनके अर्थ के लिए, सांकेतिक व्यंजना के लिए, कल्पना मे चित्र उपस्थित करने के लिए, ध्वनि-प्रवाह के लिए। इस प्रयोग पर निर्भर है कि वह अपनी रचना-सामग्री से कितना आकाश किस तरह भरता है। कागज़ पर छपी हुई कविता की लम्बाई देखकर यह अनुमान नही किया जा सकता कि वह वास्तव में कितना आकाश घेर रही है। अणिमा में कविता है 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' जो पुस्तक के तीस पृष्ठ घेरती है। सीधी रेखा पकड़े कविता बढ़ती चली जाती है, इस गति को रोककर दाएँ-बाएँ घूमती हुई वह खाली जगह नही घेरती। इस कविता को हम फूलो की माला या वृक्षो की लंबी पाँति कह सकते है, वह इमारत नही है। अनामिका मे 'सेवा प्रारम्भ' बारह-तेरह पृष्ठ घेरती है, इतने ही पृष्ठो की 'नये पत्ते' मे 'स्फटिक-शिला' है। इन लम्बी कविताओं में वह गहराई नही है जो 'तुलसीदास' या 'राम की शक्तिपूजा' मे है। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' की कुल शब्द-संख्या सम्भव है 'राम की शक्तिपूजा' के बराबर हो या कुछ अधिक हो किन्तु दोनों के रचना-कौशल मे जो भेद है, वह शब्द-संख्या की समानता-असमानता से प्रकट नही होता। उस भेद का कारण है माध्यम का भिन्न पद्धति से उपयोग।

माध्यम है भाषा। भाषा के साथ अर्थ, मूर्तिविधान, ध्वनिप्रवाह—यह सब-

कुछ है। यह कवि की रचना-सामग्री है; उसको वह कैसे तैयार करता है, गारा पतला है या गाढ़ा, लखौरी ईंट है या संगमूसा के वड़े-वड़े टुकड़े, उस सामग्री का उपयोग कैसे करता है, इस पर निर्भर है कि कविता की इमारत कैसी वनती है। 'तुलसीदास' मे निराला एक शानदार इमारत वनाना चाहते हैं, ऐसी कि उसे देखकर मन उसकी गरिमा से प्रभावित हो। इसलिए वह छंद-प्रवाह, मूर्तिविधान, शव्द-ध्वनि, सांकेतिक अथवा स्पष्ट व्यंजना इन सवको नियन्त्रित रखते हैं। निराला की कला की विशेपता यह है कि सामान्यतः इन तत्वों में एक नियंत्रित है, तो सव नियंत्रित है, एक में अनवरुद्ध प्रवाह है तो औरों में भी है। इस नियंत्रण द्वारा वह अपने माध्यम में घनत्व पैदा करते है, कविता को सीधी रेखा में वढने से रोककर दाएँ-वाएँ जगह घेरते चलते हैं।

भारत के नभ का प्रभा पूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मंडल;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान;
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शतदल।

भाषा की गति अनवरुद्ध प्रवाह के समान नही है। निराला शव्दों की रास खींचे हुए हैं। विशेपणों से पूरे वाक्यो का काम ले रहे है। मूर्तिविधान के एक-एक अंश में युग का पूरा इतिहास है। शव्दों की ध्वनि में हल्कापन नहीं, गहराई है। निराला ने छह पंक्तियों के लिए जितना समय निर्धारित किया है, उससे वहुत अधिक आकाश घेरा हैं। इसके विपरीत, भिन्न ढंग से वह रचना-सामग्री का उपयोग करते हैं 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' में:

आमों की मंजरी पर
उतर चुका है वसंत,
मञ्जु गुञ्ज भौंरो की
वौरों से आती हुई,
शीतवायु ढो रही है
मंद गन्ध रह-रह कर।
नारियल फले हुए,
पुष्करिणी के किनारे
दोहरी कतारों में
श्रेणीवद्ध लगे हुए।
भरा हुआ है तालाव,
खेलती है मछलियाँ,
पानी की सतह पर
पूंछ पलटती हुई।

दोनों कविताओं की शैली का अन्तर साफ पहचाना जा सकता है किन्तु यह अन्तर मूलतः कविता के ढांचे से, कलाकार द्वारा उस ढांचे के अनुकूल अपनी रचना-सामग्री के उपयोग से सम्वन्धित है। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' या वैसी ही अन्य कविताओ मे उद्देश्य कविता की रचना-भव्यता से प्रभावित करना नही है जैसे 'तुलसीदास' या 'राम की शक्तिपूजा' में।

इस तरह का भेद लम्बी कविताओं में ही नहीं, छोटी मुक्तक रचनाओं में भी है। 'जुही की कली' का प्रवाह अनवरुद्ध है। उपवन सर सरित गहन गिरी कानन को जल्दी-जल्दी पार करता हुआ पवन मानो इस प्रवाह का प्रतीक है। जुही की कली के सोने से लेकर प्यारे के संग रंग खेलने तक निराला निरन्तर, प्रायः एक गति से, दाएं-वाएँ देखे विना आगे वढते जाते है। शब्द की ध्वनि या अर्थ में—प्रवाह को रोककर—वक्रता पैदा नही की गई जैसे इससे मिलती-जुलती कविता 'शेफालिका' में की गई है :

> वंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
> यौवन-उभार ने
> पल्लव-पर्यक पर सोती शेफालिके।
> मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
> व्याकुल विकास पर
> झरते है शिशिर से चुंबन गगन के।

मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों का व्याकुल विकास—एक व्यंजना-पद्धति यह है जो पाठक को आगे वढने से रोकती है, जो कविता की रचना में घनत्व पैदा करती है। दूसरी पद्धति है :

> निर्दय उस नायक ने
> निपट निठुराई की
> कि झोंकों की झाड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली।

'जुही की कली' निराला की लोकप्रिय रचना है। लोकप्रियता का एक कारण सीधी रेखा मे आगे वढना है। रीतिवादी कविता पढ़कर पाठक जो संचारी-व्यभिचारी जगाता रहा है, उन्ही को एक हद तक यह कविता पढ़कर भी वह जगा लेता है। 'शेफालिका' मे कवि ने भापा का जैसा प्रयोग किया है, उससे वह अपरिचित है। किन्तु रचना मे घनत्व वही ज्यादा है। ऐसी ही भिन्नता गीतों में है।

वर दे, वीणावादिनि वर दे!—यह भी लोकप्रिय गीत है। ध्वनि में गांभीर्य है, वक्रता है, प्रवाह की तरलता नही है किन्तु शब्दो की ध्वनि के साथ मूर्तिविधान और व्यंजना मे वैसी वक्रता, वैसा कसाव नही है। अन्ध-उर के वन्धन काटकर ज्योतिर्मय निर्झर वहाने की वात सुपरिचित है, मन पर असर करती है। किन्तु **कौन तम के पार में** निराला ने रूप, रस, गंध, स्पर्श के हिसाव से विंवों के शिला-खंड जमाए है और उनके सहारे गीत मे एक छोटा किन्तु वहुत मजवूत, भीतर से

गहरा स्तूप रच डाला है। इन सबसे भिन्न रचना-सामग्री का उपयोग होता है उन गीतों मे जो लोकगीतों की परम्परा के निकट हैं : **नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेले होली**। यहाँ निराला रचना का मध्य मार्ग अपनाते हैं। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' की तरह यहाँ सीधी रेखा वाली गति नही है, न 'तुलसीदास' की तरह आकाश भरने का स्थापत्य है। संयत प्रवाह के साथ निराला एक चित्रावली उद्घाटित करते हैं जिसमें आन्तरिक संगति है।

गीतों और मुक्तकों में निराला शुरू से अन्त तक प्राय: एक तरह की रचना-सामग्री का उपयोग करते हैं अर्थात् शब्दों की ध्वनि, सांकेतिक व्यंजना, मूर्तिविधान आदि का स्तर एक ही रहता है। **वर दे, वीणावादिनी वर दे**—से गीत आरम्भ हुआ,

नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर, नव स्वर दे!

उसी शैली में, उसी स्तर पर समाप्त हुआ। किन्तु **पावन करो नयन**—यह गीत उस स्तर पर आरम्भ होता है जिसे अनुदात्त कह सकते हैं। **घन गर्जन से भर दो वन** या **दे मैं करूँ वरण** जैसे गीतों का मन्द्र घोप आरम्भ में नहीं है। **पावन करो नयन** में लोकगीत की-सी मधुर ध्वनि और वैसी ही सरल व्यंजना है। किन्तु दूसरी ही पंक्ति **रश्मि नभ नील पर**—से ध्वनि और व्यंजना की वक्रता आरम्भ होती है; शैली वदल जाती है। दूसरे छंद में—

प्रतनु, शरन्दिन्दुवर,
पद्मजल विन्दु पर—

के साथ स्वर और भी साफ वदला हुआ नज़र आता है। मूर्तिविवान की सादगी खत्म हो गई है। संध्या के समय कमल के दल वंद हो गए हैं, उन पर ठहरी हुई ओस की बूँद पर चन्द्रमा की किरण पड़ती है। दुखनिशा में कवि की स्वप्न-जागृति यह किरण है। इस तरह निराला एक ही गीत में शब्दों की ध्वनि और मूर्तिविधान का प्रयोग दो तरह से करके नाटकीयता उत्पन्न करते है।

'वादल राग' (६) उदात्त स्तर पर शुरू होता है :

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया।

लम्बे डग भरता हुआ छंद; वैसा ही विराट् चित्र। फिर उदात्त से भिन्न सामान्य स्तर पर :

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,
हिल हिल
खिल खिल,
हाथ हिलाते
तुझे वुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही है शोभा पाते।

पौधों का वर्णन शुरू होने से पहले बादल गगनस्पर्शी स्पर्द्धाधीर पर्वतों को क्षत-विक्षत कर चुका है। इन पर्वतो और छोटे पौधों में जैसा भेद है, वैसा ही भेद दोनों के वर्णन की शैली में है।

चूस लिया है उसका सार
हाड मात्र ही है आधार—

यहाँ निराला ने आरंभ में जो उदात्त स्तर पकड़ा था, उसे छोड़ दिया है। इस तरह कई गीतो और मुक्तकों मे निराला अपनी रचना-सामग्री का उपयोग एक ही ढंग के बदले कई ढंग से करते है। स्वभावत: इस तरह की विविधता लंबी कविताओं में अधिक है। एक ओर

शतशेल सम्वरण शील नील नभ गर्जित स्वर—

दूसरी ओर

कहती थी माता मुझे सदा राजीवनयन।

निराला इस तरह की भिन्नता एक ही स्थल के वर्णन मे, एक ही व्यक्ति के भाषण में प्रदर्शित करते है; पूरी कविता को कई हिस्सो मे बाँटकर उनके बीच भी इस तरह का शैली-भेद दिखाते हैं। शैली-भेद—रचना-सामग्री का भिन्न स्तरो पर उपयोग—उनकी निर्माणकला का अभिन्न अंग है।

'तुलसीदास' का आरंभ वह उदात्त स्तर पर करते हैं। पहले बंद में जो एक दिन की संध्या लगती है, वह दूसरे बंद मे शत-शत शब्दो का सांध्यकाल बन जाती है। भोगल दल-बल के जलदयान के साथ स्वर और चढता जाता है; घन अंधकार में वज्र टूटने और प्रलय धार के बहने तक कविता के प्रारंभिक अंश की उठान सबसे ऊँचे विन्दु पर पहुँच जाती है। फिर इस्लाम के सागर की ओर बहती हुई नदियो के उल्लेख के साथ यह अंश—स्वर के कुछ निम्न स्तर पर उतरता हुआ समाप्त होता है। **अब धौत धरा खिल गया गगन**—से शैली-परिवर्तन साफ दिखाई देता है। युद्ध के बाद शान्ति; संघर्ष के बाद शृंगार-साधना। इन दोनों की भिन्नता के अनुरूप निराला का शैली-परिवर्तन है।

निराला आरंभ मे जिस उदात्त स्तर पर कविता आरंभ करते हैं, उसे क्रमश: छोड़ देते हैं। तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए वह फिर ऊपर उठते हैं। जहाँ वह तुलसीदास की चेतनोर्मियो का वर्णन करते हैं, उन्हें संस्कारों के वज्रद्वार पर प्रहार करते दिखाते है, वहाँ उदात्त ध्वनि-प्रवाह की रेखा उच्चतम विंदु पर होती है। उसके बाद वह उस प्रवाह को वैसे ही नीचे उतारते हैं जैसे भोगल दल-बल के जलदयान के बाद **अब धौत धरा खिल गया गगन** में उन्होने उसे उतारा था। यहाँ ध्वनिप्रवाह का उच्चतम विंदु यह है :

करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्रद्वार,
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को।

ज्ञान की इस उदात्त प्रक्रिया के बाद निराला रत्नावली के प्रति तुलसीदास के

शृंगार-भाव की ओर संकेत करते हुए स्वर को नीचे उतारते है :

प्रेयसी, प्राणसंगिनी, नाम
शुभ रत्नावली—सरोज-दाम
वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम ।

यह वही स्तर है जिस पर निराला ने **अब धौत धरा खिल गया गगन** आदि की रचना की थी। दो स्थितियो के भेद के अनुसार निराला अपनी शैली मे परिवर्तन करते हैं।

तुलसीदास को रत्नावली के दो रूप दिखाई देते है—एक शृंगारवाला, दूसरा शक्ति और ज्ञान वाला। शृंगारवाले रूप के वर्णन में उनका स्तर वही है जो **अब धौत धरा खिल गया गगन** में है, **प्रेयसी प्राणसंगिनी नाम** में है। आठवें बंद मे **अब धौत धरा खिल गया गगन**; सैतीसवें बंद मे **प्रेयसी प्राणसंगिनी नाम**; सैतालीसवें बंद मे फिर

प्रेयसी के अलक नील, व्योम;
दृग-पल, कलंक;—मुख मंजु, सोम ।

इस तरह निराला एक ही स्तर पर कविता के कई अंश रचते है, फिर इन अशो को एक-दूसरे से फासले पर पूरी कविता के नक्शे के अनुसार सजाते है।

कविता के पहले बंद में उन्होंने उदात्त स्तर पकड़ा—**भारत के नभ का प्रभापूर्ण** इत्यादि। सात बंदो के बाद यह स्तर छोड़ देते हैं; फिर क्रमशः उठते हुए छत्तीसवें बंद में ज्ञानोद्धत प्रहार वाले उदात्त स्तर तक पहुँचते है। इस स्तर को कविता के अंत में फिर पकड़ते हैं जब वह रत्नावली का तेजस्वी रूप प्रकट करते हैं :

जल गए व्यंग्य से सकल अंग,
चमकी चल दृग ज्वाला तरंग
पर रही मौन धर अप्रसंग वह वाला ।

निराला का प्रयत्न यह नही है कि एक ही उदात्त स्तर पर पूरी कविता रचें। उदात्त में वह भेद करते है; इस भेद के अनुसार कविता के अलग-अलग खंडों को सजाते है। एक उदात्त है ज्ञान और युद्ध के वर्णन में; उससे कुछ नीचे स्तर पर उदात्त है शृंगार के वर्णन में। इन दोनो से भिन्न है अनुदात्त का स्तर जहाँ निराला राजापुर का या चित्रकूट मे तुलसीदास के भ्रमण का वर्णन करते है,

यह एक उन्ही मे राजापुर,
है पूर्ण, कुशल, व्यवसाय-प्रचुर; अथवा
फिर पंचतीर्थ को चढ़े सकल
गिरिमाला पर, हैं प्राण चपल
संदर्शन को, आतुर पद चलकर पहुँचे ।

मोटे तौर पर कह सकते है कि निराला तीन स्तरो पर कविता रचते हैं : एक उदात्त, दूसरा उससे कुछ उतरा हुआ किन्तु निम्न नही, तीसरा अनुदात्त। उदात्त और

अनुदात्त से भिन्न जो दूसरा स्तर है, वह उदात्त के ज़्यादा निकट है, अनुदात्त मे दूर है। उसे हम स्वरित नाम दे सकते है। इन स्तरो के विचार से कविता का विभाजन इस प्रकार होगा :

उदात्त : १-७; २३-३६; ७७-७८; ८२-९०; ९३-९७ (कुल ३७ बंद)

स्वरित : ८-१०; १४-२२; ३७-४२; ४७-५९; ६६-६७; ७१-७६; ७९-८१; ९१-९२; ९८-१०० (कुल ४७ बंद)

अनुदात्त : ११-१३; ४३-४६; ६०-६५; ६८-७० (कुल १६ बंद)

इस विभाजन के बारे में मेरा आग्रह यह नही है कि प्रत्येक बंद जिस विभाग में रखा गया है, वह एकदम सही रखा गया है। हो सकता है कि वह आपको अधिक या कम उदात्त लगे, या जिसे मैंने अनुदात्त समझा है, उसे आप उस श्रेणी मे न रखे। यह भी सही है कि एक ही स्तर पर रचे हुए बंदो में पूरी समानता नही है तथा कभी-कभी एक ही बंद में दो स्तर मिल जाते है। यह सब होते हुए यदि आप स्वीकार करें कि निराला की रचना का स्तर एक नही, कम-से-कम तीन स्तर है, इन तीनो स्तरों पर जिस तरह की शैलियाँ देखने को मिलती हैं, उनकी अपनी सार्थकता है और इन शैलियों के हिसाब से रचे हुए अंशो को निराला कविता में निर्माणकला का ध्यान रखते हुए सजाते है, तो मेरे उपर्युक्त विवेचन का उद्देश्य सिद्ध हो जायगा।

किसी कविता में ऊंचे-नीचे स्तरों पर भिन्न शैलियों का परिचय देना कोई नई बात नही, कोई बडी बात नही। 'तुलसीदास' में निराला ने विभिन्न अंशो मे संतुलन कायम रखा है, उस संतुलन से पूरी कविता का स्थापत्य पाठक को कैसे प्रभावित करेगा—इस बात का ध्यान रखा है, महत्त्वपूर्ण बात यह है। अनुदात्त अंश बहुत थोड़े हैं; वे इमारत के अलग-अलग हिस्सो को जोड़नेवाले टुकड़ो की तरह है। पूरी कविता का प्रभाव उन पर निर्भर नही है। प्रभाव निर्भर है पहले दो अंशो के वैषम्य और संतुलन पर। निराला कविता का आरंभ नियंत्रित किन्तु गंभीर ध्वनि-प्रवाह, सघन मूर्तिविधान और वक्र अर्थ-व्यंजना से करते हैं। रचना-सामग्री के इस घनत्व से वह काफी आकाश घेरकर कविता के सिंहद्वार का निर्माण करते हैं। उन्हें इस बात का ध्यान है कि कविता का आरम्भ जिस गरिमा का प्रभाव डालता है, वह अंत तक पहुँचते-पहुँचते खत्म न हो जाय। अंत:पुर की शोभा दिखाते हुए वह दर्शक का ध्यान प्रासाद के ऊँचे-ऊँचे शिखरों, अट्टालिकाओ की ओर आकर्षित करते हैं। उदात्त अंशों को कविता के आदि, मध्य और अन्त मे सजाकर वह पूरी कविता द्वारा मन पर भव्य स्थापत्य की छाप डालते हैं। इससे वैषम्य प्रदर्शित करते हैं स्वरित स्तर पर रचे हुए अंशों का। कविता मे जैसे दो तरह की संस्कृतियो के द्वंद्व से तनाव पैदा किया गया है, वैसे ही रचना मे दो शैलियां निर्माण-कला में भीतरी तनाव पैदा करती है, पूरे स्थापत्य को जड़त्व से बचाकर गतिशील बनाती हैं।

'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' के निर्माण-सौन्दर्य में काफी समानता

है, काफी भिन्नता भी। 'राम की शक्तिपूजा' में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्तरों पर रचना के अंश वैसे ही पहचाने जाते है जैसे 'तुलसीदास' मे; भिन्न स्तरों पर रचे हुए अंगों की क्रमबद्धता, उनका संतुलन लगभग वैसा है जैसा 'तुलसीदास' मे। किन्तु 'तुलसीदास' का ध्वनि-प्रवाह जहाँ सबसे गहरा है, 'राम की शक्तिपूजा' में अनेक स्थलों पर वह उससे और भी गहरा है। 'तुलसीदास' के विभिन्न अंशों में इस प्रवाह की गति प्रायः एक-सी रहती है; 'राम की शक्तिपूजा' के विभिन्न अंशों में इस गति मे बड़ा भेद है। कही उद्धत उद्दाम प्रवाह है, कही स्थिर-सा निर्मल जल। अर्थ की वक्रता, मूर्तिविधान का घनत्व 'राम की शक्तिपूजा' में तुलसीदास से अधिक है। कविता के स्थापत्य का उद्देश्य पाठक के मन को गरिमा से प्रभावित करना है किन्तु यह गरिमा एक ट्रैजेडी की गरिमा है जिसमें आत्मग्लानि और पराजय की पीड़ा 'तुलसीदास' की अपेक्षा बहुत अधिक है। 'तुलसीदास' के स्थापत्य की गरिमा जगमगाती है; 'राम की शक्तिपूजा' के स्थापत्य की गरिमा कान्तिहीन दृढ़ता का परिचय देती है।

'तुलसीदास' की तरह इस कविता का विभाजन करें तो वह सब-कुछ इस प्रकार होगा :

उदात्त : १-१८; ४५-५४; ६५-८०; ९५-११२; १३७-१५८; १७१-१७६; १८१-१९०; २५७-२७०; २७७-२९६; (कुल पंक्तियाँ—१४४)

स्वरित : १९-३०; ५५-६४; ८१-९४; १२३-१३६; १५९-१७०; १७७-१८०; १९१-२०६; २१३-२३२; २४३-२५६; २९७-३०६ (कुल पंक्तियाँ—१२६)

अनुदात्त : ३१-४४; २०७-२१२; २३३-२४२; २७१-२७६ (कुल पंक्तियाँ—३६)

इस विभाजन मे, संभव है, थोड़ा-बहुत हेर-फेर करके उसे अधिक वैज्ञानिक रूप दिया जा सके। आशा यह है कि दोनो रचनाओ की तुलना करने पर यह तथ्य स्पष्ट होगा कि उदात्त स्तर पर रचा हुआ अंश 'तुलसीदास' की अपेक्षा यहाँ अनुपात में अधिक है। 'राम की शक्तिपूजा' अपनी गरिमा से पाठकों को 'तुलसीदास' से अधिक प्रभावित करती है, उसका यह एक कारण है। पूरी कविता में अनुदात्त का अंश भी अपेक्षाकृत कम है। आरम्भिक पंक्तियो मे सिंहद्वार यहाँ भी है किन्तु ऊँचाई, चौड़ाई और गहराई मे 'तुलसीदास' के सिंहद्वार से यह अधिक विशाल, भव्य और सुदृढ है। 'तुलसीदास' के अन्तिम अंश मे निराला उन शिखरों का निर्माण करते है जो सिंहद्वार से कम भव्य नही है। 'राम की शक्तिपूजा' के अन्तिम अंश में वैसे शिखर नही है। किन्तु उससे पहले—विशेषकर कविता के पूर्वार्द्ध में—निराला ने शिला काटकर ऐसे स्तंभ और कक्ष निर्मित किए है जिनके घनत्व के आगे शिखरो की भव्यता फीकी लगती है। इसका एक कारण यह है कि शिखरो की रचना मे निराला ने जिस भाव-सामग्री का उपयोग किया है, उसका

आधार उनकी ज्ञान-सम्बन्धी कल्पना है; स्तम्भों और कक्षों की रचना में उन्होंने जो शिलाएँ काटी हैं, वे आत्मग्लानि और पराजय की पीड़ा की हैं।

दिलचस्प बात यह है कि 'तुलसीदास' में निराला ने रीतिवादी शृंगार भाव के लिए जैसे स्वरित स्तर अपनाया है, वैसे ही 'राम की शक्तिपूजा' मे राम जब सीता से पुष्पवाटिका में प्रथम मिलन का स्मरण करते हैं, तब निराला—संघर्ष और पराजय के उदात्त स्तर से वैपम्य प्रदर्शित करते हुए—स्वरित स्तर पर कविता का यह अंश रचते है। मुगलो-राजपूतों के युद्ध की तुलना मे निराला जैसे रत्नावली की शक्ति को समान उदात्त स्तर पर—या उसमे कुछ और ऊँचे स्तर पर—चित्रित करते हैं, वैसे ही यहाँ ब्रह्मचारी हनुमान की आकाश-यात्रा और उनचास पवनों द्वारा समुद्र-मंथन को युद्ध-वर्णन के स्तर पर—या कुछ और ऊँचे स्तर पर—रचते है। राजापुर के वर्णन की तरह युद्ध से लौटने पर संध्यावंदन आदि के कार्य यहाँ भी अनुदात्त स्तर पर वर्णित है।

'राम की शक्तिपूजा' में उदात्त स्तर पर रची हुई उदात्त की पैरोडी भी है। यह पैरोडी है विभीपण के भापण में। इसकी ओजस्विता कृत्रिम है, उस पर हँसी आती है, विभीपण राम पर किए हुए व्यंग्य का शिकार बनता है। किन्तु विभीपण की ओर उन्मुख व्यग्य मे बड़ी तीक्ष्णता है; उसके भापण मे जो कृत्रिमता है, वह अपने मे ओजस्वी है। वीरता और धैर्य की तरह छल-कपट का भी उदात्त स्तर होता है। वह स्तर विभीपण के भापण का है, इसलिए वह कविता के उदात्त अंशों में गिना जाना चाहिए।

निराला 'राम की शक्तिपूजा' के विभिन्न अंशों में जो शैली-भेद प्रदर्शित करते है, वह कभी-कभी एक ही अंश मे, एक ही व्यक्ति के भापण में दिखाई देता है। कविता की आरम्भिक दो पंक्तियां—**रवि हुआ अस्त** आदि—उसी स्तर पर नही है जिस पर अगली सोलह पक्तियां। दो पंक्तियों के बाद रचना-सामग्री का घनत्व अचानक बढ गया है। इसी तरह राम का स्वगत-कथन धीर संयत स्वर में आरम्भ होता है :

बोले—आया न समझ में यह दैवी विधान।

उसके बाद वह सघन होता हुआ यहाँ पहुँचता है :

झक झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यो-त्यो।

भापण में इस तरह के शैली-भेद से निराला भावों का उतार-चढाव चित्रित करते है; पात्र के कथन को सहज और नाटकीय बनाते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' मे एक अंश की समाप्ति पर निराला स्वर को थोड़ा नीचे उतार लाते है जिससे दूसरा अंश उसी की अगली कड़ी मालूम हो। पहले उदात्त अश की आखिरी पंक्ति है : **जानकी-भीरु-उर—आशा भर,—रावण संवर।** संयुक्ताक्षरो की भँवरों वाले घुमड़ते प्रवाह के बदले यहाँ गति अधिक सरल है और अगले अंश की पंक्ति से मेल खाती है :

लौटे युगदल। राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल।

किन्तु हनुमान जब कल्पना में डूबे हुए राम के चरणों को श्यामा के चरण, राम के आँसुओं को मुक्ता या कौस्तुभ समझ रहे है, तब प्रवाह धीर मंथर, स्वरित के स्तर पर है। फिर—

ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार—

यहाँ निराला आकस्मिक, नाटकीय ढंग से रचना का स्तर बदलते है। स्वर-भंगिमा जान-बूझकर वैषम्य प्रदर्शन करने के लिए है। कविता के निर्माण में निराला का यह नाट्यकौशल 'तुलसीदास' की अपेक्षा यहाँ अधिक सूक्ष्म, अधिक प्रभावशाली है। स्वर को उतारते हुए एक अंश को निराला जहाँ दूसरे से मिलाते है, वहाँ स्वर को अचानक बदलकर एक अंश को दूसरे से स्पष्ट विलग भी करते हैं।

भिन्न-भिन्न ढंग से रचना-सामग्री का उपयोग करके निराला गीतों, मुक्तको और लंबी कविताओ में इस तरह नाटकीय वैचित्र्य और स्थापत्य-सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं।

स्वप्न-दृष्टि

कविता के स्थापत्य-सौन्दर्य की नियामक—निराला के विवेक के अलावा—एक और शक्ति हैं, वह है उनकी स्वप्न-दृष्टि। आँखें खोले या मूँदे हुए आदमी सपने कई तरह के देखता है। कुछ सपने हल्के-फुल्के होते हैं, अस्थिर समीर-सागर पर सुख या दुख की छाया की तरह आए और उडते हुए निकल गए। इन सपनो को जो भावशक्ति संचालित करती है, वह मात्रा में कम होती है। उनका स्तर भावुकता-पूर्ण होता है। इस तरह के सपनों से साधारण जन परिचित होते हैं, इसीलिए जो सपने बहुत देखता है, उसके बारे मे लोग सोचते हैं कि उसका मनोबल क्षीण है। किन्तु जो ऊर्जा विवेक को तीक्ष्ण करती है, वह स्वप्नों को प्रत्यक्ष अनुभव की तरह सजीव भी बना सकती है। निराला मे परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की अद्भुत प्रतिभा है। यह प्रतिभा यथार्थ-बोध की विरोधी हो, यह आवश्यक नही। निराला के स्वप्न मे जहाँ बिखराव नही है, दृष्टि केन्द्रबद्ध है, केन्द्र पार्श्वभूमि से संलग्न है, पार्श्वभूमि से हटकर केन्द्र इधर-उधर घूमता नही है, वहाँ उनकी निर्माणकला अनुपम है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' के स्थापत्य-सौन्दर्य में जो अन्तर है वह निराला की स्वप्न-दृष्टि का अन्तर भी है।

'राम की शक्तिपूजा' के केन्द्र में हैं राम; पार्श्वभूमि में है युद्ध। ये दोनों

एक-दूसरे से जैसे संबद्ध हैं, वैसे तुलसीदास और मुगल-राजपूत युद्ध नही। केन्द्र मैं है तुलसीदास किन्तु कविता के एक महत्त्वपूर्ण अंश मे रत्नावली उन्हें केन्द्रच्युत कर देती है। 'राम की शक्तिपूजा' मे निराला सीता को राम की स्मृति में रखते है, उन्हे सामने लाकर राम को केन्द्र-भूमि से हटाते नही है। महावीर की आकाश-यात्रा पार्श्वभूमि का चित्र है, केन्द्र से पूर्णतः संवद्ध। उसकी प्रतीक-व्यंजना पर ध्यान दें तो वह वास्तव मे राम के मन की वैसी ही आकाश-यात्रा है जैसी तुलसीदास की। 'राम की शक्तिपूजा' मे निराला जो सपना देखते हैं, उसमे उनकी निगाह राम से अलग हटने नही पाती। प्रारंभिक अंश के वाद राम जहाँ वैठ जाते हैं, वहाँ से उठने का नाम नही लेते। अद्भुत स्थिरता है राम की इस अचल मूर्ति मे। फिर भी 'राम की शक्तिपूजा' की-सी सक्रियता निराला की अन्य किसी कविता मे नही है। इस सक्रियता का चित्रण वह वातावरण को गतिशील दिखाकर—समुद्र की लहरों, आकाश के अंधकार, उनचासो पवन की चंचलता के द्वारा करते हैं; जो युद्ध हो चुका है, उसके स्मरण से, महावीर की आकाश-यात्रा से, राम के अन्तर्द्वन्द्व से और पट्-चक्रो पर कुडलिनी के चढने से करते है। सक्रियता चाहे राम के भीतर हो चाहे वाहर, राम कवि की दृष्टि के सामने से ओझल नही होने पाते।

'सरोज-स्मृति' मे निराला ने लिखा था :

देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल।

शरक्षेप और रणकौशल के बीच निराला को खड़े रहने दीजिए, समय वीतता जाय, वह स्थान न छोड़ें—आप 'राम की शक्तिपूजा' की स्वप्नभूमि में पहुँच जाएँगे। स्थिरता और प्रवाह के सतुलन का रहस्य यह है कि स्थिरता देशगत है, प्रवाह है कालगत। 'राम की शक्तिपूजा' मे देशखंड अविचल है, वही समुद्रतट, पर्वत के निकट राम का शिविर; गतिशील है काल। निराला वर्तमान से अधिक अतीत में काल की गतिशीलता चित्रित करते हैं; भविष्य की ओर भी संकेत करते हैं। समुद्र-मंथन और आकाश-यात्रा के व्यापार मूल स्वप्न-भूमि को छोड़ते नही है; वे राम के मन के आकर्पण-केन्द्र से बँधे हुए हैं; देशखंड अविभाजित रहता है। इसके विपरीत 'तुलसीदास' मे देशखड परिवर्तनशील है। जिस युद्ध का वर्णन आरम्भ में किया गया है, वह राजापुर के पास नही हुआ, दूर-दूर तक वड़े पैमाने पर हुआ है। 'राम की शक्तिपूजा' का युद्ध उसी शिविर के निकट हुआ है जहाँ राम वैठे हुए शक्ति-साधना करते हैं। तुलसीदास यात्रा करते है, चित्रकूट जाते है, अनेक स्थान देखते है, घर आते है, ससुराल जाते हैं। किसी एक स्थान विशेप में उन्हें प्रतिष्ठित करके कवि उन पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता। काल के समान देशखंड मे अस्थिरता है। एक का प्रवाह दूसरे की स्थिरता से सतुलित नही है। निराला के स्वप्न में विखराव है। एक सपना युद्ध का, दूसरा सपना तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व का, तीसरा सपना रत्नावली के शक्ति प्रदर्शन का। ये तीनों सपने एक ही भाव-शक्ति से प्रेरित होकर परस्पर सामंजस्य स्थापित नही कर पाए, इस तरह के सामंजस्य द्वारा एक

ही अविभाज्य संश्लिष्ट स्वप्न का रूप नही ले पाए। इसके विपरीत 'राम की शक्ति-पूजा' में एक सपना युद्ध का, इसी के अन्तर्गत दूसरा सपना राम के अन्तर्द्वन्द्व का, उस अन्तर्द्वन्द्व से निकलने का मार्ग, तीसरा सपना शक्ति-साधना का। यहाँ तीनों सपनो में सामंजस्य है, तीनों को मिलाकर निराला की ऊर्जा एक संश्लिष्ट स्वप्न रच लेती है। 'तुलसीदास' से 'राम की शक्तिपूजा' तक निराला की कला ने यह प्रगति की है; यह प्रगति उतना विवेक के स्तर पर नहीं है जितना निराला के अर्द्धचेतन, स्वप्नशील भावबोध के स्तर पर।

'सरोज-स्मृति' में सपनों का विखराव और भी ज्यादा है। एक सपना साहित्य-संग्राम का, दूसरा सपना सरोज के शैशवकाल का, तीसरा सपना वापस आई हुई रचनाओं को लेकर घास नोंचने का, चौथा सपना सरोज द्वारा कुंडली के फाड़े जाने का, पाँचवाँ सपना कान्यकुब्ज कुलांकारो का, छठा सपना सरोज के विवाह का, सातवाँ सपना कविकर्म द्वारा स्वर्गीया कन्या के तर्पण का। ये सभी अंश समर्थ हैं किन्तु एक ही सपने में गूँथे नही गए। इन सभी से निराला संबद्ध हैं, फिर भी वह केन्द्र में स्थिर नही है। कवि, कन्या, पार्श्वभूमि—इन सव पर रचनाकार की दृष्टि भटकती है, कही देर तक ठहरती नही है। परिणाम यह है कि 'सरोज-स्मृति' में आन्तरिक गठन की वैसी दृढ़ता नही जैसी 'तुलसीदास' मे है।

'सरोज-स्मृति' मे निराला कथा कहने वैठे हैं। यद्यपि कथा की शुरुआत उन्होंने सरोज के जन्म से—अथवा अपने साहित्यिक अभ्युदयकाल से—नहीं की, वरन् सार रूप में सारा दुखद प्रसंग कविता के प्रारंभिक अंश मे कह दिया है, फिर भी कथा कहने का परंपरागत ढंग कविता के आदि मे नही तो मध्य में आता है। कथा कहने का यह ढंग निराला की स्वप्नशीलता का विरोधी है। स्वप्नशीलता चाहती है, एक दृश्य पर निगाह जमाए रहो; कथा-प्रवाह की मांग है, आगे वढ़ते चलो, किसी दृश्य से अटककर खड़े मत हो जाओ। निराला की आन्तरिक वृत्ति है किसी दृश्य को देखना, उससे अटकना, खड़े रह जाना। 'राम की शक्तिपूजा' में उन्होने कथा कहने का दूसरा ढंग अपनाया है; वह दृश्य से अटके रहते हैं, साथ ही कौशल से काल-प्रवाह के साथ पाठक को आगे-पीछे घुमाते रहते हैं।

'सरोज-स्मृति' से तुलनीय है 'वनवेला'। दृश्य के केन्द्र में है निराला। नेता और पत्रकार राजनीति के मच पर जो नाटक करते हैं, वह सव निराला के मन में होता है। वनवेला रत्नावली की तरह कवि को चित्र के केन्द्र भाग से हटा नही पाती। महावीर की आकाश-यात्रा के समान वेला धरती के गर्भ से कर्मजीवन के दुस्तर क्लेश भेदकर ऊपर उठती है। निराला दूसरे दिन फिर वेला के पास पहुँचते हैं। समय वदला है, संध्या की जगह उषःकाल है किन्तु दृश्य वही है। निराला रात होने पर कहाँ गए, कहाँ से चलते हुए सवेरे वेला के पास पहुँचे, इसका विवरण नही है। समय का व्यवधान लाँघकर कवि फिर उसी देशखंड में आ पहुँचा है। परिणाम यह है कि 'सरोज-स्मृति' की तुलना में 'वनवेला' का आन्तरिक गठन सुदृढ़ है। कारण

है निराला की स्वप्न दृष्टि, जो स्वयं पर आदि से अन्त तक जमी रहती है, इस स्वयं को पार्श्वभूमि के उपदानों से संवद्ध कर देती है।

'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' में निराला वसंतकाल में राजप्रासाद के उद्यान का वर्णन विस्तार से करते हैं। फिर यह दृश्य वदलता है, स्वामी प्रेमानंद मंच पर विराजते हैं, घर मे भोजन करने जाते है, मन्दिर पहुँचते हैं। इसके विपरीत 'कुकुरमुत्ता' के आरंभ में राजप्रासाद के उद्यान का भव्य वर्णन है; उस भव्यता के वीच गन्दगी मे जहाँ कुकुरमुत्ता उगा है, वहाँ निराला अपनी निगाह साधते हैं। उस पार्श्वभूमि से कुकुरमुत्ता वँधा हुआ है; वहाँ से हट नही सकता। खूवसूरती के वीच जैसे गन्दगी है, वैसे ही गुलाव से कुकुरमुत्ता का सम्वन्ध है, अटूट ईर्ष्या का सम्वन्ध। तहज़ीव के सपने पर व्यंग्य वना हुआ कुकुरमुत्ता एक जगह स्थिर रहकर भूगोल, खगोल, इतिहास, दर्शन, साहित्य—न जाने कहाँ-कहाँ की यात्रा कर आता है, श्रोता को अपने साथ घुमा लाता है। कविता का यह अंश उत्तरार्द्ध से अधिक समर्थ है। कारण यह है कि यहाँ दृश्य वदलता नही, कुकुरमुत्ता दृश्य के केन्द्र से हटता नही; स्थिरता और गतिशीलता का संतुलन है। स्थिरता है दृश्य मे, दृश्य की केन्द्रीय वस्तु मे, गतिशीलता है कुकुरमुत्ता की वक्तृता मे, उसके चिंतन और मूर्तिविधान में। दूसरे अंश मे निराला वाग के वाहर झोपड़ो से शुरू करते है, फिर वाग मे आते हैं, वाग से फिर झोंपड़ी में, झोपड़ी से नवाव के महल मे। दृश्य अस्थिर हैं, केन्द्र मे कोई स्थिर मूर्ति नही है। फलतः उत्तरार्द्ध वहुत कमज़ोर है।

'जुही की कली' भी एक सपना है। जुही की कली एक जगह स्थिर है, पवन दूर-दूर की यात्रा करता है। यह इस रचना की सफलता है। फिर भी यह कमज़ोर सपना है; कवि की दृष्टि दृढ़ता से केन्द्रवद्ध नही होती। वह पवन के साथ स्वयं यात्रा करता है। इसी तरह **जागो फिर एक वार** (१) मे दृश्यावली वदलती रहती है यद्यपि केन्द्र मे सोता हुआ पुरुष और उसे जगाती हुई नारी अपनी जगह से हटते नही। यहाँ निराला को नारी की झलक भर दिखाई देती है; पुरुष अदृश्य ही रहता है। निगाह के सामने रहती है परिवर्तित पार्श्वभूमि। इसके विपरीत है 'शेफालिका'। एक ही दृश्य, जो परिवर्तित नही होता; शेफालिका और उसका प्रेमी आकाश-दृश्य के केन्द्र में। ऐसा ही शिल्प है 'जागृति में सुप्ति थी' कविता का। आलसी प्रेमी और उसकी जागती हुई प्रिया। दृश्य स्थिर-सा है, किंतु जड़ नही। प्रिया ने सुरापान किया है। विहग ने वहुरंगी पंख खोले हैं: स्वर सरोवर मे एक कंपन-सा पैदा करने के वाद सो गया है। प्रिय ने प्रणय-निवेदन किया है, जागरण का संसार सजाया गया है, उसके वाद लाजमयी चेतना थककर सोई है। इस तरह उनींदेपन का यह दृश्य सक्रियता से भरा है।

सोचती अपलक आप खड़ी—(**गीतिका पृ. ४**)

पृथ्वी-आकाश के वीच प्रिय का ध्यान करती हुई नारी; वह स्थिर है, चंचल है वातावरण, वह हवा जो उसका वस्त्र उड़ाकर चली जाती है। दृश्य के केन्द्र मे नारी; उस केन्द्र पर ठहरी हुई कवि की निगाह। नारी स्थिर-सी लगती है किन्तु प्रणय

का प्रसाद पाती है, कम-से-कम मन में गतिशील है।

मौन रही हार—(उप., पृ. ६) दृश्य के केन्द्र में प्रेमी के पास जाती हुई नारी; वह चलती है किन्तु निगाह से ओझल नही होती। आभूषणों की झंकार में गति है; वैसे ही मन के भाव चंचल हैं।

रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी—(उप, पृ., १४)

यहाँ भी खड़ी हुई नारी का चित्र है। शैलसुता अभी अपर्ण अशना है, वह पल्लव-वसना वनेगी। गति—भविष्यकाल में। वह तप कर रही है, माला जप रही है। गति – वर्तमान काल में। दृश्य के वीच स्थिर नारी; साथ ही स्थिरता से गति-शीलता का सन्तुलन।

(प्रिय) यामिनी जागी—(उप., पृ. २)। गीत के प्रथम अंश मे नारी स्थिर है; दूसरे अंश मे चलती है किन्तु घर के भीतर ही रहती है, आँखों की ओट नही होती। निराला उसका सौन्दर्य देखते है, उस स्थिर-से सौन्दर्य मे छिपी हुई तरंगें देखते हैं। उसके अलस पंकज दृग अरुण-मुख को देखकर अनुरागे हैं, आनन्द से खुल गए है। उसके केश पृष्ठ-ग्रीवा-वाहु-उर पर चुपचाप नही विछे हुए है, वे उन पर 'तर रहे' हैं, उस ज्योति की तन्वी से तड़ितद्युति ने क्षमा माँगी है, वह वासना की मुक्ति है अर्थात् प्रिय को वासना से मुक्त करने का कार्य सम्पन्न कर चुकी है।

अनामिका में एक कविता है 'अपराजिता' (पृ. १४३)। निराला एक विराट् चित्र खींचते हैं—ऊपर आकाश, नीचे धरती, धरती पर आकाश से उतरती ज्योति। इनके वीच वह परी नागरी जिसकी आँखें हारती नहीं है। यह नागरी वहुत स्थिर जान पड़ती है, विशेष रूप से उसकी आँखें निष्पलक निष्क्रिय लगती हैं। किन्तु अचानक संगीतकार के कंठ से उठती हुई तानों की तरह वृक्ष की डाले हरी हो उठती है; स्थिर-सा लगने वाला दृश्य आन्तरिक ऊर्जा से तरंगित हो उठता है:

रंग से भरी है, हरी हो उठी हर
तरु की तरुण-तान शाखें :
परी नागरी की—
हारी नही, देख, आँखें।

अनामिका मे कविता है 'नर्गिस'। गंगा-तट का दृश्य, उसके बीच मे स्थिर कवि। चारों ओर शांति है। इस स्थिर-से दिखने वाले दृश्य से वड़ी सक्रियता है। गंगा वह रही है, उनका स्वर सुनाई देता है, अतीत काल का प्रवाह भी कल्पना में सुनाई देता है। आकाश मे चाँदनी फैली है; स्थिर नहीं है, चाँदनी की अप्सरा रात्रि में गंगा-स्नान करने आई है। धरती का अंधकार पार करती हुई नर्गिस वनवेला की तरह ऊपर उठ आई है। उसकी गंध आकाश पर विजय प्राप्त कर रही है।

परिमल मे कविता है 'पतनोन्मुख'। नौ (अथवा साढ़े आठ) पंक्तियो की कविता है। निराला एक दृश्य पर ध्यान केन्द्रित करके कैसे उसकी प्रत्येक रेखा

को गतिशील बना देते है, उस कला की यह बहुत अच्छी मिसाल है। आसन्न मृत्यु का चित्रण है:

> हमारा डूब रहा दिनमान !
> मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
> उगल रहे हो गरल-अनल,
> जलता यह जीवन असफल;
> हिम-हत-पातो-सा असमय ही
> झुलसा हुआ शुष्क निश्चल !
> विकल डालियों से
> झरने ही पर है पल्लव-प्राण—
> हमारा डूब रहा दिनमान !

एक क्षण में जो दिखाई दे रहा है, उसे चित्रित कर रहे है। क्षणबद्ध दृश्य मे काल की सुदीर्घ प्रवहमानता समेट ली है। विष की ज्वाला उगलने का काम एक क्षण का नही है। मास-मास, दिन-दिन, प्रतिपल, दीर्घकाल से यही क्रम चला आ रहा है। उसके फलस्वरूप जीवन जलता रहा है; अब झुलसकर शुष्क और निश्चल हो गया है। एक ही क्रिया शेष है, विकल डालियो से पल्लव-प्राण झर पड़ें।

दृश्य प्रतीकात्मक है; दृश्य के केन्द्र में पुरुष या नारी की कोई आकृति नही है। निराला चिन्तन में लीन हैं, पूरी तरह स्वप्न नही देख रहे हैं। यही दृश्य उन्हे वास्तविक लगे—परोक्ष प्रत्यक्षवत् हो जाय—उस दृश्य के केन्द्र में वह स्वयं हों या उनकी इष्ट देवी हो, कला निखर उठेगी। 'गीतिका' के अनेक सशक्त गीतों मे इसी कला का निखार है।

> दे, मैं करूँ वरण
> जननि, दु:खहरण पदराग रंजित मरण।

दृश्य मे शक्ति सागर है, तरंगें हैं, मार्ग के अवरोध हैं। नेपथ्य मे अपने पद-राग से मृत्यु को रंजित करने वाली जननी है। गीत के मध्य मे कवि का चित्र है, हृदय में जलता हुआ लाछना का ईंधन, भक्ति से नत उसके नेत्र, जीवन प्रलोभन समुपकरण पार करता हुआ मृत्यु को वरण करने वाला यह कवि।

इस गीत मे समुद्र—शक्ति का समुद्र है। उसे पार करने वाला है पवन। समुद्र के किनारे खड़ा है लाछना से दग्ध कवि। 'राम की शक्तिपूजा' बीजरूप में यहाँ विद्यमान है। इस समुद्र के किनारे राम लांछन—पराजय—की पीड़ा से जलेंगे; उनचास पवन समुद्र को मथ डालेंगे, राम शक्ति की साधना करेंगे, उसी शक्ति की जिससे निराला मृत्यु का वरदान मांग रहे है। यह मात्र विषयगत साम्य नहीं है। साम्य कला में भी है। एक अपरिवर्तित दृश्य, दृश्य के केन्द्र में कवि, उसके स्थिर रहते हुए भी उसके परिवेश मे और उसके मन मे सक्रियता की अद्भुत प्रतीति।

अन्य गीत है:

प्रीत तव द्वार पर,

आया, जननि, नैश अंध पथ पार कर। (उप., पृ. १००)

पहले वाले गीत मे निराला मृत्यु का वर माँगते है; वर मिलने की स्थिति का वर्णन नहीं करते। यहाँ उस दूसरी स्थिति का वर्णन है। 'राम की शक्तिपूजा' में जैसे राम को वरदान मिला, लक्ष्मी-सरस्वती-दुर्गा सब एक साथ प्रकट हो गई, वैसे ही यहाँ निराला शक्ति के द्वार पर पहुँच गए है, वर प्राप्त हो गया है, अवसन्न होने पर भी इसलिए प्रसन्न है। दृश्य स्थिर है; द्वार है, उसके सामने कवि है। फिर काल-प्रवाह की दिशा बदल जाती है। वर्तमान के एक क्षण में स्थिर रहते हुए निराला जननी को अतीत की यात्रा करा लाते हैं। रातभर रास्ता चले है, पैरों में काँटे और पत्थर चुभे हैं, निशाचरो ने भी परेशान किया था, अपने लक्ष्य पर दृष्टि जमाए अब वह जननी के चरणों तक आ पहुँचे है।

'राम की शक्तिपूजा' में निशाचर राम के शिविर से दूर है, केवल उनके युद्ध करने की याद ताज़ा है। यहाँ भी जिस द्वार के सामने निराला खड़े है, उसके आसपास निशाचर नही हैं। अब केवल वर-प्राप्ति का उल्लास है। 'राम की शक्तिपूजा' और इस गीत में विषय-साम्य ही नही, दोनों की कला में भी साम्य है। निराला ने अंधकार में अपनी यात्रा का, शरीर की अवसन्न दशा का ऐसा वर्णन किया है मानो उन्होने स्वप्न मे यह सब देखा हो, उनका अनुभव किया हो, परोक्ष उनके लिए प्रत्यक्ष हो गया हो।

'राम की शक्तिपूजा' से लेकर छोटे गीतो तक इस तरह निराला की स्वप्नदृष्टि काव्य के स्थापत्य-सौन्दर्य की नियामक है।

रूप-रस-गंध

निराला की काव्य-कला की नियामक है उनकी वृत्तियाँ, रूप-रस-गंध-स्पर्श-शब्द के संसार को ग्रहण करने की विधि, इस संसार के प्रति उसके भावबोध की प्रक्रिया। कविता की 'विषयवस्तु' और कला यहाँ मिल जाती है; यह वह भूमि है जहाँ यह कहना कठिन होगा, यह तो निराला का प्राथमिक काव्येतर 'अनुभव' है, और यहाँ उस अनुभव को काव्यरूप देने वाली कला आरम्भ होती है। कला में मूर्तिविधान है, शब्दों का ध्वनिप्रवाह है, गठन और संरचना है। निराला-काव्य में मूर्तिविधान किस प्रकार का है, यह उसी गोचर संसार की ग्रहण-प्रक्रिया पर निर्भर है। शब्दो का ध्वनि-प्रवाह अपने मे गोचर अनुभव है; उसका नियंत्रण, उसकी गति, उसकी

गहराई उन्ही वृत्तियो के आश्रित है जिनसे निराला का संसार-बोध नियमित है। ये वृत्तियां निराला की कविताओ मे इन्द्रियबोध का ऐसा सूक्ष्म ताना-बाना रचती है कि उससे अलग करके उनके गठन और रचना-कौशल को समझा नही जा सकता। इसलिए यह कहना उचित होगा कि यहाँ कला और भावबोध की सीमाएँ बहुत कुछ मिट जाती है।

इस बात का उल्लेख पहले हो चुका है कि निराला के काव्य-जगत् मे जितना अंधकार है, उतना प्रकाश नही। जो कवि स्वप्नदर्शी है, उसे प्रकाश की अपेक्षा अंधकार प्रिय होना ही चाहिए। प्रकाश आँखो मे चकाचौंध पैदा करके सपने मिटा देता है। 'माया' में निराला कहते है :

> या सताती कुमुदिनी को तू अरी
> है निरी पैनी छुरी रवि की छटा,
> तू मयूरो के लिए उन्मादिनी
> या कि है सावन-गगन की घन-घटा ?

रवि की छटा निराला के लिए पैनी छुरी-सी है। वह उनकी चाँदनी मे खिलने वाली कुमुदिनी जैसी स्वप्न दृष्टि को सताती है। उनके काव्य-गगन मे जो बहुत-सी सावन की घटाएँ छाई है, उसका कारण वह अन्तर्वृत्ति है जो सूर्य का तीव्र प्रकाश सहन नही करती। लू और ग्रीष्म का ताप सहज ही कठिन कर्म और दुख के प्रतीक बन जाते है।

आराधना मे गीत है :

> आज मन पावन हुआ है,
> जेठ मे सावन हुआ है। (पृ. १०)

निराला जेठ मे सावन का अप्रत्याशित आगमन दिखाकर गीत मे जो चमत्कार उत्पन्न करते है, उसका कारण वही वृत्ति है जिसने 'माया' मे रवि-छटा की पैनी छुरी के विकल्प रूप मे सावन की घनघटा प्रस्तुत की थी। निराला जब सपने नही देखते, सावन-भादो की घटाएँ उन्हें काफी भिगो चुकती है, तब सूर्य का प्रकाश भी कुछ समय के लिए अच्छा लगता है। अखाड़े मे नौजवानों को, पनघट पर लड़कियो को देखकर कहते है :

> बहुत दिनो बाद खुला आसमान।
> निकली है धूप हुआ खुश जहान। (अना., पृ. १३८)

इससे मिलती-जुलती वह धूप है जिसका उल्लेख 'सरोज-स्मृति' मे है :

> याद है, दिवस की प्रथम धूप
> थी पड़ी हुई तुझ पर सुरूप—(उप., पृ. १२२)

स्पष्ट ही इस धूप मे प्रखरता नही है। निराला ने अपने काव्य में परम्परागत प्रतीक कमल का उपयोग बहुत किया है किंतु उसमे जितने कमल खिले हुए है, उतने ही मुँदे हुए है। 'शेष' कविता (परिमल, पृ. ३८) मे पद्म-मन पर दुख-किरन पड़ती है; यह पद्म संध्या के समय अपने दल मूँद चुका है। **पावन करो नयन** मे जब

रश्मि आसमान से उतरती है, तब कमल के खिलने का जिक्र नहीं है, अगला वंद पढ़कर उसकी कल्पना अवश्य की जा सकती है, किंतु जब रात हुई, चाँद निकल आया तब मुँदे हुए कमल का स्पष्ट उल्लेख है। 'तुलसीदास' के आरम्भ में सांस्कृतिक सूर्य के अस्त होने के साथ राष्ट्रीय जीवन का विशाल शतदल निष्प्राण हो जाता है; कविता के अन्त में जो श्वेत पटल खुलता है, वह वैसा विशाल और भव्य नही जैसा आरम्भ का 'निश्चलत्प्राण शतदल। इस शतदल को घेरे हुए तमस्तूर्य दिङ्मंडल है; उसकी तुलना में पुष्कल रवि-रेखा बहुत क्षीण है।

जीवन में जहाँ पीड़ित हुए विना सुख नही मिलता या दूसरे को पीड़ित किए विना उसे सुख दिया नही जा सकता, वहाँ निराला को सूर्य की प्रखरता याद आती है। 'तुम और मैं' कविता मे ब्रह्म दिनकर के खर किरणजाल है और माया सरसिज की मुसकान है। दिनकर की प्रखरता के विना सरसिज खिल नही सकता। इसलिए उत्पीड़क होने पर भी वह प्रिय है। ब्रह्म मदन पंचशरहस्त है; माया मुग्धा अनजान है। जैसे उनके पंचशर उसे पीड़ित करके सुखी बनाने के लिए है, वैसे ही दिनकर का प्रखर किरणजाल है। 'वनवेला' में जहाँ

प्रखर से प्रखरतर हुआ तपन यौवन सहसा—

वहाँ सूर्य की वैसी ही भूमिका है जैसी 'तुम और मैं' से उद्धृत की हुई पंक्ति में।

निराला के काव्य-संसार में फूलों की गंध का वर्णन बहुत है, उनके रंग का बहुत कम। फूलों की गंध का अनुभव अँधेरे मे भी हो सकता है, रंगों का नही। शेफाली जैसे उनके प्रिय फूल खिलते भी रात में है। **यामिनी गन्धा जगी**— (परिमल, पृ. १७१) रात में रंग नही दिखाई देता, उसकी सुगंध आ रही है। सवेरे के मद्धिम प्रकाश में फूलों के रंग दिखाई देते है किन्तु उन पर उनकी निगाह ठहरती नही है, मन मे जगमगाहट की छाप लेकर वह गन्ध और स्पर्श की दुनिया में खो जाते हैं।

रँग गई पग-पग धन्य धरा,—
हुई जग जगमग मनोहरा। (गीतिका, पृ. ४९)

वसन्त में धरती का यह जगमगाता वैभव देखकर वह गंध और मधु की ओर बढ़ जाते हैं। टूटें सकल बंध में प्रधानता गंध की है; रश्मि द्वारा शतरंग चित्रो का खीचा जाना गौण क्रिया है। **अर्चना में—पीली ज्वाल पुंज की पुंजों** (पृ. ३१)— यह पंक्ति चटक रंग के निदर्शन मे अपवाद-सी है। **अट नहीं रही है** (उप., पृ. ६४)—इस गीत मे पत्तों से लदी डाल कही लाल है, कही हरी है; उसके बाद गंध का उल्लेख है। रूप-रस-गंध का सारा सौन्दर्य आभा बनकर फैल गया है :

आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।

यह आभा वैसी ही है जैसी **पग-पग धन्य धरा** में धरती की जगमगाहट। सुख और दुख दोनों की व्यंजना के लिए उन्हें एक रंग बहुत प्रिय है—नीला।

यही नील-ज्योति-बसन
पहन नील नयन हसन—(गीतिका, पृ. ७६)
नील नयन, नील पलक,
नील वदन, नील झलक। (आराधना, पृ. ४५)
माथे है नील का टीका। (अर्चना, पृ. ६६)
श्याम कुञ्ज, वन, यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन वारिद राजे। (गीतगुंज, पृ. ३४)
नीली रेखा मुख पर छायी (सांध्य काकली, पृ. ५६)
नील का बँधा वही धागा (उप., पृ. ५७)
मृत्यु की है रेख नीली (उप., पृ. ८२)

नीले रंग का जितनी वार उल्लेख है, उतनी वार पीले रग का नही। यह रंग अंधकार की याद दिलाता है, उससे मिलता-जुलता है। निराला की चेतना मे वह सुख और दुख दोनो से सवद्ध है।

ऐसे ही सुख और दुख दोनो से संवद्ध है अंधकार। 'वादल राग' (४) मे निराला वादल को 'क्रीड़ारत वालक' कहते है, फिर उसकी क्रीड़ाभूमि का उल्लेख करते है .

अन्धकार—घन अन्धकार ही
क्रीड़ा का आगार।

यह वादल प्रकाश से अपरिचित नही, सम्भवतः इन्द्रधनुप के रंग उसे पसन्द हैं किन्तु जहाँ वह मन भर क्रीड़ा करता है, अपने वाल्यकाल का सुख भोगता है, वह अंधकार है। वाल्यकाल मे जो वृत्तियाँ निश्चित हो चुकी है, वे आगे जवानी और वुढ़ापे मे कैसे वदलेंगी? निराला की वृत्तियाँ इस वादल की वृत्तियों से मिलती-जुलती है।

'जुही की कली' मे चाँदनी रात है जिसमे जुही का प्रेमी मलयानिल क्रीड़ा करता है। 'शेफालिका' मे प्रकाश चन्द्रमा का नही, नक्षत्रों का है; उसी प्रकाश मे शेफाली का प्रेमी आकाश सुरभिमय समीर लोक को पार करना चाहता है। उसे सुरभि का वोध है, रंग का नही। निशा के उर की खुली कली—(परिमल, पृ. ९५) मे अभिसारिका निशा का गोरा तन दिखाई देता है। हल्की चाँदनी या नक्षत्रों के मद्धिम प्रकाश से गोरे तन का आभास होता है। जहाँ आनन्द की अतिशयता है वहाँ सुरापान का 'घन अंधकार' है, चाँदनी का प्रकाश भी वहाँ आँखों को दुखदायी है। इसी तरह जिस रात मे निराला कविता की साधना करते रहे है, अकेले पथ के पत्थर-काँटे रौदते हुए सरस्वती के द्वार तक पहुँचे हैं, उसमे घना अँधेरा है।

प्रात तव द्वार पर
आया जननि नैश अन्ध-पथ पार कर। (गीतिका, पृ. १००)

'नैश' शव्द की ध्वनि मे ही काफी गहरा अँधेरा है; उसके आगे अंध-पथ लिखकर निराला ने अंधकार की सघनता के वारे मे दुविधा की गुंजाइश नही रखी। पैरो

में जो कुछ चुभता है, उसका बोध है; निशाचरों की जो आवाज़ सुनाई देती है, उसका ज्ञान है। शब्द और स्पर्श के अलावा अन्य प्रकार के बोध का अभाव है।

निराला ने स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन बहुत जगह किया है। उनकी आँखों के आकर्षण पर विशेष रूप से लिखा है। जब वे नारी का रूप देखते है, आँखों की छवि निहारते हैं, तब पता चल जाता है कि दोनों के बीच फासला है। समीप होने पर उनके मस्तिष्क में रूप -दर्शन के केन्द्र निष्क्रिय हो जाते हैं, सक्रिय होते हैं शब्द, स्पर्श और गंध के केन्द्र, इनमें भी प्रमुखता है स्पर्श की। एक गीत आरम्भ होता है स्पर्श से—**स्पर्श से लाज लगी** (गीतिका, पृ. ३१)। हँसने, तेज़ी से साँस लेने की आवाज़ सुनाई देती है, कंठ से लगी हुई नागिन अधरों को चूस रही है, स्पर्श-बोध की अतिशयता है। नेत्रों का उल्लेख है, विधु-चितवन की प्रशंसा है किन्तु सारे गीत मे प्रधानता है स्पर्श-बोध की।

मौन रही हार—(उप, पृ. ६)। निराला कंकण की कण-कण ध्वनि, किंकिणी का किण-क्विण स्वर, नूपुरो का रणन-रणन शब्द सुनते है, नारी के हृदय के जो तार बज रहे है, उन्हें भी सुनते है, देखते कुछ नही है।

'जुही की कली' में एक जगह निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र देखते हैं, शेष रचना मे स्पर्शबोध ही सक्रिय है। तरुणी जुही 'कोमल' तन वाली है, मलयानिल उसके रूप को नही 'कंपित कमनीय गात' को स्मरण करता है। उसके चुंबन से वल्लरी की लड़ी हिंडोल की तरह डोल उठती है, कमनीय गात फिर काँप उठता है। यह कमनीय गात सुन्दर और 'सुकुमार' है, कपोल गोरे हैं, गोल भी है। 'जुही की कली' में रूप-दर्शन की जगह स्पर्श-बोध ही प्रधान है। इसी तरह 'शेफालिका' मे गंध और स्पर्श की प्रधानता है; जो दिखाई देता है, वह गौण है।

शूर्पणखा जहाँ अपना रूप देखती-दिखाती है, वहाँ निराला उसे देख अवश्य रहे हैं किंतु मूर्तिकार की दृष्टि से, चित्रकार की दृष्टि से नही। अंगों की बनक कैसी है, हड्डियों का ढाँचा कैसा है, मांस कहाँ कम, कहाँ ज्यादा है—निराला यह सब परखते है।

देख यह कपोतकंठ
वाहुवल्ली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितंबभार—चरण सुकुमार—
गति मंद मंद,
छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियो का;
देवों-भोगियों की तो वात ही निराली है। (**परिमल**, पृ. २२०)

निराला का अंधकार-प्रेम उनकी उस वृत्ति का नियामक है जो रंग-रूप से अधिक अंगों के गठन पर उनका ध्यान केन्द्रित करती है। यह दृष्टि मूर्तिकार की है, नृत्यकार की है। उनकी नायिकाएँ किस रंग की साडी पहने हैं, इसे वताना वह आवश्यक नही समझते। **कौन तुम शुभ्र किरण वसना**—(**गीतिका**, पृ. ३२) में

वसन नाममात्र को है; किरणों का वस्त्र पहनने वाली वास्तव में नग्न है। निराला आभूषणों के वजने की आवाज सुनते है, उनकी चमक-दमक की ओर उनका ध्यान कम जाता है।

अनेक गीतों में निराला नारी को खड़ी हुई या थोड़ा-सा चलती हुई चित्रित करते हैं। **सोचती अपलक आप खड़ी**—(गीतिका, पृ. ४) नारी स्थिर है। (**प्रिय**) **यामिनी जागी**—(उप., पृ. २) पहले वंद मे वह खड़ी है, दूसरे मे चलती है। **मौन रही हार**—(उप, पृ. ६) खडी होती है, थोड़ा चलती है, फिर खड़ी हो जाती है। **निशा के उर की खिली कली**—(**परिमल**, पृ. ९५) मे भी यही स्थिति है। **लाज लगे तो**—(**गीतिका**, पृ. १०३) में मुख मोड़कर थोडा आगे वढ़ती हुई नर्तकी की भंगिमा है,

फेर लो नयन,
चलो मंजु गुंजर, धर
नूपुर-शिञ्जित-चरण।

गीतो मे जहाँ इस तरह नृत्य की भंगिमाएँ है, वहाँ गति से अधिक स्थिरता है। **सांध्य काकली** में जो मैटिनीवाली है, वह काफी तेज चाल से नाची होगी—**चली गरदन कमर कैसी, कैसी भी रन !** किंतु आगे एक पंक्ति है : **बंसी,वाजी, विराजी जो तू स्टेज पर**। उसके विराजने मे स्थिरता का भाव है। मूर्तिकार की दृष्टि से वह स्थिर मुद्राएँ देखते है, गति की चपलता देखना मुख्य उद्देश्य नही है। मैटिनीवाली गाती भी है, यह भी एक अपवाद है। गीतो मे जिन रमणियो का सौन्दर्य चित्रित है, वे गाती नही हैं। संगीत के नाम पर आभूषण वजाती है या फिर निराला उनके मन की वात सुन लेते है। नृत्य की मुद्राओ पर ध्यान देना उसी वृत्ति का परिणाम है जो रंग-रूप से अधिक शारीरिक गठन से आकर्षित होती है।

मानव शरीर के गठन पर ध्यान देनेवाला मन कविता के गठन पर भी वैसे ही ध्यान देता है। निराला-काव्य मे मूर्तिविधान केवल चित्रकार का विंवविधान नही है; विंवो के आकार-प्रकार, उनके गुरुत्व का वोध मूर्तिकार की दृष्टि का परिणाम है। उसे 'मूर्ति'-विधान कहना सार्थक है।

श्याम तन, भर वँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार। (अना., पृ. ७९)

पत्थर तोड़नेवाली नारी की मूर्ति गढ़ते है निराला। जिस पत्थर से मूर्ति गढ़ रहे है, वह काला है।

आयत दृग, पुष्ट देह, गत-भय—एक पंक्ति में तुलसीदास के शारीरिक गठन का उल्लेख। अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण से पहले—तुलसीदास के मन मे पैठने से पहले—एक नज़र उनके शारीरिक सौन्दर्य को देख लेना ज़रूरी है। राम युद्धभूमि से लौट रहे हैं। धनुप की डोरी ढीली है, वैसे ही कटिवंध स्रस्त है, जटामुकुट की दृढता

की जगह लटें खुलकर पृष्ठ पर, वाहुओं पर, वक्ष पर फैल गई हैं। गर्दन के ऊपर अँधेरा-ही-अँधेरा है किंतु जिन अंगो पर अँधेरा फैल रहा है, वे स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। निराला चित्र खींच रहे है किंतु उनकी यह कला मूर्तिकार की चित्रकला है—रैफेल की नहीं, माइकेल एञ्जेलो की चित्रकला।

निराला स्वयं को इसी निगाह से देखते है। 'मेरे ग्रीक कट, पाँच फुट साढे ग्यारह इंच लंबे, जरूरत से ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढ़ों के कसरती वदन को देखकर' इत्यादि ('दैवी', **चतुरीचमार**, पृ. ४४-४५) में ग्रीक कट की सार्थकता यह है कि उन्हें यूनानी कलाकारों की गढ़ी हुई मूर्तियाँ याद आ रही हैं और उनसे वह अपने शारीरिक गठन की तुलना करते हैं। इस तुलना में स्वभावत. लंवाई-चौड़ाई अधिक महत्त्वपूर्ण है, रंग-रूप कम। उन्होंने अपने गौरवर्ण का उल्लेख नही किया।

'राम की शक्तिपूजा' में निराला इसी से मिलती-जुलती मूर्ति वनाते है। जिस पृष्ठ और वक्ष पर लटे यों फैली हैं मानो पर्वत पर अंधकार फैला हो, उस पृष्ठ और वक्ष की लंवाई-चौड़ाई असाधारण होगी। कविता में राम की मूर्ति हिलती वहुत कम है। एक वार जम कर वैठे तो अंत तक वैठे रहे। कारण यह कि निराला उन्हें मूर्तिकार की निगाह से देखते हैं।

यह मूर्ति गढ़ने की कला उसी अंधकार-प्रेमी वृत्ति का परिणाम है जिसमें रूप की अपेक्षा स्पर्श के वोध पर सारी चेतना सिमटकर केन्द्रित हो जाती है। किन्तु निराला के लिए धीमे प्रकाश या अंधकार में वस्तुएँ स्पृश्य ही नही, श्रव्य भी हैं। इसके सिवा अँधेरे में और कुछ न दिखाई दे, अँधेरा तो दिखाई देगा ही। अंधकार प्रकाश का अभाव मात्र नहीं है, वह एक गोचर तत्त्व है, स्थिर या सक्रिय रूप में वोधगम्य है, जितना स्पृश्य है, उतना ही दृश्य भी।

> किस दुर्गम गिरि के कन्दर में
> डूव गया जग का निश्वास ?
> उतर रहा अव किस अरण्य पर
> दिन मणिहीन अस्त आकाश ?

भावुकता के स्तर पर रची हुई 'यमुना के प्रति' कविता में ये पंक्तियाँ अचानक अपनी सुदृढ़ता से चकित कर देती है। यहाँ वीज रूप में निराला की वह कला है जिसका पूर्ण विकास 'राम की शक्तिपूजा' में है। यहाँ अरण्य पर अँधेरा उतरता है, वहाँ पर्वत पर—

> उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार

'यमुना के प्रति' कविता में निराला आकाश को उतरता हुआ देखते है। यह आकाश दिखाई देता है; उतर रहा है, इसलिए उनकी निविड़ता स्पृश्य है। वह अंधकार का पर्याय है। **कौन तम के पार** में निराला जिस अंधकार को गलते, वहते, विभिन्न रूप धारण करते देखते है, वह यही आकाश है। **परिमल** की रचना 'प्रथम प्रभात' में यही आकाश काँप उठता है : **कँपा त्रस्त अंवर के छोर** (पृ. ८३)। 'उद्‌वोधन' मे आकाश चंचल होता है : **मचल कर दे चञ्चल आकाश** (अना., पृ. ६७)। 'राम

की शक्तिपूजा' में आकाश उल्लास से विकल हो उठता है, अमानिशा में सघन अंधकार उगलता है। उल्लसित तब होता है जब राक्षसों के पैरों की चाप से पृथ्वी को टलमल होते देखता है। सघन अंधकार तब उगलता है जब राम को पराजय की पीड़ा से त्रस्त होते देखता है।

यह अंधकार सुख से संबद्ध है, दुख से भी। किंतु निराला-काव्य में कही भी सुख की अतिशयता मे वह घनत्व नही है जो दुख की अतिशयता में है। अंधकार की सक्रियता दुख के संदर्भ मे ही सबसे अधिक देखने को मिलती है। नियति के समान वह निराला की अनेक रचनाओं मे फैला हुआ है। वह वातावरण मात्र नहीं है, ऐसी शक्ति है जिससे निराला बार-बार टकराते है।

नियति संध्या मे मुँदे सकल
वही दिनमणि के अगणित साज,
न है वे कुसुम, न वह परिमल,
न है वे अधर, न है वह लाज।
तिमिर ही तिमिर रहा कर पार
लक्ष वक्षःस्थलार्गलित द्वार।

'स्मृति' (**परिमल**, पृ. ९६) में भावुकता का स्तर लगभग वैसा ही है जैसा 'यमुना के प्रति' मे, और ये पंक्तियाँ अंधकार की सघनता सामने लाकर वैसे ही चौंका देती है जैसे 'यमुना के प्रति' वाली पंक्तियाँ। दोनो जगह आकाश दिनमणिहीन है, 'यमुना के प्रति' मे जग का निःश्वास ही किसी कन्दरा में डूब गया है, 'स्मृति' में अपार बाधाओ से भरा हुआ तिमिर का विराट् प्रसार है। त्रास का भाव जगाने के लिए निराला किसी डाकिनी-पिशाचिनी का आह्वान नही करते; दिन का डूबना और अंधकार का फैलना अपने मे अत्यन्त भयावनी क्रियाएँ है। निराला उन्ही का भयावनापन उद्‌घाटित करते है। **गीतिका** में त्रास से भरे हुए जिस नैश पथ को पार करके वह इष्टदेवी के द्वार तक पहुँचे हैं, वह यहाँ भी है। यहाँ द्वार बहुत मजबूती से बंद है, **गीतिका** में खुल गया है या खुलने ही वाला है।

घोर शिशिर, डूबा जग अस्थिर,
तिमिर-तिमिर हो गए दिशा-पल। (**गीतिका**, पृ. ८७)

वृक्षो में पत्ते नही, हवा और पानी मे किसी ने मानो विप घोल दिया हो, कहीं किसी पक्षी का शब्द भी नही सुनाई देता। लगता है सारा प्रदेश तुषार की लपटों से झुलस गया है। दूसरे बंद की तीसरी पंक्ति मे जहाँ **निराधार भवभार** है, वहाँ निराला ने पहले **निस्स्व विश्व भवभार** लिखा था। (सरस्वती, अप्रैल '३६)। इस पाठ में 'निस्स्व' शब्द द्वारा निराला वही भाव व्यंजित कर रहे है जिसे जग का निःश्वास डूबने के उल्लेख से 'यमुना के प्रति' मे किया था।

अर्चना में :

शिशिर की शर्वरी
हिंस्र पशुओं भरी। (पृ. ११)

यह वही शिशिर की शर्वरी है जिसमें अस्थिर जग डूब चुका था, जिसमें और सब कुछ निर्जीव है, जीवित है केवल त्रास। **घोर शिशिर डूबा जरा अस्थिर में,** शिशिर **की शर्वरी** मे निराला प्रभात-स्वप्न देखते है किन्तु **निविड़ विपिन पथ अराल में** केवल अंधकार गतिशील है। सुदृढ़ अंधकार वाला यह अंधकार नियति के समान कवि के अस्थिपञ्जर को दबोच लेता है।

इस अंधकार की सघनता के अनेक स्तर हैं। कहीं अमानिशा का दुर्भेद्य अंधकार है, कहीं अंधकारमयी श्यामा की दीप्ति—'विभावरी' के अंधकार के समान।

रावण-महिमा श्याम विभावरी अंधकार (अना., पृ. १५४)

महिमा का प्रकाश है, इसलिए अमानिशा की जगह विभावरी का अंधकार है। निराला जब मृत्यु की 'आभा' का वर्णन करते हैं, तब मृत्यु रूपा दुर्गा के उसी विभावरी वाले अंधकार का स्मरण करते है।

छाया-पथ घनतर से घनतम,
होता जो गया पंक-कर्दम,
ढकता रवि आँखों से सत्तम,
मृत्यु की प्रथम आभा भाई।
धीरे-धीरे हँसकर आई
प्राणों की जर्जर परछाईं। (अर्चना, पृ. ३९)

वही पुराने परिचित छायापथ है, वैसा ही सूर्यास्त है, सूर्यास्त के बाद का घना अंधकार है, उसमें निराला अपने प्राणों की जर्जर परछाईं देखते है, उस सघन अंधकार में नये जीवन का रंगीन प्रभात नही, मृत्यु की ही आभा उन्हें दिखाई देती है। 'जुही की कली' मे चाँदनी रात के स्वप्न, तिमिर ही तिमिर पार करने के दृश्य, अमानिशा में आकाश द्वारा उगला जाता हुआ अंधकार, फिर मृत्यु की प्रथम आभा—अंधकार के अनेक रूप निराला-काव्य मे है, उतने जितने प्रकाश के नही हैं, न कलात्मक दृष्टि से वैसे सार्थक।

इस अंधकार से निराला वातावरण रचते है। कही **तम गहन जीवन घेर—** **(परिमल, पृ. २९)** एक पक्ति में संकेत करके, कही अनेक बार उसका उल्लेख करके जैसे 'राम की शक्तिपूजा' में। महोल्लास से विध कर विकल होने वाला आकाश—वह भी अंधकार है। राम की लटें खुलकर फैल जाती है, वहाँ उपमान के रूप मे—दुर्गम पर्वत पर उतरता अंधकार उसी वातावरण के अंधकार पर फिर ध्यान केन्द्रित करता है। अमानिशा मे जिस अंधकार को आकाश उगलता है, वह रणभूमि और लंका में व्याप्त न होकर राम के चारों ओर सिमट आया है। यही अंधकार भीमा मूर्ति बनकर आकाश को छा लेता है जहाँ राम के सारे ज्योतिर्मय अस्त्र बुझ जाते है। रावण का खलखल अट्टहास इसी अंधकार की ध्वनि है।

अन्य प्रसंग में निराला ने लिखा था :

ध्वनिमय ज्यों अंधकार
दूरगत सुकुमार,
प्रणयियों की प्रिय कथा
व्याप्त करती थी जहाँ
अंबर का अन्तराल ? ('दिल्ली', अना., पृ. ६०)

अंधकार की ध्वनि यहाँ सुकुमार है; उसका सम्बन्ध प्रणयियों की कथा से है। 'राम की शक्तिपूजा' मे—प्रणयियों की कथा की जगह—अम्बर के अन्तराल में रावण का अट्टहास व्याप्त है। 'तुलसीदास' मे तमस्तूर्य दिङ्मंगल लिखकर निराला सीधे अंधकार की उदात्त तूर्यध्वनि सुनते है। 'वादलराग' शीर्षक रचनाओ में कभी मधुर, कभी दूसरों को आतंकित करने वाला जो स्वर निराला सुनते है, वह उसी अंधकार अथवा आकाश का स्वर है। 'वादलराग' मे यह बात अस्पष्ट है, 'तुलसीदास' में स्पष्ट। तमस्तूर्य दिङ्मंडल के अतिरिक्त—

छाया ऊपर घन-अंधकार—
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलयधार, ध्वनि हर हर।

यहाँ अंधकार वज्र और प्रलयध्वनि का वैसा ही सम्वन्ध है जैसा वादलराग में।

अधकार दृश्य है, स्पृश्य है, श्रव्य भी।

प्रतीक-योजना

निराला-काव्य मे अनेक रूप-रस-गंध-सम्वन्धी बिंब परम्परागत है, पूर्ववर्ती साहित्य से लिए गए हैं। इनका उपयोग अधिकतर प्रतीक रूप मे किया गया है। रवीन्द्रनाथ के साहित्य में कुछ प्रतीक रूढ़ हो गए है जैसे अज्ञान का प्रतीक अंधकार, ज्ञान का प्रतीक प्रकाश। निराला-काव्य मे भी इन रूढ प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जैसे इस गीत में—

गई निशा वह, हँसी दिशाएँ
खुले सरोरुह, जगे अचेतन। (गीतिका, पृ. ५६)

ऐसी रचनाओं में बिंव किसी नये अनुभव की व्यंजना का साधन नही हैं, उनके द्वारा प्रकृति या मनुष्य के मन की छानबीन करके निराला ने कोई नई सामग्री नही दी। किन्तु अव वह इन पुराने प्रतीकों को नई दृष्टि से देखते हैं, उनसे कोई नया अनुभव सम्बद्ध करते हैं, तव उनका प्रयोग मौलिक और चमत्कारी होता है।

जागो फिर एक बार (१) में किरण रहस्यवादी कवियों का परिचित प्रतीक है किन्तु निराला उसे ब्रह्म का प्रतीक न मानकर माया का प्रतीक बना देते है। **अरुण पंख तरुण किरण खड़ी खोल रही द्वार।** सोने वाला पुरुष है; जगाने वाली प्रकृति है। किरण मे रंगीनी है; ब्रह्म का वर्णहीन प्रकाश नही है। इसी तरह **पावन करो नयन** में किरण उसी प्रकृति, शक्ति अथवा माया का प्रतीक है। उसे दिन के बाद रात में चन्द्र-किरण से जोड़कर, उसे दुखनिशा मे अपने स्वप्न की सुघर जागृति बनाकर निराला ने चमत्कार उत्पन्न किया है। प्रतीक एक होते हुए भी प्रतीक-योजना रहस्यवादी रूढ़ि से उल्टी दिशा में चल रही है।

ऐसे ही कमल एक प्रतीक है। 'तुम और मैं' रचना मे सरसिज की मुसकान को माया से जोडकर, रवि की प्रखर किरणों से उसे पीड़ित और प्रसन्न होते दिखाकर निराला ने उस घिसे-पिटे प्रतीक का मौलिक उपयोग किया है। उनकी रचनाओं में जहाँ मुँदे हुए कमलों का उल्लेख है, वहाँ भी वे रहस्यवादी रूढ़ि की विरोधी दिशा में चलते दिखाई देते है। इनमें 'तुलसीदास' का निश्चलत्प्राण शतद विशाल और अत्यंत प्रभावशाली है। 'सरोज-स्मृति' में कमल का मुँदना काफी नही है, निराला ने उसकी सारी पंखुड़ियाँ नोच कर फेंक दी हैं : **हों भ्रष्ट शीतल के से शतदल।** भाव-सघनता के साथ बिंब के प्रयोग में भी परिवर्तन हुआ है। दुख और आवेग की पराकाष्ठा मुँदे हुए कमल से व्यक्त नही हो सकती। इसी तरह सूर्यास्त का बिंब है। 'तुलसीदास' मे शताब्दियों का सान्ध्यकाल है, युद्ध और प्रलय के दृश्यो ने उसे भयावना बना दिया है। 'राम की शक्तिपूजा' में भी सूर्यास्त है, रक्त और कालिमा मे लथपथ, युद्धभूमि की विचित्र, निरर्थक-सी भीषण ध्वनियो से भरा हुआ। निराला की भाव-शक्ति परिचित प्रतीक को बदलकर सजीव चित्र बना देती है।

इसी तरह अंधकार। रहस्यवादी कवि उसे रात खत्म होने के समय देखते हैं; उससे उनका गहरा परिचय, सुदीर्घ संपर्क सिद्ध नही होता। निराला जहाँ इसी पद्धति से अंधकार को विदा होते देखते है, वहाँ उनकी कविता कमजोर होती है। किंतु जहाँ अंधकार के प्रति उनका इन्द्रियबोध जाग्रत होता है, जहाँ भावशक्ति उनके बिंबों को प्रेरित करती है, वहाँ अंधकार एक अत्यंत आकर्षक और सजीव तत्त्व बन जाता है। निराला उसके हल्के रूप से लेकर बहुत घने रूप तक, दृश्य और स्पृश्य होने के साथ उसके ध्वनित होने तक उसे निरन्तर परिवर्तनशील इकाई जैसा चित्रित करते है।

वज्र और प्रलय साहित्य के परिचित परम्परागत प्रतीक है। निराला काव्य मे क्रान्ति, हिंसा, त्रास के भाव जगाने में इनका बडा सार्थक उपयोग किया गया है। कविता में ये अकेले नही आते, बादल या वर्षा के वर्णन मे आने से उनका परम्परागत रूप छिप जाता है।

छाया ऊपर घन-अंधकार—
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलयधार, ध्वनि हर-हर।

यहाँ वज्र और प्रलय का उल्लेख भरेपूरे चित्र के अन्य उपकरणों के साथ है। वे साहित्य से ली हुई अमूर्त धारणाएँ प्रकट नही करते वरन् युद्ध और वर्षा के मूर्त रूप को और सजीव करते है।

एक ही प्रतीक का उपयोग निराला विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग ढंग से करते हैं। 'वादलराग' (२) मे

वज्र घोप से ऐ प्रचण्ड !
आतंक जमाने वाले !

यहाँ वज्र के साथ केवल ध्वनि सम्बद्ध है। यह वज्रघोप दूसरों का नाश किए विना केवल विनाश की आशंका से उन्हे त्रस्त कर देता है। वादल जव उग्र क्रान्तिकारी भूमिका सम्पन्न करता है, तव उसकी वज्रहुंकार सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। किंतु इसके आगे वह आकाश से स्पर्द्धा करने वाले पर्वतों को 'अशनिपात' से क्षत-विक्षत भी कर देता है। कविता के अन्तिम अंश मे निराला धनी वर्ग को वज्र-गर्जन से काँपते हुए दिखाते हैं। तुलसीदास मे वज्र-गर्जन काफी नही है, वह अग्निमय है—दह दुर्निवार है—ऊपर से टूटकर धरती पर जीवों का नाश करता है।

गरजो, हे मन्द्र वज्रस्वर—(गीतिका, पृ. ५७)

यहाँ 'वादलराग' (२) की तरह वज्र केवल ध्वनि की तीव्रता व्यंजित करने के लिए है। जहाँ वादल का सम्बन्ध ललित कल्पना से है, वहाँ वज्र छिपा रहता है, केवल नवजीवन ही उसमे दिखाई देता है :

वज्र छिपा, नूतन कविता
फिर भर दो। (अना., पृ. ८२)

निराला के चिंतन की एक विशेपता यह है कि एक ही प्रतीक भिन्न संदर्भों में विरोधी भावों से जुड़ जाता है। वर्षा सृजन की ऋतु है, ध्वंस की भी। 'तुलसीदास' मे उसके ध्वंसवाले रूप का उपयोग किया गया है। 'वादलराग' (६) में ध्वंस और सृजन दोनों वर्षा से सम्वद्ध हैं। इस तरह की विरोधी क्रियाएँ प्रकृति में देखी जाती हैं; निराला उन्ही परस्पर विरोधी—फिर भी आपस में सम्वद्ध—प्राकृतिक क्रियाओं को कविता में प्रतिविंवित करते हैं। जो विप मनुष्य का जीवन लेता है, वह उसे जीवन दे भी सकता है। विप-विंव का ऐसा ही उपयोग निराला-काव्य मे है। ज्वाला भस्म करती है, वही परिवर्तित होकर विरोधी गुण का परिचय देती हुई मनुष्य को नयी शक्ति देती है। मृत्यु विंव हो चाहे अमूर्त कल्पना, कविता में उसकी चर्चा आदिकाल से होती आई है। मृत्यु को क्षणभंगुर जीवन की सीमा-रेखा मानकर उसे पार करते ही उस पार नया अमर जीवन पाने के सपने भी लोगों ने देखे हैं। मृत्यु और जीवन एक-दूसरे के विरोधी, एक-दूसरे से एकदम कटे हुए चित्रित किए गए हैं। निराला जीवन में मृत्यु, मृत्यु मे जीवन, दोनों की

भिन्नता और अभिन्नता वाला सम्बन्ध देखते हुए उन्हें चित्रित करते है। निराला के मूर्तिविधान की पेचीदगी—एक ही प्रतीक का विरोधी भावों से संसर्ग—यथार्थ जीवन की ही प्रतिच्छवि है।

पर्वत भय का सूचक है, आदर का भी। **तुम तुंग हिमालय शृंग**—ब्रह्म के लिए निराला को जो पहला उपमान सूझता है वह पर्वत का है। विप्लवी बादल जिन उद्धत वीरो को वज्र से ध्वस्त कर देता है, वे पर्वत है। पिता की मूर्ति के समतुल्य होकर पर्वत उत्पीड़क बन जाता है, आदर का पात्र भी। 'राम की शक्तिपूजा' मे विशाल भूधर है जिसके नीचे राम बैठे है। किन्तु राम स्वयं दुर्गम पर्वत के समान है जिस पर उनकी जटाओं के रूप मे नैश अधकार उतरता है। राम शक्ति की जो मौलिक कल्पना करते है, उसमें यह पर्वत मुख्य है। वह श्यामल, सुन्दर, पार्वती रूप हो जाता है; राम उसे पूजते है। समुद्र बार-बार गरजकर राम को डराता है; वही समुद्र दुर्गा के चरणों मे सिंह के समान गरजता हुआ भी उतना भयावह नही लगता। राम स्वयं सिंह बनकर देवी की पूजा करना चाहते है: **मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनंदित**। विजय और पराजय की भावनाओं का द्वंद्व समुद्र और सिंह के दो रूपो मे गरजने से व्यंजित होता है।

> सिंह भी क्या स्वांग कभी
> करता है स्यार का ?

शिवाजी के पत्र मे निराला को यह परिस्थिति बड़ी हास्यास्पद लगती है कि जो सदा विजयी है, वह पराजय भी स्वीकार करे।

> शेरों की माँद मे
> आया है आज स्यार। (परिमल, पृ. १७५)

शेर की जगह स्यार आ जाय, वैसी ही विडंबना **जागो फिर एक बार** (२) में भी है। 'तुलसीदास' मे सिंह पराजय की पीड़ा जानने लगा है :

> वीरों का गढ़, वह कालिंजर,
> सिंहो के लिए आज पिंजर।

शेर पिंजड़े मे बंद हो गया है। 'कुकुरमुत्ता' में शेर की हेकड़ी से उसकी पिटी हुई सूरत का मिलान करने पर निराला अपनी हँसी रोक नही पाते :

> काम मुझसे ही सधा है,
> शेर भी मुझसे गधा है।

इस तरह एक ही प्रतीक विरोधी भावो से सम्बद्ध होता है।

निराला अक्सर एक से अधिक प्रतीकों का उपयोग एक ही स्थान पर करते है। बादल, वर्षा, सूर्यास्त, अधकार, वज्र, प्रलय, समुद्र, पशु, निशाचर—इनमें कितने एक ही जगह सिमट आते है, यह इस पर निर्भर है कि वे किस भाव से प्रेरित हैं, उस भाव मे कितनी शक्ति है। 'जुही की कली' मे पवन गहन गिरि कानन पार करता है किन्तु उसके रास्ते मे इनके अलावा कुज-लतापुज भी है। निराला गहन गिरि कानन पर ध्यान केन्द्रित न करके आगे बढ़ जाते है। 'यमुना

के प्रति' में वह जहाँ प्रकाश को उतरते देखते हैं, वहाँ 'दुर्गम गिरि' है, अरण्य है, अंधकार है। दृश्य अधिक भयावह है। 'बादलराग' (४) में अंधकार है, गंभीर गर्जन हैं किन्तु आकाश भी है। दृश्य भयावह नहीं, सुखद है। 'बादलराग' (६) मे वज्रपात और जलप्लावन है किन्तु हँसते हुए कमल भी हैं। अंधकार का अभाव है। 'तुलसीदास' मे सूर्यास्त है, अंधकार है, प्रलय का जलप्लावन है, वज्रपात है, पिंजरबद्ध सिंह है, अप्रत्यक्ष रूप से असुर भी हैं किन्तु बिखरे हुए। दृश्य में केवल भय नहीं है, पराजित होने का पछतावा है, भविष्य में विजयी होने की आशा है : प्रात तव द्वार पर—इस गीत मे अंधकार है, काँटो और पत्थरों से भरा हुआ वन है, तेजहत निशाचर और वन्य जन भी है। त्रास है किन्तु वर-प्राप्ति का विश्वास उसे नियंत्रित किए है। 'सरोज-स्मृति' में अंधकार है, युद्ध है, निशाचरों की जगह सम्पादक, विरोधी आलोचक और कान्यकुब्जकुलकुलाङ्गार हैं। एक जगह जल-प्रवाह भी है किन्तु अत्यन्त संयत; नियंत्रित होने से भय की जगह सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे सहायक होता है। 'सरोज-स्मृति' मे विकट उद्वेग के बावजूद दुख नियंत्रित है, व्यथा है, संघर्ष है, त्रास नहीं है।

'राम की शक्तिपूजा' की विशेषता यह है कि निराला-काव्य में तमाम प्रतीक जो इधर-उधर बिखरे पड़े है, वे सब यहाँ सिमटकर एकत्र हो गए हैं। यहाँ त्रास है, पराजय है, 'सरोज-स्मृति' मे अधिक विजय के लिए प्रयास है। सूर्यास्त, अंधकार, निशाचर, पर्वत, सिंह, गरजता हुआ समुद्र, रावण के सहायक, उस समुद्र को चुनौती देने वाला दूसरा समुद्र,

उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार;

वज्र गर्जन के समान आकाश मे एकादश रुद्र का अट्टहास, वही सब परिचित उपादान यहाँ संवर्द्धित रूप में एक साथ सघटित होकर अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करते है। कविता के पूर्वार्द्ध मे इन उपादानो का जैसा घनत्व है, वैसा उत्तरार्द्ध में नही। वह पूर्वार्द्ध, फलतः, काव्य दृष्टि से अधिक समृद्ध है। निराला की भाव-शक्ति का प्रखर ज्वार पूर्वार्द्ध में है; उत्तरार्द्ध में उसका उतार है।

'राम की शक्तिपूजा' मे पशु नहीं हैं। पशुओं के नाम पर केवल सिंह है। पर्वत है किन्तु विशाल अरण्य नही है। राम अकेले नहीं है, साथ मे पूरी सेना है। आखिरी कमल के चुरा लिये जाने पर स्वयं दुर्गा वर देने आ पहुँचती हैं। 'राम की शक्तिपूजा' के बाद निराला अधिकाधिक हिंस्र पशुओं से भरे हुए निविड़ वन मे अकेले यात्रा करते हैं। यह प्रतीक-योजना दूसरे ढंग की है।

एक प्रतीक-योजना जैसे 'बादलराग' (६) मे। निराला जानते हैं कि बादल क्रान्तिकारी मनुष्य नही, बादल है, वह बादल को देखते हैं, क्रान्ति की बात सोचते हैं। क्रान्तिकारी भावधारा निराला को ऐसा आन्दोलित करे कि उन्हें सिर्फ आस-मान में बादल दिखाई दे, ऐसा नही होता। अनेक कविताओं मे जहाँ निराला वर्षा, ग्रीष्म आदि के रूपक बाँधते है, वहाँ इसी तरह एक ओर वह प्राकृतिक दृश्य देखते हैं, दूसरी ओर उसे किसी भावसूत्र से जोड़ते है। 'सरोज-स्मृति' में जहाँ वह ऊपर

उठते हुए नील जल को देखते हैं, वहाँ एक क्षण को वह यथार्थ की भूमि छोड़कर स्वप्न-लोक में पहुँच जाते हैं। यद्यपि उन्होंने शुरुआत **ज्यों भोगावती उठी अपार** से की, यह सूचित किया कि वह केवल उपमान जुटा रहे हैं किन्तु यह उपमान असाधारण है। फैन्टसी मे कुछ देखा है, उसे वह उपमान के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं।

'राम की शक्तिपूजा' का पूर्वार्द्ध एक सशक्त फैन्टसी है। इसके उपादान राम-रावण के युद्ध तक सीमित नही। भावशक्ति से प्रेरित होकर ये उपादान कवि के उपचेतन से उठते हुए रचनाकार वाले मन पर छा जाते हैं। बादल अलग, क्रान्ति अलग—ऐसा यहाँ नही है। निराला का अन्तर्द्वन्द्व तीव्र होकर उन्हें राम-रावण का युद्ध दिखा रहा है; निराला की भावशक्ति ही परिवर्तित होकर स्वप्न चित्र बन रही है। कविता के पूर्वार्द्ध मे उनका विवेक प्रायः सो रहा है; उत्तरार्द्ध में जाग्रत है। जहाँ विवेक जाग्रत होगा, वहाँ स्वप्नशक्ति भी क्षीण होगी।

शिशिर की शर्वरी
हिंस्र पशुओं भरी।

इतना निराला ने देखा। फिर विवेक थोड़ा-सा जागा; निराला ने जो देखा, उसकी व्याख्या आरम्भ की। किन्तु **निविड़ विपिन पथ अराल** में निराला आदि से अन्त तक स्वप्न ही देखते है, केवल उसका विवरण प्रस्तुत करते है, उसकी व्याख्या करने की योजना नही बनाते। यदि इससे उन गीतो की तुलना करें जिनमें दुख की सीधी व्यंजना है, तो दोनों स्तरों पर कला की भिन्नता प्रकट हो जायगी।

स्वप्न-चित्रों के उपकरण निराला के उपचेतन मे कही गहरे डुबकी लगाए चुपचाप पड़े रहते है। बाहर से किसी तरह की उत्तेजना मिलने पर वह चेतना की सतह पर उठ आते है, कभी एक आता है, कभी अनेक। उपचेतन मे डूबे हुए वे पुष्ट होते रहते है; दूसरी बार जब उभर कर आएँगे तब पहले से अधिक समर्थ होकर। किन्तु यह अनिवार्य नही है। उपकरण कितना समर्थ है, वह उस क्षण वेदना की तीव्रता पर निर्भर है। किन्तु निराला की प्रतीक-योजना चाहे सचेत रूप से संयोजित की गई हो चाहे अचेत रूप से, वह यथार्थ की विरोधी नही है। एक यथार्थ मन के बाहर है, दूसरा मन के भीतर। दोनों एक ही अविभाजित यथार्थ के दो छोर है। निराला उन्हें एक से अधिक स्तरो पर भिन्न दृष्टि से देखते है। जब वह बादल को क्रान्तिकारी रूप मे चित्रित करते है, तब उसकी सारी यथार्थ क्रिया—गरजने से बरसने तक—उनकी आँखों के सामने होती है। जब वह राम-रावण के संघर्ष द्वारा अपना अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करते है, तब राम, महावीर आदि का व्यक्तित्व आँखो से ओझल नही हो जाता। युद्ध का वर्णन प्रतीक मात्र न होकर सजीव चित्र के रूप मे सामने आता है। जब निविड़ विपिन की यात्रा करते है, तब उस विपिन का अपना अ[illegible] नही होता; उसमे फैले हुए [illegible] वितान और जटिल जाल को वह [illegible] देखते है।

निराला ने अपना [illegible]लिया है, स्वयं गढ़ा है, ल

प्रतीक

भी सामग्री चुनी है। परम्परागत लोकतत्व निराला की कला से परिवर्तित होकर श्रेष्ठ काव्य के स्तर तक पहुँच जाते हैं।

फागुन के रंग राग,
बाग-वन फाग मचा है,
भर गए मोती के झाग,
जनों के मन लूटे है। (अर्चना, पृ. ३३)

मोती के झाग भरना निराला के मूर्तिविधान की कलात्मक विशेषता है। मोती सख्त, झाग मे तरलता, निराला दो विरोधी गुणो मे संतुलन स्थापित करते हैं।

जो सूक्ष्म और अमूर्त है, उसे चित्रित करने के लिए मूर्तिविधान का आश्रय लेना निराला के लिए अनिवार्य नही। जो अमूर्त है, उसे भी मूर्तवत् देखने की क्षमता निराला मे है, विशेष रूप से भाषा, भाव और छन्द के बारे मे जब लिखते है, तब लगता है, वह उन्हे सुनते और गुनते ही नही, देखते भी हैं। 'वासंती' (परिमल, पृ. ६६) मे उन्होंने लिखा था,

अति गहन विपिन में जैसे
गिरि के तट काट रही है
नव जलधाराएँ, वैसे
भाषाएँ सतत वही है।

वन है, पर्वत भी है, बादल की जगह नदी उसके तट काट रही है, यही काम भाषा करती है। यहाँ भाषा को मूर्त रूप देते हैं जलधाराओ के उपमान द्वारा। किन्तु—

वर्ण चमत्कार;
एक एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार (गीतिका, पृ. ६२)

यहाँ शब्द ध्वनिमय होने के साथ साकार भी है। वह भाषा को मूर्त रूप में देख रहे है। अन्य गीत मे लिखा है,

छन्द की बाढ, वृष्टि अनुराग,
भर गए रे भावो के झाग। (उप., पृ. ८३)

यहाँ वर्षा वाला रूपक है, भावों के झाग का तत्त्वबोध भी। अर्चना में यही भावों का झाग मोतियों का झाग बन गया है। अर्चना में शब्द, ध्वनि, रस—इन सबको वृक्ष के फूलो की तरह खिलते और विकसित होते देखते है:

सुर तरुवर शाखा
खिली पुष्प भाषा...
भावों के दल, ध्वनि, रस
भरे अधर अधर सुयश,
उघरे, उर-मधुर परस,
हँसी केशपाशा। (पृ. ४१)

मनुष्य और प्रकृति का जीवन मूलतः एक है तो स्वभावतः भाषा भी प्रकृति की किसी-न-किसी क्रिया के समान होगी। निराला रूपक बाँध रहे हैं, भाषा को सीधे नही

देख रहे है; किन्तु जो वात उल्लेखनीय है वह यह कि फूलों और पत्तों की तरह—या उनकी गंध और रस की तरह—भाषा, भाव, ध्वनि, रस भी स्पृश्य है, उर मधुर परस हैं, इन्द्रियबोध के अन्तर्गत है।

निराला के मूर्तिविधान में कही कल्पना के सहारे अमूर्त परोक्ष वस्तुओं—जैसे दिशाओ —का वर्णन किया गया है, कही जीवन के अत्यंत साधारण व्यापारों से उपकरण जुटाए गए है जैसे 'हिन्दी के सुमनो के प्रति' मे धागा—**या तुम बाँधकर रँगा धागा।** (अना., पृ. ११५) कही ऐसे सामान्य उपकरणों का प्रयोग व्यंग्य और हास्य के लिए है, कही किसी अन्य भाव की पुष्टि के लिए। 'देवी सरस्वती' मे उन्होंने एक जगह अपनी इष्ट देवी को कुएँ का ठंडा पानी कहा है :

> तुम हो शीतल कूप-सलिल,
> जामुन-छाया-तल,
> लदे आम के वागो से
> जीवन का संवल।

आसपास आमो के वाग, थका हुआ पथिक, जामुन के नीचे कुएँ का ठण्डा पानी—यह है देवी सरस्वती। उपकरण वहुत सामान्य है किन्तु निराला ने मानो वड़े जतन से उसे इसी कविता के लिए जुगो रखा था। जो वस्तु सवसे आत्मीय, साहित्य की अर्जित विद्या के नीचे सूक्ष्म संस्कारों को छूने वाली है, उसे वह सरस्वती का प्रतीक वनाते हैं। निराला की प्रतीक-योजना यथार्थवादी मूर्तिविधान की विरोधी नही, उसी के आश्रित होकर सार्थक होती है।

संश्लिष्ट बिम्ब

निराला-काव्य मे जितने फूल हैं, उतने पक्षी नही। जुही की कली जिस वन में सो रही है, उसमे एक भी पक्षी नहीं बोलता, पूर्ण शान्ति है। शेफाली के नक्षत्र दीपकक्ष मे सुरभि है, पक्षियो का शब्द नही। **निशा के उर की खुली कली** मे पत्रो का मर्मर सुनाई देता है, पक्षी नही वोलते। **जागो फिर एक वार**(१) में जो पपीहे वोल रहे हैं, उनकी आवाज़ वन-उपवन से नही, व्रजभाषा-काव्य के पृष्ठो से आ रही है। इसी तरह तुलसीदास जव ससुराल जाते है तव रास्ते में कोयल की आवाज़ सुनाई देती है; यहाँ एक साहित्यिक रूढ़ि का पालन मात्र किया गया है। जव तुलसीदास चित्रकूट में वन की शोभा देखते है, तव वहाँ एक भी पक्षी का स्वर सुनाई नही देता यद्यपि सुगन्ध का उल्लेख अनेक वार अनेक प्रकार से किया गया है। जिस वाग

में कुकुरमुत्ता उगा है, उसमें फूल वहुत से है, उनके नाम कई पंक्तियों में गिनाये गये है, किन्तु चिडियों मे सिर्फ वुलवुल का नाम लिया गया है, इसलिए कि वाग नवाव का है, वाकी सव 'चिड़ियाँ' है :

चहकते वुलवुल, मचलती टहनियाँ,
वाग चिड़ियो का वना था आशियाँ ।

अनेक गीतो मे इसी तरह निराला या तो पक्षियों का 'कलरव' सुनते हैं, या भौंरे और कोयल के स्वरों का उल्लेख—प्राय: एक-सी शब्दावली मे करके—साहित्य की परम्परा निवाहते है।

मधुप वृंद वन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया। (गीतिका, पृ. ३)
मधुप-निकर कलरव भर,
गीति-मुखर पिक-प्रिय-स्वर। (उप,. पृ. ७)
गूँज उठा पिक-पावन-पंचम,
खग-कुल-कलरव मृदुल मनोरम। (उप., पृ. ४६)

कोयल का स्वर जहाँ पावन है, पक्षियो का कलरव जहाँ मृदुल और मनोरम है, वहाँ यथार्थवोध की जगह रूढिवादी कल्पना अधिक है। केवल वाद के गीतों मे रूढ़ि से हटकर निराला वागों मे गूँजता हुआ कोयल का वास्तविक स्वर सुनते हैं :

कुज-कुज कोयल वोली है।
स्वर की मादकता घोली है। (अर्चना, पृ. ६५)

एकाध अन्य गीत मे सवन, महोख आदि पक्षियो का उल्लेख है। कुल मिलाकर, गीत चाहे सन् '३६ के पहले के हों, चाहे वाद के, निराला फूलो की गन्ध पर जितना रीझते है, उतना पक्षियो के स्वर पर नही। शेली और कीट्स जैसे रोमांटिक कवियो ने पक्षियो के संगीत पर जितना ध्यान दिया है, उतना निराला ने नही। उनकी कविता मे जितनी रगीनी है, विशेप रूप से सुनहले रंग का जितना प्रसार है, उतना निराला मे नही। पक्षियो का संगीत सुनने मे, चित्रफलक पर चटक रंग विखेरने मे रवीन्द्रनाथ अंग्रेज कवियो के अधिक निकट है; निराला का काव्य-जगत शेली-कीट्स तथा रवीन्द्रनाथ के काव्य-जगत से भिन्न, दूसरे ढंग का है।

निराला और अंग्रेज कवियो के इन्द्रियवोध मे समानता यह है कि रूप, रस, गन्ध के वोध परस्पर परिवर्तनशील हैं। अन्धकार दिखाई देता है तो ध्वनिमय होने से सुनाई भी देता है। पेड़ो मे नये पत्ते आए, निराला को लगा कि डालियो से नये स्वर फूट रहे हैं :

फूट हरित पत्रों के उर से
स्वर सप्तक छाए। (परिमल, पृ. ४०)

आकाश मे इन्द्रधनुप के रंग दिखाई देते है, वे भी स्वर है।

रंग अपार
किरण-तूलिकाओं से अंकित
इन्द्रधनुप के सप्तक, तार।

कह सकते है, यहाँ निराला वास्तव में सुनते कुछ नही है, कल्पना से चित्र को सजा रहे हैं; विशेषता देखने-सुनने मे नहीं, कल्पना की गिरह लगाने मे है। किन्तु जहाँ लिखते है :

रंग से भरी हैं, हरी हो उठीं हर
तरु की तरुण-तान शाखें
परी-नागरी की। (अना., पृ. १४३)

वहाँ आप सोचने पर विवश होगे कि तरु की शाखों के प्रसार में शायद निराला सचमुच संगीत सुनते हो। वनवेला को वह 'वन्यगान' कहते है, **अपने सुख-स्वप्न से खिली** (गीतिका, पृ. ३८)— इस गीत मे 'परिमल का कलरव' सुनते हैं, 'देवी सरस्वती' में 'पौधों की रागिनी' का उल्लेख करते है, **पारस मदन हिलोर न दे तन** (गीतगुंज, पृ. ३०) इस गीत में गन्ध के वोध को शव्द वोध में परिवर्तित करते हुए लिखते है :

अलियों, जूही की कलियों की
मधु की गलियों नूपुर वाजे।

यह सव कल्पना नही है। जैसे तत्त्व मूलत: एक है, वैसे ही रूप, रस, गन्ध का वोध भी मूलत: एक है। आकाश ही रूप वदलकर धरती, जल, प्रकाश आदि वनता है; आकाश का गुण शव्द भी उसी प्रकार रूप, रस, गन्ध वन सकता है अथवा रूप, रस, गन्ध में शव्द सुना जा सकता है। निराला के लिए जैसे अन्धकार ध्वनिमय है, वैसे ही गन्ध और वर्ण भी ध्वनिमय है।

उनके काव्य-जगत् मे जैसे प्रकाश से अधिक अन्धकार है, वैसे ही रस की अपेक्षा गन्ध और शव्द अधिक हैं। निराला ने समुद्र का वहुत जगह उल्लेख किया है किन्तु समुद्र दूर से देखा जा सकता है, उसकी लहरों का गर्जन सुना जा सकता है, उसका जल पिया नहीं जा सकता। जो पेय है, वह है सुरा। इस रसपान की परिणति है—अन्धकार का वोध। 'जुही की कली' लिखते समय निराला मदिरा के उन्मादकारी प्रभाव से परिचित हो चुके है :

किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये,
कौन कहे ?

'जागृति में सुप्ति थी' रचना में नायिका सोकर उठते ही —अथवा जागते हुए रात विताने पर—शराव पीती है,

सो गया सुरा-स्वर प्रिया के मौन अधरों में

'तुम और मैं' के व्रह्म सुरापान घन अन्धकार हैं ही। इस पेय से तृप्ति नही होती, प्यास और वढ़ जाती है, अंग-अंग में ताप का अनुभव होता है। निराला के काव्य-जगत् मे रस-तृप्ति का अभाव होने पर जैसे विम्वों की आशा की जा सकती है, वैसे

ही हैं।

> निर्मम कठोर प्रकृति त्रस्त किया करती प्राण,
> मरु-भूमि सी थी जगह
> उड़ती उत्तप्त धूलि—झुलसाती थी शरीर
> पथिकों को देती थी कठोर दंड
> चड मार्तंड की सहायता से।

यह उक्ति 'पंचवटी प्रसंग' में शूर्पणखा की है। राम के आने से प्रकृति सरस हुई है, वरना पहले वह त्रास का कारण मात्र थी। निराला के काव्य-जगत् मे प्रकृति के ये दो रूप निरन्तर विद्यमान है। हरी-भरी प्रकृति अवास्तविक नहीं है किन्तु निराला इस सरस वास्तविकता से दूसरी नीरस वास्तविकता को ढकने का प्रयास भी करते है, इसके लिए कल्पना की सहायता लेते है। जहाँ वसन्त का वर्णन करेंगे, वहाँ संकेत से बता देगे—रूखी री यह डाल वसन वासन्त लेगी; डाल का रूखा होना आँखों से ओझल नही होता। रूखी डाल मे हरे पत्ते आयेंगे, यह प्रकृति की सहज यथार्थ क्रिया है। किन्तु शूर्पणखा को प्रकृति पहले त्रस्त करती थी, अब सुखद हो गई है; यहाॅ प्रकृति मे उतना परिवर्तन नही हुआ, जितना शूर्पणखा के मन में।

'तुलसीदास' मे इसी तरह ज्ञान द्वारा—मनुष्य के मानसिक प्रयत्न द्वारा—प्रकृति को सुखद बनाने का प्रयास है। एक ओर तरु-तृण मसृण-मसृण हँसते है, दूसरी ओर,

> हनती आँखों की ज्वाला चल,
> पाषाण खंड रहता जल-जल।

इस तरह विरोधी बिम्बों का सयोग निराला की नाट्यकला की विशेषता है। जहाँ हँसी-खुशी है, वहाँ दुखद ताप हो सकता है; ऋतुएँ बदलती है, इसमे अवास्तविक कुछ नही। किन्तु आगे प्रकृति का संदेश है कि अहल्या के उद्धारवाला स्पर्श देकर पाषाण खण्डो को हार बना लो, वरना यहाँ निर्जन नीरस अरण्य के अलावा कुछ नही है :

> अन्यथा यहाँ क्या? अंधकार,
> बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार,
> झरने, झाड़ी, कंटक, विहार पशु-खग का।

निराला स्पष्ट रूप से तर्क करते है कि कल्पना द्वारा प्रकृति को परिवर्तित करके देखना—जलते हुए पाषाणखण्डों को हार बना लेना—आवश्यक है। यही कल्पना यथार्थ विरोधी होकर छायावादी कविता को कमजोर करती है।

शिवाजी के पत्र मे निराला दोनो तरह की प्रकृति का उल्लेख करते हैं :

> मिला है तुम्हे
> गंध-व्याकुल-समीर-मंद-स्पर्श सरस,
> साथ मरुभूमि मे
> सेना के संग तुम

झुलस भी चुके हो खूब
लू के तप्त झोंकों में।

कविता के संदर्भ से स्पष्ट है कि शिवाजी भुलसी हुई प्रकृति को गन्धव्याकुल समीर के स्पर्श से सरस बनाने का आग्रह नहीं करते, आग्रह है औरंगज़ेब का साथ छोड़ने, उसका विरोध करने का जिसका अर्थ है मरुभूमि में और झुलसना होगा।

मरुभूमि से मिलते-जुलते जिस अरण्य मे निराला भटकते है, वह नीरस, ताप-पीड़ित अथवा अन्धकारमय है। उनके काव्य-जगत् मे दो प्रकार के वन है: एक वह विजन वन जिसमे जुही की कली सोती है, दूसरा वह गहन कानन जिसे पार करता हुआ मलयानिल उस तक पहुँचता है।

वन-वन उपवन-उपवन
जागी छवि खुले प्राण। (गीतिका, पृ. ७)

यह वही वन है जिसमें जुही की कली सो रही थी। दूसरा वन वह है जिस पर दिनमणिहीन आकाश उतरता है:

उतर रहा अब किस अरण्य पर
दिनमणि-हीन अस्त आकाश। (परिमल, पृ. ४८)

'स्वागत' (उप., पृ. १०४) में निर्झर जिस वन को पार करता है उसमें कंटक, कर्दम, भूधर, कंदर, हिंस्र निशाचर है, अन्धकार तो है ही। इस वन में कभी कोयल भी गाती है लेकिन वह ऐसी कोयल है जो दैन्य डाल पर बैठी है, दुख-अरण्य के किसलयों की ज्वाला से जलकर काली पड़ चुकी है।

मेरा दुख अरण्य, किसलय-दल
ज्वाल, जली काली तुम कोयल,
दैन्य-डाल पर बैठी प्रतिपल
सुना रही हो तान।

इस तरह कोयल निराला के किसी दूसरे गीत मे नही गाती। दुख का अरण्य पूरी तरह सूखा नही है; ज्वाला सूर्य की नही, किसलय-दलों की है। किन्तु—

भग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विपण्ण वन। (आराधना, पृ. ६२)

इस वन मे किसलय दल नहीं है। देह क्षीण है, गेह जीर्ण है, कवि अकेला है, दो शरण दो शरण की करुण पुकार है, जल है किन्तु प्रलय की वृष्टि का जल है, नया जीवन देने वाला जल नहीं। अर्चना के निविड़ विपिन, पथ अराल गीत में झाड़-झंखाड़ बहुत है, जल नही है:

नहीं कही सुजलाशय।

यह अरण्य निराला-काव्य में अनेक बार प्रतीक रूप में चित्रित होता है किन्तु वह कल्पना से गढ़ा हुआ प्रतीक नही है, निराला के इन्द्रियबोध से उसका गहरा सम्बन्ध है। मरु और निर्जल अरण्य के उपमान उस मन के लिए स्वाभाविक है जो जलन का अनुभव अधिक करता है, रस तृप्ति का कम। इसी से मिलता-जुलता विष का

प्रतीक अथवा विषपान का बोध है।

वन के साथ विष का सम्बन्ध 'माया' में है :

तू किसी वन की विषम विष-वल्लरी
या कि मंद समीर गन्ध विनोद की ?

प्रकृति के वही दो रूप हैं : एक गन्ध मन्द समीर, दूसरा वन की विषलता। 'माया' में आमने-सामने दो परस्पर विरोधी विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं। 'पतनोन्मुख' (परिमल, पृ. ३६) में विष की लता नही है, विष है चारो ओर फैली हुई ज्वाला मे। यह ज्वाला जीवन-तरु के पल्लवों को झुलस रही है।

विष मृत्यु का कारण है; सुख की अतिशयता में भी एक तरह की मृत्यु है, अत: उसमे विषपान की अनुभूति है। **स्पर्श से लाज लगी**—इस गीत में कंठ से लगी हुई नागिन अधरासव पान करती है, स्वयं अधरासव पान करने के अलावा प्रेमी को जो सुख दे रही है, वह सर्पदंश की मूर्च्छा के समान है। 'देवी सरस्वती' में जहाँ पुरवाई गन्ध से डस जाती है, वहाँ उसी तरह की अनुभूति का उल्लेख है।

विष मृत्यु है, विष जीवन है। दुख की ज्वाला भस्म कर सकती है, नयी जीवनीशक्ति भी दे सकती है।

दुख के सुख जियो पियो हाला
शंकर की स्मरशर की हाला !

शंकर की यह हाला विष ही है। विष जैसे जीवनीशक्ति बन सकता है, सुख की अतिशयता में जैसे विषपान का अनुभव हो सकता है, वैसे ही रूप-रस-गन्ध में ज्वाला है, ज्वाला मे रूप, रस और गन्ध है। वनवेला 'वन्य वह्नि की तन्वि नवल' है; 'सरोज-स्मृति' मे सरोज स्वर की वह्नि है। एक जगह गन्ध अग्निरूप है,दूसरी जगह स्वर अग्निरूप है। **गीतिका** में जो शक्ति गगन घन विटपी के रूप में नक्षत्र सुमन खिलाती है, वह 'अरणियों की अग्नि' है। (पृ. ६२) यह पुस्तकों मे पढ़ी हुई आग है ? निराला उसकी कल्पना मात्र कर रहे हैं ? जब कहते हैं—**कवि के अग्नि-प्राण उकताए** (आराधना, पृ. ३७) या जब भीतर ही नही, बाहर सारे संसार को एक ही अग्निशक्ति के पाश मे बँधा हुआ देखते हैं—**पावक पाश दिगंत बँधा है** (उप., पृ ४०) तब वह कल्पना से खेलते है या कुछ ऐसा देखा, स्पर्श किया हुआ लिखते है जो सामान्य अनुभव के बाहर है ?

निराला का इन्द्रियबोध साधारण नही, उसकी अनेक विशेषताएँ ध्यान देने योग्य है। साधारणत: जिस तरह आलोचना में घ्राणबोध, रूप बोध, शब्द बोध आदि तरह-तरह के बोध मूर्तिविधान के विश्लेषण में गिनाये जाते है, वह गिनती बहुत सीमित रूप मे उपयोगी है; निराला-काव्य से उस तरह अलग-अलग इन्द्रिय-बोध गिनाना भ्रामक भी हो सकता है। कारीगरो से भिन्न प्रतिभाशाली कवियो की विशेषता यह है कि उनकी चेतना इन्द्रियबोध के स्तर पर संश्लिष्ट रूप में कार्य करती है, एक प्रकार का बोध नही, अनेक प्रकार के बोध सक्रिय हो उठते हैं। परस्पर विरोधी बिम्ब भी एक ही अनुभव मे संतुलित और सम्बद्ध होते है। जहाँ

चित्र स्थिर न होकर गतिशील हैं, वहाँ इस तरह के विरोधी विम्बों का आना स्वाभाविक है। जो विम्ब विरोधी लगते है, वे हमेशा विरोधी होते नही हैं। आग और हिम एक-दूसरे के विरोधी है किन्तु हिम की ठण्डक जब सीमा पार कर जाती है तव लगता है हाथ जल उठेगा। 'पतनोन्मुख' में जहाँ लिखा है,

हिमहत पातों सा असमय ही
झुलसा हुआ शुष्क निश्चल—

वहाँ पढ़ने वाले को लग सकता है कि जो झुलसा हुआ है, उसकी तुलना हिमहत पातो से न करनी चाहिए। किन्तु हिम की अतिशयता पत्तों को झुलसाती हुई जान पड़े तो उसमे अस्वाभाविक कुछ नही है।

निराला की चेतना इन्द्रियवोध के अनेक स्तरो पर सक्रिय होती है, अनेक प्रकार के वोध एक ही संपूर्ण अनुभव मे समेट लेती है, उनमे तीव्रता पैदा करके उनके अलगाव की सीमाएँ मिटा देती है।

सुख के भय कॉपती प्रणय-क्लम
वन-श्री चारुतरा। (**गीतिका**, पृ. ४९)

'वनश्री' मे भिन्न प्रकार के रूप-रस-वोध अपनी विशिष्ट सीमाएँ त्याग कर एक हो गए हैं। निराला की वोधशक्ति जव वाह्य संसार की ओर तरंगित होती है, तव वह प्रकृति और मनुष्य का आन्तरिक सम्बन्ध देखती है। तन-तरुवर वाला रूपक सूरदास को भी प्रिय था। वह कल्पना-जन्य रूपक नही, प्रकृति और मनुष्य में एक ही जीवन के स्पन्दन की पहचान है। निराला जव कहते है .

विकल डालियो से झरने पर ही है पल्लव-प्राण—

तव वे सूरदास की पंक्ति ही दोहराते है: **जा दिन तेरे तन-तरुवर के सवै पात झरि जैहैं**। निराला जब कहते है:

आधे से ज्यादा घटा विटप
वीज को चला है ज्यों क्षण क्षण— (**आराधना**, पृ. २२)

तव मानव और प्रकृति मे व्याप्त उसी जीवन-मरण की सामान्य क्रिया की पहचान कराते हैं। जव लिखते है:

भग्न तन रुग्ण मन
जीवन विपण्ण वन—

तव मनुष्य और प्रकृति का अटूट आन्तरिक सम्बन्ध देखते हुए दोनों में जीवनी-शक्ति का ह्रास देखते है। **आराधना** की इन पंक्तियों से वहुत पहले 'शेप' (**परिमल**, पृ. ३८) मे इन्ही से मिलती-जुलती पंक्तियाँ लिखी थीं:

ढल रहे थे मलिन मुख रवि, दुख-किरण
पद्मवन पर थी, रहा अवसन्न वन। (**परिमल**, पृ. ३८)

वन अवसन्न है, वैसे ही शरीर है। जीवनी-शक्ति का ह्रास दोनों मे है। इसके विपरीत वसंत मे जव धरती को गन्ध से कसकते देखते है – **सौरभ-सौरभ धरती कसकी** (**आराधना**, पृ. २५)—तव मनुष्य और प्रकृति मे एक ही जीवनी-शक्ति का उभार

चित्रित करते हैं। सान्ध्य काकली में सिहरे रोओं के लतापुंज (पृ. ५४) लिखते हुए सिहरन की प्रगाढ़ता के अलावा प्रकृति और मानव के सम्बन्ध की ओर भी संकेत करते हैं।

यह सब तब होता है जब निराला की बोधशक्ति बाह्य संसार की ओर तरंगित होती है। जब वह भीतर की दुनिया देखते हैं, तब जिसे लोग अमूर्त और सूक्ष्म कहते है, उसे भी मूर्तिमान कर देते है। 'तुलसीदास' में वह चेतनाशक्ति की लहरों को उठते हुए, संस्कारो के विषम वज्र-द्वार पर बार-बार आघात करते हुए चित्रित करते हैं। निराला के लिए चेतना एक शक्ति है, उसकी तरंगें उठती है, वह दिखाई न दे किन्तु उसकी गतिशीलता अनुभव की जा सकती है।

निराला का रूप-रस-गन्ध-बोध पेचीदा है। वर्ण गन्ध बन जाता है, गन्ध स्वर, स्वर अग्नि। वह प्रकृति और मनुष्य में एक ही जीवन-मृत्यु की प्रक्रिया का अनुभव करते है, वह चेतना मे तरंगे उठते दिखाकर उसे रूप-स्पर्श-बोध के स्तर पर उतार लाते है। उनका मूर्तिविधान खंड-सत्य प्रस्तुत न करके मानव-प्रकृति का संश्लिष्ट यथार्थ गहराई से चित्रित करता है।

अनुप्रास-प्रेम

विजन वन वल्लरी पर : तीन बार 'व' की आवृत्ति। **सोती थी सुहागभरी स्नेह स्वप्न-मग्न :** चार बार 'स' की आवृत्ति। **अमल-कोमल-तनु-तरुणी—जुही की कली :** 'मग्न' समेत तीन बार 'म' की आवृत्ति। विजन से तनु तक छह बार 'न' की आवृत्ति। निराला के अनुप्रास-प्रेम का यह एक स्तर है।

> अमरण भर वरण गान—(गीतिका, पृ. ७)
> भज भिखारी, विश्वभरणा
> सदा अशरण-शरण-शरणा। (अर्चना, पृ. ३)

निराला का रणत्कार प्रेम सहज ही पहचाना जा सकता है।

अनुप्रास-प्रेम का दूसरा स्तर वह है जहाँ निराला थोड़े-थोड़े फासले पर एक-सी तुक वाले शब्द बिठाते चलते हैं।

> खेत में पड़ भाव की जड़ गड़ गई,
> धीर ने दुख नीर से सींचा सदा···
> मिष्ट है पर इष्ट उनका है नहीं
> शिष्ट पर न अभीष्ट जिनका नेक है।

('अध्यात्म-फल', परिमल, पृ. ८६)

यहाँ निराला ध्वनि से खेल रहे हैं, यद्यपि कविता में दुखचर्चा है और वह एक हद तक पड़, अड़, गड़ के ड़कारों से पुष्ट भी होती है किन्तु मिष्ट, शिष्ट, अभीष्ट तक आते-आते उनकी क्रीड़ावृत्ति उनके दुख पर हावी हो गई है, ध्वनि से जो मनोरंजन होता है, वह अर्थ से स्वतन्त्र है। यदि निराला मैथिलीशरण गुप्त की पैरोडी करते हुए ये पंक्तियाँ लिखते, तव उनका अनुप्रास-प्रेम अवश्य अर्थोत्कर्ष में सहायक होता। कड़ी-पड़ी, दिल-हिल, मुक्ति-युक्ति, दीन-हीन, रंग-भंग-संध, भेद-छेद, राज-साज, काल-चाल, फूल-शूल-मूल, फल-वल, प्राण-त्राण, स्वाद-अपवाद, सरस-रस—शब्दों के इतने जोड़े, कहीं-कहीं एक ही पंक्ति मे तीन-तीन शब्द एक ही ध्वनिवाले उस पाठशाला का नाम वता रहे हैं जहाँ निराला ने कविता लिखना सीखा था। 'अध्यात्म फल' उनकी प्रारम्भिक रचनाओ में है; नवम्बर सन् '२१ की 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी।

इससे भिन्न स्तर का अनुप्रास-प्रेम **जागो फिर एक बार** (२) में है। यहाँ निराला ध्वनि की कड़ियों से छंद के एक चरण को दूसरे से वाँधते चलते हैं :

समर में अमर कर प्राण
गान गाए महासिन्धु से
सिन्धु नद तीरवासी!—
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग;
सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।
किसने सुनाया यह
वीर जन मोहन अति
दुर्जय संग्राम राग,
फाग का खेला रण
वारहों महीने में?
शेरों की माँद में
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक वार!

प्राण एक पंक्ति के अन्त में तो दूसरी के आरम्भ में गान। एक के अन्त में राग तो दूसरी के आरम्भ मे फाग। निराला इस तरह ध्वनि की कड़ियों से पक्तियो को जोड़ते ही नही हैं। एक ही पंक्ति में समर के साथ अमर, रंग के साथ संग, जन के साथ मोहन की तुक मिलाने वाले शब्द भी हैं। इसके अलावा 'गान' 'गाए', 'संग्राम' 'राग' में 'ग' की आवृत्ति, पूरे शब्द मे ध्वनि साम्य न होने पर भी, निराला का उत्कट अनुप्रास-प्रेम प्रकट करती है। एक और चमत्कार यह है कि निराला

अतुकान्त छंद में तुकान्त पंक्तियाँ मिला देते हैं :

सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविंद सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।

'महाराज शिवाजी का पत्र' मे निराला ध्वनि की कड़ियो से पंक्तियो को जोड़ते है, बीच-बीच मे दो-दो, कभी-कभी तीन तुकान्त पंक्तियाँ भी मुक्त छंद के मुक्त प्रवाह मे डालते जाते है। ध्वनि की कड़ियों से पंक्तियाँ यों जोड़ते हैं :

वीरता की गोद पर
मोद भरने वाले शूर तुम···
माता क्षत्राणी की दिव्य मूर्ति
स्फूर्ति यदि अंग-अंग की है उकसा रही···
और तुम वीर हो ?
रहते तूणीर मे तीर अहो···
सुना नही तुमने क्या वीरों का इतिहास ?
पास ही तो—देखो,
क्या कहता चित्तौर-गढ ?
मढ़ गए ऐसे तुम तुर्कों में ?

पंक्तियों को जोड़ने वाली ध्वनि की कड़ियो के अलावा एक ही पंक्ति में इस तरह की सानुप्रास पदावली है :

मेधा के महान्···
लपट मे झपट···
देश का उद्देश···
कारण क्या रण का
पल्लवित विषवल्लरी···
विद्युद्-द्युति वार-वार···

इसके अलावा तुकान्त पंक्तियाँ :

अमृत नही, गरल है—
अति कटु हलाहल है···
इतना यह अत्याचार
करो, कुछ विचार···
उठता नहीं है हाथ
मेरा कभी नर-नाथ···
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे !—
निर्जर हो जाओगे—
अमर कहलाओगे !

निराला का मुक्त छंद उतना मुक्त नही है जितना वह उसे सिद्धान्त रूप में मानते थे। साथ ही वह कवित्त छंद की गति ही नहीं अपनाता, उसकी सानुप्रास शब्द योजना भी अपनाता है। वहुत जगह यह अनुप्रास-प्रेम मात्र क्रीड़ावृत्ति का परिचायक है। किंतु कहीं भी प्रदर्शन का वैसा घटाटोप नही है जैसा रीतिवादी काव्य में। निराला-काव्य के अन्य तत्त्वों से, यथा ध्वनि-प्रवाह से, अनुप्रास-प्रेम को संतुलित किए रहते हैं। निराला के श्रेष्ठ काव्य में शब्दों की ध्वनि उनकी रचना-सामग्री का अनिवार्य अंग है, वह छंद की गति से मिलकर कविता के आन्तरिक गठन को पुष्ट करती है।

इस तरह का अनुप्रास-प्रेम निराला के गीतों मे है, 'राम की शक्तिपूजा' जैसी लम्वी कविताओं में है। **वर दे वीणावादिनि वर दे!**—**विजन वन वल्लरी** की तरह 'व' की आवृत्ति। **प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत मंत्र नव**—स्वतन्त्र के साथ मंत्र, रव के साथ नव—एक ही पंक्ति में दो-दो ध्वनि खण्डों की आवृत्ति। **स्पर्श से लाज लगी**—इस गीत में अलक-पलक के साथ छलक; हेर के साथ फेर; हास के साथ त्रास और साँस, चयन के साथ नयन, स्नेह के साथ मेह, चुंवन-चकित-चतुर्दिक चंचल में चकार से आरम्भ होने वाले चार शब्द।

'तुलसीदास' अन्त्यानुप्रास-युक्त मात्रिक छंद में रची हुई कविता है किन्तु निराला को उतने अनुप्रासों से संतोष नही होता।

मोगल-दल वल के जलद यान
दर्पित-पद उन्मद नद पठान।

दल वल जल के ध्वनि खंडों की आवृत्ति। दर्पित पद के सम पर—उतने ही मात्रा काल के वाद—उन्मद नद।

वह ऐसी जो अनुकूल युक्ति,
जीव के भाव की नही मुक्ति,
वह एक भुक्ति, ज्यों मिली शुक्ति से मुक्ता।

यहाँ युक्ति और मुक्ति के साथ भुक्ति की तुक मिलाना छंद-रचना के लिए आवश्यक नही था किन्तु निराला मिलाते हैं। फिर उसी पंक्ति में शुक्ति को ले आते है। उसका आना छंद-रचना के लिए आवश्यक था किन्तु उसके वाद अन्त्यानुप्रास के लिए उन्होंने जो शब्द चुना है, मुक्ता—उसमे भी भुक्ति-मुक्ति-युक्ति-शुक्ति से ध्वनि-साम्य है। निराला ने छंद मे अन्त्यानुप्रासों का जो क्रम अनिवार्य रखा है, उसमें तीसरी पंक्ति का अन्त होने से पहले ऊपर का अन्त्यानुप्रास दोहराया जाता है। इसी तरह छठी पंक्ति का अन्त होने से पहले चौथी-पांचवी पक्तियों का अन्त्यानुप्रास दोहराया जाता है। तीसरी और छठी पंक्तियों के अन्त्यानुप्रास अलग। पूर्य, सूर्य और तूर्य छंद के पहले हिस्से में; त्राण, मान, प्राण दूसरे हिस्से में; दोनो हिस्सों को जोड़ने वाले मंडल-शतदल अलग। इसके अलावा भारत, नभ, प्रभा में एक वर्ण की आवृत्ति; आसन के साथ शासन में पूरी शब्द-ध्वनि की आवृत्ति। यह निराला की क्रीड़ावृत्ति है, उनकी अलंकरण प्रवृत्ति है जिसे दवा पाना

उनके लिए बहुत कठिन होता है। 'सरोज-स्मृति' तक में इस तरह का चमत्कार है यद्यपि आशा यह की जा सकती थी कि यहाँ वह अपनी ध्वनि-क्रीड़ा भूल जाएँगे।

चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण चरण
कह—"पितः, पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मै, यह नही मरण,
सरोज का ज्योतिः शरण-तरण।

पहली दो पक्तियो के अन्त मे चरण और वरण के तुकान्त शब्द स्वाभाविक है। किन्तु उन्ही दो पक्तियो के भीतर तरणि और पूर्ण का रणत्कार आवश्यक नही था। अगली दो पक्तियो मे मरण-तरण की जगह कोई और तुक रख सकते थे किन्तु रणत्कार प्रेम उन्हे उसी तरह के तुकान्त-शब्दो की ओर ठेलता है। तरण के पहले शरण—घाते में।

लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर...
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम...
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कठ फल...
वाञ्छित उस किस लाञ्छित छवि पर।

यहाँ तक कि कविता के अन्त में—

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ...

कर्म के बाद दूसरी पक्ति के आरम्भ मे धर्म आकस्मिक रूप से नही आ गया। अन्तिम पक्तियो मे—

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण—

कर, अर, कर, कर, तर—पाँच बार एक ही ध्वनि खंड की आवृत्ति हुई है।

'राम की शक्तिपूजा' मे अंधकार जहाँ इतना सघन है, यह शब्दक्रीड़ा अपने चरम उत्कर्ष पर है। एक ही पक्ति मे इस तरह के सम ध्वनि वाले शब्द मिलेंगे: शील-नील; व्यूह-समूह; प्रत्यूह-तूह; लोचन-मोचन; लाघव-माधव; रावण-वारण; प्रहार-दुर्वार; भर-सँवर; दल-टलमल; महोल्लास-आकाश; खिन्न-चिह्न; शिविर-स्थविर; प्रशमित-नमित; चिन्ता पल-सकल; अवनी-नवनी (त); इत्यादि। 'राम की शक्तिपूजा' के पाठकों पर कविता का जो तात्कालिक प्रभाव पड़ता है, उसका कारण प्रत्येक पक्ति मे समध्वनि खडो की जड़ाई है। कविता के उत्तरार्द्ध में यह क्रिया क्षीण हो गई है; निराला जड़ाई का काम आवेश में करते है—सदा नही किन्तु 'राम की शक्तिपूजा' जैसी रचनाओ मे अवश्य—जब यह आवेश कम होता है तब ध्वनि-क्रीड़ा भी कम हो जाती है। निराला की कला मे बिहारी के दोहो की काट-छाँट नही है; तथाकथित क्लासिकल कवियो की तरह वह तराशी हुई कला के हिमायती नहीं है। जितनी ध्वनि अर्थ की व्यंजना के लिए आवश्यक हो, उतनी ही कविता में सुनाई दे, यह मत उनका नहीं है। ध्वनि अर्थ

के उत्कर्ष में सहायक होती है किंतु इतनी ही उसकी उपयोगिता नहीं है। वह अपने में आनंददायक है— अर्थ से स्वतंत्र, अलंकार की तरह।

निराला ने हास्यरस की जो कविताएँ लिखी है, उनमें छोटी-छोटी तुकान्त कड़ियाँ पाठक का मनोविनोद करती हैं। 'कुकुरमुत्ता' की कुछ छोटी-छोटी पंक्तियों को मिलाकर लिखा जाय तो लगेगा कि 'राम की शक्तिपूजा' की तरह एक ही पंक्ति मे निराला ने तुकान्त शब्द सजाए है।

सामने ला, कर मुझे वेड़ा, देख कैंड़ा—तीर से खींचा धनुष मैं राम का,
काम का—पड़ा कन्धे पर हूँ हल वलराम का,
सुवह का सूरज हूँ मैं ही, चाँद मैं ही शाम का।

'स्फटिक शिला' मे यह क्रीड़ा कम है, फिर भी जहाँ-तहाँ है : आरंभ में पैर, फिर खैर, पुनः पैर, उसके वाद गैर; एक-सी तुको की पास-पास आवृत्ति। आगे 'अध्यात्मफल' वाली कला का प्रदर्शन,

उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़ कर।

नये पत्ते की किसान-जीवन से सम्वन्धित रचनाओं मे यह ध्वनि-प्रेम सवसे कम है। इनमें निराला साधारण वोलचाल के गद्य की राह पर चलते है; जैसी सादगी चित्रण में है, वैसी ही सादगी शव्दों की ध्वनि मे। **नये पत्ते** मे भी जहाँ-तहाँ ऐसे टुकड़े मिल जाएँगे :

माल के दलाल ये वैश्य हुए देश के, (पृ. ४१)
अहिर के मूसर, ये दई के दूसर है। (पृ. ६४)

वेला के गीतों और गजलों में सानुप्रास पदावली जगह-जगह जगमगाती है। पहले ही गीत में—

श्वेत शतदल कमल के अमल खुल गये···
चरण की ध्वनि सुनी, सहज शंका गुनी
वालुका की चुनी पुर लगी सुरधुनी···
किरण की मालिका पड़ी तनु पालिका···
कंठ रत पाठ में, हाट मे, वाट मे।

गीत की पहली पंक्ति में उन्हें मध्य-तुक जोड़ने का विचार नहीं आया। तीसरी पंक्ति में दल, कमल, अमल में मध्य तुक नही किंतु एक वार सानुप्रास पदावली की झनकार सुनकर निराला का मन वरवस मध्यतुकान्त पदावली की ओर भागता है। गीत के दूसरे वंद में सुनी-गुनी-चुनी-धुनी की एक ही तुक चार वार जमाते है। आखिरी वंद मे मालिका पालिका एक वार; फिर पाठ-हाट-वाट, तीन समतुकान्त शव्द एक ही पंक्ति में—दल-कमल-अमल के वज़न पर।

अधिक सहज प्रवाह वाले गीतों में भी वह हिंदी के साधारण शव्दों की ध्वनि दोहराते है जैसे इन दो पंक्तियों में नाथ, हाथ, साथ की ध्वनि :

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा वजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी। (वेला., पृ. २३)

गजलो में इस तरह की लपेट अक्सर मिलेगी :

हँसी के तार के होते है ये वहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये वहार के दिन।

इस वात की छानवीन दिलचस्प होगी कि जीवन के अंतिम चरण मे निराला जव दुख मे डूवे हुए मृत्यु-दर्शन पर कविताएँ लिख रहे थे तव उन्हे हिंदी शब्दों का पूर्व परिचित ध्वनि-प्रवाह सुनायी दे रहा था या नही। उनकी क्रीड़ावृत्ति मर गयी थी या मन के किसी कोने मे वैठी हुई मृत्यु पर हँस रही थी। शिशिर की जिस शर्वरी मे उन्हे हिंस्र पशु सता रहे थे, उसमे मात. को संवोधित करते हुए वह उसके साथ प्रातः की तुक मिलाना नही भूले :

मातः, किरण हाथ प्रातः वढाया।

मध्यतुक की जगह उन्होने आदि तुक की आवृत्ति की, जैसे अनेक पक्तियो के आदिवर्ण पर वलाघात करते है। अंतिम पंक्ति में यह आदितुक वाली योजना दोहराते है :

चपल-ता पर मिली अपल थल की तरी।

निविड़ विपिन, पथ अराल—इस गीत मे जहाँ अंधकार वहुत सघन है, निराला जटिल जाल के सादे ध्वनि-संयोजन से अपनी कठिनता व्यक्त करते है, आगे 'केवल' शव्द को अलग-अलग पंक्तियों मे दोहराकर भय और छाया को और भी विशाल वना देते है :

जगता है केवल भय,
केवल छाया विशाल।

अन्तिम पक्ति तक पहुँचते-पहुँचते मृत्यु की पद-ध्वनि और गभीर हो जाती है, स्पष्ट सुनाई भी देती है :

मन्द्र-चरण मरण ताल।

निराला के दुखगीतो मे उनका ध्वनि-प्रेम अन्तर्मन की अलग ही कथा कहता है—**वह रहा एक मन और राम का जो न थका**। उनके ध्वनिप्रेम पर दुख हावी नही हो पाता।

सान्ध्य काकली की उस रचना मे, जहाँ मृत्यु की नीली रेखा का उल्लेख है, निराला की पूर्व परिचित शव्द योजना इस प्रकार है :

वृद्धि हूँ मै, ऋद्धि की क्या,
साधना की सिद्धि की क्या।

अतिम रचना **पत्रोत्कंठित जीवन का विष वुझा हुआ है** मे वुझते हुए दीये की लौ की तरह निराला का वह ध्वनि-प्रेम पूरी तरह उद्भासित हो उठा है। आठ पक्तियो तक क्रीड़ावृत्ति वुझी-सी रहती है; निराला का सारा ध्यान हृदय-कुज में जलने वाले आशा के प्रदीप पर लगा है। फिर शायद यह प्रदीप वुझ जाता है या निराला का ध्यान अपने वीते हुए साहित्यिक जीवन की ओर जाता है और अचानक मृदग वज उठता है। स्निग्ध, निदाघ; वर्षा, वर्षित; हैम लोमों, आमों

आमोदित; चुंवित, चतुरंग, गति, यति, वंध, छन्द; रणित, गणित, मल्ल, मल्ल; खाल, ढाल; सवेरा, फेरा।

निराला की क्रीड़ावृत्ति मरी नही थी; वह मन के एक कोने मे वैठी हुई मृत्यु पर हँस रही थी।

ध्वनि-प्रवाह

निराला-काव्य में मूर्तिविधान का सहायक तत्त्व है ध्वनि-प्रवाह। इन दोनों का सामञ्जस्य उनकी कला की विशेषता है। किंतु जव जक मूर्तिविधान कमज़ोर होता है, ध्वनि-प्रवाह उस कमजोरी को दूर करके स्वयं उसका स्थान ले लेता है। शव्दों की ध्वनि प्रतीक-योजना में सहायक होती है, स्वयं भी जहाँ-तहाँ प्रतीक वन जाती है। छन्द की गति से नियंत्रित ध्वनि-प्रवाह ये सारे कार्य संपन्न करता है।

'जुही की कली' में ध्वनि-प्रवाह मूर्तिविधान का सहायक है। जुही सो रही है, पवन जाग रहा है, चल रहा है। छन्द की गति सोती हुई जुही की स्थिरता का नही, पवन की गतिशीलता का अनुसरण करती है। यह पवन समुद्र में लहरों के पहाड़ नही खड़े करता, न वह सुस्त शीतल मंद समीर है।

> शत-वायु-वेग-वल, डुवा अतल में देशभाव,
> जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव—

''राम की शक्तिपूजा' में लहरों के पहाड़ खड़े करने वाले पवन की गति इस तरह की है। 'शेफालिका' में आकाश—

> पार करना चाहता
> सुरभिमय समीर लोक,
> शोक-दुःख जर्जर इस नश्वर संसार की
> क्षुद्र सीमा। ('शेफालिका', परिमल, पृ. १६८)

यहाँ सुरभि के समीर लोक में स्थिरता है; वैसे ही छन्द की गति भी मंद है। इन दोनो के वीच की स्थिति है जुही की कली के पवन की। ध्वनि-प्रवाह मे उग्रवेग नही है, न अत्यधिक मंथरता है। छंद की गति जिस तरह की शव्द-ध्वनि को नियंत्रित करती है, वह भीतर से ठोस नहीं द्रवणशील है। ध्वनि जो भीतर से ठोस हो, कुछ इस तरह की होगी :

> कंपित जगम,—नीड़ विहंगम,
> ऐ न व्यथा पाने वाले !

द्रवणशील ध्वनि जैसे 'जुही की कली' में :

> विजन वन वल्लरी पर
> सोती थी सुहाग भरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न—
> अमल कोमल तनु तरुणी—जुही की कली,
> दृग बंद किये शिथिल पत्रांक मे।

शब्दों के चयन में निराला का ध्यान सबसे पहले उनकी ध्वनि पर है; उनसे मन मे कौन-सा चित्र बनेगा, इस पर ध्यान बाद मे जाता है। वास्तव मे शब्दों के अर्थ से जो चित्र बनते है, उनसे मिलते-जुलते चित्र निराला ध्वनि से बनाते है। 'विजन वन' की सम गति के बाद 'वल्लरी' मे ध्वनि की उठान दिखाकर निराला जुही को काफी ऊँचाई पर पहुँचा देते है। वह जिस पत्रांक मे सो रही है, वह लता के निचले भाग मे नही, वल्लरी के ऊपर वाले भाग में है। आगे जब पवन द्वारा चूमे जाने पर—

> डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल—

तब वल्लरी के ध्वनि-चित्र की सार्थकता हिंडोल द्वारा और भी स्पष्ट हो जाती है।

> निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूंदे रही—

इस पंक्ति मे ध्वनि की भंगिमा से निराला भौहों की वक्रता की ओर सकेत करते है।

> आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात—

यहाँ ध्वनि से मार्दव का बोध उत्पन्न करते हैं।

> कि झोंकों की झड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली—

यहाँ द्रवणशील की जगह ठोस कर्कश ध्वनियो से काम लेकर निराला नायक की सुखद निष्ठुरता का चित्रण करते है। इस तरह कविता के मूर्तिविधान के साथ निराला ध्वनिप्रवाह का सामञ्जस्य स्थापित करते है। ध्वनिप्रवाह मूर्तिविधान की व्यंजना को निखारने मे सहायक होता है।

वर दे वीणावादिनि वर दे—इस गीत मे मूर्तिविधान रूढ़िगत है, कमज़ोर है। वीणावादिनि पर निराला की निगाह ठहरती नही है। रूप-रस-गंध-स्पर्श-शब्द मे पहले चार गुणों का अभाव है, केवल शब्द सुनाई देता है। किंतु निराला सरस्वती की वीणा से निकलनेवाला शब्द नही सुन रहे, वह अपना संगीत सुन रहे है।

> प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मंत्र नव
> भारत में भर दे।

मूर्तिविधान निमित्त मात्र है; मूल वस्तु है निराला का अपना—मूर्तिविधान से स्वतंत्र—शब्द-संगीत। यहाँ ध्वनिप्रवाह मूर्ति-विधान की कमजोरी दूर करके स्वयं उसका स्थान ले लेता है।

'तुम और मैं' कविता के मूर्तिविधान पर विचार कीजिए। कहाँ तुंग हिमालय शृंग जैसा ठोस बिंब, कहाँ विमल हृदय उच्छ्वास जैसा तरल, प्राय. अमूर्त, बिंब !

एक और ब्रह्म नंदनवन का विपट, प्रेममयी का कंठहार, सितार, कृष्ण, पथिक, भव-सागर, आकाश आदि हैं; दूसरी ओर वह प्रेम, वियोग, योग, तप, भाव, प्राण आदि—अदृश्य और अस्पृश्य— है। इसी तरह माया के लिए निराला ने जो प्रतिमान चुने हैं, वे कहीं मूर्त हैं, कहीं मूर्त न होकर कविता, भ्रान्ति, सिद्धि, समृद्धि जैसी अमूर्त धारणाएँ हैं। इस कविता में ध्वनि स्वयं प्रतीक बन गई है। जिस उदात्त स्तर पर शब्द-ध्वनि प्रवाहित हैं, वह कवि के आवेश और शृंगार की गरिमा को व्यक्त करता है। 'तुम और मैं' के बिंब बिखरे हुए हैं; उन्हें एक ही ढांचे में संयोजित करता है ध्वनि प्रवाह।

इस ध्वनि प्रवाह के अनेक स्तर हैं। कहीं 'राम की शक्तिपूजा' की तरह उदात्त स्तर पर निराला का आर्केस्ट्रा बजता है, कहीं उनके गीतों में माठी लोकधुनें सुनाई देती हैं। कहीं इस प्रवाह में बड़ी गहराई है, धारा चट्टानों से टकराती, घुमड़ती हुई आगे बढ़ती है; कहीं निर्बाध, शान्त, समगति, तरल प्रवाह है। कहीं ध्वनि की छोटी-छोटी इकाइयाँ हैं, कहीं अठारह-बीस पंक्तियों में ध्वनि का प्रसार है। पूरे प्रसार को देखने से ही उनके ध्वनि सम्बन्धी रचनाकौशल को समझा जा सकता है। ध्वनि-प्रवाह छंद की गति से नियंत्रित होता है, छंद पर निर्भर नहीं होता। एक ही छंद में निराला ध्वनि की अनेक भंगिमाएँ प्रदर्शित करते हैं। शब्दों की ध्वनि से छंद का ढाँचा अलग करके देखें तो उससे उनकी कला के बारे में कोई भी विशेष जानकारी प्राप्त न होगी।

कवित्तछंद के आधार पर चलने वाले वर्णिक मुक्त छंद को लें। विभिन्न रचनाओं में इस छंद की गति भिन्न प्रकार की है; उस गति के अनुरूप शब्द-ध्वनि के संयोजन में भी अन्तर आया है। 'महाराज शिवाजी का पत्र' में निराला वक्तृता दे रहे हैं। छंद में ओजपूर्ण प्रवाह है। निराला का उद्देश्य गति को जहाँ-तहाँ रोककर श्रोता को किसी ध्वनि खंड पर बिलमाना नहीं, उसे निरंतर आगे बढ़ाते जाना है। फलतः ध्वनि-प्रवाह में गहराई और अन्तर्मुखी वक्रता का अभाव है। 'पंचवटी प्रसंग' में शूर्पणखा की उक्ति छोड़कर मुक्त छंद लँगड़ाता हुआ चलता है; उसी गति के अनुरूप शब्दों की ध्वनि में कहीं कोई चमत्कार नहीं है। **जागो फिर एक बार** (२) में ध्वनि-प्रवाह अवरुद्ध होता हुआ आगे बढ़ता है; छंद की गति ओजपूर्ण है, वैसे ही वीर भाव को व्यक्त करने वाली शब्दों की ध्वनि है। **जागो फिर एक बार** (१) में यही छंद बहुत धीमी चाल से आगे बढ़ता है; उसकी मंद गति के अनुरूप निराला कोमल शब्द ध्वनि संयोजित करते हैं।

मात्रिक मुक्त छंद में रची हुई कुछ कविताएँ देखकर लग सकता है कि कवित्त छंद से पौरुष का विशेष सम्बन्ध है। **भर देते हो**—(परिमल, पृ. १०३) कविता में मात्रिक मुक्त छंद की गति निस्तेज-सी है, **जागो फिर एक बार** (२) में वर्णिक छंद की गति बड़ी सतेज है। किंतु इसी मात्रिक मुक्त छंद में निराला ने अपनी क्रान्तिकारी कविता 'बादलराग' (६) भी लिखी। उसका छंद ओजपूर्ण है, वैसे ही गंभीर और सशक्त शब्दों की ध्वनियोजना है।

रहा है।

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विल्लव की प्लावित माया।

दग्ध और विप्लव पर ज़ोर देकर पढ़िए। हृदय दग्ध है, इसीलिए विप्लव आवश्यक है; जो दग्ध है, उसके दाह को विप्लव ही शांत कर सकता है। अर्थ की व्यंजना के लिए दग्ध और विप्लव दोनों शब्द महत्त्वपूर्ण हैं; उसी व्यंजना के अनुरूप दोनों पर बलाघात है।

पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल चक्र में हो दबे
आज तुम राजकुँवर! —समर-सरताज!

पशु और वीर, दोनों पर बलाघात; दोनों को साथ रखकर उनके वैषम्य पर ज़ोर। इसी तरह शूर और क्रूर का वैषम्य। कल और आज पर स्वरपात एक-सी ध्वनि की आवृत्ति के साथ वक्तृता में तर्क को प्रभावशाली बनाता है।

मैं बना किंतु लंकापति, धिक्, राघव, धिक्, धिक्!

लंकापति पर ज़ोर, फिर धिक् पर। पहले धिक् पर ज्यादा, दूसरे दोनों पर कम। विभीषण अपनी वक्तृता समाप्त कर रहे हैं। स्वर की अंतिम भंगिमा से श्रोताओं को पूरी तरह अपने प्रभाव में कर लेना चाहते हैं। किंतु धिक् पर जो तीन बार बलाघात है, वह आत्मग्लानि को अतिरंजित करके स्वयं विभीषण को व्यंग्य का पात्र बना देता है।

दग़ाबाज़, लाज जो उतारता है।
मरजाद वालों की,
खूब बहकाया तुम्हें!

मरजादवालों में प्रथम वर्ण पर स्वरपात अस्वाभाविक है किंतु छंद के प्रवाह में खप जाता है। 'दगाबाज़', 'लाज', 'खूब', पर जो बल दिया गया है, बोलचाल की भाषा के अनुकूल है। ध्वनि-प्रवाह को सशक्त बनाता है।

राम जब स्वगत-कथन आरम्भ करते हैं तब आवाज़ पस्त-सी है: आया न समझ में यह दैवी विधान। छंद की गति धीमी है; किसी शब्द पर विशेष बल नहीं है। आवेग में आने पर स्वर बदल जाता है।

लाञ्छन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक।

लाञ्छन शशांक और अशंक पर बल; पंक्ति में ध्वनि की तीन भंगिमाएँ। दुर्गा ने कितना बड़ा अन्याय किया है, राम को उस पर कितना आश्चर्य हुआ—यह ध्वनि की भंगिमाओं से प्रकट होता है।

निराला-काव्य में जो नाट्य-कौशल है, उससे बलाघात का महत्त्व अनिवार्य हो जाता है। चाहे गीत हो, चाहे लम्बी कविता, वह मंच पर खड़े हुए श्रोताओं को कुछ सुना रहे हैं या मृत्युरूपा दुर्गा से कुछ कह रहे हैं, उस समय प्रभाव उत्पन्न

करने के लिए कुछ शब्दों पर बल अवश्य देंगे।

दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुख हरण पदराग रंजित मरण।

'दे' पर वल, जननि पर वल, फिर राग पर।

लाञ्छना इन्धन, हृदय-तल जले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सवल
पार कर जीवन-प्रलोभन समुपकरण।

तीनों पंक्तियों के पहले वर्ण पर विशेष वल है; वास्तव मे पूरे गीत की हर पंक्ति के वर्ण पर वल है और यह वलाघात इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके आगे अन्त्यानुप्रास फीका लगता है।

कविता चाहे मात्रिक मुक्तछंद में हो, चाहे वर्णिक मुक्तछंद में, पंक्ति में ध्वनि की आन्तरिक भंगिमा पैदा करके, छंद की गति में हेर-फेर करके निराला ध्वनि-प्रवाह से कविता के अर्थ को निखारते और पुष्ट करते है।

शेरो की माँद में
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक वार !

यहाँ मुक्त छंद कवित्त की गति का अनुसरण करता हुआ वढ़ता है।

किन्तु इसके वाद कविता के दूसरे चरण मे निराला छंद की गतिभंग करते हैं, वड़ी सफलता से।

सत श्री अकाल,
भाल-अनल धक-धक कर जला।

विभीषण की धिक्-धिक् से इस धक-धक की तुलना कीजिए। सत् और भाल के साथ धक-धक पर जोर किंतु सत् और भाल की तुलना में कम। जला के साथ गति भग, अप्रत्याशित विराम। थोड़ी देर रुक कर भाल-अनल का जलवा देखिए, फिर आगे वढ़िए।

'वादलराग' (६) की प्रारंभिक चार पंक्तियाँ अन्त्यानुप्रासयुक्त मात्रिक छद की समगति से चलनेवाली पंक्तियाँ है।

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।

चारों पंक्तियों की गति समान है यद्यपि पहली दो पंक्तियों में सोलह-सोलह मात्राएँ हैं; तीसरी पंक्ति के साथ 'निर्दय' को मिलाकर पढ़ने से सोलह मात्राएँ पूरी हो जाती हैं, चौथी पक्ति में दो मात्राएँ कम रह जाती हैं। निराला 'हृदय पर' के वाद रुकते हैं; 'निर्दय' को विप्लव के साथ जोड़ना है, इसलिए 'पर' के वाद रुकना ज़रूरी है। इन चार पक्तियों के वाद छंद की गति वदलती है :

यह तेरी रण-तरी
भरी आकाक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर मे पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के वादल ।

भेरी-गर्जन के वाद ध्वनितरंग उठती है तो कई वल खाती हुई ऊपर उठती ही चली जाती है, विप्लव के वादल तक पहुँचने के पहले रुकने का नाम नही लेती। निराला यहाँ अकुरों के उठने, आशा से वादल की ओर उनके ताकते रहने की क्रिया ध्वनि द्वारा अंकित कर रहे है। यह आवश्यक नही कि इस तरह ध्वनि की भगिमा कोई-न-कोई चित्र प्रस्तुत करे अथवा सामान्य अर्थ के उत्कर्ष में सहायक हो। ध्वनि-प्रवाह का ओज अथवा माधुर्य, उसकी मद या तीव्र गति कविता में वर्णित भाव-दशा व्यंजित करती है। अपनी सहज क्रीड़ावृत्ति के कारण निराला ध्वनि-भंगिमाओ से खेलते भी हैं, एक हद तक उन्हें काव्य के अर्थ से स्वतन्त्र कर देते है।

'वनवेला' मे छंद की सामान्य गति इस तरह की है :

मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल साँस।

किन्तु आगे निराला गति-भंग करते है :

जैसे पार कर क्षार सागर
अप्सरा सुघर
सिक्त-तन-केश, शत लहरो पर
काँपती विश्व के चकित दृश्य के दर्शन शर।

क्षार सागर को पार करने, लहरों पर सिक्त-तन केश उठने की कष्टप्रद क्रिया छंद की विषम गति द्वारा चित्रित की गई है।

अनिमेष-राम—विश्वजित् दिव्य शर भंग भाव,—
विद्धाग—वद्ध कोदंड-मुष्टि—खर रुधिर-स्राव।

यहाँ संयुक्ताक्षरों की सहायता से निराला स्वर को जो वार-वार झटके दे रहे है, उसमे ध्वनि-क्रीड़ा के आनन्द के अलावा युद्ध में दोनों दलों के घात-प्रतिघात भी चित्रित किए गए है।

झुकझुक, तन-तन फिर झूम-झूम हँस-हँस झकोर,
चिर-परिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर।

यहाँ ध्वनि-प्रवाह की भंगिमाओ से निराला वेला के झुकने-झूमने आदि की क्रियाएँ चित्रित करते हैं। युद्ध के घात-प्रतिघात के वदले वेला की चपलता का चित्रण करना उद्देश्य है।

कविता में कहाँ खुले ऐसे दुग्ध-धवल दल।

यहाँ पंक्ति के दूसरे चरण में गतिभंग की कोई सार्थकता नही है। दुग्ध-धवल की पदयोजना अस्वाभाविक भी है।

'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' में ध्वनि का उदात्त प्रवाह—अर्थ से स्वतन्त्र —अपने में एक उपलब्धि है। सम्राट् ने जो त्याग किया, उसकी तुलना मे ध्वनि-तरंगों का यह संयोजन अधिक गरिमामय है। किंतु निराला ने जब भाषा की शक्ति का वर्णन किया तब ध्वनि की तरंगें मूर्तिविधान को डुबाती, मन को ऊपर उठाती, अपने साथ बहा ले जाती है :

बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे भाषा अमृत-निर्झर,
उमड़ प्राणों से गहनतर छा गगन ले अवनि के स्वर।

ध्वनि यहाँ प्रतीक बन गई है। इस ध्वनि-प्रवाह के अतिरिक्त भाषा की शक्ति को और किसी तरह का मूर्तिविधान चित्रित नही कर सकता।

इस उदात्त स्वर-साधना के अलावा निराला में एक लोकगीतों की धुनवाला स्तर है जहाँ शब्द-संगीत और छंद की गति मूर्तिविधान को गँवारने मे सहायक होते है। यदि निराला के होली-सम्बन्धी गीत एक जगह इकट्ठे कर दिए जाएँ तो ध्वनि-प्रवाह के इस स्तर की विशेषता स्पष्ट हो जायगी :

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली। (गीतिका, पृ. ४४)
फूटे हैं आमों मे बौर, भौर वन-वन टूटे हैं।
होली मची ठौर-ठौर, सभी बन्धन छूटे है।
(अर्चना, पृ. ३३)
गोरे अधर मुसकाई हमारी वसन्त विदाई।
अंग-अंग बलखाई हमारी वसन्त विदाई।
(आराधना, पृ. ६४)

शब्दों पर विशेष बल देकर श्रोता को प्रभावित करने का प्रयत्न नही है। बलाघात जहाँ है, वहाँ हल्का है। शब्द-योजना में कोमलता और मार्दव का विशेष ध्यान रखा गया है। प्रवाह में गहराई और उग्र वेग के बदले सहज तरलता है।

लोकगीतों मे भिन्न बोलचाल की भाषा वाला लहजा है। इसका अनुसरण करते हुए निराला कही तो छंद मे ध्वनि के उतार-चढ़ाव का विचार ही छोड़ देते है, साधारण गद्य की गति से संतोष कर लेते है। **नये पत्ते** मे 'डिप्टी साहब आए', 'महगू महगा रहा' इस तरह की रचनाएँ हैं। किंतु जब इसी स्तर की रचनाओं में व्यंग्य करते है, नाटकीयता उत्पन्न करते है, तब बलाघात, छंद की भंगिमाएँ, ध्वनि प्रवाह को नियंत्रित करने का कौशल, सब-कुछ भिन्न स्तर पर प्रकट हो जाता है।

गर्म पकौड़ी—
ऐ गर्म पकौड़ी !
तेल की भुनी,
नमक-मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी !

यहाँ निराला की बलाघात-प्रक्रिया 'बादलराग' (६) के कौशल से मिलती-जुलती है यद्यपि स्तर भिन्न है, उद्देश्य भिन्न है।

वही गन्दे में उगा देता हुआ वुत्ता
पहाड़ी से उठा सर ऐंठकर वोला कुकुरमुत्ता ।

'वादलराग' (६) मे अंकुरो के उठने, वादल की ओर ताकने को निराला ने जिस ध्वनि-कौशल से व्यंजित किया है, उससे कुकुरमुत्ता के उठने, सर उठाने और ऐंठने के ध्वनि-चित्र की तुलना की जा सकती है। भावोत्कर्ष के लिए निराला अक्सर पंक्ति के प्रथम वर्ण पर विशेप वल देते है :

चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ विप्लव के पारावार !

'वादलराग' (६) की इन पंक्तियो से तुलनीय है, 'कुकुरमुत्ता' की ये पंक्तियाँ :

भूल मत गर पाई खुशवू, रंगो आन,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिलटिस्ट।

जहाँ हास्य-विनोद नही है, वहाँ वलाघात अन्त्यानुप्रास को फीका कर देता है किंतु कुकुरमुत्ता जैसी रचनाओं मे व्यंग्य और हास्य का आधा आनन्द अन्त्यानुप्रास मे है। गजलों और गीतो मे—व्यंग्य-हास्य के अलावा—अन्त्यानुप्रास माधुर्य उत्पन्न करता है, संगीत की आवश्यकता की पूर्ति करता है। किंतु निराला को अनुप्रास अत्यंत प्रिय है, अतुकान्त रचनाओ मे भी वह उसका उपयोग करते है। वह उनकी क्रीड़ा-वृत्ति का परिचायक है; साथ ही वह उनकी संगीत-रचना का अभिन्न अंग है।

सघोष अल्पप्राण

निराला में क्रीड़ावृत्ति है, अलंकरणवृत्ति है, इसमें सन्देह नहीं। जहाँ शब्दो में ध्वनि-साम्य है, ध्वनिखंडो को दोहराया गया है, वहाँ भापा की मांसपेशियो को टटोलते हुए वह उसके स्थूल सौन्दर्य पर रीझते है। किन्तु इससे सूक्ष्म स्तर पर वह ऐसा ध्वनि-संगठन करते है जो भावोत्कर्ष मे सहायक होता है, जो उनकी रचना-सामग्री का अभिन्न अंग है। यहाँ वह भापा की प्राणशक्ति का परिचय देते है।

कंपित जंगम,—नीड़-विहंगम
ऐ न व्यथा पाने वाले !

यहाँ महत्त्वपूर्ण वात यह नही कि गम की ध्वनि दोहराई गई है वरन् यह कि इस

ध्वनि में 'ग' वर्ण मौजूद है। उससे मन पर भय और शक्ति की छाप पड़ती है।

गान गाए महासिंधु से···
सैंधव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा···
दुर्जय संग्राम राग,
फाग का खेला रण।

इन पंक्तियों में बार-बार 'ग' वर्ण आया है। उसकी आवृत्ति एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए है, वैसा ही प्रभाव जैसा जंगम-विहंगम का 'ग' उत्पन्न करता है। संगीतकार जो काम व्यंजनहीन स्वरों से लेता है, वह काम निराला स्वर-युक्त—अथवा स्वरहीन—व्यंजनो से लेते है।

अनगिनित आ गए शरण में जन, जननि।

गीत में विनय है; विनय में उदात्त ध्वनि है 'ग' की आवृत्ति के कारण।

रँग गई पग-पग धन्य धरा।

गीत में श्रृंगार भाव है; श्रृंगार में उदात्त ध्वनि है चार बार 'ग' को दोहराने के कारण :

पके बाग आमों के गमके (सान्ध्य काकली, पृ. ५५)

गन्ध और रस के मूर्तिविधान को उदात्त स्तर पर चढ़ा दिया है 'गमके' ने; उससे पहले 'बाग' उसकी सहायता के लिए है।

पड़ी चमेली की माला कल।
गमक उठा निशि का नभमंडल।

पहली पक्ति हल्की है; दूसरी में गन्ध की तीव्रता से नभमडल गमक उठा है। गन्ध की तीव्रता का बोध 'गमक' से ही होता है।

परिमल में एक कविता है 'प्रार्थना'। आरम्भ की बारह पक्तियों की ध्वनि स्वरित स्तर की है। उसके बाद निराला 'ग' की आवृत्ति से हठात् स्वर को उदात्त स्तर पर पहुँचा देते हैं; स्वर के ऊँचे उठने के साथ उसमे नाद-गांभीर्य भी बढ़ जाता है,

मेरे गगन-मगन मन मे अयि
किरणमयी, विचरो।

'यमुना के प्रति' मे एक पंक्ति है

श्याम गगन का घन उन्माद।

इससे **कौन तम के पार** गीत की पक्ति **गगन घन घन धार** की तुलना करें, 'राम की शक्तिपूजा' में **उगलता गगन घन अंधकार** की तुलना करें तो निराला की पद-रचना में 'ग' वर्ण का महत्त्व स्पष्ट हो जाएगा।

जागा दिशा-ज्ञान;
उगा रवि पूर्व का गगन में, नव यान ! (गीतिका, पृ. ८५)

गगन निराला का प्रिय शब्द है और उनकी कविता में उसका प्रयोग अकसर वैसे ही होता है जैसे रवीन्द्रनाथ के गीतो मे।

गगन गगन है गान तुम्हारा
घन घन जीवनयान तुम्हारा (अर्चना, पृ. १०३)

निराला की विशेष कला 'ग' की आवृत्ति अथवा गगन जैसे शब्दों के व्यवहार में नही है। विशेषता है अन्य ध्वनियों के साथ उसका वैषम्य दिखाने अथवा सामंजस्य स्थापित करने मे। ऊपर 'प्रार्थना' से जो उदाहरण दिया गया है उसमें पहले की पक्तियो की ध्वनि-योजना दूसरे स्तर की है। **गगन-मगन** के साथ निराला ध्वनि-प्रवाह मे नयी भगिमा उत्पन्न करते है। **कौन तम के पार**—इस पक्ति की ध्वनि हल्की है; दूसरी पक्ति मे—**अखिल पल के स्रोत जल जग गगन घन घनधार**—मे ध्वनि भारी होती है। दोनों पक्तियो के ध्वनि-स्तर में भेद किया गया है। **पड़ी चमेली की माया कल**—इस पक्ति मे ध्वनि हल्की; **गमक उठा निशि का नभ-मण्डल**—यहाँ ध्वनि में भारीपन। 'यमुना के प्रति' मे—

किस अजान मे छिपा आज वह
श्याम गगन का घन उन्माद—

पहली पंक्ति में ध्वनि की लघुता; दूसरी मे गुरुत्व।

'ग' का सयोग किन वर्णों से होता है, उसके आगे-पीछे कौन से वर्ण आते हैं, इस पर उसका और उन अन्य वर्णों का प्रभाव निर्भर होता है। 'अजान' और 'आज' मे 'ज' निर्जीव है किन्तु **जागो फिर एक बार, यामिनी जागो, हुई जग जग-मग मनोहरा** मे 'ग' के साथ मिलकर वह सजीव हो उठता है। 'उन्माद' के 'द' में विशेष घनत्व नही, किन्तु 'गगन' और 'घन' की कुछ ऊर्जा आगे आनेवाले 'उन्माद' मे भी व्याप जाती है। **दर्पित पद उन्मद नद पठान**—('तुलसीदास', तीसरा बंद) आवृत्ति के बल पर ही 'द' ने पक्ति को नाद-गाभीर्य से भर दिया है। **तुम कुंद इंदु अरविन्द शुभ्र**—'तुम और मैं' की इस पक्ति में अनुनासिक वर्ण से मिलकर 'द' आनन्द की सृष्टि करता है। इसी तरह **पावन करो नयन**—इस गीत मे यद्यपि निराला दुख निशा की बात सोच रहे हैं किन्तु उनका मन शब्दो की ध्वनि पर रीझ रहा है:

प्रतनु शरदिन्दु वर
पद्म जल विन्दु पर।

इसी तरह:

रूप इन्दु से सुधा विन्दु लह (गीतिका, पृ. १७)
गध शत अरविन्द नन्दन विश्ववदन सार (उप., पृ. २२)
रूप अतन्द्र, चन्द्रमुख, श्रमरुचि (उप., पृ. ४१)

गन्ध-मुग्ध मकरंद-उर सानन्द पुर-पुर लोग घूमें।

(उप., पृ. ९४)

एक सन्दीपन का हिन्दोल (आराधना, पृ. २७)

कुंदहास मे अमद श्वेत गंध छाई। (बेला, पृ. २७)

इन सब उदाहरणो मे 'न' या 'म' के साथ मिलकर 'द' सुखद भाव का व्यजक बनता है। यही 'द'—'रं' और 'ह' से मिलकर—माधुर्य के बदले उग्रभाव की व्यंजना करता है जैसे 'तुलसीदास' की इस पंक्ति में :

टूटता वज्र दह दुर्निवार।

घ, ध, श जैसी ध्वनियाँ द और ग से सहयोग करके काव्य के ध्वनि-प्रवाह को ऊर्जस्वित और गम्भीर बनाती हैं। **श्याम गगन का घन उन्माद**—इस पंक्ति के सौन्दर्य का कारण श-ग-घ-द इन चारो वर्णो का संयोग है।

व्योम और जगती के राग उदार

मध्यदेश में, गुड़ाकेश !

गाते हो बारंबार ! (परिमल, पृ. १५५)

निराला बादल के वज्र गर्जन का नहीं, उसके राग की मधुरता का बखान कर रहे हैं, इसके लिए पदयोजना में ग-द-ध की ध्वनियाँ मुखर है।

क्षत विक्षत हत अचल शरीर,

गगनस्पर्शी स्पर्द्धाधीर (उप., पृ. १५८-९)

यहाँ बादल के उग्र रूप का वर्णन है। प और क की मिश्र ध्वनि 'क्ष' में कर्कशता है; उसके साथ ग, श, ध की आवृत्ति बादल के शक्तिशाली रूप को उभारती है।

गरजो, हे मन्द्र वज्र स्वर,

थर्राए भूधर-भूधर (गीतिका, पृ. ५७)

मन्द्र की मधुरता गरजो और वज्र के बीच मे होने से परिवर्तित हो गई है। 'ध' और 'र' की आवृत्ति उग्रता का प्रभाव बढ़ाने के लिए है।

उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपिदल-बल-विस्तार।

विद्धाग-बद्ध कोदंड-मुष्टि—खर रुधिर स्राव।

इन पंक्तियो में द और ध के संयोग से निराला सघर्ष की विभीषिका चित्रित करते है।

'मेरे गीत और कला' में श-ण-व वर्णो के लिए लिखा था कि वे "खड़ी बोली के प्राणो को खटकते हैं।" आगे इनमें 'ल' की वृद्धि करके निराला ने कालिदास को शणवल स्कूल का आदिगुरु और पंत को उनका अनुयायी सिद्ध किया। श-ण-व के बदले स-न-ब की ध्वनियों को उन्होने व्रज-भाषा और बोलचाल की हिन्दी की ध्वनि-प्रकृति के अनुकूल बताया। निराला की ये धारणाएँ उनके काव्य-सौन्दर्य से सत्य सिद्ध नही होती। व्रजभाषा में 'ण' का अभाव है—तो खड़ी बोली के मूल जनपद में—पंजाबी और राजस्थानी की तरह—'ण' की बहुलता है। व्रजभाषा में यदि 'व' के बहिष्कार की प्रवृत्ति है तो अवधी में उसके ग्रहण की; 'अवध' शब्द

स्वयं इसका प्रमाण है। पूर्वी जनपदों में 'र' की वहुलता है तो पश्चिमी जनपदों में 'ल' की और यह 'र'-'ल' का भेद इन जनपदों में वहुत पुराना है। आधुनिक हिन्दी की विशेषता यह है कि वह विभिन्न जनपदो की ध्वनि प्रकृति से यथेच्छ विशेषताएँ अपनाते हुए संस्कृत की ध्वनि-प्रकृति से भी अपना सम्बन्ध कायम रखती है। उर्दू और व्रजभाषा दोनो से इस कारण एक हद तक आधुनिक हिंदी की ध्वनि प्रकृति भिन्न है। इस ध्वनि प्रकृति का जैसा सहज ज्ञान निराला को है, वैसा दूसरे कवि को नही। इस सहज ज्ञान से उनकी कला कैसे निखरती है, यह पहचानने मे उनकी घोषित धारणाएँ वाधक न होनी चाहिए।

निशा-रात--यामिनी—विभावरी—अनेक समानार्थी शव्दों मे निराला जहाँ 'निशा' को प्रयोग के लिए चुनते है, वहाँ विशेप कारण होता है। निशा मे श की गहरी तालव्य ध्वनि से वह अलंकार की सघनता की ओर संकेत करते हैं।

गत स्वप्न निशा का तिमिर-जाल
नव किरणों से धो लो। (परिमल, पृ. ३६)

अँधेरा कितना गहरा था, इसका पता तिमिरजाल से नहीं लगता, निशा से लगता है। किरणों की रंगीनी से अंधकार की सघनता का वैपम्य निराला दिखाते है— निशा और किरण शव्द के ध्वनि-वैपम्य से। **यामिनि जागी**--यहाँ प्रभात का प्रकाश है। **निशा-प्रिय-उर-शयन सुख घन** (गीतिका, पृ. १२)—यहाँ रात का अँधेरा है; शयन सुख की अतिशयता का भाव भी। **आया जननि नैश अंध पथ पार कर**—यहाँ अध पथ काफी नही—ऊपर तिमिरजाल की तरह; नैश आवश्यक है अंध पथ की विकरालता सूचित करने के लिए। **है अमा निशा; उगलता गगन घन अंधकार**--यहाँ अंधकार काफी नही है। उससे पहले निशा का आना जरूरी है। तव ग-घ-ध की ध्वनियाँ अधिक सार्थक होती है। **उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार**—यहाँ निराला ने नैश को अंधकार से जोड़कर दसो दिशाओ में स्याही पोत दी है। 'जुही की कली' मे मलयानिल को जो रात याद आ रही है वह शुक्ल पक्ष की है—**आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात**। किन्तु जिस रात मे वह फिर जुही के पास आया है, उसमें अँधेरा ज्यादा है। प्रमाण है 'निशा' का प्रयोग :

वासन्ती निशा थी।

'शेफालिका' जिस रात मे अपने प्रेमी आकाश को पाकर तृप्त हो रही है, उसमे सघन अँधेरा है। चन्द्रमा की जगह नक्षत्र जगमगा रहे हैं। श-क्ष की आवृत्ति सुख की अतिशयता, अन्धकार की सघनता दोनों को व्यजित करती है :

जागती प्रिया के नक्षत्रदीप कक्ष में
वक्ष पर संतरण आशी आकाश है। (परिमल, पृ. १६९)

सुखद अनुभव व्यक्त करने के लिए 'श' की ध्वनि ही काम आ सकती है।

निशा का यह स्पर्श शीतल। (अणिमा, पृ. १०१)

शीतलता अधिक हो तो निशा कहना काफी नही। र और व के संयोग से श के घनत्व को और वढ़ा देना चाहिए। निशा का पर्यायवाची शव्द है—शर्वरी।

शिशिर की शर्वरी
हिंस्र पशुओ भरी।

दो छोटी पंक्तियो में चार वार 'श', पाँच वार 'र' का प्रयोग उस कालरात्रि की क्रूरता को और भी उद्घाटित करता है। 'भ' की सघोप महाप्राण ध्वनि सहायक है; हिंस्र में दन्त्य 'स' भीषणता को विपरीत ध्वनि से साधे हुए है।

जहाँ घना अँधेरा नही है, वहाँ निराला दन्त्य 'स' के प्रयोग से कोमल प्रभाव उत्पन्न करते है।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्यां-सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे। (परिमल, पृ. ११६)

यहाँ 'स' की आवृत्ति आकस्मिक नही है। 'तुलसीदास' के आरम्भ में सन्ध्या का वर्णन है, इसमे **परिमल** वाली संध्या का सुकुमार सौन्दर्य नहीं, युद्ध की भीषणता है। साथ ही 'राम की शक्तिपूजा' वाली संध्या का भीषण अंधकार भी नही है। निराला श और स ध्वनियों का सन्तुलन कायम रखते है :

शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मडल।
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते है मुसलमान।

श की ध्वनि को स की आवृत्ति साधे हुए है।

निराला जब लिखते है—**मृदु सुरभि सी समीर में**—तब कोमलता का भाव उत्पन्न करते हैं। उसी कविता में जब सुख की अतिशयता दिखानी होती है, तब की आवृत्ति से काम लेते है :

शयन-शिथिल-बाँहे
भर स्वप्निल आवेश मे। (परिमल, पृ. १७२)

सारा सौन्दर्य, भाव की सारी सघनता श पर निर्भर है।

टूटें सकल बन्ध। (गीतिका, पृ. ७२)

बन्धन टूटने पर भिन्न ध्वनि-योजना द्वारा गंध के प्रभाव का वर्णन

कलिके, दिशा ज्ञान गत हो बहे गंध।

निराला ने अभी केवल एक जगह श का व्यवहार किया है। किन्तु गंध जैसे-जैसे फैलती जाती है :

रुद्ध जो धार रे
शिखर-निर्झर झरे,
मधुर कलरव भरे
शून्य शत शत रन्ध्र।

ध-झ-र के साथ श की आवृत्ति। जो गन्ध शून्य के रन्ध्र भर दे, वह साधारण नही;

पंक्ति मे तीन बार श आना ही चाहिए।

'वनवेला' मे—**पुलकित शत-शत व्याकुल कर भर**। यहाँ पुलकित के साथ आकर शत-शत सुख की अतिशयता व्यंजित करता है। 'तुलसीदास' में

शत-शत अब्दो का सांध्यकाल
यह आकुंचित-भ्रू कुटिल भाल;

भ्रू और भाल के साथ शत-शत उस साध्यकाल की भीषणता प्रकट करता है। 'सरोज स्मृति' मे

शुचिते पहनाकर चीनांशुक—

क और च के माधुर्य को श द्विगुणित करता है।

जीवित कविते, शत शर जर्जर।

यहाँ तीन बार र की आवृत्ति के साथ श का प्रयोग दुख की अतिशयता प्रकट करता है।

'राम की शक्तिपूजा' मे निराला जहाँ महावीर की आकाशयात्रा का वर्णन करते है, वहाँ प्रत्येक पंक्ति मे कही-न-कही मौके से श को बिठा देते हैं; कही केवल र या श है, कही क से संयुक्त होकर ष या श—क्ष रूप मे—ध्वनि में थोड़ी-सी कर्कशता भी उत्पन्न कर देता है। **बैठे मारुति** से शुरू कीजिए और **चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन** तक चले आइए। इन चौदह पक्तियो मे श ध्वनि केवल सात बार आई है। इसके बाद **ये अश्रु राम के** से लेकर **अट्टहास** तक बारह पंक्तियो मे श की ध्वनि सोलह बार आई है। महावीर जहाँ ध्यान में डूबे हुए शान्त बैठे है, वहाँ ध्वनि का ढाँचा और है; जहाँ वह आकाशयात्रा करते है, उनचासो पवन समुद्र को मथ डालते है, वह ढाँचा दूसरा है। इस दूसरे ढाँचे मे मूल भूमिका श की है।

श की तुलना मे निराला क्ष का व्यवहार कम करते है। उसकी भूमिका वही है जो श की है। 'शेफालिका' में नक्षत्र, कक्ष, वक्ष एक साथ आकर अंधकार की सघनता और सुख की अतिशयता बढ़ाते है, 'स्मृति' में—

तिमिर ही तिमिर रहा कर पार
लक्ष-वक्ष स्थलार्गलित द्वार—

अंधकार पार करने की सारी कठिनाइयाँ क्ष-युक्त कर्कश ध्वनि-संयोजन से साकार हो उठी है।

निराला-काव्य मे णकार-बहुला शब्दावली का प्रयोग कही तो केवल अनुप्रास-प्रेम के कारण हुआ है, कही—और बहुत जगह—वह प्रयोग बहुत सार्थक है। **मौन रही हार** में आभूषणो का रणत्कार नायिका के तन और मन दोनो की तसवीर खीच देता है। जैसे भारी आवाज करने वाले उसके आभूषण है, वैसी ही प्रिय से मिलने की अभिलाषा भी बलवती है। 'राम की शक्तिपूजा' की आरम्भिक अठारह पंक्तियो मे 'ण' का प्रयोग बारह बार हुआ है। राम पर्वत के नीचे बैठे हुए जहाँ पुष्पवाटिका में सीता की छवि देखते हैं, वहाँ बीस पंक्तियों मे—**है अमानिशा** से लेकर **कंपन तुरीय** तक—ण की ध्वनि केवल तीन बार आई है। युद्ध की विभीषिका चित्रित

करने के लिए निराला के ध्वनि-प्रपंच में ण जितना आवश्यक है, उतना शृंगार-स्वप्न को चित्रित करने के लिए नहीं।

'राम की शक्तिपूजा' मे व की आवृत्ति भी ध्यान देने योग्य है। पहली अठारह पंक्तियों में कोई ऐसी पंक्ति नहीं है जिसमें 'व' ध्वनि न आई हो। कुल मिलाकर पैंतीस बार इस ध्वनि का प्रयोग हुआ है; उसकी तुलना मे व का प्रयोग कुल पाँच बार हुआ है! **वर दे वीणावादिनि वर दे** जैसे गीतों में—**नव गति, नव लय, ताल छंद नव**—जैसी पदयोजना मे व का सौन्दर्य निर्विवाद है। किन्तु 'राम की शक्तिपूजा' में यही व अन्य वर्णों के साथ मिलकर जहाँ युद्ध का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत करता है, वहाँ वीणावादिनि वाले गीत में वह कोमलता और माधुर्य की भावना पुष्ट करता है। 'महाराज शिवाजी का पत्र' में निराला भाषण कर रहे हैं। गीत की 'रची हुई' भाषा के बदले यहाँ उसके सहज रूप की अपेक्षा की जा सकती है। कविता की पहली बारह पंक्तियों में व दस बार आया है, व केवल चार बार। निराला की जिन रचनाओं मे भाषा को जान-बूझकर बोलचाल के बहुत नज़दीक लाया गया है, उनमे भी व-ध्वनि-युक्त बहुत से शब्द मिलेंगे, जैसे—वहाँ, वह, मतवाला, सावन, मनभावन, पुरवाई, गाँव, ज्वार, लिवारा, वक्त, कवि, रखवाला, बढ़ावा, जीवन, सँवारी, द्वार, क्वार, देवी इत्यादि। हिन्दी में विभावरी जैसे कुछ वज़नी शब्द हैं जो कविता मे ही अधिकतर प्रयुक्त होते हैं, कुछ वन, जीवन, भाव, पवन जैसे संस्कृत-हिन्दी के सामान्य शब्द है जो गद्य में भी काम आते हैं। इनके अलावा वह, वहाँ, वाला, वास्ते, वकील, वक्त, सावन, वार जैसे बहुत से शब्द है जिनके बिना बोलचाल की भाषा आगे बढ़ ही नही सकती। इसलिए श-ण-व-ल स्कूल की कल्पना करते हुए व को हिन्दी प्रकृति का विरोधी मानना सही नही है। किन्तु यह बात सही है कि 'राम की शक्तिपूजा' के आरम्भिक अंग मे जो महत्त्व व का है, वही 'कुकुरमुत्ता' के आरम्भिक अंश में व का है।

> अबे, सुन बे, गुलाब,
> भूल मत जो पाई खुशबू, रंगो-आब।

दो पंक्तियों में ब पाँच बार! व का नितान्त अभाव! निराला का मन भावबोध की सूक्ष्मता की ओर नही, स्थूलता की ओर है। ब और व का भेद ध्वनि के ठाट मे कुछ ऐसा ही भेद उत्पन्न करता है।

ल की ध्वनि लालित्य से सम्बद्ध मानी जाती है। लट, लाल, चाल, लोभ, लीला, लेना, लाना जैसे बोलचाल के शब्दों मे ल की भरमार है। उसे श-ण-व के साथ जोड़ना व्यर्थ है। होली, चोली, हमजोली, अनबोली शब्दो के व्यवहार से निराला उसका लोक-महत्त्व स्वीकार करते है। **नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली**—पंक्ति का सारा सौन्दर्य ल पर निर्भर है।

> खेलूँगी कभी न होली
> उससे जो नहीं हमजोली। (अर्चना, पृ. ३४)

निराला होली की धुन गुनगुनाएँ और ल का लालित्य फूट न पड़े, यह असंभव है।

अधिक उदात्त स्तर पर 'तुलसीदास' में—

घन नीलालका दामिनी जित ललना वह।

सौन्दर्य है किन्तु योगिनी का।

सबसे दिलचस्प है र की ध्वनि। 'राम की शक्तिपूजा' की आरम्भिक अठारह पक्तियों मे इसका प्रयोग अट्ठावन बार हुआ है। उसका महत्त्व सिद्ध करने के लिए इतना कहना ही काफी है। अमर, समर, रवि, राम आदि शब्दों में र की ध्वनि विशेष भाव की द्योतक नही किन्तु निराला पूरे काव्यांश में राम-रावण, राक्षस-वानर का भेद न करते हुए र के सहारे युद्ध का विकट रोर उत्पन्न करते है। उनका उद्देश्य भी यही है कि दोनो ओर की वीरता और क्षति का चित्रण करके मन पर युद्ध की भीषणता का प्रभाव डालें। किन्तु र का यह प्रभाव अन्य वर्णो के संसर्ग के कारण पड़ता है। दूसरी पक्ति में र पाँच बार आया है; यह तुमुल रोर की तैयारी भर है।

रह गया राम रावण का अपराजेय समर।

तीसरी पक्ति मे भी 'र' पाँच बार आया है किन्तु यहाँ तुमुल रोर आरम्भ हो गया है:

आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्रकर वेग-प्रखर।

जागो फिर एक बार (१) मे इसी र की आवृत्ति भिन्न वर्ण-योजना के साथ कोमल प्रभाव उत्पन्न करती है:

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हे
अरुण पख तरुण किरण
खड़ी खोल रही द्वार।

अजय-दुर्जय, अभय-निर्भय, अनिवार-दुर्निवार—इन शब्द-युग्मो मे एक शब्द का 'अर्थ' वही है जो दूसरे का, फिर भी ध्वनि मे बड़ा भेद है। कोशगत अर्थ वही रहता है, किन्तु जिस मात्रा में ध्वनि के कारण अर्थ बदला हुआ होता है, वह मात्रा कवि के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसके लिए मूल अर्थ वही है।

ऐ निर्वन्ध !—
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल !

निर्वन्ध की जगह स्वच्छन्द रखने से ओज की मात्रा कम हो जायगी। वैसे ही अनर्गल; उसका जोड़ीदार कोई रकारहीन शब्द रखा जाय तो निराला का लक्ष्य सिद्ध न होगा।

टूटता वज्र दह दुर्निवार।

तुलसीदास की इस पक्ति मे दुर्निवार अनिवार्य है। इसी तरह **दुर्जय संग्राम राग** (परिमल, पृ. १७५), **घनी वज्र गर्जन से बादल** (उप., पृ. १५९), **दुर्मद ज्यों सिन्धु नद** (उप., पृ. १८८)। निराला ग-ज-द जैसे सघोष अल्पप्राण वर्णो के साथ र के सयोग से उदात्त स्तर पर ध्वनिखण्डों की रचना करते है। **भरा हर्ष वन के मन, नवोत्कर्ष छाया**—यहाँ र ष की प्रगाढ़ ध्वनि को और गाढ़ा करता है। जीर्ण-

शीर्ण में ण के साथ यही वर्ण कर्कशता उत्पन्न करता है। **जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन**—(गीतिका, पृ. ३७)। जो वस्तु जीर्ण-शीर्ण है, उसमें अभी शक्ति है; इसीलिए उसे जलाना आवश्यक है।

वर्ण और वरण—दोनों शब्दों में र है, दोनों की ध्वनि में अन्तर है। **वर्ण चमत्कार**—(गीतिका, पृ. ९२) प्रथम वर्ण पर बलाघात है, निराला 'वर्ण' की शक्ति का परिचय दे रहे हैं। **दे मैं करूँ वरण**—(उप., पृ. ६७) निराला विनत हैं, जननी से मृत्यु का वरदान माँग रहे हैं। विनय में भी गरिमा का भाव है, वह वरण—आगे दुखहरण और मरण से—व्यंजित है। **अभरण भर वरण गान**—(उप., पृ. ७) प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन है, उस सौन्दर्य का स्तर उदात्त है, यह बोध अभरण और वरण से होता है।

हिन्दी में श-ण-व-ल की ध्वनियाँ है, स-न-व-र की ध्वनियाँ भी। श और स विरोधी न होकर शासन, विश्वास जैसे शब्दो मे शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व द्वारा भाषा की शक्ति संवर्द्धित करते है। हिन्दीभाषी जन श और ष की ध्वनियों में भेद नही करते। यदि करें तो निराला की कुछ पंक्तियों का ध्वनि-सौन्दर्य और भी खुले :

बुझे तृष्णाशा विषानल झरे भाषा अमृत निर्झर।

मूर्धन्य और तालव्य ध्वनियो का भेद करते हुए पढ़ने से पंक्ति का सौंदर्य निखरेगा।

हिन्दी मे ण है, न भी। निराला ण और न वर्णो वाले शब्दो को चतुराई से सजाकर वह प्रभाव उत्पन्न करते हैं जो केवल न या ण की आवृत्ति से उत्पन्न नही हो सकता।

अभरण भर वरण गान,
वन वन उपवन उपवन जागी छवि खुले प्राण।

पहली पंक्ति में ण प्रधान है, न गौण है; दूसरी मे न प्रधान है, ण गौण है। निराला पहली पंक्ति की गुरुता से दूसरी की लघुता का संतुलन स्थापित करते है। शुरुआत अभरण से होती है; उसकी झंकार सुनाई देती है दूसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द प्राण में।

हिन्दी मे र है, ल भी। **नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली** का माधुर्य ल की आवृत्ति से र के संयोग पर निर्भर है। **हर धनुर्भङ्ग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त**—यहाँ ऊर्जा की भंगिमा हर, धनुर, पुनर् की आवृत्ति द्वारा चित्रित है (हर का उच्चारण हर्-वत् ही होगा)। ऊर्जा की यह भंगिमा राम की आकस्मिक चेष्टा के अनुरूप है। ललाट, ज्वाला, प्रलय—इस तरह के शब्दों मे ल की कोमलता ट-ज-र के संयोग से परुषता बन जाती है।

हिन्दी में व है, ब भी। 'राम की शक्तिपूजा' के प्रारम्भिक अंश में निराला व की आवृत्ति से पाठक को जब काफी देर तक विचलित कर लेते है, तब एक ही पंक्ति मे छह बार मुँह बन्द करके ध्वनि के अनर्गल प्रवाह को रोकते, पाठक को आश्वस्त करते है :

गर्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमत् केवल प्रबोध।

प्र-ठिघ-व्ध-मत्-प्र-वो—इस तरह। हनुमान विचलित नही है—यह भाव ध्वनि की अवरुद्ध गति से व्यंजित है।

श-प की तरह ङ्, ञ्, न्, म् ध्वनियो मे भेद करने से निराला का काव्य-सौन्दर्य निखरेगा। हिन्दीभाषी कही इन ध्वनियों में भेद करते है, कहीं नहीं। सन्त और जगदम्बा मे अनुनासिक ध्वनियो का उच्चारण-भेद स्पष्ट है।

गहन है यह अंध कारा;
स्वार्थ के अवगुण्ठनो से
हुआ है लुण्ठन हमारा। (अणिमा, पृ. ६५)

ठ के घनत्व की पुष्टि ण् मे होगी, न् से नही।

निरञ्जन बने नयन अञ्जन—(परिमल, पृ. १५६)
दृग दृग को रंजित कर
अंजन भर दो भर—(गीतिका, पृ. ८१)

ञ्ज की आवृत्ति—त-न के संसर्ग से—मधुर है। झंझा और पंजा मे कर्कशता का भाव है:

भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा।
(परिमल, पृ. १२७)

लाछन, लांछित शब्दों का अर्थ दुखद है, ध्वनि सुखद। वाञ्छित उस किस लाञ्छित छवि पर—जैसी सुखद ध्वनि वाञ्छित की है, वैसी ही लाञ्छित की। लाञ्छन को ले जैसे शशांक नभ में अशक—लाञ्छन मे ऊर्जा कम, शशाक में अधिक, अशंक में सर्वाधिक। लाञ्छना इन्धन हृदय तल जले अनल—यहाँ लाञ्छना के प्रथम वर्ण पर बलाघात उसे काफी शक्ति देता है, पूर्ण शक्ति मिलती है इन्धन से! लाञ्छना जले और लाञ्छना इन्धन जले—दोनों में बड़ा अन्तर है। तल जले अनल मे लकार लाञ्छना के अर्थ को संवर्धित करता है। हृदय में 'द' का भारीपन इन्धन के 'ध' के साथ मिलकर पूरी पंक्ति की गति को धीर-गंभीर बनाता है।

निराला ने हिन्दी ध्वनियो के साथ यान्त्रिक ढंग से कोमल या परुष भाव नही जोड़े। अनेक शब्द-रूपों मे उन्हें सजाकर पूरे ध्वनि-संदर्भ के अनुसार उनसे भाव-व्यंजना मे सहायता लेते हैं। उनके ध्वनि-सौन्दर्य को परखने के लिए पूरी काव्य-संरचना पर ध्यान देना आवश्यक है।

स्वर-साधना

प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि-सौन्दर्य होता है, उस सौन्दर्य को पहचानने के अपने तौर-तरीके होते हैं। एक परिवार की भाषाओं में यह ध्वनि-सौन्दर्य, उसे पहचानने के तौर-तरीके बहुत कुछ सामान्य होते है किंतु एक-से नही होते। पशु-पक्षियो की अथवा समुद्र-निर्झर आदि की ध्वनि का अनुकरण विभिन्न भाषाओं में एक-सा होगा—यह कल्पना की जा सकती है किन्तु वह यथार्थ अनुभव के प्रतिकूल सिद्ध होती है।

बादल गरजते है, हम उनका गर्जन सुनते है। अंग्रेज को गर्जन नही सुनाई देता, वह 'थंडर' सुनता है। निर्झर की ध्वनि पानी के झरने का ध्वनि-चित्र उपस्थित कर देती है। अंग्रेज के मुँह से झ की आवाज निकलती नही; 'झरने' की आवाज़ कहाँ से सुने ?

झर झर झर निर्झर गिरि सर मे
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर मे—(परिमल, पृ. १४८)

यह सौन्दर्य भारतीय भाषाओ में ही सम्भव है। भारतीय कवियों ने कोयल की कुहू-ध्वनि सुनी; अंग्रेज़ के लिए जैसी महाप्राण ध्वनि वर्जित है। वह कु-ऊ तो सुन सकता है, कुहू नही। महाप्राण ध्वनियों वाले जो शब्द उसने उधार लिए है, उनका उच्चारण भी अधिकतर महाप्राणत्व का लोप करके ही उसके लिए सम्भव होता है।

अंग्रेज़ी में—और तथाकथित भारत यूरोपीय परिवार की प्राचीन और नवीन भाषाओ में—घ, झ, ढ, ध, भ—इन सघोष महाप्राण ध्वनियों का प्रायः या नितान्त अभाव है। संस्कृत-परिवार की भाषाओं और इन यूरोपीय भाषाओं मे यह मौलिक भेद है। ग्रीक, लैटिन और अंग्रेज़ी मे घ, झ, ढ, ध, भ का पूर्ण अभाव है, इसलिए उनकी ध्वनि का ठाठ भी न्यारा है। रथ का **घर्घर नाद** (परिमल, पृ. १५३) इस तरह की ध्वनि-योजना अंग्रेज़ कवि के लिए असंभव है। **नयन जल ढल गए** (उप., पृ. १७१) में ढलने की कोमलता पहचानना उसके लिए दुष्कर है। **भेरी गर्जन, दग्ध हृदय, स्पर्द्धाधीर** की ध्वनि-गरिमा उसकी पहुँच से परे है। संस्कृत-परिवार की भाषाओं का ध्वनि-सौन्दर्य सघोष-अघोष-अल्पप्राण-महाप्राण ध्वनियों को सैकड़ों शब्द-रूपों में नए-नए ढंग से मिलाकर रचा गया है। ध्वनियों की विविधता से इस तरह की रचनाविविधता सम्भव होती है। जहाँ ध्वनियों की विविधता सीमित है, वहाँ उन्हें नए-नए रूपों मे मिलाकर नई-नई तरह का ध्वनि-सौन्दर्य उत्पन्न करना भी असम्भव है।

अंग्रेजी में ट की ध्वनि है तो त की नहीं; यूरोप की अनेक भाषाओ में त की ध्वनि है, ट की नहीं। अंग्रेज़ी में थ और द की ध्वनियाँ अपवाद रूप है; थिक वाला थ सिक के स के अधिक निकट है। ण की ध्वनि का नितान्त अभाव है। यह

सब भाषा की ध्वनिसम्पदा को सीमित करता है।

हृदय और हार्ट का कुल-गोत्र एक है किंतु दोनो की धड़कन जुदा-जुदा है। अंग्रेज़ दिल की 'धड़कन' नही सुन सकता; उसके लिए ध और ड़ की ध्वनियाँ वर्जित है। जो ध्वनियाँ अवर्जित हैं, उनको मिलाकर श्रुति मधुर रूप गढ़ने के तरीके अलग-अलग है। अंग्रेज़ सुख से ड्रीम करता है, हम सपने देखते हैं; वह ड्रिंक करता है, हम पीते हैं। मिल्टन का शैतान मूर्च्छित सहयोगियो को 'अवेक' शब्द से जगाता है; निराला कहते हैं—**जागो फिर एक बार**। निराला-काव्य का ध्वनि-सौन्दर्य परखने के लिए अंग्रेज़ी-हिन्दी के ठाठ का भेद याद रखना आवश्यक है।

सस्कृत मे संयुक्ताक्षरों, मूर्धन्य तालव्य ध्वनियों, लक्षण, दक्षिण, रक्षण जैसे शब्दों की भरमार है। निराला इनका उपयोग सीमित मात्रा में करते है। 'कुमार-सम्भव' मे सर्ग के सर्ग पढ़ते चले जाइए, बड़ी मुश्किल से सौ में कही एक पक्ति मिलेगी जिसमे संयुक्ताक्षर न हों। किंतु निराला में ऐसी सैकड़ों पंक्तियाँ बिखरी हुई मिलेगी —

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात।

कोमल भाव ही नही, कठोरता व्यंजित करने के लिए भी निराला संयुक्ताक्षरो से काम लें, यह अनिवार्य नही। **मोगल दल बल के जलद यान**—संयुक्ताक्षरो के बिना भी यह पंक्ति परुषता का भाव ध्वनित करती है। सस्कृत मे झ से शुरू होने वाले शब्द इनेगिने है, हिंदी मे इनके भरे-पूरे झुरमुट हैं। निराला ने कोमल कठोर ध्वनियो के लिए झ वर्ण वाले शब्दो का प्रयोग जिस तरह किया है, वह किसी संस्कृत कवि के लिए सम्भव नही।

झुक झुक, तन तन, फिर झूम झूम, हँस हँस झकोर।
('वनबेला')

झक झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों त्यों।
('राम की शक्तिपूजा')

इस तरह का ध्वनिभेद हिंदी कविता—अथवा संस्कृत से भिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं मे—ही सम्भव है। सस्कृत मे ढ की ध्वनि का अभाव है। शिवाजी के पत्र में वाक्यांश है—**काढ़ हिन्दुओं का हृदय**। यहाँ दो बार ह आया है, उसके साथ है ढ़। कोई दूसरा शब्द काढ़ने का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत कर ही नही सकता।

बँगला से हिंदी का ध्वनि-तंत्र मिलता-जुलता है, फिर भी महत्त्वपूर्ण भेद है। निराला-काव्य में व की जो महत्त्वपूर्ण भूमिका है, वह बँगला की ध्वनि-प्रकृति के एकदम प्रतिकूल है। बँगला और हिन्दी मे जो शब्द सामान्य है उनमे व-ब का भेद हिन्दी-बँगला का मौलिक भेद है, वह निराला और रवीन्द्रनाथ के ध्वनि-सौन्दर्य का मौलिक भेद है। 'जुही की कली' मे विजन, वन, वल्लरी, स्वप्न, वासन्ती, विरह, विधुर, पवन आदि शब्दो मे व का खुला हुआ स्पष्ट उच्चारण दरकार है। ऐसे ही निराला-काव्य में हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल दन्त्य स की ध्वनि अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण है। जो स को श कहने का आदी है, वह उसकी भूमिका से अपरिचित रहेगा। निराला वन्य, धन्य जैसे शब्दो में य का भरा-पूरा उच्चारण चाहते हैं। वन्न, धन्न के समान उच्चारण करने से उनका ध्वनि-सौन्दर्य—कम-से-कम निराला के लिए—नष्ट हो जायगा।

धन्य कर दे माँ वन्य प्रसून। (गीतिका, पृ. ३४)
वन्य लावण्य लुब्ध संसार। (परिमल पृ. ६२)
खिली हो वनकर वन्य गान। (अनामिका, पृ. ८८)

इसी तरह के और भेद हैं।

हिन्दीभाषी क्षेत्र के उत्तर में जहाँ 'घर' को लोग 'कर'-वत्, 'भ्राता' के 'भ्रा' को 'प्रा'-वत् कर देते है, वहाँ के ध्वनि-तत्र से हिन्दी का ठाठ भिन्न है। हिन्दीभाषी क्षेत्र के दक्षिण में जहाँ 'भारत' का उच्चारण 'वारत' जैसा सुनाई देता है, वहाँ का ध्वनि-तन्त्र भी हिन्दी के ठाठ से भिन्न है। संस्कृत के घ, ध, भ ध्वनियों वाले शब्द सबसे साफ आज भी उसी क्षेत्र में सुने जाते हैं जहाँ उन ध्वनियों का विकास हुआ था। यह विकास यूरोप में नही है, यह विकास हिन्दी भाषी क्षेत्र के उत्तर और दक्षिण में नही है। पूर्व और पश्चिम में उसका प्रसार हुआ है। वँगला और मराठी की अपनी विशेषताएँ है जो कही हिन्दी से उन्हें जोड़ती हैं, कही संस्कृत से उन्हे अलग करती हैं। वँगला में य को ज कहने की प्रवृत्ति हिन्दी में यमुना को जमुना बनाने वाली प्रवृत्ति से मिलती है किन्तु हिन्दी मे वँगला की अपेक्षा य की वहुलता और उच्चारण की स्पष्टता है। वँगला में दन्त्य 'स' का अभाव उसे हिन्दी और संस्कृत दोनों से अलग करता है। मराठी में ड़ से मिलती-जुलती ध्वनि—ल—झ और च के दो रूप, ज और ज के भेद की तरह, उसे हिन्दी से अलग करते है, साथ ही उसकी णकार-वहुला प्रवृत्ति उसे संस्कृत से मिलाती है।

विभिन्न भाषाओं के ध्वनितन्त्र को समझने से पता चलेगा, निराला ने हिन्दी के ध्वनि-सौन्दर्य को कितनी गहराई से परखा है, कितने भिन्न रूपों में उसे अपने काव्य में उद्घाटित किया है। यह ध्वनि-सौन्दर्य अंग्रेज़ी और संस्कृत के, अरबी और फारसी के, पंजावी और तेलुगु के, मराठी और वँगला के ध्वनि-सौन्दर्य से भिन्न है।

निराला-काव्य व्यंजन-प्रधान है। स्वर की लहरों में व्यंजन तिनके की तरह वहे-वहे नहीं फिरते, पंक्ति में अंगद की तरह पैर जमाकर अपने अस्तित्व का पूर्ण वोध करा देते हैं। निराला की वक्तृत्वकला, उनका नाट्यकौशल उन्हे व्यंजनो पर पूरा जोर देने को वाध्य करता है। वह संस्कृत-हिन्दी के रीतिवादी कवियो की तरह परुपता उत्पन्न करने के लिए एक ही तरह की कठोर समझी जाने वाली ध्वनियो की झड़ी नही लगा देते। दग्ध हृदय या स्पर्द्धा धीर मे 'घ' परुष प्रभाव उत्पन्न करता है तो सेज पर विरहविदग्धा वधू मे वही 'घ' कोमलता का भाव ले आता है। निराला का रचना-कौशल इस वात मे है कि आसपास के वर्णों के संसर्ग से वह ध्वनिविशेष का भाव-मूल्य निरन्तर परिवर्तित करते रहते है। अवश्य क-च-त-प

की ध्वनियाँ निराला-काव्य में वैसे ही कोमल हैं जैसे संस्कृत में या अनेक भारतीय भाषाओं मे।

आई याद कान्ता की कंपित कमनीय गात…
चकित चितवन निज चारों ओर फेर…
चुम्बन चकित चतुर्दिक चञ्चल…
पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे।

इस तरह की पद-रचना संस्कृत-हिंदी के पुराने कवियों में मिल जायगी। निराला की ध्वनि-संरचना के मूल तन्तु ग-ज-द हैं; इनमें सबसे शक्तिशाली ग है जो कोमलता और माधुर्य को भी ऊर्जस्वित करता है।

कभी-कभी कवि बहुत स्थूल और स्पष्ट रूप से वर्णित वस्तु की ध्वनि का अनुकरण करते हैं। मान लीजिए डमरू की ध्वनि का वर्णन करना है। निराला ने लिखा :

डम ड डम डम ड डम
डमरू निनाद है। (सान्ध्य काकली, पृ. ६४)

आभूषणों की ध्वनि का वर्णन करना है। निराला ने लिखा :

कण कण कर कंकण, प्रिय,
किण-किण रव किंकिणी, (गीतिका, पृ. ६)

इस तरह के उदाहरणों को निराला मे अपवाद मानना चाहिए। जिस वस्तु का वर्णन कर रहे है, उसकी ध्वनि का अनुकरण इन उदाहरणों में बहुत स्पष्ट है। इतनी स्पष्टता वाञ्छनीय नही।

उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार।

यहाँ निराला समुद्र के गर्जन का अनुकरण नही करते, फिर भी सागर के उमड़ने का ध्वनिचित्र प्रस्तुत कर देते हैं।

वज्राक तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

यहाँ महावीर की उड़ान का वर्णन है। दिखाना यह है कि महावीर अपनी शक्ति से जड़ पदार्थ जैसे आकाश को चीरते हुए उठते चले जाते हैं; विरोध है किंतु उसे पराभूत करनेवाली शक्ति और भी समर्थ है। व्यंजनों की सघनता के बीच स्वर की तरंग को निरंतर उठाते हुए निराला अट्टहास पर आकर थमते हैं। इस तरह वह अवरोधों को पार करती हुई ऊर्जा का अनुपम ध्वनिचित्र प्रस्तुत करते हैं।

निराला-काव्य व्यंजन-प्रधान है, इसका यह अर्थ नही कि उसमें स्वरों का महत्त्व नही है। स्वरों का ढाँचा बहुत कुछ अदृश्य रहता है; उस अदृश्य ढाँचे मे व्यंजन मजबूती से जड़े होते हैं; इन स्वरों में जो दीर्घ है, वे ढाँचे की सबसे मजबूत छड़ें है। पंक्तियों को यही स्वर साधे रहते हैं। अनेक लघु वर्णों के बाद दीर्घ स्वर वाला वर्ण रखकर छंद की गति मे भंगिमा पैदा करना, दो तरह की पद-रचना में वैषम्य दिखाकर नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करना निराला का प्रिय कौशल है। विजन

वन वल्लरी पर—वल और री के दो दीर्घ वर्ण आठ लघुवर्णों के बीच में। उपवन-**सर-सरित-गहन-गिरि-कानन**—सोलह लघुवर्णों के साथ अकेला एक गुरुवर्ण !

नव गति नव लय, ताल छंद नव,
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे।

इन पंक्तियों में लघु-स्वरान्त वर्णों की अधिकता है—**वर दे वीणावादिनि वर दे** में लम्बे स्वरों की खींच से वैषम्य प्रदर्शित करने के लिए। 'वनवेला' की एक पंक्ति में दीर्घ स्वरों का ताना-बाना—

सहसा वह चली सान्ध्य वेला की सुवातास;

उसके बाद लघु वर्णों की प्रधानता वाली पंक्ति—

झुक झुक, तन तन, फिर झूम झूम हँस-हँस झकोर।

कभी इस तरह का वैषम्य एक ही पंक्ति में दिखाते हैं: (छापे की दो पंक्तियाँ पढ़ने में एक है।)

अलस पंकज दृग अरुण मुख तरुण अनुरागी।

निराला अपनी कविता में दीर्घ स्वरों का जाल किस तरह बिछाते हैं, यह उनकी तात्कालिक मनोदशा पर निर्भर है। कुछ स्वर उन्हें कम प्रिय है, कुछ अधिक; इनके द्वारा वह कोई विशेष भावदशा चित्रित करते है। उन्हें दीर्घ आ-स्वर अत्यन्त प्रिय है; ग-वर्ण की तरह इस स्वर को साधे बिना वह उदात्त स्तर तक पहुँच नहीं सकते। दुख, ग्लानि, वीरता आदि भावों के उदात्त चित्रण में इस स्वर की आवृत्ति अनिवार्य है। शृंगार आदि के कोमल भावों के चित्रण में यह अन्य स्वरों का सहायक सिद्ध होता है, उन्हें उदात्त के निकट ले आता है। आ के बाद ए की ध्वनि उन्हें प्रिय है, उसके बाद ई की। ऊ और ऐ उससे कम, औ का प्राय: अभाव है।

यामिनी जागी—इस गीत में आ सत्रह वार आया है, ए पन्द्रह वार, ई ग्यारह वार। ऊ-औ-ऐ एक वार भी नही आये। शृंगार-भाव का द्योतक यह गीत उदात्त स्तर पर रचा गया है। आ के साथ ए और ई का संतुलन है।

मेघ के घन केश—शृंगार-भावपूर्ण वर्षागीत है। इसका स्तर **यामिनी जागी** के उदात्त स्तर से नीचे है। ए-स्वर की प्रधानता है; चौदह वार आया है, आ केवल आठ वार। ई पाँच वार, ओ तीन वार, इ दो वार, ऐ एक वार; औ एक वार भी नही।

नयनों के डोरे लाल—शृंगार रस का होली गीत। स्वरो के प्रवाह मे व्यंजनों का गुरुत्व घुल गया है। इसमे ई-स्वर प्रधान है, चौतीस वार आया है, ओ अठारह वार, आ तेरह वार, ए ग्यारह वार। यह अनुपात स्वाभाविक है; गीत मे ऊर्जा की उठान नहीं, भावबोध का स्तर मधुर और कोमल है, ओजपूर्ण और परुष नही।

फूटे हैं आमों में बौर—लोकगीतों की धुन पर चलने वाला अर्चना का गीत है। सौन्दर्य का चित्रण है; मन पर कोमलता और मादकता का प्रभाव डालता है।

इसमें ए-स्वर प्रधान है, इक्कीस वार आया है, आ वारह वार। ऐ सात वार; ई छह वार; ऊ छह वार; ओ चार बार। उसमें औ भी है—चार वार आया है।

वर दे वीणावादिनि वर दे—विनय गीत है। शृंगार भाव के कुछ गीतों से स्तर ऊँचा है अर्थात् उदात्त के अधिक निकट है। मुख्य स्वर ए नौ वार; आ सात वार; ओ दो वार; ई एक वार।

दे मैं करूँ वरण—यह भी विनयगीत है किन्तु इसमे संघर्ष का भाव प्रवल है, उदात्त स्तर पर रचे हुए गीतो में है। मुख्य स्वर आ पन्द्रह वार; ए नौ वार; ई, ऊ, ओ, ऐ—प्रत्येक पाँच-पाँच वार। अन्य स्वरों के अनुपात मे आ की आवृत्ति बढ़ गयी है।

प्रात तव द्वार पर—ऊपर वाले गीत से मिलता-जुलता है। नैश-यात्रा का संघर्ष, विरोध के प्रति सजगता, वर-प्राप्ति का आश्वासन—स्तर उदात्त। आ वीस वार; ए वारह वार; ओ चार वार; ई तीन वार। अन्य स्वर नगण्य मे। गीत में जैसी भाव-सघनता है, वैसा ही ऊर्जा का प्रवाह है। ऊर्जा की तरंग को आगे वढाता है आ-स्वर।

निराला ने अपने अन्तिम चरण मे जो दुख और मृत्यु पर गीत लिखे, उनमे आ-स्वर का अनुपात वहुत कुछ पहले की तरह कायम रहता है। आ-स्वर की प्रधानता भाव गाम्भीर्य के साथ चलती है। **शिशिर की शर्वरी** : आ सोलह वार; ई ग्यारह वार; ओ पाँच वार, ए तीन वार, ऐ एक वार।

निविड़ विपिन पथ अराल—आ इक्कीस वार; अन्य स्वर वहुत दवे हुए हैं। ए छह वार; ई-ऐ चार चार वार। यह वह गीत है जिसमे निराला को अँधेरे वन मे न जलाशय दिखाई देता है, न कोई विश्रामस्थल। निराशा की गहराई के अनुरूप है आ का निरन्तर प्रसार।

सुख का दिन डूबे डूब जाय—आराधना के इस गीत में भी दुख की अभिव्यक्ति है, किन्तु यहाँ वेदना की तीव्रता से भाव परिवर्तित होकर दु:स्वप्न के चित्र नही वन गए। दुख का घनत्व कम है; वैसे ही आ की आवृत्ति पहले वाले गीत से—अन्य स्वरों के अनुपात मे—कम है। आ उन्नीस वार; ई दस वार; ए आठ वार; इ छह वार; ओ दो वार।

इससे मिलता-जुलता अणिमा का गीत है—**मैं अकेला**। इसमें भावुकता का अंश काफी है; ऊर्जा और दुख संवेग की मात्रा वैसी नही जैसी **निविड़ विपिन पथ अराल** अथवा **सुख का दिन डूबे डूब जाय** मे। मुख्य स्वर ए है—वीस वार आया है; उसके निकट है आ अठारह वार। ई आठ वार; ऊ-ओ तीन-तीन वार; ऐ एक वार।

देखना चाहिए, 'राम की शक्तिपूजा' के अत्यन्त ओजपूर्ण प्रारंभिक अंश में स्वरों का अनुपात कैसा है। ई ग्यारह वार, ए आठ वार; ओ सात वार; ऊ पाँच वार; औ दो वार। किन्तु ये सव स्वर मिलाकर जितने होते हैं, उनसे संख्या मे अधिक है अकेला आ। 'राम की शक्तिपूजा' की प्रारंभिक अठारह पक्तियों मे इस दीर्घ स्वर की आवृत्ति पैंतीस वार हुई है। निराला के ध्वनि-ठाठ में आ के अन्यतम

महत्त्व का यह अत्यन्त पुष्ट प्रमाण है।

यह भी देखना चाहिए कि अपनी अंतिम कविता लिखते समय निराला में कितना उदात्त तत्त्व बचा था। **पत्रोत्कंठित जीवन का विप बुझा हुआ है**–में युद्ध का वर्णन नहीं है, युद्ध की स्मृति शेप है। शक्तिसाधना के फलस्वरूप दुर्गा राम के वदन मे लीन हो जायेंगी—ऐसा कोई विश्वास नही है। निराला स्थिर त्रासहीन दृष्टि से अपना अंत देख रहे हैं। यहाँ व्यंजनों का घनघोर रोर नही है किन्तु स्वरो की शक्ति देखते ही बनती है। इस कविता में अठारह पंक्तियाँ हैं, उतनी ही जितनी 'राम की शक्तिपूजा' के प्रारंभिक अंश मे। उस अंश मे आ पैंतीस वार आया है; इस अंतिम कविता में सैंतालीस वार। किंतु अनुपात भिन्न है। 'राम की शक्तिपूजा' के अंश मे जितनी वार अन्य दीर्घ स्वर आए है, उतनी वार–या उससे कुछ अधिक वार—आ आया है। किंतु पत्रोत्कंठित आदि पंक्तियों में यदि आ सैंतालीस वार आया है तो अन्य दीर्घ स्वर कुल मिलाकर साठ वार (ए चौवीस वार; ई सत्रह, ऐ वारह; ऊ पाँच; औ दो)। अनुपात वदला हुआ है। फिर भी कोई एक स्वर आ के महत्त्व का मुकावला नही कर रहा; निकटतम प्रतिद्वंद्वी ए से आ की आवृत्ति लगभग दुगुनी है। राम के स्वगत-कथन अथवा भापण की अठारह पंक्तियाँ ली जायँ (**रावण अधर्मरत** से लेकर **हुआ त्रस्त** तक) तो इनमे आ तथा अन्य दीर्घ स्वरों का अनुपात लगभग वैसा ही मिलेगा जैसा **पत्रोत्कंठित** मे है। आ पैंतीस वार; ए तेईस वार; ओ सोलह वार; ऐ आठ वार; ई सात वार; ऊ पाँच वार। 'राम की शक्तिपूजा' के इस अंश मे आ तथा अन्य दीर्घ स्वरों का अनुपात ३५ और ५९ का है; **पत्रोत्कंठित** में यही अनुपात सैंतालीस और साठ का है। **पत्रोत्कंठित** के भावबोध का स्तर राम के स्वगत-कथन के स्तर से मिलता-जुलता है; वैसी ही समानता स्वरों के अनुपात में है।

यह कहना आवश्यक है कि स्वरों की आवृत्ति मात्र से उदात्त स्तर पर काव्य-रचना संभव नहीं होती। कोई वीस-पचीस वार का-का-का लिख दे तो उससे 'राम की शक्तिपूजा' की समकक्ष कविता न रच जायगी। स्वरों का एक ढांचा है; उसमें विभिन्न ह्रस्वदीर्घ स्वरों का वैपम्य और संतुलन दोनों आवश्यक हैं। इस ढाँचे मे व्यंजन कैसे जड़े गये है, इस पर शब्द-ध्वनि का प्रभाव निर्भर है। ये स्वर व्यंजनो से स्वतन्त्र नही, वे व्यंजनों से प्रभावित होते है, उन्हें प्रभावित करते हैं। ऊर्जा की एक ही तरंग में स्वर और व्यंजन वँधे होते है। किन्तु यह स्पष्ट है कि निराला स्वरों की आवृत्ति और वैपम्य से कुछ-कुछ वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करते है जैसा अन्य व्यंजन प्रधान ध्वनिखंडों की आवृत्ति या वैपम्य से।

> मेघ के घन केश
> निरुपमे नव वेश—

यहाँ ए की आवृत्ति आकस्मिक नही।

> बुझे तृष्णाशा विपानल झरे भापा अमृत निर्झर—

यहाँ आ का प्रसार विशेप प्रभाव उत्पन्न करने के लिए है।

घन भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नव जीवन की, ऊँचा कर सिर
ताक रहे है, ऐ विलप्व के वादल !

पहली पंक्ति के वाद ह्रस्व वर्णो के वीच दीर्घ स्वरों का निरन्तर वढता हुआ क्रम विशेष उद्देश्य को सिद्धि करता है, वह अंकुरों के निरंतर उगने और वढने की क्रिया का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत करता है।

पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण...
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण —(गीतिका, पृ. ६७)

इन पंक्तियो में पार करने की क्रिया दीर्घ स्वरों के विस्तार से ध्वनित है।

पुरानी हिंदी के ध्वनितंत्र और आधुनिक हिंदी के ध्वनितंत्र में—जहाँ तक काव्य का सम्वन्ध है—एक महत्वपूर्ण भेद 'औ' के व्यवहार को लेकर है। **शिशिर की शर्वरी, निविड़ विपिन पथ अराल, सुख का दिन डूबे डूब जाय, यामिनी जागी, वर दे वीणावादिनि, मेघ के घन केश, दे मैं करूँ वरण, प्रात तव द्वार पर, नयनों के डोरे लाल** मे औ का सफाया है। अन्यत्र जहाँ आया है, वह अन्य दीर्घ स्वरो की तुलना मे नगण्य ठहरता है। सूरदास मे—अन्य व्रजभापा कवियों मे—औ की भरमार है। रामचरितमानस मे औ का प्रयोग वैसे ही कम है जैसे निराला-काव्य मे। यही नही; कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली आदि मे भी सूरदास तथा अन्य व्रजभापा कवियो की तुलना मे औ की आवृत्ति वहुत कम है। तुलसीदास के भाषा-संस्कार उस व्यक्ति के नही है जिसने वचपन से व्रजभापा मे वोलना-सोचना सीखा हो। इसीलिए उनकी व्रजभापा मे औ की आवृत्ति अस्वाभाविक रूप से कम है जव कि सूरदास में वह स्वाभाविक रूप से, तुलसी की अपेक्षा, अधिक है। कम-से-कम औ के अवमूल्यन मे तुलसीदास और निराला के संस्कार एक-से है और छायावादी काव्य के अनुकूल है। 'कामायनी' के प्रारंभिक आठ पृष्ठों में औ केवल दो वार आया है!

तत्सम-तद्भव

अनेक भारतीय भापाओ में कुछ शव्द सामान्य समझे जाते है, कुछ साधारण, कुछ अछूत। जो शव्द तत्सम कहे जाते है, उन्हे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनमे कुछ लघु आकार वाले है, हजारों साल से भारतीय भाषाओ मे वोले जाते रहे है, लघु आकार

और अत्यधिक व्यवहार के कारण उनका गौरव कम हो गया है। देश, धरती, पर्वत, नदी, नर, नारी, मित्र, शत्रु, वैर, प्रीति, माता, पिता, देवी, बन्धु, समय, वन, जन, धन, मन, दीप, ताप, ज्वर, नीति, कुल, धर्म, आकाश, दिशा आदि ऐसे ही तत्सम हैं जिनके व्यवहार से काव्य विशेष गौरवशाली नहीं होता।

विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है उन शब्दों को जिनमे तीन से अधिक वर्ण हैं, संयुक्ताक्षर हैं, ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में साधारण लोगो को कठिनाई होती है। इनके बाद तद्भव हैं, तत्समों के 'बिगड़े हुए' रूप, बहुत प्रतिष्ठित नही तो अस्पृश्य भी नही। सबसे गये-बीते है देशज जो भारत-यूरोपीय परिवार से अपना सम्बन्ध स्थापित नही कर सकते, जो लोक-व्यवहार में अनिवार्य हैं किन्तु सहृदय काव्य-मर्मज्ञ जिन्हें भरसक अपने से दूर रखते है। इनके अलावा अरबी-फारसी के लोकप्रचलित शब्द है जिन्हे हिन्दी कविता मे रखना रस-विरोधी कार्य माना जाता है। संस्कृत, ब्रजभाषा, आधुनिक हिंदी और उर्दू कविता में शब्दो का व्यवहार कहाँ उचित है, कहाँ अनुचित, इसके अपने नियम हैं। कही ये नियम लिखे गये हैं, कहीं वेलिखे रह गये है किन्तु नियम है अवश्य, निराला इन नियमो का बराबर उल्लंघन करते है। कला के क्षेत्र मे यह उनका क्रान्तिकारी कार्य है।

साहित्य में सबसे पहले खड़ी बोली उर्दू के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। हिंदी कवि उन्नीसवी सदी में गद्य के लिए खड़ी बोली, पद्य के लिए ब्रजभाषा का व्यवहार करते थे। बीसवी सदी में खड़ी बोली ने ब्रजभाषा को काव्यक्षेत्र से निकालना शुरू किया। छायावादी कविता के अभ्युदयकाल मे ब्रजभाषा-खड़ी बोली विवाद ज़ोरों पर था। इस परिस्थिति में कुछ कवि उर्दू की तरफ झुकते थे, कुछ शुद्ध हिंदी की ओर, कुछ ब्रजभाषा-खड़ी बोली की खिचड़ी पकाते थे। कविता मे भाषा का कोई साफ-सुथरा स्थिर रूप नहीं था। निराला के समकालीन और पूर्ववर्ती कवियों के बारे में यह तो कहा जा सकता है कि उन्होने एक शैली छोड़कर दूसरी अपनायी—जैसे हरिऔध ने क्रीड़ा-कला-पुत्तली-पद्धति त्यागकर चोखे चौपदे लिखे—किन्तु उनके बारे मे यह नही कहा जा सकता है कि एक ही शैली में उन्होंने विरोधी स्वभाव के शब्दों का प्रयोग किया हो अथवा एक ही कविता में भिन्न शब्दावली के व्यवहार से नाटकीय वैषम्य उत्पन्न किया हो। उर्दू मे सागर निजामी और फिराक ने बहुत से उन हिन्दी शब्दो का व्यवहार किया है जो औसत उर्दू कविता के लिए मतरूक हैं। किंतु सागर और फ़िराक का प्रयत्न यह है कि उर्दू पद-रचना मे हिंदी के वही शब्द डाले जायँ तो उसमें खप जायँ, जिनसे शैली की एक-रसता भंग न हो। निराला जहाँ विरोधी स्वभाव के शब्दों को मिलाते हैं, वहाँ उनकी कला भिन्न स्तर की है।

चमत्कृत और अलंकृत, चाह और आह—ये विरोधी स्वभाव के शब्द है। निराला इनका व्यवहार एक ही कविता मे शैली-भेद के लिए करते हैं।

रश्मि-चमत्कृत स्वर्णालंकृत नवल प्रभात—('विस्मृत भोर', परिमल, पृ. १४०)

यह शैली मन की वह स्थिति प्रकट करती है जिसमें संसार बहुत सुहावना मालूम होता है। इससे भिन्न स्थिति वह है जिसमें यथार्थ जगत् बहुत ही कष्टप्रद है। इसके

अनुकूल दूसरी शैली है :

मेरी चाहें बदल रही नित आहों में
क्या चाहूँ और ?

दुख मे कराहती हुई आवाज स्वर्णालंकृत प्रभात की झूठी भव्यता से तीव्र वैषम्य प्रकट करती है। निराला का शैली-भेद यहाँ आदर्श और यथार्थ में तीव्र भेद करने के लिए है।

'शरत्पूर्णिमा की विदाई' मे इसी तरह के शैली-भेद से निराला कही तो शरत् के प्रति आत्मीयता, बोलचाल की स्वाभाविकता प्रकट करते है, कही प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की तीव्रता। कविता शुरू होती है बोलचाल के सामान्य स्तर से : **बदी विदाई में भी अच्छी होड़**। बीच-बीच में ऋतुओं की रानी और विजयमुकुट जैसी 'हिन्दी' शब्दावली के साथ-निराला 'उर्दू' के शब्दों का व्यवहार करते है : **देख लूँ भर नजर, क्या एक रोज के लिए तुझे आना था ?** और कहा, **बस बहन तुम्हारी सूरत कैसी भोली !** इसके बाद—

मन्द तरंगो की यमुना का काला-काला रग···
तेरे मुख-विकसित-सरोज का प्रेमी एक दिगन्त—

इस तरह की मन्द्रघोष की पदावली ले आते है।

शिवाजी के पत्र मे निराला ने बड़ी चतुराई से कही 'हिन्दी', कही 'उर्दू' पदावली का ठाठ बाँधा है। शैली का यह भेद पत्र-लेखक शिवाजी के मन की बदलती हुई दशाओं से जुड़ा हुआ है। खून मे रँगे हुए कपड़ो का ध्यान करने से दुख का भाव :

लालिमा क्या है कही कुछ ?
भ्रम है वह,
सत्य कालिमा ही है।

इसके बाद अचानक क्रोध का भाव :

दोनो लोक कहेगे,
होता तू जानदार,
हिन्दुओं पर हरगिज तू
कर न सकता प्रहार।

इसी तरह आगे। पहले जयसिंह की पीठ सहलाते हुए :

सागराम्बरा भूमि
क्षत्रियो को जीतकर,
विजय सिंहासन-श्री
सौंपता ला तुम्हें मैं—
स्मृति-सी निज प्रेम की।

उसके बाद फिर क्रोध में फटकारते हुए :

धोखा दिया है यह
उसने तुम्हें क्या ही ! —
दगावाज़, लाज जो उतारता है
मरजाद वालों की,
खूब वहकाया तुम्हे !

इस तरह भिन्न स्वभाव की पदावली से निराला एक ही कविता में शैली-भेद उत्पन्न करते है। इसके अलावा वह शैली-भेद उत्पन्न किए विना, एक ही शैली मे विरोधी स्वभाव के शब्द रखकर—संगीत में विवादी स्वर की तरह—ध्वनि या भाव को उभारते हैं। 'संध्या सुन्दरी' में एक जगह उन्होने वड़े साहस से 'सिर्फ़' शब्द का प्रयोग किया है। कहाँ छायावादी उत्ताल तरंगाघात, कहाँ जरा-सा सिर्फ़ !

उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रवल में—
क्षिति में—जल मे—नभ में —अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा चुप चुप चुप
है गूँज रहा सब कही—
और क्या है ? कुछ नहीं।

सिर्फ़ के वाद शैली वदलती है, दो शैलियों मे भेद है, किन्तु जिस पंक्ति मे सिर्फ़ आया है, उसमें वह अव्यक्त और शब्द के साथ है, विरोधी स्वभाव का है। कला इस वात में है कि निराला ने उसके विरोधी स्वभाव से पूरा फायदा उठाकर चारो ओर फैली हुई शान्ति का प्रसार—नदी और समुद्र की ध्वनियो के विपरीत—सिर्फ़ के साथ 'चुप' के संयोग से पूरी तरह व्यक्त कर दिया है।

'निवेदन' (**परिमल**, पृ.३२) मे निराला ने लिखा,

दाग जव मिट जाएगा
स्वप्न ही तो राग वह कहलाएगा ?

यहाँ दाग का स्वभाव वही नही है जो स्वप्न और राग का है। निराला ने विरोधी स्वभाव का शब्द रखकर राग के साथ जुड़े हुए विराग की ओर सकेत किया है। दाग़ के संपर्क से राग की माधुरी थोड़ा विपाक्त हो गई। विवाह की परिधि से मुक्त जिस तरह के प्रेम का चित्रण वह कर रहे है, उसका थोड़ा विपाक्त होना स्वाभाविक भी है।

'सरोज-स्मृति' मे निराला ने लिखा है :

यह लोक-रीति
कर दूँ पूरी, गो नही भीति
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार।

पंक्तियों मे जैसी शब्दावली है, 'गो' का स्वभाव उससे उल्टा है। निराला जिस विद्रोह-भावना का चित्रण कर रहे हैं, 'गो' का अप्रत्याशित काव्य-रीति-विरोधी व्यवहार उसके उत्कर्ष में सहायक होता है।

स्वभाव की भिन्नता हिन्दी-उर्दू शब्दों में ही नही है, तत्सम-तद्भव अथवा हिन्दी के शब्दो मे भी है। **विजन वन-वल्लरी**—यह एक तरह की पदावली; **स्नेह-स्वप्न-मग्न**—यह भी उसी तरह की दूसरी पदावली। इनके बीच मे **सुहाग-भरी**। सुहाग वैसी प्रतिष्ठा वाला शब्द नही है जैसी प्रतिष्ठा वल्लरी और स्वप्न को प्राप्त है। फिर भी ठेठ हिन्दी है, बड़ा मधुर है। निराला **विजन-वन** की सुसस्कृत पदावली के बीच **सुहाग** के प्रयोग द्वारा जुही के साथ बड़ा आत्मीय भाव स्थापित कर लेते है। 'जागृति मे सुप्ति थी' कविता में **सुहाग** का ऐसा ही प्रयोग फिर हुआ है :

> लाज से सुहाग का—
> मान से प्रगल्भ प्रिय प्रणय निवेदन का
> मन्द हास-मृदु वह
> सजा जागरण जग।

शेप शब्दावली मे सौन्दर्य की उदात्त भंगिमाएँ हैं, उनके वीच मे लाज और सुहाग उस सौन्दर्य के सरस आत्मीय पक्ष की ओर संकेत करते हैं।

निराला ने गीत लिखा—**रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी**। **रूखी** निहायत रूखा शब्द है; **वासन्ती** वैसा ही सरस, कवित्वपूर्ण शब्द। निराला दो विरोधी स्वभाव के शब्द एक ही पंक्ति में रखकर उस परिवर्तन का चित्र खीच रहे हैं जो वसन्त के आने पर प्रकृति में सम्भव होता है।

आधुनिक भारतीय भापाओ के अनेक कवि तत्सम शब्दावली का सहारा लेते है कोमलकान्त पदावली रचने के लिए या फिर उदात्त, गंभीर शैली के लिए। निराला भी इन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति के लिए तत्सम शब्दों का व्यवहार करते है किन्तु इनमें दूसरा उद्देश्य ही प्रधान है, पहला गौण है ; सन् '२० से '३० तक की रचनाओ मे कोमलकान्त पदावली का आग्रह कुछ अधिक है; आगे यह आग्रह क्षीण होता गया है। जो कोमल और मधुर है, उसे भी उदात्त की ओर ले जाने का प्रयत्न अधिक है। सन् '३० से पहले भी निराला जहाँ-तहाँ तत्सम शब्दों का व्यवहार कर्कश और परुप भाव-व्यंजना के लिए करते है जैसे **लक्ष-वक्षःस्यलागंलित द्वार**। तत्सम शब्दो से निराला कई तरह की शैली रचते है। 'वासन्ती' मे कोमल-कान्त, 'तुम और मैं' में उदात्त-गंभीर, 'विस्मृत भोर' में कोमल-गंभीर और कर्कश का नाटकीय वैपम्य।

> पुलकाकुल अलि-मुकुल-विपुल हिलते तरु-पात—

यह कोमलकान्त पदावली है।

> जहाँ नहीं कोई भय बाधा, कोई वादविवाद—

यह मन्द्र-गंभीर शैली है।

> जहाँ हाय, केवल श्रम, केवल श्रम,
> केवल श्रम, कर्म कठोर।

यह परुप और कर्कश शैली। **मेरी चाहें वदल रहीं नित आहों में**—यह परुपता-

हीन दुख का सहजभाव, इसकी शैली अलग। 'विस्मृत भोर' में निराला इस तरह के शैलीभेद से प्रकृति की छलना, मन की आकांक्षाएँ, वास्तविकता का कटु अनुभव—इन विरोधी भावों की व्यंजना करते हैं।

निराला और अन्य छायावादी कवियों मे अन्तर यह है कि निराला छायावादी कविता के अभ्युदयकाल मे ही कोमलकान्त पदावली को संशय की दृष्टि से देखने लगे थे। 'विस्मृत भोर' में इस पदावली पर प्रच्छन्न व्यंग्य है। क्या कहने हैं उस **स्वर्णालंकृत नवल प्रभात** के जहाँ वास्तविक जीवन मे अंधकार और कठोर परिश्रम है।

निराला-काव्य मे तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिकाधिक ध्वनि और भाव के उदात्तीकरण के लिए होता है। जहाँ कोमल और मधुर भाव है, वहाँ भी प्रवृत्ति उदात्तीकरण की है :

अलस पंकज दृग अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी—

इस तरह की पंक्तियों मे। उल्लेखनीय है कि निराला ऐसी रचनाओं में गौरवपूर्ण तत्सम शब्दावली के साथ साधारण शब्दो का बड़ा ही असाधारण प्रयोग करते है। 'तागना' हिन्दी की सामान्य नीरस क्रिया है। निराला तरुण-अनुरागी के साथ उसे भी जमा देते है :

वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में तागी।

नेग, नेगी शब्द बड़े सामान्य हैं। **वसन वासंती लेगी**—इस गीत में निराला ने नेगी शब्द का व्यवहार उदात्त स्तर पर किया है :

गरलामृत शिव आशुतोप-फल
विश्व सकल नेगी।

निराला ने गंभीर भाव व्यक्त करने वाला गीत लिखा :

शत शत वर्पों का मग
हुआ पार देश का, न
हुए प्राण सार्थक जग। (गीतिका, पृ. ७९)

जग और **मग** से विलकुल विरोधी स्वभाव का शब्द है **रग**। छायावादी कविता मे ऐसे शब्दो की खपत वहुत कम है। निराला ने लिखा :

शक्तिहीन तन निश्चल,
रहित रक्त से रग-रग।

रग मे जो शक्ति नही है, वह उसे निराला ने संदर्भ से दी है। **रग** का ऐसा ही प्रयोग अन्य गीत में है :

रँग देता प्रसुप्त जग के रग
गीत-जागरण मञ्जुल अमरण। (गीतिका, पृ. ४५)

रग के रँगने का एक नया मुहावरा ही निराला ने गढ़ लिया। अत्यन्त अप्रत्याशित प्रसंगो में वह इस मुहावरे का प्रयोग करते है। 'तुलसीदास' में—रग-रग से

रँग रे रहे जाग स्वप्नोत्पल। (वंद ८०) पुन :

प्राणो के पथ पावन,
रँगो रेणु के रँग रग। (अर्चना, पृ. १४)

हरिण-नयन हरि ने छीने हैं।
पावन रँग रग-रग भीने है। (उप., पृ. ६०)

रग की तरह नस शब्द का प्रयोग भी उन्होने किया है किन्तु उतनी सफलता से नही :
नस ने रसवशता तोली है। (उप., पृ. ६५)

निराला का एक प्रिय शब्द **मोगल** है। मुगल को वह **मोगल** बनाकर उसकी ध्वनि को उदात्त कर देते हैं। शिवाजी के पत्र मे इस **मोगल** रूप का प्रयोग अनेक वार हुआ है :

मोगल दल विगलित वल
हो रहे है राजपूत···
मोगल-सिहासन के—
औरंग के पैरों के
नीचे तुम रक्खोगे,
काढ़ देना चाहते हो दक्षिण के प्राण—
मोगलों को तुम जीवदान।

मोगल की ध्वनि के वल पर निराला ने उसे सर्वत्र तत्सम पदावली के समकक्ष रखा है। 'तुलसीदास' मे उसका प्रयोग सवसे प्रभावशाली है :

मोगल दल वल के जलद यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान।

यहाँ मोगल-पठान जैसे विरोधी स्वभाव के शब्दो को निराला ध्वनि की एक ही तरंग मे वांधे हुए ऊपर उठा लेते हैं।

मुगल या मोगल से भी तत्सम-स्वभाव का अधिक विरोधी शब्द है **मशाल**। कहाँ अम्वुधि, भूधर, अप्रतिहत, कहाँ मशाल ! निराला ने इस शब्द के साथ जुड़ा हुआ निम्न भाववोध तराश कर अलग रख दिया है; मशाल में नया प्रकाश भर दिया है :

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।

तत्सम शब्दावली मे विरोधी स्वभाव, विरोधी कुलगोत्र वाले शब्द का ऐसा सफल प्रयोग निराला मे भी अन्यत्र नही है। इससे मिलता-जुलता प्रयोग परिमल की 'वह' कविता मे है। यहाँ भी संयोग से चित्र अंधकार में जलती हुई वस्तु का है :

जलती अंधकारमय जीवन की वह एक शमा है।

कितना अन्तर है इस अंधकारमय जीवन और 'राम की शक्तिपूजा' की अमानिशा के अंधकार मे ! उतना ही अन्तर है शमा और मशाल मे, 'वह' से लेकर 'राम की शक्तिपूजा' तक निराला की कला के विकास में।

विरोधी स्वभाव मशाल और अम्बुधि का ही नही है, उगलता और अमानिशा का भी है :

है अमानिशा उगलता गगन घन अन्धकार।

यहाँ उगलता, निशा और अन्धकार के संसर्ग से शक्तिशाली हो गया हो, ऐसी बात नही है। पूरी पंक्ति मे उसकी भूमिका प्रमुख है। अन्धकार की सारी सक्रियता उगलता के अर्थ-प्रसार पर निर्भर है : निराला यहाँ हिन्दी क्रिया से संस्कृत-शब्दो को नई शक्ति दे रहे है। 'तुलसीदास' मे जो सबसे जोरदार बंद है, उसमे हिन्दी क्रियाओ का यही महत्त्व है।

कल्मपोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार—
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

चेतना में कल्मष का नाश करने की जितनी शक्ति है वह उमड़े क्रिया ही से सार्थक होती है। बंद के पहले हिस्से मे छायातम तरने का प्रयास, दूसरे हिस्से में भारत का भ्रम हरने का परिणाम—दोनों मध्यस्थित क्रिया उमड़े से सम्बद्ध है। यहाँ भी निराला हिन्दी क्रिया द्वारा तत्सम-शब्दों को नयी भावशक्ति देते है।

'राम की शक्तिपूजा' के प्रारम्भिक अंश मे निराला ने क्रियापद हटा दिए है; मूर्तिविधान की सघनता के लिए कार्यो का [illegible] किया है। 'तुलसीदास' की प्रारंभिक तीन पंक्तियों मे भी क्रियापद हटा दिए गए है। इसे अपवाद मानना चाहिए। साधारणतः निराला हिन्दी क्रियाओं द्वारा तत्सम शब्दों के परपरागत प्रयोग को निरन्तर बदलते रहते है। जो लोग संस्कृत शब्दावली के प्रेमी है, उसका अर्थ प्राचीन पद्धति से करते है, उन्हे निराला-काव्य में संस्कृत शब्दों का प्रयोग बहुत जगह असंस्कृत लगेगा। असंस्कृत लगने का एक कारण हिन्दी क्रियाओं द्वारा तत्सम शब्दों की अर्थवत्ता में परिवर्तन है।

राम-रावण का समर अपराजेय माना जा सकता है किन्तु वह ज्योति के पत्र मे (अथवा ज्योति के पत्र पर) लिखा कैसे रह गया ? कौन लिखने आया था, काहे से लिखा था ? निराला को यह ज्योति का पत्र पढ़ने को कहाँ मिला ?

महोल्लास, आकाश सुन्दर शब्द है। उल्लास के मारे आकाश का विकल होना भी मान लिया। किन्तु उल्लास से आकाश बिंधता कैसे है ? बिंधना बड़ा सामान्य शब्द है। आकाश को बिंधते दिखाकर कवि ने जैसे महोल्लास और आकाश का गौरव ही मिटा दिया है !

उगलता शब्द वीभत्स है। अमानिशा और गगन के साथ उसका प्रयोग अनुचित माना जायगा। दिशा का ज्ञान खो रहा है। कौन इस ज्ञान को खो रहा है ? अस्पष्ट ! राम को संशय हिला रहा है; क्रिया का प्रयोग सही है किन्तु हिलाना—

हिलाते अधर प्रवाल की तरह —कुछ हास्य-व्यंजक क्रिया है। संदर्भ के अनुपयुक्त है। रावण-जय-भय रह-रह जग उठता है। भय कैसे जगता है ? रह-रहकर उसका जगना क्या होता है ? क्या बीच मे सो जाता है ?

हार मानना, सिहरना, लहराना, याद आना, पछाड़ खाना, टूटना, फड़कना, बुझना, लखना, हँसना आदि क्रियाएँ तत्सम शब्दों के गौरव से कहाँ तक मेल खाती है ?

यदि कोई इस तरह की आपत्ति करे तो उससे यह निष्कर्ष तुरंत निकाला जा सकता है कि निराला ने संस्कृत शब्दो का प्रयोग जिस कलात्मक स्तर पर किया है, वह संस्कृत कवियो के स्तर से भिन्न है। निराला अपनी कविता के लिए नयी भाषा गढ़ते है, इसके लिए वह संस्कृत की शब्द-संपदा का सहारा लेते हैं किन्तु न तो उस पर पूरी तरह निर्भर रहते है, न ही उसका उपयोग करने मे संस्कृत कवियो की अभिरुचि का अनुसरण करते है।

निराला की समास-रचना अद्भुत है। एक-एक समास से वह पूरे वाक्य का काम लेते है। 'राम की शक्तिपूजा' में **तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर** आदि पहले समर के विशेषण रूप में आते है, फिर समर पीछे छूट जाता है, प्रत्येक समास अपने मे पूर्ण वाक्य की तरह युद्ध का खंड-चित्र प्रस्तुत करता है। **भेद-कौशल-समूह** में कौशल-समूह के बाद भेद को रखना अधिक व्याकरण-सम्मत होता। 'तुलसीदास' मे दिङ्मंडल के साथ तमस्तूर्य कष्टकर समास है।

निराला जहाँ केवल तत्सम शब्दो को जोड़ते है, वहाँ एक तरह का उपद्रव है; जहाँ वह किसी हिन्दी क्रिया से तत्सम का गठबंधन कर देते है, वहाँ उपद्रव दूसरे ढंग का है। 'वासन्ती' कविता (**परिमल**, पृ. ६९) मे उन्होने वर्ष के लिए लिखा है: **आया, हँसता मुख आया।** **हँसता** के साथ **मुख** जोड़कर समास बनाया। **यामिनी जागी** मे **अनुरागी** क्रिया से तरुण को बाँधा है: **तरुण-अनुरागी। कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना**—इस गीत मे एक पक्ति है :

अनायास ही ज्योतिर्मय-मुख
स्नेह-पाश-कसना।

स्नेह-पाश के साथ कसना क्रिया जोड़कर नये ढंग की समास-रचना। **बुझे तृष्णाशा विषानल**—इस गीत में—**ओस के धोये अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण-चूमे।** ऊपर के उदाहरणों के अनुरूप ही चूमे क्रिया के साथ किरण को जोड़कर समास रचा गया है।

सारांश यह कि निराला-काव्य में तत्सम शब्दो का व्यवहार निरन्तर औचित्य के नियमो का उल्लंघन करता है और इस उल्लंघन से सामान्यतः किसी-न-किसी कलात्मक लक्ष्य की सिद्धि होती है।

कवित्वपूर्ण शब्दावली

हिन्दी में एक शब्द है **मृदु**। पुरानी ब्रज और अवधी कविता मे इसका व्यवहार हुआ है, आधुनिक बँगला में भी। यद्यपि यह छोटा-सा शब्द है किन्तु छायावादी कवि उसके माधुर्य पर मुग्ध थे। कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा से अलग करने के लिए वे इसका प्रचुर व्यवहार करते हैं। भाषा को कवित्वपूर्ण बनाने का यह प्रयास निराला में भी है, विशेष रूप से उन कविताओं मे जो भावुकता के स्तर पर रची गई हैं। **परिमल** में **मृदु** शब्द का व्यवहार बहुत हुआ है। संज्ञा के पहले तो वह उसे रखते ही हैं, संज्ञा के बाद भी उसे रख देते हैं और समास बनाते हैं। **मृदु छन्द, मृदु कंपन, मृदु उद्गार, मृदु-मर्मर, मृदु मुखड़ा** के अलावा **शयन-मृदु** जैसे पद भी हैं। वह उसे विशेषण के साथ भी जोड़ते है : **मृदु-मन्द, मृदु मधुर, मृदु-चञ्चल** आदि। **झूम झूम मृदु गरज गरज घन घोर** मे मृदु से वह क्रिया को प्रभावित करते हैं। बहुत जगह यह भरती का शब्द है। जहाँ छन्द के निर्वाह के लिए दो मात्राओं या दो वर्णों वाले शब्द की जरूरत हुई, निराला ने **मृदु** रख दिया। किन्तु कहीं-कहीं उसका बड़ा सार्थक प्रयोग भी हुआ है। 'तुलसीदास' मे उन्होने कोमल, सुखद किन्तु ह्रासमान संस्कृति का चित्रण करते हुए लिखा है :

> प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पन्द,
> लघु गति, नियमित-पद, ललित-छन्द।

ऐसा लगता है कि कोमलकान्त पदावली के धनी छायावादी कवियों को ध्यान में रखकर उन्होने ये पंक्तियाँ लिखी हैं। मृदु शब्द यहाँ कोमलकान्त पदावली की लघु-गति और लालित्य का प्रतीक है; उसके प्रयोग में प्रच्छन्न व्यंग्य है।

मृदु से मिलते हुए **मृदुल** और **मञ्जुल** है जिनका व्यवहार निराला तथा अन्य छायावादी कवि भाषा को कवित्वपूर्ण बनाने के लिए करते हैं। यह कोई विशुद्ध शब्द-चयन की समस्या नही है; इसका सम्बन्ध छायावादी कवियों के भावबोध से है। जहाँ वे यथार्थ से कतराते हैं, कल्पना मे ऐसी दुनिया रचते हैं जो झूठे सपनों से उनका मन बहलाती है, वहाँ ऐसी शब्दावली का प्रयोग भी अधिक है। **प्रथम चुम्बन, प्रथम वसंत, प्रथम प्रकाश** की प्राथमिकता बँगला-हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी कवियों को बहुत आकर्षित करती रही है, निराला ने भी इस **प्रथम** का व्यवहार बहुत किया है। **मसृण, सजल, चकित, प्रिय, अलि, सखि, मर्मर, मन्द, गन्ध, अन्ध, टलमल, कली, किसलय, पल्लव, नव, तव, विमल, नवल, मंजु, कुंज, शुचि, उन्मन, श्लथ, अतीत, कनक, प्रभात, स्मृति, वीणा, मुग्ध, लुब्ध, अधर, नूपुर, किरण, ज्योत्स्ना, वेदना, कम्पन, तरंग, प्राण, ज्योति, गात, स्वप्न, रश्मि, छवि, उर, मलय, पथ,** शतदल आदि छायावादी कविता में बार-बार सुनाई देने वाले ऐसे शब्दों की लम्बी सूची बनाई जा सकती है। **मन्द-गन्ध-अन्ध** की आवृत्ति **शीतल-मन्द सुगन्ध** की रूढ़ि जैसी है। **अलि** और **सखि** शब्दों का व्यवहार स्त्रैण भावों का द्योतक है। अन्य शब्द

कोमलता से अत्यधिक मोह, दिवा-स्वप्नों में डूबे रहने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते है। कलियो का खुलना, नर या नारी के शरीर का श्लथ होना, कलियों का थर-थर काँपना, रश्मि द्वारा शरीर का चूमा जाना, समीर का बहना, छवि का जागना, परिचय खोलना, जीवन भरना, जीवन को बाँधना आदि ऐसे व्यापार हैं जिनसे भाषा के व्यावहारिक स्तर पर सामान्य जन अपरिचित है। इन क्रियाओं के व्यवहार का उद्देश्य भी भाषा को कवित्वपूर्ण बनाना है।

छायावादी कविता की शब्दावली अपने मे खराब नहीं है किन्तु यदि बार-बार एक ही तरह की भावना जगाने के लिए एक-से सन्दर्भो मे उसका प्रयोग होगा तो वह अवश्य रूढ और अशक्त हो जायगी। निराला ने इस शब्दावली का प्रयोग परिमल और गीतिका मे अधिक किया है, बाद को कम। प्रसंग बदलकर वह निर्जीव-से लगने वाले शब्दो को नई शक्ति दे सकते है, यह उनकी कला की विशेषता है।

पुरानी कविता मे पल्लव शब्द का प्रयोग कम हुआ है किन्तु तुलसीदास ने लिखा था :

वर दन्त की पंगति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की।

निराला की ध्वनि-संरचना इस पक्ति के मन्द्रघोष से मिलती-जुलती है। अधर-प्रवाल से अधर पल्लव अधिक सार्थक है। निराला ने पल्लव की कोमलता मिटाकर उसे झुलसे हुए पत्र का समानार्थी भी बना दिया है :

विकल डालियो से
झरने पर ही है पल्लव-प्राण। (परिमल, पृ. ३९)

अन्यत्र पल्लव-दृग, पल्लव-पर्यङ्क आदि मे उन्होंने पल्लव की कोमलता का ध्यान रखा है।

एक निरर्थक-सा शब्द है—टलमल।

वृन्त पर टलमल उज्ज्वल प्राण—(परिमल, पृ.६२)
रूप राशि मे टलमल टलमल—(गीतिका, पृ. ३२)

यह ठेठ छायावादी ढंग का प्रयोग है। किन्तु 'सरोज-स्मृति' में निराला ने इसका प्रयोग उदात्त स्तर पर किया है।

उमड़ता ऊर्ध्व- को कल सलील
जल टलमल करता नील नील।

यहाँ फिर भी टलमल का सम्बन्ध सौन्दर्य से है। 'राम की शक्तिपूजा' मे निराला ने उसका प्रयोग भयप्रद परिस्थिति के चित्रण में किया है :

लौटे युगदल। राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल।

अद्भुत प्रयोग है!

प्राण और तरंग निराला के प्रिय शब्द है। उदात्त स्तर पर इनका प्रयोग दे मैं करूँ वरण—गीत मे है :

प्राण-संघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग है।

इसी तरह शतदल का बड़ा समर्थ प्रयोग 'तुलसीदास' के आरम्भ में है; और 'सरोज-स्मृति' में—

हों भ्रष्ट शीत के से शतदल

यहाँ भी शतदल का प्रयोग मार्मिक है।

निराला के अनेक प्रिय शब्द हैं जिनका प्रयोग वह एक से अधिक बार करते हैं। देखना यह चाहिए कि इनका प्रयोग सबसे कलापूर्ण कहाँ हुआ है। ऐसा एक प्रिय शब्द है गहन। 'जुही की कली' में मलयानिल उपवन-सर-सरित के साथ गहन-गिरि-कानन भी पार करता है। गहन शब्द से रास्ते की कठिनाइयों की ओर हल्का-सा इशारा है। 'वासन्ती' मे जिन धाराओ से निराला ने भाषाओ की तुलना की है, वे गहन विपिन में गिरितट काटती है। परिमल की पहली कविता में गहन अंधकार से सम्बद्ध है: तम-गहन-जीवन घेर। 'गीतिका' में एक जगह नारी और कली के लिए लिखा है:

यह जैसी वैसी ही निर्जन
नभ में गहन गड़ी। (पृ. ४)

निर्जन वन और शून्य आकाश से गहन का संसर्ग यहाँ भी है। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने गहन भाव की चर्चा की है। अणिमा के गीत मे इसका सबसे सफल प्रयोग है: गहन है यह अंध कारा। अंधकार से गहन का सम्बन्ध छूटा नही है किन्तु यह अँधेरा वन और आकाश का नही, समाज का है।

ऐसे ही राग शब्द उन्हे प्रिय है।

दाग़ जब मिट जाएगा
स्वप्न-ही तो राग वह कहलाएगा? (परिमल, पृ. ३२)

प्रेम का राग सपना हो जायगा। राग शब्द की ध्वनि खुली हुई है, अर्थ मुँदा हुआ है।

राग-अमर! अंबर में भर निज रोर। (उप., पृ. १४८)

राग पर बलाघात; ध्वनि और अर्थ दोनों मुखर है:

व्योम और जगती के राग उदार! (उप., पृ. १५५)

राग-अमर की तुलना में बलाघात हल्का है। यह राग अधिक कोमल है:

जननि, दुख-हरण पद-राग-रञ्जित मरण।

यह दूसरा राग है किन्तु जैसी गहराई इस राग में है, वैसी बादल-राग मे भी नही।

कमल के पर्यायवाची शतदल, उत्पल, पंकज आदि अनेक शब्दों का प्रयोग निराला ने किया है। 'बादलराग' (६) मे पंक पर विप्लव का जल बरसाने के बाद निराला ने कमल के लिए जलज शब्द का प्रयोग किया है। उनका ध्यान पंक से अधिक जल पर है। किन्तु गीतिका में उन्हें पंक से पंकज का सम्बन्ध चमत्कारी लगा:

स्नेह से पंक-उर
हुए पंकज मधुर (पृ. १८)

स्नेह की शक्ति का प्रदर्शन **पंक-उर** के **पंकज** बनने में है। इसी तरह **प्रात तव द्वार पर**—इस गीत मे उत्पल का प्रयोग सार्थक है : **लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात।** जो **उपल** थे, वही खिलकर मानो **उत्पल** बन गए। **उत्पल** और **उपल** की समानता निराला के मन मे यह गीत लिखने से बहुत पहले से थी। सन् '२४ की 'उद्बोधन' कविता मे उन्होंने इस समानता को लक्ष्य करके लिखा था :

देख सामने, बना अचल उपलो को उत्पल, धीर !
(अनामिका, पृ. ६८)

यहाँ पदयोजना मे **उत्पल-उपल** का प्रयोग बहुत कलात्मक नही है। निराला इन दो शब्दों की समानता को भूलते नही है, वह समानता मन के किसी कोने में पड़ी हुई क्रमशः संवर्धित होती रहती है। **प्रात तव द्वार पर** के नवीन सन्दर्भ में वह पूरी शक्ति से उभर आती है।

निराला का एक प्रिय शब्द है **अराल**। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' के आरंभ मे सौन्दर्य की उदात्त भंगिमा के चित्रण में इसका प्रयोग हुआ है :

वीक्षण अराल—
बज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छंद ताल।

भय का व्यापक प्रभाव दिखाने के लिए **अर्चना** में इसका बड़ा सफल प्रयोग हुआ है : **निविड़ विपिन पथ अराल।**

एक बड़ा साधारण-सा शब्द है **दिन**। तत्सम होने पर भी अत्यधिक व्यवहार के कारण अप्रतिष्ठित हो गया है :

ये दुख के दिन
काटे है जिसने—(अर्चना, पृ. ६२)

बड़ी सादगी और ताकत है **दिन** में। वैसे ही—**सुख का दिन डूबे डूब जाय**—समर्थ प्रयोग है।

भारत प्रकाशमय है। इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए निराला ने **भारत के नभ का प्रभापूर्य** पंक्ति लिखी थी। प्राण अभौतिक, अगोचर नही, भौतिक शक्ति है। इसलिए लिखा :

प्राण-संघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं।

निराला ने संसार सागर को शक्ति का सागर मानकर प्राण शब्द का प्रयोग किया है। 'तुलसीदास' में चेतना को वह शक्ति मानते है, उसकी ऊर्मियाँ देखते है, उन्ही ऊर्मियों के प्राण पर लिखा है' **चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम**। इस तरह निराला-काव्य में कुछ विशेष शब्दों के व्यवहार का कारण उनका दार्शनिक चिन्तन है। 'राम की शक्तिपूजा' में—

उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार।

यह वैसा ही शक्ति का सागर है जैसा **गीतिका** में प्राण संघात का सिन्धु।

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आए
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा। (**अणिमा**, पृ. १४)

लगता है, करुणा के साथ तुक मिलाने के लिए निराला ने अरुणा लिख दिया है किन्तु **अरुणा** शक्ति के कल्याणमय रूप की द्योतक है, इसलिए सार्थक है। **अर्चना** के आरंभ में जो देवी नयनो से करुणा बरसाती है, वह भी अरुणा है : **उसकी सहज साधिका अरुणा**। यहाँ भी अरुणा का प्रयोग सार्थक है।

निराला ने जिस तरह की काव्यभाषा गढ़ी है, उसके अपने नियम हैं। कई जगह शब्द-चयन इन नियमों को तोड़ता-सा लगता है। 'सरोज-स्मृति' मे **ऊनविंश** अस्वाभाविक लगता है, कविता के आरंभ की काफी पंक्तियाँ प्रयास से गढ़ी हुई जान पड़ती हैं। **दृक्पात, तूर्ण-चरण** जैसी शब्द-योजना खटकती है। 'वनवेला' मे—**विश्व के प्रणय-प्रणयिनियों कर**—पंक्ति में ध्वनि या अर्थ का निर्वाह निराला के सौन्दर्य-बोध के अनुरूप नहीं है। **अर्चना** (पृ. ६३) में वणिक की 'पणिकता' का उल्लेख अर्थ की दृष्टि से सही है, ध्वनि-विचार से नही।

'तुलसीदास' में निराला ने **वशंवद** का प्रयोग किया है (बंद ७)। **अर्चना** (पृ. ६६) के एक गीत में इसी शब्द का फिर प्रयोग किया है, अन्य गीत (उप., पृ. ६१) मे **अवशंवद** का। एक जगह **आराधना** (पृ. ८२) में भी इसका प्रयोग है। ध्वनि या अर्थ की दृष्टि से यह कोई बहुत सफल प्रयोग नही मालूम होता। **आराधना** मे **अक्षत-पश्चय, मरणि-पाशि, समाश्वासि, अर्चना** में **तमस्तरिता, तपश्चरिता, ईरण** आदि निराला-काव्य के शब्द संसार मे अजनबी-से लगते हैं।

निराला ने **दृग** शब्द का बहुत प्रयोग किया है। **अलस-पंकज दृग** मे सफल प्रयोग है। 'राम की शक्तिपूजा' में—**झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों**—**दृग** लोक-व्यवहार में असामान्य होने से देवी के संदर्भ में सार्थक है। **खिच गए दृगों में सीता के राममय नयन**—**दृग** राम के है, **नयन** सीता के। शक्ति और कोमलता का वैषम्य है। किन्तु **दृगों की कलियाँ नवल खुलीं**, यहाँ **दृग** अशक्त है। **दृग-दृग को रंजित कर**—(**गीतिका**, पृ. ८१) प्रयोग रूढ़ है, भाषा को कवित्वपूर्ण बनाने के लिए है। अंतिम पंक्ति में उसकी आवृत्ति—**दृग-दृग की बँधी सुछवि**—अनपेक्षित है। इसी गीत में **दिक्कुमारिका-पिक-रव** ध्वनि-विचार से सार्थक नहीं है। निराला **पिक** शब्द का प्रयोग भी अकसर करते है। **पिक-ध्वनि** उन्होने पुस्तकों में पढी है, कोयल के बोल बागों में सुने है। **मधुप** और **भौंरे** मे भी ऐसा ही अन्तर है।

मधुप-निकर कलरव भर,
गीति-मुखर पिक-प्रिय-स्वर—(**गीतिका**, पृ. ७)

इससे तुलनीय है :

कुञ्ज कुञ्ज कोयल बोली है। (अर्चना, पृ. ६५)

और

फूटे हैं आमों में बौर,
भौर वन वन टूटे हैं। (उप., पृ. ३३)

जहाँ यथार्थ बोध में गहराई है, वहाँ पिक और मधुप छूट जाते हैं।

निराला कई जगह चित्रण में कमजोरी आने पर संस्कृत पदावली से भाषा के स्तर को उठाकर उस कमज़ोरी को छिपा लेना चाहते हैं। 'तुलसीदास' में राजापुर का वर्णन करना है; उसमें कोई ऐसी भव्यता नहीं जिससे वर्णन को शेष कविता के उदात्त स्तर तक ला सकें। उन्होंने पहले यमुनातट के अन्य श्रेष्ठ नगरों का उल्लेख किया—उन्हें 'समृद्धि की दूर प्रसर माया में' स्थित बताया। इनमें राजापुर को गिनाकर उसे पूर्ण, कुशल, व्यवसाय प्रचुर कहा, लेकिन इतना काफी नहीं था। उन्होंने अंतिम पंक्ति जोड़ी :

ज्योतिश्चुम्बिनी कलश-मधु-उर छाया में।

यहाँ 'श' में ज़रूरत से ज्यादा मिठास है। दोष तत्सम पदावली में ही नहीं है, निराला कष्टकल्पना से अर्थ-गाम्भीर्य की कमी पूरी कर रहे हैं।

तुलसीदास के युवाकालीन जीवन का वर्णन करना है। निराला ने कमल से उपमा दी; भाषा को खूब रँगा।

जल की शोभा का-सा उत्पल
सौरभोत्कलित अंबर तल, स्थल-स्थल, दिक-दिक।

सौरभोत्कलित में कोई गरिमा नहीं है। जो उपल उत्पल बने थे, उनके आगे यह उत्पल तुच्छ है। दिक-दिक, दिक्कुमारि का पिकरव की तरह, परेशान करने वाला है।

तुलसीदास ने जब रत्नावली के चले जाने पर सूना घर देखा, तब निराला के लिए फिर कठिनाई पैदा हुई। उन्होंने कमल वाली उपमा याद की :

अपहृत श्री, सुख-स्नेह का सद्म,
निःसुरभि, हंत, हेमन्त-पद्म !
नैतिक-नीरस, निष्प्रीति छद्म ज्यों, पाते।

शब्दों की ध्वनि से घर की स्थिति व्यंजित नहीं होती। सद्म को पद्म कहने से यथार्थ बोध का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। उसके साथ छद्म वाला वाक्यांश जोड़कर निराला शब्दों की मितव्ययिता के बदले उनकी अतिव्ययता का परिचय देते हैं। जहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से वांछनीय है, जहाँ निराला थोड़े में शब्दों में विराट् चित्र प्रस्तुत करते है, वहाँ उनके काव्य का कलात्मक स्तर ऊँचा है।

शत शत अब्दों का सांध्यकाल
यह आकुञ्चित्-भ्रू-कुटिल भाल
छाया अंबर पर जलद जाल ज्यों दुस्तर।

यहाँ भावशक्ति है, सजीव मूर्तिविधान है, वैसा ही उदात्त ध्वनि-सौन्दर्य है, शब्द-योजना सार्थक है। भारत पर शताब्दियों से जो सांस्कृतिक संकट छाया हुआ था, उसकी व्यंजना थोड़े से शब्दों में विराट् चित्र खींचकर निराला ने की है।

तत्सम शब्दों को पहचानना काफी नहीं है। देखना यह चाहिए; कहाँ उनका प्रयोग सफल हुआ है, कहाँ असफल। इसके लिए शब्द-योजना के साथ निराला की भावशक्ति, यथार्थ बोध, चित्रण क्षमता आदि पर भी ध्यान देना चाहिए।

मौलिक शब्द-योजना

निराला का एक प्रिय शब्द है हेर। ठेठ हिन्दी की क्रिया है, तत्सम-प्रधान शब्दावली के स्वभाव के विपरीत है। 'जुही की कली' में **हेर प्यारे को सेज पास।** **यामिनी जागी** में—**हेर उर-पट, फेर मुख के बाल।**

नयनों में हेर प्रिये,
मुझे तुमने ये वचन दिये। (गीतिका, पृ. ५)

व्रजभाषा काव्य मे **हेर** के साथ जो अनेक मधुर स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, निराला आधुनिक कविता में उस क्रिया के प्रयोग द्वारा उन्हें जगाते है। शब्द की ध्वनि, उसके कोशगत अर्थ के अलावा निराला इस बात पर ध्यान देते हैं कि वह किस वातावरण से जुड़ा हुआ है, इसके व्यवहार से किस तरह के भाव पाठक के मन मे जगेंगे। व्रजभाषा काव्य में, जनपदीय लोकगीतों में अनेक शब्दों का अपना संसर्ग-बोध है। निराला शब्द-चयन में इस संसर्ग-बोध का ध्यान रखते है। ऐसा ही शब्द है **सेज,** शय्या के संसर्ग-बोध से भिन्न। **हेर प्यारे को सेज पास**—यहाँ **सेज** मे ऐसा भाव-सौन्दर्य है जैसा **मृदु-शयन** से उत्पन्न करना असम्भव है। **निशा के उर की खुली कली**—इस गीत में निराला ने **शैया** शब्द का प्रयोग किया है—**मूँद पलक प्रिय की शय्या पर।** निशा को नायिका बनाकर आत्मीयता का वह भाव पैदा नही किया जो 'जुही की कली' मे है। **नयनों के डोरे लाल** मे गीत की धुन, सारी शब्द-योजना जैसा वातावरण पैदा करती है, उसमें **सेज** का प्रयोग और भी सार्थक है: **जागी रात सेज प्रिय पति सँग रति सनेह-रँग घोली।**

हेर और **सेज** के साथ **पट। हेर उर-पट, फेर मुख के बाल। पट**—व्रजभाषा काव्य का परिचित शब्द, संसर्ग-बोध से शृंगार के कोमल भाव जगाने वाला। होली-गीत में **सेज** की तरह इसका भी सार्थक प्रयोग—**उठी सँभाल बाल, मुख लट, पट, दीप बुझा हँस बोली।**

छायावादी कविता में **प्रिय** का व्यवहार अधिक है, **प्यारे** का कम। **प्रिय** छोटा-सा शब्द है, **मृदु** और **उर** की तरह जगह भरने के काम आता है, कवित्वपूर्ण भी है। **प्यारे** बोलचाल का घिसा हुआ, अतिपरिचित शब्द है जिसमें स्नेह से अधिक हास्य का भाव निहित है। किन्तु 'जुही की कली' मे निराला ने लिखा—**हेर प्यारे को सेज पास**। ऐसे ही **जागो फिर एक बार** (१) में **प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें**। निराला का प्रिय शब्द है—**मग**। वह मार्ग का प्रयोग भी करते है : **मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों** (गीतिका, पृ. ६७)। उदात्त स्तर पर रास्ते की कठिनाइयाँ दिखाने के लिए **मार्ग** का व्यवहार हुआ है। कोमल भावों की व्यञ्जना के लिए निराला **मग** का प्रयोग करते है।

अलस पग, मग मे ठगी-सी रह गई—(परिमल, पृ. ३७)

पूरी पंक्ति की शब्द-योजना व्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल है। तुलसीदास रत्नावली के ध्यान मे डूबे हुए ससुराल जा रहे है। निराला ने कोमल भाव-संदर्भ में **मग** का प्रयोग किया है : **मग में प्रिय कुहरित डाल डाल**।

आधुनिक हिन्दी कविता मे **स्नेह** ने **सनेह** को खदेड़ दिया है। निराला ने होली वाले गीत मे **रति सनेह रँग घोली** लिखकर **सनेह** का चमत्कारी प्रयोग किया है। **मेघ** और **मेह** में मेघ को अधिक कवित्वपूर्ण माना जाता है। निराला ने **मेघ** का प्रयोग किया है, **मेह** का भी : **मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर** (गीतिका, पृ. ३१)। बोलचाल के शब्दों में जहाँ दूसरे कवि को भावशक्ति का अभाव दिखाई देता है, वहाँ निराला उनका व्यवहार संदर्भ-विशेष मे इस ढंग से करते है कि उनका बोल-चाल वाला हल्कापन दूर हो जाता है और मूर्तिविधान या भाव को उभार देते हैं। **बाल** कवित्वहीन है, कविता का शब्द है **केश** जैसे **मेघ के घनकेश**। किन्तु निराला श्रृंगार की कोमल या उदात्त अभिव्यंजना में इस घटिया शब्द का बढ़िया प्रयोग करते हैं।

उठी सँभाल बाल, मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली।

यह श्रृंगार भाव की कोमल व्यंजना हुई।

हेर उर-पट, फेर मुख के बाल—

यह श्रृंगार की उदात्त अभिव्यंजना है।

मग की तरह **पग** हिन्दी कविता का परिचित कोमल शब्द है। किन्तु निराला उसका प्रयोग सौन्दर्य के उदात्त चित्रण के लिए करते है : **रँग गई पग-पग धन्य धरा**। **साधो मग डगमग पग** (अर्चना, पृ. १४)—यहाँ **पग** और **मग** दोनों शब्दों का व्यवहार उदात्त स्तर पर हुआ है। **ठौर** हिन्दी का ठेठ शब्द है। 'तुलसीदास' में निराला ने इसका प्रयोग उदात्त भाव-संदर्भ में किया है :

वह रंक; यहाँ जो हुआ भूप, निश्चय रे!
चाहिए उसे और भी और
फिर साधारण को कहाँ ठौर? (बंद ३४)

अपने ठेठ कोमल ठाठ में इसका प्रयोग होली-गीत मे है :

होली मची ठौर-ठौर
सभी बन्धन छूटे हैं।

निराला अपनी कविता मे ऐसे बहुत से शब्दों का प्रयोग करते है जो उनकी कविता से अलग करके देखे जायँ तो अनुपयोगी लगेंगे, छायावादी कवियों का ध्यान उनकी तरफ़ कम जाता है, किन्तु निराला साहस और चतुराई से उनका कलात्मक प्रयोग करते है। **मरजाद** का व्यवहार जनपदीय बोलियों में खूब होता है, परिष्कृत हिन्दी में बहुत कम। निराला ने शिवाजी के पत्र में लिखा :

लाज जो उतारता है
मरजाद वालों की।

गिनती और **गणना** में दूसरा शब्द कवित्वपूर्ण माना जायगा। निराला ने **गिनती** के आधार पर शब्द गढ़ा—**अनगिनित**। गीत में उसका बड़ा समर्थ प्रयोग किया : **अनगिनित आ गए शरण में जन जननि**। अवधी की मिठास है **अनगिनित** में जो **अगणित** या **परिगणित** में नहीं आ सकती। **हिंडोर** निराला का प्रिय शब्द है, लोकजीवन की सरस स्मृतियाँ जगाने वाला। **नील डोर का हिंडोर चढ़ी-पंग रहता** (**गीतिका**, पृ. १०१)। 'जुही की कली' में जहाँ ध्वनि बल खाती हुई ऊपर उठती है, निराला ने **हिंडोर** का **हिंडोल** रूप लिया है : **डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल**। **डोलना** क्रिया का प्रयोग निराला ने वल्लरी के अलावा हवा के लिए भी किया है—**प्रात पवन प्रिय डोली** (**गीतिका**, पृ. ४४)। लड़ी के **डोलने** में कोमलता है; डाल मे निरा रूखापन। निराला उसके साथ **रूखी** विशेषण जोड़कर उसके ध्वनि-अर्थ को और पुष्ट कर देते है— **रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी**।

छायावादी कविता के लिए अनचीह्ना-सा शब्द है **गली**। भिन्न संदर्भों में अनेक प्रकार के मूर्तिविधान के लिए निराला इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

आँखे अलियों-सी
किस मधु की गलियों मे फँसी। (**परिमल**, पृ. १७०)

लोकगीतो में जिन कुञ्जगलियों का स्मरण किया जाता है, उनसे मिलती-जुलती हैं ये मधु की गलियाँ।

एक गीत में **कुञ्ज** और **गली** बहुत पास-पास है यद्यपि उपर्युक्त मधु की गलियो की सरसता यहाँ नही है :

मंद-पद आ वंद कुञ्ज उर की गली। (**गीतिका**, पृ. १०४)

मधु की गलियो वाला चमत्कार अंतिम चरण के एक गीत में है :

पारस, मदन हिलोर न दे तन···
अलियों, जूही की कलियों की
मधु की गलियों नूपुर बाजे। (**गीतगुंज**, पृ. ३०)

परिमल की प्रतिध्वनि ही नहीं है, मूलध्वनि और सँवर गई है। गन्ध शब्दमय है, मधु की गलियो में नूपुर बज उठे हैं। अद्भुत सांकेतिक व्यञ्जना है।

गलियों का भदेसपन लिए हुए किन्तु मधु की जगह वेदना में डूबा हुआ शब्द

है—ठग।

साधो मग डगमग पग···
हुए चपल छल कर ठग। (अर्चना, पृ. १४)

यह गीत उन्होंने इलाहाबाद में लिखा था। ठगों के सामने आत्म-समर्पण के भाव से लिखा—**ठग को जग-जीवन दान करो**। (उप., पृ. ४४) फिर अकेले **ठग** को काफी न समझकर **ठाकुर** जोड़ा :

हाथ जो पाथेय थे, ठग ठाकुरों ने रात लूटे। (उप., पृ. ५६)

पुनश्च :

ठग ठगकर मन को, लूट गए धन को। (उप., पृ. ६०)

बेरोक शब्द व्यवहार में आता है; निराला ने नया शब्द गढ़ा **अरोक**। आलोक और शोक से तुक मिलाते हुए लिखा : **देखता मैं अरोक मन रोक** (गीतिका, पृ. ८३)। **अरोक** से अधिक स्वाभाविक है **अनबोली अनगिनित** की तरह **अन** जोड़-कर निराला ने **अनबोली** बनाया—**अधर-दशन अनबोली** (उप., पृ. ४४)। इसी गीत मे **ठठोली** शब्द से निराला ने शृंगार रस की निष्पत्ति की है, शृंगार और हास्य का आन्तरिक सम्बन्ध भी दिखा दिया।

निराला संबोधन-चिह्न के रूप मे **हे**, **रे** का प्रयोग करते है। **हे** का प्रयोग परम्परागत है, **रे** का प्रयोग छायावादी कविता की नई रूढ़ि बन गया। निराला का मौलिक प्रयोग है **ऐ** का। **ऐ निर्बन्ध अन्धतम अगम अनर्गल बादल**—यहाँ वक्तृता को प्रभावशाली बनाने के लिए। किंतु एक गीत मे उन्होंने इसका अनोखा प्रयोग किया है :

ज्ञान गया रे हमारा,
तुम्हारा मान गया था। (अर्चना, पृ. २२)

आश्चर्य का भाव दिखाने के लिए जैसे किसान बातचीत मे **ऐ** का प्रयोग करते हैं, कुछ वैसा ही **ऐ** का प्रयोग यहाँ है।

सकेलना अवधी-ब्रजभाषा की सामान्य क्रिया है, पुरानी हिंदी में इसका व्यव-हार काफी हुआ है, आधुनिक हिंदी मे वह 'मतरूक' है। निराला ने 'सरोज-स्मृति' मे कुलीन जनों के गँवरपन पर व्यंग्य करते हुए लिखा,

चमरौधे जूते से सकेल
निकले।

चमरौधो को तेल पिलाया गया है; उनसे निकाले हुए पैरो की गन्ध का वर्णन है। **उनये** क्रिया आधुनिक हिंदी में अदृश्य हो गई है। निराला ने इसका उद्धार किया : **किरण-मुखर मुख उनये** (अर्चना, पृ. ६६)। यहाँ प्रयोग बहुत सफल नही है। पहले तीन शब्द **उनये** की प्रकृति के विरोधी हैं। किंतु **उनयी आँखों में श्याम घटा**—(गीतगुंज, पृ. ५१) यहाँ **उनयी** का टकसाली प्रयोग हुआ है, ब्रजभाषा काव्य-परम्परा के एकदम अनुकूल। **अनियारे** का प्रयोग भी आधुनिक हिंदी मे दुर्लभ है। **अनियारे दृग चपल उपान्तों** (उप., पृ. ४४), बाद के तीनों शब्द अनियारे से मेल

नही खाते, न उनके व्यवहार में किसी तरह का नाटकीय वैषम्य है। 'अर्चना' के एक अन्य गीत मे **अनियारे दृग** इसी के सम पर है (पृ. १०२)। इससे **रतनारे** का प्रयोग अधिक सफल है :

उद्दीपन, सन्दीपन
सुनयन रतनारे हैं। (**अर्चना**, पृ. ४६)
चरण गहे थे मौन रहे थे (उप., पृ. ६७)

यहाँ **गहे** में भक्ति-काव्य की सारी परम्परा ध्वनित है।

दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ गहो हाथ। (उप., पृ. ६)

यहाँ **नाथ** और **अशरण** के संसर्ग से **गहो** का भाव और भी खुल गया है। **कौन गुमान करो जिन्दगी का** (उप., पृ. ६६)—यह पंक्ति उस जमाने की याद दिलाती है जब सूफियो और सन्तो के काव्य मे 'देशी'-'विदेशी' शब्दों का भेद न था। कविता में वही शब्द आते थे जो लोकभाषा मे घुल-मिल गए थे।

खेल सिखी अँखियाँ—(**गीतगुंज**, पृ. ४६); **अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी**—उस परम्परा का निर्वाह करते हुए **अँखियाँ**। और भी—

सोई अँखियाँ
तुम्हें खोज कर बाहर,
हारी सखियाँ। (**अर्चना**, पृ. १५)

निराला के अंतिम दौर की रचनाओं में ब्रजभाषा की शब्दावली का प्रभाव अधिक है किंतु इस तरह के प्रयोग उनके लिए नए नही है। **परिमल** की 'स्मृति' कविता मे उन्होने लिखा था, **विजन-मन-मुदित सहेलरियाँ**। निराला **सगाई** शब्द का विचित्र प्रयोग करते हैं, कबीर की तरह जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध को लेकर :

रहे तुम्हारी एक सगाई
इसीलिए कुल ताप सहे थे। (**अर्चना**, पृ. ६७)

तुमसे सम्बन्ध बना रहे, इसलिए सारे दुख सहे थे। **सगाई** शब्द में ज़्यादा जान नही है।

ऐसी तलवार चली कुनबा जूझा,
बन आई वह कि दूर हुई सगाई। (उप., पृ. २०)

पहली पंक्ति जोरदार है किंतु सगाई के दूर होने में व्यंजना कमज़ोर है।

पारस, मदन हिलोर न दे तन,
बरसे झूम-झूम कर सावन (**गीतगुंज**, पृ. ३०)

पारस का प्रयोग भी यहाँ विचित्र है किंतु सगाई की अपेक्षा अधिक सफल। पारस को छूने से लोहा भी सोना हो जाता है, ऐसा लोगों का विश्वास रहा है। सावन की हवा लगने से शरीर को जो सुख मिला है अथवा मदन-हिलोर उठने से जो सुख की आकांक्षा जगी है, उसे निराला **पारस** के द्वारा प्रकट करते है। **पारस गात, मधुर रस बरसे** (सान्ध्य काकली, पृ. ५८) मे **पारस** को गात से जोड़कर उन्होंने उसके प्रच्छन्न भाव

को स्पष्ट कर दिया है। पारसगात के संपर्क से रस की वर्षा होती है, इस संदर्भ में पारस का व्यवहार देखने से समझ में आयेगा, पारस से मदन-हिलोर का क्या सम्बन्ध है।

अरघान की फैल—(आराधना, पृ. ७) गंध की तीव्रता दिखाने के लिए निराला ने जनपदीय शब्द अरघान का सुन्दर प्रयोग किया है।

सगाई, पारस, अरघान जैसे शब्द कविता मे खप जाते हैं। वे तद्भव या देशज होने से भले ही उतने प्रतिष्ठित न हों जितने कुछ तत्सम है, फिर भी ज्यादा पाठक सरस रचनाओं मे जैसी शब्दावली चाहते हैं, उसमे वे खप जाते है। इनके विपरीत ऐसे बहुत से शब्द हैं जो व्यवहार मे तो आते हैं किंतु जिन्हें कविता मे खपाना बहुत मुश्किल है। मधुर पदावली में तो वे खपते ही नही, जहां कर्कश प्रभाव उत्पन्न करना हो, वहाँ भी उन्हे जमाने मे कठिनाई होगी।

कण्टक, कर्दम, भयश्रम-निर्मम कितने-शूल—('स्वागत', परिमल, पृ. १०४) यह पंक्ति कर्कशता का भाव उत्पन्न करने के लिए लिखी गई है और लोग मान भी लेंगे कि कवि अपने उद्देश्य मे सफल हुआ है। किंतु कंटक-कर्दम की जगह यदि कवि कँकरीली राह लिखे तो शायद इसमें कुछ पाठकों को केवल नीरसता दिखाई दे। निराला ने लिखा : कँकरीली राहें न कटेंगी (अर्चना, पृ. ८५)। वह पथ अराल लिखते है, कँकरीली राहें भी। दोनो जगह भाषा की शक्ति अलग-अलग तरह से प्रकट होती है।

एक गीत वह बड़े गम्भीर भाव से शुरू करते है :

> जननि, मोह की रजनी
> पार कर गई अवनी (अर्चना, पृ. ८१)

तीन पंक्तियो मे तोरण, मंगल, जनगण के बाद वह महिलाओं की चर्चा करते हैं। ये महिलाएँ बनी-ठनी हैं, स्वभावतः वे साड़ी पहने हैं :

> साड़ी के खिले मोर
> रेशम के हिले छोर।

साड़ी का प्रयोग इस तरह के गीत में अप्रत्याशित है किंतु सार्थक है। मोह की रजनी कितनी काली है, यह बनी-ठनी महिलाओ की साड़ी में खिले हुए मोर देखकर मालूम होता है। जब साड़ी की चमक-दमक खत्म हुई, बेल-बूटे मिट गए, तब मोह-रजनी भी बीत गई।

> ऐसे निष्काम हुई काया,
> जैसे कोई साड़ी झीनी। (आरा., पृ. ८३)

यह आदर्श है जो जीवन में प्राप्त नही होता। मन अधिकतर उस साड़ी के ध्यान में रहता है जो चमकती ही नही, महकती भी है।

> महकी साड़ी
> जैसी फुलवाड़ी। (उप., पृ. ७५)

फुलवाड़ी साड़ी-जैसी महकी। महकना साड़ी के लिए मानो अधिक स्वाभाविक हो,

इसलिए निराला फुलवाड़ी की तुलना साड़ी से कर रहे हैं। उन्हें मुख्यतः फुलवाड़ी का वर्णन करना है, साड़ी का नहीं, यह आगे स्पष्ट हो जाता है,

कद्दू, कुहँड़े फैले,
ख़रबूजे मटमैले—

ये सब फुलवाड़ी मे है, साड़ी से ढके हुए शरीर मे नही। निराला ने **खेड़े, पेड़े, मसका, घसका, आटे, घाटे, भाटे, पटा, सटा, वटा, जोड़ा, कोड़ा, फोड़ा, बदला, गंदला** जैसे शब्दो का प्रयोग अर्चना-आराधना के गीतों मे किया है। प्रयोग कहो सफल है कही असफल किन्तु उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि मधुर पदावली से निराला का मन कभी-कभी ऊब उठता था।

आरम्भ से ही उनमें यह प्रवृत्ति रही है कि जो शब्द परिष्कृत हिंदी के लिए निपिद्ध हैं उनका व्यवहार भी करें। इनमें वहुत से शब्द उर्दू के है जिन्हें लोग वोलते तो हैं किन्तु लिखते कम है, विशेप रूप से कविता में। **तव से यह नौबत आई है** (परिमल, पृ. १३२), **उसकी फुलवाड़ी का फूल जो माला भर में आला है** (उप., पृ. ११६), **अगर तुझे जाना था** (उप., पृ. ११८); **दगा दिया तूने ज्यों** (उप., पृ. २३०) इस तरह के प्रयोग निराला की पहले दौर की रचनाओं में हैं। **सिर्फ, रग, नस** जैसे शव्दों के प्रयोग का उल्लेख पहले हो चुका है। 'तुलसीदास' में एक जगह उन्होंने **और-ठौर** के साथ **तौर** की तुक मिलाई है।

फिर साधारण को कहाँ ठौर ?
जीवन के, जग के, यही तौर हैं जग के। (बन्द ३४)

निराला वोलचाल की स्वाभाविकता दिखाने के लिए, कहीं विवादी स्वर से मिठास में तुर्शी लाने के लिए, कही उदात्त स्तर पर ध्वनि-सौन्दर्य को वढ़ाने के लिए उर्दू शब्दों का व्यवहार करते हैं। उन्होने मधुर भाववाली गज़लों के लिए और 'कुकुर-मुत्ता' जैसी' व्यंग्य-रचनाओं के लिए उर्दू शव्दों का व्यवहार किया है। असंस्कृत जनो का चित्रण करते हुए केवल हास्य-विनोद के लिए उन्होंने उर्दू शव्दों का व्यवहार किया हो, ऐसी वात नही है। उर्दू मे शब्दों के व्यवहार-सम्वन्धी औचित्य के नियम हिन्दी से वहुत वड़े हैं। निराला इनका निवाह कम कर पाते हैं, उन्हें तोड़ते ज़्यादा हैं—कभी जानकर, कभी अनजान मे।

क्या छोरों पर कला की साड़ी के, लगाये हंस,
हस्ती को गुल हजार दिए जा रहा हूँ मैं। (वेला, पृ. ६३)

दूसरी पंक्ति उर्दू के रंग में है, मान लीजिए; लेकिन कला की साड़ी के छोरों पर हंस देखना निराला की खास कारीगरी है। क्या भाव,- क्या भापा—गज़ल-सम्वन्धी औचित्य के सारे नियम यहाँ टूट गए हैं। जहाँ वह हँसते हैं, व्यंग्य करते हैं, वहाँ भी उनका अपना अन्दाज है और वह उर्दू का अन्दाज नही है।

मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिए
दुनियाँ के गोलन्दाज़ो को देखा दहल गया। (उप., पृ. ६१)

शायद ही किसी उर्दू कवि ने गज़ल में गोलन्दाज़ जैसा वज़नी शव्द इस्तेमाल किया हो।

'कुकुरमुत्ता' में मृदुल गंध, हवा चलती मन्द मन्द, साधारणों से रहा न्यारा, दिशा, सुदर्शन चक्र, वक्र, बेड़ा, कैंड़ा, लल्लू-लल्ला, अधन्ना-न्यवन्ना, दर्शनशास्त्र, ब्रह्मावर्त, सरसता, लेखकों, मन्द, ध्वनि क्षीणा, जीवन, शासक आदि शब्द उर्दू के औचित्य-नियमों को बार-बार तोड़ते हैं, मुहावरों में जहाँ उर्दू-प्रेमी गलतियाँ निकालेंगे, वह अलग। उर्दू-प्रेमी इस बात से सन्तोष कर सकते हैं कि निराला ने उर्दू के ही नहीं, भाषा-सम्बन्धी औचित्य के प्रायः सभी नियमों को तोड़ा है। निराला मे तत्सम वर्ग से भिन्न शब्दावली के व्यवहार के ये कुछ नमूने है।

नियम-भंग

अनेक पंक्तियों मे संस्कृत की उच्चारण-पद्धति से निराला हिंदी की प्रकृति का उल्लंघन करते है। जैसे लिखा पद-प्रहार; पढा—पदप्-प्रहार।

पद-पद पर सदियों के पद-प्रहार ('कण', परिमल, पृ. १४६); यह प्रवृत्ति उनमे आरम्भ से है। 'अधिवास' मे उन्होने लिखा था: करुण स्वर का जब तक मुझमें रहता है आवेश? यहाँ करुण स्वर को पढेंगे—करुणस् स्वर। 'प्रगल्भ प्रेम' मे उन्होने 'विरह' के आगे 'व्यथित' आने पर विरह के ह को दो मात्राकाल मे पढा: मौन छोड़ता हुआ हृदय पर विरह (व) व्यथित प्रभाव (अनामिका, पृ. ३६)। गीतिका मे एक जगह नयन के साथ च्युत जोड़कर निराला ने नयन के अंतिम वर्ण को दीर्घ कर दिया है: चुम्बित मधुर-ज्योति-नयन-च्युत (पृ. ४५)। नयनच-च्युत हिंदी उच्चारण के सर्वथा विपरीत है। नयन की तरह ताप के साथ क्षर जोड़कर पढ़ा—तापक् क्षर। 'तुलसीदास' मे: उर की उर में ज्यों तापक्षर। (बंद ७७)

इस उच्चारण-वैचित्र्य का कारण पांडित्य-प्रदर्शन उतना नहीं जितना छंद-निर्वाह के लिए कुछ मात्राकाल बढाना है। पंक्ति में खाली जगह भरने के लिए जैसे निराला मृदु का उपयोग करते हैं, वैसे ही संयुक्ताक्षर सामने होने पर उससे पहले के वर्ण को दीर्घ पढने की इस पद्धति का। सौभाग्य से वह हर जगह इस पद्धति का अनुसरण नही करते। जैसे उन्होने लिखा: नव जीवन का अमृत-मन्त्र स्वर। ('वसंत समीर', परिमल, पृ. ८१) यहाँ मन्त्रस् स्वर न पढ़ेंगे क्योंकि खाली जगह भरना आवश्यक नही है। 'तुलसीदास' मे निराला ने लिखा—संध्या ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अम्बर तर। (बंद २३) वह साधारणतः ज्योति ही लिखते है किंतु यहाँ एक मात्रा कम पड़ रही थी, इसलिए उन्होने ज्योति के आगे विसर्ग लगाकर वह

कमी पूरी की। वैसे वह 'प्रकाश' भी लिख सकते थे किन्तु उसकी तुलना में उन्हें ज्योति का प्रयोग अधिक प्रिय है, इसके सिवा आगे 'ज्यों' है और उससे ज्योति के ज्यों का अनुप्रास मिलता था।

प्रात तव द्वार पर—गीत मे उन्होंने माता को संबोधन-रूप में **मातः** लिखा है : **धन्य जीवन कहाँ, मातः, प्रभात धन**। यहाँ ध-भ-ज की ध्वनियों के बीच **मातः** रूप फबता है। स्वभावतः इस तरह के प्रयोग सबसे ज्यादा 'राम की शक्तिपूजा' में है। **चतुः प्रहरः उद्‌गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर**। विसर्गों का उपयोग वैसे ही सार्थक है जैसे उपर्युक्त गीत में। **ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय**। यहाँ भी **ज्योति** के साथ विसर्ग सार्थक हैं, **प्रपात** का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं। **करुणस्-स्वर** की तरह निराला ने **मन्द्रस्-स्वर** रचा : **श्यामा के पदतल भारधरण हर मन्द्र स्वर**। इससे तुलनीय है **घन, गर्जन से भर दो वन**—गीत मे **वज्रस्-स्वरः गरजा, हे मन्द्र, वज्र स्वर**। (गीतिका, पृ. ५७) निराला **वज्र-स्वर** को मन्द्र कहते हैं, मन्द्र ध्वनि मधुर है, वज्र ध्वनि कठोर। **वज्रस्-स्वर** सार्थक है, **मन्द्रस् स्वर** निराला के शब्द-संसार की ध्वनि-प्रकृति के प्रतिकूल। **रुक गया कंठ, चमका लक्ष्मण-तेजः प्रचण्ड**। तेज काफी था, 'तुलसीदास' में ज्योतिः की तरह, किंतु उससे अधिक सार्थक, तेज के साथ विसर्गों का प्रयोग है। आगे फिर लिखा है : **जो तेजः पुञ्ज, सृष्टि की रक्षा का विचार**। **ज्योतिः प्रपात** की तरह सार्थक नही है, फिर भी प्रयोग खप जाता है। ऐसे ही : **मातः, दश भुजा, विश्वज्योतिः, मैं हूँ आश्रित**। **द्विप्रहरः** रात्रि के साथ **द्विप्रहर** ठीक है किंतु **नयन** के साथ द्वय जोड़कर **नयनद् द्वयं** पढ़ना **नयनच् च्युत** के समान अस्वाभाविक है। **पूरा करता हूँ मातः देकर एक नयन**। सारी पंक्ति हल्की है, उसमें **मातः** का प्रयोग जमता नहीं। इससे तुलना करने पर आसानी से समझ मे आएगा, **धन्य जीवन कहाँ मातः प्रभात धन**—इस पंक्ति में वैसा ही प्रयोग ध्वनि-संदर्भ के कारण क्यों सार्थक है। 'सरोज-स्मृति' में निराला ने लिखा : **सासुजी रहस्य-स्मित सुवेश**। सासुजी के साथ शेष पदरचना मेल नही खाती, **रहस्यस्-स्मित** की ध्वनि-भंगिमा से प्रवाह और भी अस्वाभाविक हो जाता है।

सासुजी रहस्य-स्मित सुवेश
आई करने को बातचीत।

दूसरी पंक्ति और भी हल्की है, इस सन्दर्भ में **रहस्य-स्मित** अस्वाभाविक है।

'कुकुरमुत्ता' में निराला ने **वीणा** से **ध्वनि क्षीणा** की तुक मिलाई है। हिंदी में क्षीण ध्वनि लिखना उचित है किंतु निराला ने क्षीण को **क्षीणा** किया, **वीणा** से तुक मिल गई किंतु एक मात्रा कम पड़ रही थी, उसे उन्होने ध्वनिक **क्षीणा** से पूरा किया। यह प्रवृत्ति बाद की रचनाओं मे कम होती गई है किंतु पूरी तरह खत्म वहाँ भी नहीं हुई। 'राम की शक्तिपूजा' के **'मन्द्र स्वर'** की तरह अर्चना में—**गिरि के उर से मृदु-मन्द्र स्वर**। (पृ. ४५) **मन्द्र** के साथ **मृदु** है। इसलिए **मन्द्रस् स्वर** और भी अनावश्यक है। **आँखों से बरसे ज्योतिः कण**—(उप., पृ. ३२) शेष

पदावली की जैसी कोमल ध्वनि है, उसे देखते हुए **ज्योतिः कण** निरर्थक है।

निराला-काव्य का काफी भाग दुरूह है। दुरूहता का कारण तत्सम शब्दों का व्यवहार ही नही, सामान्य शब्दो का असाधारण प्रयोग भी है। जैसे उच्चारण मे वह हिन्दी के नियमो का उल्लंघन करते है, वैसे ही शब्दो के प्रयोग में वह वहुत से नियम तोड़ डालते है। उच्चारण की तरह यहाँ भी नियम-भंग कलात्मक दृष्टि से कही सफल है, कही असफल।

हिन्दी मे एक क्रिया है **भरना**। निराला ने इसका इतना अधिक प्रयोग किया है कि वह निष्क्रिय हो गई है। **प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे।** सरस्वती भारत मे रव और मंत्र भरेंगी। यहाँ क्रिया सार्थक है। किंतु इसी गीत मे आगे—**कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर;** वीणावादिनि स्वर भरने के अलावा प्रकाश भरने का काम करती है। यहाँ क्रिया निस्तेज है। निराला को स्तर और निर्झर के साथ तुक मिलाने के लिए छोटा-सा शब्द चाहिए; भर काम आता है। ध्वनि-माधुर्य के कारण भर की अस्वाभाविकता पर ध्यान नही जाता। यामिनी जागी मे—**खुले केश अशेष शोभा भर रहे।** प्रकाश और स्वर की तरह सौन्दर्य भी भरा जा रहा है। अगले गीत में—**भरा हर्ष वन के मन;** हर्ष भरा गया। उसी गीत मे —

लता-मुकुल-हार-गन्ध भार भर
वही पवन वन्द मंद मंदतर—

गंध भार भरकर हवा चली। यहाँ भरना क्रिया का प्रयोग सार्थक नही है। **अमरण भरण वरण गान**- -(गीतिका, पृ. ७) गीत भरकर वन की छवि खुली। निराला भर का प्रयोग मृदु की तरह जगह भरने के लिए कर रहे हैं। उसी गीत मे फिर भर—**मधुप-निकर कलरव भर।** जैसे निर्झर के साथ भर की तुक पहले गीत में, वैसे ही स्वर और झर के साथ यहाँ। **वह चली अब अलि, शिशिर-समीर**—इस गीत मे दो बार भर : **प्रात-अरुण को करुण अश्रु भर; नयनों में भर नीर।** समान कर्म की आवृत्ति से भर का सौन्दर्य नष्ट हो गया है। **रँग गई पग-पग धन्य धरा**—इस सुन्दर गीत में निराला एक ही वद मे दो वार भर का प्रयोग करते हैं।

वर्ण-गन्ध धर, मधु-मरन्द भर,
तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर
खुली रूप-कलियों में पर भर।

अन्त्यानुप्रास ढूंढने में निराला को कितनी कठिनाई होती थी, यह भर के द्वारा प्रयोग से सिद्ध है। उन्हें समान ध्वनि वाले शब्द-खंड जोड़ने मे आनन्द आता है लेकिन वे चाहते हैं कि ऐसी कोई वंदिश न हो कि यह जुड़ाई निश्चित स्थान पर हो। गीत की पंक्तियो के अन्तिम शब्द-खंड मिलने ही चाहिए, इस वंदिश से परेशानी होती है। **जागो, नव-अम्बर-भर-ज्योतिस्तर वासे** (गीतिका, पृ. ८१) यहाँ भर के साथ लंवा समास रचा है जो अनावश्यक है। यो अर्थ हो सकता था : हे ज्योतिस्तर-वासे, नव अम्बर को भरके जागो। किन्तु निराला के लिए समास-

रचना आवश्यक इसलिए है कि ज्योति के वस्त्रों से आकाश भर गया है, वह चित्र समास से ही सार्थक होता है। अर्थ यों होगा : नव अम्बर को भरने वाले ज्योतिस्तर वासों वाली। इस समास में निराला ने भर को व्याकरण के नियम तोड़कर खपाया है। इसी गीत में दो वार भर और :

दृग-दृग को रञ्जित कर
अञ्जन भर दो भर।

भर दो भर का मुहावरा निराला का गढा हुआ है, असफल है। **भारति, जय, विजय करे**—इस गीत में उन्होने भर के साथ तत्सम जोड़कर समास वनाया, फिर उसे संस्कृत के अनेक स्त्रीवाचक शब्दों की तरह दीर्घ आकारान्त किया, फिर संवोधन रूप देकर आ का ए किया : **स्तव कर वहु-अर्थ-भरे !** लम्बी कसरत है, व्याकरण का ढाँचा टूट गया किंतु ध्वनि-विचार से नियम-भंग सार्थक है।

भर का जोड़ीदार शब्द है हर। अकसर वह भर के आसपास ही पाया जाता है : **कलुष भेद-तम हर प्रकाश भर। मधुप-निकर कलरव भर** के वाद एक पंक्ति का फासला देकर **स्मर-शर हर केशर झर। कौन तम के पार में हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर, सर।** कहाँ हर और भर पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं, कहाँ वह हाईफन द्वारा दूसरे शब्दों के साथ समासवद्ध हो गई है, गीत सुनकर यह नही कहा जा सकता। इसके लिए उसे लिखित रूप में देखना ज़रूरी है। यह कमज़ोरी है यद्यपि कवि तर्क कर सकता है, पूर्वकालिक क्रिया से अर्थ ज्यादा अच्छी तरह खुले तो उसी के अनुसार पाठ निश्चित करो, समास से खुले तो उसके अनुसार। होता यह है कि निराला ध्वनि-प्रवाह में पाठक या श्रोता को ऐसा वहा ले जाते हैं कि वह व्याकरण की वातों पर ध्यान देना भूल जाता है।

तर वैसा मधुर नहीं है जैसा भर या हर है। **पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे**—(**गीतिका**, पृ. २), आप प्रभुकृपा से तर गए, भवसागर पार कर गए, वैसा भाव इस तर में नहीं है। केश पीठ और सीने पर फैले हुए है, भवसागर को पार नही कर गए। 'तुलसीदास' में जहाँ निराला ने लिखा है : **सन्ध्या ज्योति : ज्यों सुविस्तार अंवर तर,** वहाँ तर की वैसी ही व्यंजना है जैसी **यामिनी जागी** मे। आराधना में लिखा : **पग-पग को जग के डग तर दे** (पृ. २८)। यह तर भवसागर से तरने वाला भाव लिए है। 'तुलसीदास' में इस तर का एक जगह प्रयोग और है :

वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर-निर्झर (वंद ८७)

निर्झर तरकर वह फूटी। कही भी इस तर के प्रयोग में शक्ति नही है; ध्वनि की दृष्टि से भी अशक्त है।

एक विचित्र प्रयोग तुलना क्रिया का है।

दृगों की कलियाँ नवल खुलीं;
रूप-इन्दु से सुधा-विन्दु लह,
रह-रह और तुली। (**गीतिका**, पृ. १७)

कलियाँ पहले खिली, फिर रूप-सुधा पाकर और भी तुली। आत्मविश्वास से कोई काम करने पर तुल जाना—वैसा भाव है। 'तुलसीदास' मे—जाते हो कहाँ तुले तिर्यक (वंद ३८)। निश्चयपूर्वक कहाँ चले—यह प्रश्न किया गया है। इससे मिलती-जुलती क्रिया है तोलना। काँटे पर कली तोली जा रही है—काँटे की कठोरता और कली की कोमलता का यह संयोग निराला को विशेष प्रिय है और उसे चित्रित करने के लिए वह तोलने वाली क्रिया का सहारा लेते हैं।

प्रिय-कर-कठिन-उरोज-परस कस-कसक मसक गई चोली,
एक-वसन रह गई मन्द हँस अधर-दशन अनवोली—
कली-सी काँटी की तोली।

पहली पंक्ति के व्यापार की परिणति है तीसरी पंक्ति में। एक व्यंग्यपूर्ण कविता में रस के छीटे देते हुए निराला ने उसी क्रिया का प्रयोग किया है :

मुहोमुह रहे,
एक पेड़ पर दो डालो के काँटे जैसे
अपनी-अपनी कली तोलते हुए। (नये पत्ते, पृ. २७)

कली तोलने की तरह निराला ने वल तोलने का मुहावरा गढ़ा है। अपने को तोल लो, अपनी ताकत परख लो—वैसा ही भाव वल तोलने में।

वहती इस विमल वायु मे
वह चलने का वल तोलो! (परिमल, पृ. ३६)

निराला क्रियाएँ गढते हैं, प्रचलित क्रियाओं का प्रयोग अपने ढंग से करते हैं, क्रियाओं के प्रचलित रूप को तोड़ देते हैं, क्रिया के विना भी काम चलाते हैं। अनुकूल से अनुकूलना क्रिया वनाई है। 'वासन्ती' मे—

फिर फूलें नव वृन्तों पर
अनुकूलें अलि अनुकूले।

'स्वीकारो', 'स्वीकारते' से वहुत पहले निराला ने अनुकूलें लिखा। कली से उन्होनें विचित्र क्रिया वनाई **कलियाना** अर्थात् डाल में कलियाँ आना।

जावक-जय चरणों पर छाई।
पलक-पलास डाल कलियाई। (आराधना, पृ. ४०)

कलियाई की ध्वनि में कर्कशता है, उसके अर्थ में कोमलता है। इसीलिए प्रयोग सफल नही है।

उर्दू को कुछ पुराने कवियों की तरह निराला कर्ता के साथ जहाँ ने लगाना चाहिए, वहाँ से उसे हटा देते है।

कोयले मञ्जरी की शाखो से
गाई सुमंगल होली तुम्हारी। (गीतगुंज, पृ. २३)

यहाँ 'ने' का अभाव खटकता नही। एक तो **कोयलें** और **गाई** के वीच काफी फासला है, **गाई** तक पहुँचते-पहुँचते पाठक भूल जाता है, ने की भी जरूरत थी। दूसरे, **मंजरी** और **सुमंगल** की ध्वनि उसका ध्यान अपनी ओर खीचती है। तीसरे,

लोकगीत की धुन मे ने का अभाव ही अच्छा लगता है, खड़ी वोली को अवधी के नज़दीक ले आता है। किन्तु **कोयल कुछ क्षण कुछ गाई है**—(आराधना, पृ. २२) में इन तत्त्वों का अभाव है, 'क्षण' में नागरिक भद्रता है; यहाँ 'ने' की कमी खटकती है।

निराला ने गीत लिखा :

गिरते जीवन को उठा दिया
तुमने कितना धन लुटा दिया। (अर्चना, पृ. ३८)

दोनों पंक्तियाँ वहुत साफ उतरीं। इसके वाद तुक की तलाश शुरू हुई। पहले वंद के अंत में **छुटा दिया** से काम चलाया किंतु अगले दो वंदो मे **खुटा दिया** और **टुटा दिया** से तुक मिलाई। यहाँ क्रियाओं का रूप केवल तुकवंदी के लिए भ्रष्ट किया गया है, उससे भाषा या भाव में कोई खूवसूरती नही आई। अन्तिम दौर की कविताओं मे मानो लिखते-लिखते वह थक जाते है। ठीक शव्द न मिला तो जो मिला उसी को भिड़ा दिया। फिर भी इस दौर मे उन्होने क्रियाओं का प्रयोग वहुतायत से किया है और अच्छा किया है। **परिमल** की रचनाओ में वह क्रियाओ के विना वाक्य नहीं रचते। सन् '३० के वाद गीतों और वहुत-सी कविताओं में वह क्रियाएँ हटाकर शैली में घनत्व पैदा करते है। **अखिल-पल के स्रोत, जल-जग, गगन घन-घन धार**—(गीतिका, पृ. १२) इस पूरी पंक्ति मे क्रिया नही है। वह ध्यान केन्द्रित करते हैं पूरे परिवर्तन क्रम पर; स्रोत, जल और धार मे जो तरलता है, वह क्रिया के अभाव की पूर्ति करती है।

आओ मधुर सरण मानसि मन—(गीतिका, पृ. ५३) इस गीत में आओ से एक वार वुलाकर क्रियाओं के प्रयोग से छुट्टी ले ली। पहले वंद में **खिल** शव्द क्रिया का आभास देता है : **किरण चुंवि मुख अंवुज रे खिल**। यह क्रिया का आभास मात्र है। यह नही कहना चाहते कि अम्वुज खिल जा; कहना यह चाहते हैं कि मुख पर किरणें हैं, और वह अम्वुज के समान खिला हुआ है। पूरे वंद की गठन इसी प्रकार की है।

नील वसन शतद्रु-तन-ऊर्मिल,
किरणचुम्वि मुख अम्वुज रे खिल,
अन्तस्तल मधु-गन्ध अनामिल,
उर-उर तव नव राग जागरण।

शक्ति की देवी मृत्युरूपा है। नीले वस्त्र पहने हैं; ये वस्त्र शतद्रु नदी के नील जल की तरह ऊर्मिल हैं। ऊर्मिल में क्रियाशीलता है। दूसरी पंक्ति के **चुम्वि** और **खिल** मे वैसी ही क्रियाशीलता की ओर संकेत है। अन्तस्तल में **अनामिल मधु-गन्ध** है; क्रियाशीलता का पूर्ण अभाव है, आप चाहें तो कह सकते है कि गन्ध सघन होकर स्थिर हो गई है। इस सौन्दर्य की परिणति है नए राग का जागरण। निराला जिस तरह की पदयोजना कर रहे हैं, उसमें क्रियाओं का भरा-पूरा प्रयोग वाधक है। यह इस कारण नही कि पदावली तत्सम है, निराला अतत्सम पदावली से भी क्रियाएँ

गायब कर देते हैं, न केवल पद्य में वरन् गद्य में भी। कारण यह है कि ध्वनि-प्रवाह को नियन्त्रित किए हुए जो भाव और संवेदन वह मूर्त करते है, क्रियाओं के प्रयोग द्वारा, पाठक का ध्यान उनसे हटने नही देना चाहते। इसलिए :

पलक-पात उत्थित-जग-कारण,
स्मिति आशा-चल-जीवन-धारण,
शब्द अर्थ-भ्रम भेद-निवारण,
ध्वनि शाश्वत-समुद्र-जग-मज्जन।

यहाँ खेल जैसी क्रिया की छाया भी नही है। **पात और उत्थित, स्मिति, चल, धारण, निवारण, मज्जन** में जो क्रियाशीलता स्थिर हो गई है, वह निराला के चित्र संगठन के अनुकूल है।

'तुलसीदास' में निराला ने ऐसी राह निकाली है कि क्रियाओं का प्रयोग भी करते है और उन्हें छोड़ते भी जाते है। **सांस्कृतिक सूर्य अस्तमित**—इतना काफी है; 'है' जोड़ना अनावश्यक है।

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड
आतप ज्यों तम पर करो द्दंड,
निश्चल अब वही बुन्देलखंड, आभागत।

वाक्यांश में क्रिया का अभाव। निश्चल कहना काफी है।

वीरों का गढ़, यह कालिंजर,
सिंहों के लिए आज पिंजर।

यहाँ भी क्रिया के बिना काम चलाते है। 'राम की शक्तिपूजा' में इसी तरह निराला क्रियाहीन और क्रियायुक्त पदों में सन्तुलन स्थापिन करते है :

लौटे युगदल। राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।

पृथ्वी **टलमल** है, आकाश **विकल** है। पृथ्वी का काँपना, आकाश का विकल होना 'है' के बिना भी समझ में आ जाता है। **लौटे** के बाद दो जगह निराला ने क्रियाएँ छोड़ीं। राम जब कल्पना में पुष्पवाटिका के दृश्य देखते है तब निराला क्रियाएँ हटाकर एक के बाद एक भावचित्र खीचते जाते है।

शैली की यही विशेषता भिन्न स्तर पर 'कुकुरमुत्ता' मे है। दूसरे अंश के आरंभ मे :

बाग के बाहर पड़े थे झोपड़े,
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े;
जगह गन्दी; रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में; जिन्दगी की लन्तरानी—
बिलबिलाते कीड़े; बिखरी हड्डियाँ;
सेल्हरों की, परों की थी गड्डियाँ,

कहीं मुर्गी, कहीं अंडे,
धूप खाते हुए कंडे।

पहली दो पंक्तियों में 'थे', फिर तीन पंक्तियों में कोई क्रिया नही। फिर एक 'थी', उसके वाद दो पंक्तियो में क्रिया गायव। इससे सिद्ध होता है कि क्रियाहीन वाक्य या वाक्यांश लिखना निराला की तत्सम-प्रधान शैली की ही विशेषता नहीं है।

निराला मूर्त कार्य पर दृष्टि जमाने के लिए क्रिया को हटा देते है, साथ ही क्रिया द्वारा भाव को मूर्त रूप भी देते है। **उगलता गगन घन अन्धकार** में उगलता क्रिया विम्व-निर्माण मे सहायक है। **झकझक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों**—वह्नि की सारी चमक-दमक झलकती से व्यक्त होती है। ऐसे ही 'तुलसीदास' में चेतनोर्मियों के प्रथम प्राण का उमड़ना विंव निर्माण का मुख्य हेतु है। ये विंव स्थिर ही नही, गतिशील भी है; गतिशीलता विशेषणों द्वारा, संज्ञाओ द्वारा व्यंजित होती है, क्रियाओं से और भी अधिक।

किसी भी हिंदी कवि की अपेक्षा निराला जिस क्रिया से सवसे ज्यादा काम लेते है, वह 'रहना' है। **मौन रही हार**—(गीतिका, पृ. ६) हारकर मौन हो रही या मौन हो गई। निराला व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग करते है—**हार रही। सहज जगमग नग रही निहार**—(उप., पृ. ३०) यहाँ क्रिया अधूरी है; निहार रही है—व्याकरण-सम्मत प्रयोग है। 'है' का लोप हिंदी कविता में—विशेप रूप से छायावादी कविता में—सामान्य वात है।

खुले केश अशेप शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-वाहु-उर पर तर रहे,
वादलों में घिर अपर दिनकर रहे। (उप., पृ. २)

केश शोभा भर रहे हैं, पृष्ठ से लेकर उर तक तर रहे है किंतु वादलों मे वे दूसरा दिन नहीं कर रहे है, वादल तो केश है जिनमें मुख दूसरा सूर्य वना हुआ है। वादलों में घिरे हुए दूसरे दिनकर है, यह भाव निराला रहे क्रिया की सहायता से व्यक्त करते हैं। **रही यह एक ठठोली**—(उप., पृ. ४४) मे रही वोलचाल के प्रयोग—यह एकी (एक ही) रही—के अनुरूप है। 'सरोज-स्मृति' में **समझता रहा हुआ मैं देख**—'देख रहा' में 'देखता रहा' का भाव है। 'राम की शक्तिपूजा' में **खो रहा दिशा का ज्ञान** सशक्त प्रयोग है; 'रहा' क्रिया दिशाज्ञान खोने के अनवरत क्रम की ओर संकेत करती है। लेकिन कौन किसे खो रहा था—यह पूछते ही ज्ञात होगा कि प्रयोग नियम-विरुद्ध है। **अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्वुधि विशाल; स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय; एक भी, अयुत लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त; कल लड़ने को हो रहा विकल वह वार-वार**—दस पंक्तियों मे पाँच वार निराला ने रहा का प्रयोग किया है। इससे पता चलता है कि वह इस क्रिया पर कितना निर्भर है। यह क्रिया वड़ी जानदार है; वार-वार प्रयोग करने पर भी वेजान नही होती। दिशा का ज्ञान खो रहा है, विशाल अम्वुधि गरज रहा है, राघवेन्द्र को संशय हिला रहा है, जो हृदय दुराक्रान्त रहा है, वह फिर लड़ने को विकल हो रहा

है। इन समस्त क्रियाओं में आन्तरिक संगति है, एक क्रिया दूसरी की ओर ठेलती है, परस्पर वे एक-दूसरी को संवर्धित करती हैं, राम और उनका परिवेश क्रियाओं की एक ही शृंखला में बँध जाते है। कविता का यह अंश जो इतना प्रभावशाली है, उसका एक कारण रहा का प्रयोग है।

शब्दों के प्रयोग मे निराला की ये कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं।

अभिनव प्रयोग

अलक, पलक और छलक—निराला के ये तीन प्रिय शब्द है और कभी-कभी एक साथ आते है यथा—अलक-पलक में छिपी छलक (गीतिका, पृ. ३१)। इनके लिंग-वचन के अनुसार निराला इनका कौन-सा रूप स्थिर करते है, यह व्याकरण पर नही, संदर्भ विशेष में कलात्मक औचित्य पर निर्भर है।

खुले अलक, मुंद गये पलक-दल, श्रम-सुख की हद होली।

(गीतिका, पृ. ४४)

यहाँ अलकें खुली न लिखकर निराला ने लिखा—खुले अलक। अलक और पलक की सानुप्रास पदावली रचना है। अलकें और पलकें लिखकर भी यह लक्ष्य सिद्ध हो सकता था किंतु उन्होंने पलक के साथ दल जोडने का विचार कर लिया है। मुंद के बाद दल आना ही चाहिए, आखिरी हिस्से में हद। उन्होंने खुले अलक के लालित्य को पलक दल के मार्दव से, श्रम-सुख की लघुता को दल और हद की गुरुता से जोड़ दिया है। पंक्ति की ध्वनि-रचना में द और ल वर्ण मूल सूत्र है। इसलिए पलक दल का प्रयोग अनिवार्य है, पलक दल है, तब अलक ही का प्रयोग होगा, अलकों का नही। 'तुलसीदास' मे निराला ने लिखा :

विखरी छूटी शफरी-अलकें,
निष्पात नयन-नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता। (बंद ८३)

यहाँ अलक-पलक-छलक तीनों साथ हैं। अलक-पलक में छिपी छलक में शृंगार के हाव-भाव हैं, यहाँ भिन्न स्थिति में उग्र सतेज रूप का चित्रण है। तीनों शब्द फासले पर है, उनकी व्यंजना-शक्ति में परिवर्तन हो गया है। खुले अलक मुंद गए पलक दल में पुंल्लिग प्रयोग होने पर भी कोमलता है, अलकें और पलकें स्त्रीवाचक होने पर भी परुपता की द्योतक है। जागो फिर एक वार (१) में वही पलकें सुकुमार भाव व्यक्त करती है भिन्न पदयोजना के कारण।

पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह-विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें रातें मन मिलन की
मूँद रही पलकें चारु,
नयन जल ढल गये,
लघुतर कर व्यथा भार।

इन पंक्तियों में कोमल वर्णों से निराला ने जो माधुर्य उत्पन्न किया है, उसमे पलकें वृद्धि करती हैं, विरोधी स्वभाव की ध्वनि में उसकी कोमलता दब नहीं जाती। इसके अलावा पपीहे, बोल रहे, सेज, बातें, रातें, ढल गये—में बार-बार ए स्वर की आवृत्ति से निराला ने जो व्यूह रचा है उसमे अलकें अनिवार्य हैं, ए स्वर के कारण। यदि इसी तरह की व्यूह-रचना मे दूसरे शब्दों के ए से अलकें के ए की कमी पूरी हो जाय तो निराला उसे फिर पुल्लिग रूप देकर अलक लिख देंगे!

खोली आँखें आतुरता से, देखा अमन्द
प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गन्ध।

'वनवेला' की इन पंक्तियो मे निराला ने आँखें, से, देखा में पहले तीन बार ए स्वर दोहराया। फिर प्रे-के-से द्वारा उसी स्वर पर बल दिया। अलकें के बिना काम चल सकता था, पंक्ति में एक मात्रा भी बढ़ती थी। निराला ने लिखा—प्रेयसी के अलक।

गद्य में एक जगह लिखा है: "शब्द-बंधों के सहस्रों तरंगों से अबाब उद्वेलित अवरोध" (सुधा, फरवरी '३०, संपा. टि.—३)। संभव है ए की आवृत्ति के विचार से शब्द-बंधों की न लिखकर शब्द-बंधों के लिखा हो। भार पलक परिमल के शीतल—('पारस', परिमल, पृ. ६४) यहाँ पलक, परिमल, शीतल मे ह्रस्व अ-स्वर की प्रधानता है, पंक्ति मे ए केवल एक है। निराला ने पलक को पुंल्लिग रूप मे ही स्वीकार किया।

'सरोज-स्मृति' में निराला ने छलक को स्त्रीवाचक रूप में ग्रहण किया है: आँसुओं सजल दृष्टि की छलक। 'तुलसीदास' मे यही स्थिति है किंतु वहाँ निराला ने उसका बहुवचन छलकें बनाया है। इस शब्द का एकवचन प्रयोग ही हिंदी की प्रकृति के अनुकूल जान पड़ता है किंतु 'तुलसीदास' में उसके बहुवचन प्रयोग ने भाव-तरंगें उठा दी हैं।

तरंग शब्द हिन्दी मे स्त्रीवाचक रूप मे स्वीकृत है। 'तरंगों के प्रति' (परिमल, पृ. ७२) कविता में निराला को यही रूप मान्य है और उसी हिसाब से आती हो, गाती हो आदि क्रियाओं का प्रयोग उन्होने किया है। 'प्रेयसी' के आरम्भ (अनामिका, पृ. १) में भी लिखा है—लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की। किन्तु दे मैं करूँ वरण—इस गीत में उन्होंने लिखा—

प्राण संघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं।

तरंग में ग वर्ण की ध्वनि मुखर है, तरंगें में दवी हुई, ए स्वर उसकी शक्ति मानो खीच लेता है। इसके सिवा संघात और सिंधु में ध्वनि-साम्य है। तरंग का पुंल्लिग-प्रयोग यहाँ कलात्मक दृष्टि से उचित है। जहाँ वहुवचन का प्रश्न नही, वहाँ निराला स्त्रीलिंग रूप स्वीकार कर लेते हैं : लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की। तरंगों-तरंगें की तुलना में तरंग उन्हें पसंद है, ग वर्ण के शक्तिमान वने रहने के कारण। समास-रचना मे लिंग-वचन का झगड़ा नही, निराला तरंग-रूप का प्रयोग वार-वार करते है :

साम्राज्य सप्त-सागर-तरंग-दल-दत्त माल।

('एडवर्ड अष्टम के प्रति', अनामिका, पृ. १९)

शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़।

('राम की शक्तिपूजा', उप., पृ. १५३)

ऐसी पंक्तियों मे तरंगें लिखने से ध्वनि-योजना अशक्त हो जायगी। इसी वात को ध्यान मे रखते हुए समास-रचना का अभाव होने पर भी निराला ने गीत में लिखा—कितने तरंग हैं।

निराला के शव्द-संसार मे ध्वनि साम्राज्ञी है। उसके लिए वह व्याकरण और छंद-रचना के नियम तोड़ते है। जहाँ ध्वनि का शासन नही है, वहाँ छंद-व्याकरण का अनुशासन भग करने में कोई औचित्य भी नहीं है। 'तुलसीदास' में उन्होने समाज को स्त्रीलिंग माना—लख सादर, उठी समाज श्वसुर परिजन की। (पृ. ४१) नये पत्ते मे उन्होने उसे पुंल्लिग माना—जनता पर जादू चला राजे के समाज का। (पृ. ३२) यह तर्क गलत होगा कि 'तुलसीदास' मे 'उठी' से ध्वनि-साम्य पैदा करने के लिए 'की' अनिवार्य थी इसलिए उन्होने समाज को स्त्रीलिंग माना। यह संभव है कि 'तुलसीदास' लिखते समय उनके मन मे समाज शव्द स्त्रीलिंग रहा हो, नये पत्ते मे उन्होने अपना भ्रम या अनिश्चय दूर कर लिया हो।

कम-से-कम शव्दों के प्रयोग द्वारा अधिक-से-अधिक अर्थ निकालने के उद्देश्य से निराला जगह-जगह कारक चिन्हो को निकाल देते हैं। अनेक रचनाओ मे जहाँ शव्द-योजना कमजोर है, लगता है निराला ने छंद-निर्वाह की कठिनाइयों से वाध्य होकर ऐसा किया है। सुमन चुने जाने के ज्यों भय—(गीतिका, पृ. ६७) सुमन चुने जाने के भय से; से का लोप। अँगुलि-घात गुंजा मृदु गुंजन—(उप., पृ. ७७) अँगुलि-घात से मृदु गुजन गुँजाकर; यहाँ भी से का लोप। लेते सौदा जब खड़े हाट—(तुलसीदास, पृ. ३७) हाट में की जगह केवल हाट। कारक चिन्हो के अलावा अन्य आवश्यक शव्द भी निकाल देते हैं। दौड़ते सभी कैमरा हाथ—(वनवेला, अना., पृ. ८६) हाथ में कैमरा लिए हुए की जगह केवल कैमरा हाथ।

किसलयों के अधर यौवन-मद
रक्ताभ। (दान, उप., पृ. २२)

यौवन-मद से किसलयों के अधर रक्ताभ है। मधुर स्वर तुमने वुलाया—(अर्चना, पृ. ८३) तुमने मधुर स्वर मे वुलाया। गगन के तारकों वन्द हैं कुल द्वार—(उप.,

पृ. ८५) गगन के तारकों के कुल द्वार बंद हैं।

ओस पड़ी, शरद आई।

हरसिंगार मुसकाई। (आराधना, पृ. २३)

हरसिंगार के फूलों में मुसकराई। इस तरह के प्रयोग निराला-काव्य मे बिखरे पड़े हैं। अन्तिम उदाहरण में चित्र स्पष्ट है; लोकगीत में इस तरह की स्वच्छन्दता खलती नही। **गीतिका** और **तुलसीदास** से जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमे सम्बन्ध-वाचक शब्दों के अभाव का विशेष औचित्य नहीं।

जहाँ ध्वनि का शासन है, वहाँ शब्द-योजना में नियम-भंग होने से कलात्मक सौन्दर्य बढ़ता है। जहाँ छंद का शासन है अर्थात् निराला को पंक्ति की मात्राएँ पूरी करने के लिए या तुक मिलाने के लिए भर्ती के शब्द या अप्रयुक्त शब्द, कठिनाई से अर्थ प्रकट करने वाले शब्द रखने पड़ते है, वहाँ कला का ह्रास होता है।

बीत रे गई निशि,

देश लख हँसी दिशि—(गीतिका, पृ. १८)

दिशि से दिशा अधिक स्वाभाविक है किन्तु श की आवृत्ति द्वारा ध्वनि यहाँ अपना शासन कायम किए है।

चकित चपला के नयन नव,

देखती हो भू-शयन तव। (उप., पृ. ४५)

अपना भूशयन देखती हो; अपना की जगह तव का प्रयोग। यहाँ भी ध्वनि के माधुर्य में तव का अनौचित्य छिप गया है यद्यपि उसका प्रयोग हुआ है नव से तुक मिलाने के लिए। लजाती रहे स्नेह-दल तूम—(उप., पृ. ३१) यहाँ कष्ट से अर्थ प्रकट करने वाला तूम, चूम और झूम के साथ तुक मिलाने की मजबूरी जाहिर करता है।

सदा बाढ़ में वही मन्द सरि—

खोने कूल न कोई जल-हरि;

महाराज ने भी लख लघु अरि

रक्खे पग गिन गिन

सरि के साथ तुक मिलाने के लिए हरि और अरि आए हैं और उन्हे खपाने के लिए निराला ने दुरूह पद-रचना की। **अरघान की फैल**—(आराधना, पृ. ७) इस सुन्दर गीत मे लोकगीतों का ध्वनि-वातावरण है, उसमे **आसमाँ** रूप फबता नही। बहुत दिनों बाद खुला आसमान मे आसमान रूप उचित है किन्तु आसमाँ के साथ जैसा अर्थ-संसर्ग है, वह **अरघान की फैल** के साथ मेल नही खाता। **उड़ी आसमाँ को खुली धूल की गैल**—इस पंक्ति में एक मात्रा कम करने के लिए निराला ने आसमाँ रूप रखा है।

अन्तिम दौर की रचनाओं मे निराला अक्सर तुक मिलाने के परिश्रम से बचना चाहते है। यह कार्य उनके लिए कभी सुखद नही था, अंतिम दौर में थकान का अनुभव होने पर वह और भी अप्रिय हो गया। एक पंक्ति में 'कलियाँ' लिखा,

दूसरी में 'आवलियाँ'। यदि भ्रमरावली हो सकता है तो आवलियाँ क्यों नही ? अवली से तुक न मिलती थी, अवलियाँ से एक मात्रा कम पड़ती थी, इसलिए आवलियाँ लिखा। फिर 'मछलियाँ' और 'तनियाँ' से दूसरे बंदों में तुक मिलाई (अर्चना, पृ. ७०) इस तरह की मिसालें अर्चना और आराधना में बहुत मिल जाएँगी। किंतु कुछ गीतो में उन्होंने अन्त्यानुप्रास के लिए शब्द ही ऐसे चुने हैं जिनमे छायावादी कानो को कष्ट हो।

छोड़ दो, न छेड़ो टेढ़े। (उप., पृ. ६७)

दो ड़, फिर ढ़। टेढ़े के साथ खेड़े, पेड़े और बेड़े की तुकबन्दी। यह उनकी असमर्थता का प्रमाण नही है।

अनेक हिन्दी कवियों की तरह निराला मुहावरों के प्रयोग पर विशेष ध्यान नही देते, ध्वनि या छंद के अनुसार मुहावरेदार भाषा का ढाँचा तोड़ देते है और अपना गढ़ा हुआ मुहावरा जमाते है। मेरा मधुर मुझसे दूर है, इस तरह कोई मधुर का प्रयोग नही करता। निराला ने लिखा,

सरि, धीरे बह री !
व्याकुल उर, दूर मधुर,
तू निष्ठुर, रह री ! (गीतिका, पृ. १६)

यहाँ भी ध्वनि का शासन है। उर के साथ मधुर; धीरे के बाद ध की आवृत्ति। प्रयोग खलता नही। अँगुलि-घात गुंजा मृदु गुंजन—(उप., पृ. ७७), यहाँ गुंजा और गुंजन के संयोग से कोई बहुत अच्छी ध्वनि-रचना नही हुई। गुंजन को गुँजाना कोई मुहावरा नही। प्रयोग असफल माना जायगा।

लड़ना विरोध से द्वद्व-समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर—
जाना, भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।

(तुलसीदास, पृ. २०)

तीसरी पक्ति कमजोर है। भिन्न भी देह अस्वाभाविक पद-रचना है। निर्भर और निःसंशय की खपत पंक्तियो मे खाली जगह भरने के लिए है। मुक्तछंद में इस तरह की कारीगरी का प्रायः अभाव है। किंतु निराला छंद-निर्वाह के लिए ही भाषा की प्रकृति का उल्लंघन नही करते, कई जगह वह इस भाषा की प्रकृति की ओर यथेष्ट ध्यान नही देते।

तनये, लीकर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण। (अना., पृ. ११७)

यहाँ तरुण-अरुण भरती के शब्द हैं किंतु मुख्य दोष वह नही। विदा ली—इस क्रिया के दो हिस्से एक-दूसरे से बहुत दूर पड़ गए हैं। दृक्पात कर विदा ली—यह पद-रचना कृत्रिम है, साथ ही दृक्पात करने की ध्वनि निराला के शब्द-संसार में असगत है।

स्नेह से फुल्ल आई उमड़ मुस्कान—(गीतिका, पृ. ८५)

यहाँ फुल्ल का व्यवहार अस्वाभाविक है।

तत्सम शब्दों के प्रयोग में ही मुहावरा टूटता हो, ऐसी बात नही। गले-चले-भले जैसे शब्दो का प्रयोग करते हुए भी निराला मुहावरे को निर्जीव, कही-कही हास्यास्पद बना देते हैं।

कैसी थी रात, बन्धु, थे गले-गले ! ···
तिमिर में मुदे जग, आओ भले-भले !

(गीतिका, पृ. ९६)

न मुहावरा ठीक, न शब्दों की ध्वनि ठीक। **भर दो जीकर छाला-छाला**—(आरा., पृ. २) यहाँ निराला मुहावरा गढ़ते हैं। छाला भरने से दुख की अतिशयता व्यक्त करते है। प्रयोग आंशिक रूप में ही सफल माना जा सकता है।

कई जगह निराला अप्रयुक्त शब्द रख देते हैं जो गीत में खपते नही, हिंदी की प्रकृति के विरोधी जान पड़ते हैं। पुरवाई के साथ 'अनुत्कंठित' विशेषण जमता नही है। (आराधना, पृ. ३) ऐसे ही कहाँ हल, कहाँ **अभिभावन ! चले चतुर्दिक् हल अभिभावन।** (उप., पृ. २६), **प्रासारिक, पारिक** (उप., पृ. १४), **परिमाप** (उप., पृ. २७) **अनुद्दय** (उप., पृ. ३४), **जागंतिक, अगामीयता** (सांध्य काकली, पृ. ६३) आदि ऐसे ही प्रयोग है।

कई जगह निराला की वाक्य-रचना अर्थवक्रता के शिकजे मे कसे जाने पर चरमरा उठती है।

मन्द पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की कह कथा पुरातन (**गीतिका**, पृ. ९८)

कहना चाहते है, परिमल की पुरातन कथा कहकर जो मन्द पवन बहती है, वह मानो सुधि बहती है। बहती क्रिया से निराला ने पवन और सुधि दोनों को साधा है।

यह अपल स्नेह,—
विश्व के प्रणय-प्रणयिनियों कर
हार-उर गेह ? (अना., पृ. ८९)

'वनबेला' अपल स्नेह की प्रतीक है। वह ऐसा स्नेह है जिसकी माला गूँथकर संसार के प्रेमियों और प्रेमिकाओं ने अपने गृहस्थ-जीवन को पहना दी है। अर्थवक्रता के शिकजे में वाक्य-रचना का ढाँचा चरमराता है।

था सर प्राचीन सरस,
सारस हंसों से हँस। (उप., पृ. १०)

सारस-हंसों की उपस्थिति से हँसता हुआ प्राचीन काव्य-सर सरस था। हँस क्रिया के साथ निराला ने जो बल प्रयोग किया है, उससे वाक्य लँगड़ाता है।

विवाह-राग
भर रहा न घर निशि-दिवस जाग। (उप., पृ. १३३)

रात-दिन जागकर स्त्रियाँ विवाह के गीतों से घर भर देती है—यह भाव जाग

क्रिया की गर्दन मरोड़ते हुए निराला यों प्रकट करते हैं : विवाह राग निशि-दिवस जाग घर न भर रहा !

वड़े कवियों से हम यही नही सीखते कि शब्दो का प्रयोग कैसे करना चाहिए, वरन् यह भी सीखते है कि शब्दों का प्रयोग कैसे न करना चाहिए। निराला की वाक्य-रचना में जैसे दोष हैं, उनसे अनेक कवि मुक्त हैं--हिन्दी-उर्दू दोनों के—किन्तु वे निराला से वड़े कवि नही, उनकी भाषा में वह शक्ति नही जो निराला की भाषा में है। निराला ने अपनी भाषा गढी है, जो भाषा सुनी और पढ़ी है, उसका अनुसरण भी किया है। दोनों स्थितियों में उनके शब्द-संसार के अपने नियम हैं, निराला का अनौचित्य अपने इस शब्द-संसार के नियमों का उल्लंघन करने में है। निराला ने भाषा गढ़कर हिन्दी को नई व्यंजना-शक्ति दी है, सुनी और पढ़ी हुई भाषा का अनुसरण करके हिन्दी की अन्तर्निहित शक्ति उद्‌घाटित की है। निराला के शब्द-संसार में ध्वनि की तरंगें उठती है, जहाँ ये तरंगें भाव और मूर्तिविधान के साथ ऊपर उठती हैं, वहाँ निराला के कलात्मक उत्कर्ष का जवाव नही। निराला उदात्त ध्वनि वाले शब्दो से दो पंक्तियाँ रचने के वाद दो पंक्तियाँ अनुदात्त शब्दों से रचकर रखेंगे—नाटकीय वैषम्य के लिए। निराला व्रज, अवधी के कोमल शब्दों से लोकधुन पर मधुर भाव वाले गीत रचते हैं। वह सीधे-सादे हिन्दी शब्दों से ऐसा दुख व्यक्त करते हैं कि उसकी गहराई के आगे सारी उदात्त शब्दावली फीकी लगती है। निराला हिन्दी की शक्ति उस तरह की शब्दावली से भी प्रकट करते हैं जो साधारणतः कवित्वहीन और कठोर मानी जाती है। नीरस, कर्कश शब्दों का व्यवहार करना सरल है, उनके व्यवहार से कविता रचना कठिन है। निराला कविता रचते है, केवल नीरस शब्दो का व्यवहार नही करते। यह प्रवृत्ति उनमें आदि से अन्त तक रही है, 'अध्यात्मफल' मे—जव कड़ी मारें पड़ीं दिल हिल उठा—से लेकर आराधना मे मुगरी लेकर वान कूटता है—तक। यही छाया-वादोत्तर कवियों को उनसे वहुत कुछ सीखना है।

अलंकरण

अधिकांश रोमांटिक कवियों के लिए आदर्श कविता वह है जो भावावेश मे स्वतः फूटकर वह निकले, जो विवेक से, चिन्तन और मनन के वाद न रची गई हो। ऐसी कविता स्वभावतः अलंकारहीन होगी क्योंकि अलंकारो का काम कविता को सजाना है, भावोत्कर्ष मे सहायक होना नही। यह धारणा निराला में भी है।

लिखा है :

निरलंकार कवित्व अनर्गल
किसी महाकवि कलित-कंठ से
झरता था जैसे अविराम कुसुम-दल ।
('सिर्फ एक उन्माद', परिमल, पृ. १४४)

जैसे अविराम कुसुम दल झरते है, वैसे ही कवि-कण्ठ से कवित्व फूटता है। किन्तु निरलंकार कवित्व के वर्णन मे निराला सालंकार भाषा का प्रयोग करते हैं। **किसी-महाकवि-कलित-कंठ** में अनुप्रासों की बहार है। कुसुमदल से कविता की तुलना करने मे उपमा अलकार की सजावट है। यद्यपि अनुप्रासो में विशेष कारीगरी नही और कुसुमदलों के झरने की क्रिया जरा सुस्त है, इसलिए उसे अनर्गल कहने में विशेष औचित्य नहीं, फिर भी निराला का अलंकार-प्रेम स्पष्ट है क्योकि निरलंकार कवित्व के वर्णन में उन्होंने सालंकार भाषा का प्रयोग किया है।

निराला का विचार था कि वेदों मे पूर्ण ज्ञान है और यह ज्ञान ऋषियों ने अलंकारहीन भाषा मे व्यक्त किया है। 'जागरण' कविता मे उन्होने लिखा :

सहज भाषा मे
समझाती थी ऊँचे तत्त्व
अलंकार-लेश-रहित, श्लेषहीन,
शून्य विशेषणों से—
नग्न नीलिमा से व्यक्त
भाषा सुरक्षित वह वेदों मे आज भी। (परिमल, पृ. २३५)

कविता स्वतःस्फूर्त होगी, पूर्ण ज्ञान की अभिव्यक्ति होगी तो उसमे अलंकार का लेश भी न होगा, इस धारणा से प्रेरित होकर निराला ने कल्पना की कि वेदों की भाषा अलंकारहीन है। इस भाषा के वर्णन मे उन्होने स्वयं **लेश-श्लेश, शून्य-विशेषण, नग्न-नीलिमा** की सानुप्रास पदावली रची। अनुप्रासों के साथ उपमा अलंकार सजाया। वैदिक भाषा नीलिमा के समान थी। किन्तु नीलिमा कहना काफी नही था, उसके साथ उन्होने छायावादी विशेषण 'नग्न' जोड़ा, श्रृंगारी कविता के **तुम्हारी नग्न कान्ति नव लाज** की तरह (परिमल, पृ. ६२)।

नीलिमा असाधारण उपमान है। उसकी सार्थकता इसी मे नही है कि वह ब्रह्म का प्रतीक है अथवा स्वयं अनादि तत्त्व है, वरन् इसमें भी है कि निराला को उदात्त भाषा नीले रंग की दिखाई देती है। उपमा की शक्तिमत्ता का कारण निराला की सूक्ष्म संवेदन-क्रिया है, यहाँ वह अलंकार मात्र नही, कविता की भाव-संरचना का अभिन्न अग है। तुलनीय है **वेला में श्वेत गंध: कुंद हास में अमंद श्वेत गंध छाई।** (पृ. २७)।

तत्त्व एक है आकाश या अंधकार। उस अंधकार के अलंकार की तरह चन्द्रमा दिखाई देता है किन्तु जो स्वयं अलंकार है, निराला उसे निरलंकार कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। चन्द्रमा को देखकर मुखचन्द्र याद आता है, सघन अलकों से घिरा

हुआ मुखचन्द्र। पता नहीं, मूलतत्त्व मुख है या अलकें। निराला ज्ञान के उदात्त स्तर पर गीत आरम्भ करते है : जग का एक देखा तार। (गीतिका, पृ. २२) फिर फूल, खुशबू, हवा की दुनिया पार करते हुए आसमान में पहुँचते हैं :

तत्त्व-नभ-तम मे सकल-भ्रम-शेष, श्रम विस्तार,
अलक-मण्डल मे यथा मुख चन्द्र निरलंकार।

ज्ञान के उदात्त स्तर से जो गीत आरम्भ होता है, उसकी समाप्ति मुखचन्द्र से हो, इसमें एक आन्तरिक सगति है। निराला अगणित कंठो से जो झंकार सुनते है, वह देह-सप्तक से फूटती है। रूप और गन्ध के संसार का पूर्ण विकास चन्द्र-मुख में है, इसलिए चन्द्रमा मूल नभ तत्त्व का अलंकार नहीं, उसका पूर्ण विकास है, उसमे अन्तर्निहित सौन्दर्य की अभिव्यंजना है। 'यथा' शब्द से आरम्भ करके निराला जो उपमा अलंकार प्रस्तुत करते है, वह बाहरी सजावट नहीं, उसमें गंभीर अर्थ-ध्वनि है। धरती से फूटने वाले राग की चरम परिणति मुखचन्द्र है। इस मुखचन्द्र के निरलंकार सौन्दर्य का वर्णन निराला भ्रम और श्रम के अनुप्रास जोड़कर, अलक और अधकार मे साम्य दिखाकर सालंकार भाषा के प्रयोग से करते हैं।

क्या दृष्टि ! अतल की सिक्त धार
ज्यो भोगावती उठी अपार,
उमडता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील नील,
पर बँधा देह के दिव्य बाँध,
छलकता दृगो से साध-साध। (अना., पृ. १२६)

जैसे निराला को उदात्त भाषा नीली दिखाई देती है, वैसे ही उदात्त सौन्दर्य में नीले जल की तरगें उठती दिखाई देती हैं। यहाँ भी उपमा अलंकार सजावट के लिए नहीं है, वह निराला के मूल संवेदन को प्रकट करने का ढंग है। वह उपमेय से ध्यान हटाकर उपमान पर केन्द्रित नहीं करता वरन् उपमेय के बोध को ही गहरा करता है।

ले चला साथ मैं तुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर, स्वर्ण-झनक
अपने जीवन की। (उप., पृ. १२८)

भिक्षुक महज उपमान नहीं है, उस एक शब्द में निराला के जीवन का समस्त दैन्य, समस्त वेदना केन्द्रित है (भज भिखारी, विश्वभरणा, अर्चना मे इसी कवि ने लिखा था)। स्वर्ण-झनक; कुछ समय के लिए उसे सुनने का सुख, फिर वह भिक्षुक से दूर। वह 'अलंकार' नहीं, करुणभाव को और गहरा करने का ढंग है।

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार—राम के सिर पर जटाओं का ही मुकुट था, वह मुकुट भी खुल गया है। घनी केशराशि पीठ, छाती और बाँहों पर ऐसे फैल गई है जैसे दुर्गम पर्वत पर अंधकार फैल गया हो। इस उपमा की सार्थकता इस बात मे नहीं है कि राम की केशराशि अंधकार के समान घनी और

काली है वरन् इसमें कि राम को जो अंधकार घेरे हुए है, उसकी ओर इस उपमा मे संकेत है। अंधकार महज उपमान नहीं, वास्तविक है, धरती से आकाश तक फैला हुआ है। इसके अलावा वहाँ एक पर्वत भी है जिसके पास राम बैठे हुए हैं। उस पर्वत पर अंधकार उतरा है, उपमान के दूरवर्ती संसार मे नही, कथा के प्रत्यक्ष निकटवर्ती संसार में। निराला उपमा के द्वारा राम और उनके परिवेश दोनों का चित्रण कर रहे हैं, यह उपमा 'अलंकार' की सार्थकता है।

प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गध—फूलो की गन्ध और अलक-गंध निराला के मन में वैसे ही सम्बद्ध है जैसे जूड़े मे वेले के फूल। धूप मे जिसका माथा गरम हो गया, वह परेशान-हाल कवि औरत के ख्वाव देख रहा है, उपमान की मादकता में यह करुण अर्थध्वनि है। वनवेला मस्तक पर तापत्रास लिए हुए ऊपर उठती है; निराला उपमा देते हैं,

ज्यों सिद्धि परम
भेदकर कर्म जीवन के दुस्तर क्लेश, सुषम
आई ऊपर। (अना., पृ. ८७)

यह सिद्धि कवि से उतनी ही दूर जितनी दूर उस तापत्रास मे प्रेयसी की अलक-गन्ध। वनवेला की सुगन्ध मन मे सोती हुई इच्छाएँ जगाती है, इनमे एक इच्छा कवि-जीवन में सिद्धि प्राप्त करने की है। कर्म जीवन के दुस्तर क्लेश तो है, सिद्धि वहुत दूर है। जो एक साधारण अलंकार मालूम होता है, उसमे अर्थ की यह गहराई है, जीवन के अन्तर्विरोधों का मार्मिक चित्रण है। आगे निराला फिर उपमा देते हैं, प्रेयसी अव पूरी अप्सरा वन गई है, गन्ध नारी के रूप में परिवर्तित हो गई है :

जैसे पारकर क्षार सागर
अप्सरा सुघर
सिक्त तन केश, शत लहरों पर
काँपती विश्व के चकित दृश्य के दर्शन-शर।

कितना वैषम्य है अप्सरा के इस स्वप्न मे और कवि के वास्तविक परिवेश मे जहाँ शत लहरो की शीतलता के वदले—

तप तप मस्तक
हो गया सान्ध्य नभ का रक्ताभ दिगन्त फलक।

उपमा की सार्थकता इसी में नही है कि वनवेला धरती के गर्भ से तापत्रास पार करती हुई ऊपर उठती है, वैसे ही अप्सरा जलराशि के जड स्तर पार करती हुई ऊपर उठती है, वरन् इसमें कि वह कवि और उसके परिवेश के अन्तर्विरोधो को निखार देती है, कविता में अन्तर्निहित नाटकीय वैषम्य को और गूढ़ वना देती है।

स्नेह निर्झर वह गया है।
रेत ज्यो तन रह गया है। (अणिमा, पृ. ५५)

निर्झर निराला के वाहर नही, उन्ही के भीतर है। उसमे अव जल नही, केवल रेत वची है। स्नेह में श्लेष भी है, कितना सार्थक, स्नेह पाने और स्नेह देने की शक्ति

ही मानो क्षीण हो गई है।

> लीला का संवरण-समय फूलों का जैसे
> फलो फले या झरे अफल, पातों के ऊपर
> सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव;
> ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।
>
> (सान्ध्य काकली, पृ. ८७)

फूलों से फल प्राप्त हो सकते है, वे फल दिए बिना झर भी सकते हैं। मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है; सिर्फ जिया और मर गया—यह भी सम्भव है। निराला का जीवन सफल रहा या असफल—पढने वाला फैसला करे। कविता लिखते समय जो वास्तविकता है, वह यह कि लीला का संवरण-समय आ पहुँचा है और भीष्म की सेज कठिन है, वह ताक रहे हैं, अवश्य ही सूनी आँखों से आकाश ताक रहे होगे। भीष्म की कठिन सेज और सुकुमार फूल—दोनो का वैषम्य; फूल की सार्थकता फल बनने मे है, निराला की साधना सफल हुई—इसमें जनता को सन्देह है, यह वेदना। फिर भी भीष्म के समान युद्ध के बाद सोने में अपने प्रयत्न की गरिमा के प्रति आश्वासन है। उपमा भावों का द्वंद्व प्रकट करती है, अलंकार मात्र नही है।

निराला रूपक बाँधने मे कुशल है और यह कौशल उन्हे अत्यन्त प्रिय है। वसन्त से शुरू करेंगे तो पूरा ऋतु-चक्र समाप्त करके ही दम लेंगे। प्रसाद के जीवन की सारी कहानी ऋतुओ के रूपक के सहारे कहते हैं, वैसे ही पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है आदि पंक्तियों मे अपने जीवन की कथा समाप्त करते हैं। 'देवी सरस्वती' मे भारतीय संस्कृति की गाथा ऐसे ही रूपक के सहारे रचते हैं। रामचन्द्र शुक्ल वाली कविता मे ऋतुओं की जगह तिथियों का ठाठ है। ये रूपक निराला को कविता के लिए एक ढांचा दे देते हैं जिसे वह भावों-संवेदनों से भरते रहते है। 'तुलसीदास' मे सांस्कृतिक संध्या, उसके बाद रात्रि, फिर प्रभात का रूपक बाँधते हैं और सारी घटनाएँ इसी रूपक की सीमाओ के भीतर होती हैं। रूपक अलंकार नही, कविता का मूल रचना-विधान बन जाता है।

कली धरती की गन्ध लिए ऊपर उठती है, फूलो से फल बनते हैं, पेड़ो से पुराने पत्ते झरते है, उनमे नए पत्ते आते हैं, धरती वसन्त में युवती बन जाती है, सूर्य उनका प्रेमी है, सूर्य समुद्र का जल सोखकर बादल बनाता है, फिर वही बादल धरती पर बरसता है—इस तरह के प्राकृतिक व्यापारों से निराला अपने रूपक रचते है।

वसन्त का वर्णन शुरू किया। प्रकृति और नारी के सौन्दर्य का चित्रण एक साथ किया। लताएँ किसलयों के वस्त्र पहने है, वृक्ष उनके पति हैं, वे उनसे जा मिली है। भौरो और कोयलो का स्वर मंगल-गीत बन गया। कलियो मे खुशबू आई, आँखो में यौवन की माया जागी। सरसी के हृदय में सरोज उठे, केशर के केश खुल गए, पृथ्वी का स्वर्ण शस्य-अंचल लहराया। (गीतिका, पृ. ३) इस रूपक

की विशेषता यह है कि निराला के लिए प्रकृति और नारी के सौन्दर्य एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे को संवर्धित करते है। प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप मे इस्तेमाल न करके वह नारी से उसका तादात्म्य स्थापित कर देते हैं। प्रकृति और नारी--दोनों शक्तिरूपा हैं, इसलिए नारी-प्रकृति के रूपकों मे दार्शनिक संगति है।

कौन तुम शुभ्र किरण वसना ? (गीतिका, पृ. ३२)

इस गीत में प्रकृति पर मानवीयता का 'आरोप' नही किया गया, यह कवियों का सुपरिचित 'पर्सोनिफिकेशन'-व्यापार नही है, यह दार्शनिक आधार पर नारी और प्रकृति के सौन्दर्य का तादात्म्य-बोध है। अंगो की गन्ध ही मलय पवन है, अलकों की सघनता मेघमाला है, जिस मधुऋतु में प्रकृति का सौन्दर्य निखरता है, उसी में नारी-जीवन सफल होता है।

निराला ने होली-गीत मे लिखा :

फूल-सी देह,—द्युति सारी,
हल्की तूल सी सँवारी। (उप., पृ. ५८)

यहाँ फूल और देह दो अलग चीज़ें हैं, दोनों को मिला दें तो 'जुही की कली' और 'शेफालिका' की रचना होगी। फूलों की गंध और सुकुमारता निराला के नारी-सम्बन्धी चिन्तन से अभिन्न है।

रूपक वाँधने की तरह निराला को प्रतीक-योजना प्रिय है। भौंरा फूल या कली का प्रेमी है, परम्परागत प्रतीक है। **परिमल** की 'भ्रमरगीत' और 'वदला' जैसी कविताओं में निराला ने उस प्रतीक का उपयोग किया है। प्रतीक पुराना है, किन्तु उसके द्वारा जो सौन्दर्य का संसार उद्‌घाटित किया है, उसका रूप-रस-गंध-वोध नये युग का है ('भ्रमरगीत' में) या भौरे के प्रेम की परिणति अनोखी है ('वदला' मे)। प्रपात, निर्झर आदि आधुनिक रोमांटिक काव्य से प्राप्त किए हुए प्रतीक हैं। निराला ने उनके प्रयोग में जो नवीनता दिखाई है, वह अंधकार और मार्ग की वाधाओं के चित्रण में (यथा **परिमल** में 'स्वागत', 'प्रपात के प्रति' आदि)। 'रास्ते के फूल से' जैसी रचनाओं में प्रतीक-योजना कम, अन्योक्ति-काव्य का चमत्कार अधिक है।

वादल सामाजिक क्रांति का प्रतीक है, निराला के प्रयोग में मौलिकता है। 'वादलराग' (६) मे निराला ने वर्षा का भरा-पूरा चित्र दिया है। किसान के विना यह चित्र अधूरा है। ऊपर है वादल, नीचे दलदल, नदियाँ, पर्वत और इनके वीच मे खेत, खेतों मे शस्य अपार, अपार शस्य के वीच हाड़ों का ढाँचा लिए किसान। चित्र के अग्रभाग में समूचे परिवेश के साथ किसान है; पृष्ठभूमि में अंगना-अंग से लिपटे हुए वे धनी हैं जिन्होंने उसका सार चूस लिया है। निराला की प्रतीक-योजना मे किसान और वर्षा दो अलग वस्तुएँ न होकर एक ही यथार्थ के दो छोर हैं। वादल ध्वंसक और सर्जक दोनो है; निराला उसकी इस दोहरी कार्यवाही के वहाने सामाजिक क्रान्तिकारी की दोहरी भूमिका चित्रित करते हैं।

प्राकृतिक वस्तुओं के अलावा निराला ने देवी-देवताओं को भी प्रतीक वना

दिया है। **रूखी री यह डाल वसन-वासन्ती लेगी**—इस गीत में उन्होंने देवी पार्वती को वसन्तागम से पूर्व रूखी-सूखी प्रकृति का प्रतीक बनाया है। 'देवी सरस्वती' में सरस्वती वाणी मात्र की प्रतीक न होकर उस धरती की प्रतीक बना दी गई है जहाँ वाणी के द्वारा मनुष्य अपने साहित्य का विकास करता है। 'राम की शक्तिपूजा' में राम और महावीर मनुष्य के पराजित और अपराजित मन के प्रतीक माने जा सकते हैं। राम शक्ति की मौलिक कल्पना करके पार्वती को भारत की धरती मे देखते है; जब उनका मन ऊपर चढ़ता है तब वह उस आकाश को पार कर जाते है जहाँ शिव निवास करते हैं।

जिन पाँच तत्त्वों से मनुष्य समेत सारा संसार रचा माना जाता है, वे भी निराला के लिए प्रतीक हैं। उनके प्रतीक होने का यह अर्थ नही कि उनकी वास्तविक सत्ता नही। वे एक ही शक्ति के भिन्न रूप है; वही शक्ति मनुष्य के जीवन में प्रतिफलित होती है। इसलिए प्रकृति और मानव के समान गुणो को व्यक्त करने के लिए पाँच तत्त्व प्रतीक बन जाते है। पृथ्वी, उसकी गंध मनुष्य के काम-जीवन से सबद्ध है: **रँग गई पग-पग धन्य धरा**, इत्यादि। जल यौवन और सौन्दर्य के विकास का प्रतीक है—**ज्यों भोगावती उठी अपार** इत्यादि; जल यदि स्वयं सुन्दर नही तो कमल और अप्सरा जैसी सुन्दर वस्तुओ का जन्मस्थान है। तेज वाणी, काव्य, सौन्दर्य की प्रखरता का प्रतीक है। **मेरे स्वर की रागिनी वह्नि**—(अना., पृ. १२७) में काव्य के उत्कर्ष का प्रतीक है अग्नि। वनवेला अपने सौन्दर्य की प्रखरता के कारण अग्नि-शिखा है। (उप., पृ. ८८) समस्त प्रकृति का सौन्दर्य अग्निरूप है। गगन घन विटपी मे नक्षत्रों के फूल खिले है; नीचे ज्योत्स्ना के वस्त्र पहने प्रकृति हँस रही है। प्रकृति का यह सौन्दर्य अग्नि का ही रूप है:

अरणियों की अग्नि तू दिक् दृगो की पहचान। (**गीतिका**, पृ. ६२)

वायु प्रणय की प्रतीक है, गन्ध ढोकर लाती है। बँगला-हिन्दी कविता मे उसका यह प्रतीक रूप बार-बार व्यंजित हुआ है:

प्रणय-श्वास के मलय स्पर्श से
हिल हिल हँसती चपल हर्ष से। (उप., पृ. १७)

इसी तरह आकाश मन का प्रतीक है। मन के अनेक स्तर है, इसलिए चेतना का ऊर्ध्व संचरण दिखाने के लिए निराला मन को आकाश मे ऊपर चढ़ते हुए दिखाते हैं जैसे 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' मे।

यह प्रतीक-योजना काव्य की सजावट के लिए नही है, वह निराला के चिन्तन और भावबोध का अभिन्न अंग है।

निराला की सानुप्रास पदावली उनकी क्रीड़ावृत्ति का परिचय देती है, ध्वनि-खंडों की आवृत्ति काव्य का अलंकरण है। उनकी श्रेष्ठ रचनाओ मे उदात्त या अनुदात्त ध्वनि-प्रवाह भावों-संवेदनो के उतार-चढ़ाव के साथ आगे बढता है। वहाँ वह कवि की मूल रचना-सामग्री है, कविता का बाह्य अलंकरण नही। निराला और रीतिवादी कवियों के शब्द-योजना कौशल में यह अतर है। वैसे ही उपमा-रूपक

आदि अलंकार निराला के रूप-रस बोध का परिचय देते हुए काव्य तत्त्व को निखारते हैं, उनकी प्रतीक-योजना संसार के प्रति उनकी व्यापक दार्शनिक दृष्टि के सहारे काव्य में नया उत्कर्ष पैदा करती है।

अर्थ-चमत्कार

सहज भाषा वह जो अलंकार-लेश-रहित, श्लेषहीन हो। किन्तु निराला शब्दों की ध्वनि से खेलते हैं, उनके अर्थ से खेलते हैं। लेश के बाद श्लेष—यहाँ केवल ध्वनि-क्रीड़ा है, अर्थ-क्रीड़ा नही। **लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात**—(गीतिका, पृ. १००) यहाँ भी ध्वनि-क्रीड़ा है किंतु सार्थक। लेश और श्लेष मे अर्थ-चमत्कार नही है, उपल और उत्पल में है। जैसे वाल्मीकि का शोक आवेश में श्लोक बन गया—शोकः श्लोकत्वभागतः—वैसे ही देवी की कृपा से निराला की राह मे जो उपल थे, वे उत्पल बन गए। उपल और उत्पल के जोड़े की तरह निराला ने दो शब्द और रखे हैं: **अवसन्न** और **प्रसन्न**। दोनों मे ध्वनि-साम्य है और अर्थ-वैषम्य। **अवसन्न भी हूँ प्रसन्न मै प्राप्तवर**—जो अवसन्न है, वह वर-प्राप्ति के कारण प्रसन्न भी है। यहाँ ध्वनि-क्रीड़ा अर्थ के उत्कर्ष में सहायक है।

'तुलसीदास' में निराला ने लिखा:

> छल-छल-छल कहता यद्यपि जल,
> वह मंत्र-मुग्ध सुनता कल-कल। (पृ. ८)

यहाँ निराला शब्द की ध्वनि और अर्थ दोनों से खेलते हैं। छल-छल पानी की आवाज़ है; उस सौंदर्य में छल है, यह भाव भी है।

> अब स्मर के शर-केशर से झर
> रँगती रज-रज पृथ्वी अंबर। (उप., पृ. १३)

जो स्मर केशर है, वे केशर है; 'केशर' की आवृत्ति। शर, केश, केशर का योग निराला को बहुत प्रिय है, कही स्मर के साथ, कही उसके बिना। **स्मर-शर हर केशर झर** (गीतिका, पृ. ७); **केशर के केश कली के छुटे**—(उप., पृ. ३); **निर्झर केशर के शर के हैं**—(आराधना, पृ. ९३); **रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी**—(उप., पृ. १४) मे निराला श्लेष द्वारा पूरे गीत में रूखी डाल और पार्वती दोनों पर अर्थ घटाते जाते हैं। **दुलारे दोहावली** मे एक दोहे के छह अर्थ करने वाले निराला को यह चमत्कार-प्रदर्शन प्रिय है। रीतिवादी चमत्कार-प्रियता से जो भिन्नता है, वह डाल के रूखेपन के वर्णन में, रूखेपन से वसन्त-वैभव

के वैपम्य-प्रदर्शन में, प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण-उत्कर्ष में।

स्मर के एक शत्रु शिव है, दूसरे राम है। मदन-भस्म और कुमारसंभव—इन दो विरोधी क्रियाओ से शिवत्व की पूर्ति होती है, विप और अमृत के सह-अस्तित्व की तरह। भक्त राम को वैष्णव दृष्टि से देखता है तो उन्हे काम का विरोधी पाता है। तुलसीदास राम के सौंदर्य का वर्णन करते हैं तो कामदेव की छवि को अवश्य परास्त कराते हैं। **कोटि मनोज लजावन हारे** इत्यादि। निराला राम और काम इन दो शब्दों के ध्वनि-साम्य पर वल देते हुए अर्थ-कौतुक करते हैं। रत्नावली जिस वाक्य से तुलसीदास के सोते हुए संस्कारो को जगाती है, उसमे राम और काम एक साथ आते हैं:

> धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
> धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
> राम के नही, काम के सूत कहलाए ! (पृ. ४५)

काम पर पूर्ण वलाघात है; राम से भरपूर वैपम्य प्रदर्शित किया गया है। काम का अर्थ मदन देव के अलावा मनुष्य का कर्म भी है; सूत का अर्थ धागा भी है। **आराधना** मे 'तुलसीदास' की शब्द-योजना की प्रतिध्वनियाँ हैं, नये अर्थ-चमत्कार के साथ। **राम के हुए तो वने काम**—(पृ. २०) यहाँ काम को भिन्न अर्थ में प्रयुक्त करते हुए निराला ने राम और काम के वैपम्य की जगह उनमें साम्य दिखाया। काम के सूत मे जो घृणाभाव था, उसे दूर करके सूत को विजय का सूत्र वना दिया:

> वह सूर्य्यवंश सम्भूत तभी
> जीवन की जय का सूत तभी।

निराला की शब्द-क्रीड़ा का यह भी एक रूप है। एक अन्य गीत मे लिखा: **काम रूप हरो काम**। (आराधना, पृ. १४) राम और काम मे विरोध है भी, नही भी है। वह स्वयं कामरूप है, तव विरोध कैसा ? काम को हरेंगे तव काम-रूप कैसे ? निराला तुलसीदास की भक्ति-परम्परा का अनुसरण करते हुए यह अर्थ-चमत्कार दिखाते हैं।

> अशरण-शरण राम,
> काम के छवि-धाम। (उप., पृ. ४८)

राम और काम मे विरोध नही। राम काम के छविधाम है। यह सौन्दर्य अशरण को शरण देने के लिए है, इसलिए काम का विरोधी भी है।

निराला की क्रीड़ावृत्ति उन्हें जव शब्दों की ध्वनि के पीछे दौडाती है, तव अर्थ पीछे छूट जाता है, ध्वनि से अर्थ का सम्वन्ध खीच-तानकर किया जा सकता है लेकिन है वह खीचतान ही।

> छलके छल के पैमाने क्या !
> आये वेमाने माने क्या !

हलके-हलके हल के न हुए,
दलके-दलके दल के न हुए,
उफले-उफले फल के न हुए,
वेदाने थे तो दाने क्या ? (आराधना, पृ. ३०)

जिस पैमाने मे छल है, वह छलक रहा है। वे वेमाने हैं, वेईमान की ध्वनि भी है; उनके करतवो के माने क्या, अर्थ क्या। यह भी कि हम उसे क्या मानें जो वेमाने है। जो भीतर से हल्के है, वे हल का साथ क्या देंगे; जनजीवन से दूर है, उसके विरोधी हैं। वे भीतर से दलके (अवधी—दरके) हुए है, चटके हुए हैं, किसी दल का साथ क्या देगे। उफल (उफन) रहे है, उनसे किसी को फल क्या मिलेगा। वेदाने हैं, विना दाने के है, दूसरों को दाना क्या देंगे; और वे दाने—अक्लमंद नही। निराला शब्द-क्रीडा से अर्थ को कैसे जोड़ते थे—उसकी यह मिसाल है। आवश्यक नही कि आप उसे स्वीकार करे। यह अर्थक्रीड़ा है और आप पन्द्रह-सोलह तरीके से अन्य अर्थ भी कर सकते है।

तेरी पानी भरन जानी है, मानी है।
वेला हारों मे लासानी है, सानी है। (सांध्य काकली, पृ. ३०)

यह एक तरह की क्रीड़ा हुई जिसमें ध्वनि के साथ अर्थ को जोड़ा जा सकता है।

वारि वन वनवारि,
वनवारि वनवारि।
वारिज विपुलवारि
पुलवारि कुलवारि। (उप., पृ. ५२)
द्रुमलता तुलवारि,
कूलकलि कुलवारि;
आकुल मुकुल वारि,
विहग संकुल वारि। (उप., पृ. ५२)

इस कविता में ध्वनि के साथ कही अर्थ जुड़ा है, कही नही जुड़ा। निराला का ध्यान अर्थ पर उतना नही जितना कुछ विवों पर है। वनवारी, वन, वारिज, विपुल वारि, द्रुमलता, कूल, कलि, मुकुल, विहग—ये विंव पहचाने जा सकते है। ध्वनि के तरल प्रवाह पर ये विंव लहराते हुए आगे वढते जाते है। वनवारी के लिए कुलकानि निछावर करने की-सी वात है। परिवेश में प्रकृति का वैभव है; केन्द्र में श्रृंगार भाव है।

ताक कमसिनवारि,
ताक कम सिनवारि। (उप., पृ. ४७)

यहाँ तक आप अर्थ कर सकते है, कमसिन वाली को ताकने की क्रिया सार्थक मान सकते है। किन्तु आखिरी वंद है :

इराविन समक कात्
इराविन सम ककात्,

इराव निसम ककात्,
सम ककात् सिनवारि ।—

यहाँ निराला ध्रुपद जैसी पुरानी गयिकी में शव्दों के उलट-फेर कर रहे है, सामान्य कविता की तरह उसका अर्थ करना व्यर्थ होगा।

निराला को जैसे ध्वनि-क्रीड़ा पसंद है, वैसे ही अर्थ-क्रीड़ा। कभी ये दोनों क्रीड़ाएँ साथ चलती है, कभी अलग। इस क्रीडा का एक रूप वह है जिसे छायावाद की लाक्षणिक शैली कहा गया है, दूसरा वह जिसमें दुरूह कल्पना से, अथवा वाल की खाल निकालने वाली तर्कवृत्ति से, निराला अर्थ-चमत्कार उत्पन्न करते है। चितवन की तूलिका उठाकर, मन की मदिरा मे मौन भर कर, नभ के नील पटल पर वह तसवीर खीच रही है—यह छायावादी कविता में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह हुआ। 'यमुना के प्रति' मे—

उठा तूलिका मृदु चितवन की
भर मन की मदिरा में मौन इत्यादि।

निराला रूप के उपासक है। मन की मदिरा में मौन भरने की अपेक्षा उनके लिए यह लिखना अधिक सहज है :

कहाँ भीगते अव वैसे ही
वाहु, उरोज, अधर, अम्वर। (परिमल, पृ. ५५)

समय की हवा से क्या सोने के फूल झरेंगे नही; क्या पलकों पर यौवन की अलक विचरती रहेगी? ('युक्ति', परिमल, पृ. ५८) व्यंजना की इस वक्रता के वदले निराला के लिए यह लिखना अधिक स्वाभाविक है : **मरा हूँ हजार मरण। (आराधना, पृ. ६)**

निराला सहजभाव से गीत आरम्भ करते है :

पास हीरे, हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान? (गीतिका, पृ. २५)

आगे उन्हें द्रौपदी को पाने के लिए अर्जुन की मत्स्य-भेद क्रिया याद आती है। उस कहानी को वह योगी की साधना पर घटाते हैं। योगी को चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार लक्ष्यवेध करना है। यह चक्र है शरीर के भीतर जिसे पार करती हुई कुण्डलिनी ऊपर चढेगी। लक्ष्य की तसवीर चित्त के निर्मल जल मे दिखाई देगी। धनुप कर्म का है। लक्ष्यवेध से जो कृष्णा प्राप्त होगी, वह सिद्धि है। निराला का ध्यान वेदान्त ज्ञान के प्रतिपादन पर उतना नही जितना योगी के सन्दर्भ में अर्जुन की कथा को घटाकर चमत्कार उत्पन्न करने पर है।

एक गीत में लिखा है :

दु:ख-योग, धरा
विकल होती जव दिवस-वश
हीन तापकरा,

गगन-नयनों से शिशिर झर
प्रेयसी के अधर भरते। (उप., पृ. ५०)

पृथ्वी सूर्य की किरणों से विकल हो जाती है, तब आकाश के नयनों से शिशिर—आँसू—झरकर उसके अधर भर देते है ! यहाँ भावगाम्भीर्य नहीं, अलंकरणवृत्ति का परिचय है।

राम सीता के नेत्रों का ध्यान कर रहे है। सीता के नेत्रों में राम की छवि प्रतिबिंवित है। राम की छवि वाले सीता के वे नेत्र स्वयं राम की आँखों में प्रतिबिंबित होते है। काफी घुमावदार कल्पना है किन्तु निराला ने उसे इतने सहजभाव से, भाषा पर ऐसा असाधारण अधिकार प्रकट करते हुए शब्दवद्ध किया है कि उसकी दुरूहता खलती नहीं,

खिच गए दृगों में सीता के राममय नयन।

संदर्भ के अर्थप्रवाह से निराला ने कल्पना की दुरूहता को दवा दिया है। यहाँ अलंकरण भावोत्कर्ष में सहायक है।

निराला के लिए सहजभाषा वह जिसमें अलंकार न हों, विशेषण न हों। वह विशेषणों को अलंकारो की श्रेणी में रखते है। मृदु, मसृण, स्निग्ध आदि विशेषण भाषा के अलंकरण के लिए है किन्तु विशेषण केवल भाषा की शोभा बढ़ाने के लिए नही होते। उनके द्वारा निराला पूरा सन्दर्भ ध्वनित करते हैं, पूरे वाक्यों का काम लेते हैं। भाषा में कसाव, शब्दों का मितव्यय, अर्थ की सघनता—शैली की ये विशेषताएँ विशेषणों के प्रयोग पर भी निर्भर है।

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया (परिमल, पृ. १५८)

जग के 'हृदय' पर ज़ोर नही है; ज़ोर है उसके 'दग्ध' होने पर। उस दग्ध से ही विप्लव का निर्दय होना सार्थक होता है।

अति गहन विपिन में जैसे
गिरि के तट काट रही हैं
नवजल धाराएँ। (उप., पृ. ६९)

गिरि के तट काटने की क्रिया गुरुत्वपूर्ण है विपिन की गहनता के कारण।

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार—

नैशान्धकार और भी भयावह हो गया है पर्वत के दुर्गम होने के कारण।

भग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विषण्ण वन। (आराधना, पृ. ६२)

'सरोज-स्मृति' की आधी कथा निराला ने इन दो पंक्तियों में कह दी है। कथा कहते है भग्न, रुग्ण और विषण्ण। तन, मन और वन सहारे के लिए है।

शिशिर की शर्वरी।
हिंस्र पशुओं भरी। (अर्चना, पृ. ११)

दूसरी—पूरी की पूरी—पंक्ति विशेषण है। पहली पंक्ति में चित्रफलक का प्रसार

है; चित्रों का घनत्व है दूसरी पंक्ति मे। विशेपण अलंकार नही है; रचना का अन्तस है।

निराला ने रत्नावली के लिए लिखा है :

प्रिय के जड़ युग कूलो को भर
वहती ज्यो स्वर्गंगा सस्वर। (तुलसीदास, पृ. ३२)

कैसा भी मूर्तिविधान हो, वह अपने में जड़ है; भावशक्ति से प्रेरित होने पर ही वह अर्थ से ध्वनित होता है। निराला के शव्द-चयन मे, शव्दों द्वारा उभारे हुए विंवो मे, रूप-आकार की दृढता और स्पष्टता है; इनसे वह जो अर्थ प्रकट करते है, वह इस दृढ़ता और स्पष्टता की सीमाएँ पार कर जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में जड़ युग कूलो और स्वर्गगा के दो विंव है। स्थिरता, जड़ता तुलसीदास के आसक्त मन में है, प्रवाह, गतिशीलता रत्नावली मे है। तुलसी का आसक्त मन पृथ्वी की जड़ता से वँधा है; रत्नावली का मन स्वर्गगा के समान पवित्र है। यह अर्थ विंवों द्वारा ध्वनित होता है; विंवों की सुदृढ, स्पष्ट सीमाएँ पार कर जाता है।

तुलसीदास रत्नावली से मिलने जाते है। रत्नावली ने संकल्प किया है कि वह उनकी आसक्ति दूर कर देगी :

अस्तु रे, विवश, मारुत-प्रेरित,
पर्वत-समीप आकर ज्यों स्थित
घन-नीलालका दामिनी जित ललना वह;
उन्मुक्त-गुच्छ चक्रांक-पुच्छ,
लख, नर्तित कवि-शिखि-मन समुच्च
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह। (पृ. ८२)

रत्नावली मारुत-प्रेरित मेघमाला वनी हुई है। कोई आन्तरिक शक्ति उसे तुलसीदास के काम-संस्कारों को भस्म करने की प्रेरणा दे रही है। मारुत शव्द इस शक्ति की ओर संकेतभर करता है, पूर्णतः व्यंजित नही करता। उस मेघमाला के पास विजली भी है जो नीचे आनन्द से नाचने वाले मोर को नही दिखायी देती। इसीलिए तुलसीदास रत्नावली का जो रूप देखते है, वह छलना मात्र है। अर्थ की यह ध्वनि एक वंद को पार करती हुई दूसरे तक पहुँचती है : **जागी योगिनी अरूप-लग्न** मे उसका छलना वाला रूप नहीं, मारुत-प्रेरित—शक्ति वाला—रूप प्रकट होता है।

है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तव्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंवुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।

राम का उल्लेख एक वार भी किए विना निराला यहाँ परिवेश के चित्रण के साथ उनकी मनोदशा का चित्रण भी कर रहे है। परिवेश में घना अँधेरा है; हवा का

चलना बन्द है। समुद्र गरज रहा है। केवल पर्वत स्थिर है; अँधेरे में केवल मशाल जल रही है। बिम्ब स्पष्ट हैं; निराला की दार्शनिक तर्कयोजना के अनुसार उनमें अन्तर्निहित अर्थ सहज ग्राह्य नही है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश—यहाँ पाँचों तत्त्व हैं। इनमें आकाश शिव का निवास है; वह रावण का सहायक है। पवन का सम्बन्ध महावीर से है। वह अभी सक्रिय नही हुए, इसलिए पवन-चार स्तब्ध हैं। जो तत्त्व राम का सहायक है, वह निष्क्रिय है। समुद्र गरज रहा है, लंका का रक्षक है, राम के मार्ग में बाधक बन चुका है, प्रलयकाल में मनुष्य का नाश करता है, अंधकार का मित्र है। भूधर पृथ्वी तत्त्व है, स्थिर है, राम इसी की पूजा करेंगे, इसे शक्ति रूप मानेंगे। मशाल अग्नि तत्त्व है, निर्बल होते हुए भी वह उस अंधकार में राम को सहारा दिए हुए है। मशाल जल रही है, चेतना की लौ ऊपर उठ रही है। दिशा का ज्ञान खो रहा है; राम दिग्भ्रान्त हैं, मन की शक्ति समेटकर रास्ता ढूंढ रहे हैं।

यह सारा अर्थ कविता में आगे प्रतिध्वनित होता है जब महावीर आकाश तत्त्व को पराजित करने को उद्यत होते हैं। जो पवन-चार स्तब्ध था, वह प्रबलवेग से सक्रिय होता है। उसकी सक्रियता का लक्ष्य है समुद्र को त्रस्त करना जो गरजकर राम को डरा रहा था।

> शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़,
> जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़।

समुद्र पछाड़ खाकर गिरता है, पवन की शक्ति के सामने कमजोर पड़ता है। महावीर अपने अट्टहास से रावण के सहायक आकाश को भी कँपा देते हैं।

'राम की शक्तिपूजा' की सफलता इस बात मे है कि उसके बिंब अपने में आकर्षक हैं, वे परिवेश और राम की मनोदशा का चित्रण एक साथ करते है, दार्शनिक स्तर पर उनमें एक आन्तरिक संगति है और उनसे ध्वनित और प्रतिध्वनित अर्थ कविता में आदि से अन्त तक गूँजता है। शास्त्रकारों की ध्वनि काव्य की एक रीति है; निराला की ध्वनि काव्य का चरम उत्कर्ष।

ध्वनि और अलंकरण मे अन्तर है; भाव और रस में अन्तर है। **भावभेद रस-भेद अपारा**—प्रत्येक महाकवि पर यह उक्ति चरितार्थ होती है। एक-से लगने वाले करुणा या शृंगार के भावों मे अनेक भेद हैं। ये भेद विश्लेषण कार्य में कौशल दिखाने के लिए नहीं हैं। उनकी सार्थकता इस बात मे है कि वे मनुष्य की सूक्ष्म मनोदशाओ का यथार्थ चित्रण करते है। एक है भावुकता का स्तर जिसमें यथार्थ-चित्रण कमजोर है; दूसरा है सघन भावबोध का स्तर जहाँ निराला मनुष्य के मन की भीतरी दुनिया की पूरी झाँकी दिखा देते हैं। लक्षणग्रंथों के रीतिबद्ध भावों और यथार्थ-दृष्टा कवि द्वारा चित्रित सूक्ष्म मनोदशाओं में यह अन्तर है।

निराला कुछ रचनाओं में एक ही अथवा एक-सी भावदशा लेकर चलते है। **मौन रही हार**—गीत शृंगार भाव से शुरू हुआ तो उसी भाव मे समाप्त हुआ। किन्तु उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ वे हैं जहाँ विरोधी भावो को संगठित करके वह मानसिक

द्वंद्व, मनुष्य की गतिशील चेतना का चित्रण करते है। 'बादलराग' (६) में किसान की दशा के चित्रण मे करुणा है, बादल के गर्जन-वर्षण मे वीरभाव है, वह गगनस्पर्शी पर्वतो को क्षत-विक्षत करनेवाला अद्‌भुतकर्मा भी है। क्रोध, घृणा, दया, स्नेह, हास्य, आदि अनेक भाव एक साथ संगठित होकर बादल की समग्र कार्यवाही का चित्रण करते हैं। 'तुलसीदास' मे युद्ध, शृंगार, वैराग्य, करुणा आदि के चित्र एक साथ देखने को मिलते है। 'वनवेला' मे कामेच्छा की प्रबलता, साहित्यिक-सामाजिक संघर्ष में पिछड़ जाने से ग्लानि, दूसरों के आगे बढ़ने से ईर्ष्या, इन सब भावों को दबाने का प्रबल प्रयास चित्रित है। यह मनुष्य की मनोदशा का यथार्थ चित्रण है और रीतिवाद से भिन्न है।

मुक्त छन्द

छायावादी कवि के लिए आदर्श भाषा वह है जो अलंकारहीन हो; वैसे ही उसके लिए आदर्श छन्द वह है जो बन्धनों से मुक्त हो। छंद का अर्थ ही है भाषा को गति-लय के बन्धनों से नियन्त्रित करना, इसलिए कैसा भी आदर्श छंद हो, वह बन्धन-मुक्त तो हो नहीं सकता। 'मुक्त छंद' मे मुक्त और छंद परस्पर-विरोधी अर्थो के द्योतक है।

निराला के लिए जैसे अलंकारहीन भाषा वेदों में सुरक्षित है, वैसे ही मुक्त छंद का व्यवहार उन्ही ऋषियों ने किया था, जो सांसारिक मायामोह और अज्ञान से पूर्णतः मुक्त थे।

> भाषा सुरक्षित वह वेदो में आज भी—
> मुक्त छंद,
> सहज प्रकाशन वह मन का—
> निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र।

(परिमल, पृ. २३५-३६)

वेदान्त ज्ञान से मुक्त छन्द का सहज सम्बन्ध जोड़ते हुए निराला ने लिखा :

> मुक्त हो सदा ही तुम,
> बाधा-विहीन बन्ध छंद ज्यों,
> डूबे आनन्द मे सच्चिदानन्द रूप। (उप., पृ. १७६)

वेदान्त-ज्ञान से भिन्न स्तर पर रस-साधना करते हुए जब प्रकृति-प्रिया को बुलाते है, तब भी मुक्त छन्द की राह उसके लिए अधिक सुगम बतलाते हुए कहते है,

आज नही है मुझे और कुछ चाह,
अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर वन्धनमय छन्दों की छोटी राह !

(अनामिका, पृ. ३४)

'पन्त जी और पल्लव' मे निराला ने संगीत मे आलाप से मुक्त छन्द की तुलना करते हुए लिखा कि तालवद्ध संगीत पिंजड़े में वन्द पक्षी की चेष्टाओं के समान है, आलाप वन के मुक्त विहंग की वृत्तियों के समान है। परिमल की भूमिका में मुक्त छन्द से मनुष्य की स्वाधीनता का सम्वन्ध जोड़ते हुए लिखा, "मनुष्यों की मुक्ति कर्मो के वन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के वन्धन से अलग हो जाना।" 'मेरे गीत और कला' में भाव, भापा, छन्द—तीनों की मुक्ति का समर्थन करते हुए उन्होंने अपनी दार्शनिक मान्यता दोहराई, "भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनो स्वतन्त्र है।" (प्रवन्ध-प्रतिमा, पृ. २७०)

ये सव तर्क सुनकर पाठक सहज ही प्रश्न करता है : मुक्तछन्द इतना महत्त्व-पूर्ण है तो स्वयं निराला ने अधिकाश कविताएँ मुक्त छन्द के वदले वन्धनयुक्त छन्द में क्यों रची? दूसरा प्रश्न, यदि यह मान लें कि वेदो का छन्द मुक्त है तो क्या व्यास-वालमीकि के काव्य मानव-जाति के पतन का इतिहास है ? निराला के मुक्त छन्द का जितना ही विरोध हुआ, उतना ही वेदान्त ज्ञान और भाव-स्वाधीनता से उसका सम्वन्ध जोड़ते हुए उन्होंने उसका समर्थन किया। साथ ही वह वन्धनयुक्त छन्दो मे वरावर कविताएँ लिखते रहे; ऐसी कविताओं में भाव, भापा, छन्द—सव परतंत्र होंगे, इस विचार से उन्हे कोई परेशानी न हुई।

भाव, भापा और छन्द न पूरी तरह मुक्त होते हैं, न पराधीन। व्यक्ति और समाज, भावोद्गार और चिन्तन, मौलिकता और अनुकरण, रचनात्मक प्रतिभा और सीखा हुआ कौशल—ये सव परस्पर सम्वद्ध है, इनमे कोई एक निरपेक्ष रूप में मुक्त नही है। छन्द में वन्धन और मुक्ति दोनों है; इनका संतुलन विगड़ने पर छन्द या तो ध्वनि की यांत्रिक आवृत्ति वन जायगा या अतिशय मुक्ति से पीड़ित होकर अव्यवस्थित शव्द-जंजाल वन जायगा।

मुक्त छंद पूर्णत: मुक्त नही है, इसका प्रमाण यह है कि उसका भी एक आधार है। वह आधार है कवित्त। निराला ने 'पंत जी और पल्लव' निवन्ध में काफी विस्तार से समझाया कि मुक्त छन्द कवित्त के आधार पर ही सफल हो सकता है तथा कवित्त हिन्दी का जातीय छंद है। इस निवन्ध में उनका तर्क अन्तर्विरोधों में फँस जाता है। वह इस धारणा को छोड़ नहीं सकते कि भावों की मुक्ति छंद की मुक्ति चाहती है, साथ ही मुक्त छन्द के लिए उन्हें कवित्त का आधार भी चाहिए।

पंत ने मात्रिक छन्द में छोटी-वड़ी पंक्तियों वाली कविताएँ लिखी। इनसे अपनी रचनाओं की भिन्नता दिखाते हुए निराला ने मुक्त छन्द को आधारहीन छन्द कहा : "पंत की रचनाएँ विषम मात्रिक होने पर भी गीति-काव्य की परिधि को पार कर

स्वच्छंद छंद की निराधार नन्दन भूमि पर पैर नही रख सकती।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ६०) मुक्त छंद किसी आधार पर चला तो फिर मुक्त कैसे हुआ ? इसलिए निराला ने उसे निराधार नंदनभूमि पर विचरते हुए दिखाया। आगे लिखा कि उसकी सृष्टि कवित्त छंद से हुई है। इस तरह उसकी स्वयंभू ब्रह्म की पूर्णता खत्म हुई। फिर दिखाया कि ज़रा से हेर-फेर से 'जुही की कली' की पंक्तियाँ कवित्त छंद के एक चरण का टुकड़ा बन जाती हैं। मैथिलीशरण गुप्त के समर्थन का हवाला देते हुए लिखा, "गुप्त जी ने कहा, मेरा भी यही विश्वास है कि मुक्त-काव्य हिन्दी मे कवित्त छंद के आधार पर ही सफल हो सकता है।" (उप. पृ. ६४) यहाँ दूसरी स्थापना है। मुक्त छंद निराधार नही है; उसे कवित्त छंद का सुदृढ आधार मिला हुआ है। यही नही कि थोड़े हेर-फेर से कवित्त के चरण उनकी पक्तियो मे मिल जायँ, निराला जानते है कि हेर-फेर के बिना भी उनकी रचनाओं में कवित्त के चरण ज्यो-के-त्यो मिल जाते हैं। लिखा है, "कही-कही बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किए ही मेरे मुक्त-काव्य मे कवित्त-छंद के बद्ध लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अवश्य इस तरह की लड़ी मैं जान-बूझकर नही रखा करता।" (उप., पृ. ६२-३) उलझन यह है कि जो पूर्णतः मुक्त है, उसमें भी बद्ध लक्षण प्रकट हो जाते है; उससे बचने का प्रयास इस तर्क मे है कि इस तरह की लड़ी मै जान-बूझकर नही रखा करता ! बंधनयुक्त छद लिखने वालो का भी यही तर्क है।

उमड़कर आँखो से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान !

कोई भी स्वच्छंदतावादी कवि यह मानना पसंद नही करता कि उसने मात्राएँ गिनकर छंद लिखा है। गति, यति, लय, अन्त्यानुप्रास—सबकुछ प्रयास के बिना ही कविता में सजता चला जाता है, निराला वही धारणा दोहरा रहे थे।

निराला ने कवित्त पढ़े थे, कवित्त लिखे थे। उनकी अनेक रचनाओं में सोलह वर्णो वाली कवित्त की आधी पंक्ति बार-बार दोहराई जाती है। यथा परिमल के तीसरे खंड मे :

आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात···
आई याद कान्ता की कंपित कमनीय गात···
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही···
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये···
मान से प्रगल्भ प्रिय प्रणय निवेदन का···
मन्द हास मृदु वह सजा जागरण जग···
याद कर बीती बातें रातें मन मिलन की···
गया दिन आई रात, गई रात खुला दिन···
भस्म हो गया था काल—तीनो गुण—तापत्रय···
उठता नहीं है हाथ मेरा कभी नरनाथ...
न्याय धर्म वञ्चित वह पापी औरंगज़ेब...

रंभा और रमा ये दो नारियाँ भी निकली थी···
बीच-बीच पुष्प-गुँथे किन्तु तो भी बंधहीन।

शेष पन्द्रह वर्णो वाली आधी पंक्ति भी उनकी रचनाओं में बार-बार आती है। उदाहरण **परिमल** के तीसरे खंड में आसानी से मिल जायँगे। इनकी गति हिंदी के परिचित कवित्त छंद की है, इसमें सन्देह नहीं।

अब प्रश्न यह है कि निराला ने कविता को ही मुक्त छंद का आधार क्यों बनाया। और बहुत से गणात्मक मात्रिक छंद थे; उनमें किसी को चुन सकते थे। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि निराला जिस तरह की नाटकीय कविताएँ लिख रहे थे, उनमें बोलचाल की लय का होना आवश्यक था। इस लय में विविधता होती है, उतार-चढ़ाव होता है, कुछ शब्दों पर कम, कुछ पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। यह विविधता मात्रिक छंद में लिखी हुई कविताओं मे न दिखायी देती थी, गणात्मक वृत्तों में उसका अभाव और ज्यादा था, इसलिए निराला ने कवित्त को मुक्त छंद का आधार बनाया। "उसका सौन्दर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने मे है"—'पंत जी और पल्लव' में उनकी यह मुक्त छंद-सम्बन्धी स्थापना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि उनकी मूल समस्या वेदान्त ज्ञान के अनुरूप छंद को मुक्त करने की नही है वरन् छंद की गति को वार्तालाप के अनुकूल बनाने की है।

'पंत जी और पल्लव' में निराला ने लिखा है कि उन्होने हिंदी और बँगला के नाटक देखे थे, अलफ्रेड और कोरिंथियन कम्पनियों के नटों का हिंदी उच्चारण बड़ा अस्वाभाविक लगा था; इस तरह "हिंदी के अभिनय की सफलता पर विचार करते हुए, बोलते हुए, पाठ खेलते हुए, जिस छंद की सृष्टि हुई, वह यही है।" वेदों से प्रमाण देने, भाव की मुक्ति से छंद की मुक्ति का सम्बन्ध जोड़ने की बात उन्हें बाद में सूझी; मूल बात थी नाटकीय वार्तालाप के अनुरूप छंद रचने की।

नाटकीय वार्तालाप की एक विशेपता यह है कि साधारण बातचीत में शब्दों पर जितना ज़ोर दिया जाता है, उससे ज्यादा ज़ोर नाटकीय वार्तालाप मे दिया जाता है। शब्दों पर इस आघात् के बिना भाषा कमज़ोर मालूम होगी। 'मेरे गीत और कला' में निराला ने उर्दू और ब्रजभाषा के बारे में लिखा कि जिन कवि-सम्मेलनों में इन दोनों के कवि इकट्ठे होते है, उनमें उर्दू वाले बाज़ी मार ले जाते हैं। कारण यह समझ में आया कि जिस जगह ठहरकर वे बोलते हैं, "वह जीतने वालों का घर है—ब्रजभाषा के मुकाबले।" यानी उर्दू वालों की आवाज बुलन्द मालूम होती है, ब्रजभाषा वालो का स्वर दबा हुआ लगता है। ऐसा क्यों होता है? निराला को अपना मुक्त छंद उर्दू के सामने दबा हुआ क्यों नहीं लगता? कहते है, उर्दू वालों के बीच दो-चार बार पढ़ने का मौका मिला, "जहाँ धड़ाधड़ मुक्त छंद के गोले निकलने शुरू हुए कि भाइयों की समझ में आ गया कि हाँ कुछ पढ़ा जा रहा है—यह 'गड्ड गड्ड गड्ड गड्ड' नही है।" (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २७०)

निराला कहना चाहते हैं कि ब्रजभाषा की लय बोलचाल की भाषा के अनुरूप

नहीं, वह कमजोर मालूम होती है। उर्दू छंदों की लय बोलचाल की भाषा के अनुरूप है, वह ताकतवर मालूम होती है। आधुनिक हिन्दी कवि अपने मात्रिक छन्दों में उस लय को नहीं ढाल पाते; वह कमज़ोर आवाज़ में गाते हैं, ज़ोर से बोलते नहीं। एक कविता मे लिखा है: चढ़ा राग पिन पिन होगा जब (वेला, पृ. ९६)। इस पिन पिन राग का मतलब है, मात्रिक छंदों में गाई जाने वाली वह कविता जिसमे बोल-चाल की लय का—नाटकीय वार्तालाप का—ज़ोर नहीं। यह ज़ोर निराला के मुक्त छन्द में है।

निराला अपने मुक्त छंद के द्वारा हिंदी कविता की लय को, बोलचाल की भाषा, वाद्य की भाषा की लय के नजदीक ला रहे थे, कला के क्षेत्र में यह भी उनका क्रान्तिकारी काम था। मुक्त छंद की महत्ता इस बात में नहीं है कि वह बन्धनहीन है, पूर्णज्ञान या मुक्त भावो का वाहन है वरन् इसमे है कि उसने मात्रिक छन्दो की एकरस लय को भंग किया, वह हिंदी कविता मे बोलचाल की लय की विविधता लाया, उसने भाषा की छिपी हुई शक्ति उद्‌घाटित की। हिंदी के कवित्त छंद मे यह विविधता है। ब्रजभाषा मे ही लिखी हुई कविता मे वार्तालाप का ओज कवित्त मे ज्यादा खुलता है। वीररस के श्रेष्ठ कविभूषण के कवित्त ही अधिक लोकप्रिय हैं। भूषण और पद्माकर इन दोनों ही कवियों ने कवित्त की लय मे नए प्रयोग किए हैं। देव ने ओज की जगह उसकी लय में माधुर्य भरा है। निराला ओज, माधुर्य, परुषता, वीरता, करुणा एक ही छंद के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। जागो फिर एक बार (१) में माधुर्य और कोमलता है; जागो फिर एक बार (२) में परुषता और ओज। 'वह कविता की स्त्री-सुकुमारता नही, कवित्व का पुरुष-गर्व है'—(प्रबन्ध पद्म, पृ. ९१) यह स्थापना सही नही है। मुक्त छन्द वास्तव में अर्ध-नारीश्वर है, कभी-कभी एक ही कवित्त में परुषता और सुकुमारता दोनो गुण दिखाता है। 'निर्गुण आत्मा की तरह यह पुरुष भी बनता है और स्त्री भी'—यह स्थापना (उप., पृ. ८५) सही है। निराला ने अपने मुक्त छन्द को कवित्त की गति ही नही दी, उसकी सानुप्रास शब्दावली भी अपनाई। मुक्त छन्द के चरणों मे उन्होंने अनुप्रासों के घुंघरु बांधे। इन घुंघरुओं से जब जैसी इच्छा हुई, वैसी ध्वनि निकाली। मुक्त छन्द मे सहज भावोद्‌गार वाली कविताएँ उन्होंने कम लिखी; वर्णनात्मक, नाटकीय, वक्तृत्वकला-प्रधान कविताएँ ही अधिक लिखी। मन का सहज प्रकाशन, भावों का अकृत्रिम चित्र उनके मुक्त छन्द में प्राय: नही है। स्वत: स्फूर्त गेयता की जगह नाटकीय रचना-कौशल मुक्त छन्द मे लिखी हुई कविताओं की विशेषता है।

निराला की एक कविता है 'नर्गिस'। यह मुक्त छन्द मे नही है किन्तु इसके छन्द का आधार वही कवित्त है। सोलह वर्णों वाली जैसी पक्तियाँ ऊपर उद्धृत की गई हैं, वैसी ही पक्तियाँ इस कविता में हैं। फर्क यह है कि यहाँ उन्हें अन्त्यानुप्रास से जोड़ दिया है। छन्द रचना में निराला का यह अन्यतम प्रयोग है। छन्द की गति में ऐसी मस्ती, उसके उतार-चढ़ाव मे मन की उमंग की ऐसी समर्थ व्यंजना,

नाटकीयता का प्रदर्शन किए विना ध्वनि की ऐसी मोहक भंगिमाएँ, एक ही कविता में लय की ऐसी निरन्तर परिवर्तनशीलता कवित्त छन्द के आधार पर लिखी हुई उनकी अन्य किसी कविता में नही है। कविता अन्त्यानुप्रास-युक्त है, इसलिए वन्धनहीन नही; फिर भी मुक्त छन्द में लिखी हुई कविताओं से यहाँ लय की विविधता अधिक है, इसलिए उनके मुक्त छन्द से यह अधिक मुक्त है।

चैत्र का है कृष्ण पक्ष, चन्द्र तृतीया का आज
उग आया गगन में, ज्योत्स्ना तनु शुभ्र साज
नन्दन की अप्सरा धरा को विनिर्जन जान
उतरी समय करने को नैश गंगा-स्नान। (अनामिका, पृ. १८६)

घिसे-पिटे मुर्दा-से दिखने वाले कवित्त मे अव भी वड़ी जान थी।

नये पत्ते मे निराला की कुछ ऐसी कविताएँ है जिनमे छन्द मे और गद्य मे कोई विशेप अन्तर दिखाई नही देता।

चेहरा पीला पड़ा।
रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े।
आँख का अँधेरा वढ़ा,
सैकड़ों सदियाँ गुजरी। (**नये पत्ते**, पृ. ३५)

इस कविता के साथ दूसरी रचना 'खुशखबरी' (उप., पृ. ३३) पढ़ने से लगेगा कि गद्य से कविता की गति भिन्न है।

तवला दोनों हाथ आया हथियार,
दरवारी वीर राग छाया रहा;
सुव्हो शाम किरन जैसे तार पर
जीवन संग्राम हमारा छिड़ा।

ये पंक्तियाँ 'खुशखवरी' की है। इनकी लय कही कवित्त छन्द से मिलती है। दूसरी पंक्ति मे चार-चार वर्णो के तीन टुकड़े हैं, ठीक कवित्त छन्द की तरह।

दरवारी वीर राग छाया रहा··· (खुशखवरी)
पूरव का पाया हिला पश्चिम से··· (उप.)
दुश्मन की जान आई आफत मे··· (उप.)
हाथ जोड़े। आँख का अँधेरा वढ़ा··· (दगा की)

फिर सोलह वर्णो वाली पंक्तियाँ—

वड़े-वड़े ऋषि आए, मुनि आए, कवि आए··· (दगा की)
किसी ने विहार किया, किसी ने अँगूठे चूमे··· (**नये पत्ते**, पृ. ३५)
लोहा वजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर··· (उप., पृ, ३२)
वीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है। (उप., पृ १५)

कविता चाहे तुकान्त हो चाहे अतुकान्त, उसकी चाल गद्य से मिलती है, तो वह कही-न-कही कवित्त की गति से वँधी हुई है। अनुप्रासों के घुँघरू नही वजते, सोलह-पन्द्रह-वर्णो की पंक्तियाँ जल्दी नही दोहराई जाती, तव लगता है, यह गद्य है। फिर

भी **नये पत्ते** की इन गद्यात्मक रचनाओं और **परिमल** के मुक्त छन्द में आन्तरिक समानता है। समानता यह है कि दोनों मे बलाघात का सिद्धान्त एक है। वह इस तरह।

मान लीजिये, 'जुही की कली' मे छंद की आधारभूत कड़ी चार वर्णो की है। यदि इस पर एक जगह बलाघात है, तो चार की जगह पाँच या तीन वर्ण होने पर बलाघात मे अन्तर न आएगा। **विजन वन वल्लरी पर**—इसे यदि यों लिखा जाय **जन वन वल्लरीप**, तो बलाघात-संख्या में कोई अन्तर न पड़ेगा। मुक्त छंद, कवित्त की वर्ण-सख्या छोड़ देता है, बलाघात-संख्या पकड़े रहता है, इसीलिए छंद बना रहता है। बलाघात संख्या सोलह वर्णो की पंक्ति को देखते नही, चार या आठ वर्णो के चरण को देखते निर्धारित होती है।

विजन वन/वल्लरी पर (दो जगह बलाघात),
सोती थी/सुहागभरी/स्नेहस्वप्नमग्न (मूल बलाघात तीन जगह)
अमल कोमल/तनु तरुणी/जुही की कली (तीन जगह)
दृग बंद किए/शिथिल/पत्रांक में। (तीन जगह)

इससे तुलना कीजिए **नये पत्ते** की रचनाओं का बलाघात क्रम :

दरबारी/वीर राग/छाया रहा;
पूरब का/पाया हिला/पश्चिम से;
चेहरा/पीला पड़ा/रीड़ झुकी;
हाथ जोड़े/आँख का/अँधेरा बढ़ा।

हिन्दी में जो बहुत-सी कहावतें प्रचलित हैं, उनकी लय का विश्लेषण किया जाय तो देखेंगे कि जो कहावतें मात्रिक छंदों में नही है, उनमें बलाघात का उपर्युक्त नियम लागू होता है।

लाद दे/लदा दे
लादने वाला/साथ कर दे-—

वर्णो और मात्राओं की संख्या घटती-बढ़ती है; बलाघात-संख्या एक-सी रहती है। 'कुकुरमुत्ता' में कहीं तो उर्दू बहर की तरह निराला वजन का ध्यान रखते है, कही वजन का विचार न करके बलाघात के सहारे आगे बढते है।

और कितने फूल, फव्वारे कई,
रंग अनेकों—सुर्ख, धानी, चम्पई।

यहाँ वजन दुरुस्त है। किन्तु

कास्मोपालिटन व मेट्रोपालिटन,
जैसे हो फ़्रायड, लिटन—

यहाँ पंक्तियों मे केवल बलाघात का ध्यान रखा गया है। ऐसी ही 'खजोहरा' मे :

मिट्टी के सबब दूध ऐसा पानी,
खुश हो बुआ ने नहाने की ठानी।

'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'स्फटिक शिला' आदि कविताएँ बलाघात का ध्यान

रखते हुए लिखी गई हैं। निराला के ये प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

कविता में व्यंजन कहाँ मुखर हैं, कहाँ दबे हुए हैं, स्वर कहाँ स्पष्ट सुनाई देते हैं, कहाँ अस्पष्ट है, छंद की गति कहाँ उदात्त है, कहाँ अनुदात्त, बोलचाल में किन शब्दों पर ज़ोर दिया जाता है, किन पर नहीं दिया जाता—निराला इन सब बातों पर ध्यान देते थे, बारीकी से उन पर विचार करते थे। मुक्त छंद 'स्वर-प्रधान नहीं, व्यंजन-प्रधान है' (**प्रबन्ध पद्म**, पृ. ६१), जो अक्षर-मात्रिक स्वर-प्रधान राग हैं, वे स्त्री-भेद में है, जो व्यंजन-प्रधान हैं, वे पुरुष-भेद मे है (उप., पृ. ८४), चौताल में गाने पर कवित्त छंद के पुरुषत्व का विकास होता है, 'स्वर किस तरह परिपुष्ट उच्चरित होते हैं' (उप., पृ. ८५), "कोई दीर्घ (स्वर) ऐसा नही, जिसने दो मात्राएँ न ली हों, कहीं-कही ह्रस्व-दीर्घ दोनो स्वर लुप्त कर देने पड़े है (उप., पृ. ८६), उसी कवित्त को ठुमरी के रूप में गाओ तो "उस समय न यह उदात्त भाव रहता है, न यह पुरुष पुरातन तक ले जाने वाला उसका पौरुष' (उप., पृ. ८६)। कवित्त को निराला जिस ढंग से गाते या पढ़ते थे, उनमें उदात्त भाव की रक्षा होती थी; ध्वनि-प्रवाह कहाँ कोमल है, कहाँ उदात्त, इस भेद के प्रति वह सजग थे। कवित्त छंद के बारे में जब कोई कुछ लिखे, तब 'प्रत्यक्ष जगत् में प्रचलित इसके स्वर-वैचित्र्य की जाँच करने के पश्चात्' (उप., पृ. ८७) उसे कुछ लिखना चाहिए; निराला ने यह जाँच की थी।

पंत की दो पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं :

> दिव्य स्वर या आँसू का तार
> बहा दे हृदयोद्गार !

ये पंक्तियाँ मुक्त छंद में नही हैं। छंद की जाँच करते हुए निराला मात्राएँ गिनने से पहले पंक्ति में आघात गिनते हैं : "उद्धृत प्रथम पंक्ति में चार आघात हैं और दूसरी में तीन।" (उप., पृ. ९०) वह आघात क्यों गिन रहे है? इसलिए कि उनके अपने मुक्त छंद में आघात ही प्रधान है जबकि पंत के छंद में उसकी भूमिका गौण है। पंत का छंद 'संगीत-प्रधान' है, अर्थात् उसमें वार्तालाप की लय, शब्दों पर यथा-स्थान आवश्यक ज़ोर नही है, "अतएव यह (पंत का छंद) अपनी प्रधानता को छोड़कर एक दूसरे छंद (निराला के मुक्त छंद) के घेरे मे, जो इसके लिए अप्रधान है, नहीं जा सकता।" (उप., पृ. ९१) सारांश यह कि बोलचाल की भाषा का लय पंत के संगीत-प्रधान छंदों मे चौरस हो जाती है, निराला के मुक्त छंद मे वह उभरती है।

'सफलता' कहानी के नायक नरेन्द्र के बारे में लिखा कि वह मनुष्य-धर्म में विश्वास करता था जिसे अंग्रेजी मे रिलीजन ऑफ मैन 'नए स्वरपात से, ज़ोर देकर कहते हैं।' (**चतुरी चमार**, पृ. ६३); निराला इस स्वरपात पर ध्यान देते है, कहाँ यह स्वरपात स्वाभाविक है, कहाँ अस्वाभाविक, इस पर विचार करते हैं। 'मेरे गीत और कला' में ब्रजभाषा-प्रेमियों के बारे में लिखा, "देखिए, भूषण के कवित्तों में गँवार की तरह चिल्ला रहे है या देव के छंदों में मारे श्रृंगार के दुहरे

हुए जा रहे हैं।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. २६९) इस आलोचना में थोड़ी ज्यादती है लेकिन यह बात सही है कि कवित्त कई तरह से पढ़े जा सकते है। "आज भी जिस छंद की आवृत्ति करके ग्रामीण सरल मनुष्य अपार आनंद अनुभव करते है" (**प्रबन्ध पद्म**, पृ. ८३)----यह कथन अधिक सहृदयतापूर्ण, वस्तुस्थिति के अधिक अनुरूप है।

एक शेर कहा।

मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिए,
दुनिया के गोलन्दाजों को देखा दहल गया। (बेला, पृ. ९१)

ये गोलन्दाज वे हैं जो अस्वाभाविक स्वरपात से लोगो को आतंकित करते है। इन्ही पर **नये पत्ते** की 'खुशखबरी' में व्यंग्य है :

दुश्मन की जान आई आफत में
गली-गली गले के गोले दगे।

यह सब पढ़कर 'मेरे गीत और कला' में मुक्त छंद की प्रशंसा याद आने लगती है : "जहाँ धड़ाधड़ मुक्त छंद के गोले निकलने शुरू हुए···यह वह मशीनगन है, जो उर्दू वालों के पास भी नही।"

निराला गले से शब्दो के गोले निकालकर प्रसन्न होते हैं, गोलन्दाजों पर हँसते भी हैं। उनके मन में मुक्त छद के प्रति कहीं शका है। शकित मन कहता है, बोल-चाल की लय को अपनाने के लिए यह आवश्यक नही कि मुक्त छद ही लिखा जाय, सानुप्रास मात्रिक छदों में भी यह कार्य संभव है।

मात्रिक छन्द

स्वरपात के प्रति पंत भी सचेत थे। कवित्त की शब्दावली 'एक उत्तेजित तथा विदेशी स्वरपात के साथ बोलती है।' मात्रिक छद वाली कविताओ की तुलना में कवित्त की शब्दावली पर स्वरपात अधिक स्पष्ट था, पंत और निराला दोनों यह देखते थे, अन्तर था स्वरपात के महत्त्व को समझने में। पत के लिए यह स्वरपात उत्तेजित, अतः अस्वाभाविक था, उन्होने पल्लव की भूमिका में कवित्त की एक पक्ति ली—**कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किल-कन्त है।** इसे उन्होने मात्रिक छंद में यों लिखा :

सुकूलन में केलिन में (और)
कछारन कुञ्जन मे (सब ठौर)

कलित क्यारिन में (कल) किलकन्त
वनन में वगरयो (विपुल) वसन्त ।

इस पर टिप्पणी की : "अव दोनों को पढ़िए और देखिए, उन्हीं 'कूलन केलिन' आदि शब्दों का उच्चारण-संगीत इन दो छंदों में किस प्रकार भिन्न-भिन्न हो जाता है । कवित्त में परकीय और मात्रिक छंदों में स्वकीय हिंदी का अपना उच्चारण मिलता है ।"

कवित्त से पंत भी प्रभावित थे किन्तु यह प्रभाव उसकी शव्दावली का था, गति और लय का नहीं । **मदन राज के वीर वहादर** जैसी पंक्तियों में उस शव्दावली का अनुकरण देखा जा सकता है । वह व्रजभाषा की शव्दावली का माधुर्य नये छंदो में ढाल रहे थे । पल्लव की रचनाओं में उन्हे इस प्रयास में आशातीत सफलता मिली । पल्लव की लोकप्रियता का यह मुख्य कारण था । कोमलकान्त पदावली के साथ उनके लघुगति छंद हिन्दी-प्रेमियों को वड़े सुहावने लगे । इन छंदो में स्वरपात चौरस था ।

निराला इस चौरस स्वरपात की जगह 'उत्तेजित' स्वरपात खोज रहे थे, साथ ही मात्रिक छंदों में नित नये प्रयोग भी करते जा रहे थे । ये प्रयोग कई तरह के है । इनमें एक प्रयोग सुकूलन में केलिन में (और) वाला है ।

चकित चितवन कर अन्तर पार ।
खोजती अन्तर तम का द्वार । (परिमल, पृ. ३५)

यह वही छंद है जिसमें पंत को स्वकीय हिन्दी का अपना उच्चारण मिलता था । निराला इस तरह की कविताएँ लिखते थे और हिंदी की कमज़ोरी पर खीझते भी थे । 'यमुना के प्रति,' 'वसन्त समीर' जैसी कविताएँ इसी तरह के स्वरपात-क्षीण मात्रिक छंदों में लिखी गई हैं ।

आओ, आओ, नील सिन्धु की ।
कम्प तरंगों से उठकर
पृथ्वी पर, वन की वीणा में
मृदु मर्मर भर मर्मर स्वर । (उप., पृ. ८०)

सिन्धु और तरंगो का संदर्भ होने पर भी निराला का स्वर ऊपर नहीं उठता, अस्वाभाविक रूप से गिरा-गिरा रहता है ।

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धो लो । (उप., पृ. ३६)

गीत है, मात्रिक छंद मे लिखा गया है, फिर भी स्वरपात साफ और निखरा हुआ है ।

परिमल के पहले खंड में निराला की तुकान्त मात्रिक छंद वाली रचनाएँ हैं । इनमें पहली किस्म की रचनाएँ वे है जिनमें स्वरपात सपाट है जैसे 'खोज और उपहार', 'वसन्त समीर,' 'यमुना के प्रति' । दूसरी किस्म की रचनाएँ वे हैं जिनमें स्वरपात भाव के अनुरूप मद्धिम है ।

बैठ लें कुछ देर—(उप., पृ. २९)
एक दिन थम जायेगा रोदन—(उप., पृ. ३२)
सुमन भर न लिए—(उप., पृ. ३७)

तीसरी किस्म की रचनाएँ वे हैं जिनमें स्वरपात मुखर है जैसे

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो

अथवा—जब कड़ी मारें पड़ीं दिल हिल गया।

चौथी किस्म की रचनाएँ वे है जिनमें स्वरपात 'उत्तेजित' है, ध्वनि-प्रवाह का स्तर उदात्त है :

तुम तुंग हिमालय शृंग और
मैं चंचल गति सुरसरिता।

किन्तु ऐसी रचनाएँ **परिमल** के पहले खंड में कम है, दूसरे में अधिक हैं।

दूसरे खंड की रचनाएँ मात्रिक छंदो में हैं, तुकान्त भी हैं किन्तु पंक्तियां छोटी-बड़ी हैं। निश्चित स्थान पर तुक मिलाने की परेशानी निराला को नही होती। किंतु विषम मात्रिक छंदो में कविता लिखने का मुख्य कारण तुक ढूँढने की परेशानी नही है। निराला जहाँ चाहते है, वहाँ आसानी से शब्दों पर ज़ोर देते हैं; छद की बँधी हुई गति स्वरपात को चौरस नही कर सकती। करुण, कोमल, ओजपूर्ण भावों के अनुसार वह छंद की गति बदलते रहते हैं।

परिमल के बाद जब वह गीत-रचना पर अधिक ध्यान देने लगे तब उन्होंने गीतों में वह चमत्कार दिखाया जो **परिमल** की विषम मात्रिक छंदों वाली रचनाओं में दिखा चुके थे। भाव के अनुरूप वह स्वरपात को उभारते या दबाते हैं। परिमल की रचनाएँ चाहे मुक्त छंद मे हों, चाहे विषम मात्रिक छंदों में, चाहे तुकान्त सम-मात्रिक छंदो में, स्वरपात निखारने की कला में **गीतिका** से हेठी हैं। निराला मुक्त छंद का समर्थन करते थे, यह कहकर कि उसमें आर्ट ऑफ रीडिंग है; अब वह ऐसे कौशल के धनी हो गये थे कि गेयता के साथ वक्तृत्वकला की शक्ति को मिला सकते थे। कविता में भाषा की ओजपूर्ण गति को उतारने के लिए अब मुक्त छंद आवश्यक न था। **परिमल** के बाद उन्होने मात्रिक छंदो में ऐसी कविताएँ लिखना बंद कर दिया जिनमें स्वरपात चौरस हो। इसके विपरीत 'रेखा,' 'प्रेयसी,' 'कैलास में शरत', 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' आदि जो मुक्त छन्द में कविताएँ लिखी, वे कमज़ोर साबित हुईं। हर तरह का कमाल मात्रिक छंदों में ही दिखाना उन्हें प्रिय हुआ। इसलिए निराला की अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद मे नहीं, सानुप्रास मात्रिक छंदो में है।

परिमल की रचनाओं में निराला एक दूसरा प्रयोग करते है। मात्रिक छंद की छोटी-छोटी पंक्तियों से मन उचटता है। वे सोलह मात्राओं की सीमा लाँघकर चौबीस या अधिक मात्राओं की पंक्तियाँ रचते है :

किस अनन्त का नीला अञ्चल हिला हिला कर
आती हो तुम सजी मंडलाकार? (परिमल, पृ. ७२)

विषम मात्रिक छंदों में लंबी पंक्तियाँ रचने की सुविधा और भी ज्यादा है और निराला उससे पूरा लाभ उठाते है। जैसे मुक्त छद में कवित्त की आधी पक्ति वह अकसर दोहराते है, वैसे ही सोलह पक्तियों की मात्रा को आधार मानकर उसमें आठ या अधिक मात्राएँ जोड़ते हुए वह लंबी पक्तियाँ रचते है।

कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल (उप.)
करुण स्वर का जब तक मुझ में रहता है आवेश (उप.)
व्यक्त इशारे से ही सारे बोल मधुर अनमोल (उप.)
मन्द तरगों की यमुना का काला काला रंग (उप.)

निराला के पूर्ववर्ती रीतिवादी कवियो, उनके समकालीन छायावादी और गैर छायावादी कवियों की रचनाओ में छद का ऐसा प्रसार नही है। निराला हिंदी काव्य में जो नई प्राण-प्रतिष्ठा कर रहे थे, उसका एक अनिवार्य पक्ष यह छद का प्रसार था।

'तरगों के प्रति' और 'तुम और मैं' में छोटी-बड़ी पक्तियाँ मिलाकर निराला ने कविता के नपे-तुले वद रचे। इनसे भिन्न दूसरे खंड की विषम मात्रिक रचनाएँ है जिनमें छोटी-वड़ी पंक्तियाँ है, नपा-तुला कुछ नही है। इन दोनों के रचना-कौशल को मिला दें तो 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' और 'वनवेला' की कला मिल जाएगी। इन दोनों रचनाओं में छोटी-बड़ी पक्तियो के बद है किन्तु नपे-तुले नही है। विषम मात्रिक छदों का प्रवाह यहाँ व्यवस्थित किया गया है, साथ ही नपे-तुले बंदों की सीमा तोड़ दी गयी है। ये कविताएँ अंग्रेजी की अनियमित ओड—जैसे वर्डस्वर्थ की प्रसिद्ध इम्मोर्टेलिटी ओड—के समान है। **परिमल** की रचनाओ के आधार पर ही निराला की इस कला का विकास हुआ है।

सोलह मात्राओं के छन्द कई तरह के है। एक तरह का छंद वह है जो 'यमुना के प्रति' में है। इसी की चाल का अनुसरण करते हुए 'तरंगों के प्रति', 'उसकी स्मृति', 'अधिवास', 'पहचाना', 'भिक्षुक', 'सध्या सुन्दरी'; 'शरतपूर्णिमा की विदाई', 'आवाहन' आदि अनेक कविताएँ लिखी गई है। **अनामिका** में सकलित 'उद्बोधन', रवीन्द्रनाथ की कविता पर आधारित 'ज्येष्ठ' मे छन्द की यही चाल है। एक दूसरी चाल का छंद है 'प्रभाती', में—

जीवन प्रसून वह वृन्तहीन
खुल गया उषा नभ में नवीन।

'तुम और मैं' के छन्द की चाल भी यही है :

तुम दिनकर के खर किरण जाल···
तुम कर पल्लव झंकृत सितार।

परिमल में इसका प्रयोग कम हुआ है किन्तु आगे चलकर यह निराला का प्रिय छंद हो गया और उसके आधार पर उन्होने बड़े चमत्कारी महल उठाये। **तुलसीदास** का आधारभूत छद यही है। इसी मे उन्होने 'सरोज-स्मृति' लिखी। यही 'राम की शक्तिपूजा' के छद का आधार है। 'तुलसीदास' की एक पक्ति में अगली पंक्ति का

आधा हिस्सा मिला दीजिए, 'राम की शक्तिपूजा' का छंद मिल जायगा :

भारत के नभ का प्रभापूर्य शीतलच्छाय,
है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार।

तुलसीदास मे निराला छंद की रास खीचे रहते हैं; उसकी निरन्तर अवरुद्ध होती हुई गति में शक्ति भर देते है। प्रत्येक बंद अपने में पूर्ण, ऊर्जा का केन्द्र है। 'सरोज-स्मृति' मे वह छंद को सहज रूप में बढ़ने देते है, अर्थ-प्रसार के विचार से पैराग्राफ रचते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' मे 'सरोज-स्मृति' का प्रवाह है, 'तुलसीदास' की शक्ति है। प्रत्येक पैराग्राफ ध्वनि-संरचना का अनूठा नमूना है। 'राम की शक्ति-पूजा' का छंद उनके कानों मे गूंजता रहता है, उसकी प्रतिध्वनि 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' और 'वनवेला' में सुनाई देती है।

निकलता कमल जो मानव का वह निष्कलंक (अनामिका)
साम्राज्य सप्त सागर तरंगदल दत्त माल (उप.)
हो गया सान्ध्य नभ का रक्ताभ दिगन्त फलक (उप.)
प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गंध (उप.)

'सरोज-स्मृति' मे निराला ने एक ही छंद में उदात्त करुणभाव चित्रित किये, विरोधियों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना भी की। 'वनवेला' में इसी व्यंग्यपूर्ण आलोचना के लिए उन्होंने शक्तिपूजा के छंद का उपयोग किया। वे एक ही छंद से तरह-तरह की झंकारें निकालते है, यह उनके रचना-कौशल का प्रमाण है। 'राम की शक्तिपूजा' पढकर बैरगिया नाला जुलुम जोर की याद नहीं आती; किंतु उसका आधारभूत छंद है वही। 'दान' कविता जहाँ कमजोर है, वहाँ बैरगिया नाला की याद दिलाती ही है :

कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्रीमन्नारायण। (अना., पृ. २५)

जैसे 'नर्गिस' मे कवित्त छंद नही पहचाना जाता, वैसे ही 'तुलसीदास' और 'सरोज-स्मृति' मे यह छंद। निराला जैसे शब्दों को नयी शक्ति देते हैं, वैसे ही हिन्दी छंदों में नयी प्राण-प्रतिष्ठा करते है। 'यमुना के प्रति' मे जो छंद बहुत कमजोर मालूम होता है, उसी में स्वामी विवेकानन्द की कविता—**नाचे उस पर श्यामा**—का जोरदार अनुवाद किया है :

गरज रहे है मेघ, अशनि का
गूंजा घोर निनाद—प्रमाद,
स्वर्ग धरा व्यापी संकर का
छाया विकट कटक उन्माद।

छंद की चाल धीमी है या तेज, यह उसके यांत्रिक ढाँचे पर निर्भर नहीं है। उसकी चाल धीमी या तेज होती है शब्द-योजना के कारण। 'यमुना के प्रति' में जो छंद सुस्त है, वही **नाचे उस पर श्यामा** में खूब सजग है। निराला की शब्द-योजना उनके भावावेश से जुड़ी हुई यद्यपि उस पर निर्भर नहीं है। इस तरह छंद की गति

—अन्ततोगत्वा—भावदशा से संबद्ध है।

निराला की कविताओं मे शुरू से अन्त तक शब्दों पर ज़ोर देने का ढंग एक-सा नही रहता। यह ढंग पहचाना जा सकता है जैसे 'सरोज-स्मृति' में—

यह हिन्दी का स्नेहोपहार···
जागे जीवन जीवन का रवि···
तू सवा साल की जब कोमल···
खंडित करने को भाग्य अंक।

यदि सारी पंक्तियाँ इसी साँचे में ढली हुई निकलें तो कविता नीरस और निःशक्त हो जाय। इसलिए निराला निरन्तर पंक्ति की लय मे हेराफेरी करते रहते है।

व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठफल।

इसी तरह की कारीगरी सबसे ज्यादा 'राम की शक्तिपूजा' में है। लय मे नयी भंगिमाएँ पैदा करने के लिए वह यति का स्थान भी बदलते रहते है।

निराला ने माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में एक विशेपता देखी कि वाक्य एक पंक्ति में या दो पंक्तियों के जोड़ में सीमित नही रहता। कभी पंक्ति के बीच में ख़त्म होता है, कही अन्त में। निराला के वाक्यांश अनेक स्थलो पर पंक्ति के बीच में पूरे होते हैं, कभी-कभी पूर्ण विराम पंक्ति के अन्त में न आकर पहले ही छंद की गति को रोक देता है। यथा सरोज-स्मृति में—

है बड़े नाम उनके! शिक्षित
लड़की भी रूपवती; समुचित
आपको यही होगा कि कहे
हर तरह उन्हें; वर सुखी रहें।
आयेंगे कल।

इस तरह एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति में अर्थ-प्रसार की कला वहाँ सफल होती है जहाँ अन्त्यानुप्रास इस प्रसार में बाधक नही होता। ऊपर की पंक्तियो में अन्त्यानुप्रास पर ठहराव नही है; दूसरी पंक्ति में भागने की जल्दी है। ऐसी स्थिति मे अर्थ-प्रसार-कला असफल होती है। निराला की काव्यकला अन्त्यानुप्रास पर भरपूर ज़ोर चाहती है, अर्थप्रसार हो चाहे न हो। ऊपर की पंक्तियो में तुलनीय है, कविता के अंतिम अंश की ये पंक्तियाँ जहाँ अन्त्यानुप्रास पर पूरा जोर है जहाँ अन्त्यानुप्रास अर्थप्रसार में बाधक नही है:

हो इसी कर्म पर वज्रपात,
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के से शतदल!

'राम की शक्तिपूजा' की लंबी पंक्तियों में स्वभावतः अन्त्यानुप्रास पर और भी

अधिक बल है, उसे लाँघकर शीघ्रता से दूसरी पंक्ति में अर्थप्रसार का प्रयत्न निराला नहीं करते।

अन्त्यानुप्रास मिलाने में निराला पूरे ध्वनि-साम्य का ध्यान नहीं रखते। जैसे **मशाल** और **विशाल**—यहाँ पूरा वर्ण-साम्य है। किन्तु **स्थल-जल, हनूमान-विधान, अंधकार-पवन-चार** में आंशिक वर्ण-साम्य ही है। **ष** और **श, ण** और **न** का भेद उनके लिए अनावश्यक है। **निर्निमेष** के साथ **देश, सम्भाषण** के साथ **पतन** की तुक मिलती है। 'तुलसीदास' में **अंग** से तुक मिलाने के लिए **व्यंग्य** को **व्यंग** लिखते हैं। व्यंजन-साम्य न मिलने पर स्वर-साम्य से काम निकालते है। यथा 'राम की शक्ति-पूजा' मे—**रण देखी जो** के वजन पर **समग्र नभ को**। तुक ढूंढ़ने में वह काफी परिश्रम करते है और कभी-कभी दूर की कौड़ी लाते हैं। 'तुलसीदास' पंचतीर्थ आतुर पद चलकर पहुँचे। इस **पहुँचे** से तुक मिलाने के लिए वह अवधी क्रिया **कुचे** ढूंढ लाये :

नग्न पद चले, कंटक, उपाधि भी, न कुचे (तुलसीदास, पृ. २५)

स्वभावतः पंक्ति के अंत में लघु-गुरु वर्ण-क्रम बदलते रहते हैं। 'यमुना के प्रति' में **अम्लान-ध्यान, गुञ्जार-बारंबार** से लगा कर **झंकार-अपार** और **तान-गान** तक वह गुरु-लघु वर्ण क्रम निबाहते हैं; केवल एक जगह **गागर-अंबर** में यह क्रम भंग होता है। ऐसा परिश्रम उन्होंने फिर नहीं किया। वर्णक्रम परिवर्तन कहीं खटकता है, कहीं उससे नया सौंदर्य उत्पन्न होता है। 'राम की शक्तिपूजा' में अञ्जना का भाषण कमजोर है। एक जगह **रह-रह** के साथ **सह-सह**, दूसरी जगह **सोचो मन में** के साथ **श्री रघुनन्दन ने!** लघुगुरु वर्ण-क्रम बदला; अन्त्यानुप्रास भी कमजोर रहा। परिवर्तन से कोई खूबसूरती पैदा नहीं हुई। किंतु जहाँ लिखते हैं :

वह एक और मन रहा राम का जो न थका—

वहाँ वर्णक्रम-परिवर्तन के साथ भाव-परिवर्तन भी होता है; पाठक मन की पराजित दशा छोड़कर अपराजित दशा की बात सोचने लगता है। ऐसे ही **शरण-मरण, संबल-विकल** के बाद **रही-कही** मे क्रम-भंग निराला की भावदशा के परिवर्तन की सूचना देता है :

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही। (सरोज-स्मृति)

यहाँ वर्णक्रम-परिवर्तन सार्थक है।

'तुलसीदास' के प्रत्येक बंद की पहली और चौथी पंक्ति के अंत में साधारणतः लघुवर्ण आता है। अड़सठवें और उन्हत्तरवें बंदों में निराला ने लघु-गुरु क्रम रखा है :

बोला भाई 'तो चलो अभी,
अन्यथा, न होगे सफल कभी···
जब देखो तब द्वार पर खड़े,
उधार लाए हम, चले बड़े!'

पदावली अपने में कमज़ोर है; वर्णक्रम बदलने से विशेष अन्तर नहीं आया। आगे—

सूना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित दूना। (पृ. ४६)

यहाँ पदावली वैसे ही सशक्त है; वर्णक्रम बदलने से नया चमत्कार नही हुआ। किन्तु—

उस मानस ऊर्ध्व देश में भी
ज्यों राहु ग्रस्त आभा रवि को—(पृ. १५)

यहाँ तुलसीदास का मन ऊर्ध्व देश के उच्चतम बिंदु तक पहुँच गया है, क्रम-परिवर्तन अच्छा लगता है।

उसके अदृश्य होते ही रे
उतरा वह मन धीरे-धीरे—(पृ. २३)

स्थिति-परिवर्तन के साथ क्रम-परिवर्तन सार्थक है। जहाँ रत्नावली के योगिनी-रूप का वर्णन करते हैं, वहाँ लघु-गुरु वर्णक्रम ने पक्ति में नई शक्ति भर दी है।

बिखरी छूटी शफरी अलकें
निष्पात नयन नीरज पलकें। (पृ. ४४)

इसी संदर्भ में पुनश्च:

अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
बल की महिमा बोली अबला—(पृ. ४५)

यहाँ भी वही चमत्कार है। अंत में तुलसीदास जब घर छोड़कर चलने को होते है, मन आकाश से मानो धरती पर उतरता है, निराला उनके अपने में खोये हुए मन की तसवीर खींचते है :

क्या हुआ कहाँ, कुछ नही सुना,
कवि ने निज मन भाव में गुना
साधना जगी केवल अधुना प्राणों की।

तुलसीदास की भावदशा में परिवर्तन के साथ यहाँ भी वर्णक्रम-परिवर्तन सार्थक है। निराला ने ऐसे परिवर्तन जान-बूझकर किए हों, यह आवश्यक नही।

छंद की गति में वह जो परिवर्तन करते है, वह जान-बूझकर। ध्वनि की नयी भंगिमाएँ सामान्यत: अर्थ के उत्कर्ष में सहायक होती हैं। किन्तु बहुत जगह गति-भंग-दोष उनकी मजबूरी जाहिर करता है। 'राम की शक्तिपूजा' जैसी समर्थ रचना भी इस दोष से मुक्त नहीं। जाम्बवान के भाषण में—

जब तक लक्ष्मण है महावाहिनी के नायक
मध्यभाग मे अंगद दक्षिण—श्वेत सहायक।

दूसरी पंक्ति में श्वेतस-हायक पढ़ा जाय तब गति दुरुस्त होती है; श्वेत पर रुकने से कोई सौन्दर्य पैदा नहीं होता, अनावश्यक झटका ज़रूर लगता है। इस तरह के दोष निराला के गीतों में भी है।

गीत और लोकसंगीत

अर्चना मे एक गीत बड़े मधुर ढंग से शुरू होता है—**रंगभरी किसी अंगभरी हो**। आगे दो पक्तियाँ है :

जैसे मैं बाज़ार मे बिका
कौड़ी मोल : पूर्ण शून्य दिखा।

दूसरी पक्ति मे गति-मग है। **शून्यस-हायक** की तरह **शून्यदि-खा** पढ़ा जाय तब गति दुरुस्त होती है। **गीतिका** में एक गीत की पहली पक्ति है : **वह जाता रे परिमल वन**। अतिम पक्ति है : **स्वर्ग की परी स्वर्ण किरण**। यहाँ भी **स्वर-णकिरण** पढ़ा जाय तो गति ठीक रहती है किन्तु **स्वर्ग-स्वर्ण** के ध्वनि-साम्य के कारण गति-भंग अखरता नही।

गीत आरभ होता है :

प्रति क्षण मेरा मोह मलिन मन (गीतिका, पृ. ४५)

आगे निराला छद की गति बदलते हैं :

उल्लसित चमत्कृत कर भरती हो
अजस्र रस रूप घन किरण।

गति-परिवर्तन उल्लास की व्यजना के अनुकूल है, सार्थक है। मात्राएँ बराबर रहती हैं, केवल गीत मे थोड़ा हेर-फेर है। किन्तु **यामिनी जागी** के पहले बद में उन्नीस मात्राओ की पक्ति है, दूसरे मे सत्रह मात्राओं की। गाना है, स्वर खीचकर मात्राएँ पूरी की जा सकती है; छद की गति में परिवर्तन नही होता। किन्तु **सखि वसंत आया**—इस गीत के पहले बंद मे सोलह मात्राओं की पंक्ति है, दूसरे और तीसरे में सत्रह मात्राओ की। छद बदलता है, छंद की गति बदलती है।

किसलय-वसना नव-वय लतिका।
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका…
लता मुकुल हार-गन्ध-भार भर
वही पवन बंद मंद मदतर। (गीतिका, पृ. ३)

लय-परिवर्तन का औचित्य यही है कि ध्वनि-प्रवाह निम्न से उदात्त की ओर उठता है।

लघु-गुरु वर्णक्रम-परिवर्तन वह गीतों में भी करते है। **यामिनी जागी** में **भर रहे, तर रहे, दिन कर रहे** के बाद दूसरे बद में **बाल, मराल** और **जयमाल**। **सखि वसन्त आया** में पहले **लतिका-पतिका**, फिर **भार भर, मंदतर**। तुक मिलाने मे स्वर-साम्य से काम लेते ही हैं—**खड़ी** से **कली** की, **पड़ी** और **गड़ी** से **भरी** की तुक मिलाते है। (उप., पृ. ४) एक गीत में उन्होने **अनंग, तरंग** और **उमंग** के साथ **ब्रह्म** की तुक मिलाई है। (अर्चना, पृ. २१) अंतिम वर्ण ह्रस्व है, इतना ही साम्य है।

सामान्यतः गीतों में निराला के अन्त्यानुप्रास अत्यन्त मुखर हैं। कविताओं से अधिक गीतों का सौन्दर्य प्रकट करने के लिए वे अनिवार्य हैं। बहुत से भजनों की तरह एक ही तुक बराबर नहीं दोहराई जाती। बँगला-अंग्रेजी की लिरिक रचनाओं की तरह एक ही गीत में अन्त्यानुप्रासों की विविधता रहती है। टेक दूसरी; प्रत्येक बंद के अन्त्यानुप्रास दूसरे। इनके अलावा निराला एक ही पंक्ति में ध्वनि-साम्य से नया सौन्दर्य पैदा करते हैं। अमरण भर वरण गान (उप., पृ. ७); प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव (उप., पृ. १) इत्यादि। कभी इस तरह ध्वनि-साम्य एक पंक्ति के बाद दूसरी में प्रकट होता है, यथा :

मन चंचल न करो !
प्रतिपल अञ्चल से पुलकित कर
केवल हरो, हरो। (उप., पृ. १६)

अथवा

रँग गई पग-पग धन्य धरा,
हुई जग जगमग मनोहरा। (उप., पृ. ४६)

कविताओं से कुछ अधिक ही गीतों का नाद-सौन्दर्य इस ध्वनि-साम्य पर निर्भर है। मुक्त-छंद से सम्बन्धित बन्धन-हीनता के सारे सिद्धान्त यहाँ व्यर्थ हो जाते हैं।

निराला की कविताओं की तरह गीतों में भी स्वरपात कहीं अधिक मुखर है, कहीं कम। गीत बहुत तरह के हैं किंतु इनमें दो वर्ग मुख्य हैं। एक वर्ग उन गीतों का है जिनमें बलाघात मुखर है, वक्तृत्वकला का उतार-चढ़ाव है, ओजगुण की प्रमुखता है, स्वर उदात्त के आसपास रहता है। दूसरी तरह के गीत वे हैं जो लोक-गीतों और ब्रजभाषा के पारंपरिक गीतों के अनुरूप रचे गए हैं, जिनमें नाटकीयता से अधिक आत्मनिवेदन, वक्तृत्वकला से अधिक गेयता, ओज से अधिक कोमलता और माधुर्य है। शेष गीत इन्हीं दो वर्गों के बीच में आते हैं। दोनों तरह के गीत लिखने की प्रवृत्ति निराला में आरंभ से है।

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न निशा का किरणजाल
नव किरणों से धो लो।

यहाँ बलाघात मुखर है; ध्वनि-प्रवाह का स्तर उदात्त है या उसके निकट है। अलि घिर आये घन पावस के—(परिमल, पृ. ६०) यह पारंपरिक गीतों के अनुरूप है, स्वरपात दबा हुआ है। पहले वर्ग के गीत गीतिका में अधिक हैं, दूसरे वर्ग के अर्चना, आराधना आदि में। पहले वर्ग के गीत संगीत-शास्त्रियों को अटपटे लगते हैं। अटपटे न लगने पर पुरानी बंदिशों की तरह—या आधुनिक गीतों की तरह—गाने लगे तो लय ताल के चौखटे में निराला का उदात्त स्वर-सौन्दर्य चौपट हो जायगा। सफल गायकी के लिए आवश्यक है कि पंक्ति का अर्थ निखारने के लिए अथवा ध्वनि की गरिमा प्रकट करने के लिए निराला ने जहाँ जैसा ज़ोर दिया है, वैसा ज़ोर गाते समय सुरक्षित रहे, यह हो नहीं पाता। इसीलिए वर दे वीणावादिनि वर दे की

लोकप्रियता के बावजूद गाने वालों के कंठ में वीणावादिनी की दुर्गत हो जाती है।

यद्यपि निराला दुरूह शब्द-शिल्पी माने जाते है, फिर भी छायावादी कवियों मे लोकगीतों का सबसे अधिक प्रवाह उन्ही पर है। परिमल के बाद काव्य के प्रत्येक चरण में होली की धुन गूंजती है। नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली—हिंदी का सर्वश्रेष्ठ होली-गीत है। लय की मादकता, पदावली की कोमलता, शृंगार भाव की मधुरता ने उसमे अनुपम सौन्दर्य पैदा किया है। कही गतिभंग नही, अन्त्यानुप्रास सब दुरुस्त है। निराला लोकगीतो का अनुकरण नही करते; उनकी धुन, चित्रण का ढंग, शब्द-योजना, वातावरण अपनाते हुए उन्हे अपने साहित्य के कलात्मक स्तर तक उठा ले आते है। खुले अलक मुंद गये पलक दल, श्रमसुख की हद होली—यह पदयोजना लोकगीतो की परिधि से बाहर की है। उसमे निराला की अपनी कला का चमत्कार है।

लोकगीतो की एक विशेषता यह है कि बहुत जगह दीर्घ स्वर ह्रस्ववत् पढ़े जाते है। इससे भाषा मे लोच पैदा होता है, पढ़ने और गाने का सौन्दर्य और बढ़ जाता है। सवैया गणात्मक छंद है; पुराने कवि, लोकगीतों मे स्वरों की घट-बढ़ के अनुरूप, हिंदी में गणात्मक छंद के नियम तोड़ देते है। अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे। पूरी पंक्ति में ए स्वर ह्रस्व-दीर्घ रूपों मे रचा हुआ है। यह कौशल निराला के गीतों मे है।

> प्रिय कर कठिन उरोज परस कस कसक मसक गई चोली
> एक वसन रह गई मन्द हँस, अधर-दशन अनबोली।

पहली पंक्ति मे गई की ई ह्रस्ववत् है; दूसरी मे गई की ई पूर्णतः दीर्घ है। ऐसे ही

> कली सी काँटे की तोली···
> बनी रति की छवि भोली···

दोनों पंक्तियो मे 'की' है; पहली मे ह्रस्ववत्, दूसरी में दीर्घ। बाद के गीतो मे स्वरों की यह घट-बढ़ निराला की शैलीगत विशेषता हो गई है:

> बरद हुईं शारदा जी हमारी,
> पहनी वसन्त की माला सँवारी—(गीतगुंज, पृ. २३)
> कूची तुम्हारी फिरी कानन मे
> फूलों के आनन आनन मे— (उप)
> चंग चढ़ी थी हमारी
> तुम्हारी डोर न छूटी—(अर्चना, पृ. २२)
> फूटे है आमों के बौर
> भौंर वन वन टूटे हैं।
> होली मची ठौर-ठौर
> सभी बन्धन छूटे है। (उप , पृ. ३३)

छापे के अनुसार मात्राएँ गिनी जायँ तो घट-बढ़ जायँगी किन्तु दीर्घ स्वरो को आवश्यकतानुसार थोड़ा दबाकर पढ़ा जाय तो पंक्ति सटीक उतरेगी।

निराला को होली की धुन बहुत प्रिय थी। उस धुन में लिखे हुए गीत स्वभावतः सौन्दर्य और शृंगार के भाव व्यंजित करते है। किन्तु जैसे कविताओ मे कोई भी छंद किसी भाव विशेष से नही बँधा, वैसे ही गीतो मे भाव और लय का सम्बन्ध अटूट नहीं है। **कौन गुमान करो जिंदगी का** (अर्चना, पृ. ७८)। शब्द-योजना में वैराग्य है, धुन मे शृंगार की मस्ती !

बाँधे हुए घर वार तुम्हारे
(जागी रात सेज प्रिय प्रति सँग)
माथे है नील का टीका।
(रति सनेह रँग घोली।)
दाग-दाग कुल अंग स्याह हैं
(खुले अलक मुँद गये पलक दल)
रंग रहा है फीका
(श्रमसुख की हद होली।)
तुम्हारे कोई न जी का।
(वनी रति की छवि भोली।)

यदि होली की धुन मे वैराग्य का गीत गाया जा सकता है, तो कजली की धुन मे राजनीतिक कविता भी लिखी जा सकती है। भारतेन्दु के समय से राजनीतिक कविताएँ लिखने के लिए लोकधुनो का उपयोग होता रहा है, **काले-काले वादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल**—(बेला, पृ. ५४) कजली की धुन मे जो करुणा है, वह राजनीतिक कविता के भाव से मेल खाती है ! **टूटी बाँह जवाहर की, रणजित लट छूटी पंडित की**—(उप., पृ. ५५) इस गीत मे वह करुण ध्वनि और भी सार्थक है। निराला ने एक बहुत जोरदार राजनीतिक कविता होली की धुन पर भी लिखी है। इसमे वसन्तकालीन प्रकृति की झलक है, होली की धुन की उमंग है। युवको का खून बहा है, कोंपलों की लाली से कही उस खून का सम्बन्ध है, यह सोचकर दर्द पैदा होता है। युवा शक्ति सारी वाधाएँ पार करके स्वाधीनता प्राप्त करेगी—यह विश्वास गीत में उमंग बनकर छा जाता है।

निकले क्या कोपल लाल फाग की आग लगी है।
फागुन की टेढ़ी तान खून की होली जो खेली।

निराला एक ही गीत को कई तालो मे गा सकते थे जैसे कवित्त के लिए लिखा, वह तीन ताल, चार ताल और झपताल में गाया जा सकता है। उसका यह अर्थ नही कि वह ताल के प्रति उदासीन थे। 'पन्तजी और पल्लव' में जहाँ विभिन्न तालो की वात लिखी है, वहाँ स्पष्ट है कि वह ताल से भाव का सम्बन्ध जोड़ देते हैं। "चौताल में इस छंद के पुरुपत्व का कितना प्रसार होता है, स्वर किस तरह परि-पुष्ट उच्चरित होते है, आनंद कितना वढ़ता है, देखे।" इस चौताल मे स्वयं निराला ने अनेक गीत लिखे है। इनका स्वर उदात्त है; भाव चाहे शृंगार का हो, चाहे करुणा का।

अमरण भर वरण गान—(प्राकृतिक सौन्दर्य);
वन्दूं पद सुन्दर तव—(वंदना);
निविड़ विपिन पथ अराल—(त्रास);
ऊर्ध्व चंद्र, अधर चन्द्र—(मृत्यु-दर्शन)।

प्राणधन को स्मरण करते—गीतिका की भूमिका में उन्होने चौदह मात्राओं के इस गीत को धम्मार ताल मे गाने की वात लिखी है। गीत में शृंगार भाव है किंतु चौदह मात्राओं के छंद में रचे हुए अन्य गीतों में कठिन दार्शनिक चिन्तन, उदात्त संकल्प अथवा उत्कट आत्मनिवेदन है। **कौन तम के पार, रे कह**—कठिन दार्शनिक चिन्तत। **जग का एक देखा तार**—वैसा ही उदात्त दार्शनिक भाव। **बुझे तृष्णाशा विषानल झरे भाषा अमृत निर्झर**—उदात्त संकल्प; **भजन कर हरि के चरण मन**—विनम्र वंदना का भाव (अर्चना, पृ. ७८)।

निराला के कुछ वहुत ही शक्तिशाली गीत झपताल में हैं। दस मात्राओं के छंद के लिए **गीतिका** की भूमिका मे लिखा है, "खड़ीवोली के आधुनिक कवियो ने इस छंद की रचना नही की। अगर की है, तो मैंने देखी नही।" घोर दुख में, वंदना के आत्मीयता भरे क्षणो मे, संघर्ष और पराजय की वेला में यह छंद निराला के प्राणों में वज उठता है, उन्हे सहारा देता है, युद्ध और चुनौती के स्वर भी इसी छंद में फूटते हैं। ताल के साथ शब्दों के मृदंग वज उठते है; ध्वनि की जैसी गहराई इन गीतों में है, वैसी अन्यत्र कम है।

पावन करो नयन—(**गीतिका**)। ध्वनि की गहराई पहली पंक्ति मे नही, दूसरे वंद में है:

प्रतनु शरदिन्दु वर
पद्मजल विन्दु पर
स्वप्न जागृति सुघर
दुख निशि करो शयन।

दिन मे जो किरण संसार को रंग-रूप से भर देती है, वही कवि की दुखनिशा में स्वप्न-जागृति वनकर उसे सान्त्वना देगी। सुख-दुख का मिश्रभाव है।

सार्थक करो प्राण—(उप., पृ. ५६) ओजपूर्ण वंदना-गीत है, वंदना केवल अपने लिए नही, संसार के लिए है। **बहती निराधार**—(उप., पृ. ६६) प्रकृति की शक्ति, उसका अपार सौन्दर्य गीत के गंभीर ध्वनि-प्रवाह में व्यक्त हुआ है। **टूटें सकल बंध**—(पृ., ७३) कली के वहाने दृढ़ संकल्प की घोषणा। **जागा दिशा ज्ञान**—(उप., पृ. ८५) पाश्चात्य साम्राज्यवाद पर भारतीय मानस की विजय का गीत। **प्रात तव द्वार पर**—(उप., पृ. ९५) जीवनसंघर्ष और उत्कट आत्मनिवेदन का गीत। **अनगिनित आ गए शरण में जन जननि**—(उप., पृ. १८) ओजमिश्रित वंदना के कोमल मधुर भाव। **दे मैं करूँ वरण**—(उप., पृ. ९७) उदात्त स्तर पर रचे हुए गीतों का सिरमौर; जितना कष्ट, उतना ही संघर्ष के लिए दृढ़ संकल्प।

अर्चना में त्रास का गीत—

शिशिर की शर्वरी
हिंस्र पशुओं भरी;

आराधना में खिन्नता की व्यंजना—

भग्न तन, रुग्ण मन
जीवन विषण्ण वन—

और अन्त में शिवताण्डव का गंभीर घोप:

डमड डम डमड डम
डमरू निनाद है;
ताण्डव नचे शिव
प्रवाद उन्माद है। (सान्ध्य काकली)

यह सव निराला ने एक ही छंद में रचा, एक ही ताल में गाया है। कविताओं मे जो स्थिति 'सरोज-स्मृति' और 'तुलसीदास' के छंद की है, गीतों में वही स्थिति इस छंद की है। छंद छोटा है, निराला उसमें बड़ी शक्ति केन्द्रित करते हैं; आवश्यकतानुसार उसे दुगुना करके ध्वनि की गरिमा का प्रभाव डालते हैं।

जननि दुख हरण पदराग रंजित मरण —

गीतों में इस पंक्ति का वही महत्त्व है जो कविताओं में 'राम की शक्तिपूजा' के छंद का।

गीतिका की भूमिका में निराला ने वँगला संगीत पर अंग्रेज़ी प्रभाव का विस्तार से उल्लेख किया है। रवीन्द्रनाथ के गीत भिन्न-भिन्न रागिनियों मे वँधे हुए है; फिर भी उनकी 'अदायगी अंगरेजी है।' फिर अंग्रेज़ी और आधुनिक वँगला संगीत से अपने संस्कार-निर्माण का उल्लेख है। "यद्यपि मुझे पश्चिम के किसी प्रसिद्ध देश में अधिक काल तक रहने का सुयोग नहीं मिला, फिर भी मैं कलकत्ता और वँगाल में उम्र के वत्तीस साल तक रह चुका हूँ···गीतो की स्वरलिपि मैं स्वयं करना चाहता था, पर कुछ ऐसी परिस्थिति मेरी रही कि सव तरफ से अभाव का सामना मुझे करना पड़ा। एक अच्छे हारमोनियम की गुंजाइश भी मेरे लिए नही हुई।"

निराला जव अपने वारे में, अपनी कला के वारे मे सोचते हैं तव उनका विवेचन इस तरह का होता है। जव वह गीत रचने वैठते है, तव उनका मन इस स्तर से ऊपर उठ जाता है। गीतिका के वाद उनके गीतों पर लोकसंगीत का रंग और भी गहरा हुआ, उनमें निराला की अपनी कलात्मक विशेपताएँ और भी उजागर हुई। जव वह गाते नही थे, वुदवुदाते थे, दूसरो से अंग्रेज़ी में वातें करते थे, तव उनके मन मे लोकधुनें गूँजती रहती थी:

वरद हुईं शारदाजी हमारी···
जिधर देखिए श्याम विराजे
श्याम कुञ्ज, वन, यमुना, श्यामा···

खेलूँगी कभी न होली
उससे जो नहीं, हमजोली।

'देवी सरस्वती' मे जिस तरह लोकसंगीत का उन्होंने बखान किया है, सूर, तुलसी और मीरा के जिन पदो की गति-लय उन्होने सरस्वती की वीणा में सुनी है, वही सगीत निराला के गीतो का प्राण है। निःसन्देह वह परंपरा के अनुसरणकर्ता मात्र नही हैं। "मै खडीवोली मे जिस उच्चारण-संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ।" (गीतिका की भूमिका), वह स्वप्न उनके गीतों मे साकार हुआ, वह स्वप्न पुराने गीतो की प्रतिच्छवि नही है। निराला के गीत शास्त्रीय ढंग से नही गाए जा सकते; लोकसंगीत के ढंग से उनके काफी गीत गाए जा सकते है। निराला शास्त्रीय संगीत की आलोचना करते थे, पुरानी वंदिशों पर फिदा भी थे।

धिक मद, गरजे वदरवा -
चमकि विजुली डरपावे··· (सान्ध्य काकली, पृ. ४१)
धिक मनस्सव, मान, गरजे वदरवा।
झूले झिले, गाव सरजे वदरवा। (गीतगुंज, पृ. ४३)

कलकत्ता मे और खासतौर से महिपादल मे जहाँ निराला का लड़कपन वीता था, हिन्दुस्तानी सगीत का काफी प्रभाव था।

निराला रवीन्द्रनाथ के गीत गाते थे लेकिन उनकी गायन-पद्धति रवीन्द्र-संगीत से भिन्न थी। स्वभावतः वे जो अपने गीत गाते थे, वे रवीन्द्र-संगीत से और भी दूर थे।

खड़ीवोली मे उच्चारण-संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा—निराला के गीतो की यह विशेषता है। हिंदी का उच्चारण-संगीत बँगला का नही है, अंग्रेजी का नही है, सस्कृत और उर्दू के संगीत से भी वह भिन्न है। हिंदी का अपना उच्चारण संगीत निराला के गीतो की विशेपता है, उनकी कविताओं की भी।

संस्कृत के अनुष्टुप में वड़ी शक्ति है; रामायण और महाभारत मे उसी का सशक्त प्रवाह है। गणात्मक छंद सुन्दर है किन्तु उनका सौन्दर्य साँचे में ढला हुआ है। लघु-गुरु वर्णो का स्थान निश्चित है। उर्दू की वहर वजन के हिसाव से चलती है; वजन नपा-तुला जैसा एक पंक्ति मे वैसा ही दूसरी मे। यह पद्धति गणात्मक छंदो से वहुत मिलती-जुलती है। कवीर, जायसी, तुलसीदास, सूरदास आदि पुराने हिंदी कवियो ने छंद के नपे-तुले साँचे तोड़ दिए, उन्होने अपने छंदों मे वोलचाल की भाषा की लय-स्वच्छंदता अपनाई। गणात्मक वृत्तो का समस्त वैभव हिंदी तथा अन्य भारतीय भापाओ की इस प्रवृत्ति को न रोक सका। खड़ीवोली की स्वच्छंद लय का विकास—इसी परंपरा के अनुरूप—जैसा हिंदी में हुआ है, वैसा उर्दू में नही। हिंदी मे उसका जैसा विकास निराला में हुआ है, वैसा अन्य कवि मे नही, इसका रहस्य यह है कि मात्राएँ गिनने के वदले निराला स्वरपात पर ध्यान देते हैं, किस वर्ण पर कहाँ कितना जोर देना चाहिए इस वात की तरफ सचेत रहते हैं;

पंक्ति में बलाघात का साँचा बदलकर लय में परिवर्तन करते है। इसलिए उनकी भाषा, उनके छंद अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली जान पड़ते है।

छायावाद-यथार्थवाद

छंद की तरह निराला ने कविता की विधाओं में नये-नये प्रयोग किए हैं। उन्होंने 'जुही की कली' और 'शेफालिका' जैसे मुक्तक लिखे है जिनमें एक दृश्य पर ध्यान केन्द्रित करके उसका वर्णन किया गया है, उन्होंने 'यमुना के प्रति' जैसी कविताएँ लिखी हैं जिनमे दृश्य-पट बदलता रहता है और भावों तथा बिंबों की लंबी शृंखला है। निराला ने बहुत से गीत लिखे हैं जिनमे कुछ लोकगीतो की धुन पर हैं, अन्य अपनी विशिष्ट साहित्यिक कला प्रदर्शित करते है। गीतों और मुक्तको मे सीधे मन के भाव प्रकट करते हैं; वक्रता से, नाटकीय ढंग से भी।

'शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार' (२) सामान्य मुक्तक रचनाओं से भिन्न हैं। ये भाषण है जिनमें वक्तृत्वकला के गुण प्रकट होते हैं। निराला ने व्यक्तियो पर, विशेष घटनाओं पर बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं—जैसे महादेवी वर्मा पर, सन् '४६ मे इलाहाबाद के विद्यार्थियों पर गोली चलने पर।

'वनबेला' और 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' अंग्रेजी की ओड से मिलती-जुलती रचनाएँ हैं। सम्राट् एडवर्ड वाली रचना मे सम्राट् को सीधे सम्बोधित किया गया है जैसे कि सामान्यत: ओड में किया जाता है। 'वनबेला' मे कवि और वनबेला का संवाद है। 'सरोज-स्मृति' हिन्दी का अनुपम शोकगीत है। कवि-पिता ने पुत्री के निधन पर ऐसा शोकगीत कम ही लिखा होगा। पाश्चात्य एलेजी की तरह यहाँ देवी-देवताओं से शोक को अलंकृत नही किया गया, न कविता के अन्त में मन को काल्पनिक सान्त्वना दी गई है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने प्रबन्ध रचना-कौशल दिखाया है। ये कविताएँ खंडकाव्य नही है, रवीन्द्रनाथ की सूरदासेर प्रार्थना जैसी कविताओं से इनका वर्ग भिन्न है। खंड-काव्य से छोटी किन्तु सामान्य मुक्तको से लम्बी ये कविताएँ महाकाव्य के लघु अंश जैसी है। अंश लघु है किन्तु उसमें घनत्व महाकाव्यों से अधिक है।

निराला ने व्यंग्य और परिहास की 'कुकुरमुत्ता', 'खजोहरा' जैसी कविताएँ लिखी हैं, उन्होने 'महगू महगा रहा', 'डिप्टी साहब आए' जैसी कविताएँ लिखी हैं जिन्हे रिपोर्ताज की संज्ञा दी जा सकती है। 'स्फटिक शिला' किसी यात्री की डायरी के पृष्ठ जैसी कविता है। काव्य रूपों की ऐसी विविधता पुराने हिन्दी काव्य

में नही है, आधुनिक हिंदी काव्य में भी कम है।

वर्णन, संवाद और कथा-रचना—इन तीन क्षेत्रों में निराला सबसे कमजोर है कथा-रचना में। उन्होने महाकाव्य लिखने का प्रयत्न नही किया, यह अच्छा किया। उपन्यासों में जहाँ कथा को आगे बढाना होता है, उनके सूत्र उलझ जाते है। कहानियों में भी, कथा समाप्त करते समय, छंद में जैसे गतिभंग पैदा कर देते है। कथा-साहित्य में 'चतुरी चमार', 'देवी', 'बिल्लेसुर बकरिहा' का शिल्प काव्य में 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' के शिल्प से मिलता-जुलता है। 'राम की शक्तिपूजा' का सौन्दर्य कथा की प्रगति मे नही, परिवेश के चित्रण और संवाद—राम के स्वगत-कथन आदि—में है। 'तुलसीदास' में वह तुलसीदास के अध्ययन, विवाह, वैराग्य की पूरी कहानी कहना चाहते है; यह कथा समगति से आगे नही बढ़ती। कुछ अविस्मरणीय दृश्यखंड कथा की कमजोर कड़ियों से जुड़े हुए दिखाई देते है। प्रारंभ में भारत की सांस्कृतिक संध्या, मध्य में तुलसीदास का स्वगत-कथन, अन्त में रत्नावली का योगिनी रूप और तुलसीदास का वैराग्य। 'कुकुरमुत्ता' के पहले हिस्से मे एक दृश्य पर ध्यान केन्द्रित रहता है, यह अच्छा बन पड़ा है। दूसरे हिस्से में कहानी बढ़ती है और यह हिस्सा कमजोर है।

निराला भाषण लिखने में कुशल हैं, संवाद लिखने मे अपेक्षाकृत कमजोर। तुलसीदास में रत्नावली के भाई की बातचीत (अड़सठवाँ बंद) कविता के सामान्य धरातल से निम्न स्तर की है। 'बनबेला' मे बेला की उक्ति जहाँ-तहाँ लड़खड़ाती है। 'सरोज-स्मृति' में सासुजी की बातचीत—**वे बड़े भले जन हैं, भैया** आदि—निराला ने 'तुलसीदास' की तुलना में अधिक सफलता से निबाही है लेकिन आगे—**भैया अब नहीं हमारा बस** आदि मे—सासुजी की उक्ति वैसी ही सहज, प्रवाहपूर्ण नही बन पाई। 'राम की शक्तिपूजा' मे निराला ने बड़े परिश्रम से संवाद लिखे हैं और इस कार्य में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है किंतु इस कविता में भी अंजना की उक्ति पूरी तरह सँभाली नही जा सकी, कलात्मक स्तर से गिरती है। जहाँ स्वगत-कथन है, वहाँ निराला का जवाब नही।

निराला में दृश्य-वर्णन की अद्भुत क्षमता है। गीत, मुक्तक, प्रबन्ध-काव्य—सर्वत्र यह कौशल दिखाई देता है। अनेक रोमांटिक कवियो में दृश्य-वर्णन की यह क्षमता देखी जाती है। निराला के दृश्य-वर्णन कविता को पहनाए गए आभूषण नही हैं, वे उसके आन्तरिक गठन के अभिन्न अंग है। 'बनबेला', 'राम की शक्तिपूजा' में वे केन्द्रस्थित व्यक्ति की मनोदशाओं के चित्रण से सम्बद्ध है।

निराला की कुछ रचनाएँ बहुत कल्पनाशील जान पड़ती है, कुछ बहुत तथ्य-परक; कुछ में गंभीर भाव है, कुछ में व्यंग्य और हास्य है। उनकी रचनाओं में अनेक शैलियाँ है; कही उदात्त ध्वनि-प्रवाह, सघन मूर्तिविधान, भाव-विचार-बिंब का संश्लिष्ट गुम्फन है, कही सादी बातें, सादे ढंग से, प्राय: गद्य के स्तर पर कही गई है। कौन-सी कला श्रेष्ठ है? किस तरह की रचनाओ में निराला को अधिक सफलता मिली है? उनकी कला में निरन्तर विकास होता गया है या ह्रास और

विकास का कोई उलझा हुआ क्रम है ?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए निराला-काव्य के तीन चरणों पर ध्यान देना आवश्यक है। पहला चरण सन् '२० से '३६ तक—'जन्मभूमि' वाली कविता से लेकर 'राम की शक्तिपूजा' तक। दूसरा चरण सन् '३७ से सन् '४६ तक—'वनवेला' से लेकर **युवक जनों की है जान; खून की होली जो खेली** तक। तीसरा चरण सन् '५० से सन् '६१ तक—**अर्चना** के गीतों से लेकर **पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है** तक। इन तीनों चरणों में बहुत-सी बातें सामान्य हैं, कुछ भिन्न।

निराला ने तीनों चरणों में वर्षा, वसन्त, नारी-सौन्दर्य, सामाजिक क्रान्ति, दुख और मृत्यु पर कविताएँ लिखी हैं। तीनों चरणों मे उनका काव्य 'गंभीर' है, हास्य और व्यंग्यपूर्ण भी। तीनों चरणों में उन्होंने गीत लिखे हैं, प्रबन्ध-रचना-कौशल का परिचय भी दिया है। प्रत्येक चरण में निराला-काव्य का कलात्मक स्तर ऊँचा-नीचा है, उसमें कलात्मक विविधता है, वैषम्य भी। तीनों चरणों में भेद यह है कि पहले चरण में व्यंग्य और हास्य कम है, दूसरे में अधिक, तीसरे में फिर कम। क्रान्तिकारी भावना पहले दो चरणों में अधिक है, तीसरे में कम। मृत्यु और दुख के गीत दूसरे-तीसरे चरणों में अधिक हैं। प्रथम चरण में उन्होने अपने श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य लिखे; तीसरे चरण में गीतों का बाहुल्य है। लोकगीतों का प्रभाव सबसे ज्यादा तीसरे चरण की रचनाओं पर है। मृदु, मसृण, सजल विशेषणों वाली शब्दावली पहले चरण में अधिक है, दूसरे-तीसरे चरणों में कम। कविता लिखने मे परिश्रम से बचने, जो शब्द सामने आया, उसे किसी तरह खपाने की प्रवृत्ति तीसरे चरण में ज़्यादा है। विनय के पद भी तीसरे चरण में अधिक हैं।

निराला पहले चरण में छायावादी हैं, दूसरे में प्रगतिवादी, तीसरे में प्रयोगवादी —क्योंकि पहले चरण में कल्पनाशील अधिक हैं, दूसरे में यथार्थ का—जैसा देखा, वैसा—चित्रण करते है, तीसरे में अन्तर्मुखी है— यह विश्लेषण सही नही है। निराला प्रत्येक चरण में कल्पनाशील हैं, यथार्थद्रष्टा हैं, अन्तर्मुखी हैं किन्तु कल्पनाशीलता, यथार्थ-दर्शन और अन्तर्मुखी होने के तरीके अलग-अलग है; इन्हें पहचानना ज़रूरी है।

पहले चरण की रचनाओं में परिवेश को कल्पना के सहारे बदलकर चित्रमय रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है। किन्तु 'वनवेला' मे निराला के समकालीन राजनीतिज्ञ और उनके अनुयायी कवि जैसे वास्तविक जीवन में निराला को दिखाई देते हैं, वैसे ही चित्रित किए गए हैं। 'सरोज-स्मृति' में हिन्दी संपादक, वापस की हुई रचनाएँ लिए हुए स्वयं कवि, जैसे वे निराला को याद हैं, वैसे ही कविता में चित्रित हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में यही परिवेश कल्पना के सहारे परिवर्तित रूप में, वास्तविकता को प्रतीक-योजना के नीचे छिपाये हुए, प्रस्तुत किया गया है। यह दो तरह की कला हुई। कुल मिलाकर यथार्थवादी प्रवृत्ति सन् '३६ के बाद निराला-काव्य में दृढ़ होती है। यह प्रवृत्ति प्रकृति और नारी से लेकर सामाजिक जीवन के चित्रण तक दिखाई देती है।

परिमल और **गीतिका** में वन, उपवन, लता, वृक्ष, कलियाँ बहुतायत से है। यह पता मुश्किल से लगता है, ये वन-उपवन किस प्रदेश के है, वृक्षो और लताओं के नाम क्या हैं। कलियाँ जुही और शेफाली की हो, तो भी उनमे जितना कली का भाव है, उतना ही, या कुछ अधिक रमणीयता का भाव।

अणिमा के अन्त में कविता है—**जलाशय के किनारे कुहरी थी**। यहाँ वृक्ष हैं, आम और नारियल के। विशेपकर एक आम की डाली तालाव के पानी पर झुकी हुई है। पपीहे के बोल सुनाई देते हैं, भोर होने को है, स्यार अभी स्वच्छन्दता से घूम रहे हैं, आसमान के तारे तालाव के पानी में प्रतिविंवित हैं। यहाँ प्रकृति सामान्य से विशेप हुई, निराला ने दृश्य को प्रतीक रूप में न लेकर विस्तार से उसका वर्णन किया। 'देवी सरस्वती' में निराला ने एक विशेप दृश्य न लेकर अवध के गाँवों के अनेक दृश्य लिए, लोक-संस्कृति के साथ प्राकृतिक परिवेश का विशिष्ट चित्रण किया। यह कला **गीतिका** के प्रकृति-चित्रण से भिन्न है।

अर्चना के फूटे है आमो में वौर जैसे गीत उसी विशिष्ट प्रकृति का चित्रण करते हैं यद्यपि यहाँ एक ही दृश्य का वैसा विस्तृत वर्णन नही है जैसा **जलाशय के किनारे कुहरी थी**—कविता में। निराला ग्राम दृश्यों के अलावा शहर और कस्वों के दृश्य भी चित्रित करते हैं। **अणिमा** में एक कविता है—**सड़क के किनारे एक दूकान है**। यह पान की दूकान है, सड़क का नाम माल रोड है। इक्कावान है, वैलगाड़ी है, खेत जोतता हुआ किसान है, हवा में नीम के फूलों की गंध है।

इसी तरह निराला मनुष्य का चित्रण करते है। झींगुर, महगू, आदमियों का नाम और पेशा वताकर, गाँव की आवादी का हाल लिखकर, कौन आया, कौन गया—सारा विवरण प्रस्तुत करके जनजीवन का चित्रण करते है। **आराधना** में किसान खेत जोतकर हल-माची लिए हुए घर लौटते दिखाई देते है (पृ. ७४)। इसी परम्परा में **सान्ध्य काकली** का गीत है :

> गहरी विभावरी शीत की,
> काँपी पाले से अरहर की
> डाली गुनागरी (शीत की)।

इस गीत में निराला माचे पर किसान के कुत्ते का कुकुहाना सुनते हैं—**सखि वसन्त आया** के पिक-स्वर से इस स्वर में काफी अन्तर है।

ऐसे ही नारी के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर है। **आवृत सरसी उर सरसिज उठे**—इस तरह सामने खड़ी हुई स्त्री का भेस वदलने की जगह निराला सीधे उसे स्त्री रूप मे देखते हैं। 'स्फटिक शिला' में—

> वर्त्तुल उठे हुए उरोजो पर अड़ी थी निगाह
> चोंच जैसे जयन्त की, नही जैसे कोई चाह
> देखने की मुझे और,
> कैसे भरे दिव्य स्तन, है ये कितने कठोर। (**नये पत्ते**, पृ. ६०)

काम-चेतना ही नही, दुख और मृत्यु के चित्रण की पद्धति में भी अन्तर है। पुरानी

पद्धति यह है :

आओ मधुर-सरण मानसि, मन।
नूपुर-चरण-रणन जीवन नित
वंकिम चितवन चित-चारु मरण। (गीतिका, पृ. ५३)

नयी पद्धति यह है :

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्यवेला। (अणिमा, पृ. २०)

अथवा—

मारें मूर्च्छित हुईं, निशाने चूक गए है,
भूल चुकी है खाल, ढाल की तरह तनी थी।
(सान्ध्य काकली, पृ. ८७)

अणिमा से लेकर **सान्ध्य काकली** तक निराला-काव्य में यथार्थवादी धारा का व्यापक विकास है जिसमे प्रकृति, नारी, जनजीवन, दुख और मृत्यु को देखने और चित्रित करने की पद्धति वदली हुई है। इस सारे विकास को समझकर निराला के अंतिम चरण की रचनाओं का मूल्य आँकना चाहिए। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि निराला की छायावादी प्रकृति, यथार्थ अनुभव का रूप-परिवर्तन करने, यथार्थ जीवन से फैन्टेसी की दुनिया में पहुँचने की शक्ति कभी खत्म नही होती।

निराला की छायावादी कविता मे जैसी भावुकता और काल्पनिक इच्छापूर्ति वाली कमज़ोरियाँ हैं वैसी ही सीधे सपाट वयान की कुछ कमज़ोरियाँ यथार्थवादी कविता में हैं। 'महगू महगा रहा' मे निराला गिनाना शुरू करते है, गाँव में कितनी जातों के लोग रहते है, नाई, लोहार, वारी से लेकर महाब्राह्मण, गंगापुत्र तक गिनाते चले जाते हैं। ऐसे ही प्रकृति का चित्रण करते हुए अकसर वस्तुओं के नाम गिनाते हैं मानो यह अपने में यथार्थवादी कला हो। **नये पत्ते** की रचनाओ.में कसाव कम है, फैलाव ज्यादा है। महगू वोलता है तो उसके भाषण मे वे सारी कमज़ोरियाँ और भी उभर आती है जो छायावादी रचनाओ के संवाद-लेखन में है। निराला जिन व्यक्तियों का चित्रण करते है, उन्हे पूरी तरह उभार नही पाते।

निराला इन कविताओं के स्तर को व्यंग्य के सहारे उठाते है। व्यंग्य कही वहुत स्पष्ट, कहीं अति गूढ, कही मध्यमार्गी है।

वड़े वाप के वेटे,
वीसियो भी पर्तो के अन्दर, खुले हुए। (नये पत्ते, पृ. १०६)

यह निराला का 'गूढ व्यंग्य है। ऊपर पर्त है, वड़े वाप के वड़े वेटे होने से, उन पर्तो के नीचे साधारण मनुष्य जैसे है। **गले का चढ़ाव वोर्झुआजी का नहीं गया**—(उप.) यह मध्यमार्गी व्यंग्य है, स्वरभगिमा से व्यक्तित्व को पहचानने की क्षमता का परिचय देता है। समाजवाद के प्रचार और पूंजीवादी सस्कारों के अन्तर्विरोध की ओर सकेत करता है। 'मास्को डायेलाग्स' मे व्यंग्य अति स्पष्ट है, वड़े आदमियों

से मेलजोल की बातें, मास्को से छपी नयी कितावें पढ़ाने का दावा, हिन्दी न आने पर भी हिन्दी लेखक बनने की चाह। 'कुकुरमुत्ता', 'खजोहरा', 'प्रेम संगीत' जैसी कविताओ मे हास्य का स्तर नीचा है, कहीं-कहीं अशोभन भी। 'कुकुरमुत्ता' में वक्तृत्वकला है, पुरानी आस्थाओं पर व्यंग्य है, व्यंग्य की कमजोरी यह है कि जिन मान्यताओं को निराला ने हास्यास्पद बनाया है, उनका मूल्यांकन सही नही किया। सफल व्यंग्य सामाजिक जीवन और संस्कृति के अन्तर्विरोधों की सही पहचान से उत्पन्न होता है। 'कुकुरमुत्ता' मे क्रांतिकारी चेतना नहीं, बचकाना विद्रोह-प्रदर्शन अधिक है। इससे तुलनीय है 'वनबेला' में राजनीतिक नेताओं और कवियों पर निराला का सफल, सशक्त व्यंग्य। निराला ने जहाँ हास्य और व्यंग्य के स्तर पर पूरी कविता रचने का प्रयास नही किया, जहाँ भिन्न स्थितियों, भिन्न भावों के वैषम्य मे व्यंग्य देखा है, वहाँ वह अधिक सफल हुए है।

कुछ दृश्यो के वर्णन के अन्त में निराला कोई गूढ़ संकेत करके चित्रण को कवित्वपूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं। **जलाशय के किनारे कुहरी थी**—इस कविता के अन्त में जो तारे तालाब के पानी मे दिखाई देते हैं, वे चित्त रूपी सरोवर के शांत होने की सूचना देते है। सड़क के किनारे दूकान है—इस कविता के अन्त में—**खुली जड़ें सिरसे की ऐंठी हैं** लिखकर निराला संकेत करते है कि मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही विकृत हो गया है। **छलांग मारता चला गया** (नये पत्ते, पृ. ६२) के अंत में मेंढक थाले के पानी से उठकर मूत-मूतकर छलांग मारता चला गया। जमीदार की शक्ति के सामने किसान कितना कमजोर है, उसका प्रतीक है—छलांक मारता हुआ मेढक। इस तरह निराला का यथार्थवाद प्रतीक-चित्रण से मुक्त नही है। साथ ही **छलांग मारता चला गया** कविता में निराला करुणा के साथ हास्य को मिलाने की कला का परिचय भी देते है। 'रानी और कानी' में कानी लड़की की माँ की व्यथा का चित्रण है, हास्य का पुट भी। रूखे हाथो सीला भीसने में यथार्थ की गहरी पकड़, मार्मिक करुणा भी है। **थोड़े के पेटे में बहुतों को आना पड़ा, राजे ने अपनी रखवाली की, दगा की, 'चर्खा चला,' 'पोचक,' तारे गिनते रहे**—ये सारी कविताएँ घोर यथार्थवादी है, फैंन्टेसी के बहुत नजदीक भी। जैसे 'चोटी की पकड़' मे, लगता है, निराला का दुःस्वप्न-पीड़ित मन सामाजिक जीवन के चित्र देखता है, वैसे ही **नये पत्ते** की अनेक कविताओं में त्रास की प्रच्छन्न भावना विद्यमान है। हास्य और व्यंग्य है, तीव्र पीड़ा का भाव भी। इसके आगे एक कदम बढ़ाते ही हम **शिशिर की शर्वरी** और **निविड़ विपिन पथ अराल** में पहुँच जाते है। **अर्चना** और **आराधना** में निराला की जो नवीन उपलब्धि है, उसके लिए आवश्यक प्राथमिक प्रयत्न **नये पत्ते** में है।

परिमल, अनामिका और **गीतिका** की श्रेष्ठ रचनाओं का जो कलात्मक स्तर है, वह **नये पत्ते** की रचनाओं के कलात्मक स्तर से भिन्न है, ऊँचा भी है। किन्तु **नये पत्ते** मे निराला की कला का ह्रास नही, विकास है। जीवन को नये ढंग से देखने और चित्रित करने का प्रयास है। यह कला नये ढंग की है जिसे निखारने

के लिए निराला के सामने बने-बनाये साँचे नहीं थे। निराला ने यहाँ हिन्दी कविता के विकास का नया मार्ग दिखाया। **परिमल, गीतिका, अनामिका** की बहुत-सी रचनाओं से ये कविताएँ अच्छी है किन्तु 'बादलराग' (६), 'राम की शक्तिपूजा', **शिशिर की शर्वरी, पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है** से इनका कलात्मक स्तर नीचा है। निराला **नये पत्ते** की रचनाओं में जिस तरह का यथार्थवाद प्रतिष्ठित कर रहे थे, उसका पूर्ण विकास उनकी कविता में नहीं, गद्य में है और बहुत पहले से है। 'देवी', चतुरी चमार', **कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा**, 'चमेली' में निराला ने जनजीवन का जैसा समर्थ चित्रण किया है, उसके आगे **अप्सरा, अलका, प्रभावती, लिली** आदि कहानियों का छायावादी सौन्दर्य निस्तेज है। **नये पत्ते** में इस यथार्थवाद का अवशेष है, उसकी शुरुआत वहाँ नहीं है।

गद्य-साहित्य

दिवा-स्वप्न

निराला ने स्त्रियों के दुखी जीवन को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेदभाव, विधवाओं के प्रति कटु व्यवहार, पुरुषों का अहंकार, भारतीय परिवार में घुटती हुई नारी—इस सबका चित्रण निराला की कहानियों में है किन्तु ये सब स्त्रियाँ युवतियाँ हैं, छायावादी कविता का आलंबन बन जाती है और उनकी समस्याएँ चमत्कारी ढंग से सुलझ जाती हैं।

'पद्मा और लिली' की पद्मा राजेन्द्र से प्रेम करती है। पिता नही चाहते कि भिन्न जाति वाले राजेन्द्र मे उनकी पुत्री पद्मा का व्याह हो। राजेन्द्र विलायत से बैरिस्टर बनकर लौटा, फिर उसने देशसेवा का व्रत लिया। पद्मा भी पढ़-लिखकर लड़कियों को पढ़ाती है। इस बीच पिता की मृत्यु से पद्मा-राजेन्द्र के अन्तर्जातीय विवाह की समस्या सुलझ जाती है (लिली संग्रह की पहली कहानी)।

'ज्योतिर्मयी' में दहेज-प्रथा, विधवा के जीवन की व्यथा, भारतीय समाज की अनेक रूढ़ियों का सशक्त चित्रण है। नौजवान प्रेमी विधवा ज्योति को अपनाते झिझकता है। उसके दब्बूपन पर निराला ने करारे प्रहार किये है। अन्त में चतुराई से दोनों का व्याह करा दिया जाता है। इससे समस्या का कोई समाधान नही निकलता।

'कमला' में निराला ऐसी स्त्री का चित्रण करते है जिसे भैयाचारों के षड्यन्त्र के कारण पति ने छोड़ दिया है। जैसे प्रेमचन्द को संयुक्त परिवार परेशान करता है, वैसे ही निराला को भैयाचार। भैयाचारो का दायरा संयुक्त परिवार से बड़ा, पूरी बिरादरी से कुछ छोटा होता है। कबीलों वाले समाज के ये अवशेष—लंबा सामन्ती युग पार करने के बाद —ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत पनपने वाले पूंजीवादी समाज में अभी जीवित थे। भैयाचार आपस में रक्त-सम्बन्ध से जुड़े थे, भिन्न परिवारो में रहते हुए भी जन्म-मरण, विवाह आदि सभी अवसरों पर वे मिलकर जबर्दस्त सामाजिक शक्ति बन जाते थे। कमला के पिता ने दहेज न लिया, इससे भैयाचार जल उठे। उन्होंने कमला को बदनाम करके बदला लिया। कमज़ोर पति और ससुर ने कमला को छोड़ दिया। कानपुर के दंगे होने पर कमला के पति अपनी बहन का व्याह कमला के भाई से करने पर मजबूर होते है। पहले जानते नही कि यह लड़का कमला का भाई है, जानने पर लज्जित और पराजित होते है किन्तु कमला की समस्या हल नही होती क्योंकि उसके पति दूसरा व्याह कर चुके

है। समस्या का हल न होना काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने से अच्छा है किन्तु एक जगह निराला इस तरह के समाधान से वचते है, दूसरी जगह कमला के पति और ससुर को पराजित और लज्जित करने का जो रास्ता निकालते है, वह अपवाद रूप मे सत्य हो सकता है, वह सामाजिक जीवन का सहज यथार्थ नही।

'सखी' कहानी की लीला गरीव लड़की है, ट्यूशन करके पढ़ती, घर का खर्च चलाती है। उसकी सखी ज्योतिर्मयी के व्याह की वात आई. सी. एस. वर से चल रही है। ज्योतिर्मयी उसे लीला के हवाले करके उसकी समस्या हल कर देती है (चतुरी चमार मे पहली कहानी)।

कई कहानियाँ निराला ने ऐसी लिखी जिनमे नारी के साथ पुरुष की समस्या का भी काल्पनिक समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'सफलता' मे विधवा आभा को लेकर काफी छायावादी कविता रची गई है किन्तु गाँव में रहते हुए वह जो अपमान सहती है, उसका भी वहुत सही चित्रण किया गया है। उसका पथदर्शक नरेन्द्र साहित्यकार है, समाज मे रहकर समाज का विरोध करना उसे सिखाता है। निराला इन समाज के ठेकेदारों पर तीव्र व्यंग्य करते है किन्तु उनके दाँवपेंच, दूसरों को नुकसान पहुँचाने की शक्ति की पूरी तसवीर वह नही खीचते। उसकी जगह इच्छापूर्ति का स्वप्न है। नरेन्द्र और आभा अपनी नाटक कम्पनी चलाते है, नाटक लिखते और खेलते है, जिस प्रकाशक ने नरेन्द्र को सताया था, वह अव पराजित होता है। नरेन्द्र अपने अपमान का वदला ले लेता है।

अलका के वुधुआ लोध की तरह 'श्यामा' कहानी में सुधुआ है। ज़मीदार की मार खाकर जान गँवाता है। उसकी लड़की श्यामा विधवा है। पंडित रामप्रसाद के लड़के वकिम से प्रेम हो जाता है। ज़मीदार भी पंडित है। भैयाचारो के दवाव से रामप्रसाद लड़के को घर से निकाल देते है। वकिम श्यामा के साथ गाँव से वाहर चला जाता है, उन्नति करता हुआ डिप्टी कलक्टर हो जाता है, श्यामा उसकी पत्नी है। एक दिन जमीदार दयाराम डाली सजाकर आते है, तव श्यामा उन्हें अर्दली से कान पकडवाकर निकाल देती है। दयाराम ने वंकिम के वाग पर कब्ज़ा कर लिया था, वह अब उसके परिवार को वापस मिलता है। वाग मिला, सरकारी नौकरी मिली, जमीदार को नीचा दिखाया, सुखी पारिवारिक जीवन-इच्छापूर्ति के इस भारी कुहरे मे जमीदार और भैयाचारों के अत्याचार की कठोर वास्तविकता धुंधली पड जाती है।

'परिवर्तन' कहानी में सतानेवाली स्त्री है—नवयुवती परी अथवा परिमल कुमारी, राजा की रखैल वेश्या की पुत्री। सताये जाने वाले युवक का नाम सूरज है। पिता शत्रुहनसिह राजा की ड्योढी के जमादार है। परी की आज्ञा न मानने पर पिता-पुत्र अपमानित करके निकाल दिए जाते है। परी का विवाह एक राजा के लडके से होता है, विवाह के समय वरपक्ष के पंडित दासी-पुत्री कहकर सूरज के अपमान का वदला लेते है। ड्योढी के जमादार शत्रुहनसिह महाराजा-रूप मे प्रकट होते है, विपत्ति के दिनों मे ड्योढ़ी के जमादार वन गए थे! सूरज जमादार का

बेटा नही, राजा का बेटा साबित होता है। आधी कहानी मे रियासत के वातावरण का सुन्दर चित्रण है; आधी कहानी मे छायालोक है।

'हिरनी' इन सब कहानियों से भिन्न है। नायिका या नायक के विवाह से समाप्त नही हो जाती। अनाथ बालिका रनिवास में दासी है। कुमारी रहने तक रानी उस पर दयालु रहती है, स्वयं एक कहार से ब्याह कराती है, जिससे उनके राजकुमार सच्चरित्र बने रहें किन्तु उसके बच्चा होने के बाद कुपित रहती है, अन्य दासियो के शिकायत करने पर सिपाही से हिरनी का झोटा पकड़कर उसे बुलाती है, उसे मारती हैं किन्तु उसके हे राम कहते ही उनकी नाक से खून बहने लगता है। यह रामजी का चमत्कार हो सकता है, आकस्मिक संयोग भी ! जो भी हो, यहाँ इच्छा-पूर्ति का स्वप्न रचनेवाला कोई युवक नही है। (कहानी की घटना वास्तविक है और निराला ने उसे बलभद्र दीक्षित पढ़ीस से सुना था।)

'अर्थ' कहानी में राम जी का चमत्कार अधिक है। युवक भक्त रामकुमार अर्थ-प्राप्ति के लिए चित्रकूट की यात्रा करता है और अन्त में वह सफल भी होता है। इस सफलता वाले अंश को छोड़ दे तो तीन-चौथाई कहानी बहुत ज़ोरदार है। धार्मिक आस्थाओं को लेकर भक्त के मन का द्वंद्व, उसकी पत्नी का असीम प्यार, भैयाचारों के षड्यंत्र, उनकी ठगविद्या, चित्रकूट में रात को पहाड़ की चढ़ाई, कहानी में व्यंग्य-मिश्रित करुणा की अन्तर्धारा, कथा कहने वाले की निस्संग दृष्टि—यह सब कला का महान् चमत्कार है। सामाजिक वातावरण, प्राकृतिक परिवेश और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सफल चित्रण निराला के गद्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। अन्त में इच्छापूर्ति के स्वप्न से कहानी में अन्तर्निहित व्यंग्य छिन्न-भिन्न हो जाता है।

जिन्हे 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' प्रिय हों, उन्हे यह कहानी ध्यान से पढ़नी चाहिए।

रामकुमार कुलीन ब्राह्मण कुल का बालक है। घर मे पूजा-पाठ का वातावरण था, "हिंदू धर्म पर उसे पूरा-पूरा विश्वास हो गया।" निराला धार्मिक विश्वासों पर व्यंग्य करते हुए रामकुमार का चित्रण करते हैं। वह सोचता है कि आज अगर भीम होते तो म्लेच्छों का नाश कर देते। उन्होने गदा घुमाई तो भगदत्त के हाथी सेमर की रुई की तरह उड़ गए और उनमें कुछ अब भी हवा मे चक्कर काट रहे हैं। महावीर जी पहाड़ उखाड़कर जहाँ पटकते, विदेशी योद्धा सब चूर हो जाते। राम ने वानरो की सहायता से रावण को हराया, वह आज के रावणों को हरा रहे हैं, रामकुमार कल्पना में देखता। कभी वह 'कृष्ण जी से असंभव कार्य रूप गोवर्धन धारण करा' के उसके नीचे गोप-गोपियो को दु.शासनो से बचा लेता।

भक्त ने प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली। पिता ने तभी विवाह कर दिया। भक्ति से आवेश में आगे पढ़ाई न की, म्लेच्छों की भाषा के प्रति अरुचि भी थी। माता-पिता की मृत्यु हो जाने के बाद भक्त को संसार का ज्ञान हुआ। पहले दाह सस्कार के समय भैयाचारों ने लूटा, फिर बर्षी पर खूब खाया, खूब खर्च कराया।

भक्त पत्नी को छोड़ न सकता था, काम भी न करना चाहता था, गहने गिरवी रखकर भैयाचारों को संतुष्ट करता है, खर्च चलाता है।

भरत का नाम जपकर रुपयों के लिए अँगोछा बिछाता है, राम के नाम चिट्ठी लिखता है, 'श्री रामचन्द्र सिंह' को चित्रकूट में वह चिट्ठी नहीं मिलती। चिट्ठी के वापस आने पर रामकुमार 'अर्द्ध विक्षिप्त'-सा हो जाता है।

बर्सी में दो हजार ब्राह्मणों को खिलाने के बाद पत्नी को मायके भेजकर वह नौकरी की तलाश में निकला। नौकरी उसे न मिली क्योंकि ससार का ज्ञान उसे न था। जिस संसार से निराला बार-बार टकराए थे, उसके बारे मे उन्होंने लिखा, "वह क्या जाने कि ससार किसे कहते है, एक साधारण-सी जगह के लिए कितने असाधारण कार्य करने पड़ते है, कितना छल, कितनी खुशामद, कितनी सिफारिश दो रोटियो की नौकरी के लिए आज जरूरी हो रही है?" (लिली, पृ. ९३) व्यवहार मे उसे लगा, राम इस ससार के स्वामी नहीं है। हर जगह लोग बेवकूफ बनाते थे, अपमानित करते थे। वह मन मे सोचता था— क्या राम मिथ्या कल्पना-मात्र है?

कही भी नौकरी न पाकर राम को ढूंढता हुआ वह चित्रकूट पहुँचा। पास जो सामान और रुपये-पैसे थे, उन्हें रास्ते में ट्रेन से बाहर फेंक दिया। हनुमद्धारा मे जब महावीर जी के दर्शन करने गया, तब पैसे न चढाने पर एक बाबाजी ने गालियाँ दी। लोगो से उसने सुना कि कामदगिरि पर लक्ष्मण-सीता के साथ रामचंद्रजी रहते है। 'तुलसीदास' मे जैसे प्रकृति तुलसीदास से बाते करती है, वैसे ही रामकुमार से "बड़े-बड़े पेड़ हवा के झोंकों से लहरा-लहराकर कह रहे थे, 'हम पूर्ण है, हमे कुछ भी न चाहिए'।" दिन में जाने पर रामचंद्र लुप्त हो जाएँगे, यह सुनकर उसने रात को पहाड पर चढने का विचार किया। असफलताएँ भूलकर आनंद में डूबा हुआ वह मंदिर मे शिव का जप करता रहा।

"जब देखा कि सब सुनसान हो गया है, तब बाहर निकला। घोर अधकार छाया हुआ था। आकाश मे सावन की घटा छाई हुई थी, हवा चल रही थी, बादल गरज रहे थे···घोर रात्रिकाल···देखा कामदगिरि का बड़ा भयानक रूप हो रहा था— मृत्यु भी आज तुच्छ है—सत्य का साक्षात्कार, चिरकाल के प्यार वाले राम एक तरफ है, घोर प्रकृति, दुर्धर्ष पहाड़, अपार बाधाएँ प्राणों का मोह पैदा करती हुई एक तरफ···एक बार पहाड़ की ओर गर्दन उठा कर रामकुमार ने देखा: घोर अधकार के सिवा कुछ भी न देख पडा।" (लिली, पृ. ९६)

यह 'राम की शक्तिपूजा' का पहाड़ है जिसके नीचे बैठे हुए राम समुद्र का गर्जन सुनते है। यहाँ समुद्र नही है, बादल गरजते है। पवन का चलना बद नही है, हवा चलती है। अधकार की सघनता दोनों जगह एक-सी है। घोर रात्रिकाल है, कामदगिरि का भयानक रूप है। रामकुमार को सशय हिला रहा है, राम है तो मेरी सहायता क्यों नही करते? यह छल-कपट का ससार मुझे पराजित-अपमानित क्यो करता है? इस ससार से, रावण से, प्रकृति ने—शक्ति ने—मानो दोस्ती कर

ली है। एक तरफ़ मनुष्य, दूसरी ओर घोर प्रकृति, दुर्धर्ष पहाड़। राम को पाने के लिए इस समय मृत्यु भी तुच्छ है। पहाड़ पर चढ़ने का अर्थ है मृत्यु अथवा राम के दर्शन। पहाड़ की ओर गर्दन उठाकर रामकुमार ने देखा, घोर अंधकार के सिवा कुछ भी न देख पड़ा। कैसी गहरी वेदना, कैसा करुणामिश्रित व्यंग्य !

किंग लियर की तरह रामकुमार कपड़े उतार डालता है। किंग लियर ने ऊपर वाले उतारे थे—या वटन भर खुलवाये थे—रामकुमार ऊपर-नीचे वाले सब उतार डालता है। (तुलनीय और स्मरणीय है निराला के अंतिम दिनों का व्यवहार जब वह नंगे हो जाते थे।) कामदगिरि की पूजा में वस्त्र उतारकर रखने के बाद उसने मन में कहा, 'लो, अब कुछ भी मेरे पास अपना कहने के लिए नही रह गया।' लियर मैदान में थे, राम पहाड़ के नीचे; रामकुमार 'अर्द्ध विक्षिप्त-सा होकर बाह्य त्याग की सीमा तक पहुँचकर'—उस संसार के समस्त चिन्ह फेंककर जिसने उसे सताया था, छल-कपट वाली सांसारिक सभ्यता से मुक्त होकर—पहाड़ पर चढ़ने लगा।

'तुलसीदास' में इस पहाड़ का उल्लेख भर है :

कामदगिरि का कर परिभ्रमण
आए जानकी कुंड सब जन। (बंद ४६)

'राम की शक्तिपूजा' मे अंधकार से ढका हुआ वह बड़ा भयावना लगता है, परिवेश का मुख्य अंग है। 'अर्थ' में—अँधेरा होने पर भी—वह बहुत नज़दीक से दिखाई देता है। कमर तक ऊँची उठी हुई घास है। वर्षा के कारण कहीं-कही पत्थरों पर काई जमी हुई है। साँप और विच्छुओं का भय है। लेकिन रामकुमार को 'कोई होश नहीं'। यह 'खड़ा पहाड़' है, ढलान नही है, सीधी चढ़ाई है। पहाड़ से एक झरना उतरा था, इस समय तक सूखा पड़ा था, उसी से हाथ-पैर टेककर रामकुमार ऊपर चढ़ने लगा। कुछ दूर पर भूखे भक्त को महावीर की देह से 'घी मिले सेंदुर की सुगन्ध' आई। यह सोचकर कि महावीर उसकी रक्षा कर रहे हैं, वह और साहस से ऊपर चढ़ने लगा। राम की सहायता के लिए महावीर आकाश में चढ़े, यहाँ उनकी गंध के सहारे भक्त अकेला पहाड़ पर चढ़ता है। 'तीन-चौथाई पहाड़ चढ़ गया, तब सामने पहाड़ का एक हिस्सा लटका हुआ देख पड़ा।' विजली कौंधने पर पेड़ दिखा, रामकुमार उसी के सहारे पहाड़ के लटकते हिस्से पर चढ़ा, पानी बरसने लगा, रामकुमार ऊपर चढ़ता गया। और ऊपर जाने पर वैसा ही एक और ऊँचा लटकता हुआ हिस्सा देख पड़ा। विजली चमकी लेकिन इस बार की चमक मे कोई पेड़ न दिखाई दिया, "दूर तक पहाड़ वैसा ही खड़ा चढ़ा था। ऊपर से लटका हुआ। अब पानी भी धीरे-धीरे बरसने लगा। लाचार हो, उसी लटके पहाड़ के नीचे वैठकर रोने लगा।"

यहाँ कोई महावीर न थे जो राम के अश्रु देखकर पवन-वेग से समुद्र मथ डालते और आकाश में पहुँचकर उसे अपने अट्टहास से कँपा देते। उल्टा भय हुआ कि लोग देखेंगे तो मारेंगे। जहाँ कपड़े उतारे थे, वहाँ कपड़े न मिले। 'पवनदेव न

जाने कहाँ उड़ा ले गए थे।' छाती तक भरा हुआ नाला पार किया। पयस्विनी के घाट पानी में डूब गये थे। नये अनजान रास्ते से सीतापुर पहुँचा। एक ब्राह्मण से उसने गमछा माँगा तो उसने 'चोर-चोर' की आवाज लगायी। भूख और थकान से परेशान था लेकिन उसका मन वैसे ही ऊपर चढ़ा हुआ था जैसे 'तुलसीदास' में युवा कवि का। "दु.ख, ग्लानि, क्षोभ, क्लान्ति और भूख से बिलकुल मुरझा गया था। मन इतने उच्च स्तर पर था कि उसे अपने शरीर के लिए अब बिलकुल लज्जा न थी"। महुए के पेड़ के नीचे लेटा और बेहोश हो गया।

दोपहर तक सोता रहा। 'देह फूल-सी हलकी हो गयी थी। इतनी स्वच्छता का उसे कभी अनुभव न हुआ था।' (स्वामी सारदानंद ने जब निराला का सिर अँगूठे और बीच की उँगली से दबाकर खीचा, तब सिर का दर्द बिलकुल मिट गया, "शरीर हल्का हो गया। उतनी प्रसन्नता मुझे जीवन भर कभी नही मिली।" ('समन्वय,' कार्तिक, स. १९८४) स्वच्छंदता के इस अनुभव के साथ मन में शंका पैदा हुई—क्या भगवान नही है? ऊपर से आवाज आई—है, है। देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ टें-टे कर रहा है। फिर सदेह; फिर प्रश्न—यह सब क्या है? ऊपर से आवाज आई—चित्रकूट, चित्रकूट। रामकुमार ने अपने व्याकरण-ज्ञान से चित्रकूट को समास मानकर उसका अर्थ किया—'चित्रकूट है इसका।' 'आँखें खोलते ही चूँ-चूँ करके एक चिड़िया उड़ती हुई देखता था, उससे तरह-तरह के अर्थ निकलते थे।' ('अर्थ', 'सुधा'—सितम्बर '३२)।

इस उत्तर के निकलते ही जैसे सारी पृथ्वी चक्कर खाने लगी, पेड़ घूमने लगे, 'घूमते-घूमते धूमिल छाया मे बदलते हुए सब आकाश में मिलने लगे।' ('तुलसीदास' मे इसी धूमिल छाया का वर्णन है: **देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी**—बद २४) इस छाया में केवल प्रकृति नही, भारत का सम्यक् देशकाल खिचता और बदलता हुआ दिखाई देता है:

> भारत का सम्यक् देशकाल;
> खिचता जैसे तमशेष जाल,
> खीचती, वृहत् से अन्तराल करती-सी।

अत में उसकी आँखो से वह छाया भी ओझल हो गई। उसे कुछ न दिखाई दिया। 'उसके देह है, यह ज्ञान भी न रहा। शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक रह गईं।' (यह दशा रत्नावली की होती है:

> निष्पात नयन नीरज पलकें···
> नि:सबल केवल ध्यानमग्न···)

समाधि की-सी दशा टूटने पर उसे 'ज्ञान हुआ।' (**जब आया फिर देहात्म बोध**—'तुलसीदास', बंद ९१) उसे लोक-प्रचलित दोहा याद आया—**चित्रकूट के घाट पै, भइ संतन की भीर**। ज्ञानी शुकदेव का दिगबर तपस्वी रूप याद आया। शंका हुई—क्या अभी जो देखा, वह राम है? सुन पड़ा—हाँ, हाँ! देखा, टें-टें करता हुआ सुग्गा उड़ गया।

यहाँ तक निराला तटस्थ होकर रामकुमार की भावदशाओं का चित्रण करते हैं। किन्तु आगे वह मनोवैज्ञानिक चित्रण की तटस्थता छोड़कर रामकुमार की भावदशा को ब्रह्म-साक्षात्कार की समाधि-दशा मान लेते है। 'फिर मन चिरकाल से अभ्यस्त अज्ञान वाले घर में जाना ही चाहता था''' ।' जो देहात्मबोध है, वह अज्ञान है; जब रामकुमार का शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक थी, वह ब्रह्मज्ञान का क्षण था। उसका मन अज्ञान वाले कोठे में जाना ही चाहता था कि उठ-उठ की आवाज़ आई। एक कठफोरा दूसरे महुए की डाल में चोंच मार रहा था। कुछ चरवाहे लड़के आए; उसे साधु समझकर पास के गाँव में जाने को कहा। रामकुमार को भूख लगी और वह गाँव की ओर चला। उसका मन अब भी स्वप्नाविष्ट था। निराला इस बात पर बल देते हैं कि उसे पूर्ण सत्य के दर्शन हो गए हैं। "मन आज की विश्व-प्रकृति के अद्भुत सत्य-परिचय में तन्मय था, स्वभाव एक सरल बालक का-सा बन रहा था। लज्जा लेशमात्र न थी। घर-द्वार, पेड़-पौधे छायामय दिखाई दे रहे थे। उनका सत्य उसी के पास सिमटा हुआ था।"

निराला ने जिस भावदशा का वर्णन किया है, वह रहस्यवादियों की परिचित भावदशा है। शरीर का लगभग अचेत हो जाना, सामने बाह्य प्रकृति का लोप हो जाना अथवा उसमें केवल प्रकाश का बोध होना, अगोचर-सी सत्ता का साक्षात्कार, मन में अभूतपूर्व उल्लास। निराला इससे मिलती-जुलती भावदशा का उल्लेख स्वामी सारदानंद पर 'समन्वय' वाले लेख में—१९२७ में—करते है। उनका 'अर्थ' लेख—सन् '३२ में—स्वामी सारदानंद के सम्पर्क का विवरण देते हुए उसी भावदशा का कुछ विस्तृत परिचय देता है। 'स्वामी सारदानद जी महाराज और मैं' लेख १६ नवम्बर '३३ की 'सुधा' में प्रकाशित हुआ। उसमें भी उस भावदशा की झलक है: "बस, आँख खुल गई। मेरा मस्तिष्क हिम-शीकरों-सा स्निग्ध हो गया।" इन्ही दिनों उन्होने 'अर्थ' कहानी लिखी जिसमें उस भाव-दशा का विस्तृत विवरण है। 'भक्त और भगवान्' ('सुधा', दिसम्बर '३४) और 'तुलसीदास' ('सुधा,' फरवरी '३५) उसी मानसिक स्थिति पर आधारित रचनाएँ है। 'तुलसीदास' में निराला तुलसीदास के मन को आकाश मे काफी ऊँचे चढ़ाकर उतार लाते हैं क्योंकि उन्हें पूर्ण ज्ञान अपने-आप नही, रत्नावली के द्वारा प्राप्त होना है। रामकुमार अपनी पत्नी को मायके भेज आया हैं; उसके लिए आवश्यक नही कि वह पत्नी के उपदेश से भगवान् के दर्शन करे। वह रामायण-पाठ से रामभक्ति के संस्कार लिए हुए जब चित्रकूट पहुँचता है तब कुछ देर के लिए अर्थकष्ट भूल जाता है, मन पर राम और तुलसीदास छाये रहते है, उपवास और रात को पर्वत की चढाई के श्रम से शरीर निढाल हो जाता है। सोकर जागने पर शरीर में थोड़ी शक्ति आती है। अर्द्धमूर्च्छित-सी दशा में उसे पेड़-पौधे चक्कर काटते, छाया में विलीन होते जान पड़ते है। स्नायुतंत्र में बहुत खिंचाव होने पर जैसे मनुष्य को विचित्र वस्तुओं को देखने, विचित्र आवाजों ो सुनने का मिथ्याभास होता है, वैसे ही रामकुमार को—'अर्थ' लेख में निराला को—चिड़ियों की बोली में विचित्र

शब्द सुनाई देते हैं, मन में उनके विचित्र अर्थ खुलते है।

अर्द्धमूर्च्छा की-सी यह स्थिति आनन्दातिरेक मे उत्पन्न होती है, दुख और चिन्ता की अतिशयता में भी। भवभूति और शेक्सपियर दुख और चिन्ता की इस अतिशयता से भली-भाँति परिचित हैं, मेरा अनुमान है कि तुलसीदास भी परिचित थे।

चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुआँ नहिं सञ्चरै, उर अन्तर धुँधुवाय।

चिन्ता से उत्पन्न होने वाली जलन का ऐसा संक्षिप्त, सजीव वर्णन न भवभूति में है, न शेक्सपियर में। निराला इस जलन से भली-भाँति परिचित हैं किंतु 'अर्थ' में शरीर और वन दोनों छायारूप धरकर लुप्त होते-से जान पड़ते हैं।

फिर रामकुमार को उसका एक मित्र मिला। परिचय के वाद 'रामकुमार का मन नीचे उतर चला।' नगे होने पर लाज आई। स्वप्न में रामचन्द्र दिखाई दिये; बोले—तुमने अर्थ के लिए बड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया। नवयुग प्रेस में नौकरी लगी। फिर "चार ही साल में वह उपन्यास-साहित्य की चोटी पर पहुँच गया। कई हजार रुपये उसने एकत्र कर लिए। सारा ऋण चुका दिया, और अब विद्या के साथ सुखपूर्वक रहता है।"

इच्छापूर्ति का यह स्वप्न एक अत्यन्त सुन्दर कहानी को विगाड़ देता है। पूर्वार्द्ध का करुणामिश्रित व्यंग्य इस इच्छापूर्ति से वहुत शक्तिशाली है। जहाँ व्यंग्य नही है और रामकुमार चिड़ियों की आवाजें सुनता है, वहाँ भी कहानी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण में खम नहीं है। किन्तु आगे निराला उसकी भावदशा को पूर्णज्ञान से वाँध देते है और पूर्णज्ञान को अर्थप्राप्ति से। जैसे अन्य नायक धन और यश कमाते हैं, वैसे ही यह रामकुमार।

यह कहानी 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' का रहस्यभेद करने में सहायक होती है, यह उसका अतिरिक्त महत्त्व है।

विरोधी प्रवृत्तियाँ

निराला के कथा-साहित्य मे दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। एक प्रवृत्ति काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने रचने की है, दूसरी वास्तविक जीवन-संघर्ष को चित्रित करने की। अप्सरा मे राजकुमार को सुन्दर स्त्री, धन, वैभव, कलात्मक सृजन में सफलता, सब-कुछ प्राप्त हो जाता है। निराला जानते है कि यह सब

छलना है, फिर भी उसके आकर्षण से मन को बचा नहीं पाते। राजकुमार के लिए उन्होंने लिखा है, "बेहोशी के वक्त कल्पना के लोक में तमाम सृष्टि उसके अनुकूल हो जाती, कनक उसकी, छायालोक उसके, बाग़-इमारत, आकाश-पृथ्वी सब उसके।" (पृ. १२५) यहाँ 'छायालोक' शब्द का बड़ा सार्थक प्रयोग हुआ है। बाग, इमारत, कनक—सब छायालोक में है; जो साहित्य उन्हें कवि के लिए सुलभ बनाता है, वह छायावाद है। यहाँ कल्पना यथार्थबोध को गहरा नहीं करती, उसे अफीम की घूँटी पिलाकर सुला देती है। यह बेहोशी का साहित्य है। यदि इस सजग दृष्टि से निराला ने होश और बेहोशी का वैषम्य दिखाते हुए यह उपन्यास लिखा होता तो वह श्रेष्ठ कृति होता किंतु पुस्तक के अधिकांश में वह स्वयं बेहोशी में खो जाते है, राजकुमार से तादात्म्य स्थापित करने के कारण वह उसे तटस्थ दृष्टि से चित्रित नहीं कर पाते। व्यंग्य, जो उनके गद्य का प्राण है, यहाँ निश्चेतन-सा खोया रहता है।

किन्तु कनक-राजकुमार का सम्बन्ध केवल छायालोक का सम्बन्ध नहीं है। उसमें निराला कुछ ऐसी पेचीदगी पैदा करते हैं जो छायालोक की नहीं, वास्तविक जीवन की है, जो स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में जब-तब उभरकर उनके जीवन को नरक बना देती है। राजकुमार स्त्री के सामने स्वयं को पराजित अनुभव करता है। हारता है ताश के खेल में लेकिन लगता है, ताश का खेल प्रतीक मात्र है, उसे कोई और गहरी हार खल रही है। कनक से वह आँखें नहीं मिलाता, कनक दूसरो की नजर बचाकर बार-बार उसे देखती है, उसकी निगाह 'पूरी बेहयाई से' राजकुमार के चुभ जाती है। (पृ. २०८) राजकुमार के मन में लज्जा, घृणा, प्रेम के परस्पर-विरोधी भाव उथल-पुथल मचा देते है (पृ. १३०); कभी-कभी उसे कनक से घृणा भी हो जाती है (पृ. १०४)। राजकुमार का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यास को छायालोक से थोड़ा नीचे उतार लाता है।

किसानों का संगठन करके देश को स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा राजकुमार की थी। कनक के मोह में उसकी क्रांतिकारी वृत्तियाँ सो जाती हैं। उसका मित्र चन्दन उस क्रांति-मार्ग पर चल रहा है। उसकी गिरफ्तारी की खबर से 'राजकुमार की सुप्त वृत्तियाँ एक ही अंकुश से सतर्क हो गईं।' (पृ. ८८) वह स्वयं को धिक्कारता है, अपनी साहित्य-सेवा उसे प्रवंचना मालूम होती है, उसके हृदय में 'व्यंग्य के सहस्रों शूल एक-साथ' चुभ जाते हैं (पृ. ८९) किन्तु यह सब थोड़ी देर के लिए, राजकुमार फिर उसी मोहक छायालोक में खो जाता है।

इस छायालोक के नीचे किसान हैं, उनकी मेहनत से ऐश करने वाले राजा और जागीरदार हैं, किसानों का संगठन करने वाले क्रान्तिकारी हैं किन्तु चित्र का यह हिस्सा उभरकर नहीं आता। निराला का मूल उद्देश्य वैभव के चित्रण से हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध करना है, दरिद्र किसानों के चित्रण से नहीं। चन्दन की माँ से एक जगह अवधी सुनने को मिलती है: "देखो न भैया, न जाने कब जीव निकल जाय, करारे का रुख, कौन ठिकाना, चाहे जब भहराय के बैठ जाय···"

(पृ. २१८)। यह निराला के यथार्थवाद की प्रकृत भूमि है किंतु कथा मे उसकी झलक भर मिलती है। यथार्थवाद की भूमि पर छायालोक का घना कुहरा फैला हुआ है।

अलका में ग्रामीण वातावरण अधिक सजीव है, किसानों के शोषण का चित्र कथापट में ज्यादा जगह घेरता है। अप्सरा के चन्दन और राजकुमार—अजित और विजय के रूप में—यहाँ दोनो गाँव में पहुँच जाते है। किसान-संगठन कांग्रेस के साथ मिलकर हो, या अलग से, संघर्ष में पराजित होने पर किसान अपने क्रांतिकारी नेताओ का साथ छोड़ दें तो ये नेता क्या करें, इस तरह की समस्याओं पर निराला ने हिन्दी कथा-साहित्य मे पहली वार विचार किया है। उपन्यास मे वर्ग-संघर्ष का आर्थिक रूप ही प्रस्तुत नही किया, सामाजिक जीवन की रूढियों, उन्हे तोड़ने की कठिनाइयों का चित्रण भी किया है। किन्तु इच्छापूर्ति के सपने सुन्दर स्त्री और धन-संपत्ति को लेकर ही रचे नही जाते, वे क्रान्तिकारी जीवन को लेकर भी रचे जा सकते है।

विजय कुछ समय के लिए सरकारी अफसर की मदद से ज़मीदार को नीचा दिखाता है। डिप्टी साहब जमीदार को वाहर विठाल रखते हैं, विजय को बंबई विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट जानकर और उसे संन्यासी वेश मे देखकर वहुत प्रभावित होते हैं। सिपाही ज़मीदार को कान पकड़कर घसीटते है, गाँव मे 'विजय की जय-वैजयंती' फहराने लगती है। (पृ. ९४)

जमीदार स्नेहशंकर, डिप्टी कमिश्नर ज्ञान प्रकाश आदर्श रूप मे रँग-चुनकर प्रस्तुत किए गए है। शोभा उर्फ अलका पर वार-वार दृष्टि केन्द्रित करके निराला छायालोक में पहुँच जाते है, उसके सौन्दर्य के वर्णन में अनन्त कलियों का सौरभ हवा में उड़ा देते हैं। उपन्यास के अंत मे अलका राजा मुरलीधर को पिस्तौल से मार डालती है, इस तरह विजय उर्फ प्रभाकर का प्रतिद्वंद्वी मारा जाता है, वह अव अलका के साथ रह सकेगा किंतु इससे किसान-समस्या हल नहीं होती।

अलका मे छायालोक कमजोर है, किन्तु यथार्थवाद पूरी ताकत से उभरकर नही आया। अप्सरा में कनक को लेकर निराला ने जो कविता की थी, कुछ उससे ज्यादा कविता यहाँ अलका को लेकर है : दिन में शिशिर की स्नात ज्योत्स्ना-रात-सी स्निग्ध, शुभ्र वसना, सुकेशा...किसी दूरतर लक्ष्य की ओर क्षिप्त दृष्टि (पृ. ३८), जैसे जागरण के वाद स्वप्न-स्मृति सदा पलकों पर...प्रातः रश्मि-सी पृथ्वी की पलकें ज्योति-स्नात करती हुई... (पृ. ९६)। छायालोक का यह कुहरा उस गाँव के वास्तविक जीवन को ढक लेता है जिसमें शूद्रो की संख्या अधिक है और ब्राह्मण दरिद्र होने के कारण हल जोतते है या वकरी पालते हैं। (पृ. ७०)

निरुपमा मे निराला की दृष्टि केन्द्रित होती है कुमार पर जो लंदन से डी. लिट्. की उपाधि लेकर लौटा है जिसे वंगालियो की प्रतिद्वंद्विता के कारण नौकरी नही मिलती किन्तु जो वंगाली युवती निरुपमा का प्रेमी है और अंत में प्रतिद्वंद्वी यामिनीहरण को परास्त करके निरुपमा का पति वनता है। निरुपमा जमीदार भी है, चित्र के पिछले भाग मे, गांव दिखाई देता है किंतु कुमार-निरुपमा-संवंधों के

स्वप्नजाल में वहाँ का जनजीवन साफ उभरता नहीं है। यामिनी-हरण का विवाह उन्हें धोखा देकर निरुपमा के वहाने मिस दुवे से कराया जाता है—जासूसी उपन्यासो के सनसनीखेज़ तरीके से, जैसे अलका राजा मुरलीधर को गोली मारती है।

जो कुमार या राजकुमार था, वह **प्रभावती** मे राजकुमार देव वन जाता है। कनक-निरुपमा का स्थान राजकुमारी प्रभावती लेती है। सौन्दर्य और धन-वैभव के भव्य चित्र खीचे गए है किन्तु यहाँ निराला की छायावादी कविता उतना उवाती नहीं है जितना **अलका** में। सामंतों के उत्पीड़न और विलासितापूर्ण जीवन की कठोर आलोचना है। विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करने के लिए जनजीवन को नये सिरे से संगठित करना आवश्यक है। चंदन की जगह संगठन का काम यहाँ यमुना करती है। वह आदर्श रूप में चित्रित की हुई क्रांतिकारी युवती है। जनता जहाँ सामंत के विना लड़ती है, या सामंत के विरुद्ध लड़ती है, वहाँ निराला की निगाह नहीं जाती। उनकी दृष्टि सामन्ती वैभव के इर्द-गिर्द इतना घूमती है कि किसान-जीवन के चित्र उभर नही पाते। यह वात अवश्य है कि संयोगिता और पृथ्वीराज की रक्षा करते हुए प्रभावती मारी जाती है और राजकुमार देव के साथ उसका सुखद जीवन-स्वप्न उपन्यास के पूर्वभाग के वाद समाप्त हो जाता है। गुप्त संगठन, षड्यंत्र, वेश-परिवर्तन आदि से तिलस्मी-जासूसी उपन्यासों का वातावरण यहाँ अन्य उपन्यासो से कुछ ज्यादा वोझिल है।

चोटी की पकड़ मे राजा हैं, नर्तकी है, क्रान्तिकारी संगठनकर्ता प्रभाकर है। यह उपन्यास कथासूत्र में उलझा होने पर भी **अप्सरा-निरुपमा** वगैरह से ज्यादा शक्तिशाली है। उपन्यास एक तरह की फैन्टेसी है जिसमें त्रास की भावना विभिन्न रूपो मे प्रकट होती है। पुस्तक की विशेपता रोचक कथा कहने या स्पष्ट चरित्र-चित्रण मे नही है, उसकी सफलता मन पर ऐसे वातावरण की छाप डालने मे है जिसमे हर तरह की दुरभि संधि, गुप्त षड्यंत्र, मनुष्य को अपमानित करना, सताना सभव है। निराला ने वंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के पहले दौर पर कथा लिखने का प्रयास किया है, देशी रियासत को कथा-क्षेत्र वनाया है। सामन्ती वैभव आकर्पित करता है, साथ ही वह अद्भुत त्रास की सृष्टि भी करता है। ऐसी प्रच्छन्न् पीड़ा निराला के दूसरे उपन्यास में नहीं है।

चोटी की पकड़ और **चतुरी चमार** के वीच की दुनिया है **काले कारनामे** में। यहाँ देहात की तसवीर ज्यादा साफ-सुथरी है। निराला गाँव की जमीन को वड़े ध्यान से देखते है। गलियारे में पानी भरा है, पगडडी पानी वरस जाने से विछलहर है। स्टेशन के सामने फैला हुआ लंवा ऊसर है। "वीच में ऊसर का छोटा मगर पुराना वरगद देख पड़ता है, जिसके एक वगल एक वारहदरी है और दूसरी वगल एक पक्का कुआँ, सामने तालाव।" (पृ. ५३) (**कुल्ली भाट** में निराला इसी ऊसर को पार करके वीघापुर स्टेशन से डलमऊ के लिए गाड़ी पकड़ते है।) राजा की जगह यहाँ ज़मीदार है, उसके भेदिए हैं, राज़ लेने-देने की वातें **चोटी की पकड़** जैसी हैं, पुलिस का आतक वहाँ से अधिक है, लोगों को फँसाना-सताना आए दिन

का काम है। त्रास का वातावरण है और निराला अनजान में नहीं, जानकर, उसे वैसा चित्रित करते है। "घर मे त्रास का वातावरण फैला। सिसकते हुए भी सबके मुँह वँधे रहे। इस परिवार मे रोटियाँ शाम को ही खा ली जाती हैं, जिससे चिराग का तेल वचे'''लड़के सो चुके थे। औरतें मसान-सी जगती रहीं।" (पृ. ४८) अर्चना के गीतों में जो त्रास प्रतीक-योजना में ढलकर कविता वनता है, वह यहाँ यथार्थ चित्रण की भूमि पर पुष्ट गद्य वना हुआ है। कविता में व्यक्त होने वाले निराला के त्रास का विश्लेपण करने, उसका मूल सामाजिक रूप समझने के लिए चोटी की पकड़ और काले कारनामे पढना जरूरी है।

काले कारनामे मे अन्यत्र लिखा है, "गाँव में तहलका मचा हुआ था। लोग कानों मे वतला रहे थे। मिश्रजी के यहाँ आने-जाने वालों की हिम्मत पस्त थी। सारा वायुमडल दहशत खाये हुए था। किसी को कुछ मालूम न था क्या होने वाला है, सव अपना-अपना अन्दाजा लड़ा रहे थे।" (पृ. ६८) इस भय के वातावरण मे आशा की किरण है मनोहर।

मनोहर दरिद्र है, ब्राह्मण होने पर भी वह अपमानित होता है—"दूसरे प्रान्तों में हम शूद्रों से भी वदतर समझे जाते है।" (पृ. १६) इसका कारण यह है कि संपत्ति सब उच्च वर्गों के हाथ में है, "हमारा समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामो का एक समाज हो रहा है।" (पृ. १८) मनोहर यह सव दर्शन अपनी माँ को समझाता है। उसके माँ भी है, जैसे अप्सरा, अलका के नायकों के नही है। इसे इच्छापूर्ति कह सकते हैं, किन्तु वह ऐसी इच्छापूर्ति है जो सक्रिय जीवन विताने का सन्देश देती है। मानो 'राम की शक्तिपूजा' की सिंहवाहिनी राम के वदन में लीन होने के वदले निराला से वातें कर रही हो : "देखते-देखते उनके हृदय की सिंहिनी (ने) जैसे ऊपर को छलाँग मारी, उनका सर तमाम आदमियों के ऊपर उठ गया। वडे ही स्नेह तथा गभीरता के स्वर से उन्होंने कहा, वेटा मुझको विश्वास है कि तू मेरे दूध की लाज रखेगा और इन कामों की तह तक पहुँचकर इनकी जंजीर तोड़ने के काम आएगा। अभी तो कच्चा वच्चा है। इन तमाम लांछनों को चुपचाप सर (पर) उठाए हुए तैयार होता (जा) कि एक वक्त तू इनकी जड़ें काटे।" (पृ. २०)

लाञ्छना इन्धन तल हृदय तल जले अनल का यह मानो गद्य में भाष्य है। लाञ्छना की आग भक्त के हृदय में नही, उसकी इष्टदेवी के हृदय में जल रही है। मनोहर की माँ जैसे भारतीय नारी का प्रतीक हो। वह इस युग की नही, मुगल काल मे लेकर अंग्रेजी राज तक शताब्दियों की लंवी अवधि में वह भारतीय नारी को घुटते, चुपचाप आँसू वहाते देख चुकी है। जिस अपमान को पुरुप अनुभव नहीं करता, उसे वह पहचानती है। उस अपमान की आग वह युवक-पुत्र के हृदय में फूंक देना चाहती है कि जव तक वह जंजीरें न तोड़ ले, चैन से न वैठे।

"हम पीढियाँ लिख रखते है। हमारी माँ का कहना था, सौ पीढियाँ वीत चुकी हैं; यह तैंतालीसवीं पीढ़ी के वाद। हम उसको भगवान को अर्पण कर देती

है और बाकी पीढ़ियाँ चलती हुई बाँधे रहती है। यही कामना दिन-रात रहती है कि नारियों का अपमान है, हे भगवान्, बदला चुकाओ। सिर्फ बदले की आग धधकती है।" (पृ. २१) माँ ने लाञ्छन सहा है; बेटे से कहती है, तू भी चुपचाप सहता जा। शक्ति को बिखरने न दे; भक्ति से आँखें झुकाए हुए तैयारी करता जा। सिर्फ बदले की आग धधकती है। इस आग से प्रेरणा पाकर बदला चुकाना है।

मनोहर का विवाह या प्रेम किसी अलका, अप्सरा, प्रभावती, निरुपमा से नही होता। वह काशी जाकर शूद्रों को संस्कृत पढाता है। वह गाँव लौटकर नही आता किंतु किसान उसे प्यार करते हैं, उसे अपना समझते है, उस पर गर्व करते है। उसके पिता से कहते हैं, "तुम्हारी मूँछें रख ली, तुम्हारा सर ऊँचा किया, वह हमारा अपना भैया है, उसको कोई डर नही, हम जानते है कि लोगों ने उसको रहने न दिया, लेकिन वह वज्र है जो सर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू से टपक कर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की बारिस लाएगा।" (पृ. १०२)

जनता का ऐसा उत्कट प्यार निराला के किसी उपन्यास में किसी नायक के प्रति उमड़ते नही दिखाया गया। **मेरा अन्तर वज्र कठोर**—यह रहस्य निराला को ही नही, उस गाँव के किसानो को भी मालूम है जहाँ की बस्ती में अधिकतर शूद्र है। बच्चू कहार ताल से सिंघाड़े तोड़कर मनोहर के पिता को देते हुए कहता है, "आपके बेटे की तारीफ में है, जो हम लोगों को ऊँचा उठाता है, ब्राह्मणो की तरह हमारा सर नही फोड़ता।" (पृ. १०२)

मनोहर लौटकर घर नही आया। गाँव की कोई समस्या हल नही हुई। उपन्यास अधूरा है। यही उसकी सफलता है। काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने के बदले वह दुख और त्रास के वातावरण में आशा-किरण की झलक भर दिखाकर समाप्त हो जाता है।

देवी, चतुरी चमार

'भक्त और भगवान्' निराला की —और हिंदी की—श्रेष्ठ कहानियो में है। इसमें मन की उन दशाओं का चित्रण है जो 'अर्थ' कहानी और 'तुलसीदास' मे चित्रित की गई हैं, सारी कहानी में एक ही वातावरण छाया हुआ है जिसे काल्पनिक इच्छा-पूर्ति का स्वप्न बिगाड़ता नहीं। इस वातावरण मे निराला को छायालोक दिखाई देता है किंतु छायालोक से भिन्न वास्तविक स्थूल संसार का बोध कही लुप्त नही

होता।

कहानी भक्त के छायालोक पर तटस्थ व्यंग्य से शुरू होती है। जब तक भक्त के पिता जीवित थे, तब तक सारा सांसारिक ताप उन पर था। पितावृक्ष की छाया में भक्त को प्रकृति ज्योतिर्मय जल में नहाई हुई दिखाई देती थी। "स्वभावतः जगत् के करण-कारण भगवान् पर उसकी भावना बँध गई।"

इस सुखद युवक-जीवन में भक्त रामायण पढ़ता है, महावीर की पूजा करता है, ससार की चिन्ताओ से मुक्त राम के ध्यान में डूबा रहता है। कुएँ पर युवती पानी भरती है, बाबा गाते हैं—**कौन पुरुष की नार झमाझम पानी भरै**। युवती बाबा की तरफ़ पर्दा किए है, भक्त की तरफ देखती हुई मुसकराती है। उसके भावाविष्ट मन को लगा—साक्षात् प्रकृति उसे देखकर मुसकरा रही है। किसानों की भजनमडली गाती है: **कहत कोउ परदेसी की बात**। भक्त परदेसी के बारे में सोचने लगता है। महावीर की मूर्ति को देखकर प्रणाम करता है। मूर्ति मुसकराती है; भक्त यह नही देखता, कहानी-लेखक देखता है। महावीर को माला पहनाई; 'कोई हँस दिया—वह नही समझा।' निराला पुरानी बातों को स्मरण करके उन्हें नये अर्थ से रँगते हैं।

उसका व्याह हो चुका था। गहने उतारकर देने की नौबत अभी नही आई। पत्नी सिंदूर का सुहाग—महावीर का चिह्न—धारण किये है। 'आँखों में राज्यश्री उतरकर अभिनंदन कर रही थी'; उसे देखकर पत्नी मुसकराई। भक्त 'फिर भी नही समझा।'

भक्त का नाम निरंजन है, 'सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी वह निरंजन था।' पूजा के लिए सामग्री चाहिए; विधाता उसका विधान कर देंगे। राजा के सरोवर से कमल लेकर महावीर का श्रृंगार करता है। किंतु आगे सपना देखता है। अंधकार-जल पर खिला हुआ कमल कहता है: मैं तो राजा का था, तुमने मुझे क्यों तोड़ा? गुलाब के फूलों ने कहा—हमें छूने का तुम्हें क्या अधिकार था? अब भक्त को मालूम हुआ, पूजा की जो सामग्री भक्त के लिए विधाता जुटा देते हैं, उस पर राजा का अधिकार है। यहाँ तक कि महावीर की मूर्ति भी राजा की खरीदी हुई है।

भक्त को राजकुमार की तरह अर्थ चाहिए। पत्नी भक्त से स्वप्न मे कहती है, मैं महावीर को मस्तक पर धारण करती हूँ। भक्त ने पूछा—अर्थ क्या है? पत्नी ने कहा—अर्थ सब मैं हूँ, मुझे समझो। यह अर्थ आध्यात्मिक नही भौतिक है, यह आगे स्पष्ट होता है, जब उसकी पत्नी कहती है—मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गई हूँ।

फिर पत्नी का देहान्त हुआ। घर के अन्य लोग न रहे। भक्त राजा के यहाँ नौकर हो गया, किन्तु उसे नौकरी अच्छी न लगती थी। छायालोक से उतरकर उसने जो संसार देखा, उससे विरक्ति हुई। रामकुमार को संसार का ज्ञान होता है खुद के सताए जाने पर; निरंजन को वैसा ही ज्ञान होता है दूसरों को सताए जाते देखकर। दोनों में यह अन्तर है। रामकुमार को नौकरी मिलती है भक्ति के

वरदान रूप में; तब वह पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहने लगता है। यहाँ भक्त की पत्नी का देहान्त हो चुका है; नौकरी वर नहीं, अभिशाप है। नौकरी से ही उसे दूसरों की पीड़ा का बोध होता है, "राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजा का रक्त-शोषण ही उसका धर्म है।" स्वप्न में महावीर से पूछता है—ये गरीब मरे जा रहे हैं, इनके लिए क्या होगा? महावीर उसे ईश्वर का भरोसा करके आश्वस्त होने को कहते हैं।

भक्त का मन 'धीरे-धीरे उतरने लगा'। उसने आकाश की नीली लता में सूर्य, चंद्र और तारों को फूलों की तरह हाथ जोड़े किसी की पूजा करते देखा; पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल आकाश को नमस्कार कर रहे थे। उसकी पत्नी माँग में सिंदूर लगाये दिखाई दी। महावीर ने कहा—यह मेरी माता देवी अंजना है।

स्वप्न टूटने पर आँख खुली; देखा— 'कहीं कुछ न था।' एक स्वप्नाविष्ट मन का पूजाभाव, संसार का बोध, दीनजनों की स्थिति के प्रति चिंता, प्रच्छन्न अन्तर्द्वन्द्व की ओर संकेत—यह सब काफी तटस्थ रूप मे चित्रित किया गया है। स्वप्न और यथार्थ में यहाँ एक भेद है जो 'अर्थ' कहानी में नही है। वहाँ स्वप्न ही यथार्थ है, यहाँ दोनों टकराते हैं। निराला स्वप्न की विजय नही दिखाते। कहानी में यह संकेत नही है कि राजा के अत्याचार से जो लोग पीड़ित हैं, वे सब रामकृपा से पीड़ामुक्त हो गए। न यह संकेत है कि भक्त को नौकरी अच्छी नही लगती तो नौकरी छोड़ने पर वह चार साल में यशस्वी उपन्यासकार बनकर अर्थ-चिंता से मुक्त हो गया। नौकरी है, पत्नी का अभाव है, पिता की छत्र-छाया नही है, मन स्वर्गीया पत्नी, महावीर और स्वामी प्रेमानंद से बँधा है, उन्हें सपने में देखता है। महावीर को भारत रूप में देखकर वह भक्तिभावना और राष्ट्रीय चेतना का समन्वय करता है। यह एक वस्तुस्थिति है जिसका चित्रण करके निराला कहानी समाप्त कर देते है। भक्त के छायालोक और वास्तविक संसार के वैषम्य से पैदा होने वाला कहानी का अन्तर्निहित व्यंग्य इच्छापूर्ति के स्वप्न से नष्ट नही होता। यह 'भक्त और भगवान्' कहानी की कलात्मक सफलता है।

गंगा किनारे बैठे हुए निराला से कुल्ली ने कहा, "मैं जानता हूँ, आप मनोहर को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की जगह मार देता है, होश कराने के लिए।" (कुल्ली भाट, पृ. ७२) होश किसे कहें, रामकुमार को सुए की टें टें में जब ईश्वर के अस्तित्व की घोषणा सुनाई देती है, जब भक्त निरंजन को महावीर आश्वस्त करते है कि गरीबों की रक्षा भगवान् करेगा या जब कुल्ली की पाठशाला में अछूत बालकों को देखकर निराला का मन धिक्कार उठता है, "ओफ़! कितना मोह है! मैं ईश्वर, सौन्दर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ!—फिर क्रान्तिकारी!!" (उप., पृ. ९४) यहाँ मन धीरे-धीरे नीचे नही उतरता; बात उतरने-चढ़ने की नही है, बात है मोहभंग होने की, क्रान्तिकारीत्व पर जो आवरण पड़ा हुआ है, उसे पहचानने की। दुख मोह का शत्रु है। प्यार की जगह एक बार चोट हुई मनोहरा देवी की मृत्यु से, दूसरी बार हुई सरोज की मृत्यु से। पहली बार की चोट के बाद

निराला ने अनेक वार छायालोक रचा और उससे वाहर निकले; दूसरी वार की चोट के वाद छायालोक रचने की शक्ति क्षीण होती गई। निराला ने दुःस्वप्न देखे या संसार के व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचे। उन्होंने सुख और उल्लास के गीत गाए, यह भी सत्य है। संसार के व्यंग्यपूर्ण चित्रण में दुख का वोध छिपा है, यह उल्लेखनीय है। कारण यह है कि संसार को होश में देखते हैं तो उस पर व्यंग्य करते है, और होश मे तव देखते हैं जव प्यार की जगह मार खाते हैं। इस तरह दुख का वोध और संसार के प्रति व्यंग्य भाव परस्पर सम्वद्ध हैं।

निराला ने सन् '३० के वाद अप्सरा, अलका लिखी, **देवी और चतुरी चमार** भी। जो यथार्थवादी धारा **अप्सरा-अलका** के छायालोक मे धुंधली थी, वह यहाँ पूरी शक्ति से यथार्थ की धरती पर प्रवाहित है। इसका कारण अवध मे किसान-आन्दोलन की प्रगति, उससे निराला का गहरा सम्पर्क है। सरोज की मृत्यु के वाद निराला के काव्य मे वेदना सघन हुई है; गद्य मे व्यंग्य भी निखरा है। सन् '३६ से हिंदी साहित्य मे जो प्रगतिशील आन्दोलन चला, उसका प्रभाव भी निराला पर पड़ा किंतु उनकी व्यंग्य-कला निराली है और वह प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के जन्म से पहले की है। 'देवी' और 'चतुरी चमार' की कला ही **कुल्ली भाट** और **विल्लेसुर वकरिहा** में निखरती है। ये रचनाएँ गद्य-लेखन में, कथा-रचना मे, यथार्थवादी साहित्य के विकास में नया चरण हैं।

'देवी' और 'चतुरी चमार' में कहानी का पुराना ढाँचा टूट गया है अथवा निराला के हाथ से छूट गया है। कथानक लेकर चलने वाली, समस्या के समाधान, नायक-नायिका के विवाह से समाप्त होने वाली कहानियाँ ये नही हैं। इनमे परिवेश, पात्र ज्यों-के-त्यो उठाकर कथा मे रख दिए गए है; मंच पर लाते समय उनका मेकअप नही किया गया। पात्रों मे एक—अकसर प्रमुख—पात्र निराला स्वयं हैं। कहानी एक तरफ रेखाचित्र है, दूसरी तरफ संस्मरण। इनके साथ ललित-निवंध-रचना-कौशल है, रेखाचित्र और संस्मरण के साथ अथवा उनके विना भी रोचक वातें सुनाने की कला। यह ललित-निवंधकला रिपोर्ताज की विधा को छूती है। सड़क पर जव गोरे कवायद कर रहे थे, गाँव में जव दरोगाजी आए, रामकृष्ण मिशन मे संन्यासियों का जीवन—यह सव निराला ने रिपोर्ताज लेखक की कला से चित्रित किया है। **कुल्ली भाट** में इन चारों कलाओं का मिश्रण है, **विल्लेसुर वकरिहा** और **चमेली** मे निराला अलग रहते हैं। उनमें रेखाचित्र वाली कला का प्राधान्य है।

'स्वामी सारदानंद जी महाराज और मैं' निराला का संस्मरणात्मक ललित निवंध है। आरम्भ मे विवरणात्मक गद्य है; उत्तरार्द्ध में सुगठित कहानी का कौशल। जगह-जगह निराला का व्यंग्य उभरता है। वह अपने संदेहप्रिय, शङ्काकुल मन का चित्रण तटस्थ होकर करते है किन्तु इस निवंध में वह आत्मकेन्द्रित अधिक है, ये गरीव मरे जा रहे हैं—यह पुकार उनके छायालोक से नहीं टकराती।

'राजा साहव को ठेंगा दिखाया' में इसी निवंधकला का विकास है। "लोग

कहते हैं, ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ मे आ जाय, अपढ़ लोग भी समझें।" निवन्ध की तरह कहानी यों शुरू होती है। संस्मरण नहीं है किंतु देखी-सुनी हुई घटना का रिपोर्ताज जैसा विवरण है। स्थान और व्यक्तियों के नाम वदल दिए गए हैं, कल्पना इतना ही करती है। भूखे विश्वंभर की समस्या हल नहीं होती। कहानी के अन्त में उसे सूचना मिलती है: अब सरकार को तुम्हारी नौकरी की आवश्यकता नहीं रही।

पाठक के मन पर इस निर्मम आघात से निराला कहानी समाप्त करते हैं। कहानी के आरम्भ का गूढ व्यंग्य खुलता है: ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ मे आ जाय। निराला मानो पूछते हैं: बात सीधी है न? मतलब समझ में आ गया?

कथा मे करुणा का भाव दृढ़तापूर्वक नियंत्रित रखा गया है; वैसा ही व्यंग्य है, गूढ़, अन्तर्निहित, मर्मवेधी।

'देवी' कहानी संस्मरणात्मक ललित निबंध की शैली मे आरंभ होती है। निराला छायालोक पर हँसते हैं, दुख और रोष से संसार की व्यंग्यपूर्ण आलोचना करते है। दुख की व्यंजना और हास्यमिश्रित व्यंग्य के बीच स्पष्ट रेखा नही खींची जा सकती। फाकेमस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा —यह उक्ति व्यंग्य-पूर्ण है, दुखपूर्ण भी। व्यंग्य का लक्ष्य संसार के अलावा छायालोक और निराला स्वयं हैं। ईश्वर की उपासना करते हुए आकाश की लता में सूर्य, चन्द्र नक्षत्र फूल से नही हिलते; जैसा भेदभाव धरती पर है, वैसा ऊपर भी है: "चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुवेर, यम, जयन्त, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक वाकायदा वाहिसाव ईश्वर के यहाँ भी छोटे से वड़े तक मेल मिला हुआ है।"

निराला प्रकृति की मारों से लड़ती हुई पगली भिखारिन का चित्रण करते है, भावुकता के स्तर से वचता हुआ उनका गद्य दुख के चित्रण मे कविता की तरह सारगर्भित और प्रभावशाली हो उठता है: "ज्योतिप का सुख-दुःख का चक्र इसके जीवन मे अटल हो गया है। सहते-सहते अब दुःख का अस्तित्व इसके पास न होगा। पेड़ की छाँह में या किसी खाली वरामदे मे दोपहर की लू में, ऐसे ही एकटक कभी-कभी आकाश को बैठी हुई देख लेती होगी।" एक महान् ट्रैजेडी की-सी गहराई निराला के गद्य मे है। उन्होने पगली के उस अन्तिम समय का चित्रण किया है जब ऊपर के धुएँ के नीचे जीवन की दीपशिखा मंद होती जा रही है।

निराला अपनी फाकेमस्ती और परियों के ख्वाब देखने पर हँसते है, इस हँसने में दर्द है। निराला होटल के नौकर संगमलाल से पगली के बारे मे पूछते हैं। वह उसे पगली-गूँगी वताकर बात को अनावश्यक जानकर हँसता हुआ चला जाता है। यह हँसी निराला के व्यंग्य का लक्ष्य है; व्यंग्य खुलता नही है, कहानी के संदर्भ में निहित है। संगमलाल की हँसी पर दुख होता है, यह व्यंग्य और दुख का संतुलन है। नेता का जुलूस निकलता है, पगली "मुँह फैलाकर, भौहें सिकोड़कर आँखों की पूरी ताकत से देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या थी।" पगली की

क्रियाएँ हास्यास्पद हैं; लक्ष्य है मन में करुण भाव उत्पन्न करना। सड़क पर पल्टन मार्च करती हुई निकलती है। "पगली पास बैठे बच्चे की ओर देखकर चुटकी बजाकर सिपाहियों की तरफ उँगुली से हवा को कोच-कोंचकर दिखा रही थी और हँसती हुई जैसे कह रही थी—खुश तो हो? कैसा अच्छा दृश्य है।" पगली की क्रियाएँ फिर हास्यास्पद है, वह स्वयं हँसती भी है। निराला का उद्देश्य हँसाना नहीं, हँसी की छलक के नीचे वेदना का सागर दिखाना है। किंग लियर का लेखक इस कला मे अद्वितीय है। हिन्दी में उससे मिलती-जुलती कला निराला के गद्य में है।

निराला के हास्य-व्यंग्य के अनेक स्तर है। वह संगम-लाल को सग-मलाल कहते है। निर्दोष विनोद का यह एक स्तर है। वह बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनते हुए मक्खियाँ मारते रहे—इस व्यग्य मे मृत्यु का-सा तीक्ष्ण दंश है। बगल मे चौरासी आसन दबाये पत्नी को सीता, सावित्री देने वालों पर व्यंग्य खुला हुआ है, पीड़ा कम, हास्य अधिक है। नेता के जुलूस में पगली का बच्चा कुचल गया, नेता दस हजार की थैली लेकर चले गए—जरूरी-जरूरी कामों मे खर्च करेंगे—यहाँ व्यग्य स्पष्ट है, पीड़ा के साथ आक्रोश का भाव तीव्र है। रामायणी कथा से लौटे हुए भक्त पगली को देखकर कहते हैं: इसी संसार मे स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरा कहता है, कर्म के दड है। तीसरा तुलसीदास की साखी देता है: सकल पदारथ हैं जग माहीं; कर्महीन नर पावत नाहीं। निराला इन उक्तियो पर टिप्पणी करके व्यग्य को स्पष्ट नही करते; संदर्भ से ध्वनि स्पष्ट हो जाती है। दुख से अधिक इनके पाखंड के प्रति जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है।

जैसे अपने प्रबन्ध-काव्य मे निराला भिन्न भाव, परस्पर-विरोधी भाव सजाते है, वैसे ही 'देवी' में निराला व्यंग्य का ऐसा प्रबन्ध-संगीत रचते है जिसमें अनेक भावों के तार झंकृत होते हैं।

कहानी का अन्त पगली की मृत्यु से होता है। समस्या का और कोई समाधान नही है। 'देवी' एक ट्रैजेडी है जिसके अन्त में निराला हँसते है, संगमलाल हँसता है। निराला का चेक भुनाकर होटल के मैनेजर संगमलाल को तनख्वाह दिए बिना भाग गए। निराला ने समझाया—मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। घर रुपया लेने गए है। बहुतो का देना है; लौटकर तुम्हे भी दे देंगे। 'संगम वैसा ही फिर हँसा।' पगली का अस्पताल मे मरना, मैनेजर का भागना, संगमलाल को तनख्वाह न मिलना, निराला का साहित्य-समर में परास्त होना—सब एक ही संसार-चक्र की गति का परिणाम हैं।

'देवी' में नेता का जुलूस, पलटन का प्रदर्शन चित्रपट के दृश्यों की तरह आँखों के सामने आया, ओझल हो गया। दृष्टि केन्द्रित रहती है पहले निराला पर, फिर देवी पर। 'चतुरी चमार' मे सन् '३१-३२ के बैसवाड़े पर एक जीता-जागता रिपोर्ताज प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद की लमही में इन दिनों क्या हो रहा था, कथा-साहित्य मे उसे भेस बदलकर पेश किया गया है; नग्न यथार्थ कैसा था, उसे यदि हिन्दी पाठक जान पाते तो प्रेमचंद के कृतज्ञ होते। छायावादी कवि निराला

ने वह काम किया है जो वड़े-वड़े यथार्थवादी लेखक भी कम कर पाते है। यहाँ उन्होंने अपने युग के जीवित इतिहास का एक अंश, सजग पत्रकार की पूरी सावधानी से, भावी पीढ़ियों के लिए अंकित कर दिया है। जो ताज़गी अच्छी लिखी हुई डायरी में होती है, वह यहाँ है।

जो गाँव निराला की कविता, कहानियों, उपन्यासो में वार-वार उभरकर आता है, उसका भरा-पूरा नक्शा, जिला, डाकखाने समेत यहाँ देखने को मिलता है। निराला के घर से चतुरी का घर किस ओर है, कहाँ से पनालों का, वरसात का और दिन-रात का शुद्धाशुद्ध जल वहता है, ये सव चित्र में सजाई हुई निरर्थक वस्तुएँ नही हैं, उनमें गाँव के सामाजिक सम्वन्धों का पूरा इतिहास छिपा हुआ है। उम्र में चतुरी निराला के चाचा जैसा है; गाँव के रिश्ते में—अर्थात् व्राह्मण-चमार का भेद देखते हुए–वह निराला का भतीजा है। समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव, सदियो से चला आता रूढ़िवाद, किसान-जमीदार का संघर्ष, किसानो का भय, उनका संगठन करने की कठिनाइयाँ—यह सव निराला ने सतर्क होकर देखा और चित्रित किया है। निराला वाह्य जीवन पर ध्यान केन्द्रित करते है, चतुरी के आन्तरिक जीवन पर भी। वह कवीरदास के पद गाता है, उलटवाँसियों के अर्थ करता है, आलकारिक शव्दावली का भीतर मर्म भी पहचानता है। रूढ़िवाद के साथ सदियों से चली आती यह संस्कृति कही चतुरी का आत्म-सम्मान जगाए हुए है। निराला से कहता है, "काका, ये निर्गुण पद वड़े-वड़े विद्वान् नही समझते।" 'काका,' यह शव्द—भतीजे के वरावर निराला के लिए—रूढ़ियों के वोझ का प्रतीक है किंतु मैं इन पदों का अर्थ समझता हूँ, वड़े-वड़े विद्वान् उनका अर्थ नही समझते, यह भाव चतुरी के आत्म-सम्मान का सूचक है। उसकी संस्कृति कवीर तक सीमित नही। "कवीरदास, सूरदास, तुलसीदास, पलटूदास आदि ज्ञात-अज्ञात अनेकानेक सन्तों के भजन होने लगे।" इस लोक-संस्कृति से निराला भी वँधे है, चतुरी भी।

निराला का साहित्य-सर्जक गर्व चतुरी के निर्गुण पद विशेषज्ञ वाले आत्म-सम्मान से टकराता है। निराला युगान्तरकारी है, चतुरी "अपने उपानह-साहित्य मे आजकल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तनवादी है···चतुरी के जूते अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस-से-मस नही होते।" लेकिन चतुरी का विचार है कि निर्गुण पद जैसे और विद्वान् नही समझते, वैसे निराला भी नहीं समझते। वह पद का मतलव समझना शुरू करते है कि निराला टोक देते हैं, "चतुरी, आज गा लो, कल सुवह आकर मतलव समझाना।" चतुरी को विश्वास है, जहाँ गिरह लगती है, साहव (कवीरदास) आप खोल देते हैं। चतुरी दूसरे दिन निराला को पदो के अर्थ वुझाता है। निराला को खलता है, कोई उन्हें पदों का दार्शनिक अर्थ समझाए; चतुरी के भाष्य को 'कल्याण' के निरामिष लेखों के समतुल्य मानकर मन समझा लेते है और चुप रहते हैं। किन्तु निराला यह भी मानते हैं, "वे लोग ऊँचे दर्जे के उन गीतो का मतलव समझते थे, उनकी नीचता पर यह एक आश्चर्य मेरे साथ रहा। वहुत-से गाने आलंकारिक थे। वे उनका मतलव भी समझते थे।" निराला को किसी

भी विद्वान् का भाष्य पूरी तरह पसन्द न आता; उतनी ही कमी चतुरी के ज्ञान में थी। वाकी वह समाज मे अप्रतिष्ठित होने पर भी ज्ञान में श्रेष्ठ था, निराला ने यह माना। यह ज्ञान चतुरी के लिए काफी था जिसने जूते गाँठते हुए ज़िंदगी काट दी। वह चाहता है कि उसका वेटा इस पेशे से निकले, उसे दूसरी तरह की शिक्षा मिले। यह शिक्षा निराला के पास है। चतुरी प्रस्ताव करता है कि उसके वेटे को पढा दिया करें, वह भी अपनी विद्या दे देगा, "तो कहो भगवान् की इच्छा हो जाय तो कुछ हो जाय।" इस तरह संसार में उन्नति करने के लिए आवश्यक नई विद्या से चतुरी अपनी परम्परागत विद्या का संयोग करना चाहता है।

चतुरी के वेटे को पढाते हुए घर के भीतर और वाहर किस तरह की अड़चनें पैदा होती हैं, निराला उनका रोचक वर्णन करते है। किन्तु जव वेटे ने दादा, मामा, काका पढना-लिखना सीखा तव 'हर्ष मे उसके माँ-वाप सम्राट् पद पाये हुए को छापकर छलके।' निराला ने गाँवो मे शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता पर जो लिखा था, उस पर आचरण किया। गुरुमुख ब्राह्मणों ने निराला के घड़े का पानी पीना छोड़ दिया। इसका कारण यह भी था कि निराला शूद्रों से मांस मँगवाते थे, घर मे पकाते थे, खुद खाते थे, उन्हे भी खिलाते थे। इस सामाजिक क्रान्ति के साथ राजनीतिक आन्दोलन भी चल रहा था। एक साल के हरी-भूसे को तीन साल की वाकी वनाकर ज़मीदार ने दावे दायर किए। दरोगा गाँव मे कांग्रेस का पता लगाने आया। महावीर के मंदिर मे तिरंगे झंडे को धुला हुआ देखकर, निराला से यह सुनकर कि वह कांग्रेस के नही, विश्व-सभा के सदस्य हैं, जिसके सदस्य अनेक नोवेल पुरस्कार पाए हुए साहित्यिकार है, दरोगा लौट गया लेकिन जिस आनरेरी मजिस्ट्रेट के यहाँ दावे दायर किये गये थे, वह स्वयं ज़मीदार था, उसका रिश्तेदार वकील था जो चतुरी के विरोध मे गढाकोला के जमीदार की तरफ से लड़ रहा था। नतीजा यह कि मजिस्ट्रेट ने जमीदार को किसानो पर डिगरी दे दी। वैल वगैरह नीलाम कर लिए गए। इसके वाद चतुरी का मुकदमा था। चतुरी को मुकदमा लड़ने के लिए गाँववालों से चंदा न मिला। वह चंदे के विना भी मुकदमा लड़ने को तैयार था लेकिन दहशत के मारे गाँववाले गवाही देने को तैयार न थे। निराला ने कुछ पक्के गवाह ठीक कर दिए। चतुरी किसान है, कारीगर भी। अपनी कारीगरी के कारण गोदान के होरी की तरह वह टूटता नही। जमीदार के सिपाही को साल मे एक जोड़ा जूता देना वाजिव-उल-अर्ज मे दर्ज नही है, इस रहस्य का पता लगना चतुरी की विजय है। निराला चतुरी को न आदर्श योद्धा और क्रान्तिकारी के रूप मे चित्रित करते है, न भीतर से त्रस्त, टूटा हुआ, आत्म-ग्लानि से पीड़ित ही। चतुरी मे साधारण श्रमिक जनता का साहस है जिसे निराला एक वाक्य मे यो अंकित करते है, "सत्तू वाँधकर, रेल छोडकर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर, दूसरी पेशी के वाद पैदल ही लौटकर हँसता हुआ चतुरी वोला—'काका, जूता और पुरवाली वात अब्दुल-अर्ज मे दर्ज नही है।' "

किसी समस्या का वास्तविक या काल्पनिक समाधान प्रस्तुत नही किया गया।

लड़ाई की एक मंज़िल तय हुई, उसका इतिहास निराला ने लिख दिया। लोग लड़ सकते हैं, डरे, हारे, लेकिन लड़े तो—इस याद से ही निराला का मन हल्का हो जाता है। साहित्य-संसार में बारह साल तक मक्खियाँ मारने की पीड़ा नहीं है। निराला दाएँ-बाएँ विरोधियों पर वार करते चलते हैं, क्षुब्ध और दुखी होकर नही, प्रसन्न मुद्रा मे, विरोधियों को बनाते हुए। पीड़ा है, मनोहरा देवी की याद मे, जो चतुरी की चर्चा से ताज़ा हो जाती है। उस प्रच्छन्न पीड़ा की ओर संकेत भर है। पीडा कम है, इसलिए व्यंग्य मे तीक्ष्णता नही, विनोद का भाव अधिक है। चतुरी के बनाए हुए जूते हल्के हैं, शायद नवाबी सभ्यता के असर से; बाँदा के चर्मकार भाई चित्रकूट के पास हैं, उनके बनाए हुए जूते वजनी होते हैं, शायद इसलिए कि उन चर्मकार भाइयो पर 'रामजी की तपस्या का प्रभाव पड़ा हो।' निराला नवाबी सभ्यता पर हँसते हैं, रामजी की तपस्या से उत्पन्न होने वाले चमत्कारों पर भी। चतुरी जब उलटबाँसी सीधी करता है, तब निराला उसका भाष्य ध्यान से सुनते हैं; जब वह दम लगाता है, तब भी उसकी समस्त क्रियाएँ कुतूहल-भाव से देखते और प्रसन्न होते हैं।

"फिर चलती हुई चिलम में दम लगाकर, धुआँ पीकर, सर नीचे की ओर जोर से दबाकर, नाक से धुआँ निकालकर बैठे गले से बोला—काकी रोटी भी करती थी, बर्तन भी मलती थी···बड़ा अच्छा गाती थी। काका, तुम वैसा नही गाते।"

एक सुखद-दुखद स्मृति—डलमऊ में **श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन** सुनकर मनोहरा देवी के कंठ-स्वर से पराजित होने की याद—निराला की प्रसन्नता में घुल-मिल जाती है।

कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा

'कुल्लीभाट' मे कथा का केन्द्र गढ़ाकोला नही, निराला की ससुराल डलमऊ है। अछूत यहाँ भी है, इनमे शिक्षा-प्रचार का काम निराला नही, कुल्ली करते हैं। अछूत-समस्या के साथ हिन्दू-मुस्लिम विवाह की समस्या और अटक गई है। **कुल्लीभाट** में निराला ने अपने व्याह और गौने की कहानी लिखी है; दूसरी कहानी परिवार के नाश और बंगाल में हिंदी सीखने की है; तीसरी कहानी अछूतों में कुल्ली के काम करने की है। निराला ने इसे जीवन-चरित्र मानकर लिखा है; वह जितना दूसरे का जीवन-चरित है, उतना स्वयं निराला का आत्म-चरित भी

है। आकार में पुस्तक लघु उपन्यास जैसी है किन्तु उसकी रचना में आत्मकथा, जीवन-चरित, संस्मरण, रेखाचित्र कई विधाएँ मिल गई हैं।

निराला ने अपने वारे में जो कुछ लिखा है, वह सव ज्यों-का-त्यो सही नहीं है किन्तु इससे परेशानी हो उन्हें जो निराला का जीवन-चरित लिखते हों या उनकी आत्मकथा संपादित कर रहे हों। निराला ने गांव घर के वातावरण का, अपने वाल्यकालीन जीवन का कलात्मक चित्रण किया है। इसमें वह अपने वनाव-शृंगार पर, वंगाल से पाई हुई छायावादी संस्कृति पर हँसते है। यह नही लिखा कि जव सोलहवाँ साल पार किया और गौना लेने गए, तव 'जुही की कली' लिख चुके थे। गौने के वाद—सोलह पार करने के वाद—हिंदी सीखने लगे, यह लिखा है। 'जुही की कली' लिखते समय ज्योति दिखी थी, यह याद है। उस ज्योति का मतलव क्या था, तव समझ मे न आया था। गाँव से निकलकर स्टेशन की ओर चलते समय लू का ऐसा झोका आया कि एक साथ जैसे कुंडलिनी जग गई। 'वह प्रकाश देखा कि मोह दूर हो गया।" (पृ. १८) यहाँ आराम से घर वैठे ब्रह्मदर्शन करने वालों पर व्यंग्य है। खुद आराम मे है, सारा संसार आनन्द में डूवा हुआ क्यों न दिखाई दे ? निराला ने लू के झोके खाए तव मोह दूर हुआ। "रवि वावू को आरामकुर्सी पर दिखा, हज़रत मूसा को पहाड़ पर, मुझे गलियारे में, लू विरोध करती हुई कह रही थी—'अव ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।' "

यदि प्रकाश दिखने का अर्थ वैराग्य भाव का उदय है, तो 'जुही की कली' लिखते वक्त वह कैसे दिखा ?

निराला एक तरफ अपने छायावादी रूप मे हँसते है, दूसरी तरफ उससे आकर्पित भी है। छायावादी रूप ही नही, अपनी पोडश वर्पीय छवि पर, अपने 'अज्ञात-यौवन' भाव पर मुग्ध-विस्मित दृप्टि डालते हैं, हँसते भी हैं कुल्ली के प्रेमभाव का वर्णन करते हुए, मनोहरा देवी से प्रीति और विरोध के भावों का चित्रण करते हुए निराला ने अपना किशोर वय का ही नही, वाद की वयस्क अवस्था का भी मानसिक ताना-वाना प्रस्तुत किया है।

परिवार के विनाश का चित्र जो अलका के आरम्भ मे दवा-दवा है, यहाँ पूरी ताकत से उभर आया है। यह अंश शव्दो के अपव्यय से वचते हुए, संयम से, किसी वड़ी ट्रैजेडी के ढंग पर लिखा गया है। ऐसा लगता है कि यह दर्द तव ज्यादा उभरता है जव निराला के मन में असफलता और पराजय के भाव कटुता उत्पन्न करते है। रवीन्द्रनाथ और मूसा ने प्रकाश जिस ढंग से देखा, निराला ने उस ढंग से नही। कुछ अधिक सत्य दिखाई दिया। जीवनचरित पढ़े, कोई पसंद न आया। समाजवादी-छायावादी सभी तरह के कवि हेच मालूम होते हैं : "साफ देखा—कलम हाथ लेते ही कितने कवियों की आँख की परी विश्वसाहित्य के सातवें आसमान पर पर मारती है, कितने कर्मवीर दलिया खाते हुए, कमर कमान किए, जान पर खेल रहे है, कितने आधुनिक वेधड़क समाजवाद के नाम पर पूरे उत्तानपाद।" यह चौतरफा हमला मन की कटुता के कारण है। इसके साथ परिवार के विनाश

की स्मृति और भी सजग हो जाती है।

व्याह, गवही, कुल्ली से मुलाकात के वाद निराला की हास्य-ध्वनि क्षीण होती जाती है। उसकी जगह व्यंग्य है, पीड़ा है। निराला साहित्य-क्षेत्र में लड़ते है, कुल्ली सामाजिक-क्षेत्र में। कुल्ली के प्रति तटस्थ व्यंग्य का भाव प्रशंसा के भाव में वदल जाता है। निराला ने 'देवी' कहानी में लिखा था कि वड़प्पन के सारे भाव उस पगली भिखारिन में समा गए। यहाँ वैसा कोई चमत्कार नही है। कुल्ली ने मुसलमान महिला से विवाह करके, अछूतों की सेवा करके निराला की, निराला के ससुरालवालों की प्रशंसा प्राप्त की। कुल्ली ने काँग्रेस कायम की, स्वयंसेवक भर्ती किए; विंदा खटिक की दुलहिन मर रही थी, गाँव में कोई न खड़ा हुआ तो कुल्ली ने अकेले सेवा की। कुल्ली ने अछूत वालको से जो आत्मीयता पैदा की थी, उसे देखकर कुल्ली निराला की निगाह मे वहुत ऊँचे उठ गए। उन अछूत वालकों की दृष्टि देखकर "लज्जा से मैं वही गड़ गया।" निराला को दूसरों के सामने लज्जा आए, ऐसा ज़रा कम होता है। इसका कारण वह सामाजिक क्रान्ति है जिसमें कुल्ली भाग ले रहे है, जो राजनीतिक आन्दोलन से संवद्ध है। इस आन्दोलन में स्वार्थसेवी नेता काफी थे। इनकी असलियत कुल्ली ने पहचानी है, संसार के प्रति कुल्ली और निराला का अनुभव एक-सा है : "संसार मे साँस लेने का भी सुवीता नहीं, यहाँ वड़ी निष्ठुरता है; यहाँ निश्छल प्राणो पर ही लोग प्रहार करते है; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जन-सेवा हो, चाहे देश-सेवा...।" (पृ. १०६) कुल्ली को वड़े-वड़े नेताओं से सहायता नही मिलती, फिर भी वह अकेले दम मैदान मे डटे रहते हैं। जैसे पगली भिखारिन की दीपशिखा धुएँ के अँधेरे के नीचे धुँधली हो रही थी, वैसे ही कुल्ली की जीवनलीला समाप्त होने को है। फिर भी भीतर का प्रकाश मंद नही हुआ। "देखा, चेहरा एक दिव्य आभा से पूर्ण है, लेकिन देह पहले से दुवली, जैसे कुल्ली समझ गए हैं, जीवन की संध्या हो गई है, अव घर लौटना है। कविता का दिव्य रूप और भाव सामने जड़ शरीर में देखकर पुलकित हो उठा।" (पृ. १०६)

क्या 'जुही की कली' लिखते समय इससे अधिक दिव्य प्रकाश दिखा था ?

निराला कहानी की शुरुआत यहाँ नायक के जन्म से नहीं करते, उसका अंत नायक की मृत्यु से ज़रूर करते है। यह जीवनचरित्र है; नायक की मृत्यु से उसका अन्त होना ही चाहिए। किन्तु मृत्यु के वाद की कुछ घटनाएँ है। निराला पर दुख का प्रभाव कैसे उन्हें संज्ञाशून्य वना देता है, इस पर स्वयं लिखा है, यह प्रभाव "दुःख नही, नशे की तरह का है, जव किसी प्रियजन का वियोग होता है, या वैसा भय मुझ में आता है।" (पृ. १२०) आरम्भ में गौने के समय की उमंगें; अव कुल्ली की मृत्यु के वाद यह संज्ञाशून्यता। दोनों मे नाटकीय वैषम्य; यह संज्ञा-शून्यता उन उमंगो पर व्यंग्य वनकर छा जाती है।

निराला शवयात्रा मे नही जाते। कुल्ली को फूँककर लोग वापस आ गये। निराला जड़वत् अपनी जगह वैठे रहे। दस दिन वाद कुल्ली की स्त्री को देखने गए।

कहानी को रँगने के वजाय निराला ने लिखा—कुल्ली की स्त्री में कुल्ली की अपेक्षा मुसलमानिन वाला भाव प्रवल था। एकादशाह के दिन लोग उनके यहाँ आए नही; "मै आपसे पूछती हूँ, यह हिंदुओ का खरापन है या दोगलापन ?" (पृ. १२१) कुल्ली की मृत्यु से कहानी समाप्त न हो सकती थी।

अछूत लड़का मन्नी पडित को बुलाने गया। मन्नी पंडित को वहन व्याहनी थी। गंगापुत्रों के यहाँ पंडिताई करने से हेठे समझे जाते थे; वर न मिलता था। "कुल्ली की स्त्री के घर होम कराने जाएँगे, तो कोई पानी भी न पिएगा।" (पृ १२१) कुल्ली ने जो सामाजिक क्रान्ति आरम्भ की थी, उसमें यह कठिनाई थी—काल्पनिक इच्छापूर्ति के स्वप्न से कितनी भिन्न !

निराला ज्योतिषी पंडित से तिथि संवत् पूछकर होम कराने चले। पंचांग लेकर पहले ससुराल पहुँचे। माँगकर जनेऊ पहना। सासु विगड़ी कि कुल्ली के यहाँ होम कराने जाएँगे तो लोग उनके यहाँ खान-पान वद कर देंगे। वही भैयाचारों का विकट भय ! निराला ने चिढकर कहा "मैं आपका ससुर हूँ या अजिया ससुर ? मेरे पापों का फल आपको क्यों भुगतना पड़ेगा, मेरा दिया हुआ पिंड-पानी जव कि आपको नही मिल सकता। आप मुझे चौके में न खिलाइए वस।" (पृ. १२६)

लेकिन अव निराला अकेले न थे। साहित्यिक ख्याति साथ दे रही थी। निराला होम कराने जा रहे हैं, यह चमत्कार देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ चली। निराला ने चौक पूरी, नवग्रहो के नौ कोठे वनाए, वालू की वेदी पर हवन की लकड़ी रखी। दीया जलाया। मंत्र पढ़ते हुए पहले अटके, फिर "अपनी संस्कृत शुरू की··· लोग प्रभावित हो गए। खड़े जो जैसे रहे, रह गए, जैसे कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ते वक्त होता है।" निराला ने होम समाप्त किया; लोगो ने कहा, "सव ठीक हुआ। वन गई कुल्ली की।"

सारी समस्याएँ सुलझी नही लेकिन संघर्ष की एक मंजिल पार हुई। रेखाचित्र, संस्मरण, आत्म-चरित, जीवन-चरित, लघु उपन्यास—अनेक विधाओ के तत्त्व लेकर रची हुई **कुल्लीभाट** की कथा हिंदी के यथार्थवादी साहित्य के विकास में नई कड़ी सावित हुई।

विल्लेसुर वकरिहा में वही गाँव है जो 'चतुरी चमार' में किन्तु यह उस समय की कहानी है जव सारे आन्दोलन शान्त हो गए है, फिर भी मनुष्य को जीवित रहने के लिए लड़ना है। विल्लेसुर अकेले हैं, उन दरिद्र ब्राह्मणो के प्रतिनिधि हैं जो जीविका का और कोई साधन न होने से वकरियाँ पालते हैं। निराला विल्लेसुर का जीवन-चरित नहीं लिख रहे, उसमे स्वयं अवतरित नही होते लेकिन वर्णन ऐसा है मानो कहानी गढने के वदले आँखो देखी वाते लिख रहे हो। यह लघु उपन्यास नहीं, न कहानी; एक तरह की लोककथा है जो साहित्यिक कहानी से अधिक समय लेती है, लघु उपन्यास से कम। न केवल इसका ढाँचा लोककथा का है, वरन् इसका वातावरण, कथा कहने की शैली, कथा की परिणति—सव-कुछ लोककथाओ जैसा है। विल्लेसुर की कथा मे काफी दर्द है किन्तु कही कटुता नही है; कथा में ऊर्ँ

व्यंग्य है, दवा हुआ है। निराला के प्रसन्न हास्य की आभा में सारी कथा रँगी हुई है।

विल्लेसुर दरिद्र हैं, दुनिया को देखते मूर्ख भी हैं। मूर्खता के नीचे चतुराई छिपी है जिसे सफल अभिनेता की तरह प्रकट नही होने देते। जीविका की समस्या हल न कर पाने पर जवार के और लोगों की तरह वह भी बंगाल पहुँचते है। बर्दवान के महाराज के यहाँ सत्तीदीन सुकुल जमादार थे। वहाँ जमादार इनसे कसकर काम लेते हैं, घर का काम कराते हैं, चिट्ठियाँ बाँटने से कुछ पैसे मिल जाते है, वही आमदनी है। विल्लेसुर ने सबसे दबकर, सबकी सुनकर जीना सीखा था। जमादार की पत्नी के व्यंग्य-बोल सुनते रहे, "कभी कुछ बोले नहीं। अपनी ज़िंदगी की किताब पढ़ते गए। किसी भी वैज्ञानिक से बढकर आस्तिक।" (पृ १९)

विल्लेसुर के मन के आसपास ईश्वर नही, कोई धार्मिक आस्था नही, केवल दुख है जो इतना सजीव है कि और किसी देवता को पास फटकने नही देता। वह "दुख का मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को बार-बार चुनौती दे चुके थे। कभी हार नही खाई।" (पृ. ४७) इस दुख का एक कारण है गाँव का समाज। ज़मीदार से लेकर पासियों तक सभी विल्लेसुर को चवा जाने को तैयार। "गाँव में जितने आदमी थे, अपना कोई नही, जैसे दुश्मनो के गढ़ में रहना हो।" (पृ. ३९) इस अकेलेपन में किसी का विश्वास न करना चाहिए, देवताओं का भी नही, यह विल्लेसुर ने सीखा। वह "दूसरे का अविश्वास करते-करते एक खास शक्ल के बन गये थे। पर अपना बल न छोड़ा था, जैसे अकेले तैराक हों।" (पृ. १९-२०) आन्दोलन के उतार के बाद यह गढ़ाकोला के अकेले तैराक की कहानी है।

विल्लेसुर ने सिपाहियों में भर्ती होने की कोशिश की। कद में छोटे थे। चमरौधे में रुई भरकर ऊँचे दिखने का प्रयत्न असफल हुआ। जमादार पत्नी के कहने से पुत्र-प्राप्ति की आशा से जगन्नाथपुरी गए। वहाँ विल्लेसुर ने समुद्र देखकर प्रसन्नता के मारे 'जगन्नाथ जी की स्मृति मे बहुत से घोंघे' बटोर लिए (पृ. २४)। फिर उन्होंने एक नाटक किया। जमादार के पैर पकड़कर लेट गए और गुरुमंत्र देने को कहा। जमादार गायत्री मंत्र देकर ही पिंड छुड़ा सके। जमादार और उनकी स्त्री को प्रभावित करने के लिए एक स्वप्न-वृत्तान्त सुनाया—देखा, भुस्स से आग जल उठी, उसमें तीन मुँह वाला आदमी बैठा था। किन्तु इन सारे आडंबरों का जब कोई फल न निकला तब उन्होंने निश्चय किया कि "ज़मीदार की गुलामी से गुरु की गुलामी सख्त है" (पृ. २८), इसलिए गाँव चलते समय कंठीमाला और गायत्री मंत्र गुरुआइन को वापस दे आए।

निराला ने एक जगह विल्लेसुर को सुकरात कहा है। इस सुकरात के 'ज़बान न थी, पर इसकी फिलासफी लचर न थी' (पृ. ३९-४०)। निराला ने जैसे चतुरी के अन्तर्जगत की छानबीन की थी, वैसे ही यहाँ विल्लेसुर का भीतरी मन टटोलते हैं। विल्लेसुर भूल-भुलैया में भटकते है, फिर भी रास्ता निकाल लेते है, निर्गुण पदों की सहायता के विना। जैसे सत्तीदीन जमादार के पैर छुए थे, वैसे ही महावीर के पैर छूकर बोले, मेरी बकरियों की रखवाली किए रहना। मूर्ति मुस्कराई या नही?

विल्लेसुर ने मुसकराना नही देखा। निराला कहते हैं, "तुलसीदास या सीताजी की जैसी अन्तर्दृष्टि न थी; होती, तो देखते, मूर्ति मुसकराई।" (पृ. ४१) या फिर 'भक्त और भगवान' और 'अर्थ' कहानी के निरंजन-रामकुमार की दृष्टि होती, किंतु विल्लेसुर का मन दूसरे स्तर पर काम करता है। वदमाश लड़कों ने उनका वकरा मार डाला; महावीर ने रक्षा न की। निरंजन ने महावीर से पूछा था—ये गरीव मरे जा रहे हैं, इनका क्या होगा ? विल्लेसुर ने इस प्रश्न का जवाव अपने ढंग से दिया। वकरा न मिला तो मंदिर की उल्टी प्रदक्षिणा की, फिर मूर्ति से वोले, "देख, मैं गरीव हूँ। तुझे सव लोग गरीवों का सहायक कहते हैं, मैं इसलिए तेरे पास आता था और कहता था, मेरी वकरियों को और वच्चों को देखे रहना। क्या तूने रखवाली की, वता, लिए थूथन-सा मुँह खड़ा है ?" (पृ. ४६) विल्लेसुर प्रतीकों का अर्थ निकालने वाले दार्शनिक नही। हर चीज़ को व्यवहार की कसौटी पर परखते हैं। धार्मिक आस्था इस कसौटी पर खरी उतरी तो ठीक, नही तो गलत। सत्तीदीन नौकरी न दिला पाये, इसलिए गायत्री मंत्र, कंठीमाला गलत। महावीर वकरियों की रक्षा न कर पाये, इसलिए वह गरीवों के सहायक सिद्ध न हुए। अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर "आँखों से आँखें मिलाये हुए महावीर जी के मुँह पर वह डंडा दिया कि मिट्टी का मुंह गिली की तरह टूटकर वीघे भर के फासले पर जा गिरा।" (पृ. ४६) 'राम की शक्तिपूजा' में राम की मूर्तिमान अर्चना महावीर के रूप में अक्षय है, उससे शिव और काली भी त्रस्त होते हैं। स्वय राम रावण को पराजित करने के लिए देवी की पूजा करते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' का विकल्प है—'विल्लेसुर वकरिहा'। विरोधी संसार में देवी-देवताओं के प्रति भग्न-आस्था वाले संघर्परत प्राणी के प्रतीक हैं विल्लेसुर।

भाई की सास जव भोजन पकाती हैं, तव विल्लेसुर फिर स्वांग करते हैं। सास को दिखाने के लिए लोटे से पानी लेकर थाली के चारो तरफ तीन वार टपकाते हैं, अगरासन निकालकर लोटा वजाते हैं और आँखें वंद कर लेते हैं। सास भी कम नही है; तड़के जगकर 'विल्लेसुर को जगाने के इरादे से ऊँचे स्वर से राम-राम जपने लगी।' (पृ. ७५) दोनों घाघ हैं, दोनों अपनी-अपनी घात में हैं, लेकिन दोनों को एक-दूसरे की ज़रूरत है, इसलिए समझौता हो जाता है।

विल्लेसुर पशु-चारण और कृपि-सभ्यताओ के सगम है। अपनी ज़मीन नही है, ज़मींदार से खेत लेकर किसानी करते हैं। वकरी-पालन से जो अर्थाभाव पूरा नही होता, उसे किसानी से पूरा करते हैं। किसानी भी घिसे-पिटे तरीके से नही, अपनी सूझ-वूझ से नये प्रयोग के तौर पर करते है। हल-वैल न होने पर फावड़े से खुद खेत गोडते हैं, शकरकंदें लगाते हैं। उन्नति का मार्ग सीधा नही है किन्तु पशुचारण में जितनी कठिनाइयाँ आईं, उतनी खेती मे नही। ठगों से एक वार ठगे जाने पर वह सतर्क रहने लगे। वह खयालों की दुनिया में खो जाते हैं लेकिन थोड़ी देर के लिए। ठग त्रिलोचन ने सुन्दर लड़की से व्याह कराने को कहा। कैसी गोरी होगी, यह सोचते हुए रामरतन की स्त्री, रामचरन सुकुल की विटिया के अलावा

पुखराजवाई की लड़की हसीना भी याद आई जिसके वड़ी-वड़ी आँखें है। (पृ. ५८) वकरी के वच्चे कहाँ रहेगे, छप्पर कहाँ डालेंगे, नयी वीवी कहाँ रहेगी, विल्लेसुर सपने देखते हैं लेकिन उनके पैर धरती पर है। त्रिलोचन की ठगविद्या का पता लगा लेते हैं।

लोककथा की तरह विल्लेसुर की मुसीवतें खत्म हुईं और उनका व्याह हो गया। किन्तु यह इच्छापूर्ति का स्वप्न नही है। विल्लेसुर ने इस दिन के लिए वड़ा परिश्रम किया है। वह कथानायक नौजवान राजकुमार नही हैं। उम्र ढल रही है। गाँव के डोम, वाजदार विल्लेसुर से नेग पाने की वात कहते थे तो विल्लेसुर 'झुर्रियो में मुसकरा देते थे।' (पृ. ८२)

विल्लेसुर सहनशील व्यक्ति हैं किन्तु जव वदला लेते है, तव अपने ढंग से। गाँव के लोग वकरियाँ पालने पर उन्हे वकरिहा कहकर चिढाते हैं। विल्लेसुर ने इसके जवाव में वकरी के वच्चों के वही नाम रखे जो चिढ़ाने वालों के थे।

अलका और **निरुपमा** मे जो परिवेश धुँधला है, वह यहाँ वहुत साफ है। यहाँ न केवल सामाजिक सम्वन्धों पर निराला ने ध्यान दिया है, व्राह्मणों में आपसी ऊँच-नीच के भेदभाव का चित्रण किया है, वरन् वकरी चराने से लेकर शकरकंद लगाने तक विल्लेसुर की सारी कार्यवाही को वारीकी से देखा है। वकरी के दूध से खोया वनाने में कौन-सी कठिनाइयाँ है, वकरी के घी में थोड़ा भैंस का घी मिलाकर कैसे वेचा जाय, 'अभी वौंड़ी पीली नही पड़ी थी,' शकरकंद खोदी जाय या नही (पृ. ७०), खेती किसानी की इन छोटी-छोटी वातों पर निराला ने पहले कभी इतना ध्यान न दिया था जितना इस कथा मे दिया है। जाड़ा शुरू होने पर सवन जाति की चिड़ियाँ इमली की फुनगी पर वसेरा लेने आती है। विल्लेसुर—सजग किसानों की तरह—आकाश के तारे पहचानते हैं। पहले शाम को हिरनी-हिरन जहाँ दिखते थे, वहाँ अव नही है। शरद ऋतु वीत गई। विल्लेसुर कहते है, जव जहाँ चरने को चारा होता है, ये चले जाते हैं। (पृ. ७२)

विल्लेसुर में कही छिपा हुआ कवि है। काछी के खेत में वैंगन के पेड़ देखकर कविता का स्रोत फूट पड़ता है। "एक-एक पेड़ ऐंठा खड़ा कह रहा था, दुनिया में हम अपना सानी नही रखते।" (पृ. ६४) सास के घर की तरफ चलते है। आम और महुए के पेड़ो से सुनहली धूप छनकर आती है। पेड़ों पर मौसम का जो असर था, वह 'उनमे भी आ गया,' चारों तरफ हरियाली की तरंगे, 'उनके साथ दिल मिल जाता और उन्ही की तरह लहराने लगता था।' (पृ. ७९) अपढ़ भारतीय किसान के हृदय में वड़ी कविता है। उसकी झलक विल्लेसुर में है।

निराला परिवेश की हर वस्तु देखते हैं, हर आवाज सुनते है। दीनानाथ नाम के वकरे को पुकारते हुए विल्लेसुर की आवाज़—उर् र् र्, उ र् र् र्! दिनवा अ ले—अ ले उ र् र् र्! आव—आव, दिनवा! (पृ. ४३)—विल्लेसुर के चित्र के साथ मन पर अंकित हो जाती है। विल्लेसुर सास के गाँव गए तो वढ़इयों के यहाँ गाड़ी के पहिए वनने की ठक-ठक दूर से सुनाई दी। (पृ. ७९)

निराला पूरी कहानी में बिल्लेसुर पर निगाह जमाए रहते है। निगाह हटती है तो बिल्लेसुर के ही आसपास की चीजें देखने के लिए। बहुत कम जगह किसी कविता या कहानी मे निराला इतनी देर तक—इतनी जगह घुमाते हुए—एक ही पात्र पर दृष्टि केन्द्रित रखते है। कल्पना में सारे घटनाक्रम को बारीकी से—और बिल्लेसुर पर ध्यान जमाये हुए—देखने की शक्ति इस कथा की कलात्मक सफलता का रहस्य है।

कथा के आरम्भ मे बकरिहा शब्द की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या से लेकर साफा बाँधने के बाद दरपन में बिल्लेसुर के तरह-तरह की मुद्राएँ बनाने तक निराला की विनोद-वृत्ति हर पृष्ठ पर पाठक का मनोरंजन करती है। जैसे 'देवी' मे व्यंग्य अनेक प्रकार का है और उन सभी प्रकारो से निराला ने उस रचना की कलात्मक सज्जा तैयार की है, वैसे ही बिल्लेसुर बकरिहा में हास्य के अनेक रूप है। इन सब रूपों के धीमे-तेज प्रकाश से यह कहानी जगमगाती है। कही बिल्लेसुर की मुद्राएँ—सत्तीदीन के सामने लेटते हुए या दरपन मे मुँह बनाते हुए—हँसाती हैं, कही उनकी क्रियाएँ जैसे समुद्र के किनारे घोंघे बटोरते हुए, कही उनकी बातचीत जैसे ठग त्रिलोचन को फटकार—"अब लड़की नही, लड़की की आजी तक को दिखाओ तो भी मैं नही जाऊँगा।" (पृ. ६२) बिल्लेसुर हास्य के आलम्बन हैं, हास्यास्पद नहीं है। हास्य के साथ वीर भाव जुड़ा है, वैसे ही जैसे निराला के व्यंग्य से अकसर करुणा का भाव जुड़ा रहता है। निराला के हास्य का वह एक स्तर यहाँ भी है जो करुणा और व्यंग्य को छूता है।

निराला ने कथा कहते हुए हर जगह भाव-संयम बरता है। दुख और वीरता की ओर सकेत भर है, विस्तार से वर्णन नही किया। वैसे ही हास्य में संयम है, अट्टहास नही है, अधिकतर होठों पर खेलती हुई मुसकान है; वैसी ही मितव्ययिता शब्द-चयन में है। गद्य का कसाव निराला की उस निगाह के अनुरूप है जो सिर्फ काम की बातें देखती है और बिल्लेसुर से हटकर इधर-उधर भटकती नही है। अन्य कहानियो की अपेक्षा निराला ने यहाँ अवधी शब्दो का प्रयोग अधिक किया है जिससे प्रयत्न-प्रदर्शन के बिना कथा आचलिकता के रंग मे रँग गई है।

चमेली

'सुकुल की बीबी' कुछ दूर तक संस्मरण है, उसके बाद कहानी। 'मतवाला' आफिस मे काम करते हुए निराला, नंगा बदन, मुशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव की रेशमी

चादर डालकर सभ्य दिखने का यत्न, साहित्य-समुद्र-मंथन से निकलता हुआ गरल, उसे पीने वाले महादेवप्रसाद सेठ—'देवी' की तरह यहाँ भी निराला अपने छायावादी मन पर काफी हँसते हैं। निराला के एक सहपाठी सुकुल हैं, निराला ने पूरा नाम नहीं लिखा, महिषादल के साथी होंगे। 'मतवाला' के बारे में लिखते हुए संस्मरण की ज़मीन तय करते हैं; सहपाठी सुकुल के स्कूली जीवन की तसवीर संस्मरण और कहानी के बीच की अनिश्चित भूमि है। विवाह होने, प्रवेशिका परीक्षा में पद्माकर के छंद लिखने की बातें आत्म-संस्मरण हैं। किंतु पिता के साथ माता के जीवित रहने की बात कहानी में कल्पनाक्षेत्र की बात है। सुकुल पास हुए, निराला फेल। "अब वह पिताजी नही, माताजी नही, पत्नी नही, केवल मैं हूँ, और परीक्षा-भूमि, सामने प्रश्नों की अगणित तरंगमाला!" (सुकुल की बीवी, पृ. १७) हास्य-विनोद से आरम्भ होने वाली कहानी मे आत्मकथा का यह करुण सत्य। श्रीमती सुकुल गर्भ में आईं ब्राह्मण कुल मे; पैदा हुईं मुसलमान परिवार में। होश आने पर हिंदू-मुसलमान दोनों से मन फिर गया। "बड़ी लज्जा लगी, हिंदू-मुसलमान इन दोनों शब्दों पर किसी की तरफदारी के लिए।" (पृ. २७)

कहानी बहुत विस्तार से कही गई है, ढाँचा बहुत ढीला-ढाला है। कहानी के अन्त मे महादेव बाबू फिर दिखाई देते हैं। निराला सुकुल और सुकुल की बीवी का विधिवत् विवाह करा देते हैं। मूल कथा गढी हुई या काफी रंग चुनकर पेश की हुई जान पड़ती है।

'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में निराला की कला अतिरंजित चित्रण—कैरीकैच्योर—की कला है। धार्मिक रूढ़ियों को मानने वालों पर तीव्र व्यंग्य है। कहानी में मोहन वैसा ही शिक्षाप्राप्त युवक है जैसा इच्छापूर्तिवाली कहानियों में नायक होता है किन्तु यहाँ उसका विवाह युवती सुपर्णा से नही होता। उल्टा सुपर्णा श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी बन जाती हैं। मोहन छायावाद का समर्थक है, शास्त्रीजी सपत्नीक छायावाद के विरोधी। श्रीमती शास्त्रिणी असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर पति के साथ ऊपर उठती चली जाती हैं, मोहन एम. ए. पास करके एक पत्र के दफ्तर में कलम घिसता है। कहानी में इच्छापूर्ति का स्वप्न नही है, नग्न यथार्थ भी नहीं है। छायावाद के रूढ़िवादी विरोधियों पर कथा के बहाने निराला ने व्यंग्य किया जिसमें प्रसन्न हास्य अधिक है, कटुता कम।

इससे मिलते-जुलते स्तर का हास्य और व्यंग्य 'प्रेमिका-परिचय' (लिली, पृ. १०४) मे है। व्यंग्य के लक्ष्य है लखनऊ विश्वविद्यालय के बाबू प्रेमकुमार जो नवाबी सभ्यता और उर्दू शायरी के रंग मे डूबे हुए है। प्रेमिका की खोज में बेवकूफ बनते हैं; निराला को उनकी असफलता से तसल्ली होती है। इनका साथी है शंकर जो 'सुकुल की बीवी' के सुकुल से मिलता-जुलता है—पढ़ाई की मेहनत और चोटी रखाने में। शंकर अपनी चोटी कई पेच से बाँधता है, खोलने पर बल बल खाते है। "कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर मे प्रिज़र्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीका है।" (उप., पृ. १०६)। [सुकुल पढ़ते समय खूंटी से बँधी

रस्सी से चोटी बाँध लेते है; ऊँघने पर झटका लगे तो जग पड़ें। उनके साथ चोटीधारियों का पूरा दल है। हाकी के मैदान में "सुकुल की पार्टी-की-पार्टी की चोटियाँ, स्टिक बनी हुईं, प्रतिपद-गति की ताल-ताल पर, सर-सर से हाकी खेलती हैं।" (सुकुल की बीबी, पृ. १३)] निराला एक अतिरंजित कल्पना-चित्र से मन बहलाते हैं। रूढ़िवाद चोटी तक सीमित नहीं, उसकी जड़ें और गहरी हैं। वहाँ तक व्यंग्य नही पहुँचता, इसीलिए हल्का है।

सुकुल की बीबी में एक ललित निबंध है 'कला की रूपरेखा'। यह संस्मरणात्मक निबंध 'सुकुल की बीबी' और 'प्रेमिका-परिचय' जैसी कहानियों से अधिक रोचक है। भूमिका में निराला ने उसे कहानियो में गिना ; किन्तु वह उस विधा से काफी भिन्न है। निबंध व्यंग्य-विनोद से शुरू होता है। अंडे खाने के पहले कला पर बातचीत होती है और कुछ देर के लिए निराला का भाषण काफी गंभीर हो जाता है। रेशम के कारबारी के रूप मे अपना परिचय देने के बाद निराला एक दक्षिण भारतीय को देखते है जो जाड़े मे लँगोटी से लाज बचाए उनके पास दौड़ता हुआ आता है। वह उसे अपनी मोटी खद्दर की चादर उतारकर दे देते हैं। वह देशभक्त है। लखनऊ कांग्रेस देखने आया है। निराला ने उस कांग्रेस को अपने ढंग से देखा, वैसा ही वर्णन लिखा। 'देवी' में जैसे पगली भिखारिन के आगे नेता का जुलूस निस्तेज लगता है, वैसे ही यहाँ उस गरीब दक्षिण भारतीय के सामने कांग्रेस का वह भव्य अधिवेशन। स्वयंसेवक की वर्दी पहने हुए दोनों हाथ उठाकर जब वह हर्षध्वनि करता है और लड़खड़ाती हिंदी में कहता है, "मैं वही हूँ, जिसे आपने चादरा दिया था," तब कहानी के क्लाईमैक्स के तौर पर निराला को उसमें कला का जीवित रूप दिखाई देता है। वापस जाते समय उसके पास किराए के पैसे नहीं है; पैदल जाएगा, लेकिन पैर मे चप्पल भी नहीं है। निराला के पास कुल छह पैसे थे, चप्पलें घिस गई थी। न अपनी चप्पलें दे सकते थे, न नई खरीद सकते थे। क्षमा माँगी। "उसने वीर की तरह मुझे देखा। फिर बड़े भाई की तरह आशीर्वाद दिया और मुसकराकर अमीनाबाद की ओर चला। मैं खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।" (सुकुल की बीबी, पृ. ७१)

कहानी विनोद के जिस भाव से शुरू होती है, उसी से खत्म नही होती। अंत और आरम्भ में वैषम्य है, जिस पर जान-बूझकर ज़ोर दिया गया है। हास्य का भाव आगे ओजमिश्रित करुणा में तिरोहित हो जाता है। यहाँ निराला एक साधारण भारतीय को—उसके देश-प्रेम, जीवट और लगन के कारण—अपने से कुछ बड़ा बनाकर चित्रित करते है। जीवन-यथार्थ के इस खंड-चित्र की विधा जो भी हो, है वह अत्यन्त कलापूर्ण। कला पर निराला के भाषण से जो बात समझ में नही आती, वह उस कला के जीवन्त स्वरूप के चित्रण से समझ में आ जाती है।

'स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं' भी ललित निबंध है जिसे निराला ने कहानी मानकर चतुरी चमार कहानी संग्रह मे शामिल किया है। शुरुआत आत्म-कथा के ढंग से होती है। निराला महिषादल-निवास, प्रारम्भिक संघर्ष, महावीर-

प्रसाद द्विवेदी जी की सहायता, संन्यासियों के साथ काम करने का विस्तृत विवरण देते हैं। फिर जैसे उद्‌वोधन कार्यालय मे संन्यासियों के वीच पहुँचकर कथा वँध जाती है। संन्यासियों के रूप-आकार, वहाँ के वातावरण, अपने मन की दशाओं का विनोदपूर्ण और अत्यन्त सजीव चित्र निराला ने यहाँ खींचा है। निवन्ध के अन्त में वह जिन चमत्कारों को देखने की वात कहते हैं, उन्हें इच्छापूर्ति का स्वप्न कहा जा सकता है। इच्छापूर्ति धन, विद्या, यश, नारी को लेकर नहीं, संन्यास को लेकर है। स्वप्न में देखा – श्यामा की वाँह पर मेरा मस्तक, मै लहरों पर हिल रहा हूँ।

उन्होंने सचमुच यह स्वप्न देखा होता तो शायद 'राम की शक्तिपूजा' मे यह न लिखते—

देखा, है महाशक्ति रावण को लिए अंक।
लाञ्छन को ले जैसे शशाङ्क नभ में अशंक।

रावण की जगह महाशक्ति के अक में निराला को होना चाहिए—इस स्वप्न की पूर्ति उपर्युक्त निवध में है। इस निवध की कलात्मक सफलता सन्यासियों वाले वातावरण के चित्रण मे है; उसका अतिरिक्त महत्त्व निराला के जीवन से सम्वन्धित अनेक घटनाओं के विवरण मे है।

निराला में कथा कहने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रवल है। आलोचनात्मक निवंधों मे विश्लेषण-विवेचन के साथ एकाध कहानी जोड़ देते है। 'अर्थ' निवंध (सुधा, सितम्वर '३२) में जहाँ वह स्वामी सारदानंद का उल्लेख करते है, स्वयं चिड़ियो की वोली में तरह-तरह के अर्थ पहचानने की वात लिखते हैं, वहाँ कथा-रस उत्पन्न होता है किन्तु सारे निवन्ध में विवेचन प्रधान है, इसलिए वह कहानी या ललित निवंध की श्रेणी में नही आता। 'पन्त जी और पल्लव' में अपने जीवन से सम्वन्धित अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है, वह सव वहुत रोचक है किंतु लेख में आलोचनात्मक छानवीन की अधिकता है, इसलिए वह भी ललित निवंध की श्रेणी मे न आएगा।

निराला का एक अधूरा उपन्यास है **चमेली** जो फरवरी, १९३९ के 'रूपाभ' मे प्रकाशित हुआ था। इसकी चित्रभूमि वही है जो **विल्लेसुर वकरिहा** की है किंतु पात्र भिन्न है, वर्णन-शैली भिन्न है। निराला हार, खलिहान का वड़ा अच्छा चित्रण करते है किन्तु किसी एक पात्र पर ध्यान केन्द्रित नही करते। किसान माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। चारपाई पर लट्ठ रखे ज़मीदार का सिपाही वैठा है। पुरवा की अदालत से लोग लौट आए हैं। आसमान पर ढोरों की खुरी की धूल छाई हुई है। सिपाही वख्तावरसिंह वैल हाँकती चमेली के पास लाठी का गूला रास की वगल मे वैसे ही दे मारता है जैसे 'छलाँग मारता हुआ' (नये पत्ते, पृ. ९२) कविता मे ज़मीदार का लठैत। कविता से भिन्न यहाँ वख्तावरसिंह ने युवती चमेली का हाथ पकड़ लिया। चमेली के पुकारते ही महादेव ने आकर वख्तावरसिंह को पटक दिया और मारा। चमेली विधवा है। उसे वदनाम करके उसके वाप को

परेशान करना मुश्किल नही। वख्तावरसिंह उसके वाप दुखी को परेशान करता है किंतु चमेली वाप की फटकार पर उसे डाँट देती है। माँ चमेली का साथ देती है। सिपाही जमीदार का भैयाचार है। सवसे वड़ी चिन्ता यह है कि शूद्र ने ठाकुर को पीट लिया। दुखी पर उल्टी रिपोर्ट लिखा दी गई। शिवदत्त राम त्रिपाठी को एक रुपया देकर दुखी सहायता की प्रार्थना करता है।

उपन्यास के पहले अध्याय में खलिहान का वर्णन, दूसरे अध्याय में शिवदत्त राम त्रिपाठी का चित्रण वहुत सजीव है। किन्तु चमेली, दुखी, वख्तावर दूर मे देखे हुए पात्र है, चित्रण मे गहराई नही है। यहाँ निराला ने जिस कला को निखारा है, वह गाँव के परिवेश के विस्तृत चित्रण के अलावा, ग्रामीण जनों के संवाद-लेखन में है।

'कुल्लीभाट' में निराला जैसे रामसहाय तेवारी की वातचीत—अवधी से वदलकर खड़ी वोली मे—प्रस्तुत करते है, वैसे ही शिवदत राम की भैहू की वातचीत है—"क्या है कि हफ़्ते मे एक रात दो रात इस तरह दीदी अकेले वहिरे जाती हैं···वहेतू कही की, सवेरे से जव देखो धोती उठाए वाहर भगी···कहे देती हूँ तुमसे, यह अव रहेंगी नही घर, खोदैया विसाते से इसकी आसनाई है, सीधे तुम्हारे मुख मे लगाएँगी कालिख और होगी मुसलमानिन।"

उपन्यास मे शिवदत्त राम का लड़का है जो पिता से भिन्न स्वभाव का है। लखनऊ मे पढ़ता है। सम्भव है, अन्य कहानियों की तरह वह आदर्श युवक वनकर दुखी की सहायता करता; सम्भव है, उपन्यास मे किसान-ज़मींदार-सघर्ष के यथार्थ चित्र खीचे जाते। एक वात निश्चित है, यहाँ कहानी कहने में थोड़ा विखराव है और यथार्थवाद का स्तर विल्लेसुर वकरिहा से कुछ नीचे है, ऊपर नहीं।

अप्सरा, अलका से आगे, लिली की कहानियों से भिन्न, हिंदी कथा-साहित्य का नया विकास है देवी, चतुरी चमार, कुल्लीभाट और विल्लेसुर वकरिहा में। यही कथा-साहित्य मे निराला की कला का चरम विकास भी है।

निबन्ध

कथा-साहित्य के अलावा निराला ने वहुत-सा गद्य लिखा है जिसका सम्बन्ध वहुत-कुछ उनके युग के विचारधारागत संघर्ष से है। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक, साहित्यिक समस्याओं पर टिप्पणियाँ लिखीं, निवन्ध लिखे, पुस्तकों की आलोचनाएँ लिखीं। इनमें कुछ लघु निवन्ध है जैसे 'रूप और नारी'। यह 'सुधा' में

लिखी हुई उनकी एक सम्पादकीय टिप्पणी है जिसे उन्होंने 'प्रबन्ध पद्म' में शामिल किया है। 'सुधा' में उनकी लिखी हुई अधिकांश टिप्पणियाँ इस लघु निबन्ध की श्रेणी में आती हैं। इनमें कहीं वह दार्शनिक स्तर पर विषय-विवेचन करते हैं, कहीं साहित्यिक वाद-विवाद में दाँव-पेंच दिखाते हैं, कहीं सामयिक घटनाओं पर टिप्पणी करते हैं। गद्य में ये निराला के गीतों की तरह हैं (परिमाण और संरचना के विचार से)।

इनसे बड़े कुछ निबन्ध हैं जैसे 'नाटक-समस्या' (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. ६३) या 'विद्यापति और चंडीदास' (उप, पृ. १४८)। इन निबन्धों की श्रेणी में **परिमल** और **गीतिका** की भूमिकाएँ भी हैं। इनके विषय अनेक हैं, विवेचन के ढंग अलग-अलग हैं। ऐसे कुछ निबन्धों में एक दोष यह है कि उनकी शुरुआत बड़े ऊँचे स्तर से होती है और आगे चलकर स्वर काफी नीची जमीन पर आ जाता है। इनमें वह नाटकीय कला नहीं है जो उनके काव्य में जगह-जगह देखने को मिलती है। इसका कारण एक परंपरागत संस्कार है जो वेद और ब्रह्म से ही बात शुरू करना उचित समझता है। **गीतिका** की भूमिका निराला गीत-सृष्टि के शाश्वत होने, समस्त शब्दों के मूल कारण ध्वनिमय ओंकार की चर्चा से आरंभ करते हैं। 'नाटक-समस्या' में पूरा पैराग्राफ 'ईश्वरीय यथार्थ नाटक' पर लिखकर मानवकृत नाटकों की ओर मुड़ते हैं। आदिकाल से आरम्भ करने का यह तरीका निराला में ही नहीं है, औरों में भी है। इसीलिए उसे परंपरागत संस्कार कहा। "आजकल हिंदू जाति के जीवन में जिस तरह की गंदगी भर गई है..." (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. २२६)। इस सहज ढंग से जब निबन्ध आरम्भ करते हैं तब निर्वाह अच्छा बन पड़ता है। निराला काव्य में जैसे मुक्तक हैं—**जागो फिर एक बार** इत्यादि—वैसे ही गद्य में ये निबन्ध हैं।

इनसे बड़े कुछ और निबन्ध हैं जिन्हें निराला ने विशेष तैयारी के बाद लिखा है। 'चरखा', 'कला के विरह में जोशी बन्धु', 'बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना', 'मेरे गीत और कला', 'पंतजी और पल्लव', 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म ?' आदि ऐसे निबन्ध है जिनमें तर्क का विराट् ताना-बाना है, गद्य की अनेक शैलियाँ, भावबोध के अनेक स्तर हैं, जिनके लेखन में नाट्यकला और प्रबन्ध-रचना दोनों का आनंद है। इनमें सबसे अधिक परिश्रम निराला ने 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म ?' निबन्ध लिखने में किया था। विचार-मंथन की दृष्टि से यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। निराला-काव्य में जैसे 'सरोज-स्मृति', 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' प्रबन्ध-रचनाएँ है, वैसे ही गद्य मे ये निबन्ध हैं'

निराला की तर्कभूमि सभी निबन्धों में एक-सी नहीं है। किसी एक निबन्ध से उनके तर्क उठाकर उनके किसी दूसरे निबन्ध के तर्क काटे जा सकते है किन्तु ऐसा कम होता है कि एक ही निबन्ध मे उनके तर्क आपस में उलझ जायँ। सामान्यत: निबन्ध में विवेक का साफ-सुथरा ढाँचा होता है और उसके भीतर जिन तर्कों का

प्रसार किया जाता है, उनमें आन्तरिक संगति होती है। वर्तमान धर्म वाले लेख में निराला 'विरोधी पक्ष' की चर्चा करते है जो विशुद्ध ज्ञान की सत्ता न मानकर ज्ञान के साथ अज्ञान का संयोग करता है। सारे लेख में—पौराणिक गाथाओं की नवीन व्याख्या मे—निराला ने इसी द्वंद्वात्मक तर्कपद्धति का निर्वाह किया है। यह उस निवन्ध की आन्तरिक संगति है।

निराला के साहित्यिक—विशेष रूप से वाद-विवाद वाले—निवन्धों की एक दिशा स्पष्ट है। वह रीतिवादी धारा का विरोध करते हैं, सन्त साहित्य का समर्थन करते है; पुरानी कविता के मुकावले नयी कविता का पक्ष लेते है, पुरानी कविता के सिलसिले मे, रीतिवादियों पर कोई आक्षेप करे तो वह चुप रहते है, सन्त साहित्य की आलोचना करे तो उसका जवाव देते है। वह इस वात के प्रति भी जागरूक हैं कि नई हिंदी कविता सन्त साहित्य के अनुकरण से नही, वरन् अपनी लीक अलग वनाकर ही आगे वढ सकती है। इस विवेचन में कही-कही स्वयं की गरिमा से वह संत कवियो के परास्त होने की कल्पना भी करते है।

अनेक निवन्धों में उन्होने तुलसीदास के ज्ञान पक्ष का समर्थन किया है। यह उचित था क्योंकि तुलसीदास की प्रवल मेधा की ओर भक्त-प्रशंसकों का ध्यान कम गया था किंतु अपने विवेचन मे निराला ने उनके काव्य की भावसम्पदा, कलात्मक उत्कर्ष और विचार-गरिमा के अनेक पक्षों की ओर ध्यान नहीं दिया। 'मेरे गीत और कला' मे चलते-चलते तुलसीदास की कला में दोप दिखाया है, वह सम्यक् विवेचन नही। 'पत जी और पल्लव' मे सूरदास के ज्ञान पक्ष को लेते हुए उनके विराट् चित्रो की उचित प्रशंसा की है, किंतु गीतिका की भूमिका मे सूर-तुलसी-मीरा के गीतो को सगुण उपासना के कारण आधुनिकों की रुचि के प्रतिकूल मानकर उस रुचि को ही सीमित और संदिग्ध सिद्ध किया है। पुराने गीत पसंद नही आते सगुणोपासना के कारण! और कवीर के गीत पसद नही आते क्योंकि वे 'भाषा-साहित्य-सस्कृति' मे अमार्जित हैं! अव निराला ने जो गीत लिखे है, वे डी. ऐल. राय और रवीन्द्रनाथ के गीतों की तरह अंग्रेजी सगीत से प्रभावित हैं!

निराला ने अनेक आधुनिक साहित्यकारों पर लिखा है और उनकी ऐतिहासिक देन की वार-वार प्रशसा की है किंतु प्रेमचंद पर आदर्शवाद का आरोप लगाते हुए उन्होने आशिक सत्य की ओर ध्यान दिया है, उनके यथार्थवाद के विकास पर भरपूर विचार नही किया। स्वयं निराला के साहित्य में किस तरह का आदर्शवाद आ जाता था, इसका उल्लेख नही किया। प्रसाद, मैथिलीशरण, पंत को अनेक प्रकार से कविता के विकास के लिए श्रेय देने के साथ उन्होने पंत-काव्य की कुछ ऐसी खामियों की आलोचना की है जो निराला-काव्य में भी हैं। कालिदास और रवीन्द्रनाथ के उल्लेखों में कला की वारीकियों पर ध्यान ज्यादा दिया है, जो अपने मे अनुचित नही, किंतु उससे उनकी काव्य-प्रतिभा का पूरा ज्ञान नही होता। रवीन्द्रनाथ से गृहत्यागी तुलसीदास को श्रेष्ठ ठहराते हुए वह इस कलात्मक विवेचन का स्तर छोड़ देते है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि निराला ने रवीन्द्रनाथ,

कालिदास, शेक्सपीयर, शेली आदि कवियों से उद्धरण देकर उनकी जो व्याख्या की है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और आलोचक निराला ही नहीं, कवि निराला की रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायक होती है।

निराला ने अपने से छोटों पर काफी लिखा है। यहाँ उद्देश्य प्रोत्साहन देना है। दोष नही दिखाए। यहाँ यह भ्रम न होना चाहिए कि निराला ने सूर-तुलसी-कवीर-रवीन्द्रनाथ मे तो दोष दिखाये पर इनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की; इसलिए ये आधुनिक लेखक उनसे भी ऊँचे साहित्यकार हैं।

निराला ने अपने काव्य का विवेचन भी किया है। यह विवेचन महत्त्वपूर्ण है। जहाँ तर्क कमजोर है—जैसे श-ण-व-ल के मामले मे—वहाँ भी निराला सोचने के लिए नई दिशा की ओर सकेत करते हैं। अपने काव्य का विवेचन प्रतिस्पर्धा के भाव से किया है; स्वभावतः उधर क्या गलत है, इधर क्या सही है, इस पर ध्यान ज्यादा है। जैसे औरों के वारे में उनके तर्क कभी-कभी आपस मे टकराते है, वैसे ही अपने वारे मे। न टकराने पर भी दलीलें कभी-कभी कमज़ोर होती है जैसे भाव-मुक्ति के लिए मुक्त छंद आवश्यक है—यह दलील।

निराला की आलोचना से जो वात सीखी जा सकती है वह यह कि अपने विवेचन में वह भाव के साथ विचार-तत्त्व पर काफी वल देते हैं, उनके लिए पदावली रचना ही महत्त्वपूर्ण नही है, महत्त्वपूर्ण वात है पूरी कविता मे कला का निर्वाह, उसका आन्तरिक गठन, भाव की अंतिम परिणति। 'मेरे गीत और कला' में उनका यही दृष्टिकोण है। निराला भाव, विचार, भाषा—इन सव पर कवि के समान अधिकार के पक्षपाती है। रवीन्द्रनाथ की एक कविता की व्याख्या करते हुए लिखा है, "इतना अच्छा निर्वाह, इतना प्रखर प्रवाह, इतनी दमदार भाषा आज तक वहुत कम कवियों में देख पड़ी है।" (चयन, पृ. १२५) कलात्मक निर्वाह, भाव-प्रवाह, भाषा-सामर्थ्य—तीनों पर समान वल है।

निराला की आलोचना एक कवि की लिखी हुई आलोचना है। उसमें जगह-जगह ऐसी अन्तर्दृष्टि है जैसी आलोचना-विशेषज्ञों मे कम मिलती है। निराला की लिखी हुई आलोचना उनके काव्य के किसी-न-किसी पक्ष को उजागर करती है, उनके कवि-मन के गुप्त रहस्य प्रकट करती है। अवश्य ही आलोचना जितनी महत्त्वपूर्ण है, उनके काव्य-संदर्भ के कारण उससे ज़्यादा मालूम हो सकती है किंतु काव्य-संदर्भ को हटा देने पर भी पाठक यदि विवेक से आलोचना पढ़ेगा, तो उसमे उसे अनेक महत्त्वपूर्ण वातें दिखाई देंगी।

रवीन्द्रनाथ की एक कविता में **चाइ-चाइ** शब्द आया। निराला ने व्याख्या की: "वंगला के चाइ-चाइ शब्द में आँधी की साँय-साँय की ध्वनि है, उधर चाइ-चाइ की अर्थ-द्युति व्याकुल प्रार्थना को सजीव कर देती है।" (चयन, पृ. १११) निराला शब्द की ध्वनि सुनते है, फिर देखते हैं अर्थ की द्युति से वह ध्वनि मेल खाती है या नही। **चाइ-चाइ** का एक कोशगत अर्थ; दूसरा शब्द की ध्वनि द्वारा व्यजित अर्थ। दोनों में मेल होना चाहिए। निराला-काव्य मे यह चमत्कार खूब

देखने को मिलता है।

रवीन्द्रनाथ के एक गीत की व्याख्या वह यों आरम्भ करते हैं : "विश्वकवि के इस संगीत का प्लाट (नक्शा) यह है।" (रवीन्द्र कविता कानन, पृ. १४४) सगीत शब्द का प्रयोग किया है गीत के अर्थ में। गीत में निराला को 'प्लाट' चाहिए। प्लाट का अर्थ 'नक्शा' ब्रैकेट में उन्होने स्वयं लिखा है। कविता में तो प्लाट होना ही चाहिए, गीत में भी वह आवश्यक है। निराला का ध्यान भावोद्गारों से अधिक गीत के नक्शे पर है, कविता रची कैसे गई है, यह परखते हैं। स्वभावतः गीत लिखते समय उनकी अपनी निगाह भी नक्शे पर रहती है।

कालिदास से **हस्ते लीला कमल मलके** इत्यादि उद्धृत करते हुए कहते है कि जो आलोचक नही—केवल भावोच्छ्वासों की दुनिया में रहता है—वह इसका महत्त्व न समझेगा; उसे फूल दिखाई देगा, उस फूल से संयुक्त 'कंटकाधार मस्तिष्क —जिस पर यह कोमल कला टिकी हुई है—कदापि अनुभूत न होगा।' (सुधा, जुलाई '३३; संपा. टि.—१) कला का आधार है मस्तिष्क; बुद्धितत्त्व के बिना भावोच्छ्वास व्यर्थ है। **कली सी काँटे की तोली**—का मूर्तिविधान इतना प्रिय है कि उसका उपयोग आलोचना में भी करते है।

अन्य टिप्पणी मे कालिदास से ही **कुसुम जन्म ततो नव पल्लवा** आदि उद्धृत करने के बाद कहते हैं, "कला में उनकी सहृदयता के साथ बुद्धिवाद का परिपूर्ण विकास लक्षित होता है।" (सुधा, दिसम्बर '३४; संपा. टि.—१) जैसे परिपूर्ण विकास रूपक के निर्वाह मे दिखाया, वैसे ही 'बुद्धिवाद' के साथ रूपक बाँधना स्वयं निराला को प्रिय था।

निराला खड़ी बोली कविता के प्रसंग में दो बातों की चर्चा ज्यादा करते हैं—एक ज्ञान की, दूसरी भाषा की। ज्ञान से तात्पर्य वेदान्त के अलावा भावों और विचारों मे आधुनिकता, रीतिवाद से मुक्त काव्यबोध से भी है। इससे अधिक चर्चा वह भाषा की करते हैं। कविता पढ़ते समय सबसे पहले वह भाषा की नब्ज़ टटोलते हैं। भाव और विचार पर ध्यान देते हैं भाषा की आवाज़ सुनने के बाद। उस आवाज़ से अदाज लगाते हैं, कवि किस कोठे से बोल रहा है, आवाज़ में कुछ दम है या नही। कविता और गद्य— दोनों मे—भाषा निराला की प्रमुख समस्या थी। खड़ी बोली प्रिय थी, उन्हें परेशान भी करती थी। ब्रजभाषा लिखना हो तो सूर की तरह लिखो, बँगला लिखना हो तो रवीन्द्रनाथ की तरह, किन्तु हिंदी किस की तरह लिखो ?

निराला ने आधुनिक हिन्दी के अनेक कवियो को पढ़ा था, उनकी रचनाएँ कंठस्थ की थी—कविताएँ घोखने के लिए यह अनिवार्य क्रिया थी !—जगह-जगह इन कवियों की भाषा की प्रशंसा की और जब-तब खड़ी बोली से असन्तोष भी प्रकट किया। इन दोनों बातों मे कोई अन्तर्विरोध नही क्योंकि निराला ने इन कवियों से भाषा लिखना सीखा था; साथ ही वह स्वयं रचनाकार थे, खड़ी बोली के विकास का नया स्वप्न मन मे था, पुरानी कविता से असन्तोष होना स्वाभाविक था। किंतु निराला अपने साहित्य में भाषा सम्बन्धी एक तरह के प्रयोग से सतुष्ट

नहीं रहे। हिंदी में जितनी तरह की शैलियाँ हैं, वे प्रायः सब-की-सब निराला में हैं, कुछ इनसे अलग ब्रज भाषा, उर्दू और लोकगीतों की है, कुछ और जो उनकी हैं, अन्यत्र नहीं है।

'स्वकीया' निबन्ध में उन्होंने लिखा था, "किसी कवि का एक कवित्त पढ़ा था। उसमें किसी रईस से इनाम में मिले घोड़े की तारीफ है। अंतिम चरण है—'चलना हराम इसे उठना कसम है।' बिलकुल यही दशा खड़ी बोली की है।" (माधुरी, अगस्त '२५) यहाँ उनका असतोष प्रकट हुआ है।

इस निबन्ध में उन्होंने लिखा है कि पहले खड़ी बोली नाम सुनकर वह भी औरों की तरह समझे थे कि यह बोली खड़ी हो गयी पर नज़दीक से देखने पर निराशा हुई। इससे यह न समझना चाहिए कि निराला किसी समय खड़ी बोली पर मुग्ध थे, बाद को विरक्ति हो गई। आसक्ति और विरक्ति के भाव उनके मन में बहुत दिनो तक साथ-साथ रहे हैं।

'रँगीला' के तीसरे अंक (जून, १९३२) में निराला ने मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य 'साकेत' पर प्रशंसात्मक आलोचना लिखी। इस महाकाव्य को उन्होंने गुप्त जी की 'ओजस्विनी लेखनी' का पुरस्कार माना। आश्चर्य की बात है कि निराला ने यहाँ ओजगुण का बार-बार उल्लेख किया है और उसे गुप्त जी के काव्य की मिठास पर हावी होते हुए भी माना है। इस बात पर आश्चर्य इसलिए होता है कि निराला ने अपने लिए ओज के ऐसे मानदंड स्थिर किए कि जो कविता उनसे नीचे आये, वह ओजहीन लगती है। किन्तु निराला ने मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओ में ही पहले खड़ी बोली की शक्ति पहचानी थी, इसलिए उसका ओजगुण भूले न थे। "गुप्तजी के भी अनेक गीत मैंने कंठस्थ किये थे।"—गीतिका की भूमिका मे उन्होंने लिखा था। कंठस्थ इसलिए किए थे कि उनकी भाषा ओजपूर्ण लगी थी।

'रँगीला' में 'साकेत' की भाषा के बारे में उन्होंने लिखा, "यद्यपि बहुत से लोग काव्य की भाषा मे जोर को मिठास से बढ़ने देना नहीं चाहते क्योंकि उस तरह काव्य का सबसे बड़ा अंग कमज़ोर पड़ जाता है कहते हैं, फिर भी उदार आलोचको के दल से प्रत्येक विशेषता को समान महत्त्व देने की नीयत रखता हुआ मैं यही कहूँगा कि मिठास को छाप लेने पर भी ओज और भाषा का अधिकार कवि को उसी हद तक प्रशसित करते हैं।" लोगो को मिठास पसन्द है, काव्य मे सबसे ज्यादा इसी की तलाश भी होती है किन्तु उदार आलोचक ओज को उतना ही महत्त्व देते है; निराला खुद को इन्ही उदार आलोचको में गिनकर गुप्तजी के काव्य मे माधुर्य से अधिक ओज पाते है। ओज या मिठास भाव में नही, सबसे पहले भाषा में देखते है। इसलिए आगे लिखते हैं, "गुप्तजी ओजस्वी कवि के नाम से ही हिन्दी मे अधिक प्रसिद्ध है। खड़ी बोली का ठाठ जिन लोगो ने काव्य मे तैयार किया है, गुप्तजी उनके अग्रणी है। भाषा की इस विशेषता मे वे सर्वश्रेष्ठ कवि है।" आलोचना के अन्त में लिखा, "हिंदी की उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिए यह एक ही साधन सिद्ध है।" इस वाक्य से भी संकेत मिलता है कि निराला ने खड़ी बोली का

ठाठ मैथिलीशरण गुप्त से सीखा था।

'हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति' में उन्होने लिखा, "खड़ी वोली का साँचा दुरुस्त हुआ वावू मैथिलीशरण जी गुप्त की कविताओं से।" (चयन, पृ. ७५) यह साँचा शुद्धतावादी था। खिचड़ी शैली का एक दूसरा साँचा सनेही ने तैयार किया था और निराला ने इनकी पंक्तियाँ भी कंठस्थ की थी। सहृदयता गुप्त जी में अधिक है किन्तु "सनेही जी की कविताएँ खिचड़ी शैली में होने के कारण स्वाभाविकता से विशेप सम्वन्ध रखकर चलती हैं। गुप्त जी की कविताएँ भाषा की एक नीति के आधार पर लिखी गई-सी जान पड़ती है।" (उप., पृ. ७७) यह खिचड़ी शैली **परिमल** और वाद के संग्रहों की अनेक रचनाओं मे है। यद्यपि सनेही की अपेक्षा मैथिलीशरण गुप्त का सम्वन्ध 'सरस्वती' और महावीरप्रसाद द्विवेदी से घनिष्ठ था, फिर भी गुप्त जी की तुलना में सनेही जी की भापा-नीति ही द्विवेदी जी की नीति से अधिक मिलती थी। "गुप्त जी संस्कृत के शुद्ध प्रयोगों के पक्ष में रहते हैं" (उप., पृ. ७७); गांधी जी हिन्दी की खिचड़ी शैली के पक्षपाती थे, "यह काम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी उनसे वहुत पहले कर चुके थे" (**प्रवंध प्रतिमा**, पृ. ३१)। निराला ने काव्य-रचना करते समय इन सव की भाषा का अध्ययन किया था और वारीकी से सनेही-मैथिलीशरण गुप्त-महावीरप्रसाद द्विवेदी के शैलीगत भेद का मनन किया था।

निराला द्विवेदी जी की गद्य की भापा के जैसे प्रशसक थे, वैसे उनकी पद्य की भाषा के नही। व्रजभापा और नायिका-भेद की जगह खड़ी वोली और आधुनिक काव्यवोध को प्रतिष्ठित करने मे उनकी ऐतिहासिक भूमिका को स्वीकार करते हुए भी उनकी काव्यभापा को सदोप वताया। 'खड़ी वोली की कविता मे प्राण-प्रतिष्ठा' द्विवेदी जी ने की; हिंदी के वहुत से सुकवि उत्पन्न किए, 'व्रजभापा के पक्षपातियों से इन्होंने लोहा लिया,' 'नवीन युवक-शक्ति इन्ही के साथ सम्मिलित हो गई'। (उप., पृ. ३१) **क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे** आदि पंक्तियाँ उद्धृत करने के वाद निराला ने लिखा कि कविता मे दर्शन की तो दुर्दशा की ही गई है, पर "इसकी भाषा अवश्य वड़े महत्त्व की है।" फिर जोड़ा, "यह महत्त्व हम इसकी प्राथमिक दशा का विचार करके इसे देते है।" 'नाना' से तुक मिलाने के लिए द्विवेदी जी ने महान को 'महाना' वना दिया था। इस पर व्यंग्य करते हुए निराला ने लिखा, "खैर, महाजनो येन गत' स पन्थ:। दोष तो सिर्फ छायावादियो के शब्द-विकार पर पकड़े जाते हैं।" (उप., पृ. ३३)

निराला ने नाथूराम शर्मा 'शकर', नारायणप्रसाद वेताव, पद्मसिंह शर्मा की गद्य-पद्य भाषा का भी अध्ययन किया था। इन तीनों लेखकों की भापा-शैली पर जहाँ-तहाँ उर्दू का प्रभाव है। निराला आधुनिक हिंदी के विकास के लिए उर्दू का यह प्रभाव शुभ मानते थे। उन्होने लिखा था, "मृतप्राय व्रजभापा के भीतर से नवीन खड़ी वोली का यह जो रूप उर्दू के सम्मिश्रण से निकाला गया है यह निस्सन्देह भाषा के साथ ही जाति को चिरकाल तक सजीव कर रखेगा।" (उप., पृ. ३०)

वेताव और पद्मसिंह शर्मा ने शंकर जी की कविता की प्रशंसा की है, "उनकी भापा मँजी हुई होती है। मौलिक शब्द-न्यास भी प्राय: मिलता रहता है। कविता में मृदुलता भी रहती है और कठोरता भी।" (उप., पृ. ३५) खड़ी वोली मे कितनी कठोरता है, उसमें कितनी कोमलता लाई जाय, निराला इन समस्याओ पर ध्यान देते हुए कवियों की भापा पर विचार करते थे। "यह अव खड़ी वोली पर विचार करने, उसे ही कोमलतर वनाने का समय है। और यह खड़ी वोली की कठोरता ही अव आगे चलकर सरस कवियों की काव्य-साधना का कारण होगी।" (उप., पृ. ३१) व्रजभापा की कोमलता से काम न चलेगा; अव खड़ी वोली को कोमल वनाना चाहिए। लेकिन कोमलता यदि काव्य का गुण है तो व्रजभाजा की कोमलता से क्यों न काम चलेगा? भारतेन्दु के समय से व्रजभापा के समर्थक उसकी कोमलता की ही दुहाई देते आये थे। निराला को यह कोमलता नापसंद क्यों थी? निराला कोमलता के साथ ओजगुण का मिश्रण चाहते थे। कोमलता वहुत तरह की होती है वह कोमलता जो भापा को निर्जीव वना दे, निराला को ग्राह्य नही थी। खड़ी वोली की कठोरता ही अव सरस कवियों की काव्य-साधना का कारण होगी—इस उक्ति का आशय यह है कि कठोर खड़ी वोली को कवि जव सरस वनाएँगे, तव उसकी कोमलता में ओज होगा, वह दरवारी कविता की नजाकत-नफ़ासत वाली कोमलता से भिन्न होगी।

वंग भापा के उच्चारण वाले लेख में निराला ने कोमलता को स्त्री-धर्म वतलाते हुए उसके विरोधी भाव का शव्द रखा गाम्भीर्य और उसे पुरुष का धर्म कहा। इस गाम्भीर्य से उनका तात्पर्य उसी ओजपूर्ण कोमलता के गुण से है।

शंकर की भापा में मृदुलता है, कठोरता भी। कठोरता अधिक है। "हिंदी के एक प्रसिद्ध समालोचक ने इनके सम्वन्ध में कभी लिखा था कि इनके उग्र शव्द जैसे अपनी उग्रता सहन न कर सकते हों···इनके शव्द-संगठन में कवि के हृदय की रसप्रियता का परिचय नही मिलता।" (उप., पृ. ७५) निराला को इसी रसप्रियता की तलाश गुप्त जी की भापा मे थी। उनका विचार था कि उस भापा मे मिठास की अपेक्षा ओजस्विता अधिक है।

निराला ने श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामचंद्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय आदि की काव्य-भापा पर भी लिखा है (उप., पृ. ३६-४३)। इनमें किसी की भी भापा मैथिलीशरण और सनेही के जोड़ की नही है। इन दो कवियों की भापा में भी खड़ी वोली उतना कोमल नही वन पाई जितना उसे वनना चाहिए था। उसे यह कोमलता सुमित्रानन्दन पंत की रचनाओ में प्राप्त हुई।

व्रजभापा की प्रतिस्पर्धा में कोमलता और माधुर्य की खोज करने वाले हिंदी कवियों पर पंत की कोमलकान्त पदावली ने जादू का असर किया। जादू का असर सवसे ज़्यादा निराला पर हुआ। उन्हें लगा कि अव तक जितने लोगों ने खड़ी वोली मे कविता लिखी है, उनमें सहज कवि एक भी न था। "हिंदी मे जव से खड़ी वोली की कविता का प्रचार हुआ तव से आज तक उसमे स्वाभाविक कवि का अभाव ही

था। जो पौधा लगाया गया था उसे कुसुमित करने के लिए अब तक के कवियों को सींचने का श्रेय ज़रूर दिया जा सकता है, परंतु वे उस पौधे के माली ही हैं, कुसुम नहीं। किसी पौधे में फूल एकाएक नहीं लग जाते, वे समय होने पर ही आते हैं। खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया, जिसके प्रचारकों और कवियों को कितनी ही गालियाँ खानी पड़ी थीं, उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है और हिंदी का वह गौरव-कुसुम श्री सुमित्रानंदन पंत है।" (मतवाला, ३ मई, १६२४)

'पंत जी और पल्लव' वाले लेख में निराला ने 'अंग्रेज़ी शब्दों को तत्सम रूपों की ओर' पंत के झुकाव पर, हिंदी शब्दों से उन्हें श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति पर विचार किया, ब्रजभाषा काव्य के भाषागत और भावगत सौन्दर्य का विवेचन किया, पंत के भाषा-सम्बन्धी प्रयोगों को अर्थ-विचार की दृष्टि से सदोष पाया किन्तु उनकी भाषा के माधुर्य की प्रशंसा की। "यदि पंत जी की मौलिकता एक शब्द मे कही जाय, तो वह मधुरता है।" (प्रबन्ध-पद्म, पृ. १३५) "माधुर्य में पंत जी की 'अनंग', 'स्वप्न', 'वीचि-विलास', 'छाया' और 'मौन निमंत्रण' आदि कविताएँ हैं, जो अच्छी है। कही-कही इनमें भी चमत्कार हद दर्जे तक पहुँच गया है।" (पृ. १४३) "इन पंक्तियों में सौन्दर्य के सहस्र दल को अपनी प्रतिभा के सूर्य से पंत जी ने पूर्ण प्रस्फुट कर दिया है" (पृ. १४५)। "इन पंक्तियों में कितनी स्वाभाविकता है! जान पड़ता है, ये हृदय के शब्द हैं। इसीलिए इतने सहज और इतनी तीक्ष्ण चोट करने वाले है" (उप., पृ. १४६)।

निराला को यह सारा सहज माधुर्य प्रिय था किंतु वह कोमलता ही नहीं, भाषा में गाम्भीर्य चाहते थे, कोमलता के साथ ओजस्विता भी चाहिए। यह बात 'पंत जी और पल्लव' लेख में उन्होंने स्पष्ट कर दी। 'परिवर्तन' को छोड़कर 'पल्लव' की अन्य रचनाएँ "जितनी मधुर हैं, उतनी ओजस्विनी नहीं।···हिंदी की मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी ज़रूरत है।" (उप., पृ. १३८)

'मेरे गीत और कला' में निराला ने कालिदास और जयदेव के वर्ण-संगीत में भेद किया, पंत के और अपने वर्ण-संगीत में वैसा ही भेद दिखाया। यह भेद वास्तव में श-ण-व-ल और स-न-व-र का नहीं, माधुर्य और कोमलता के दो प्रकारों का भेद है। एक प्रकार वह जिसमे ओज है, दूसरा वह जिसमें ओज नहीं है या कम है। श-ण-व-ल के साथ र आदि वर्णों का सहारा लेते हुए पंत जी ने 'खड़ी बोली का सुन्दर रूप से ठाठ बाँधा है। उनके उच्चारण में संगीत बड़ा मधुर झंकृत होता है। पर यह कला कालिदास की है।' (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २७३)

खड़ी बोली का ठाठ सुन्दर है, संगीत बड़ा झंकृत होता है। फिर कमी क्या है? कमी है ओज की। निराला उदात्त की खोज मे हैं। सौन्दर्य और माधुर्य का स्तर भी उदात्त होना चाहिए। 'जयदेव आज इतने ऊँचे उठ गए हैं' (उप., पृ. २७५), शब्दशः उठ गए हैं, उदात्त के कारण। निराला का अन्तर्मन उदात्त से बँधा है; विवेक-दृष्टि के सामने अस्फुट भाव खुला नहीं है; ऊँचे उठने के मुहावरे से

सांकेतिक रूप मे व्यक्त हुआ है। अपनी कविताओं से दो उद्धरण देने के बाद कालिदास के बारे मे कहते हैं कि कालिदास रूप-चित्रण में श्रेष्ठ हैं, "पर जहाँ भाव-जन्य सौन्दर्य है, जो और मधुर-हृदय के और पास तक पहुँचा हुआ है, वहाँ कालिदास उठ नही पाते।" (उप., पृ, २७७) जयदेव आज इतने ऊँचे उठ गए हैं, कालिदास वहाँ उठ नही पाते--इन दोनों वाक्यो में उठ जाने और उठ न पाने की क्रियाएँ ध्यान देने योग्य है। निराला का अन्तर्मन उदात्त की कसौटी पर जयदेव और कालिदास को परख रहा है। निराला ने माधुर्य के दो प्रकारों में भेद का एक कारण ढूंढ़ा श-ण-व-ल वर्णों की प्रधानता, दूसरा कारण ढूंढ़ा भावजन्य सौन्दर्य का अभाव। दोनो कारण भ्रामक हैं—कालिदास में भावजन्य सौन्दर्य के अभाव वाली बात और भी—किंतु माधुर्य के दो प्रकारों का भेद सही है। 'चौर पंचाशिका' से **यद्यपि तां कनक चंपक दाम गौरीम्** आदि उद्धृत करते हुए निराला ने लिखा, "क्या स्वस्थ रूप है संस्कृत का!" (उप., पृ २७८) यहाँ स्वास्थ्य का सम्बन्ध ओज से है। पंत-काव्य मे अर्थ-विचार और भाव-संगठन की दृष्टि से अनेक दोष दिखाने के बाद निराला ने लिखा, "सादगी के भीतर ही पंत जी की शब्द-लालित्य वाली कला खुलती है। जहाँ वज्र की गरज के साथ काव्य में बिजली कौंधती है, वहाँ पंत जी नही, कला से व्यापक वृहत् रूप में भी नही।" (उप,. पृ. २८२)

पंत की भाषा की खूबसूरती दिखाने के लिए निराला उनकी छह पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं जिनमें न एक 'श' है, न एक 'ण'। उसके बाद अपनी चार पंक्तियाँ उद्धृत करते है जिनमें 'श' दो बार, 'ण' एक बार आया है। तब पंत की पंक्तियाँ शक्तिशाली क्यों नही है? ब्रजभाषा को स-म-व या स-न-व पसंद हैं और ये वर्ण हिंदी की प्रकृति के अनुकूल हैं; तब वहाँ बिजली क्यों नही कौंधती, वज्र की गरज क्यों नही सुनाई देती?

निराला ने अनजाने लौञ्जाइनस के उदात्त सम्बन्धी उपमान को गद्य में उतार लिया है। रीति-सिद्ध कविता के विपरीत "a well-timed stroke of sublimity scatters everything before it like a thunderbolt and in a flash reveals the full power of the speaker." यहाँ थंडरबोल्ट वज्र है, फ्लैश बिजली की कौंध है। (नगेन्द्र-नेमिचन्द्र जैन के अनुवाद में वज्र छूट गया है, केवल बिजली की कौंध है: 'उदात्त तत्त्व उपयुक्त क्षण में बिजली की भाँति कौंध समस्त विषयवस्तु को छिन्न-भिन्न करता हुआ वक्ता की शक्ति के सम्पूर्ण वैभव को एक ही बार में उजागर कर देता है।" काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ. ४४; यह विषयवस्तु को छिन्न-भिन्न करने की बात भी एक ही रही!)

कविता में शब्द-लालित्य ठीक है किंतु वह पदावली भी चाहिए जिसमें वज्र की गरज के साथ बिजली भी कौंधती हो। ऐसी पदावली निराला ने 'राम की शक्ति-पूजा' मे रची। पदावली ओजपूर्ण हो, साथ ही उसमे कला का व्यापक वृहत् रूप भी चाहिए। तभी उदात्त सार्थक होता है। 'मेरे गीत और कला' में जो बात उलझ गई है, वह 'पंत जी और पल्लव' में स्पष्ट है: "हिंदी की मधुरता के साथ इस समय

विशेप ओज की भी जरूरत है।"

'पंत जी और पल्लव' मे व्रजभापा की सरसता को खड़ी बोली के माधुर्य से श्रेष्ठ ठहराते हुए निराला ने लिखा था, "व्रजभाषा एक समय जीवित भाषा रह चुकी है और यों तो अव भी वह जीवित ही है, परतु खड़ी वोली इस समय भी हिंदी-भापा का मातृ-गौरव नहीं प्राप्त कर सकी···आज किसी प्रान्तीय भाषा के साथ अपने हृदय की पूर्णता और उज्ज्वल उत्कर्ष पर विश्वास रखकर वार्तालाप करने की शक्ति, हिंदी के प्रचलित दो रूपों में यदि किसी में है, तो व्रजभाषा में।" (**प्रवन्ध पद्म**, पृ. १०३) निराला का यह कथन उनकी उस तर्कयोजना का अच्छा नमूना है जिसमे विरोधी को गिराने के लिए वह कैसा भी दाँव लगाने में नहीं हिचकते। उनके कथन में इतना ही सार है कि उन्होंने व्रजभापा काव्य का अध्ययन काफी दिनों तक और गहराई से किया था। 'खड़ी बोली के कवि और कविता' मे व्रजभापा जीवित नही, मृतप्राय घोपित की गई है। महावीरप्रसाद द्विवेदी की ऐतिहासिक भूमिका यह थी कि "व्रजभाषा के पक्षपातियों से इन्होंने लोहा लिया।" यहाँ दो निवन्धों मे निराला ने व्रजभाषा सम्वन्धी दो परस्पर-विरोधी तर्क दिए हैं। यह एक तरह की असंगति हुई। 'मेरे गीत और कला' मे दो विरोधी तर्क एक ही लेख मे हैं। एक तर्क है—व्रजभाषा कमजोर है; दूसरा तर्क है—व्रजभापा में प्राणो की शक्ति है। यह दूसरी तरह की असंगति हुई। व्रजभाषा के उच्चारण और भावरूप पर उर्दू सवार है "उसी तरह जैसे हारे हुए पर जीता हुआ रहता है" (**प्रवन्ध-प्रतिमा**, पृ. २६९)। फिर श-ण-व-ल को जातीय जीवन के विरुद्ध बताकर कहते हैं, "देखना यह है कि जो जीवन व्रजभाषा से आ रहा है वह श-ण-व-ल के अनुकूल आता है या स-म-व-ल के।" (उप., पृ. २७४) एक जगह व्रजभापा जानदार है, दूसरी जगह वेजान। तर्क यों उलझ गया है। निराला ने संतों को दरबारी कवियों से अलग किया है (उप,. पृ. २७१) किंतु यह नही वताया है कि श-ण-व-ल को लेकर इनकी भाषा मे क्या भेद है। वास्तव मे संतों की व्रजभाषा मे मिठास दूसरे ढंग की है, दरवारी कवियों की भाषा की मिठास दूसरे ढंग की।

निराला ने हिंदी कवियों की भापा का जो विवेचन किया उससे रचनाकार की अन्तर्वृत्ति का पता चलता है। वह भाषा में माधुर्य चाहते है किंतु ओजस्विता के साथ। उनकी काव्य-साधना का भी यही लक्ष्य है। उनके विवेचन से पता चलता है कि कविता मे जिस भाषा को उन्होने अपना माध्यम वनाया था, उसका अध्ययन कितने परिश्रम से, कितनी वारीकी से उन्होने किया था। किन हिंदी कवियो से उन्होंने भाषा लिखना सीखा—वह सारा इतिहास उनके आलोचनात्मक निवंधों में है। जहाँ उनके तर्क उलझ गए है या विचार स्पष्ट नही हुआ, वहाँ भी उनकी अन्तर्वृत्तियाँ पहचानी जा सकती हैं। ये एक समर्थ कलाकार की अन्तर्वृत्तियाँ है।

उल्लेखनीय है कि निराला जब हिंदी कवियों की चर्चा करते है तब सबसे पहले और सवसे अधिक उनकी भाषा पर ध्यान देते है। जब बँगला और अंग्रेज़ी कवियों की चर्चा करते है तव उनकी निगाह सबसे पहले और सबसे अधिक भाव-

सौन्दर्य अथवा रूप-चित्रण पर होती है। रवीन्द्रनाथ पर पूरी एक पुस्तक लिखी है, अनेक निवन्धों और टिप्पणियो मे उनकी चर्चा है। उनकी भापा पर मुश्किल से कहीं एकाध वाक्य लिखा है। कारण यह है कि हिंदी कवि निराला ने भापा लिखना हिंदी कवियों से ही सीखा था।

गद्य-शैली

पद्य की तरह गद्य में निराला ने अनेक शैलियों का प्रयोग किया है, पद्य में जैसे उन्होने अनेक काव्य रूप रचे हैं, वैसे ही गद्य में। जैसे पद्य में बहुत जगह उनका शब्द-चयन तत्सम बहुल है, वैसे ही गद्य में; जैसे पद्य में सरल शब्दावली के रहते भी दुरूहता उत्पन्न होती है, वैसे ही गद्य में।

निराला की एक शैली छायावादी अलंकारों के नूपुर बजाती हुई उनके कल्पना-लोक की अप्सरा के समान गद्य मे अवतरित होती है। कैसी थी लाहौर नगरी जहाँ कांग्रेस का चवालीसवाँ अधिवेशन हुआ? अगणित श्वेत तम्बुओं की शृंखलित पंक्तियों से दिन में शुभ्रवसना देवी की भाँति, असंख्य प्रदीपों की उज्ज्वल कान्ति से रात्रि में परी की तरह जगमगाती हुई, सोने के सहस्रों अलंकारों से शोभित, ग्रीवा झुकाए हुए, रूप की राजहंसी, हरे पत्रों की रेशमी साड़ी पहने हुए उर्वशी अंधकार-केशों को खोले हुए ज्योतिर्मयी स्वतंत्रता, मस्तक पर बालों से गुँथा चमकता हुआ हीरा, आकाश पर दृप्त उड़ती हुई जातीय पताका। (सुधा, फरवरी, १९३०; संपा. टि.—३)

कैसी थी कुमारी प्रभावती जो दुर्ग से उतरकर गंगा की धारा पर कुमार से मिलने आई? सर्वैश्वर्यमयी स्वर्ग की लक्ष्मी, मौन हिमाद्रि किरण-विच्छुरितच्छवि गौरी, मौन ज्योत्स्ना रागिनी की साकार प्रतिमा, सोपान-सोपान पर सुरंजिता, शिंजित चरण उतरती हुई, प्रतिपदक्षेप-झंकार कम्प-कमल पर इत्यादि।

लाहौर नगरी और कुमारी प्रभावती के सौन्दर्य मे विशेप अन्तर नही। निराला ने जहाँ रूढ़ियों का विरोध किया है, सामाजिक क्रान्ति का जोरदार समर्थन किया है, साहित्यिक वाद-विवाद में शत्रुदल पर समर्थ आक्रमण किया है, वहाँ उनकी शैली कल्पनाजन्य अलंकारों के भार से मुक्त है। ऐसे ही जहाँ ग्रामीण दृश्यों का वर्णन करते हैं या चतुरी और बिल्लेसुर जैसे व्यक्तियों का चित्रण करते हैं, वहाँ उनकी शैली सतेज, सहज और प्रवाहपूर्ण है।

निराला के छंद की तरह गद्य की गति भिन्न-भिन्न है। बहुत धीमी गति है

जहाँ प्रभावती दुर्ग से उतरती है या लाहौर नगरी अंधकार-केश खोले हुए जग-मगाती रहती है। ऐसी ही धीमी गति है उनके दार्शनिक गद्य की, भले ही उसमें विशेष अलंकरण न हो, भाषा मे भी शुद्धता का विशेष ध्यान न रखा गया हो जैसे 'शून्य और शक्ति' में : "शून्य या बिन्दु सब शास्त्रों में, सब तरफ, सब समय, स्वयं-सिद्ध है। उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है। केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किए हुए है, दूसरे तरीके से, शून्य की ही व्याख्या करने में सदैव तत्पर।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. १) वाक्य छोटे-छोटे है, 'तरफ' और 'तरीका' शुद्धता भंग कर देते है। गति मद्धिम है, अलंकारों का अभाव है। इसके विपरीत जब निराला बहस के दौरान थोड़ा उत्तेजित होते हैं तब वाक्य चाहे छोटे हों, चाहे बड़े, गद्य की चाल तेज़ हो जाती है। राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक विषयों पर बोलचाल की हिंदी की प्रकृति के अनुकूल, उन्होंने ऐसा सशक्त गद्य बहुत बड़े परिमाण मे लिखा है, यह स्मरण रखना चाहिए।

निराला का गद्य उनके पद्य की सानुप्रास लड़ियों से मुक्त है। जब वह पाठक से सीधे बातें करते हुए अपनी वक्तृत्वकला से उसे प्रभावित करते है, तब सानुप्रास लड़ियों से भाषा को कवित्वपूर्ण बनाना उनके लिए आवश्यक नही होता। किन्तु रूपक वह वैसे ही बाँधते हैं जैसे पद्य में, अकसर वृक्ष, कली और गन्ध वाले रूपक गद्य-पद्य में सामान्य हैं। छायालोक की अप्सराओं, सोलह साल की अधखुली कलियों के सौन्दर्य-वर्णन मे उनके गद्य-पद्य के अलंकार-आभूषण एक-से हैं। पद्य की तरह गद्य मे वह खयाल की गिरह लगाते हैं जिसे खोलने में पाठक को काफी परि-श्रम करना पड़ता है। निबन्ध का शीर्षक है : 'एक बात'। शीर्षक मे बड़ी सादगी है; पाठक सोचता है, निबन्ध की भाषा सरल होगी। किंतु निबन्ध शुरू होता है इस तरह : "हिन्दी की हितैषणा की गाँठ में गठिए का असर उसके सेवकों के तर दिमाग के कारण बढता ही जा रहा है।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ४५) हितैषणा की गाँठ पाठक अभी खोल न पाया था, तर दिमाग से गठिए का असर गाँठ में कैसे पहुँचा, यह गुत्थी सुलझा न पाया था कि निराला ने दूसरे वाक्य में नया रूपक बाँधा, "भारतीयता का ज्योतिर्मय अर्थ विश्व की तमाम विभूतियों को भास्वर करता रहा, पर हिंदी के हित-चिंतकों के प्रस्तर-हृदय के भीतर, स्रोतस्वती ही के हृदय के रोड़े की तरह, आलोकस्निग्धता कुछ भी न पहुँची।" (उप., पृ. ४४)

निराला इस तरह खयाल की गिरह लगाते हैं कभी व्यंग्य के लिए, कभी मनो-विनोद के लिए। 'पल्लव' प्रेस में है। कोमलकान्त पदावली को प्रेस की मशीन में कैसा कष्ट मिल रहा होगा : प्रेस के कृष्णाकृति विशाल-वपु 'कलौ भीम भयंकराः' भूतों के निष्करुण-पीड़न, विश्लेषण-पेषण, घर्षण-घर्षण आदि से किए गए अनर्गल अत्याचारों की कल्पना उन्हे प्रसन्न करती है। फिर 'पल्लव' के प्रवेश भाग में पंतजी को सार्वभौमिकता के गज़ से कविता-कामिनी का शयनजीर्ण प्राचीन कंथा नापते देखकर पुनः प्रतिभा के बछड़े के हुत्ये से कवि-समुदाय को पलायन-पंथ पर श्वासावरुद्ध भागता हुआ देखकर 'बड़ा आनन्द आया'। (उप., पृ. ५४-५५) आगे

खड़ी बोली की कविता को स्वर्णलंका बनाकर राक्षसों और वानरों के दल के दल अवतरित करते हुए पूरा पैराग्राफ लिख डाला है।

जहाँ खयाल की गिरहबाजी नहीं है, उपमा या रूपक में सादगी है, वहाँ निराला का व्यंग्य बहुत प्रभावशाली होता है। 'देवी' के आरम्भ से—"बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा। मुझे यह खयाल था कि मैं साहित्य की रक्षा के लिए चक्रव्यूह तैयार कर रहा हूँ, इससे उसका निवेश भी सुन्दर होगा और उनकी शक्ति का संचालन भी ठीक-ठीक। पर लोगों को अपने फँस जाने का डर होता था, इसलिए इसका फल उल्टा हुआ।"

निराला जैसे निरलंकार पद्य कम लिखते हैं, वैसे ही गद्य। अलंकार कही छायावादी सौन्दर्य की सजावट के लिए हैं, कही हास्य और विनोद के लिए। पौराणिक गाथाओ से वह काफी अलंकरण सामग्री बटोरते हैं जैसे 'पंतजी और पल्लव' के स्वर्णलंका वाले रूपक में। 'सुकुल की बीवी' में वह स्वयं समुद्र-मंथन करते है; गरलपान करते हैं महादेव बाबू। महादेव के श्लेष से मन प्रसन्न होता है। अलका में "जब से मुरलीधर पैत्रिक सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन प्रथा के अनुसार सरकारी अफसरों की सोहावनी सोहनी छोड़ते जा रहे हैं।" (पृ. १९) महादेव बाबू के लिए जैसे गरलपान स्वाभाविक है, वैसे ही मुरलीधर के लिए मुरली बजाना। पौराणिक गाथा भी है, श्लेष भी।

निराला का गद्य एक ओर वाद-विवाद में जूझने वाले कुशल तार्किक और व्यंग्य-लेखक का गद्य है, दूसरी ओर उसमें कवि-सुलभ चित्रमयता, भाव-गाम्भीर्य के भी दर्शन होते हैं। आत्म-समुद्र में जब पाप और पुण्य दोनों मिले हुए है, "तब उस विष की परिव्यक्त सघन नीलिमा भी राम की श्याम शोभा बनती है।" (सुधा, १ अक्तूबर '३३; संपा. टि.—१) चित्रमयता, अर्थ-वक्रता, भाव-सघनता के कारण इस तरह के गद्य का उतना ही ऊँचा स्थान है जितना निराला के श्रेष्ठ पद्य का।

"अब वह पिताजी नही, माताजी नहीं, पत्नी नही, केवल मैं हूँ, और परीक्षा-भूमि, सामने प्रश्नों की अगणित तरंगमाला!" 'सुकुल की बीवी' मे निराला का यह एक वाक्य हास्य-मिश्रित वर्णन के बाद उससे विपरीत भाव जगाता हुआ क्लाइमैक्स के तौर पर आता है; उसमें लिरिक का सौन्दर्य है, करुणा के भाव में अपरिमित गहराई है।

और भी सादे ढंग से निराला यह भावगाम्भीर्य देवी, बिल्लेसुर बकरिहा जैसी रचनाओं में पैदा करते हैं। "और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था, इसलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गई; अब मौत से जैसे दूसरी दुनिया में जाकर मैं उसे लाश की तरह देखता होऊँ।" जीवन और साहित्य के अन्तर्विरोध को निराला ने इस वाक्य के प्रबल विरोधाभास द्वारा व्यक्त किया है। साहित्य को नरक से स्वर्ग बनाने का उल्टा फल कि मेरी दुनिया मुझसे दूर होती गई—एक

विरोधाभास यह। दूसरा विरोधाभास : निराला मौत के वाद दूसरी दुनिया में पहुँच गए लेकिन जो लाश दिखाई दे रही है, वह इस दुनिया की है। इस वाक्य में जितनी तीव्र पीड़ा है, उतनी ही तीव्र जुगुप्सा है। तुम सव मुर्दे हो; मैं तुम से दूर ही रहूँ, तो अच्छा—निराला कहते हैं, जैसे निराला काव्य में अर्थ-वक्रता पैदा करते है, विरोधी भावों को एक ही ताने-वाने मे गूँथ देते हैं, भावों के साथ तीक्ष्ण विवेक का परिचय देते हैं, वैसे ही यहाँ गद्य में।

'भक्त और भगवान्' के प्रारम्भिक वाक्यों में वड़ा रंगीन गद्य है, कोमल भाव जगाने वाला; व्यंग्य है किंतु कटु नहीं, करुणा-मिश्रित। रूपक है लेकिन दूर की कौड़ी लाकर उसे दुरूह नही वनाया गया। यह भी कवि का गद्य है।

"भक्त साधारण पिता का पुत्र था। (पिता साधारण थे, पुत्र असाधारण था—यह ध्वनि।) सारा सांसारिक ताप पिता के पेड़ पर था, उस पर छाँह। (पिता ने साधारण होते हुए भी वड़े लाड़-प्यार से वेटे को जीवन में किसी अभाव से दुखी न होने दिया। अव : ते हिनो दिवसा गताः!) इसी तरह दिन पार हो रहे थे। उसी छाँह के छिद्रों से रश्मियों के रंग, हवा से फूलों की रेणु-मिश्रित गन्ध, जगह-जगह ज्योतिर्मय जल मे नहाई भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखता रहता था। (सविकल्प समाधि में योगी को अथवा कल्पना मे प्रतिभाशाली कवि को जो भव्य दृश्य दिखाई देते है, वे भक्त को भी दिखाई देते थे। इसके वाद व्यंग्य।) स्वभावतः जगत् के करण-कारण भगवान् पर उसकी भावना वँध गई।" इस तरह निराला एक वाक्य से दूसरे तक अर्थ-प्रसार करते हैं और पूरे पैराग्राफ में गहरे अर्थ की ध्वनि गूंजती है।

निराला ने गद्य-लेखन में तरह-तरह के प्रयोग किए हैं। इनमे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है 'वर्तमान धर्म'। इसमें उन्होंने विचारों को जोड़ने वाली कड़ियाँ वहुत जगह तोड़ दी है, आकस्मिक ढंग से एक विचार से दूसरे तक पहुँचते हैं, **जागो फिर एक वार** (२) की तरह। गंभीर दार्शनिक विवेचन के साथ वह रूपकों के वाह्य अर्थ का हास्यास्पद रूप मिला देते हैं। हास्य के इसी स्तर पर वह शब्दों की ध्वनि से खेलते हुए एक शव्द के सहारे दूसरे शव्द—दूसरे विचार—तक पहुँच जाते हैं। हास्य और तीक्ष्ण दार्शनिक तर्कों का ऐसा मेल हिंदी के दूसरे निवन्ध में नहीं। इस मेल में एक आन्तरिक संगति है। वह यह कि निराला जिस दार्शनिक पक्ष का समर्थन कर रहे है, वह रूपकों के वाह्य अर्थ को स्वीकार नही करता। इस ताने-वाने मे वह साहित्यिक वाद-विवाद के सूत्र पिरो देते है। निराला का पक्ष है : ज्ञान के साथ अज्ञान है, दिन के साथ रात है। शिव और पार्वती के विना सृष्टि अधूरी है। शिव-पार्वती, गणेश-कार्तिक, दिति-अदिति, सुर-असुर, गंगा-यमुना और उनके संगम पर तीर्थराज जहाँ सरस्वती दिखाई नही देती, इड़ा-पिंगला—ये सव जोड़े ज्ञान-अज्ञान की तरह एक ही सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। इनके साथ हेमचंद्र जोशी-इलाचंद्र जोशी! शव्दों की ध्वनि से खेलते हुए वह एक भाव से दूसरे तक पहुँचते है : "एक दूसरा रूप कहता है, ऐसा नहीं भैसा जैसे। उसकी दो

साँसें हों, एक निश्वास और दूसरा प्रश्वास, दोनों के वीच में न 'वड़ास' और न 'फड़ास' अर्थात् न कविन्यास और न उपिन्यास; वस गतश्वास—गतश्वांस, मौत।" (प्रवन्ध प्रतिमा, पृ. १०४)

'वर्तमान धर्म' का गद्य छायावादी अलंकृत गद्य के विरोध में लिखा हुआ निराला के मन की तीव्र प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है।

'वर्तमान धर्म' में निराला शव्दो की ध्वनियो से खेलते हैं, इसलिए लगता है, वह उनके गद्य-साहित्य में अपवाद है। वास्तव में ऐसा है नही। गद्य और पद्य में निराला की अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें स्वगत-कथन की शैली में वह खुद से वातें करते हुए दूसरे को अपना 'राज' नही देते। जैसे 'कुकुरमुत्ता' संग्रह की भूमिका में : "इसमें वही शरीक होगे, जिन्हें न्योता नही भेजा गया. (कुकुरमुत्ता संग्रह को पढ़ना कुकुरमुत्ता का कलिया खाने की तरह है; न्योते की ज़रूरत नही;) साथ ही जो कंगाल नहीं, न ऐसे वड़े आदमी कि अपनी जगह गड़े रह गए। (साहित्य के रस ग्रहण में कंगाल न होना चाहिए; दावत अमीर के लिए भी है अगर वह अपनी जगह छोड़कर निराला के पास आए।) मतलव साफ है। हम दोनों मतलव के। न हम पैरों पड़ें, न वह। मिहनत की कमाई हम भी खायें और वह भी। (पुस्तक कुँवर सुरेशसिंह को समर्पित है। वह ऐसे वड़े आदमी नही है कि अपनी जगह गड़े रहें; वरावरी का सम्वन्ध है। मेहनत की कमाई दोनो खाते है, दोनों मतलव के हैं, अपना-अपना स्वार्थ लिए हुए मित्र हैं।)"

निराला का गद्य एक तरफ वहुत सीधे और जोरदार ढंग से वात कहता है, दूसरी तरफ उसमें कहीं-कहीं जरूरत से ज्यादा अर्थवक्रता है। यह अर्थवक्रता उनकी संस्कृत-निष्ठ-भापा में है, 'गुलावी उर्दू' मे भी। चतुरी चमार और विल्लेसुर वकरिहा का गद्य उनकी वोलचाल की अवधी से मिलता-जुलता है। खड़ी वोली लिखते हुए भी निराला उसे अवधी के स्तर पर ले आते हैं। **सपना फलियायगा, निगाह ताड़ते हुए, चोर की कठैली भी आँगन में रह जाय, कंडे की आग परचाकर, ताँवे की दंत-खोदनी उठाकर दाँत खरिका किए, भद्रा के जैसे मारे इधर-उधर घूमते हो, विल्लेसुर को वड़ी कायली हुई, अव तो मुझे माफी दीजिए, व्याह जरूर गैतल है, तुम्हारी (लड़की) में मखमल का झव्वा लगा है, चोर व्रड़े लागन हैं, यह कारन करके रोना कैसा सास ने अघाकर साँस ली, हमारी विटिया की तरह गोरी नहीं, भलेमानुस है; मुझे तींगुर नहीं लगता, लोग सिहाने लगे, रुपये के नाम से, विल्लेसुर कुनमुनाये; एक पख लगाकर व्याह पक्का करने लगे; वंगालिन की तरह चटककर वोली; (कोई) अपनी चितकौड़ी कौड़ी को पट होते देखता है; हंडी में मुस्का वाँधकर; जूते तेलवाये रखे थे, कोलिया के भीतर अधगिरा मकान था; वाजदार, डोम और परजा विल्लेसुर को घेरते रहे; कंठा, मोहनमाला, वजुल्ला, पहुँची, मँगनी माँग लाये**—इस तरह के प्रयोग विल्लेसुर वकरिहा के गद्य में रचे हुए हैं। उनसे न केवल निराला गाँव का वातावरण तैयार करते हैं, वरन् हिंदी भापा की शक्ति के अटूट स्रोत—जनपदीय वोलियों—की ओर भी

संकेत करते हैं। इस स्रोत से बहुत बड़ी शक्ति भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने ली थी, प्रेमचंद के गद्य की शक्ति का वह भी एक स्रोत है। आधुनिक हिंदी गद्य उस स्रोत से कटा हुआ है, धरती की शक्ति को नहीं पहचानता।

निराला जब शहरी नफासत का भाव पैदा करना चाहते हैं, तब उर्दू शब्दों का प्रयोग अधिक करते हैं। निरुपमा इस वाक्य से शुरू करते हैं: "लखनऊ में शिद्दत की गरमी पड़ रही है।" किन्तु इस शिद्दत के बाद तरु-लता-गुल्म, पृथ्वी, ज्वाला आदि शब्द आकर नफासत का साँचा तोड़ देते हैं। चमेली के अन्त में उन्होंने नोट लिखा, "चमेली नामक अप्रकाशित उपन्यास से, जिसकी एक विशेषता ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा है।" जैसी भाषा को उस समय लोग हिंदुस्तानी कहते थे, वैसी भाषा यह नहीं है। निराला कठिन तत्सम शब्दावली का प्रयोग छोड़ते हुए गद्य को बोलचाल की अवधी के नजदीक लाने का प्रयास करते हैं। "उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मँड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार, चमारिन की मदद से, माटी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है।" चमेली के इस गद्य पर अवधी की वैसी ही छाप है जैसी बिल्लेसुर बकरिहा के गद्य पर।

निराला ने जैसे 'उर्दू में' बहुत-सी गजलें लिखी हैं, वैसे कोई पूरी कहानी या लेख 'उर्दू' में नहीं लिखा। वह शुद्धता के पक्षपाती न थे, उर्दू शब्द वह शैली-भेद के लिए या गद्य में किसी विशेष प्रयोजन से इस्तेमाल करते हैं, उनकी भाषा का ठाठ वैसा ही रहता है जैसा अन्यत्र उनकी हिन्दी का। "चतुरी चमार डाकखाना चमियानी, मौजा गढाकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी बाशिंदा है।" रेखाचित्र शुरू यों करते हैं मानो थाने में रिपोर्ट लिखा रहे हों या कचहरी में बयान दे रहे हों। चतुरी का जीवन, उसकी भाषा कचहरी के जीवन और भाषा से बिलकुल भिन्न है, उससे टकराता भी है; प्रारंभिक वाक्य की शैली में व्यंग्य अन्तर्निहित है। शेष गद्य में मकान, फासला, पुश्तैनी, रिश्ता, देहात, मजबूत, तारीफ, हफ्ता, चुस्त, वजन, इर्द-गिर्द, वगैरह, नजदीक, साफ, रोज, दरवाजा, शुमार करना आदि बोलचाल के 'उर्दू' शब्दों के साथ निराला पूर्वज, शुद्धाशुद्ध, इच्छा, साधारण, प्रोत्साहन, श्रद्धा साहित्यिक, मर्मज्ञ आदि 'हिन्दी' शब्दों की लड़ी पिरोते हैं। इनके साथ पिछवाड़े, पनाले, बनैने, ठूँठियाँ, रुँधवाए, चोगड़े, ढोर, मड़नी आदि 'भदेस' शब्द गद्य में लोकरस घोलते हैं। यद्यपि इस तरह का गद्य हर तरह के भाव-विचार के प्रकाशन में काम नहीं आ सकता, फिर भी विभिन्न स्रोतों से आए हुए शब्दों का अनुपात यहाँ वैसा है जैसा उस गद्य में होगा जो उर्दू, जनपदीय बोलियों और तत्सम-तद्भव देशज शब्द-भंडार से उचित सामग्री लेकर हिंदी की प्रकृति की रक्षा करता हुआ विकसित होगा।

लिखित भाषा में शक्ति आती है जब वह बोलचाल की भाषा के अनुसार प्रवाह-पूर्ण हो। निराला को हिंदी के पद्य की तरह लिखित गद्य से भी सन्तोष न था। गद्य

अस्वाभाविक और शक्तिहीन लगता था; "क्या मजाल; किसी विद्वान् का लिखा एक वाक्य सीधे जवान से निकल जाय।" (सुधा, १ अक्तूबर '३३; संपा. टि.—२) उन्होंने उस गद्य को श्रेष्ठ माना जिसमे जल्द-से-जल्द अधिक-से-अधिक भाव लिखे और वोले जा सकें। (उप.) निराला के गद्य की गति द्रुत नही है; अर्थवक्रता, गूढ़ व्यंग्य, अलंकार सौन्दर्य के कारण वाक्य धीरे-धीरे आगे वढ़ता है, उन्हें जल्दी-जल्दी पढ़ना उनके साथ अन्याय करना है। लेकिन निराला का यह प्रयत्न प्रायः सर्वत्र रहता है कि लिखें थोड़ा और लोग समझें वहुत। कविता में जहाँ-तहाँ तुकवदी के लिए या भाषा को सरस वनाने के लिए जैसे वह वहुत-से फालतू शब्दों का व्यवहार पद्य में करते हैं, वैसे गद्य में नही। भाषा को वोलचाल की तरह सहज रूप देने के लिए वह वाक्य-रचना का ढंग वदल देते हैं, वाक्यांश या शब्दखंड रचे हुए गद्य की तरह नही, वोले हुए गद्य की तरह, जगह वदलते है।

माइकेल मधुसूदन दत्त 'पश्चिमी कई भाषाओं के जानकार थे।' (सुधा, दिसम्बर '३२; संपा. टि.—१) 'कई' को पश्चिमी के पहले न रखकर उसके वाद भाषाओं के साथ जोड़कर उन्होंने खूवसूरती पैदा की है।

"यद्यपि वहुत-से लोग काव्य की भाषा में ज़ोर को मिठास से वढ़ने देना नहीं चाहते क्योंकि उस तरह काव्य का सवसे वड़ा अंग कमज़ोर पड़ जाता है कहते है, फिर भी उदार आलोचकों के दल से···" (रँगीला में **साकेत समीक्षा**)। यहाँ कहते हैं वाक्यांश के आरम्भ की जगह उसके अन्त में आया है।

"तो यह जो वेले को चमेली और चमेली को गन्धराज कहना कसरत पर है, और साड़ी के रंग पर जो सर के वल हो रहे हैं लोग···" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. २६६) कर्त्ता—'लोग'—वाक्यांश के अन्त में।

वहुत जगह निराला क्रियापद हटा देते है, वैसे ही जैसे पद्य में, जव वह विंवों पर दृष्टि केन्द्रित करते है।

कुल्लीभाट : छाता वगल में। हाथ में जूते। सामने मील भर ऊसर। चार वजे की चटकती धूप। (पृ. १६)

विल्लेसुर बकरिहा : विल्लेसुर उस गरमी में वनावटी नरमी लाते हुए, खीस निपोड़कर जवाव देते हुए, ज़रा सुस्ताकर गायों के पीछे तरह-तरह के काम में दौड़ते हुए। (पृ. १६)

चोटी की पकड़ : भयंकर अट्टालिका। पीछे की तरफ कुछ गिरी हुई। फिर भी विशाल उद्यान की ऊँची प्राचीर से सुरक्षित। भीतर भी रक्षा का अन्तराल उठा हुआ। निकासों पर पहरे। (पृ. १)

काले कारनामे : अनेक प्रकार की चिड़ियाँ, तालाव के किनारे के ऊँचे पीपल और इमली के पेड़ पर वसेरा लेती हुईं। ताल पर सिंघाड़े की वेल फैलती हुई। लड़के अखाड़े कूदते हुए। औरतें काम-काज से घर और वाहर आती-जाती हुईं। गाँव में चहल-पहल। हिंडोले पड़े हुए। लड़कियाँ झूलती हुईं। ···गलियारे में पानी भरा हुआ। मेड़ के ऊपर से लोगों की निकली (निकाली) हुई पगडडी, वह

भी पानी वरस जाने से विछलहर। कुएँ पर पनहारिनों का जमघट। (पृ. ५-६)

शैली की एक विशेपता के तौर पर निराला यहाँ क्रियापद हटाते चलते हैं। उद्देश्य है, वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना, विम्वों की भीड़ में पाठक को फाँसकर रखना, क्रिया के सहारे निकलने का मौका न देना। शैली की इस विशेपता का प्रयोग वह हर जगह नही करते, इसलिए वह दोष नही वनती।

कथा-साहित्य की तरह जहाँ-तहाँ विवेचनात्मक गद्य मे भी शैली की यह विशेपता दिखाई देती है।

"जैसे वीजमंत्र, उसका अर्थ, पश्चात् अनिंद्य सुंदर रूप उसी के फूल की तरह उसके अर्थ के डंठल पर खिला हुआ।" (**प्रवन्ध पद्म**, पृ. १६६)

"मैं तारीफ वाली वाहरी वातों मे पहले से पीछे रहा; किताबों का गेटअप साधारण, तस्वीर नदारद, छपाई मामूली।" (**प्रवन्ध प्रतिमा**, पृ. २६६)

इन दोनो उदाहरणों मे निराला का ध्यान जहाँ विंवो पर है, वहाँ वे क्रियापद छोड़ते हैं।

उनके गद्य के काव्य साधारणतः छोटे-छोटे होते है—कथा-साहित्य में और आलोचनात्मक निवंधों मे भी। **कुल्लीभाट** जैसी रचनाओं में कही-कही वाक्य वहुत ही छोटे है, सादगी का असर पैदा करने के लिए। अलंकृत वाक्य के गद्य अधिकतर लंवे होते है, निराला विभिन्न वाक्यांशों की ध्वनि में संतुलन पैदा करके पूरे वाक्य—या अनेक वाक्यो से पूरे पैराग्राफ की संगीत रचना करते हैं। **प्रभावती** के आरंभ में चौथा पैराग्राफ—**वाल्मीकि की सीता, कालिदास की शकुन्तला, श्रीहर्ष की दमयन्ती** इत्यादि—इस संगीत रचना का अच्छा उदाहरण है। कहीं-कही उनके वाक्य वहुत लम्वे हो जाते हैं—वह रूपक वाँधने के फेर में जान-वूझकर उन्हें खींचते चले जाते है—वहाँ साधारण पाठक भूल-भुलैया में खो जाता है, समझ नही पाता प्रवेश कहाँ है, निकास किधर है। 'पंतजी और पल्लव' में प्रेस की गैलियों वाला वाक्य, 'मेरे गीत और कला' के आरंभ मे शमा और साड़ी वाला वाक्य उनके विस्तार-कौशल के नमूने है।

निराला का काफी गद्य ऐसा है जो रचा हुआ नही है, जिसमें शैलीगत विशेपता के द्वारा वह किसी युगान्तर की वात नही सोचते। इसमें हिंदीभापी जनता की आवाज़ ही नहीं सुनाई देती, निराला आए दिन अपने जीवन मे जैसी हिंदी वोलते थे, उसे आप सुन सकते हैं।

"अरे अवस्थी जी, आप और फिलासफी! आप को किसी वहाने मेरी तरफ भूँकना था, सो भूँक चुके। इस तरह आप दूसरो को प्रसन्न कर सकते हो, तो कीजिए, पर मै कहूँगा, कुछ काटना तो सीखिए।" (सुधा, फरवरी '३०; 'मनसुखा को उत्तर')

"हम पूछते हैं, चतुर्वेदी जी ने श्रीयुत श्रीनाथसिंह जी के अपूर्ण लेख का तो छूटते ही जवाव लिख दिया और जनता के मस्तिष्क से भ्रम का भी निराकरण कर दिया, पर निराला जी के संवन्ध में उन्हे अभी तक कुछ लिखने की फुर्सत क्यो

नही हुई, जबकि उत्तर पूरा पा चुके ?—उन्होंने इसके उत्तर पर किसी पुरस्कार की भी तो घोषणा की थी।" (सुधा, १ सितंबर '२३; संपा. टि.—१)

"इसमें भी कालिदास के वर्ण खोजिए। खड़ी बोली का जीवन भी मिलाइए। मुहावरा, अनुप्रास और चित्र देखिए, पर यह भी कला नही, पर देखिए। मुझे आवेश नही। यह मेरा सीधा ढंग है।" (प्रबंध प्रतिमा, पृ. २७६)

निराला जब आवेश में होते हैं—और समझते है कि आवेश में नही हैं—तभी सीधे ढंग पर आते हैं। उनके इस सीधे अनलंकृत गद्य में बड़ी शक्ति है। यहाँ गद्य की गति भी तीव्र है। 'सुधा' की बहुत-सी टिप्पणियो मे उनका गद्य ऐसा ही है। इसमें वह ललकार है, चुनौती है, दूसरे को उभारने की शक्ति है जो उनकी बात-चीत की विशेषता थी।

"सत्य वही है जो मनुष्यमात्र में है। ज्ञान मे हिंदू, मुसलमान नही। विस्तार ही जीवन है। फैलकर अपनी प्रतिभा, कर्म, अध्ययन, उदारता से समस्त ब्रह्माण्ड को अपनाना चाहिए। साहित्यिक उत्कर्ष और मुक्ति का यही मार्ग है। हिंदी मे बहुत करना है, बहुत पड़ा है, बहुत पीछे है हम।" (सुधा, दिसंबर '२३; सपा. टि.—१)

"हिंदी भाषी मुझे अच्छी तरह जानते है। वे यह भी जानते होंगे, मेरे कानों में डंके की आवाज़ कम जाती है। जिस साधना से आदमी-आदमी है, जिसके कारण नेता सम्मान पाते हैं, मै उसी की जाँच करता हूँ। वहाँ प्रेमचंद जी, दरिद्र प्रेमचंद जी, अपने अध्यवसाय से शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रेमचंद जी, साहित्य की साधना में यहाँ-वहाँ भटकते फिरनेवाले प्रेमचंद जी, फिर भी एकनिष्ठ होकर दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने, वर्ष-पर-वर्ष साधना करते रहने वाले प्रेमचद जी, बड़े-बड़े, बहुत बड़े है। इतना बड़ा कोई नेता भी इस तरह संकट मे पड़ा जिसके नाबालिग बच्चे उड़ी निगाह से पिता के पास बैठे हुए शून्य सोचते रहें और महाव्याधि में भी पिता को विश्राम न मिला—उनके अन्न की चिन्ता रही ? इतने बड़े पिता को अन्न की चिन्ता—धन्य रे देश !" ('हिंदी के गर्व और गौरव प्रेमचद जी', भारत, १ अक्तूबर, १९३६)

यह निराला के गद्य का सहज रूप है। उसमें उतने ही अलंकार है, जितने बोलचाल की भाषा मे आते है। स्वर का क्रमशः चढ़ते जाना, फिर अचानक उतार और स्तंभित-सा विराम पर ठहरना, यह निराला के उस गद्य की विशेषता है जिसमें आवेश मे बोलते हुए वह कला की बात भूल जाते थे। यहाँ उनके व्यक्तित्व को उनकी शैली से अलग करना असंभव है। यही कला की सिद्धि भी है। उनके सहज भाव मे बड़ी ऊर्जा है, उनके हृदय का अपार सौन्दर्य भी।

परंपरा

शक्तिपूजा

शंकराचार्य दार्शनिक थे, कवि भी थे। दार्शनिक स्तर पर वह अद्वैतवादी हैं, ब्रह्म की अखंड सत्ता में विश्वास करते है। काव्य-स्तर पर वह शक्ति के उपासक है, शक्ति के रूप-सौन्दर्य के गायक है। तर्क द्वारा यह अवश्य सिद्ध किया जा सकता है कि दार्शनिक स्तर पर शंकर के अद्वैत-ब्रह्म और काव्य के शक्ति-सौन्दर्य में कोई भेद नहीं है किन्तु ऐसा उस पुराने तर्कशास्त्र के आधार पर ही किया जा सकता है जो मनुष्य की चेतना को अखंड मानकर भावबोध और विचार-प्रक्रिया में किसी तरह के द्वंद्व की कल्पना कर ही नहीं सकता। परब्रह्म स्वरूप शंकराचार्य जब 'बोलते' थे तब सच्चिदानंद रूप में नही, देशकालवद्ध मनुष्य रूप में बोलते थे। जैसे उनका ज्ञान भाषातीत नही था, भाषा द्वारा ही प्रकट हुआ, वैसे ही उनका मन भावमुक्त—विशुद्धज्ञानमय—नहीं था, भावप्रेरित होकर ही उसने काव्य रचा था। भावप्रेरित मन के काव्य और विवेकी मन के तर्कसिद्ध ज्ञान में द्वंद्व है।

शंकराचार्य की विचारधारा कबीर जैसे उन कवियों को प्रभावित करती है जो ब्रह्म की अद्वैत सत्ता मानते हुए माया के आकर्षण से बचे रहने का भरसक प्रयास करते हैं। इससे भिन्न शंकराचार्य की भावधारा है जो शक्ति के रूपसौन्दर्य से बँधी हुई है, जिससे प्रेरित होकर कवि अगोचर ज्ञान और आनन्द के गीत नहीं गाते वरन् गोचर सौन्दर्य और आनन्द के गीत गाते हैं। शंकराचार्य की विचार-धारा उनसे आरंभ नहीं होती किन्तु वेदान्त को निश्चित, व्यवस्थित दर्शन का रूप देने का श्रेय उन्ही को है। उनकी भावधारा भी उनसे आरंभ नहीं होती और काव्य में उनका वह महत्त्व नही जो दर्शन में है, फिर भी उस भावधारा के वह महत्त्वपूर्ण कवि हैं और भारतीय काव्य के विकास पर विचार करते समय उन्हे छोड़ा नहीं जा सकता। शंकराचार्य जिस भावधारा से संवद्ध हैं, उसके समर्थ कवि कालिदास हैं; आधुनिक काल में जयशंकर प्रसाद और निराला उसी भावधारा से जुड़े हुए हैं। रवीन्द्रनाथ नारी सौन्दर्य के अन्यतम कवि है, कालिदास के प्रेमी, उन पर कविताएँ लिखने वाले, उनसे प्रभावित कवि है। किन्तु शाक्त भाववाली सौन्दर्यो-पासना रवीन्द्रनाथ में नही है, कालिदास में है। कालिदास के पार्वती और परमेश्वर वाणी और अर्थ के समान जुड़े हुए हैं, उन शक्तिरूपा पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन उन्होंने **कुमारसंभव** में किया। रवीन्द्रनाथ के ब्राह्मसमाजी ब्रह्म पार्वती के संपर्क से मुक्त हैं। नारी के रूप-चित्रण के लिए उसे शाक्त दृष्टि से देखना आवश्यक

नही है।

कालिदास की तुलना में शंकराचार्य का शाक्त रसबोध और भी गाढ़ा है और इन दोनों के बीच मे स्थिति है निराला की। गीतिका में इस शाक्त रसबोध के प्रमाण जगह-जगह मिलते हैं और कालिदास से अधिक मिलते हैं अर्थात् शाक्त विचारधारा का प्रभाव कालिदास की अपेक्षा निराला पर अधिक है। साथ ही शंकराचार्य में यह रसबोध भीतर-भीतर घुमड़कर रह जाता है, फूटकर बहता नही है। निराला-काव्य में रस का ऐसा अवरोध नही; वह प्रवाहित है, कालिदास-काव्य की तरह, कुछ अधिक सयत, कुछ अधिक उदात्त।

तुलसीदास मे नारीरूप की अस्वीकृति नही है जैसी कबीर आदि में है; साथ ही शक्ति को जगदम्बा मानने के कारण, जगदम्बा को शाक्त नही, वैष्णव दृष्टि से देखने के कारण, नारीरूप के प्रति वैसी आसक्ति नही है जैसी कालिदास मे। तुलसीदास ने सीता की तुलना मे राम के ही रूप का वर्णन अधिक किया है। सूरदास मे राधा-कृष्ण का शृंगार शिव-पार्वती के शृगार वाली परंपरा के अनुकूल है। शाक्त विचारधारा वैष्णव मत और ब्रह्मवाद मे टकराती थी। वह इनसे आच्छन्न होने पर भी क्षीण और निष्प्राण नही हुई। अनेक कवियों में वैष्णव मत और ब्रह्मचिंतन के साथ या उनके स्तर से नीचे अन्तर्धारा-सी प्रवाहित रही। भारतीय संस्कृति के इस द्वंद्व का प्रमाण स्वयं शंकराचार्य की सौन्दर्य लहरी है।

शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चे देवं देवो न खलु कुशलः स्पंदितुमपि।

(सौन्दर्य लहरी का पहला छद; जो लोग सौन्दर्य लहरी के पहले इकतालीस छंदो को आनन्द लहरी के नाम से अलग कर लेते हैं, वे इसे आनंद लहरी का पहला छंद मान लें।) शक्ति से युक्त होने पर ही शिव कुछ करने में समर्थ होते हैं, वरना अकेले उनमें स्पंदन भी नही होता। निराला कहते हैं,

ज्ञान-तन्तु तुम, जग-अजान-मन-
शव-शिव-शक्ति महान। (गीतिका, पृ. ४७)

शक्ति ही ज्ञान है; उसके बिना संसार का अज्ञानी मन शव जैसा है और शिव इसी शव जैसे है। शक्ति के बिना शिव में जीवन का स्पंदन भी नही है।

शिव ने सौन्दर्य और सुरति के देवता कामदेव का नाश कर दिया; शंकराचार्य के अनुसार पार्वती की कृपा से वह अनंग होकर अब भी संसार पर विजय प्राप्त करता है। फूलों का धनुप, मधुकरों की प्रत्यञ्चा, वसंत उसका साथी (सामंत), मलय के रथ पर सवार कामदेव गिरिसुता की कृपा से संसार पर विजय पाता है। (सौन्दर्य., छंद ६) जिस काव्यलोक मे मदन, वसंत, पार्वती विचरण करते हैं, उसमें कालिदास का मन रमता है, शंकराचार्य की पार्वती स्वयं सौन्दर्य की देवी हैं। अराल अलकों से उनका मुंह घिरा हुआ है, कमल की छवि उस श्री से परास्त है, स्मर का नाश करने वाले शिव की आंखें सुगन्ध से मत्त हो उठती हैं। (उप., छंद ४५) कान तक खीचे हुए स्मर के धनुप के समान पार्वती की विशाल आंखें

शिव के चित्त को चंचल करने में सक्षम है। (उप., छंद ५२) वह कानों में जो ताटंक पहने हुए हैं, वह कामदेव का रथ है; उस पर सवार होकर मन्मथ सूर्य-चन्द्र के चक्रवाले धरती के रथ पर बैठे हुए शिव का सामना करता है। (उप., छंद ५९)

शंकराचार्य पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन करते है, उसमें मातृत्व की छवि भी देखते हैं। केश अराल हैं, मंद हँसी में सहज भोलापन है, चित्त मे शिरीष की आभा (कोमलता) है, कुछ तट पत्थर के समान कठोर है। (उप., छंद ६३) इन्हीं स्तनों से सारस्वत के समान दूध की धारा बहती है जिसे पीकर द्रविड़-सुत शंकर ने कमनीय कविता रची। (उप., छंद ७५) जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ मातृत्व भाव भी है। कालिदास में यह मातृत्वभाव दबा हुआ है, शंकराचार्य में उभरा हुआ है। शंकराचार्य मे माता के प्रति शिशु-भाव की प्रधानता है। वह गणेश और स्कंद को पार्वती के स्तनों से दूध पीते देखते है, स्वयं भी वही दूध पीकर कवि बनते हैं। निराला के मन से यह शिशुभाव बहुत दूर है। वह माता के सौन्दर्य को वयस्क दृष्टि से देखते हैं।

निराला-काव्य मे आदिशक्ति के अनेक रूप हैं, वह कन्या है, माता भी। माता रूप मे भी वह एक-सी नहीं है किन्तु जहाँ वह सौन्दर्य की देवी है, वहाँ वह कन्या हो, चाहे माता, निराला उसके रूप का वर्णन वयस्क दृष्टि से करते हैं। 'सरोज-स्मृति' में **आई लावण्य-भार थर-थर** और ज्यों '**भोगावती उठी अपार** आदि पक्तियाँ उसी दृष्टि के अनुरूप हैं। 'स्फटिक शिला' में नहाकर आई हुई युवती में वह सीता की छवि उसी वयस्क शाक्त दृष्टि से देखते है :

> ···नही जैसे कोई चाह
> देखने की मुझे और,
> कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
> मेरा मन कांप उठा, याद आई जानकी।
> कहा, तुम राम की,
> कैसे दिये हैं दर्शन ! (**नये पत्ते**, पृ. ६०)

निराला यहाँ तलवार की धार पर चलते हुए सध गए है; मन काँपता है, फिर सीता के ध्यान से सधता है। उन्हें राम को समर्पित करके छुट्टी पाते है।

कालिदास पार्वती के रूप का वर्णन करते हैं जब वह बालिका से युवती बनती हैं। कलाकार की तूलिका से जैसे चित्र के रंग-रूप उभर आएँ, सूर्य की किरणों से जैसे कमल के दल खुल जायँ, वैसे ही पार्वती का सुन्दर ढला हुआ शरीर नवयौवन से विभक्त हुआ। (**कुमारसम्भव**, प्रथम सर्ग, छद ३२) निराला इस रूप की वंदना बार-बार करते है; जो शक्ति है, वह नवल वय की सुन्दरी भी है :

> प्रथम मधु-संचय, नवल-वयसिके, नव सम्मान।
> रहा तेरा ध्यान,
> जग का गया सब अज्ञान। (**गीतिका**, पृ. ६२)

वह सुन्दरी है, ज्ञान की देवी भी है। आकाश-पृथ्वी के बीच ज्योत्स्ना-वसन पहने हुए वह प्रकृति की छवि है, वह अरणियों की अग्नि है और प्रथम मधु-संचय से परिचित युवती भी है। कालिदास के मन में वेदान्त ज्ञान और नारी सौन्दर्य के समन्वय के लिए वैसा आग्रह नहीं है जैसा निराला में है। निराला की कहानियों में सोलह साल की अधखुली कलिकाएँ बहुत हैं; रीतिवादी कवियों ने वय:संधि का जो वर्णन किया है, उससे निराला के चित्रण में अन्तर शाक्त दृष्टि को लेकर है। शक्ति के दो रूप—परा और अपरा—युवती की आँखों में है। जो सोलह साल की अधखुली कली है, उसकी आँखें नावों सी "चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।" (लिली, पृ. ३७)

यह युवती रति-विमुख नहीं है, केलि करती है किंतु नि:संग भाव से :

केलि-कलिकाओं में निस्संग
खुल गये गीतों के आकार। (गीतिका, पृ. ६४)

यही भाव रत्नावली के वर्णन में है; पति मुग्ध है, रत्नावली केलि करती हुई भी निस्संग है।

लखती ऊषारुण, मौन, राग;
सोते पति से; वह रही जाग;
प्रेम के फाग में आग त्याग की तरुणा;
प्रिय के जड़ युग कूलों को भर
बहती ज्यों स्वर्गंगा भास्वर;
नश्वरता पर आलोक-सुघर दृक्-करुणा।

शृंगार का यह रूप कालिदास में नहीं है। प्रेम के फाग में आग वाला भाव वाम-मार्गी साधना की ओर संकेत करता है। नश्वरता पर करुणा का प्रवाह—यह धारणा शंकराचार्य के अनुरूप अधिक है।

'पंतजी और पल्लव' में निराला ने एक वाक्य लिखा था, "कला ही कवि की प्रेयसी और अभीष्ट देवी है।" (प्रबन्ध पद्म, पृ. १४०) यहाँ प्रेयसी और अभीष्ट देवी का सान्निध्य ध्यान देने योग्य है। किसी भी स्त्री को देवी कहें—देवी शब्द का वैसा प्रयोग यहाँ नहीं हुआ; जो प्रेयसी है, वह अभीष्ट पूज्य देवी भी है। 'मेरे गीत और कला' में निराला जहाँ औसत काव्य-प्रेमियों को साड़ी के रंग पर लट्टू होकर सर के बल खड़े होते देखते है और कहते हैं कि अपनी शमा लेकर निकलूं तो 'साड़ी देखने वालों की साड़ी पहनने वाली से भी चार आँखें हो जाएँ' (प्रबन्ध प्रतिमा, पृ. २६६), वहाँ वह उसी अभीष्ट देवी की बात कह रहे हैं जो प्रेयसी भी है। इसी निबन्ध में कला की तुलना 'पूरे अंगों की सत्रह साल की सुन्दरी की आँखों की पहचान' से करते है (पृ. २७२)। वही भाव है। 'भक्त और भगवान्' में भक्त की पत्नी का नाम सरस्वती है। उसका नाम ही सरस्वती नहीं है, वह पूज्य है क्योंकि पति से वह कहती है, "प्रिय, महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ।" (चतुरी चमार, पृ. ७४) गीतों में निराला जिससे वर माँगते हैं—प्रेम का साधारण

वर नहीं, अज्ञान दूर करने वाला अमर वर—उसके नेत्रों के मद से मत्त भी होना चाहते हैं :

> प्रिये, दृगों के मद से मादक कर दो;
> मेरी अखिल पुरातन-प्रियता हर दो;
> मुझको एक अमर वर दो,
> मैंने जिसकी हठ ठानी।
> कल्पना के कानन की रानी ! (गीतिका, पृ. २४)

निराला की चेतना में कई भँवरें हैं, कई विरोधी दिशाओं मे वहती हुई अन्तर्धाराएँ आकर मिलती हैं। शंकराचार्य—और उनसे भी अधिक कालिदास—का मन इन अन्तर्धाराओं के प्रवाह-संघर्ष से मुक्त है।

शक्ति मृत्युरूपा भी हैं। इस रूप की उपासना कालिदास में नहीं है, शंकराचार्य में नहीं है, विवेकानन्द में है, निराला में है। शंकराचार्य के वाद वर्तमान युग में वेदान्त का सवसे अधिक—भारत के वाहर की—प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने किया। जिन व्याख्यानों से उन्होने पहले अमरीका और ब्रिटेन के विद्वानों को—वाद को भारतीय युवकों को—प्रभावित किया, उनमें ब्रह्म की अद्वैत सत्ता का जय-घोप है. शक्ति की उपासना का प्रचार नहीं है। किन्तु उन्होंने शक्ति की उपासना पर भी लिखा है, विशेप रूप से पद्य में। जो भाववारा गद्य की ज्ञानचर्चा में दवी रहती है, वह पद्य में उभरकर आती है। वेदान्ती विवेकानन्द पर शाक्त भावधारा का उतना ही गहरा प्रभाव है जितना वेदान्ती शंकराचार्य पर। किन्तु शंकराचार्य की पार्वती कालिदास की पार्वती से मिलती-जुलती हैं; विवेकानन्द काली-पूजक हैं और कालिदास की दुनिया से वहुत दूर हैं।

> हये वाक्य मन अगोचर, सुखे दुःखे तिनि अधिष्ठान,
> महाशक्ति काली मृत्युरूप', मातृभावे तौरि आगमन।

'सखार प्रति' कविता का अनुवाद निराला ने किया :

> वे हैं मन-वाणी से अज्ञात—
> वे ही सुख-दुख में रहती हैं—शक्ति मृत्यु-रूपा अवदात,
> मातृभाव से वे ही आतीं। (अनामिका, पृ. १६८)

नाचूक ताहाते श्यामा—इसका अनुवाद भी निराला ने किया। इसमें भी स्वामी विवेकानन्द ने मृत्युरूपा काली का स्मरण किया है :

> रुद्रमुखे सवाइ डराय, केह नाहि चाय मृत्युरूपा एलोकेशी।
> उष्ण धार, रुधिर-उद्गार, भीम तरवार खसाइये देय वाँशी।
> सत्य तुम मृत्युरूपा काली, सुख वनमाली तोमार मायार छाया।
> करालिनि, कर मर्मच्छेद, होक मायामेद, सुखस्वप्न देहे दया।

> रुद्र रूप से सव डरते हैं,
> देख देख भरते हैं आह,

मृत्युरूपिणी मुक्तकुन्तला
मॉं की नही किसी को चाह !
उष्णधार उद्‌गार रुधिर का
करती है जो वारम्वार,
भीम भुजा की, वीन छीनती,
वह जंगी नंगी तलवार ।
मृत्यु स्वरूपे मॉं, है तू ही
सत्य-स्वरूपा, सत्याधार;
काली, सुख-वनमाली तेरी
माया छाया का संसार ! (अना., पृ. ११०)

अंग्रेजी में लिखी हुई 'काली दि मदर' कविता में यही भाव है ।

For Terror is thy name,
Death is in the breath,
And every shaking step
Destroys a world for e'er. (वीरवानी, पृ. ५६)

उसका नाम भय है; मृत्यु उसकी श्वास में है । प्रत्येक पदचाप से सदा के लिए एक लोक नष्ट हो जाता है ।

तर्क से सिद्ध किया जा सकता है कि यह सच्चिदानन्द ब्रह्म की ही वन्दना है किन्तु वेदान्त के ब्रह्म और मृत्युरूपा काली में आप जैसे भी चाहें संतुलन स्थापित करें, भावबोध के अन्तर पर अवश्य विचार करें । कविता में मूर्ति-विधान दूसरे ढंग का है, उसे दीप्त करने वाली भावशक्ति दूसरे ढंग की है ।

निराला ने विवेकानन्द से मृत्युरूपा शक्ति की उपासना सीखी किन्तु कुछ बातों में मौलिक अन्तर के साथ । परिमल की 'आवाहन' कविता में निराला ने काली की मुंडमालाओं, उसके खड्‌ग और खप्पर का वर्णन किया है; 'धारा' में काली का रूपक बांधते हुए निराला ने नर-मुंडमालाओं का उल्लेख किया है । इन रचनाओं में काली का परम्परागत ध्वंसक रूप है और निराला उससे क्रान्ति का सम्बन्ध जोड़ते हैं । स्वामी विवेकानन्द की काली-पूजा में क्रातिकारी संघर्ष की ओर वैसा संकेत नही है ।

गीतिका और अनामिका में जहां मृत्युरूपा शक्ति की वन्दना है, वहाँ मुंड-मालाएँ, खड्‌ग, खप्पर आदि उपकरण गायब हैं । निराला की मृत्युरूपा शक्ति किसी का नाश नही करती, वह मृत्यु हैं तो केवल निराला के लिए । तुम मुझे विष पिलाती हो, तुम मुझे पदरागरंजित मरण दो—केवल मुझे, अन्य को नही—इस भाव से निराला अभीष्ट देवी से अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं । यह आत्मीयता उनकी लिरिक कविता का बहुत बड़ा गुण है । निराला के गीतों में भीम कृपाण वाली काली परिवर्तित हो गई है । रुधिर और मुंडमालाओ का संसर्ग छूटने से वह अधिक सार्वजनीन, कुछ अधिक आधुनिक, तंत्र-मुक्त मन के अधिक अनुकूल

है। निराला मृत्युरूपा शक्ति की आराधना न तो मरने के लिए करते हैं, न मरकर भवसागर से मुक्ति पाने के लिए। उनके लिए आराधना का अर्थ है, इसी जीवन में मृत्युञ्जय होना, संसार-सागर को पार करते हुए विजयी होना। मृत्यु और विष शक्ति हैं, जीवन-संग्राम के लिए आवश्यक है—यह भाव निराला-काव्य की विशेषता है। निराला इस मृत्युरूपा शक्ति को जननी के रूप में याद करते हैं, प्रेयसी के रूप में भी।

आओ मधुर-सरण मानसि, मन।
नूपुर-चरण-रणन जीवन नित
वंकिम चितवन चित-चारु मरण। (गीतिका, पृ. ५३)
दिये थे जो स्नेह-चुंवन,
आजे प्याले गरल के घन;
कह रही हो हँस—'पियो, प्रिय,
पियो, प्रिय, निरुपाय!
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में
आई हुई, न डरो!' (अनामिका, पृ. १३६)

मृत्युरूपा शक्ति यहाँ प्रेयसी रूप में सामने आती हैं। स्वामी विवेकानन्द के काव्य-लोक में यह रूप अदृश्य है।

कृत्तिवास की रामायण में रावण से परास्त होकर राम दुर्गा की पूजा करते हैं। आखिरी कमल दुर्गा चुपचाप उठा ले जाती है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' का 'नक्शा' कृत्तिवास से लिया। किन्तु उनकी शक्ति जितना स्वामी विवेकानन्द की काली से भिन्न है, उतना ही कृत्तिवास की दुर्गा से। निराला की कविता में दुर्गा प्रकाश की नहीं, अंधकार की देवी है; वह रावण का साथ देती है क्योंकि रावण का सम्वन्ध भी अंधकार से है। शिव रावण के साथ है, दुर्गा के साथी हैं क्योंकि उनका निवास भी आकाश में है। जड़ जल वाला समुद्र उनका सहायक है। अग्नि, वायु और पृथ्वी उनसे त्रस्त है। कृत्तिवास में यह प्रतीक व्यंजना कहीं नही है। 'राम की शक्तिपूजा' में दुर्गा नियति हैं, वह दैवी विधान है जो राम की समझ में नही आता। इस शक्ति को परास्त करके—अथवा अपने मे लीन करके—ही राम रावण पर विजय पा सकते है। कृत्तिवास की दुर्गा इस नियतिरूप से मुक्त हैं; राम के मुख मे उनके लीन होने का प्रश्न नहीं है।

निराला-काव्य में शक्ति के एक देवता और हैं—महावीर। इन्हे निराला ने तुलसीदास से प्राप्त किया है। 'राम की शक्तिपूजा' में इन्होने जो शक्ति प्रदर्शन किया है, वह कृत्तिवास के लिए कल्पनातीत है। शिव और दुर्गा दोनों को लेने के देने पड़ जाते हैं। निराला में एक ओर शाक्त भावधारा से प्राप्त किए हुए संस्कार हैं, दूसरी ओर वैष्णव-काव्य के संस्कार हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में ये संस्कार टकराते है। दुर्गा रावण के साथ हैं, महावीर राम के साथ। महावीर दुर्गा से अधिक शक्तिशाली है। जब तक वह आकाश मे जाकर शिव को त्रस्त नहीं करते, तब तक

कथा सार्थक है। उसके बाद राम द्वारा शक्ति की पूजा औपचारिकता का निर्वाह है। पाठक जानता है, दुर्गा कृपा न भी करें तो महावीर जब चाहें, आकाश में उड़कर उन्हें ठीक कर सकते है।

'भक्त और भगवान्' में निराला भक्त के स्वप्न में महावीर को अवतरित करते है। स्वामी सारदानन्द के लिए उन्होने लिखा था, "उन्हें लोग महावीर की विभूति सम्पन्न कहते हैं।" ('अर्थ', सुधा, सितम्बर '३२) और भी—"इन महा-दार्शनिक, महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, संन्यासी, महापंडित, सर्वस्व-त्यागी साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है।" (चतुरी चमार, पृ. ५६) जो महान् है, उसे किसी-न-किसी रूप में महावीर से सम्बद्ध होना चाहिए। यह सब आस्था निराला ने तुलसीदास से पाई किन्तु महावीर को लेकर निराला और तुलसीदास की आस्था में बड़ा अंतर भी है। कुछ संदेह के बीज तो तुलसीदास के मन मे भी थे किन्तु वह आस्था की धरती के नीचे दबे रहे। निराला के बीज धरती फोड़कर विकट रूप में बाहर निकल आते हैं।

'पंतजी और पल्लव' मे जहाँ वानरों के लिए लिखा है कि वे सुकवि किंकर (महावीरप्रसाद द्विवेदी) की "नासिका के छिद्र मे लांगूल करके उन्हें जगा देते थे" (प्रबन्ध पद्म, पृ. ७४) वहाँ वह महावीर का ही स्मरण कर रहे हैं। पैराग्राफ के अंतिम वाक्य में 'तेल बोरि पट बाँधि पुनि' का हवाला इस धारणा को पुष्ट करता है। वानरों की अथवा महावीर की भूमिका यहाँ विशेष उदात्त नही। "रामलीला में यदि मनुष्य बंदर बनकर न नाचें, तो मनुष्यत्व की रक्षा ही होती है।" (सुधा, सितम्बर '३४; संपा. टि.—१) यहाँ भी महावीर की ओर संकेत है। किन्तु 'सुधा' की एक टिप्पणी मे निराला ने हास्यपूर्ण संदर्भ में महावीर का स्पष्ट नामोल्लेख किया है, "सीताजी रामजी के संदेशवाहक हनुमानजी को देखकर बहुत खुश हुई। फिर रामजी के विरह से व्याकुल होकर पूछा—'वत्स। रघुनाथजी क्या कभी मुझे याद भी करते हैं?' सहानुभूति से अपनी छोटी-छोटी पलकें तिलमिलाकर हनुमानजी बोले—'माता, रघुनाथजी को तुम्हारे वियोग से बड़ा दुःख है। अब उन्होंने मांस खाना और मदिरा पीना छोड़ दिया है।' कहकर हनुमानजी गदोरियों से और सीताजी आँचल से रामजी के वियोग-दुःख पर बहते हुए अपने-अपने आँसू पोछने लगे।" (सुधा, १ जून '३४; काकाकोलाहलकर नाम से लिखी 'फुलझड़ियाँ' स्तम्भ में)

निराला के लिए आस्था और विश्वास का कोई ऐसा अधिष्ठान न था, जिसे एक बार उन्होने संदेह की दृष्टि से न देखा हो। उपर्युक्त टिप्पणी में उन्होंने महावीर के साथ सीता और राम को भी हास्यरस का आलंबन बना दिया है। इससे तुलनीय है एक अन्य टिप्पणी: चित्रकूट में रामजी पहुँचे तो वहाँ मच्छरो ने बहुत तंग किया। "कोलभीलो की दी रसद उदर-रसीद करके भगवान् जानकी जी के साथ सोए, तो वन के पुंज-पुंज मच्छड़ आकर गुंजार करने लगे।" जानकी जी ने 'चपत-प्रहार' द्वारा कइयों को वैकुंठ भेज दिया किन्तु 'मुक्ति प्रार्थी मशकों की

भीड़ बढ़ते देखकर' उन्होंने रामजी को हिलाया और कहा, धनुषवाण धारण करो, राक्षस आ गए है। रामजी ने पड़े ही पड़े कहा, मुझे भी राक्षस काट रहे है; आग में तृण डालो और उधर को पीठ कर लो। (सुधा, १६ जून '३४; फुलझड़ियाँ)।

कोई आश्चर्य नहीं कि "विल्लेसुर ने आँखों से आँखें मिलाए हुए महावीरजी के मुँह पर डंडा दिया कि मिट्टी का मुँह गिली की तरह टूटकर बीघे भर के फासले पर जा गिरा।" (बिल्लेसुर बकरिहा, पृ. ४६)

तुलसीदास और निराला की आस्था मे यह अन्तर था।

रविरस्तं गतः—रवि हुआ अस्त

वाल्मीकि ने राक्षसो और वानरों के युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा कि सूर्य अस्त हुआ; तव प्राणहारिणी रात्रि आरम्भ हुई।

युध्यतामेव तेपां तु तदा वानर राक्षसाम्।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राण हारिणी।

(युद्धकाण्ड, सर्ग ४४)

रवि और **अस्त**—ये दोनो शब्द वाल्मीकि में एक साथ आए हैं। निराला ने कई कविताओं में सूर्यास्त का वर्णन किया है। राम की शक्तिपूजा में रवि और अस्त एक साथ वैसे ही आए हैं जैसे वाल्मीकि में। क्या यह साम्य आकस्मिक है?

वाल्मीकि ने युद्ध में राम, लक्ष्मण तथा अन्य वीरो के शरीर से वहुत-सा रक्त वहने की वात लिखी है:

नद्यस्तत्र प्रसुस्रुवः—रक्त की नदियाँ वहने लगी;

शोणितास्रावकर्दमा—रक्तस्राव से कीचड़ हो गया;

सुस्राव रुधिरं वहु—वहुत-सा खून वहा (उप, सर्ग ४४-४५) निराला ने लिखा: **विद्धाङ्ग—वद्ध-कोदण्ड-मुष्टि—खर-रुधिर-स्राव**। क्या वाल्मीकि का **आस्राव-सुस्राव** ही निराला के **रुधिर-स्राव** मे प्रतिध्वनित है?

मेघनाद से युद्ध करते हुए राम और लक्ष्मण दोनों शत्रु के शरजाल में वँध गए—**वद्धौ तु शर-वन्धेन**। (उप., सर्ग ४५) उनके अंग-अंग क्षत-विक्षत हो गए: **ततो विभिन्न सर्वाङ्गौ**। (उप.) निराला को अपने 'विद्धाग' के लिए प्रेरणा क्या वाल्मीकि के इसी वर्णन से मिली?

मेघनाद के वाणों से विद्ध होकर जव रामचन्द्र धरती पर गिरे, तव तीन जगह से झुके हुए रत्नभूपित धनुप की मुष्टि उनके हाथ से छूट गई। **भिन्न मुष्टिपरीणाहं**

त्रिणतं रत्नभूषितम्। (उप.) निराला के राम विद्धांग होने पर भी बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि है। भिन्नमुष्टि का स्मरण करते हुए उससे वैषम्य दिखाने के लिए ही क्या निराला ने बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि लिखा है ?

रावण से युद्ध करते हुए राम बराबर रावण के सिर काटते है, बार-बार नये सिर उग आते है। राम सोचते है कि जिन बाणों से मारीच, खर-दूषण, विराध और कबन्ध को मारा वे रावण के सामने निस्तेज क्यों हो गए।

मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः।
क्रौञ्चारण्ये विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने···
किन्तु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः (उप.)

निराला ने पराजित राम को अपने पुरुषार्थ का स्मरण करते हुए दिखाया :

देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध शिरस्त्रय, दूषण खर।

आगे विभीषण से बाणो के निस्तेज होने की बात कहते हैं :

वे शर हो गए आज रण मे श्रीहत, खण्डित !

वाल्मीकि में खर दूषण विराध-स्मरण के साथ ही बाणो के निस्तेज होने का दुख है; निराला मे ये दोनों क्रियाएँ कुछ फासले से आई हैं।

रावण द्वारा पराजित होने पर राम धनुष पर बाण चढाने में असमर्थ हो गए।

नाशन्कोदभिसन्धातुं सायकान् रणमूर्धनि। (उप., सर्ग १०३)

निराला की कविता में राम की यह दशा रावण की सहायता करती हुई दुर्गा के सामने होती है :

पर खिचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त !

युद्ध मे राम-लक्ष्मण सहित सारी वानर सेना मूर्च्छित हो जाती है। केवल हनुमान मूर्च्छित नही हुए। हाथ मे उल्का लिए हुए वह विभीषण के साथ समर-भूमि में मृत अथवा मूर्च्छित वानरों को देखते हुए घूमते हैं। वानरों की गणना में सबसे पहले सुग्रीव और अंगद का नाम आता है, और नामों के अलावा नल और गवाक्ष का भी उल्लेख है।

सुग्रीवमंगदं नीलं···
गवाक्षं च सुषेणं च···
मैन्दं नलं ज्योतिमुखं··· (उप., सर्ग ७४)

'राम की शक्तिपूजा' में मूर्च्छित वानरों की गणना सुग्रीव और अंगद से होती है; इनके बाद गवाक्ष और नल इसी क्रम से हैं जिस क्रम से वाल्मीकि में।

मूर्च्छित-सुग्रीवागंद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल।

सुषेण की जगह भीषण समान ध्वनि वाला शब्द है।

मूर्च्छित सेना के बीच विभीषण जाम्बवान के पास पहुँचते हैं। जाम्बवान सबसे पहले महावीर का समाचार पूछते है। विभीषण को आश्चर्य होता है कि राम-लक्ष्मण की जगह सबसे पहले महावीर का समाचार क्यों पूछ रहे हैं।

जाम्ववान कैफियत देते है : वह वीर जीवित है तो सारी सेना मरकर भी नही मरी; यदि वह मारे गए तो हम सव जीवित होते हुए भी मृत है। (उप.) सव मूर्च्छित है, वानर मूर्च्छित है, राम और लक्ष्मण मूर्च्छित हैं, केवल हनुमान उल्का लिए हुए विभीषण के साथ उनके वीच घूम रहे है। उनकी यही भूमिका 'राम की शक्तिपूजा' में है :

गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध हनुमत्-केवल-प्रवोध।

मूर्च्छित सुग्रीवाङ्गद के संदर्भ में **हनुमत्-केवल-प्रवोध** विशेप रूप से सार्थक है। महावीर हिमालय से औषधियों का शिखर उखाड़ लाए है; उन औपधियों की गन्ध से ही मूर्च्छित वानर संप्रवुद्ध हुए– मानो रात वीत गई हो और वे नीद से जागे हों :

गन्धेन तासां पवरौपधीनां
सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रवुद्धाः। (उप., सर्ग ७४)

मूर्च्छित-सुग्रीवाङ्गद—हनुमत्केवल प्रवोध ! प्रवोध जितना सार्थक मूर्च्छा के संदर्भ में है, उतना गर्जित प्रलयाब्धि के संदर्भ में नही। **संप्रवुद्ध** और **प्रवोध** का साम्य क्या आकस्मिक है ?

'राम की शक्तिपूजा' का वहुत ओजपूर्ण अंश वह है जिसमें महावीर की आकाश-यात्रा का वर्णन है। आकाश में पहुँचने से पहले निराला काफी विस्तार से समुद्र पर उस उड़ान की प्रतिक्रिया चित्रित करते है। वालमीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में जहाँ हनुमान लंका के लिए उड़ान भरते है (पहला अध्याय), वहाँ समुद्र की लगभग वैसी ही स्थिति है जैसी 'राम की शक्तिपूजा' में। समुद्र मे पहाड़ जैसी लहरें उठती है। एक हवा महावीर के अपने वेग से उत्पन्न होती है, दूसरी हवा मेघों की है। दोनों मिलकर समुद्र को कँपा देती है। जव महावीर लहरों को खीचते हैं तो लगता है पृथ्वी-आकाश को जल में डुवा देंगे। लहरें मेरु और मन्दार पर्वतों जैसी है, महावीर उन्हें गिनते हुए-से आगे वढ़ते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' मे पहाड़ जैसी तरंगों का उठना, हवाओं का चलना, समुद्र का सीमाएँ लाँघना वालमीकि के अनुसार है। पिता को महावीर के पक्ष में सक्रिय दिखाकर निराला ने समुद्र को अधिक क्षुब्ध कर दिया है।

सुंदरकाण्ड के इस समुद्र-वर्णन की प्रतिध्वनि सम्भवतः निराला की अन्य रचनाओ में भी है। वालमीकि ने महावीर द्वारा तरंगों के गिने जाने की वात लिखी है :

अत्याक्रमन्महावेगस्तरंगान्गणयन्निव।

निराला ने तरंगो के गिनने की वात गीत में लिखी है :

प्राण संघात के सिंधु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग है,
धीर मैं ज्यो समीरण करूँगा तरण। (गीतिका, पृ. ९७)

निराला पवनसुत नहीं, स्वयं पवन के समान सिंधु पार करेंगे। पवनसुत ने तरंगें

गिनी थीं—अवश्य ही सिंधु के तीर पर नहीं, वरन् सिंधु को पार करते हुए—निराला उस क्रिया से मुक्त रहेंगे।

सान्ध्य काकली मे शिव-ताण्डव वाली कविता :

डमड डम डमड डम,
डमरू निनाद है।
ताण्डव नचे शिव
प्रवाद उन्माद है।

यहाँ उन्माद शब्द का प्रयोग विचित्र-सा है। शेष कविता में समुद्र के विक्षुब्ध होने का चित्रण है। वाल्मीकि ने लिखा था कि महावीर समुद्र पर जिस-जिस जगह से गए, वहाँ ऐसा लगा कि उनके वेग से समुद्र को उन्माद हो गया है :

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।
स तु तस्यागवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते।

सान्ध्य काकली की रचना मे निराला संभवतः इसी उन्माद को लक्ष्य कर रहे हैं। वाल्मीकि ने लिखा कि जल के ऊपर उठ जाने से अनेक जल पशु—तिमि नक्र-झषाः कर्माः—साफ दिखाई देने लगे। निराला की रचना में नक्र और झष दोनों साथ है :

गर्जित पयोधि जल,
नक्र, झप, व्याल।

वाल्मीकि और निराला की रचनाओं में जहाँ शब्द-साम्य या भाव-साम्य है, वह आकस्मिक हो सकता है किंतु एक बात निश्चित है कि निराला के राम, तुलसीदास के राम नहीं हैं। उनका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व दो कवियों की याद दिलाता है—एक वाल्मीकि की, दूसरे भवभूति की। वाल्मीकि उस युग की उपज थे जिसमें मनुष्य को मनुष्य के रूप में ही देखने का चलन था, देवता भी मनुष्यवत् थे, मनुष्य को अलौकिक सत्ता का चमत्कारी रूप न बनाया गया था।

राज्यं भ्रष्ट वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः।
ईदृशीयं ममा लक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम्।

(अरण्यकाण्ड, सड़सठवाँ अध्याय)

राज्य गया, वनवास मिला, सीता नष्ट हुईं, पिता का मित्र जटायु मारा गया; मेरा दुर्भाग्य ऐसा है कि वह अग्नि को भी जला दे। भवभूति के राम जब अपने को धिक्कारते हैं—धिङ्भामधन्यम् (उत्तररामचरित, प्रथम अंक)—तब वाल्मीकि के राम की उसी मर्मवेदना को पुनर्जीवित करते है। निराला के राम कहते है :

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !

इन पंक्तियों में वाल्मीकि और भवभूति के स्वरों की प्रतिध्वनि है। ये दोनों करुण रस के महान् कवि है। वाल्मीकि मे करुणा के साथ ओज की यथेष्ट मात्रा है,

मानवीय सहानुभूति और युद्ध दोनों साथ चलते है। भवभूति में भी युद्ध है किंतु वह करुणा के संदर्भ में घुल-मिल नहीं जाता। निराला में करुणा और ओज की सहज मैत्री है, युद्ध और संघर्ष का चित्रण करुणा के सदर्भ का अनिवार्य अंश है। इस दृष्टि से वह भवभूति से अधिक वाल्मीकि के अनुयायी हैं। किंतु भवभूति शोक की उस दशा से परिचित हैं जिसमें मनुष्य अर्द्ध-मूर्च्छित-सा होकर अपने को जीवन और मृत्यु के वीच पाता है। भवमूति ने मृत्यु और अंधकार को जैसे देखा है, वैसे वाल्मीकि ने नही। इस दिशा में निराला वाल्मीकि से अधिक भवभूति के अनुवर्ती हैं।

नारी-सौन्दर्य का चित्रण वाल्मीकि और भवभूति दोनों में है किन्तु इस कला का उत्कर्ष कालिदास में है। प्रकृति-चित्रण में वाल्मीकि महान् है, भवभूति दंडक वन के परम प्रेमी हैं, अरण्य-प्रेम में वाल्मीकि के अनुयायी हैं यद्यपि उनके काव्य में 'अरण्य' दुख का प्रतीक वनकर भी आता है—**जगज्जीर्णारण्यम्** इत्यादि (**उत्तर.**, छठा अंक)। जहाँ नारी और प्रकृति का सौन्दर्य घुल-मिल जाता है, वह कला कालिदास की है और अद्वितीय है। उससे रवीन्द्रनाथ समेत आधुनिक युग के कवियों ने वहुत कुछ सीखा है।

निराला ने रघुवंश के नवें सर्ग से कला की पूर्णता दिखाने के लिए अपनी टिप्पणी में यह छंद उद्धृत किया (सुधा, दिसम्बर '३४; संपा. टि.—१) :

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा
स्तदनु षट्पद कोकिल कूजितम्।
इति यथा कम माविर भून्मधु-
द्रुमवती मवतीर्य वनस्थलीम्।

निराला ने लिखा कि यहाँ मधु अर्थात् वसंत पुरुष है, "और जिस पर वह उतरता है, वह वनस्थली स्त्री। दोनों एक साथ लिपटकर एक हैं।" कुसुम, पल्लव, कोकिल, भ्रमर—ये सव निराला के अनेक गीतों में एक साथ पाए जाते है। **कुमारसम्भव** मे कालिदास ने लता-वधुओं को तरु-पतियों से मिलते दिखाया :

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनिम्र शाखा भुजवंधनानि। (तीसरा सर्ग)

निराला ने लता और तरु यहाँ से लेकर 'रघुवंश' के भ्रमर और कोकिल से उन्हें मिलाया और वसंत का वर्णन किया :

किसलय वसना नव-वय-लतिका
मिलि मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप वृन्द वन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया। (गीतिका, पृ. ३)

लतावधुएँ तरु-पतियों से मिली; मधुपों और कोयलों ने उनके मिलन का अभिनंदन किया। निराला की शृंगार-भावना मे गन्ध की विशेष भूमिका है, इसलिए लता-तरु मिलन के वाद उन्होंने लताओं को फिर याद किया और उनके मुकुलहार की गन्ध लिए पवन को वहते हुए दिखाया। किन्तु निराला के गीत में वनस्थली की

जगह वन है। अब वसंत कहाँ उतरे? उसके लिए छोटी-सी वनस्थली की जगह उन्होंने समूची पृथ्वी प्रस्तुत कर दी। पृथ्वी को उचित युवती रूप देने के लिए उन्होने केश, उरोज और आँचल की व्यवस्था भी कर दी :

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छूटे,
स्वर्ण-शस्य-अञ्चल
पृथ्वी का लहराया।

निराला के गीत में तसवीर बहुत साफ नहीं उतरी। कारण यह कि एक चित्र वसन्त और पृथ्वी के शृंगार का है, दूसरा तरु-लता-मिलन का। उन्हे **रघुवंश** का छंद याद आ रहा है, उधर **कुमारसम्भव** के छंद का मोह भी नही छूटता।

कालिदास के प्रति निराला का द्वैत भाव है। वह उनके रूप-चित्रण से आकर्षित होते हैं; फिर कहते है, इसमें भाव का पता नही है। वह उनकी शब्द-योजना पर मुग्ध होते है; फिर कहते है, इसमें शपाशप भरा है! **तन्वी श्यामा शिखरि-दशना** वाला छंद उन्होने 'मेरे गीत और कला' में उद्धृत किया है, उसमे श-क्ष-ण की आवृत्ति अवश्य है। शब्दावली में माधुर्य की अतिशयता है; माधुर्य के साथ ओज का मिश्रण नही है। चित्रण का स्तर उदात्त नही; केवल अंतिम पंक्ति में विधाता की आदि सृष्टि का स्मरण करके कालिदास पूरे छंद को ऊपर उठा देते हैं। यह कला निराला की नही। किन्तु अन्यत्र कालिदास शृंगार के उदात्त चित्रण के धनी कलाकार हैं और भाव के साथ शब्दध्वनि का स्तर उठता है, वैसे ही उसमें गभीरता भी आती है।

अशोक निर्भर्त्सित पद्मरागमाकृष्ट हेमद्युति कर्णिकारम्
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती।
(कुमारसम्भव, तीसरा सर्ग)

यहाँ जो तीन बार **पद्मरागम्, कर्णिकारम्** और **सिन्धुवारम्** के अन्त्यानुप्रास मिलाये गए है, वे निराला की ध्वनि-पद्धति के अनुकूल हैं। क-व-र के साथ ग-द-ध-भ की ध्वनियों की लपेट निराला के ध्वनि-कौशल से तुलनीय है। दूसरी पंक्ति में दीर्घ आ-स्वर की आवृत्ति वैसे ही ओजगुण से संबद्ध है जैसे निराला मे—**मुक्ता, कला पीकृत सिन्धुवारं, वसंत पुष्पाभरणं वहन्ती**। इसी सर्ग में दीर्घ आकार और सघोष अल्पप्राण ध्वनियों का सौन्दर्य दर्शनीय है :

स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः-पुनः केसरदाम काञ्चीम्।
न्यासीकृतां स्थानविदां स्मरेण मौर्वीं द्वितीयामिव कार्मुकस्य।

इसमे **स्रस्तां, काञ्चीम्, कृतां, विदां, मौर्वीं** और **द्वितीयाम्** में समान ध्वनिखंडों की आवृत्ति वैसी है जैसी निराला की पदयोजना मे बहुलता से सुलभ है।

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग मे **नूपुर सिञ्जितानि** देखकर लगता है, निराला ने इसी के अनुकरण पर लिखा था,

चलो भञ्जु-गुञ्जर घर
नूपुर-शिञ्जित-चरण। (**गीतिका**, पृ. १०३)

निराला-काव्य में कालिदासीय कला की एक अन्य विशेषता दिखाई देती है। कालिदास समास रचकर उससे पूरे वाक्य का काम लेते है। मेघदूत में **वप्रक्रीड़ा परिणत गज-प्रेक्षणीयम्** इतना वड़ा समास छोटे-से मेघ का विशेपण है। मेघ ऐसा है मानो हाथी व प्रक्रीड़ा में पर्वत से जूझ रहा हो। निराला तुलसीदास में इसी तरह की समास-रचना करते है:

शत शत अब्दों का सान्ध्यकाल
यह आकुंचिद्भ्रू कुटिल भाल।

सान्ध्यकाल भौंहें टेढी किए है, माथे पर भी वल है। दूसरी पंक्ति सान्ध्यकाल के विशेपण के तौर पर है।

परिमल की कविताओं में समास-रचना का अभाव नही है किन्तु अपेक्षाकृत वह कम है। वाद की रचनाओं में—'राम की शक्तिपूजा' तक—समास-रचना निराला के भापा-शिल्प की विशेपता है। इस दौर में वह कालिदास को घोखते रहे है। अंतिम चरण की रचनाओं में उसका अनुपात कम हो गया है।

'मेरे गीत और कला' मे निराला ने **चौर पचाशिका** से अपना प्रिय छंद उद्धृत किया है:

अद्यापि तां कनकचम्पक दाम गौरी
फुल्लारविन्द नयनां तनुरोम राजीम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलिता लसांगीम्
विद्यां प्रमाद गलिता भिव चिन्तयामि।

इसके वर्ण-संगीत और भाव-सौन्दर्य की प्रशंसा की है। इस सुन्दर छद की ध्वनि और चित्र की छवि निराला को इसलिए और भी प्रिय थी कि उसमें सोकर उठी हुई नायिका का वर्णन किया गया है। कुछ चौर पंचाशिका, कुछ गीतगोविन्द के ध्वनि-सौन्दर्य की आभा निराला के **यामिनि जागी** गीत में है। **स्थल कमल गञ्जन मम हृदय रञ्जनम्** के समकक्ष ध्वनि है: **अलस पंकज दृग अरुण मुख तरुण अनुरागी।** **चौर पंचाशिका** में **प्रमाद गलिता** वाला भाव उन्हें वहुत पसद था; " 'प्रमाद-गलितां' में जितना अर्थ-चमत्कार है, जितनी तरह के अर्थ होते है, उतनी तरहे 'सृष्टिराद्येव वातु:' मे नही लाई जा सकती।" (**प्रवन्ध प्रतिमा**, पृ. २७८) यह प्रमाद गलिता वाला भाव निराला के उपर्युक्त गीत की अंतिम पक्ति में है: **वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में तागी।** किंतु रोमराजी का सौन्दर्य शंकराचार्य में है, निराला में नही।

शंकराचार्य सौन्दर्य-लहरी में मणि शब्द का प्रयोग सूर्य की किरणों के लिए करते हैं—**गतैः माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितम्** (छंद ४२)। निराला के गीत में गगन और मणि का ऐसा ही संयोग दर्शनीय है: **ऊर्ध्व-दृग गगन में देखते मुक्तिमणि!** (**गीतिका**, पृ. १८)

शंकराचार्य का एक प्रिय शब्द है **अराल** जिसका प्रयोग वह केशो के प्रसग में करते है: **अरालैः स्वाभा-व्यादलिकुलहसश्तोभिरलकैः** (सौन्दर्य., छंद ४५);

अराला केशेषु प्रकृति सरला मंदहसिते (उप., छंद ६३)। निराला इस शब्द का प्रयोग अप्रत्याशित सन्दर्भों में बड़े अर्थगर्भित ढंग से करते है। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' मे दृष्टि के लिए :

> वीक्षण अराल
> बज रहे जहाँ
> जीवन का स्वर भर छन्द, ताल। (**अनामिका**, पृ. १८)

अर्चना के गीत में पथ के लिए :

> निविड़ विपिन, पथ अराल;
> मरे हिंस्र जन्तु-व्याल।

अराला केशेषु वाले छंद की अंतिम पंक्ति में शंकराचार्य ने शंभु की करुणा को उनकी अरुणा शक्ति माना है, **जगत्स्नातुं शंभोर्जयति करुणा काचिदरुणा**। **अर्चना** के पहले गीत में निराला ने **अरुणा** शब्द का प्रयोग इसी विशिष्ट अर्थ में किया है; **अरुणा** के साथ **करुणा** का संयोग भी है :

> भव-अर्णव की तरणी तरुणा।
> बरसी तुम नयनों से अरुणा।
> उसकी सहज साधिका अरुणा।

ऐसे ही **अणिमा** मे :

> दलित जन पर करो करुणा।
> दीनता पर उतर आए
> प्रभु तुम्हारी भक्ति अरुणा।

शंकराचार्य मे ध्वनिखंडों की वैसी ही आवृत्ति है जैसी निराला को विशेष प्रिय थी :

> मही मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम् (**सौन्दर्य.**, छंद ९)
> तव स्तन्य मन्ये तुहिन गिरिकन्ये हृदयतः (उप., छंद ७५)

निराला ने सानुप्रास पदावली रचना अन्य गुरु से सीखा था किन्तु उन पर शंकराचार्य का प्रभाव भी रहा हो तो आश्चर्य नही। शब्द-ध्वनि के प्रेमी महान् दार्शनिक शकराचार्य का मन माया से कितना मुक्त था ? निराला एक ओर ब्रह्म से माया के बन्धन काटने को कहते है, दूसरी ओर शक्ति के विना शिव को शववत् मानते हैं, शक्ति की वदना करते हैं। शंकराचार्य अद्वितीय ब्रह्म को एकमात्र सत्य सिद्ध करने के लिए भारतव्यापी संघर्ष करते है, साथ ही यह भी कहते है कि शक्ति के विना शिव में स्पन्दन नही होता। ब्रह्म की वंदना के वदले वह उस महामाया की स्तुति करते है जिसे कोई सरस्वती कहता है, कोई पार्वती, कोई किसी अन्य नाम से पुकारता है; उसकी निःसीम महिमा दुरधिगम्य है, वह परब्रह्म की महिषी महामाया है जो विश्व को नचाती है। द्रविड़ सुत शकराचार्य की **सौन्दर्य-लहरी** मे ब्रह्म मातृसत्ताक परिवार के पिता के समान है जो घर की शोभा वढ़ाता है किन्तु वास्तविक सत्ता जहाँ माता के हाथ में है। वार-वार ब्रह्म को अद्वितीय सिद्ध करने

के बाद वह स्तुति करते हैं महामाया की :

> गिरामाहुर्देवीं द्रुहिण गृहिणीमागम विदो
> हरे पत्नी पद्मां हरसहचरी मद्रितनयाम् ।
> तुरीया कापि त्वं दुरधिगम निःसीम महिमा
> महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्म महिषि ।

महामाया का यह स्तव तुलसीदास में है, और भी उदात्त स्वर में निराला में। शंकराचार्य की परंपरा हिन्दी-काव्य में इस रूप में भी जीवित है।

रवीन्द्रनाथ, कृत्तिवास

उन्नीसवीं सदी में बंगाल में जो जागरण हुआ, उसका गहरा प्रभाव सारे देश की संस्कृति पर दिखाई दिया। राजा राममोहन राय से जो नवीन विचारधारा शुरू होती है, वह एक ओर सामन्ती रूढियों का विरोध करती है, दूसरी ओर सामन्ती अवशेषों के मुख्य सहायक ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता भी करती है। भारत में जितने सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन हुए हैं, उन्हें परखने की कसौटी यह है कि वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष चलाते है या नही। राजनीतिक संघर्ष न चलाने पर वे अनिवार्य रूप में भारतीय समाज-व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी सुधार नहीं कर पाते। क्रान्तिकारी सुधारो का लक्ष्य होगा—जातिप्रथा का विनाश, हिंदू-मुस्लिम धार्मिक अंधविश्वासों का विध्वंस, नारी-स्वाधीनता की प्रतिष्ठा। ब्राह्मसमाज और निराला की विचारधारा में यह मौलिक अन्तर है कि ब्राह्मसमाज ब्रिटिश साम्राज्य की प्रगतिशील भूमिका मे विश्वास करता था, किसानों पर जमीदारों का शासन बनाए रखने के पक्ष में था। राजनीतिक स्वाधीनता के प्रश्न को गौण मानकर पूर्व और पश्चिम को मिलाने की बातें अंग्रेजी राज और भारतीय जनता के मुख्य अन्तर्विरोध पर पर्दा डालती थी। निराला का 'चरखा' निबन्ध दूसरे महायुद्ध के बाद की परिस्थिति में ब्राह्मसमाज की ढुलमुल सुधारवादी चेतना और नये क्रान्तिकारी विचारो की टक्कर की सूचना देता है।

ब्राह्मसमाज का प्रभाव उच्चवर्गों के जीवन पर पड़ा किन्तु वह वहाँ भी जाति-प्रथा को मिटा न सका; नारी को उसने पुरानी रूढ़ियों से किसी हद तक मुक्त किया; हिंदू-मुस्लिम समस्या हल करना उसके वश मे न था। इस आन्दोलन की तुलना में स्वामी विवेकानन्द और उनके सहयोगियों ने बंगाल में और उसके बाहर व्यापक रूप से निम्न मध्य वर्ग को प्रभावित किया। अनेक क्रान्तिकारी नवयुवक,

जो सुधारवादी आन्दोलन से ऊब चुके थे, स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से नये रास्ते ढूँढने निकले। इसका कारण यह था कि उनके वेदान्त-प्रचार में साम्राज्यविरोधी स्वर बहुत साफ सुना जाता था। इसके अलावा उन्होने वेदान्त की वह व्याख्या प्रस्तुत की थी जिसके आधार पर सामाजिक रूढियों का विनाश सफलतापूर्वक किया जा सकता था। पराधीन देश में कोई द्विज नही, सब शूद्र है—उनकी इस धारणा ने बहुतों को प्रभावित किया, निराला को भी। किन्तु जिन रूढ़ियों की जड़ें आर्थिक और राजनीतिक जमीन में गहरी चली गई है, उन्हें विशुद्ध सांस्कृतिक आन्दोलन से खत्म नही किया जा सकता। निराला और स्वामी विवेकानन्द की विचारधाराओं में यह मौलिक अंतर था कि निराला राजनीतिक संघर्ष के पक्ष मे थे, वह हर सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या को राष्ट्रीय पुनर्गठन के राजनीतिक प्रश्न से जोड़ते थे। परिणाम यह कि निराला ने अपने लेखों में ब्रिटिश साम्राज्य-वाद और उसके सहायक देशी सामन्तवाद पर सीधा आक्रमण किया; धार्मिक-सांस्कृतिक रूढ़ियो के विरुद्ध उनका संघर्ष स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा की सीमाएँ पार कर गया।

निराला ने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के आन्दोलन का समर्थन किया, एकाध जगह उसकी आन्तरिक कमजोरियों का उल्लेख भी किया। आर्यसमाज उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रो मे—अधिकतर शहरी मध्यवर्ग में—सुधारकार्य कर सका। राष्ट्रीय एकता कायम करने के लिए—समाज का देशव्यापी पुनर्गठन करने के लिए—जितने बड़े पैमाने पर कार्यवाही आवश्यक थी, वह उससे न हुई। अंग्रेजी राज और जमीदारों-राजाओं से सीधी टक्कर लिए बिना इस तरह की कार्यवाही संभव न थी। निराला रामकृष्ण मिशन के वेदान्त और दरिद्रों मे उसके सेवा-कार्य से अधिक प्रभावित हुए।

बीसवी सदी के प्रथम तीन दशको में रवीन्द्रनाथ के साहित्य ने अनेक भारतीय भाषाओं के लेखकों को प्रभावित किया। सन् '२० के आन्दोलन के बाद महात्मा गाँधी संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में पूजे जाने लगे। रवीन्द्रनाथ ने बँगला भाषा को नया जीवन दिया, गद्य और पद्य की अनेक विधाओं का अभूतपूर्व विकास किया, वह पूर्व और पश्चिम का मेल चाहते थे किन्तु इसके लिए अपना सिर झुकाने को तैयार न थे। देश के भीतर और बाहर उन्होने आतमसम्मान की रक्षा के साथ राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की भी रक्षा की। उनमें न केवल बंगाल की—चंडीदास, माईकेल मधुसूधन दत्त, ईश्वरचंद्र विद्यासागर की—परम्परा नये रूप मे विकसित हुई, वरन् कालिदास, उपनिषदो और कबीर जैसे सन्तों की परंपरा ने भी नया जीवन पाया। अनेक जगह उनकी विचारधारा पूँजीवादी सुधारवादी आन्दोलनो की सीमाएँ पार कर जाती है। उनकी रूस से लिखी हुई चिट्ठी भारतीय समाज मे व्यापक क्रांतिकारी परिवर्तन करने की उनकी उत्कट आकांक्षा का प्रमाण है।

रवीन्द्रनाथ के साहित्य की एक धारा— गद्य और पद्य दोनों में— बंगाल की

प्रकृति, नदी-नालों, धान के खेतों, गाँव और शहर के स्त्री-पुरुषों के जीवन का चित्रण करती है। इसे यथार्थवादी धारा कह सकते है और इसमें प्रकृति सम्बन्धी सूक्ष्म भाव-बोध की **बलाका** जैसी रचनाओं से लेकर रवीन्द्रनाथ के व्यंग्य-लेखन तक को शामिल करना चाहिए। दूसरी धारा रूमानी है जो अतीत को अनैतिहासिक, अवैज्ञानिक रूप से रँग-चुनकर पेश करती है, प्रकृति और सामाजिक सम्बन्धों पर चाँदनी की झीनी चादर डाल देती है, नारी-सौन्दर्य के मोहक सपने रचकर कविता को भावुकता के स्तर से ऊपर उठने नही देती। तीसरी धारा रहस्यवादी है जिसने अपनी कुछ नई रूढियाँ रच ली थी, जिसने एक नये रीतिवाद का सृजन किया था, जिसका प्रभाव ही सबसे ज्यादा सामयिक भारतीय साहित्य पर पड़ा था।

निराला पर रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद का प्रभाव आंशिक रूप से सन् '३० तक रहता है। **परिमल** के दूसरे खंड की पहली कविता **भर देते हो** में जो 'देव' निरन्तर उनके अन्तर में आते हैं, वह रवीन्द्रनाथ के काव्य-देवता हैं। निराला ने देवियों की स्तुति अधिक की है, रवीन्द्रनाथ ने देवों की। दोनों में यह अन्तर है। **परिमल** काल में भी यह प्रभाव आंशिक है क्योंकि विरोधी प्रभाव—**एक बार बस और नाच तू श्यामा** का प्रभाव—भी है। क्रान्तिकारी 'बादलराग', 'अधिवास' का माया-ब्रह्म सम्बन्धी द्वंद्व अलग। निराला अपनी साहित्य-साधना के किसी भी चरण मे रवीन्द्र-नाथ के रहस्यवाद को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते; प्रथम चरण के बाद यह अस्वीकृति और भी तीव्र हो गई है।

रहस्यवाद से अधिक निराला पर रवीन्द्रनाथ की रूमानी कविताओं का प्रभाव है। यह प्रभाव पहले चरण में अधिक है, दूसरे में बहुत कम, तीसरे में नगण्य। निराला ने कुछ कविताएँ रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के आधार पर लिखी थी जिनकी आलोचना 'भावो की भिड़न्त' लेख मे हुई थी। उस लेख का सुफल यह हुआ कि वह रवीन्द्रनाथ की पूरी कविताओ को आधार मानकर नया कुछ लिखने से विरत हुए। यह भी सही है कि सन् '२३-२४ की ही उनकी बहुत-सी रचनाएँ न केवल रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त हैं वरन् उस प्रभाव की विरोधी दिशा में चलती हैं।

निराला ने बहुत-सी शब्दावली जिसके लिए छायावाद बदनाम हुआ—और उसे बदनाम होना चाहिए था—रवीन्द्रनाथ से ली। 'पंतजी और पल्लव' में उन्होंने रवीन्द्रनाथ की जिन प्रतिध्वनियों का विवरण प्रस्तुत किया, वे उनके काव्य मे भी हैं। किंतु रवीन्द्रनाथ की भाषा, उनका काव्य-कौशल, निराला को आंशिक रूप में ही, साहित्यिक जीवन के प्रथम चरण में, अधिक प्रभावित करता है। भाषा और काव्य-कौशल सिखाने वाले उनके काव्य-गुरु और भी हैं। निराला और रवीन्द्रनाथ की भाषा में बहुत बड़ा अन्तर समास-रचना को लेकर है। कालिदासीय समास-रचना-पद्धति निराला मे है, रवीन्द्रनाथ में नही। इसके सिवा रवीन्द्रनाथ की भाषा अर्थ में सुबोध, निराला की उतनी ही दुरूह है। निराला और रवीन्द्रनाथ के काव्य-कौशल में मौलिक अन्तर है। अर्थ-वक्रता, भाव-घनत्व, उदात्त ध्वनि-प्रवाह, चमत्कारी नाटकीय वैषम्य निराला-काव्य की विशेषताएँ है। अर्थ की

सरलता, भाव की तरलता, ध्वनि की कोमलता और माधुरी, लिरिक कविता की गेयता, स्वत.स्फूर्त भावराशि रवीन्द्रनाथ के काव्य की विशेषताएँ है। निराला उदात्त शृंगार, शक्तिपूजा, विकट जीवन-संघर्ष, अंधकार और मृत्यु के कवि है। रवीन्द्रनाथ का भावबोध भिन्न स्तरों पर उनके काव्य का विकास करता है। ऐसी स्थिति में निराला जहाँ रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करते हैं, वहाँ उनकी अपनी विशेषताएँ दबी रहती हैं; जहाँ रवीन्द्रनाथ से कोई 'आइडिया' लेकर अपनी कविता मे सजाते हैं, वहाँ वह अलंकरण के काम आता है, मूल संरचना मे लक्षित नहीं होता।

निराला ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा लेकर प्रतिस्पर्धा के भाव से जहाँ कविताएँ लिखी हैं, संभवत: वहाँ रवीन्द्रनाथ का प्रभाव सबसे हितकर है। उन्हें **कथा ओ काहिनी** की रचनाएँ बहुत पसंद थी, **सूरदासेर प्रार्थना** जैसी कविताओं के टक्कर की रचनाएँ वह हिन्दी में देखना चाहते थे। 'तुलसीदास' इसी स्पर्धा का परिणाम है। उसका भावबोध, उसका शिल्प **कथा ओ काहिनी** से भिन्न स्तर का है।

'सरोज-स्मृति' में जहाँ भोगावती के ऊपर उमड़ते हुए जल का वर्णन किया है, वहाँ उसे देह के बाँध से सीमित-मर्यादित होते हुए भी दिखाया है :

पर बँधा देह के दिव्य बाँध,
छलकता दृगों से साध-साध।

यह भाव उन्होंने रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' से लिया है :

अंगे अंगे यौवनेर तरंग उच्छल
लावण्येर मायामंत्रे स्थिर अचंचल।

शोक-प्रधान कविता में यह रूमानी कल्पना अलंकरण मात्र है। 'वनवेला' में जहाँ अप्सरा से उपमा दी है :

जैसे पार कर क्षार सागर
अप्सरा सुघर
सिक्त तन केश, शत लहरों पर
काँपती विश्व के चकित दृश्य के दर्शन शर—

वहाँ रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' से भाव लिया है :

सर्वांग कादिवे तव निखिलेर नयन-आघाते
वारि विन्दु पाते।

'वनवेला' मे बड़े पैमाने पर आत्म-संघर्ष का चित्रण है; उसमें यह रूमानी कल्पना पुन: अलंकरण मात्र है। रवीन्द्रनाथ के गीत **नयन मुदिया सुनिगो, जामिना** में भारत के श्वेत शतदल पर भारती खड़ी होती हैं :

भारतेर श्वेत-हृदि-शतदले
दाँड़ाये भारती तव पदतले।

ये पदतल विश्वदेव के हैं, भारती उनके नीचे खड़ी हैं। निराला ने मातृभूमि की मूर्ति अपने हृदय-शतदल पर खड़ी की :

मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक, उर के शतदल पर। (गीतिका, पृ. २०)

निराला के गीत बद्ध पद सुन्दर तव में रवीन्द्रनाथ का स्पष्ट अनुकरण है।

अयि भुवन-मनोमोहिनी
अयि निर्मल सूर्य करो ज्वल धरणी
जनक-जननी-जननी !

निराला में इसका अनुकरण :

जननि, जनक-जननि-जननि
जन्मभूमि भाषे। (उप., पृ. ८१)

निराला कभी-कभी रवीन्द्रनाथ और कालिदास के शृंगार भाव को मिला देते हैं और उससे काव्य मे संघर्ष या संन्यास की भावना का विरोध दिखाते है। 'तुलसीदास' में जिस संस्कृति पर वह अपने चरितनायक को पहले मुग्ध होते, फिर संघर्ष करते दिखाते है, वह इसी संयुक्त भावबोध के आधार पर चित्रित की गयी है। 'राम की शक्तिपूजा' मे जहाँ राम पराजय के क्षण में सीता से प्रथम मिलन का मोहक स्वप्न देखते हैं, वहाँ निराला उसी भावबोध की जमीन पर चलते है जिसे उन्होंने रवीन्द्रनाथ में देखा है। किंतु जहाँ अमानिशा के अंधकार का चित्रण है, वहाँ उन्हे रवीन्द्रनाथ नही, विवेकानन्द याद आते हैं।

मेघ मन्द्रकुलिश निस्वन, महारन, भूलोक-द्यूलोक-व्यापी।
अंधकार उगरे आँधार, हुहुंकार श्वसिछे प्रलयवायु।

निराला का अनुवाद :

अंधकार उद्गीरण करता
अन्धकार घनघोर अपार
महाप्रलय की वायु सुनाती
श्वासों में अगणित हुंकार। (अना., पृ. १०५)

निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में अपनी प्रतीक-योजना का ध्यान रखते हुए वायु को स्तब्ध कर दिया है। स्वामी विवेकानन्द के 'उगरे आँधार' से प्रेरणा लेकर 'उगलता गगन घन अंधकार' लिखा। यहाँ स्वामी विवेकानन्द का शब्दचित्र निराला को नये और समर्थ प्रयोग की प्रेरणा देता है।

'राम की शक्तिपूजा' लिखते समय निराला का मन एक ओर पराजय, ग्लानि, विजयकामना के संघर्ष मे उलझा हुआ था, समुद्रतट पर अंधकार में वानर सेना के बीच विपर्यस्त लटों वाले राम को देख रहा था, दूसरी ओर अब तक जो पढ़ा-गुना था, उसे समेटकर—उसका सार-तत्त्व लेकर—काव्य-चित्रों को सजा रहा था। उन्हे शेक्सपियर की एक सॉनेट बहुत प्रिय थी—Mine eye hath play'd the painter इत्यादि। इसमे भावगरिमा उतनी नही जितनी कल्पना की गिरहबाजी है। 'काव्यसाहित्य' ('माधुरी', नवम्बर '३०) लेख में उन्होंने इस सॉनेट को प्रशंसा के साथ उद्धृत किया था। कवि की आँखें चित्रकार है; उन्होने प्रियतमा की तस्वीर

खींचकर कवि के हृदय में टाँग दी है। "अब देखो कि आँखों ने आँखों को कैसा बदला दिया। मेरी आँखो ने तुम्हारी तसवीर खीच ली और तुम्हारी आँखें मेरे लिए हृदय की खिड़कियाँ है।" (निराला का अनुवाद)

इसके बाद निराला ने तुलसीदास की चौपाई उद्धृत की—**लोचन मग रामहिं उर आनीं। दीन्हें पलक-कपाट सयानी।** इस पर टिप्पणी लिखी कि इसमें "स्नेह का प्रकाश तो है, पर इतना बड़ा सौन्दर्य अवश्य नही।" हिन्दी कवियों से दो और उद्धरण देने के बाद लिखा, "हिन्दी मे कही मैंने शेक्सपियर की-सी उक्ति पढ़ी है, मुझे स्मरण नही। प्रिया और प्रियतम के स्नेह का आदान-प्रदान इस तरह की उक्तियो से बढा दिया जाता है, इसलिए सांसारिक दृष्टि से इस कला को बहुत बड़ा महत्त्व प्राप्त है।" शेक्सपियर का मन एक ओर ट्रैजेडी के उदात्त भाव-दृश्य देखता था, दूसरी ओर कल्पना की गिरह लगाना भी उसका प्रिय व्यापार था। सॉनेट-रचनाओं मे जगह-जगह ट्रैजेडी के उदात्त भाव-दृश्य है, ट्रैजेडी-रचनाओ मे जगह-जगह कल्पना की गिरहबाजी है। निराला के मन का सांचा भी कुछ वैसा ही था। तुलसी-दास की भाव-गम्भीर पंक्ति से शेक्सपियर की कल्पना-क्रीड़ा-सॉनेट ज़्यादा अच्छी लगी। अब जब तक उसे कही कविता में खपा न लें, उन्हें चैन नही। यह कार्य उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' के लिए रख छोड़ा था और उसे अद्भुत रूप से सम्पन्न किया। राम दुर्गा के बारे में सोच रहे है। वह समग्र नभ को आच्छादित किये हुए थी। उनमें राम के ज्योतिर्मय अस्त्र बुझ-बुझकर लीन हो रहे थे। यह दृश्य देखकर राम का मन शंका से विकल हो उठा।

> लख शंकाकुल हो गए अतुल-बल शेष शयन,—
> खिच गये दृगों में सीता के राममय नयन;
> फिर सुना—हँस रहा अट्टहास रावण खलखल,
> भावित नयनों से गिरे सजल दो मुक्तादल।

निराला ने शेक्सपियर के सॉनेट का सारतत्त्व खींचकर एक पंक्ति लिखी—**खिच गए दृगों में सीता के राममय नयन।** पहले राम की छवि सीता की आँखों में, फिर वे छवि-युक्त नयन राम की आँखो में। "मेरी आँखों ने तुम्हारी तसवीर खीच ली, और तुम्हारी आँखें मेरे लिए हृदय की खिड़कियाँ हैं। कितना कमाल है!"

निराला ने भी कमाल किया है। अन्य सदर्भ में जो पंक्ति कल्पना-क्रीड़ा का उदाहरण बन जाती, वह राम के करुण-गंभीर प्रसग मे बड़े शक्तिशाली ढंग से ट्रैजेडी के भाव को ऊपर उठाती है। निराला उस पंक्ति को वहाँ लाये हैं जहाँ शंका से व्यथित मन कुछ भी करने में असमर्थ हो गया है। आकाश घेरे हुए भीमामूर्ति की जगह उससे ठीक उलटी काठ की मूर्ति—कोमलता और शृंगार भाव से पूर्ण—सीता की मूर्ति दिखाई देती है। उसके बाद ही तुरंत तीव्र विरोधी भाव जगाती हुई रावण की विकट हँसी सुनाई देती है, जिन आँखो में सीता के राममय नयन खिचे थे, उनसे दो आँसू टपक पड़ते है। यह भाव-परिवर्तन इतनी तेजी से होता है कि करुण और भयानक चित्रों के बीच शृंगार की एक कड़ी उन्ही दोनो चित्रों को अपने

वैषम्य से निखारती है; उसमें कल्पना की जो गिरह लगाई गई है, उस पर ठहरकर सोचने-विचारने का समय पाठक को मिलता ही नही है। साथ ही उस पंक्ति में भाव-व्यंजना ऐसी सहज मालूम होती है कि चमत्कार पर विस्मित होने की जगह मन शृंगार और करुणा के भावों में डूब जाता है। निराला की कला जितना उस एक पंक्ति को रचने मे है, उतना ही विषम नाटकीय सदर्भ में उसे जड़ने में है।

निराला की कला की गरिमा समझने के लिए 'राम की शक्तिपूजा' के साथ कृत्तिवास की रामायणके लंकाकाण्ड को पढ़ना चाहिए। कृत्तिवास में उस अंधकार-मय प्राकृतिक परिवेश का अभाव है जो 'राम की शक्तिपूजा' का अत्यन्त प्रभाव-शाली अंश है। कृत्तिवास के राम रोते बहुत है, रोते-रोते धूल में लोटने लगते है। यही नहीं, उनके साथ लक्ष्मण रोते है, 'वीर हनुमान' भी रोते है। निराला ने **चमका लक्ष्मण तेज प्रचंड** द्वारा जो विरोधी भाव का चित्र खीचा है, हनुमान को राम की करुणा के विपरीत अजेय वीरभाव का प्रतीक बना दिया है, वह कृत्तिवास की कला की परिधि से बाहर है। फिर सुग्रीव, अगद, नल, नील, जाम्बवान भी रोना शुरू करते हैं। देवता स्वर्ग में दुखी हो जाते हैं—सौभाग्य से रोते नही है—इन्द्र ब्रह्मा से कहते हैं, राम का दुख और देखा नही जाता। तब ब्रह्मा ने कहा—एक ही उपाय है, राम देवी-पूजा करें। निराला ने और किसी को रुलाकर राम को सारी व्यथा का केन्द्र बना दिया है। जाम्बवान धीरोदात्त सेनापति की भूमिका मे राम को देवी पूजने की सलाह देते हैं। निराला ने चित्र की पार्श्वभूमि से स्वर्ग, इन्द्र, ब्रह्मा आदि को दूर रखा है। दुर्गा और शिव जिस आकाश मे निवास करते है, वह उसी आकाश का उच्चतम प्रसार है जो राम के चारों ओर अधकार उगलता है। जाम्बवान ने देवीपूजा के लिए कहा लेकिन यह परम्परागत देवी-पूजा नही है—**शक्ति की करो मौलिक कल्पना**, यह निर्देश है। कृत्तिवास में पौराणिक धर्म के प्रति आस्था है; निराला पौराणिक गाथा को प्रतीक-योजना से रूपक बना देते है।

कृत्तिवास मे राम का वह सारा अन्तर्द्वन्द्व गायब है जो 'राम की शक्तिपूजा' का प्राण है।

सवेरा हुआ और राम ने चंडीपाठ शुरू किया। अंधकार की वह भूमिका—रावण और दुर्गा से उसका सम्बन्ध, आकाश और समुद्र की सक्रियता—यह सब कृत्ति-वास में नही है। फिर सब लोगो ने प्रेमानन्द मे मग्न होकर गाना और नाचना शुरू किया। इस तरह का कीर्तन चैतन्य महाप्रभु के प्रदेश की धार्मिक-सांस्कृतिक कार्य-वाही का अभिन्न अंग है, निराला के स्वभाव के वह नितान्त प्रतिकूल था। निराला के राम नाचने-गाने के बदले योग द्वारा मन को सहस्रार तक चढ़ा ले जाते हैं। उन्होंने देवी-पूजा की, प्रकृति की, भारतभूमि की वंदना की; जो साधना-आराधना शेष रही, वह योग द्वारा पूरी की। कृत्तिवास और निराला की देवी-पूजा-विधियों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

कृत्तिवास के राम ने पूजा समाप्त की किंतु देवी प्रकट न हुई। तब वह रोने लगे। विभीषण ने सुझाव दिया कि एक सौ आठ कमलों से देवी की पूजा करो, तब

वह दर्शन देंगी। इस तरह कृत्तिवास ने देवी-पूजा को दो हिस्सों में बाँट दिया है। निराला ने पूजाक्रम अखण्ड रखकर कथा मे भावसूत्रों की बहुत घनी बुनावट की है। कृत्तिवास के राम ने विभीषण से पूछा, देव-दुर्लभ नील कमल कहाँ मिलेंगे ? हनुमान ने कहा, आप चिन्ता न करें, कही भी नील पद्म यदि होगेतो मैं ले आऊँगा। विभीषण ने कहा कि देवी दह में नील कमल हैं; लाने में समय लगेगा। हनुमान को भेजकर राम ने फिर देवी-वंदना आरम्भ की। दुर्गा प्रसन्न हुई किंतु नील पद्मों की आशा में अदृश्य बनी रहीं। कृत्तिवास ने नील पद्मों के प्रति दुर्गा का मोह दिखाकर रावण का पक्षपात करने वाली उनकी राम-विरोधी नीति पर पर्दा डाल दिया है। निराला की कविता मे दुर्गा का राम-विरोध नियति के समान कठोर और दुर्लंघ्य है।

दुर्गा जब प्रकट न हुईं तब राम फिर रुदन कार्य में संलग्न हुए। उस क्षण वीर हनुमान एक सौ आठ कमल लिए हुए वापस आए। गिनकर राम को कमल सँभलवा दिए। राम ने फिर देवी-पूजा की, जब अंतिम कमल दुर्गा उठा ले गई तो राम ने हनुमान से कहा, यह क्या हुआ ? एक सौ आठ कमल चाहिए थे; एक कमल नही है। अब दूसरी बार जाओ; एक कमल और लेकर आओ। हनुमान ने कहा, मैं एक सौ आठ ही लाया था; देवी दह में और कमल नही है, देवी ने छल किया है और कमल उठा ले गई हैं। राम सुनकर विस्मित हुए, आँखें छलछला आईं और अश्रुजल बहने लगा। राम ने रोते हुए देवी की स्तुति की; कहा कि बहुत दुख सहा, और दुख न दो, नील पद्म दिखाकर पूजा सफल करो। फिर भी देवी ने राम को दर्शन न दिए। गालों से बहता हुआ अश्रुजल छाती पर गिरने लगा। तब लक्ष्मण रोने लगे, वीर हनुमान रोने लगे, सुग्रीव, सुषेण, विभीषण और जाम्बवान रोने लगे। राम ने कहा—सुग्रीव, तुम अपनी सेना लेकर वापस जाओ; मैं विभीषण को अयोध्या का राज्य देकर सत्य का पालन करूँगा और स्वयं समुद्र में डूबकर प्राण दे दूँगा—**झाँप दिब जले आमि समुद्र-भितरे**। यह कहकर राम फिर रोने लगे। तब हनुमान ने समझाया—आप क्यो कातर होते हैं, मैं रावण को मारकर सीता का उद्धार करूँगा। औरों ने भी समझाया, किंतु राम ने किसी की न सुनी; वह रोते ही रहे। सिर पर कराघात किया, गहरी साँस छोड़ी; फिर मन में विचार आया, सब लोग मुझे नील-कमलाक्ष कहते हैं, मेरे दोनों नेत्र फुल्लनीलोत्पल है। एक चक्षु मैं देवी को अर्पित करूँगा। लक्ष्मण से बोले—क्या करें, दुर्गा की कृपा न हुई, जीवन विफल हुआ, मुझे सब लोग कमललोचन कहते हैं; संकल्प पूरा करने के लिए एक चक्षु दे दूँगा। उन्होंने तर्कस से एक तीर निकाला, नेत्र निकालने को उद्यत हुए, फिर रोते हुए देवी की स्तुति करने लगे। राम का रोदन देखकर देवी को दुख हुआ। जब राम चक्षु निकालने को उद्यत हुए, तब देवी ने उनका हाथ पकड़ लिया।

निराला की कविता में भाव-सम्बन्धी जितना तनाव है, वह सब कृत्तिवास में भावुकता का विशद फैलाव है। राम के बार-बार रोने-गिड़गिड़ाने से चरित्र का धीरोदात्त गुण नष्ट हो गया है। और लोग भी साथ रोते है तो भावुकता की अति-शयता कष्टदायक हो जाती है।

कृत्तिवास में राम को सभी लोग कमललोचन कहते हैं—निराला ने उस संकट क्षण में माँ का स्मरण कराया है : **कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन !** इस एक पंक्ति में माता के प्रति राम का अमित स्नेह, उस स्नेह के स्मरण में मन की घोर निराशा, उस निराशा में संकल्प की अपार दृढ़ता—यह सब एक साथ व्यक्त हुआ है।

> कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
> ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक।

यह सब निराला का अपना चमत्कार है।

कृत्तिवासीय रामायण मे राम और काली का संवाद चलता है जिससे नेत्र निकालने के प्रयत्न का सारा भावोत्कर्ष खत्म हो जाता है। राम ने उलाहना दिया कि उन्हें ऐसा व्यवहार न करना चाहिए था, फिर रावण-संहार की अनुमति माँगी। दुर्गा ने राम की महिमा का वर्णन किया और आश्वासन दिया, मैंने रावण को छोड़ा, तुम उसका नाश करो। यह कहकर वह अन्तर्धान हो गईं। तत्पश्चात् प्रेमानन्द मे मग्न होकर सब लोग नाचने लगे।

निराला की कविता में राम अपनी साधना से दुर्गा को अपने वश में करते हैं। रावण पर विजय पाने के लिए दुर्गा की अनुमति नहीं माँगते; उन्हें रावण का साथ छोड़कर अपनी ओर आने को बाध्य करते है। कृत्तिवास में दुर्गा अन्तर्धान होती हैं; निराला उन्हें राम के वदन में लीन कर देते हैं। परिणति की यह भिन्नता महत्त्वपूर्ण है। दोनो कवियो में शक्ति-साधना के रूप अलग हैं, शक्ति-साधना के उद्देश्य अलग हैं। शक्ति की उपयोगिता—निराला के लिए—उसे आत्मस्थ करने में है, अपने से अलग रखते हुए उसकी वंदना करने में नही है।

कृत्तिवास के राम वाल्मीकि के राम नहीं हैं, निराला के राम भी वाल्मीकि के राम नही हैं, तुलसीदास के और भी नहीं। भवभूति और वाल्मीकि के राम भी रोते हैं किन्तु उनमें करुणा की बड़ी गहराई है। निराला ने राम को और भी कम रोते दिखाया है, मूर्च्छित होने और ज़मीन पर लोटने की नौबत नही आती। उनके अश्रुजल का उपयोग बड़ी मितव्ययिता से किया है। राम के आँसू असाधारण है; उन्हे देखकर शक्ति के अक्षय स्रोत चंचल हो उठते हैं।

> 'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार,
> उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार।

शक्ति सागर का यह उद्वेलन इसीलिए संभव है कि निराला की आँखों में आँसू आसानी से नही आते। ऐसा भाव-संयम, उनके भंग होने पर करुणा की ऐसी अपूर्व अभिव्यक्ति केवल शेक्सपियर मे है।

'राम की शक्तिपूजा' और कृत्तिवासीय रामायण में मौलिक अन्तर महावीर की भूमिका को लेकर है। कृत्तिवास में महावीर देवी से स्पर्धा करनेवाले वीर नहीं। निराला के महावीर तुलसीदास के महावीर हैं जहाँ वह शिव और काली को त्रस्त करते हुए महाकाश में पहुँच जाते हैं। अंजना कहती हैं, जब तुमने सूर्य को

निगल लिया था, तब बालक थे; अब शिव के निर्मल वास—आकाश—को ग्रसने चले हो। हनुमान का यह रूप तुलसी-चित्रित हनुमान के अनुरूप है। अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय शरीर—इस एक पंक्ति मे तुलसीदास से प्राप्त निराला के समस्त संस्कार एक साथ झंकृत हो उठे हैं। राम से अधिक राम के दास का महत्त्व पहचानना निराला ने तुलसीदास से ही सीखा था।

सूर, तुलसी

निराला ने बंगाल के वैष्णव कवियो को पढा था, उनके कुछ पदों का अनुवाद किया था, उन पर लेख लिखे थे। रीतिवादी कवियों के नायिका-भेद से इनका शृंगार-भाव उन्हे ज्यादा अच्छा लगता था, कारण यह कि रूपचित्रण के साथ उसमें भाव-विह्वलता भी थी। निराला ने सूरदास को पढा था, 'पंतजी और पल्लव' में उनके विराट् चित्रों की प्रशंसा की थी किन्तु कवि रूप मे वह राधाश्याम के प्रेमभाव और शृंगार-वर्णन से ही अधिक प्रभावित थे। निराला की कुछ रचनाओं में बंगाल के वैष्णव कवियों और सूरदास के प्रभाव घुल-मिलकर एक हो गए हैं।

> तुम हो राधा के मनमोहन,
> मैं उन अधरों की वेणु।···
> तुम मदन पंच शर हस्त
> और मैं हूँ मुग्धा अनजान···
> तुम नाद वेद ओंकार सार,
> मैं कविशृंगार शिरोमणि। (परिमल, पृ. ७७-७८)

ज्ञान और शृंगार की यह समन्वय-क्रिया निराला ने सूरदास तथा वैष्णव कवियो से सीखी थी।

'यमुना के प्रति' रचना मे सूरदास का प्रभाव और भी स्पष्ट है। कविता का साँचा छायावादी है—पुरातन काल का स्वप्न देखने का ढंग, शब्द-चयन, अभिव्यजना शैली आदि—उसमे-जगह-जगह निराला ने रंग भरे हैं सूरदास के चित्रों के। नटनागर श्याम, वंशीवट, पनघट, रासलीला के दृश्य—सारे मूर्तिविधान पर सूरकाव्य की छाप है।

> कहाँ सूर के रूप-बाग़ के
> दाड़िम, कुद, विकच अरविन्द,
> कदली, चम्पक, श्रीफल, मृगशिशु,
> खंजन, शुक, पिक, हंस, मिलिन्द! (उप., पृ. ५५)

यहाँ सूरदास के पदों का सीधा स्मरण है। वह **मुकुलित लावण्य लुप्त मधु**—इस तरह की पद-रचना पर सूरदास से अधिक बंगाल के वैष्णव कवियो का प्रभाव है। जहाँ-तहाँ उन्हें विहारी की भी उक्ति-चातुरी, चित्रण-कौशल पसंद है यद्यपि निवन्धों में विहारी के प्रति विरोध-प्रदर्शन ही अधिक है।

एक रूप में कहाँ आज वह
हरि मृग का निर्वैर विहार,
काले नागों से मयूर का
वन्धु-भाव, सुख सहज अपार। (उप., पृ. ५५)

नाग और मयूर का बंधुभाव उन्हे वहुत पसंद आया। अन्य कविता मे भी उसका उल्लेख किया किन्तु कुछ फर्क करते हुए। 'यमुना के प्रति' मे नाग-मयूर मिलन सुखजन्य किया है, 'मित्र के प्रति' में वह दु.खजन्य है जैसा कि उसे होना चाहिए :

गये सूख भरे ताल,
हुए रूख हरे शाल,
हाय रे, मयूर व्याल
पूँछ से जुड़े। (अनामिका, पृ. ११)

निराला ने सूरदास जैसे भक्त कवियों को ही नही, विहारी जैसे रीतिवादी कवियों को भी पढा था। पद्माकर के कवित्त उन्हें विशेष प्रिय थे। **सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंग रंग, अंग अंग फैलत तरंग परिमल के**—इस तरह की ध्वनि-तरंगें निराला की चित्तवृत्ति के अनुकूल थी और उनकी प्रतिध्वनि जहाँ-तहाँ **परिमल** में सुनी जा सकती है। उन्होने व्रजभाषा में जव-तव कुछ पद लिखे थे, 'मतवाला' काल मे अनेक कवित्त भी रचे थे। किन्तु व्रजभाषा से अधिक उनके मन पर छाप थी 'रामचरितमानस' की भाषा की।

निराला ने अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ से तुलसीदास के ज्ञान-पक्ष का समर्थन आरंभ किया था। अपने भाषणो और लेखों में उन्होंने तुलसीदास की मान्यताओ का विवेचन किया। निराला और तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व में जो भेद और वैपम्य है, वह काफी स्पष्ट है। सिद्धकवि तुलसीदास की पवित्र मूर्ति के सामने निराला श्मशानवासी अघोरी जैसे लगते है, फिर भी दोनों मे कही आन्तरिक साम्य है, तभी निराला सहजभाव से तुलसीदास के आकर्षण से निरन्तर वँधे रहे। 'राम की शक्तिपूजा' को छोड़कर उन्होने उदात्त स्तर पर जिस कविता को रचने मे अपनी पूरी ताकत लगा दी, वह 'तुलसीदास' है। आप विचार करें, वँगला या अंग्रेजी मे कवियो पर लिखी हुई कितनी ऐसी रचनाएँ है जिनकी तुलना निराला के 'तुलसीदास' से की जा सकती है।

तुलसीदास ने सीता को राम के साथ जोड़कर माया की सकारात्मक भूमिका स्वीकार की। ब्रह्म व्यक्त है, अव्यक्त भी, अग्नि काष्ठ के बाहर है, भीतर भी, यह संसार जड़-चेतन गुण-दोपमय है, यह द्वंद्व पद्धति निराला के चिन्तन की विशेपता है और अपने विवेचन में उन्होंने तुलसीदास के इस दार्शनिक दृष्टिकोण की सही

व्याख्या की। तुलसीदास के हृदय में देश, भाषा, दीन-पीड़ित जनता के लिए अगाध स्नेह था; निराला ने अपनी कविता में उन्हें दीनजनों की चिन्ता करते हुए उचित दिखाया। अति विनम्र तुलसीदास—सारे संसार को सियाराममय जानकर प्रणाम करनेवाले तुलसीदास—के मन में आत्म-सम्मान की प्रवल भावना थी और विरोधियों पर जब उन्होंने प्रत्याक्रमण किया, तब बड़े सशक्त ढंग से। वह अत्यन्त दृढ आस्था के कवि थे, फिर भी दुःख सहते-सहते क्षुब्ध होकर उन्होंने इष्टदेव से कह ही दिया—**कियो न कछू करिबो न कछू कहिबो न कछू मरिबोई रह्यो है।** अन्तर्ज्वाला क्या होती है, वह अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने राम, लक्ष्मण और सीता को स्वप्न में देखा; अन्तर्ज्वाला का दाह प्रत्यक्ष अनुभव किया। **चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय**—यह अनुभव न कवीर के पास था, न सूरदास, चंडीदास और विद्यापति के पास। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास की करुणा वहिर्मुखी होकर कौसल्या, भरत आदि की ओर प्रवाहित है; 'विनयपत्रिका' में वह करुणा अन्तर्मुखी होकर तुलसीदास की ओर प्रवल वेग से प्रवाहित है। तुलसीदास के लिए भी कहा जा सकता है: उनकी दृष्टि जितनी वस्तुगत थी, उतनी ही आत्मगत।

तुलसीदास अपने काव्य-सौन्दर्य के प्रति सचेत, बड़े सजग कलाकार थे। उन्होंने इस सौन्दर्य की प्रशंसा में जो कुछ कहा है, उससे अधिक दूसरा कोई कह नहीं सकता। उनके काव्य में चरित्र-चित्रण से लेकर संवाद-लेखन तक नाट्यकला की अनोखी भंगिमाएँ हैं। वह तत्सम-प्रधान, समास-रचनायुक्त, उदात्त ध्वनि वाली पदावली रचते हैं, वह अत्यन्त कोमल, तद्भव और भदेस शब्दावली, लोकसंगीत के अनुकूल पदावली भी रचते हैं। भाव के साथ ध्वनि की तरंगें उठाने-गिराने में वह अद्वितीय हैं।

> उदित उदय गिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
> विकसे सन्त सरोज सब, हरखे लोचन भृंग।

द-ग-ज-ब का वर्ण-चमत्कार, मंच-पतंग-संत-भृंग में उठान का भाव, उदयगिरि पर बाल पतंग के अभ्युदय का मूर्तिविधान, सन्त-सरोज के विकसने, लोचन-भृंगों के हरखने में रूपक की सर्वांग-परिणति—निराला ने तुलसीदास की इस कला से बहुत कुछ सीखा है। शब्दों की मितव्ययिता के साथ एक से अधिक अर्थों का निर्वाह करते हुए रूपक-रचना में तुलसीदास कवि-गुरु हैं। निराला ने रूपक रचने की कला तुलसीदास से सीखी है।

तुलसीदास सुपठित मेधावी कवि थे। **नानापुराण निगमागम** के अलावा **क्वचिदन्यतोऽपि**—बहुत जगह से भाव, शब्द लेकर उन्होंने अपने काव्य को समृद्ध किया है। उनमें भाव-विह्वलता है, साथ ही विवेकशील व्यक्ति की निस्संग दृष्टि। उनकी मेधा कविता का साँचा तैयार करती है; भावविह्वलता के क्षणों में वह इस साँचे को भूलते नहीं। उन्हें कथा-रस के अलावा वाद-विवाद और ज्ञानचर्चा में आनंद आता है। वालकाण्ड का प्रारंभिक अंश और उत्तरकाण्ड का अधिकांश उनके कथा-रस-मुक्त, विचारक-विवेचक-दार्शनिक मन की आन्तरिक वृत्ति का

प्रमाण है। तुलसीदास को सर्वत्र समान कलात्मक सफलता नहीं मिली, 'रामचरितमानस' में भी स्तर-वैषम्य है। किंतु वह अत्यंत प्रयोगशील-कवि हैं; वाक्य-रचना, शब्दचयन, छंद-निर्वाह, काव्य-विधा— सर्वत्र वह भिन्न रचनाओं में अपने कलाप्रिय, नित्य-नव-सौन्दर्यान्वेषी मन का परिचय देते हैं। ये सारी विशेषताएँ भक्तकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से आधुनिक हिन्दी कवि निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व को जोड़ती हैं।

नील सरोरुह स्याम, तरुन-अरुन वारिज नयन।

तरुन, अरुन—ध्वनि की मनोहर आवृत्ति। तुलसीदास को अच्छी लगी। गीतावली में उन्होंने पद रचा :

विहरत अवध-वीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव-नील-नीरद-स्याम।
तरुन-अरुन सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान।
(तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ. २४४)

नील सरोरुह स्याम, नील-नीरद-स्याम; तरुन-अरुन वारिज नयन, तरुन-अरुन सरोज-पद। अवश्य ही 'गीतावली' का पद रचते समय तुलसीदास के मन में 'रामचरितमानस' का सोरठा गूँज रहा था। (आप समझते हो कि 'गीतावली' पहले लिखी गई थी, तो उनकी गूँज 'रामचरितमानस' में सुन लीजिए।)

निराला को यह तरुन-अरुन का जोड़ा बहुत ही प्रिय था। वह उसे कितनी कविताओं में, कितने नये संदर्भों में कितनी बार दोहरा रहे हैं, इसकी सुध उन्हें न थी।

तुम भी निज तरुण-तरंग खोल
नव-अरुण-संग हो लो। (परिमल, पृ. ३६)
साथ-साथ प्रिय तरुण अरुण के
अंधकार में छिपी अजान ! (उप., पृ. ४८)
कितनी ही तरुण-अरुण किरणें। (उप., पृ. ६४)
तरुण-अरुण जीवन-प्रभात विज्ञान। (उप., पृ. ८३)
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोल रही द्वार। (उप., पृ. १०७)
अलस, पंकज-दृग अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी। (गीतिका, पृ. २)
तनये, लीकर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण ! (अनामिका, पृ. ११७)
श्याम-अरुण-सित-तरुण-नयन की। (अर्चना, पृ. २४)
काँपे तन तरुणी-तरुणों के,
प्रातः खुले अधर अरुणों के। (सान्ध्य काकली, पृ. ६१)

'तुलसीदास' में अरुण के साथ तरुण की जगह तरुणा है :

लखती ऊषारुण, मौन, राग;
सोते पति से वह रही जाग;
प्रेम के फाग में आग त्याग की तरुणा। (पृ. ३२)

अणिमा में तरुणा के साथ अरुणा है:

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा···
हो तुम्हारी किरण तरुणा। (पृ. १४)

तरुणा आग हिन्दी के लिए अस्वाभाविक प्रयोग है किंतु अरुण के साथ तरुण न जमे तो तरुणा सही। अरुणा शक्ति का प्रयोग दर्शन-सम्मत है किंतु तरुणा किरण अस्वाभाविक है। तुलसीदास मे तरुण अरुण के सान्निध्य के कारण—और अपने सहज अनुप्रास-प्रेम के कारण भी—निराला अरुणा शक्ति के वज़न पर तरुणा किरण लिखते हैं। अरुण से अरुणिमा बनाकर तरुण के साथ बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है एक गीत में—

तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर। (**गीतिका**, पृ. ४९)

अरुणिमा को अरुणाई-रूप में और भी मधुर बनाकर उसका प्रयोग तरुण के साथ अन्य गीत मे है—

फूटी तरुण अरुणाई,
कि छुट गई और सगाई। (**आराधना**, पृ. ९४)

तुलसीदास की प्रसिद्ध पंक्ति है: **खसी माल मूरति मुसकानी**। जो मूर्ति मुसकराती है वह पार्वती की है। निराला अपनी कल्पना में महावीर की मूर्ति को मुसकराते देखते हैं। 'भक्त और भगवान्' में भक्त ने कमल के फूलो से महावीर को सजाया। स्वप्न मे उसने देखा, "महावीरजी की वही भक्ति मूर्ति सामने मुसकराती हुई खड़ी है।" (**चतुरी चमार**, पृ. ७४) बिल्लेसुर महावीर से कहने गए कि उनकी बकरियों की रखवाली करते रहें; "तुलसीदासजी या सीताजी की जैसी अन्तर्दृष्टि न थी; होती तो देखते, मूर्ति मुसकराई।" (**बिल्लेसुर बकरिहा**, पृ. ४१) इस दोनो उल्लेखों मे जो मूर्ति मुसकराती है, वह देवी की नही, महावीर की है। एक गीत में निराला ने माला की जगह फूलो के खसने की बात लिखी है, मूर्ति प्रच्छन्न है।

समझे से हिले विटप हँसकर,
चढ़े मञ्जु खिले सुमन खसकर। (**गीतिका**, पृ. ९९)

मूर्ति कुछ समझकर हँसे और माला खसे, इसके बदले विटप हँसते है, सुमन खसते है। किंतु 'चढ़े' की सार्थकता क्या है? जो सुमन खसे, वे चढ़ाए गए हैं। इसलिए मूर्ति प्रच्छन्न है, मानना होगा: शृंगार भाव के गीत में माला की जगह साड़ी खसी:

खिची खसी साड़ी की मुख छवि। (**गीतगुंज**, पृ. ३८)

तुलसीदास का एक प्रिय शब्द है—**मग। लोचन मग रामहि उर आनी; धरि धीर दिए मग में पग द्वै**। निराला भी, आधुनिक हिंदी कविता मे परित्यक्त, इस शब्द का प्रयोग बार-बार करते है:

शत-शत वर्षों का मग
हुआ पार देश का, न
हुए प्राण सार्थक जग। (गीतिका, पृ. ७६)
मग में पिक-कुहरित डाल-डाल। (तुलसीदास, पृ. ४०)
अहंकार के बाँध बँधा मग (अर्चना, पृ. ७)
साधो मग डगमग पग। (उप., पृ. १४)

मग जैसे ठेठ हिन्दी शब्दों के साथ तुलसीदास कठिन तत्सम शब्दों का प्रयोग ही नही करते वरन् सामने संयुक्ताक्षर आने पर पूर्ववर्ती शब्द के अंतिम ह्रस्व वर्ण को दो मात्राओं का समय भी देते हैं। **जयति जय वालकपि-केली-कौतुक-उदित-चंड-कर-मंडल-ग्रासकर्ता**। (तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ. ३९०) पंक्ति की गति दुरुस्त होती है जब आप पढ़ें **मंडलग्-ग्रासकर्ता**। **जयति पर-जंत्र मंत्राभिचार (ग्) प्रसन, कारमनि कूट कृत्यादि हन्ता**। (उप., पृ. ३९१) **साकिनी, डाकिनी पूतनाप्रेत बैताल भूत (प्) प्रमथ-जूत-जंता**। (उप.) हिंदी की उच्चारण पद्धति का उल्लंघन इसी तरह निराला ने किया है। व्याकरण के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कैसी स्वच्छन्दता वरती है, विशेपकर 'रामचरितमानस' में, उसका विस्तृत विवेचन होना चाहिए। यहाँ इतना ही कहना काफी है कि 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने, गीतिका, तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा में निराला ने भाषा गढ़ी है और इस गढ़न्त में कुछ विशेषताएँ सामान्य हैं।

शब्दध्वनि-प्रेम तुलसीदास और निराला में सामान्य है; ध्वनि पहले, व्याकरण वाद को। **ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल** (उप., पृ. ३८५)। यहाँ ललाट को लल्लाट किया है एक मात्रा वढ़ाने के लिए; ललित के साथ ललाट का शुद्ध या अशुद्ध रूप मे आना ज़रूरी था। **रवन गिरजा, भवन भूधराधिप सदा, स्रवन कुंडल, वदनछवि अनुपम्** (उप., पृ. ३८५)। रवन गिरजा टेढ़ी समास रचना है, **उमा रमन करुना अयन** की सीधी पद्धति के विपरीत। किंतु तुलसीदास रवन, भवन, स्रवन के ध्वनि-खंड सजा रहे हैं; रवन गिरजा के पहले आए, तभी ध्वनि-प्रवाह दुरुस्त होता है। कही-कही पूरी पंक्ति-की-पंक्ति समास वन जाती है: **पुष्पकारूढ़-सौमित्रि-सीता-सहित-भानु-कुल-भानु-कीरति-पताका**। (उप., पृ. ३९१) पुष्पक विमान पर चढ़े हुए लक्ष्मण सीता सहित राम की कीर्तिपताका जो हैं, वह महावीरजी। छंद की सहज गति में व्याघात पैदा करके ध्वनि के अवरुद्ध प्रवाह को ऊपर उठाना तुलसीदास की विशेष कला है। वह सीधे सरल प्रवाह की पंक्तियाँ रचते हुए दो-चार जगह वीच मे यह कारीगरी दिखा जायँगे। यह कला 'विनयपत्रिका' में है, 'रामचरितमानस' में भी। पंक्तियाँ यों चलती हैं:

जरत सुरलोक नरलोक शोकाकुलं···
भस्म तनु भूषणं व्याघ्रचर्माम्वरं···
डाकिनी शाकिनी खेचरं भूचर···

इसके वाद—

पाप संताप घनघोर संसृतिदीन...

पुनश्च:

पाहि भैरवरूप रामरूपी भद्र... (उप., पृ. ३८५)

ऐसे ही चौपाइयों में :

जे जनमे कलिकाल कराला...

चलत कुपंथ वेद मग छाँड़ें...

फिर ध्वनि की नई भंगिमा :

वंचक भगत कहाइ राम के।

किंकर कंचन कोह काम के। (बालकाण्ड)

सानुप्रास पदों की लड़ियों से जैसा प्रेम तुलसीदास को है, वैसा शायद ही किसी भक्त को हो।

जलज-नयन, गुन अयन, भयन रिपु...

(तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ. ३८३)

कोक गत सोक अवलोकि ससि

छीन छवि... (उप., पृ. २४२)

सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,

भागे जंजाल विपुल, दुख कदंव दारे।

तुलसिदास अति अनंद, देखिकै मुखारविंद,

छूटे भ्रमफंद परम मंद द्वंद्व मारे। (उप., पृ. २४३)

निराला एक चरण के अंतिम ध्वनिखंड को दूसरे चरण के आरंभ में दोहराते हैं :

समर में अमर कर प्राण

गान गाए महासिन्धु से...

किसने सुनाया यह दुर्जय संग्राम राग

फाग था खेला वारहों महीनों में। (परिमल)

यह कला तुलसीदास में है :

रुचिर मधुर भोजन करि, भूपन सजि सकल अंग,

संग अनुज वालक सव विविध विधि सवारे...

तुलसिदास सँग लीजै, जानि दीन अभय कीजै,

दीजै मति विमल गावै चरित वर तिहारे।

(तु. ग्रं., दूसरा खंड, पृ. २४३)

तुलसीदास का यह ध्वनि-प्रेम चित्त को निखारने, भाव-व्यंजना को उभारने में सहायक होता है। कैकेयी कोप कर रही है; राजा दशरथ सभय उसकी ओर हाथ वढ़ाते हैं :

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।

हाथ का वढ़ना, कैकेयी का वरजना—दोनों क्रियाएँ ध्वनि की लघु लहरियों से व्यंजित हैं। किंतु जव कैकेयी क्रुद्ध होकर दशरथ की ओर देखती है तव ध्वनि-रेखा

तेज़ी से वल खाकर ऊपर उठती है :

मानहुँ सरोप भुअंगभामिनि विषम भाँति निहारई।

उसके बाद दीर्घ आकार की आवृत्ति से सर्पिणी की निकली हुई जीभों का चित्र :

दोउ वासना रसना दसनहित मर्म ठाहरु पेखई।

अंतिम पंक्ति में स्वर का उतार; दशरथ की असहाय, दयनीय अवस्था का चित्र :

तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम कौतुक लेखई।

निराला ने भावोत्कर्ष के साथ ध्वनि के उतार-चढ़ाव की यह कला तुलसीदास से सीखी है।

हिन्दी के लोकसंगीत पर आधारित इस छंद का प्रयोग तुलसीदास ने वहुत जगह और भिन्न प्रसंगों में किया है। करुणा के प्रसंग में :

अनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नही।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाव जहँ पाउव तहीं।

(वालकाण्ड)

हास्य के प्रसंग में :

गारी मधुर सुर देहिं सुंदर विंग्य वचन सुनावही।
भोजन करहिं सुर अति विलंव विनोद सुनि सचुपावही। (उप.)

निराला—सीधे लोकसंस्कृति के सन्दर्भ में :

फिर लगा सावन सुमन भावन, झूलने घर घर पड़े;
सखि, चीर सारी की सँवारी झूलती, झोके वड़े।
वन मोर चारों ओर वोले, पपीहे पी पी रटे।
ये वोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हटे।

(आराधना, पृ. ९६)

लोकसंगीत की अंतर्धारा दोनों कवियों के छंदों में प्रवाहित है।

निराला जव लिखते हैं :

वढ़ वढ़ कर वहती पुरवाई;
धुन मलार कजली की छाई। (गीतगुंज, पृ. ३३)

तव वह तुलसीदास की चौपाइयों की मिठास खड़ी वोली में ले आते है। किंतु जव वह तुलसीदास की अवधी को खड़ी वोली का रूप देते है, तव वह भाषा न निराला की होती है, न तुलसीदास की :

महामोह तम पुञ्ज, जिनके वच रविकर-निकर।

जव 'वच' से बचत नहीं तव 'जासु' ने ही क्या विगाड़ा था ?

वन्दूँ गुरु पद, पद्म परागूँ।
सुरुचि, सुवास, सरस, अनुरागूँ।

अनुरागूँ क्रियारूप के साथ परागूँ जोर-जवर्दस्ती से।

अमिय मूल सित चूर्ण चारुतर।
सकल रोग परिवार भारहर।

चूरन रूप खड़ी वोली को स्वीकार है। उसे **चूर्ण** वनाकर भद्र रूप दिया है। निराला को तुक मिलाने मे दिक्कत होती ही थी; अवधी को खड़ी वोली वनाते समय जहाँ तुक मिलाने में कठिनाई हुई, उन्होंने अवधी का मूल रूप ज्यों-का-त्यों रहने दिया। **सत संगति महिमा नहि गोई**—इसे वदलकर लिखा—**महिमा सत्संग की न गोई!** गोई ज्यों-का-त्यों रहा। निराला के **प्रजननी, वशकरणा, मलहरणा, ज्योति स्फुर** आदि प्रयोग हिंदी के लिए अस्वाभाविक हैं, उनसे पनाह माँगकर जो 'रामचरितमानस' न पढता होगा, वह पढ़ेगा। तुलसीदास की भाषा को सँवारना निराला के वश मे नही है; वह उसे विगाड़ ही सकते थे। रामायण के अनुवाद में उन्होने यही किया है।

किंतु जहाँ तुलसीदास की कला से प्रेरणा लेकर काव्य रचा है, उन्हें आधुनिक वनाने की जगह उनके कलात्मक वैभव से अपनी आधुनिकता को सँवारा है, वहाँ उनकी कला का उत्कर्ष दर्शनीय है। न केवल मधुर ललित सानुप्रास पदावली की रचना उन्होंने तुलसीदास से सीखी है, वरन् 'राम की शक्तिपूजा' की उद्धृत ध्वनि-तरंगें निराला ने 'विनयपत्रिका' में देखी-सुनी थी,

> वद्ध वारिधि सेतु अमर मंगल हेतु···
> यातु धानोद्धत क्रुद्ध कालाग्निहर···
> लोम विद्युल्लता ज्वालमाला···
> प्रलयपावक महाज्वाल माला वमन···
> त्रिपुर मद भंगकर, मत्तगज चर्मधर···
> सिंधुसुत गर्व गिरिवज्र गौरीस भव···
> सुखद नर्मद वरद विरज अनवद्यऽखिल···
> प्रवल भुजदंड परचंड कोदंडधर···
> दुर्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्ग अपवर्ग-पति···

निराला ने ध्वनि-संरचना की जो कला तुलसीदास से सीखी, उसका पूर्ण विकास 'राम की शक्तिपूजा' में है।

निराला ने तुलसीदास से वहुत कुछ सीखा, कुछ आधुनिक हिंदी कवियों से भी सीखा। **परिमल** की अनेक रचनाओ मे मैथिलीशरण की शैली की छाप है :

> मिष्ट है पर इष्ट उनका है नही
> शिष्ट पर न अभीष्ट जिनका नेक है। (पृ. ८९)

कही नाथूराम शर्मा शकर की अक्खड़ पद-रचना की प्रतिध्वनि है :

> चूम चरण मत चोरों के तू,
> गले लिपट मत गोरों के तू,
> झटक-पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान।

(८ सितम्वर, १९२३ के मतवाला में 'निराला' छद्मनाम के साथ प्रकाशित कविता—**गये रूप पहचान**)। जहाँ-तहाँ वेताव और सनेही का रंग है :

सुनो अहा फूल,
जबकि यहाँ दम है,
फिर क्या रंजोगम है··· (परिमल, पृ. ६५)

'यमुना के प्रति', 'वसन्त समीर' जैसी कुछ कविताओं में उन्होंने पंत की शैली का अनुकरण किया है।

गन्धलुब्ध किन अलिबालों के
मुग्ध हृदय का मृदु गुञ्जार—(उप., पृ. ४१)

यह शब्दयोजना, लालित्य की यह रीति पंत की है, निराला की नही। **कनक प्रभात, सकाल** जैसे कुछ शब्दो का प्रयोग, **कोरों में निजनयन मरोर** जैसी पंक्तियों में मूर्तिविधान पंत की छाप लिए है। निराला की जिन कविताओं में भावुकता अधिक है, उनमें पत की कोमलकान्त पदावली का प्रभाव भी अधिक है। **परिमल** की इन रचनाओं के वाद उस तरह का प्रभाव निराला की वाद की रचनाओं में नही दिखाई देता।

प्रसाद का यह 'अत्यन्त सुन्दर पद' उन्हे वहुत प्रिय था, उसे **गीतिका** की भूमिका में उद्धृत किया है :

चढ़कर मेरे जीवन रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर,
मैंने निज दुर्वल पद वल पर
उससे हारी होड़ लगाई।

इसी भाव को थोड़ा-सा वदलकर उन्होने अपने गीत में रचाया है :

जीवन के रथ पर चढ़कर,
सदा मृत्यु-पथ पर वढ़कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर। (**गीतिका**, पृ. २०)

किंतु यह सव 'क्वचिदन्यतोपि' है। निराला की रचना-प्रक्रिया और काव्य-कौशल पर जिस कवि का सवसे अधिक प्रभाव है, वह है तुलसीदास।

६

युग और व्यक्तित्व

प्रथम महायुद्ध के वाद उपनिवेशों के स्वाधीनता-आन्दोलन में शक्तिशाली उभार आया। भारत इन उपनिवेशों में सवसे वड़ा, ब्रिटिश साम्राज्य का मुख्य आधार

था। अंग्रेज़ों के झूठे वादों से ऊबकर, उनके दमन से क्षुब्ध होकर विभिन्न वर्ग स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए नए कारगर तरीके ढूँढ़ रहे थे। आन्दोलन के तरीके तभी कारगर हो सकते थे जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मुख्य सहायकों—राजाओं, जागीरदारों और ज़मीदारों—की ताकत पर ज़ोरदार प्रहार किए जाते। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में बहुत तरह के अन्तर्विरोध थे। हर पार्टी, नेतृत्व, विचार-धारा के क्रान्तिकारीपन की कसौटी यह थी कि वह भारत की बहुसंख्यक जनता—किसानों—को सम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में किस हद तक गोलबंद करती है। किसान-आन्दोलन के द्वारा ही साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार नष्ट किया जा सकता था, जो सामन्ती शक्तियाँ साम्प्रदायिकता उभारकर राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट डाल रही थी, उन्हे बेकार किया जा सकता था। भारत मे एक छोटा-सा मज़दूर वर्ग था; यदि वह संगठित होता तो वह किसान आन्दोलन को उचित नेतृत्व दे सकता था। किंतु उपनिवेशों में क्रांति की मुख्य शक्ति किसान रहे हैं, कारण कि साम्राज्यवादी शोषण का सबसे ज्यादा असर उन पर होता था, साम्राज्य-वाद के मुख्य सहायकों—सामन्तों—से सीधा किसानों का स्वार्थ टकराता था। भारत के जिन प्रदेशों में किसान-आन्दोनन की जैसी प्रगति रही है, उसके अनुरूप उनके साहित्य के विकास की दिशा भी निर्धारित हुई है।

यह आकस्मिक बात नही है कि किसान-जीवन के सबसे बड़े भारतीय चित्र-कार प्रेमचन्द उस प्रदेश के रहने वाले थे जिसमें किसान-आन्दोलन सबसे सशक्त था। किसान-जीवन को आधार बनाकर उन्होंने भारतीय साहित्य में नये यथार्थवाद का विकास किया। यह भी आकस्मिक बात नही है कि निराला ने 'बादलराग' में किसान से क्रान्ति का सम्बन्ध जोड़ा। जिन प्रदेशों में किसान-आन्दोलन कमज़ोर था, वहाँ राष्ट्रीय चेतना में गहराई कम थी। ऐसी गहराई स्वाधीनता आन्दोलन के सामन्त-विरोधी पक्ष को समझने-बूझने से पैदा होती है। साहित्य मे यथार्थवाद का विकास करने के बदले किसान-जीवन से कटे हुए साहित्यकार अतीत के सुनहले चित्र आँकते है, वे कल्पना की रंगीन दुनिया खड़ी करते हैं और उसे पश्चिमी भौतिकवाद से श्रेष्ठ बताकर राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की भावना को तुष्ट करते हैं। ये प्रवृत्तियाँ हिन्दी साहित्य में थी, उनसे टकरानेवाली यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ भी थीं।

प्रेमचन्द और निराला—दो परस्पर विरोधी से साहित्यकार लगते हैं किन्तु किसान-जीवन से इन दोनों का गहरा संपर्क था और यही उन्हें मिलाने वाली कड़ी है। प्रेमचन्द ने कायाकल्प लिखा था जिसमें उनके परम्परागत अंधविश्वासों की झलक है, निराला ने अप्सरा लिखा जिसमें उनके छायालोक की तसवीर है। फिर भी प्रेमचन्द-साहित्य की मुख्य दिशा यथार्थवादी है; संयुक्त परिवार के प्रति अटूट आकर्षण से बँधे रहने पर भी वह उसका टूटना बड़े सफल ढंग से दिखाते हैं। निराला को संयुक्त परिवार से वैसा मोह नहीं है; वह भैयाचारों की लूट-खसोट का व्यंग्यपूर्ण चित्रण करते है। प्रेमचन्द ने किसान-ज़मीदार संघर्ष के अपूर्व चित्र

खींचे है; अंग्रेज़ी राज की पूरी ताकत ज़मीदारों की सहायता के लिए कैसे सिमट आती है, इसकी पूरी कैफियत दी है। निराला ने वैसे वड़े चित्र नहीं दिये किंतु सामन्त-विरोधी आन्दोलन के दौरान जो समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, उनका और गहराई से चित्रण किया है। दोनों ही लेखकों मे सामाजिक रूढ़ियो को तोड़ने की वेतावी है, निराला में कुछ अधिक। हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करने के तरीके निराला के यहाँ ज्यादा क्रांतिकारी है। प्रेमचन्द पूरी तरह गाँधीवादी कभी नही रहे, अपनी यात्रा की आखिरी मंजिल मे वह गाँधीवाद के प्रभाव से मुक्त थे। निराला अपने युग के अधिकांश लेखकों की तुलना में गाँधीवाद के प्रभाव से सर्वाधिक मुक्त थे। मुक्त होने का अर्थ सामन्त-विरोधी आन्दोलन से विमुख होना नही था, उसे और सशक्त वनाने के लिए प्रयत्नशील होना था।

निराला के चिन्तन की यह विशेषता थी कि वह राजनीतिक-सामाजिक-साहित्यिक आन्दोलनों को एक ही संवद्ध इकाई के विभिन्न पक्षों के रूप में देखते थे। स्वाधीनता आन्दोलन की विजय के लिए वह समाज और साहित्य मे व्यापक परिवर्तन चाहते थे। अंग्रेज़ी राज खत्म न होगा जव तक ज़मीदारी खत्म न होगी, ज़मींदारी खत्म न होगी जव तक किसान सगठित न होगे, किसान संगठित न होगे जब तक उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव वना रहेगा, इसके लिए क्रांतिकारी युवकों को किसानों के वीच रहकर उनमे शिक्षा-प्रचार करना चाहिए, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने मे उनकी सहायता करनी चाहिए। राष्ट्र के पूरे विकास के लिए स्त्री को स्वाधीन और शिक्षित होना चाहिए, हिंदुओं और मुसलमानो को आपसी भेदभाव भूलकर नहीं, धार्मिक भेदभाव मिटाकर, नयी मनुष्यता की भूमि पर एक होना चाहिए। निराला की विचारधारा के अध्ययन का यह महत्त्व है कि स्वाधीनता आन्दोलन के विभिन्न पक्ष कैसे एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह समझने का अवसर मिलता है; उससे निराला-साहित्य के विकास को हम ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं।

निराला-साहित्य में देवी सरस्वती है, लक्ष्मी है, महावीर है, निर्गुण व्रह्म है। इन सवका अधिष्ठान भारत क्यों है? खेतों की लहराती हुई हरियाली को देवी सरस्वती क्यों कहते हैं? वाल्मीकि-कालिदास से लेकर लोकगीतों तक यह विराट् वाङ्मय सरस्वती से कैसे संवद्ध हो जाता है? महावीर की मूर्ति में निराला को भारत रूप कैसे दिखाई देता है? राम शक्तिपूजा के समय शक्ति की 'मौलिक' कल्पना क्यों करते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि निराला का छायावाद स्वाधीनता आन्दोलन से कटा हुआ नही, उससे प्रेरित है। देवी रूप में भारतमाता की वंदना वहुतो ने की है; महावीर और सरस्वती में भारत को देखना निराला का काम है। निराला के लिए स्वाधीनता का अर्थ धनी वर्गों की खुशहाली नही है; इसलिए भारतरूपा देवी सरस्वती में उन्हें किसान-जीवन के दृश्य दिखाई देते हैं।

निराला ने भारत के अतीत पर, वेदान्त ज्ञान पर अनेक कविताएँ लिखी है।

अन्य रहस्यवादियों की अपेक्षा इनमें युद्ध की ललकार क्यों अधिक सुनाई देती है ? कारण यह है कि निराला का वेदान्त स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरित होकर नए-नए अर्थ ग्रहण करता है। वेदांत स्वाधीनता आंदोलन के लिए ही प्रेरक शक्ति नहीं है, वह सभी तरह की सामाजिक रूढ़ियों के नाश के लिए समर्थ प्रेरणा भी है। वेदान्त की व्याख्या लोग तरह-तरह से करते है, निराला की व्याख्या सबसे क्रान्तिकारी क्यों है ? इसलिए कि सामन्त विरोधी किसान आन्दोलन से उनका सम्बन्ध औरों से गहरा है।

निराला पौराणिक रूपकों को नया अर्थ देते हैं, देवी-देवताओं को प्रतीक रूप मे इस्तेमाल करते है, पुरानी आस्थाओं पर जब-तब कड़ी चोट भी करते है। इसका कारण यह है कि वह जनसाधारण को रूढ़ियों से मुक्त करना चाहते हैं, इसके लिए सास्कृतिक क्रान्ति को उतना ही आवश्यक समझते है जितना सामाजिक क्रान्ति को।

निराला के चिन्तन में अनेक अन्तर्विरोध हैं, वे वेदान्त की परस्पर-विरोधी व्याख्याएँ करते है। देश में प्रचलित अनेक तरह के दार्शनिक प्रभाव, समाज से प्राप्त संस्कार इन अन्तर्विरोधों को जन्म देते हैं। निराला में एक विचारधारा बड़ी प्रबल है, वह यह कि प्रकृति ही एकमात्र सत्य है। प्रकृति सत्य है, इसलिए मानव-जीवन सत्य है, नारी का सौन्दर्य, पुरुष और नारी का प्रेम सत्य है। इस तरह निराला का भावबोध उनकी विचारधारा से जुड़ा हुआ है, प्रकृति और नारी से सम्बन्धित उनकी रचनाएँ उनकी विचारधारा से संपृक्त हैं।

भारत को आधुनिक प्रगतिशील राष्ट्र बनाने के लिए निराला विचारधारा मे परिवर्तन चाहते हैं। परिवर्तन की यह आकांक्षा उन्हें बाध्य करती है कि वे बहुत-सी मान्यताओ को संदेह की दृष्टि से देखें। किन्तु निराला का महत्त्व संदेहवादी मात्र होने में नही है। उनकी विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान-सम्मत सकारात्मक पक्ष है। पूर्ण ज्ञानमय ब्रह्म की सत्ता अस्वीकार करके वह प्रकृति को एकमात्र सत्य मानते है, इस परिवर्तनशील प्रकृति को शून्य अथवा आकाश में लय कर देते है, उस आकाश को ऊर्जा मे, ऊर्जा को पदार्थ में परिवर्तित होते दिखाते है।

साहित्य में किसी भी सामाजिक आन्दोलन की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो तरह की होती है। हमारी भाषाएँ पिछड़ी न रहें, हमारा साहित्य किसी से घटकर न हो, यह प्रेरणा न्यूनाधिक मात्रा में उस युग के सभी साहित्यकारों को स्वाधीनता आन्दोलन से मिली थी। बहुजातीय राष्ट्र की विशेष परिस्थितियों में यह भाव भी जाग्रत हुआ कि भारतीय भाषाओं में अमुक भाषा का साहित्य सबसे समृद्ध है अथवा यह कि हमारी भाषा को दूसरे अपमानित न करें। निराला में हिन्दी जातीयता की प्रेरणा राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रेम से अभिन्न रूप में जुड़ी हुई है। इस राष्ट्रीय-जातीय प्रेरणा का एक फल यह है कि निराला हिंदी साहित्य को रीतिवादी रूढ़ियों से मुक्त करके उसे आधुनिक रूप देना चाहते है। भाषा और

काव्य में नये-नये प्रयोग इस भावना का परिणाम हैं। इस तरह स्वाधीनता आन्दोलन अप्रत्यक्ष रूप से उनके साहित्य के विकास की प्रेरणा बनता है।

कवि कल्पनाशील प्राणी होता है। जो कल्पना की दुनिया में रहता है, उसे सामाजिक आंदोलनों से क्या लेना-देना है? सभी कवियों की कल्पना एक-सी नही होती। कोई कल्पना के बल पर 'राम की शक्तिपूजा' लिखता है, कोई धरती-आकाश को स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरणों से भर देता है। दोनों में बड़ा अन्तर है। ऐसा क्यों होता है? जैसा हमारा व्यक्तित्व है, जैसा हमारा सामाजिक जीवन है, वैसी हमारी कल्पना होती है। जैसे व्यक्तित्व और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है, वैसे ही कल्पना और यथार्थ का। आदमी सपने में जो कुछ देखता है, वह यथार्थ का ही परिवर्तित रूप होता है। जिसके पास जैसा यथार्थ होगा, कल्पना से उसी को परिवर्तित करके तो पेश करेगा? निराला की कल्पना अत्यन्त सशक्त है; इसका एक कारण यह है कि उनका यथार्थ-बोध बहुत तगड़ा है।

निराला के अपने साहित्य में ही कल्पना के अनेक भेद दिखाई देते है। कहीं तो कल्पना उन्हें छायालोक में उठा ले जाती है जहाँ वे इच्छापूर्ति के सपने देखते हैं; कहीं वह यथार्थ-बोध को ही और गहरा करती है, जो दिखाई देता है, उसकी तह तक कवि के मन को पहुँचाती है, प्रभावशाली चित्रो द्वारा यथार्थ अनुभव को परिवर्तित रूप में व्यक्त करती है। इसका कारण निराला के व्यक्तित्व के अन्त-विरोध हैं, उनके मन पर विभिन्न साहित्यिक-सांस्कृतिक धाराओं की छाप है। इनमें कुछ धाराएँ मनुष्य को जीवन-संघर्ष से विमुख करती हैं। दूसरी धाराएँ जीवन-संघर्ष की ओर उन्मुख करती हैं। जो मन जीवन-संघर्ष की ओर उन्मुख होता है, वह सामाजिक आंदोलनों से कतराता नही है। निराला जहाँ सीधे सामाजिक आन्दोलन का चित्रण करते हैं और जहाँ कल्पना के सहारे किसी आन्तरिक वाह्य संघर्ष का चित्रण करते है, दोनों में आन्तरिक संगति रहती है, संघर्ष का स्वर दोनों जगह सुनाई देता है। कल्पना और सामाजिक आन्दोलनो में यह सम्बन्ध है।

स्वाधीनता-आन्दोलन के सुधारवादी नेतृत्व ने लोगो को यथार्थ की कठोरता का सामना करना, उससे जूझने के उपाय निकालना नहीं सिखाया। वह यथार्थ पर मन लुभाने वाला मुलम्मा चढ़ाकर जनता को झूठे आश्वासनों से बहलाता था, उसे चमत्कारों पर विश्वास करना सिखाता था। बहुत कम ऐसे लेखक हैं जिन पर उस युग के नेतृत्व की इस भावदृष्टि का असर न पड़ा हो। निराला ने मनुष्य की आत्मग्लानि और पीड़ा देखी, उसे त्रस्त और पराजित होते, अकेलेपन में भी जूझते देखा, तो इसका कारण उनकी विचारधारा है जो सुधारवादी नेतृत्व के अन्त-विरोधों से परिचित थी। अन्य कारण उनका अपना जीवन-संघर्ष है जो बार-बार कठिन प्रहारों से मन की प्रवञ्चनाएँ छिन्न-भिन्न कर रहा था। निराला ने संघर्ष मे सर्वत्र मनुष्य की विजय चित्रित करने के बदले उसकी ट्रैजेडी चित्रित की—ट्रैजेडी दुःखान्त हो, यह न यूनानी नाटककारों के लिए अनिवार्य शर्त थी, न

भवभूति और निराला के लिए। आत्म-पीड़ा से सुख पाने वाले कलाकार ट्रैजेडी का सृजन नही करते। ट्रैजेडी रचते हैं वे जिनमें जीवन के अन्तर्विरोधों को देखने की शक्ति होती है। उदात्त करुणा, संघर्ष की क्षमता, दुख का गहन वोध ट्रैजेडी के मूल उपकरण हैं। निराला को ये उपकरण सघन मात्रा में प्राप्त थे। वह अपने युग के सबसे बड़े ट्रैजिक कवि हैं।

साहित्य की आत्मा है रस। रस पैदा होता है भाव से। साहित्यकार भावों की दुनिया में रहते हैं। विशुद्ध रसात्मक साहित्य की सृष्टि करते हैं। उन्हें स्वाधीनता-आन्दोलन या अन्य किसी सामाजिक आन्दोलन से क्या सरोकार?

साधारण मनुष्यो मे भावात्मक प्रतिक्रिया तव होती है जव वे किसी वस्तु के सम्पर्क में आते हैं या उस तरह के सम्पर्क को कल्पना में याद करते हैं। कवि भी जव उर्वशी या शकुन्तला पर काव्य रचते हैं, तव यथार्थ जीवन के अनुभव को कल्पना से रँग-चुनकर पेश करते है। मनुष्य की भावात्मक प्रतिक्रिया उसके वस्तु सम्वन्धी ज्ञान से संवद्ध है। यह ज्ञान सीमित होगा, झूठा होगा, तो उससे संवद्ध भाव भी हल्के और प्रभावहीन होगे। महान् कवियों की भावगरिमा और हल्के कवियों की भावुकता में जो अन्तर होता है, उसका यही कारण है। निराला की भावशक्ति प्रवल है; इसका कारण उनका गहरा यथार्थ-वोध है। साहित्यकार का भावलोक उसके प्राकृतिक-सामाजिक परिवेश से कटा हुआ, कहीं अन्तरिक्ष में लटका हुआ नही होता; वह उस परिवेश से अभिन्न रूप में जुड़ा होता है। भक्ति और ज्ञान के समन्वय के विना कर्म व्यर्थ होता है; भावशक्ति और परिवेश के ज्ञान के विना साहित्य में रचना-प्रक्रिया भी व्यर्थ होती है।

इस तरह साहित्य में व्यक्त होने वाली भाव-प्रक्रिया साहित्यकार के सामाजिक जीवन से सम्वद्ध है।

साहित्यकार जिस भाषा का प्रयोग करता है वह उसे समाज से, पूर्ववर्ती साहित्यकारों से मिलती है। साहित्य में जो चित्र खीचता है—काव्य में जो विंव प्रस्तुत करता है—वे उसे जीवन से अथवा पुस्तकों से प्राप्त होते हैं। जहाँ नई भाषा गढ़ता है, नये विंव रचता है, वहाँ भी आधारभूत सामग्री उसे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से मिलती है। ऐसे ही कला के अन्य उपकरणों के वारे में समझना चाहिए। कुछ कवियों के विम्व वड़े सजीव और प्रभावशाली होते है, औरों के निर्जीव और प्रभावहीन। दुनिया को जैसी निगाह से, नज़दीक या दूर से आप देखेंगे, वैसा ही आपका मूर्तिविधान होगा। निराला की भाषा ओजपूर्ण है, उनके काव्य में नाट्यकला, वक्तृत्व कला की विशेषताएँ हैं, वह एक ओर कालिदास और तुलसीदास से कुछ तत्त्व ग्रहण करते हैं, दूसरी ओर लोकगीतों की धुनो से, उनकी भाषा, भावव्यंजना शैली से वहुत कुछ सीखते है। इस सारी क्रिया की प्रेरक निराला की तीक्ष्ण व्यापक दृष्टि है।

विचारधारा, भाववोध, कला—ये सव मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से सम्वद्ध हैं किंतु उसकी यांत्रिक प्रतिच्छवि नही है। न मनुष्य का

व्यक्तित्व सामाजिक सम्बन्धों का यांत्रिक परिणाम होता है, न उसका कृतित्व। साहित्य और कला की अपनी सापेक्ष रूप में स्वतंत्र सत्ता है, वैसी ही सापेक्ष रूप में स्वाधीन सत्ता है साहित्यकार की प्रतिभा की। वह दर्पण मात्र नहीं है, रचनाकार है। निराला के साहित्य-सर्जन में जैसी महत्त्वपूर्ण भूमिका उनके युग की है, वैसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका उनके व्यक्तित्व की है।

निराला प्रवंचनाओं के जाल में फँसते है, उन्हे तीक्ष्ण विवेक से बार-बार काटते भी हैं। उनकी विचारधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि समाज को अप्रिय लगने वाले विचारों से वह घबराते नहीं हैं, उन्हें बड़ी निर्भीकता से व्यक्त करते हैं। वह आधुनिक हिंदी के सबसे बड़े दार्शनिक कवि हैं, इसलिए नहीं कि उन्होंने किसी व्यवस्थित दर्शनशास्त्र की रचना की है, वरन् इसलिए कि उनके विचार समकालीन लोकप्रिय दार्शनिक व्यवस्थाओं की सीमाएँ तोड़ देते हैं। ये विचार तर्क-योजना का परिणाम मात्र नहीं है; वे उस भूमि पर उपजते हैं जहाँ काव्य का सूक्ष्म बोध अंकुरित होता है। रचनाकार की प्रतिभा ही ऐसे विचारों को जन्म देती है। निस्सन्देह अनेक कविताओं मे निराला दूसरों से लिए हुए दार्शनिक विचारों को काव्य की पोशाक पहनाते हैं और वह पोशाक उनके छोटी पड़ती है। ज्यादातर 'दार्शनिक' कवियों का यही हाल होना है। किंतु जहाँ निराला के विचार शास्त्र की सीमाएँ लाँघते हैं, वे काव्य रूप में ही प्रकट होते हैं, उन्हें काव्य की पोशाक पहनाना आवश्यक नहीं होता।

निराला मेधावी, चिंतनशील कवि हैं। उनकी कल्पनाशक्ति जैसी प्रबल है, वैसा ही प्रखर उनका विवेक है। स्वतःस्फूर्त भावोद्गारों के युग में वह निर्माण-कौशल के धनी कलाकार हैं। उनमें अप्रस्तुत वस्तुओं को प्रत्यक्षवत् देखने की अद्भुत शक्ति है, इसलिए अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा उनके मूर्तिविधान मे अमूर्त सूक्ष्मता नहीं, वास्तविक मूर्तिमत्ता है। इस मूर्तिविधान को प्राणवंत बनाने वाली उनकी अपूर्व भावशक्ति है। सुदृढ मेधा, सजीव कल्पना, सघन भावशक्ति—इनका अनुपम संयोग निराला के व्यक्तित्व की विशेषता है। उनकी दृढ इच्छाशक्ति उन्हें पूरी तरह टूटने से बचाए रखती है, उसी की देन है वह निस्संग दृष्टि जिससे हर परिस्थिति में वह स्वयं को सही रूप मे देख सकते हैं।

निराला बड़े साहसी कवि है। वे इच्छापूर्ति के सपने बुनते है, फिर उन्हे मिटा भी देते हैं। संघर्ष और मृत्यु से बचने के लिए मनुष्य ने जो तरह-तरह के काल्पनिक सहारे ढूँढ़ रखे हैं, निराला उन्हे ठुकराते चलते है। उनका काफी साहित्य ऐसा है जिसमें मनुष्य है, प्रकृति है किंतु देवी-देवता, स्वर्ग-नरक कुछ नहीं है। छायावादी कवियों मे सबसे अधिक इहलौकिकता निराला मे है।

निराला में जीने, जीवन का सुख पाने की अमिट आकांक्षा है। वह नारी और प्रकृति के सौन्दर्य के, मानव-उल्लास के कवि हैं। किन्तु उनका चरम उत्कर्ष इस तरह के काव्य में नहीं है। उनकी शोकानुभूति और भी गहरी है। इसके अलावा वेदना के तीव्र आघातों से जहाँ मन संज्ञाशून्य-सा हो जाता है, जहाँ शोक के भाव

परिवर्तित होकर दुःस्वप्न के चित्र बन जाते हैं, वहाँ मन की इस दशा को देखते हुए निराला काव्य रचते है। प्रत्येक समर्थ साहित्यकार बाहर और भीतर की दुनिया मे कुछ नया ढूँढकर हमें देता है। निराला ने मन की उपर्युक्त स्थिति का जो चित्रण किया है, वह उनकी अपनी देन है।

अन्तर्द्वन्द्व को देखने, भावो और विचारों के संघर्ष को मूर्त रूप देने की कला का चरम विकास 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' मे है। यह निराला की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

निराला के रचनाकार व्यक्तित्व की विशेपता है उनका ध्वनि सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान। भावशक्ति, कल्पना, मेधा, मूर्तिविधान —इनके साथ चलता है उनका ध्वनि-प्रवाह। जो बात शब्दों के कोशगत अर्थ से नही मालूम होती, वह उनके ध्वनि-प्रवाह से व्यक्त होती है। इस ध्वनि-प्रवाह के अनेक स्तर हैं, प्रत्येक स्तर विशेप भावबोध के स्तर से जुड़ा है, एक ही कविता में ध्वनि-प्रवाह के विभिन्न स्तर दिखाकर निराला भावो के संघर्ष या वैपम्य का चित्रण करते हैं। यह कला विरले कवियो मे भी देखी जाती है।

निराला का साहित्य हर जगह एक-सा नहीं है। कहीं उनका कलात्मक विवेक साथ नही देता, कही वह मेहनत नही करना चाहते। किन्तु जब मेहनत करते हैं तब पूरी ताकत से; चाहे गद्य हो चाहे कविता, जब तक सन्तोप न हो जाय, उसे छोड़ते नही हैं। उनकी श्रेष्ठ रचनाओ मे जैसा कसाव है, शब्दों की जैसी मितव्ययिता है, मूर्त विपय पर दृष्टि की जैसी पैनी एकाग्रता है, वह सब चमत्कार बड़े-बड़े कलाकारों मे ही देखने को मिलता है।

निराला में बहुत कुछ पढ़ने और जानने की बड़ी उत्कंठा थी। उनकी स्मरण-शक्ति अच्छी थी; जो पढते थे, याद रखते थे, इसके अलावा उसे घोखते भी थे। उनके अध्ययन मे संस्कृत कवियो से लेकर बंगाल के वैष्णव कवियों और रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक अनेक धाराएँ शामिल थी। उन्होने नये-पुराने हिंदी कवियों को पढ़ा और उनसे बहुत कुछ सीखा था। उन्होंने अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों के अलावा इलियट, औडेन आदि नये कवियों, पुरानों मे शेक्सपियर और मिल्टन, ऐसे ही बंगला में रवीन्द्रनाथ के साथ विष्णु दे को पढ़ा था। बंकिम, शरत् आदि के गद्य साहित्य, मैक्सिम गोर्की के कथा साहित्य से वह परिचित थे। अध्ययन वह कलाकार की दृष्टि से करते थे, किसी के साहित्य का विस्तृत विवेचन करने के लिए नही, वरन् उससे क्या सीखें, अथवा यह देखने के लिए कि प्रतिभा की टक्कर में वह कहाँ ठहरता है, इसलिए अध्ययन करते थे। यशप्राप्ति की आकाक्षा, उनके व्यक्तित्व की कमज़ोरी, जब-तब उन्हें दूसरों का अनुसरण करने पर मजबूर करती थी। इस तरह की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की विशेपताएँ उजागर नही हुई।

निराला मे भारतीय दर्शन की अनेक धाराएँ सिमट आई हैं। योग, सांख्य, शांकर वेदान्त के अलावा उनमें शैव और शाक्त धारणाएँ भी आ मिली हैं। वह भारतीय काव्य की पुरानी प्रगतिशील परंपरा से संबद्ध है, वह समकालीन बंगला

साहित्य की धारा से सम्बन्ध जोड़ते है, वह अंग्रेजी के काव्य साहित्य से भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उन्होंने उर्दू काव्य भी पढ़ा था, विशेप रूप से गालिव का अध्ययन किया था। इस व्यापक अध्ययन के चिह्न उनके साहित्य में कहीं प्रत्यक्ष, कहीं अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं।

निराला मुख्यत: कवि है। काव्य के स्तर पर ही उनकी प्रतिभा सवसे अधिक सक्रिय होती है। स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद निराला का गद्य लिखना प्राय: समाप्त हो गया। कविता लिखे विना वह रह न सकते थे, गद्य लिखे विना रह सकते थे। फिर भी उनका गद्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके क्रान्तिकारी विचार साफ-सुथरे ढंग से उनके निवंधों और टिप्पणियों में ही व्यक्त हुए हैं। उनके आलोचनात्मक निवंध साहित्यिक ही नहीं, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर भी हैं। ये निवंध उनकी काव्य-रचना के सहयोगी हैं। जो विवेचन गद्य में दस पन्ने लेता है, उसे वाद में कुछ पंक्तियों में संक्षिप्त करके वह कविता में सजा देते हैं। गद्य लेखन से विचारों को व्यवस्थित करने में उन्हें सहायता मिली। उनकी साहित्य-समालोचना रीति-विरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग है; जिस काव्य-परंपरा से निराला जुड़े हुए थे, उसका मूल्यांकन इस समालोचना में है। उसमें वाद-विवाद और तर्क-युद्ध का आनंद अलग है।

निराला के व्यक्तित्व की एक विशेषता उनकी हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति है। भावुक कवियों में यह प्रवृत्ति कम देखी जाती है। निराला के गद्य में, पद्य में भी, व्यंग्य की तीक्ष्णता, हास्य की उल्लास व्यंजना अन्य छायावादियों से अधिक है।

अठारहवी सदी में सामन्ती व्यवस्था के विघटन और नवीन औद्योगिक प्रगति के साथ यूरोप में रोमांटिक साहित्य का प्रसार हुआ। यह रोमांटिक साहित्य सामंती व्यवस्था का विरोधी है, दार्शनिक चिन्तन में चर्च के प्रभाव से मुक्त है, वह भारत जैसे उपनिवेशों की स्वाधीनता का समर्थक है। उसमें कल्पना की अतिशयता, पलायन वृत्ति, अत्यधिक आत्मकेन्द्रीयता जैसे दोष भी हैं, फिर भी वह शेक्सपियर और मिल्टन के युग के वाद यूरोप और इंग्लैण्ड का सवसे वड़ा मानवतावादी आन्दोलन है। अनेक पश्चिमी आलोचकों ने उसके दोपों को वहुत वढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है, उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को छोड़ दिया है। उनकी देखा-देखी छायावादी साहित्य का वैसा ही विरोध कुछ हिंदी लेखकों ने किया है। किन्तु वे स्वयं छायावादी कवियों से अधिक आत्मग्रस्त, अधिक व्यक्तिवादी, सामाजिक आन्दोलनों से अधिक विच्छिन्न हैं। आवश्यक है कि वह निराला से सीखें, अपनी भावुकता और निराला की भावशक्ति का अन्तर पहचानें, देखें कि तमाम लाक्षणिकता के वावजूद निराला का मूर्तिविधान कितना यथार्थपरक और सजीव है। निराला ने दुख और मृत्यु पर जो कविताएँ लिखी हैं, उनमें पीड़ा का प्रदर्शन नहीं, मर जाने की आकांक्षा नही, उनमें मृत्यु से शक्ति पाकर जूझने की कामना है। जहाँ संघर्ष नही है, केवल दु:स्वप्न है, वहाँ भी निराला के सधे हुए अटूट मन की झलक मिलती है। यह

निराला के व्यक्तित्व की विशेषता है, उनके युग की विशेषता है।

प्रथम महायुद्ध के बाद स्वाधीनता आन्दोलन के नवीन उत्थान के साथ जो साहित्य रचा गया, उसके समर्थ प्रतिनिधि निराला और प्रेमचंद दोनों है। निराला प्रेमचंद की तरह सामाजिक सम्बन्धों की तीक्ष्ण आलोचना करते हैं; किंतु वह प्रेमचंद से भिन्न मनुष्य के अन्तर्जगत् में गहरे पैठते हैं, उसके सौन्दर्य-बोध, उसकी कलात्मक अभिरुचि, उसकी भावशक्ति को जाग्रत और परिष्कृत करते हैं। आदमी के बाहर की दुनिया और भीतर की दुनिया दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं; इन दोनों के भरे-पूरे चित्रण से ही यथार्थवाद साहित्य की समर्थ धारा बनता है।

निराला का सहज स्वर उदात्त है; ओज उनके साहित्य का प्रधान गुण है। उनका माधुर्य अन्य कवियों के माधुर्य से भिन्न है; उनका शोक अन्य कवियों की वेदना से भिन्न है। कोई भी कवि एक ही उदात्त स्तर पर कविता नहीं लिख सकता, न उसे लिखनी चाहिए। निर्माण सौन्दर्य के लिए उसे अनुदात्त या स्वरित स्तरों पर भी रचना करनी चाहिए। निराला एक ही कविता में भिन्न स्तरों पर अपने रचना-कौशल का परिचय देते हैं, अलग-अलग रचनाओं में भी। उनके श्रेष्ठ साहित्य में—भाव चाहे कोमल हों, चाहे कठोर—एक अन्तर्निहित शक्ति का परिचय मिलता है। यह शक्ति स्वाधीनता आन्दोलन के नये उत्थान की थी, यह शक्ति निराला के व्यक्तित्व की थी। दोनों के संयोग से ही निराला की साहित्य-साधना पूरी हुई।

उपसंहार : छायावाद का स्वरूप

[१]

तब छायावाद क्या है? स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह? गांधीवाद का साहित्यिक प्रतिबिंब? निराला-साहित्य की विशेषताएँ उसकी अपनी विशेषताएँ हैं या छायावाद की सामान्य विशेषताएं हैं?

प्रथम महायुद्ध के बाद—स्वाधीनता आन्दोलन के उभार के पहले दशक में—हिंदी साहित्य में तीन धाराएँ प्रमुख है। एक धारा रीतिवादी है जिसके प्रतिनिधि रत्नाकर, मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा आदि हैं। दूसरी धारा स्वाधीनता आन्दोलन के सुधारवादी पक्ष के साथ आगे बढ़ती है जिसके प्रतिनिधि मैथिलीशरण गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, गोपालशरण सिंह आदि हैं। तीसरी धारा छायावाद की है

जिसकी साम्राज्य-विरोधी चेतना पहली दोनों धाराओं से अधिक प्रखर है, जिसके प्रतिनिधि कवि प्रसाद, निराला और पंत हैं। इन तीनो कवियों के साहित्य की अपनी विशेषताएँ है जैसी कि किसी भी धारा के साहित्यकारों मे होंगी; साथ ही उनमे सामान्य विशेषताएँ है जो उन्हें साहित्य की एक निश्चित धारा से सबद्ध करती हैं।

छायावाद साम्राज्य-विरोधी चेतना के निखार का साहित्य है—इस सत्य को रीतिवादी अस्वीकार करते थे जिनका अपना साहित्य विशुद्ध रस की खोज करता हुआ राजनीतिक संघर्षों का विरोधी था या बहुत उदार हुआ तो तटस्थ था। रीतिवाद के अनेक आचार्य अंग्रेजी राज के प्रमुख आधार देशी नरेशों को अपना अन्नदाता मानते थे। छायावाद की साम्राज्य-विरोधी चेतना को अस्वीकार करते थे राष्ट्रीय आन्दोलन के सुधारवादी पक्ष के लोग जो अपनी ढुलमुल राजनीति को देश की एकमात्र सही राष्ट्रीय नीति कहकर पेश करते थे। ये लोग सबसे अधिक प्रचार करते थे कि छायावाद केवल मिथ्या रहस्यवाद है, स्वाधीनता-आन्दोलन से विमुख एक प्रकार का पलायनवाद मात्र है। बाद को तरह-तरह के प्रगतिवादी और व्यक्तिवादी आलोचक छायावाद को अतृप्त कामवासना का विस्फोट अथवा सुधारवादी राजनीति का प्रतिबिंब मानते थे। इनकी स्थापनाओ की प्रतिध्वनि हिंदी आलोचना-साहित्य में अब तक सुनाई देती है

रामचंद्र शुक्ल छायावादी काव्य से काफी असन्तुष्ट थे। उन्होने 'कामायनी' के बारे में लिखा था, "वर्गहीन समाज की साम्यवादी पुकार की भी दबी-सी गूंज दो-तीन जगह है।" शुक्ल जी ने 'कामायनी' में गाँधीवाद की गूंज नही सुनी; जो दबी-सी गूंज उन्हें सुनाई दी, वह वर्गहीन समाज की साम्यवादी पुकार की गूंज है। जो आलोचक छायावाद को गाँधीवाद का साहित्यिक प्रतिबिंब मानते हैं, उनकी तुलना मे शुक्ल जी का दृष्टिकोण अधिक तथ्यपरक है।

मुक्तिबोध **कामायनी : एक पुनर्विचार** में साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, भारतीय पूंजीवाद की व्याख्या करते हुए, इनसे साहित्य का सम्बन्ध जोड़ते हुए बहुत-सी उलझनो में फँस गये हैं किन्तु भारत के राष्ट्रीय जागरण से प्रसाद-साहित्य को संबद्ध मानने में उन्हे दिशाभ्रम नही हुआ। मुक्तिबोध के अनुसार—"प्रसाद जी की भावुकता की मूल भित्ति मानव-सम्बन्धों के दृढ़ आधार पर खड़ी हुई है। इन्ही सम्बन्धों के सामाजिक-राष्ट्रीय विस्तार के फलस्वरूप उन्होने प्राचीन गौरव के ऐतिहासिक चित्र (अपनी रोमांटिक भावभूमि पर) प्रस्तुत किये; और उसमे हमारे प्रथम भारतीय राष्ट्रीय जागरण के स्पन्दनो की बेला सामने आई। इस अर्थ में प्रसाद जी की कहानियाँ और नाटक (चाहे उनकी पार्श्वभूमि ऐतिहासिक ही क्यों न हो) छायावादी युग के सर्वोत्कृष्ट भावों और आदर्शो से संपन्न हैं। अतएव प्रसाद जी के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे 'कामायनी' मे भी उन देशव्यापी जीवन-आशाओ को व्यक्त करे। श्रद्धा कहती है— डरो मत अरे अमृत सन्तान···
ये पंक्तियाँ इस बात की साक्षिणी है कि हमारा छायावादी रोमांटिक व्यक्तिवाद देशव्यापी जीवन-आशाओं तथा आदर्शो से न केवल समन्वित हो चुका था, वरन्

वेर्ह अब इतना सवल भी हो गया था कि वह देश और व्यक्ति में परिव्याप्त मानव-गरिमा को प्रस्तुत कर सके। श्रद्धा-सर्ग इस बात का जीवन्त प्रतीक है कि राष्ट्र-वाद में अब इतना आत्म-गौरव तथा आत्म-विश्वास उत्पन्न हो गया था कि वह अब अपने को वर्तमान तथा भविष्य का निर्णायक निर्माता समझता था तथा अपनी अंतिम विजय में उसे संपूर्ण विश्वास हो गया था—ऐसा विश्वास जो जीवन-तथ्यों पर, मानव-सम्बन्धों पर, जीवन की सर्जक शक्तियों पर आधारित है।" (पृ. ६३-६५)

हिन्दी-साहित्य मे मुक्तिवोध-पूजकों का अच्छा-खासा दल है जो मुक्तिबोध के नाम का उपयोग प्रसाद-साहित्य के विरोध के लिए करता है। इस दल के मुखिया लोग मुक्तिवोध के अन्तर्विरोधों से कतराते हैं। वे वताएँ कि जो साहित्य देश और व्यक्ति में परिव्याप्त मानवगरिमा को प्रस्तुत करता है, वह ह्रासग्रस्त पूंजीवाद, जर्जर सामन्तवाद, हिंसक साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि कैसे हो गया। मुक्तिवोध इन सवसे **कामायनी** का सम्बन्ध कभी क्रमशः, कभी एक साथ जोड़ते है। मुक्ति-वोध-पूजक सिद्ध करें कि **डरो मत अरे अमृत संतान** आदि पंक्तियों में आत्म-गौरव तथा आत्म-विश्वास का स्वर नही, ह्रासमान व्यक्तिवाद की पराजय और कुंठा का स्वर है। किन्तु कुंठा का स्वर होता तो अव तक वे **कामायनी** को संसार का सर्व-श्रेष्ठ काव्य सिद्ध कर चुके होते। प्रसाद का दोष यह है कि उनके साहित्य में हमारे राष्ट्रीय जागरण के स्पंदन सुनाई देते हैं।

प्रसाद-साहित्य और गांधीवाद के आन्तरिक भेद पर मै विस्तार से अन्यत्र लिख चुका हूँ। अपने उस पुराने लेख का कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ :

"इन सीमाओं के वावजूद (दार्शनिक और सामाजिक चिंतन की सीमाओं के वावजूद) यह समझना भ्रम होगा कि प्रसाद जी का चिंतन पूंजीपति वर्ग के सांस्कृतिक मार्ग गांधीवाद पर चल रहा था। गांधीवाद जहाँ जनता के क्रान्तिकारी उभार को दवाकर वर्ग-शान्ति और समझौते की राह पर चलता है, वहाँ प्रसाद जी वर्ग-शान्ति के वदले वर्गहीन समाज का आदर्श सामने रखते हैं। गाँधीवाद जहाँ प्राचीन भारतीय समाज में वर्ग-संघर्ष अस्वीकार करता है, वहाँ प्रसाद जी ने राजा-प्रजा के रक्तमय संघर्ष का चित्र खींचकर उसे स्वीकार किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण वात यह कि गाँधीवाद जहाँ निष्क्रिय प्रतिरोध की वात करता है, स्वयं कष्ट सहकर अन्यायी के हृदय-परिवर्तन की वात करता है, वहाँ प्रसाद जी ने सक्रिय प्रतिरोध का आदर्श रखा है, शस्त्र उठाकर आततायियों का विरोध करने का चित्र खीचा है।

"स्कन्दगुप्त में प्रसाद जी ने दिखाया है कि हूणों के आक्रमण से त्रस्त और विखरी हुई जनता मे फिर से साहस-संचार करके स्कंदगुप्त और उसके साथियों ने हूणों को समरभूमि में पराजित किया और उन्हें सिन्धु पार खदेड़ दिया। ब्रिटिश साम्राज्य से आक्रान्त देश में यह नाटक लिखकर प्रसाद जी ने सामयिक राजनीति की भी एक गुत्थी सुलझायी थी। पर्णदत्त कहता है, 'देश के वच्चे भूखे हैं, नंगे हैं,

असहाय हैं, कुछ दो बाबा !' पर्णदत्त कैसी भीख चाहता है ? क्या भीख माँगने से देश का उद्धार होगा ? पर्णदत्त कहता है, 'जो दे सकता हो अपने प्राण, जो जन्म-भूमि के लिए उत्सर्ग कर सकता हो जीवन, वैसे वीर चाहिएँ, कोई देगा भीख मे ?' पर्णदत्त की याचना के उत्तर में पहले स्कंदगुप्त और फिर जनता मे से बहुत से वीर देशरक्षा के लिए आगे आ जाते हैं। जनता का संगठन करने मे साहित्यकार अपनी विशेष भूमिका पूरी करते है। विजया महाकवि कालिदास से कहती है, 'आश्चर्य और शोक का समय नही है। सुकवि शिरोमणि ! गा चुके मिलन-संगीत, गा चुके कोमल कल्पनाओ के लचीले गान, रो चुके प्रेम के पचड़े। एक बार वह उद्बोधन गीत गा दो कि भारतीय जनता अपनी नश्वरता पर विश्वास करके भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जाय !' कालिदास काव्य से ही जनता को संगठित नही करते, वह स्त्रियों को घसीटनेवाले अत्याचारी हूणो का तलवार उठाकर विरोध भी करते है। प्रसाद के श्रेष्ठ नाटक स्कंदगुप्त के कालिदास महाकवि ही न.ी, वीर कवि भी है। हूणों को ललकारते हुए वह कहते हैं, 'इन निरीहों के लिए प्राण उत्सर्ग करना धर्म है। कायरो ! स्त्रियों पर यह अत्याचार !'

"प्रसाद जी के लिए कलाकार सामाजिक संघर्ष मे तटस्थ नही रहता। वह जनता और देश के प्रति सहानुभूति ही नही प्रकट करता, वह संघर्ष में भाग भी लेता है। और यह संघर्ष निष्क्रिय प्रतिरोध के मार्ग पर नही बढ़ता, उसका रास्ता सक्रिय प्रतिरोध का है। इससे स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने अपने साहित्य मे पूँजीवादी नेताओं की कार्यनीति को आदर्श नही माना।" (**लोकजीवन और साहित्य**, पृ. ४५-६)

साम्राज्य-विरोधी चेतना को निखारने के लिए प्रसाद इतिहास का उपयोग वैसे ही करते है, जैसे निराला; वह सक्रिय प्रतिरोध के वैसे ही समर्थक है जैसे निराला। दोनों के लिए गाँधीवादी राजनीति और समाजनीति के प्रतिनिधि कवि थे मैथिलीशरण गुप्त। दोनो ही इन्हे छायावादी कवियों से घटिया कवि मानते थे, दोनो ही गाँधीवाद से मैथिलीशरण गुप्त के आन्तरिक सम्बन्ध को अच्छी तरह समझते थे।

काशी मे मैथिलीशरण गुप्त के अभिनंदन की तैयारियाँ हो रही थी। गाँधीजी अभिनंदन ग्रथ भेंट करें, इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा था। निराला ने कहा :

"गुप्त जी बड़े हैं। उनका अभिनंदन अवश्य होना चाहिए। विरोध से क्या होता है ? कोई विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओ को पढ़ाता है और कोई मिडिल स्कूल का अच्छा मुदर्रिस होता है। आप लोग यह बताइए, क्या प्रोफेसर का सम्मान होना चाहिए और मिडिल स्कूल के मुदर्रिस का सम्मान न होना चाहिए ? मै तो समझता हूँ जो भी समाजसेवा की इस पाठशाला मे यश कमा सके, उसका उचित सम्मान होना चाहिए, और गुप्त जी को मैं ऐसा ही यशस्वी मुदर्रिस मानता हूँ।" (मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रन्थ में पद्मनारायण आचार्य का लेख)

निराला सम्मान के पक्ष में थे किंतु प्रोफेसर और मुदर्रिस का भेद करते हुए।

प्रोफेसर प्रसाद या पंत हो सकते हैं, वह स्वयं हो सकते है, मैथिलीशरण गुप्त नही। 'मतवाला' मे पंत पर लिखते हुए निराला ने मैथिलीशरण गुप्त की पक्तियाँ उद्धृत की, सम्मान प्रकट करने के लिए; फिर दिखाया खड़ी बोली का नया रचा हुआ रूप है पंत-काव्य मे। उसी धारणा के अनुरूप ऊपर उद्धृत किया हुआ उनका कथन है।

अभिनंदन का विरोध करने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा मे कुछ साहित्य-प्रेमियों की वैठक हुई। इसमे जयशंकर प्रसाद भी थे। जव पद्मनारायण आचार्य ने प्रसाद से पूछा कि वह अभिनंदन का विरोध क्यों कर रहे हैं, तव उन्होने कहा: अभिनंदन मे तुम्हारे साथ रहेगे, सभा में विरोध करने वालो के साथ थे। दोनो वातो मे कोई विरोध नही क्योकि मैथिलीशरण गुप्त के अभिनंदन का विरोध उनके गौरव की कहानी वन जायगा। फिर अपने को वेदनावादी कहते हुए मैथिलीशरण और निराला—दोनो की मान-सम्मान की आकांक्षा पर टिप्पणी की: "और मेरा कहना तो यह है कि जैसे निरालाजी को सम्मान नही मिला, पर सम्मान की इच्छा है, उसी प्रकार गुप्त जी भी अपने को उपेक्षित मानते है। उन्होने उपेक्षिता की वकालत की है, पर वे स्वयं भी कही इस दर्द को छुपाये हुए है। और मै तो वेदना-वादी हूँ। वेदना के शमन को मानव की सवसे वडी पूजा समझता हूँ। इसीलिए निराला और गुप्तजी के अभिनंदन को मैं ऋण मानता हूँ।"

वात वडी चतुराई से कही गई है। मुदर्रिस और प्रोफेसर का भेद न करके प्रसाद ने वेदना के शमन का सूत्र पकड़ा। गुप्तजी उपेक्षित महसूस करते है, दुखी है, अवश्य अभिनंदन करना चाहिए। वे आधुनिक हिंदी के निर्माता है, श्रेष्ठ कवि है, ऐसी कोई वात नहीं है। निराला का नाम जोड़ने से मैथिलीशरण गुप्त के प्रति प्रतिद्वंद्विता के भाव का साधारणीकरण हुआ।

इसके वाद गाँधीवाद से मैथिलीशरण गुप्त का सम्बन्ध जोड़ते हुए प्रसाद ने ये महत्त्वपूर्ण वातें कही: "इस युग के तीन व्यक्तियों को महापुरुष मानता हूँ: गाँधीजी, रवीन्द्र वावू और मालवीय जी। और मैं अपने को इन तीनो में से किसी एक का अनुयायी नही मानता। पर गुप्त जी तो विना अनुगमन किए रह ही नही सकते और वे इसी कला में वेजोड है। मेरी-उनकी क्या वरावरी? वे दूसरे क्षेत्र में काम करते है और मैं दूसरे मे। जिस क्षेत्र मे वे है उस क्षेत्र में वे अद्वितीय है। अतः उनका अभिनंदन होना चाहिए।"

गुप्त जी अनुगमन की कला मे वेजोड़ है। मालवीयजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाँधीजी—इन तीनो मे प्रसाद किसी के अनुगामी नही, मैथिलीशरण गुप्त अनुगमन किए विना रह नही सकते। स्पष्ट ही उन तीन महापुरुषों मे गुप्त जी अनुगामी है गाँधीजी के। उस क्षेत्र मे वह अद्वितीय है। यहाँ प्रसाद का व्यंग्य निराला से भी अधिक मर्मवेधी है। उनकी उक्ति से गाँधीवाद-छायावाद के सम्वन्ध मे मेरा विश्लेषण पुष्ट होता है। जो लोग प्रसाद-साहित्य को रवीन्द्र-काव्य का अनुकरण कहते थे अथवा मनु या स्कदगुप्त का नाम सुनते ही उन्हें हिंदू पुनरुत्थान-

वादी मान बैठते है, वे प्रसाद के कथन पर ध्यान दें। वह अपने को न मालवीय जी का अनुगामी मानते हैं, न रवीन्द्रनाथ का। हिन्दी के छायावादी साहित्य की अपनी विशेषताएँ हैं और उनका अध्ययन करने से प्रसाद की दर्पोक्ति सही मालूम होती है।

इस प्रसंग में स्वयं गांधीजी ने मैथिलीशरण गुप्त से अपने सम्बन्ध को लेकर जो कुछ कहा, वह उल्लेखनीय है। पद्मनारायण आचार्य से उन्होने कहा, "मैं तो साहित्यिक दृष्टि से निश्चित रूप से मूर्ख हूँ। और गुप्त जी हम सभी मूर्खों के प्रतिनिधि कवि है।"

वात अतिरंजित ढंग से कही गई है किन्तु यह सच है कि मैथिलीशरण गुप्त गाँधीजी और उनके अनुगामियों के प्रतिनिधि कवि है।

सन् '३०-३१ के आन्दोलन की असफलता से गाँधीवाद को गहरा धक्का लगा। सन् '३० से '४० तक का समय भारतीय समाज में गाँधीवाद-विरोधी रुझानों के फूटने-फैलने का सवसे महत्त्वपूर्ण काल है। अनेक प्रकार की वामपंथी विचारधाराएँ देश में फैलती हैं; राष्ट्रीय आन्दोलन से सुधारवादी नेतृत्व को अलग कर देने की संभावनाएँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु वामपक्षी नेता इन संभावनाओं से लाभ उठाने में असफल रहे। गाँधीजी ने सिद्ध कर दिया कि मूर्ख वह नही, उनके विरोधी हैं।

उस दशक में गाँधीवाद से लोगों की जो आस्था डिगी, उसका गहरा असर हिन्दी लेखकों पर पड़ा। प्रेमचंद का **गोदान**, प्रसाद का **तितली**, निराला की **देवी** और **चतुरी चमार** इसी दौर की रचनाएँ है। इन सवका सृजन उस समय हुआ था जव प्रगतिशील साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए कोई भी संघवद्ध प्रयास न हुआ था। सन् '३० के वाद हिंदी साहित्य में इस नये यथार्थवाद का विकास स्वतःस्फूर्त ढंग से हुआ। प्रगतिवादी आलोचक इस विकास से, उस विकास के सामाजिक कारणों से अपरिचित थे। प्रगतिवाद के विरोधी भी देश और साहित्य की नई गतिविधि से उतने ही वेखवर थे। इस नये यथार्थवाद की विशेपता है गाँधीवाद के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण। जहाँ ऐसा दृष्टिकोण पहले से था, वहाँ उसमें और तीखापन आया। इस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के साथ समाजवादी विचारधारा का प्रभाव जुड़ा हुआ है। हिंदी के अनेक मार्क्सवादी लेखक अपनी दृष्टि को वहुत वैज्ञानिक समझकर प्रेमचंद आदि उन पुराने लेखकों के प्रति प्राध्यापकीय उदारता दिखाते हुए कहते है, वहुत अस्पष्ट और उलझा हुआ प्रभाव था उन पर समाजवाद का क्योंकि उन्होने उसका वैज्ञानिक अध्ययन न किया था, फिर भी वह धुँधली-सी समाजवादी विचारधारा थी, हम मानते है।

इस धुँधली विचारधारा की विशेपता थी—किसानो के संगठन और उनके सामन्त विरोधी संघर्ष के महत्त्व का वोध। वैज्ञानिक अध्ययन करने वालों की विशेपता है : किसान-जीवन से अलगाव, मध्यवर्गीय दायरे में आत्मानुभूत सत्यों का उद्घाटन।

गोदान, **तितली** और **चतुरी चमार** की विचारभूमि सामान्य है। इसीलिए प्रेमचंद और छायावाद को परस्पर-विरोधी मानकर अलगाने की जगह दोनों का अध्ययन स्वाधीनता-आन्दोलन के उतार-चढ़ाव को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।

तितली में प्रसाद किसानों के जीवन-संघर्ष का चित्रण करते हैं। रामजस की बातें **प्रेमाश्रम** के बलराज की याद दिलाती हैं। कहता है, "पैसे के बल पर धर्म और सदाचार का अभिनय करना भुलवा दूंगा। मैंने जो कुछ पढ़ा-लिखा था, सब झूठा था। आजकल क्या, सब युगों मे लक्ष्मी का बोलबाला था। भगवान् भी इसी के संकेतों पर नाचते हैं। मैं तुम्हारे इस झूठे पाप-पुण्य की दुहाई नही मानता।" यही रामजस घिर जाता है, लेकिन बहादुरी से लड़ता है। "इधर दो उधर दस। जमकर लाठी चलने लगी। मधुबन और रामजस जब घिर जाते तो लाठी टेककर दस-दस हाथ दूर जाकर खड़े हो जाते। छः आदमी गिरे और रामजस भी लहू से तर हो गया।" यह सब गाँधीवाद की परिधि के बाहर के दृश्य हैं।

कर्मभूमि के महन्त की तरह **तितली** में भी एक महन्त हैं "जो भक्तों की भेंट और किसानों का सूद दोनों ही समभाव से ग्रहण करते हैं।" प्रसाद ने प्रेमचंद की तरह आर्थिक शोषण के साथ धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध किया। **तितली** के अन्त मे सबको काम लायक जमीन मिल जाती है किंतु **तितली** का विचार है कि ज़मींदार के रहते वास्तविक भूमि-सुधार नही हो सकते। कहती है, "यदि आप लोग वास्तविक सुधार करना चाहते हो, तो खेतो के टुकड़ों को निश्चित रूप में बांट दीजिए और सरकार उन पर मालगुज़ारी लिया करे।" अर्थात् नये सिरे से भूमि का बँटवारा होना आवश्यक है।

तितली, **गोदान** और **चतुरी चमार** की विचारभूमि सामान्य है किंतु किसान-जीवन को देखने, उसे गहराई से चित्रित करने में बड़ा अन्तर है। यहाँ सिद्ध केवल यह करना है कि छायावादी साहित्य की साम्राज्य-विरोधी चेतना सन् '३० के बाद और निखरती है। इसका एक लक्षण यह है कि छायावादी कवि किसान जीवन को आधार बनाकर नया साहित्य रचते हैं। जो साहित्य सन् '३० से पहले भी गांधीवाद का अनुयायी नही था, वह सन् '३० के बाद उससे और दूर हट जाता है।

किसान-जीवन से पंत का लगाव कम है। **पल्लव** और **गुञ्जन** के प्राकृतिक सौन्दर्य में भारत का दरिद्र, संघर्षशील किसान खो गया है। किंतु **ग्राम्या** मे पंत पहली बार उत्तर भारत के गाँव को, गाँव में किसान-जीवन को नजदीक से देखते हैं। यह कार्य वह प्रसाद और निराला के बाद करते हैं, प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के सूत्रपात के बाद करते हैं, किंतु किसान जीवन पर वह भी कविताएँ लिखते है, यह तथ्य उसी विकास का प्रमाण है जो '३०-'४० वाले दशक की विशेषता है।

इस दशक में अपने सौन्दर्यवाद का दायरा तोड़कर उन्होंने नये कवित्वहीन विषयो पर कविताएँ लिखी किंतु जहाँ प्रसाद और निराला गांधीवाद के तीक्ष्ण

आलोचक हैं, वहाँ पंत सन् '३४ के वाद नये सिरे से गाँधीवाद के प्रभाव में आते हैं। गाँधीजी उन्हें अतिमानवीय चमत्कार के रूप में दिखाई देते है।

प्रथम भेंट में मिला हृदय को सूक्ष्म स्पर्श, दृग विस्मय प्रेरित,
स्फुरित इन्द्रधनु अचि विनिर्मित हुआ मनोमय वपु उद्‌भासित।

साठ वर्ष : एक रेखांकन में गाँधीजी से अपनी भेंट का उल्लेख करने के वाद पंत ने लिखा है, "तव से जव भी मेरा मन युग-संघर्ष के आँधी तूफान से आक्रान्त हुआ मैंने गाँधीजी का स्मरण किया है और जिस रूप में भी मैं ग्रहण कर सका, मैंने उनके व्यक्तित्व से सहायता ली है और मेरे काव्य में तव से गाँधीवाद का एक स्वर सदैव विद्यमान रहा है। गाँधीजी के तप.पूत व्यक्तित्व से जिस ओजस्वी सात्विक चैतन्य का जन्म मेरे भीतर हुआ था उसे युग की विषाक्त शक्तियों से टकराकर संघर्ष करना पड़ा; इसी संघर्ष में मैं युग-जीवन में व्याप्त प्रच्छन्न विष के स्वरूप को समझ सका। मेरे कवि-हृदय को नवयुग मंगल के लिए एक सर्वांगपूर्ण रससिद्ध चैतन्य की खोज थी, जिसकी प्राप्ति के लिए गाँधीजी का अन्त.स्पर्श शुभ्र सोपान वन सका।" (पृ. ५१-५२)

एक ओर प्रसाद और निराला, दूसरी ओर पंत—इनके राजनीतिक दृष्टिकोणों का अन्तर यहाँ स्पष्ट हो जाता है।

स्वाधीनता-आंदोलन के प्रति छायावादी कवियों का रुख उन्हें इतिहास को नए सिरे से समझने की प्रेरणा देता है। 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया'—निराला के वर्णिक मुक्त छन्द में लिखी हुई प्रसाद की ये कविताएँ इतिहास के पुराने संघर्षों से भारतीय जनता के नए संघर्षों को जोड़ती हैं। इनमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संघर्ष था—१८५७ का स्वाधीनता संग्राम। निराला ने लिखा कि सन् '५७ में यहाँ के लोगों ने सिद्ध कर दिया कि वे "ऐसी संगठित शक्ति की करामात दिखाने का हौसला रख सकते है—वह संगठन कर सकते हैं, जितना वड़ा आज तक राजनीति के अंधकार में उड़ने वालो से नहीं हो सका।" (**प्रबन्ध प्रतिमा**, पृ. २००) पंत ने **लोकायतन** में इस संग्राम का मूल्यांकन इस प्रकार किया है :

सन् सत्तावन का विप्लव था
लोकद्रोह से प्रेरित निश्चित,
वन दावा-सा फैल वुझा जो
जन-भू वल था तव न संगठित।
सामन्ती उच्छ्वास रहा वह
राष्ट्रीय आदर्शों से विरहित,
आंग्लों की वर्वरता अव तक
कुलिश नोक से उर मे अंकित !
टोपे था वीरों की टोपी,
रानी शीर्ष-मुकुट शौर्य-स्मित···

सामन्ती विद्रोह रहा वह
अभिनव वैज्ञानिक युग के प्रति। (पृ. ६१)

निराला के लिए सन् सत्तावन में यहाँ की जनता ने अपनी अपूर्व संगठन-क्षमता का परिचय दिया, पंत के लिए तब जन-भू-बल संगठित न था। वह उसे लोकद्रोह मानते हैं, साथ ही उसे सामन्ती उच्छ्वास, सामन्ती विद्रोह भी कहते हैं। वह तात्या टोपे को वीरों की टोपी बनाकर उनकी प्रशंसा करते हैं, साथ ही उन्हें वैज्ञानिक युग का विरोध करने वाला प्रतिक्रियावादी सामन्त-भक्त भी बना देते हैं। पंत का दृष्टिकोण सुरेन्द्रनाथ सेन जैसे इतिहासकारों के दृष्टिकोण से मिलता है, निराला का दृष्टिकोण उन क्रान्तिकारियों का है जिन्होने सन् सत्तावन के विकट संघर्ष के सम्मान में अपने दल का नाम गदर पार्टी रखा था।

स्वाधीनता-संग्राम के प्रति निराला और पंत के दृष्टिकोणो में जो अन्तर है, वह इतिहास के प्रति उनके दृष्टिकोणो मे भी है। भारत के अन्य संघर्षो को प्रेरणा-दायक मानकर पंत ने उन पर कविता लिखी हो, ऐसा भी नही है। गाँधीजी के नेतृत्व में चलने वाले आंदोलनों पर भी **पल्लव-गुञ्जन** में उन्होंने कुछ नही लिखा। स्वभावत: पंत की सारी क्रान्तियाँ मनुष्य के मन में होती हैं।

स्वाधीनता-आन्दोलन और भारतीय इतिहास के प्रति निराला-प्रसाद तथा पंत के दृष्टिकोणों की भिन्नता छायावाद के अन्तर्विरोधों का प्रमाण है।

[२]

इतिहास के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण स्वाधीनता-आन्दोलन की राज-नीतिक प्रेरणा से ही निर्धारित नही होता, वह स्वाधीनता-आन्दोलन के साथ चलने वाली सामाजिक क्रान्ति से भी प्रभावित होता है। सामन्ती समाज के अन्तर्विरोधों को, राजाओ के अत्याचारों, उच्च वर्णो द्वारा निम्न वर्णो के उत्पीड़न को निराला ने अच्छी तरह पहचाना था। प्रेमचंद की पीढ़ी के उपन्यासकारों में यह दृष्टि सबसे अधिक वृन्दावनलाल वर्मा में है। उससे मिलती-जुलती दृष्टि प्रसाद की है। क्रूर, नृशंस, देश की रक्षा करने मे असमर्थ राजा वध्य है—प्रसाद की **ध्रुवस्वामिनी** मे यह नीति-सूत्र पिरोया हुआ है।

समाज के नेता, महाराज, दण्ड-विधायक वे लोग है जो धूर्त, पाखंडी और अन्यायी है। **राज्यश्री** मे नरदत्त न्याय-अन्याय का एकदम आधुनिक विवेचन करता है, केवल उसकी शैली पर प्राचीनता का रंग है। दो-चार शब्द इधर-उधर बदल दिये जायँ तो लगेगा कि स्वाधीन भारत की समाज-व्यवस्था से परेशान कोई 'ऐंग्री यंग मैन' यह सब लिख रहा है। नरदत्त कहता है, "कौन न कहेगा कि महत्त्वशाली व्यक्तियो के सौभाग्य-अभिनय मे धूर्तता का बहुत हाथ होता है। जिनके रहस्यों को सुनने से रोम-कूप स्वेद-जल से भर उठें, जिसके अपराध का पात्र छलक रहा है, वही समाज का नेता है। जिसके सर्वस्व-हरणकारी करों से कितनों का सर्वनाश हो चुका है, वही महाराज है। जिसके दण्डनीय कार्यो का न्याय करने में परमात्मा को

समय लगे, वही दंड-विधायक है। यदि किसी साधारण मनुष्य का यही काम होता, जो महाराज देवगुप्त ने किया है, तो वह चोर, लंपट और धूर्त आदि उपाधियों से विभूषित होता। परन्तु उन्हें कौन कह सकता है ?"

सम्पत्ति की पूजा करने वाले समाज में ऐसी ही धूर्तता का बोलबाला होता है, फिर वह समाज चाहे सामन्ती हो, चाहे पूंजीवादी। नरदत्त के कथन मे ऐसे ही समाज की आलोचना है। धर्मशास्त्रों की दुहाई इसी धूर्तता और अन्याय की रक्षा के लिए दी जाती है। निराला की तरह प्रसाद जातिप्रथा और वर्णव्यवस्था वाले उत्पीड़न के कट्टर विरोधी हैं, सामन्ती रूढ़ियों से जकड़ी हुई नारी की स्वाधीनता के प्रबल समर्थक हैं। इन रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करने के लिए प्रसाद, निराला और प्रेमचंद—ये तीनों साहित्यकार धार्मिक अन्धविश्वासों की तीव्र आलोचना करते हैं।

इन्द्रजाल संग्रह में एक कहानी है 'विराम चिह्न'। अछूत मन्दिर में प्रवेश करने के अधिकार के लिए लड़ रहे हैं। भक्त लोग लट्ठ लिए मंदिर की रक्षा को तत्पर हैं। प्रसाद ने लिखा है, "आस्तिक भक्तों का झुण्ड अपवित्रता से भगवान् की रक्षा करने के लिए दृढ़ होकर खड़ा था।" यह संघर्ष शान्तिपूर्ण, अहिंसक ढंग से नहीं चलता। "लट्ठ चले, सिर फूटे। राधे आगे बढ़ ही रहा था। कुञ्जविहारी ने बगल से घूमकर राधे के सिर पर करारी चोट दी। वह लहू से लथपथ वहीं लोटने लगा।"

शूद्र मंदिर-प्रवेश के अधिकार के लिए लड़ते हैं किंतु इस अधिकार के मिल जाने से उनकी समस्या हल न होगी, कर्मभूमि के लेखक की तरह प्रसाद भी जानते हैं। तितली में भूखा दरिद्र माधो मंदिर के सामने खड़ा है। महंत उसे दुरदुराकर भगाता है। प्रसाद लिखते हैं, "उसका सिर चकरा रहा था। उसने मंदिर के सामने आकर भगवान् को देखा। वह निश्चल प्रतिमा ! ओह, करुणा कहीं नहीं ! भगवान् के पास भी नहीं !" (पृ. १८१)

वहाँ एक स्त्री खड़ी है, नाम है राजकुमारी। माधो को दुतकारा जाता देखकर वह महन्त के धार्मिक पाखंड की आलोचना करती है: "ठाकुरजी के घर में भी दुखियों और दीनों को आश्रय न मिले तो फिर क्या यह सब ढोंग नहीं ? यह दरिद्र किसान क्या थोड़ी-सी भी सहानुभूति देवता के घर से भीख में नहीं पा सकता ?" (उप., पृ. १८२)

महन्त इस आलोचना का उत्तर नहीं देता। वह राजकुमारी पर अधिकार करना चाहता है। उसकी आवाज़ सुनकर मधुवन आ जाता है। "दोनों हाथों से महन्त का गला पकड़कर दबाने लगा। वह छटपटाकर भी कुछ बोल नहीं सकता था। और भी बल पूर्वक दबाया। धीरे-धीरे महन्त का विलास-जर्जर शरीर निश्चेष्ट होकर ढीला पड़ गया।" (पृ. १८६)

प्रेमचंद और निराला की तरह प्रसाद नारी की सम्मानरक्षा के विकट समर्थक हैं। इसके लिए वह हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं करते। तितली में मधुवन राजकुमारी की रक्षा करता है; ध्रुवस्वामिनी को अपनी रक्षा खुद करनी होती है। वह महारानी है किंतु उसका पति मद्यप और क्लीव है, शकों से अपनी रक्षा करने के

लिए उन्हें अपनी सहधर्मिणी सौप देने को तैयार हो जाता है। ऐसा पति वध्य है; उसे त्यागकर नारी को दूसरा पति चुनने का अधिकार है। इस अधिकार के समर्थन में प्रसाद ने अपनी सतेज नाटिका ध्रुवस्वामिनी लिखी है। जैसे काले कारनामे में मनोहर की माँ शताब्दियों से किये जाते हुए नारी के अपमान की ज्वाला सँजोए हुए है, वैसे ही प्रसाद की यह ध्रुवस्वामिनी है। सामाजिक क्रांति की ऐसी तड़प, अपमानित पराधीन नारी के प्रति ऐसी गहरी सहानुभूति, उसके संघर्ष की कठिनाइयों का ऐसा ज्ञान, उसकी संघर्षक्षमता और विजय मे ऐसा विश्वास प्रसाद की अन्य रचना में नही है। बौनें, कुबड़े और हिजड़े के स्वाँग द्वारा उन्होंने सामन्ती सभ्यता के विकृत, ह्रास-ग्रस्त पक्ष का चित्रण किया है। ध्रुवस्वामिनी के तीक्ष्ण व्यंग्य-बोल शास्त्र और नीति की दुहाई देने वालों को वेध डालते हैं। राजकुमारी की रक्षा के लिए जैसे मधुव्रन दौड़कर आता है, वैसे कोई पुरुष ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करने नही आता। वह स्वयं ही चन्द्रगुप्त को प्रेरित करती है; क्लीव पति को त्यागने और नया पति चुनने के अधिकार का मानो प्रदर्शन करते हुए वह पति, अमात्य और अन्य जनों के सामने चंद्रगुप्त को बाँहों में भर लेती है।

"इस राजकुल के अन्त:पुर मे मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा, जो मुझे आते ही मिला···इस राजकुल में एक भी संपूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा क्या? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूंगे और बहरे···अमात्य··· आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र को पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नही बिठा दिया।···मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता···ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल मणि नही हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।···संसार मिथ्या है या नही, यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु आप, आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य है, जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है?···रोष है, हाँ मैं रोष से जली जा रही हूँ। इतना बड़ा उपहास—धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा, मुझसे बलपूर्वक ली गई है।···पृथ्वी तल से जैसे एक साकार घृणा निकलकर मुझे अपने पीछे लौट चलने का संकेत कर रही है। क्यो, क्या वह मेरे मन का कलुष है? क्या मैं मानसिक पाप कर रही हूँ?···कुमार (यह उसका प्रेमी चन्द्रगुप्त है)! मैं कहती हूँ कि तुम प्रतिवाद करो। किस अपराध के लिए यह दंड ग्रहण कर रहे हो?···झटक दो इन लौह-शृंखलाओ को! यह मिथ्या ढोंग कोई नही सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्दैव भी नही।"

ऐसी है प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी। नारी का यह रूप रीतिवादी काव्य में नही है, तथाकथित राष्ट्रीय काव्य मे नही है, वह प्रसाद में है, निराला में है। प्राचीन काव्यों मे वह महाभारत और रामायण में है। व्यास और वाल्मीकि की वह करुणा—

ओज मिश्रित मानवतावादी परम्परा सामाजिक क्रान्ति के नवयुग में प्रसाद और निराला के साहित्य में फिर नया जीवन पाती है।

छायावाद भारत में आमूल सामाजिक क्रान्ति की आकांक्षा का साहित्य है। वह वर्णगत उत्पीड़न का विरोधी, शूद्र और नारी की समानता का समर्थक, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विध्वंसक साहित्य है। स्वभावतः वह जीवन की स्वीकृति का साहित्य है : संसार मे जन्म लेना पाप है, संसार दुख का कारण है, संसार मिथ्या है—इस तरह की मान्यताओ का वह विरोधी है। छायावादी कवियों में प्रसाद इन धारणाओं के सबसे सजग विरोधी हैं। वह बुद्ध की करुणा के समर्थक हैं, उनके दुखवाद के नही। वह व्यावहारिक वेदान्त के समर्थक है, मायावाद के नही।

'रहस्यवाद' नाम के अपने प्रसिद्ध निबंध में उन्होंने प्रचलित धारणाओं के एकदम विपरीत रहस्यवाद की व्याख्या की है। रहस्यवाद का अर्थ है जीवन में आनंद की खोज और उसकी प्राप्ति। यह आनंद अगोचर और अलौकिक नही है; उसमें कामचेतना का भी हिस्सा है। "काम का धर्म मे अथवा सृष्टि के उद्गम मे बहुत बड़ा प्रभाव ऋग्वेद के समय में ही माना जा चुका है—कामस्तदग्ने समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है और प्रेम से वह शब्द अधिक व्यापक भी है।" (**काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध**, पृ. ४७) रहस्यवाद के विरोधियों की आलोचना करते हुए प्रसाद ने लिखा कि वे मिथ्या नैतिक आदर्शों से प्रेरित हैं। यदि वे रहस्यवाद के आनंदपथ को स्वीकार कर लें तो उनके "आदर्शवाद का ढांचा ढीला पड़ जाता है।" (उप., पृ. ४९) प्रसाद और निराला दोनों ही आदर्शवाद शब्द का प्रयोग करते है और एक ही अर्थ ही में—मिथ्या नैतिक आदर्शों की विज्ञप्ति के लिए। ये आदर्शवादी "इस बात को स्वीकार करने मे डरते है कि जीवन में यथार्थ वस्तु आनंद है, ज्ञान से वा अज्ञान से मनुष्य उसी की खोज में लगा हुआ है।" (उप.) यह जीवन की स्वीकृति है। संसार से पराङ्मुख जो लोग भारतीय संस्कृति की दुहाई देकर मायावादी, दुखवादी धारणाओं का समर्थन करते हैं, उनसे प्रसाद कहते है, "प्राचीन आर्य लोग सदैव से अपने क्रियाकलाप में आनंद, उल्लास और प्रमोद के उपासक रहे।" (उप., पृ. ४९) बाद को उन दार्शनिक मतों का प्रसार हुआ जिनके अनुसार "संसार दु.खमय माना गया और दुःख से छूटना ही परम पुरुषार्थ समझा गया।" (उप., पृ. ५१) भारत में जिस अद्वैत मूलाभक्ति का विकास हुआ, उसके अनुसार "संसार को मिथ्या मानकर असंभव कल्पना के पीछे भटकना नही पड़ता था। दुःखवाद से उत्पन्न संन्यास और संसार से विराग की आवश्यकता न थी।" (उप., पृ. ५७) जो संसार को मिथ्या मानते थे, उनका दर्शन था मायावाद। तब "जगत् को मिथ्या—दुःखमय मानकर सच्चिदानंद की जगत् से परे कल्पना हुई।" (उप., पृ. ६०)

प्रसाद के कथा-साहित्य और नाटको मे इस मायावाद की आलोचना अनेक स्थलों पर, अनेक रूपो में मिलती है। **कंकाल** मे युवक मठाधीश देवनिरजंन गंगातट पर आसन और दृढ़ धारणा से अपने मन को 'संयम में ले आने का प्रयत्न' करता है

किंतु ध्यान के समय एक वालिका की मूर्ति सामने आ खड़ी होती है। "वह उसे माया-आवरण कहकर तिरस्कार करता; परंतु वह छाया, जैसे और ठोस हो जाती" (पृ. १५)। ध्यान मे असफल होने पर "विद्वत्ता के जितने तर्क जगत् को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए थे, उन्होंने उग्र रूप धारण किया" (उप., पृ. १८); किंतु इनके उग्र रूप धारण करने से वह अपनी मठाधीशी नही छोड़ देता। जगत् मिथ्या है, कर्म मिथ्या है; जिसने संसार रचा है, वह चाहता है, माया का खेल खेलो। देवनिरंजन गृहस्थ होकर पत्नी के साथ नही रहता किंतु मठ के आय-व्यय का निरीक्षण गृहस्थ की ही तरह करता है; "फिर यह सहज उपलब्ध सुख क्यों छोड़ा जाय?" (उप., पृ. १८) प्रसाद का आनंदपथ इस मठाधीशी सुख का समर्थक नही है। वह दिखा रहे है कि जो व्यक्ति संसार को मिथ्या कहता है, वह मठाधीश वनने का सुख छोड़ नहीं सकता। देवनिरंजन के तर्कों पर प्रसाद की टिप्पणी है: "त्यागपूर्ण थोथी दार्शनिकता जव किसी ज्ञानाभास को स्वीकार कर लेती है, तव उसका धक्का सम्हालना मनुष्य का काम नही।" (उप.)

देवनिरंजन आगे सोचता है, यह मठाधीशी आरम्भ कैसे हुई? धर्मसाधना के लिए तो एकांतवास का निर्देश है। अपने प्रश्न का उत्तर देता है कि "संघवद्ध होकर वौद्ध धर्म ने यह जो अपना कूड़ा छोड़ दिया है उसे भारत के धार्मिक सम्प्रदाय अभी भी फेंक नही सकते।" (उप., पृ. १९) अर्थात् यह मठाधीशी वृत्ति उन्ही का आविष्कार है जो संसार को माया कहते थे, उसे समस्त दुखों का कारण मानते थे।

तितली में रामनाथ उस वेदान्त को नही मानता जो संसार को माया कहता है। यह मिथ्या वेदान्त है। "सच्चा वेदान्त व्यावहारिक है। वह जीवन समुद्र आत्मा को उसकी सम्पूर्ण विभूतियों के साथ समझता है।" (पृ. ९४)

प्रसाद का व्यावहारिक वेदान्त रूढि-विरोधी है, निराला के वेदान्त की तरह। उनके रहस्यवाद में आनन्द का वैसे ही स्थान है जैसे निराला की प्रकृति-पूजा में। उल्लेखनीय है कि प्रकृति-पूजा वाले आनंदमय रहस्यवाद का सम्वन्ध प्रसाद ने सौन्दर्य-लहरी से जोड़ा है। सौन्दर्य-लहरी में व्रह्म की नहीं शक्ति की उपासना है; यह शक्ति चेतन है, सुन्दर है—प्रसाद इस सत्य से भली-भाँति परिचित हैं। रहस्यवाद वाले निवंध के अन्त में लिखा है, "साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत-वाङ्मय मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के शरीरं त्वं शम्भो का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है।"

यहाँ 'प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद'—ये शब्द ध्यान देने योग्य है। सच्चिदानंद व्रह्म वाले अद्वैतवाद अथवा रहस्यवाद से यह भिन्न है। यह शरीर और आत्मा के द्वैत को स्वीकार नही करता। वह शरीर त्वं शम्भो—इस सूत्र को लेकर आगे वढ़ता है। हिंदी मे—प्रसाद और निराला के साहित्य में—रहस्यवाद की 'सौंदर्यमयी' व्यंजना होने लगी है। यह सौन्दर्य-पूजा उसकी विशेषता है, सौन्दर्य-

लहरी की अनुरूपता और **गीतांजलि** से भिन्नता है।

प्रसाद ने इस शक्ति-साधक, सौन्दर्य-पूजक रहस्यवाद से **गीतिका** के प्राक्कथन में निराला का सम्बन्ध जोड़ा: "निराला जी ने नृम्ण और ओज, सौदर्य-भावना और कल्पना का जो माधुर्यमय संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति-साधना का उज्ज्वल परिचायक है।"

नृम्ण और ओज—ये गुण अन्य कवियों में भी मिलते हैं। प्रसाद ने उनके संकलन को शक्ति-साधना का परिचायक क्यों कहा? शक्ति से ओज का सम्बन्ध हो सकता है, नृम्ण का क्या सम्बन्ध? सौन्दर्य-भावना और कोमल कल्पना से शक्ति-साधना का सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जा सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर रहस्यवाद वाले निबन्ध में है। प्रकृति विश्वसुन्दरी है। विश्वसुन्दरी प्रकृति शक्ति भी है। इसलिए निराला की सौंदर्य-भावना उनकी शक्ति-साधना का उज्ज्वल परिचायक है। शक्ति और सौन्दर्य अभिन्न है।

किन्तु निराला के लिए शक्ति मृत्युरूपा भी है। जीवन और मृत्यु, सुन्दर और भीषण, जड़ और चेतन—इनके द्वंद्व से चिरन्तन गतिशील प्रकृति निराला की प्रकृति है। निराला सौंदर्य और आनन्द के कवि ही नहीं, दुख और मृत्यु के कवि भी हैं। प्रसाद-साहित्य में विषाद है, दुख भी है किंतु उनके दर्शन में इनकी स्वीकृति के लिए कोई युक्ति नही है। आनन्दकामी रहस्यवाद की यही कमजोरी है।

[३]

छायावाद विकासमान आधुनिक भारतीय संस्कृति के अन्तर्विरोधो का साहित्य है। इन अन्तर्विरोधो का एक कारण परम्परा और आधुनिकता का द्वंद्व है। हमें आधुनिक राष्ट्र वनना है, साथ ही अपनी परम्परा को भी कायम रखना है। दोनों वातों में कोई अनिवार्य द्वंद्व नही किन्तु यदि आधुनिक भारत का नक्शा अस्पष्ट हो, तो परम्परा से कौन तत्त्व लिए जायँ, कौन छोड़े जायँ—यह विवेक भी अस्पष्ट होगा। **तितली** और **कामायनी** मे आधुनिक समाज की जो कल्पना है वह अस्पष्ट है। उस कल्पना के अनुरूप परम्परा का मूल्यांकन भी अस्पष्ट, जहाँ-तहाँ अवैज्ञानिक है।

उदाहरण के लिए रहस्यवाद वाले निवंध में मायावाद और दुखवाद का खंडन करते हुए प्रसाद ने वुद्धिवाद का खंडन किया है। इस वुद्धिवाद को वह विवेकवाद भी कहते है और उसे आनन्दवाद का विरोधी मानते हैं। आनन्द और वुद्धि का द्वंद्व **कामायनी** का मूल सूत्र है। श्रद्धा कामगोत्र की वालिका है, वह कामायनी है, आनन्द का स्रोत है; "इड़ा का वुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के वीच व्यवधान वनाने में सहायक होता है।" (**कामायनी** का आमुख)

प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के आन्तरिक संघर्ष को पहले तो सामाजिक परिवेश से हटाकर विशुद्ध चिन्तन के धरातल पर स्थापित कर दिया है, फिर वेदों को पूर्ण ज्ञान का स्रोत मानकर उनसे आनंदमय रहस्यवाद का संवंध जोड़कर वाद के

समस्त विकास को प्रकारान्तर से पतन और ह्रास का इतिहास घोषित किया है। भक्ति-साहित्य को उन्होने 'बुद्धिवाद का विकास' (काव्य और कला, पृ. ५१) अर्थात् मायावाद और दुखवाद का विकास माना है। राम को उन्होने 'विवेकवाद का सबसे बड़ा प्रतीक' (उप., पृ. ५९) माना, जो "केवल अपनी मर्यादा मे और दु:सहिष्णुता मे महान् रहे।" निर्गुण सन्त 'बुद्धिवादी' थे यद्यपि इन पर 'आनंद के सहज साधकों' का प्रभाव भी पड़ा। स्वभावतः राम के उपासक तुलसीदास सबसे बड़े बुद्धिवादी सिद्ध होते है। किन्तु प्रसाद के अनुसार उनके समय मे आनन्द-साधक रहस्यवाद की धारा इतनी प्रबल थी कि "स्वयं तुलसीदास को भी अपने महाप्रबध मे रहस्यात्मक सकेत करना पड़ा।" केवल "ब्रज के कवियों ने राधिका-कन्हाई-सुमिरन के बहाने आनद की सहज साधना परोक्षभाव मे की।"

प्रसाद की यह आनन्द-साधना कही सामाजिक निष्क्रियता से जुडी हुई है। जीवन का चरम लक्ष्य यदि आनद की प्राप्ति है तब क्रांति, सघर्ष, सामाजिक कर्तव्य—यह सब किसलिए? सामाजिक रूप से निष्क्रिय दृष्टि तुलसीदास का महत्त्व नहीं पहचान सकती; जिस दर्शन मे मनुष्य की सबसे गहरी, प्रत्यक्ष, मार्मिक अनुभूति—शोकानुभूति—की व्याख्या नही है, वह तुलसीदास जैसे कवियों की व्याख्या भी नही कर सकता।

किंतु एक कविता में प्रसाद ने लिखा है कि तुलसीदास ने मानवता को ही राम का रूप दिया था—**मानवता को सदय राम का रूप दिया था।** राम दुख-सहिष्णुता मे ही महान् नही हैं; वे दूसरो का दुख दूर करने के कारण भी महान् है। इसीलिए 'सदय' मानवता के प्रतीक है। जो राम के रूप मे मानवता को चित्रित करता है, वह मानवता से—ससार से—पराङ्मुख 'बुद्धिवादी', मायावादी कैसे हो सकता है? तुलसीदास ने राम की उपासना की तो मानो मानवता की उपासना की, उनका विरोध कोई समझदार कवि कैसे करे? इसलिए—

राम छोड़ कर और की जिसने कभी न आस की
रामचरित-मानस कमल जय हो तुलसीदास की।

(काननकुसुम, पृ. ८७)

यह भी प्रसाद ने ही लिखा है।

स्वाधीनता-आंदोलन की माँग है कि लेखक सामाजिक जीवन से पराङ्मुख न होकर उसे गहराई से देखें, उसमें भाग ले, उसे चित्रित करें। स्वाधीनता-आंदोलन का यह दबाव साहित्य में यथार्थवादी रुझानों के पनपने का मुख्य सामाजिक कारण है। जहाँ स्वाधीनता-सघर्ष के साथ किसान-आंदोलन भी संगठित हो रहा है, सामन्त-विरोधी संग्राम तेज़ हो रहा है, वहाँ यथार्थवाद के विकास के लिए सामाजिक परिवेश और भी अनुकूल है। दूसरी ओर स्वाधीनता-आंदोलन के विकास की रूपरेखा स्पष्ट नही है, किसान-संघर्षों की भूमिका स्पष्ट नही, साम्राज्यवाद के दांव-पेंच स्पष्ट नही, उनके काट पहले से अपने पास तैयार नही। इस तरह की अस्पष्टता, इस तरह का अज्ञान यथार्थवाद का विकास रोकता है। इसके साथ

लेखक की अपनी सामाजिक स्थिति है, अपने संस्कार है, चारों ओर के सांस्कृतिक वातावरण का वोझ है जिसमें तरह-तरह की यथार्थ विरोधी दार्शनिक साहित्यिक धाराएँ पुजती हैं। इससे छायावादी साहित्य मे विकट अन्तर्विरोधो की सृष्टि होती है।

प्रसाद चाहते है कि नये भारत के निर्माण के लिए ऐसा युवक-दल सामने आये—

जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृपक-करों का दृढ़ हल हो
दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरो का कल हो—
(उप., पृ. ९१)

अर्थात् युवक ऐसे होने चाहिए जो द्विज-शूद्र का भेद मिटा दें, जो दीन किसानों का संवल हों, दुखी जनों का दुख दूर करें, मजदूरों से भी जिनका सम्वन्ध हो। दूसरी ओर—

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्वर के कानो में गहरी—
निश्छल प्रेमकथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे। (लहर, पृ. १४)

प्रसाद का मन छायालोक में वैसे ही रमता है जैसे निराला का। प्रसाद अवश्य जानते है कि यह छायालोक की सैर घातक है। **स्कंदगुप्त** में जहाँ विजया कहती है—**गा चुके कोमल कल्पनाओं के लचीले गान**—वहाँ प्रसाद की सजगता सिद्ध होती है किंतु प्रसाद-काव्य पर उनके छायालोक का घना कुहरा छाया हुआ है। उनकी सजगता वैसी तीव्र नही है जैसी निराला की; यथार्थ और छायालोक का अन्तर्विरोध उतना तीखा नही है जितना निराला में। निराला के किसान-संस्कार छायालोक में उन्हें चैन से घूमने नहीं देते। **अप्सरा** तक मे किसान परिवेश को वह छोड़ नही पाते। सामाजिक उत्पीड़न को प्रत्यक्ष देखकर तिलमिला उठते है, स्वयं को धिक्कारने लगते हैं। **मैं ईश्वर, सौन्दर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ !—फिर क्रान्तिकारी !!** प्रसाद इस आत्म-प्रताड़ना से मुक्त है। अन्तर्द्वन्द्व की वेदना के शमन-हेतु उनके पास एक व्यवस्थित दर्शन है जिसका स्रोत, उनके अनुसार सीधे ऋग्वेद में है। सौन्दर्य और आनंद की साधना का यह दर्शन एक हद तक सामाजिक निष्क्रियता का दर्शन भी है।

'हंस' में **तितली** की आलोचना करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था, "चरित्र संजीवन होकर छाया-से मालूम होते हैं। सूर्य का तीव्र प्रकाश कही नही है, मद्धिम चाँदनी में सारे दृश्य दिखाई देते जान पड़ते है।" यह उक्ति **तितली** पर उतना लागू नही होती जितना प्रसाद की कहानियों और उनकी कविताओ पर। छायावादी कविता के कुछ दोप प्रसाद मे सबसे अधिक है। इनमें एक दोष है मद्धिम

चाँदनी में सारे दृश्यों का दिखाई देना। प्रसाद के काव्य-संसार में मानो अशरीरी भाव हवा मे उड़ते है। प्रकृति और नारी दोनो के ही चित्रण मे वस्तु की रेखाएँ, आकार उभरते नहीं है। लाज, मादकता, आलस, शिथिलता, अँगड़ाई, नीद, सपने---इनकी भरमार है। जो कुछ दिखाई देता है, धुँधला और अस्पष्ट।

शशि मुख पर घूंघट डाले।
अंचल मे दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये। (आँसू)

एक तो गोधूलि, उस पर घूंघट से ढका हुआ मुख, दीप आँचल के भीतर; मानो इतना धुंधलापन काफी न हो, मूर्ति की तुलना की गई है अमूर्त कौतूहल से।

ऊषा सी आँखो में कितनी
मादकता भरी ललाई है।
कहता दिगन्त से मलय पवन
प्राची की लाजभरी चितवन---
है रात घूम आई मधुवन,
यह आलस की अँगराई है। (लहर, पृ. २०)

मादकता, आलस्य, लाज, अँगड़ाई---निष्क्रिय सौन्दर्य-पूजा के सारे उपकरण एक जगह समेट लिए गए हैं। देवसेना के प्रसिद्ध गीत आह ! वेदना मिली विदाई में---

मेरी यात्रा पर लेती थी---
नीरवता अनन्त अँगड़ाई। (स्कंदगुप्त)

यात्रा पर नीरवता अँगड़ाई लेती थी। लगता है, सचमुच छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

तुम कनक किरण के अन्तराल मे
लुक छिप कर आते हो क्यों ?...
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ? (चन्द्रगुप्त)

शशिमुख पर घूंघट डालने के बदले कनक-किरण के अन्तराल से लुक-छिपकर आना। लाजभरा सौन्दर्य---अपने मौन बने रहने का उत्तर क्या दे ? एक विशेष स्थिति, विशेष प्रकार का सौन्दर्य, एक विशेष भावात्मक प्रतिक्रिया, उसी की आवृत्ति, प्रकृति पर उसी का आरोप। प्रसाद से सहानुभूति होने लगती है। कही गहरा धक्का लगा है। उस अनुभूति से उबर नही पाते, उसी में डूबे रहने में सुख मिलता है।

जगीं वनस्पतियाँ अलसाई...
(कामायनी, अष्टम संस्करण, पृ. २३)
जलधि लहरियो की अँगड़ाई... (उप.)
अलस चेतना की आँखें... (उप., पृ. ३५)

चेतना शिथिल सी होती है··· (उप., पृ. ७०)
चेतना थक सी रही तब··· (उप., पृ. २१६)
लेती ढीली सी भरी साँस··· (उप., पृ. २३४)
कोमल किसलय के अँचल में
नन्हीं लतिका ज्यो छिपती सी··· (उप., पृ. ६८)
नीरव निशीथ मे लतिका सी··· (उप., पृ. ६८)

प्रसाद जब चेतना के थकने और शिथिल होने की बात करते है तब उनके सामने—निराला की तरह—जीवन-संग्राम में थके हुए योद्धा का चित्र नही होता; यह शिथिलता आलस्य और निष्क्रियता से संबद्ध है। यह अलस शिथिल चेतना स्वप्नों के छायालोक में विचरण करती है। प्रसाद का स्वप्न-संसार 'छायावाद' नाम सार्थक करता है। महादेवी वर्मा का अमूर्त भाव-संसार प्रसाद के छायालोक के आधार पर ही रचा गया है।

पंत के जिस काव्य ने उन्हें लोकप्रिय बनाया, उसमे प्रकृति उतनी अस्पष्ट नहीं है जितनी प्रसाद-काव्य मे। यही नही कि विभिन्न वस्तुएँ रूपरेखा, आकार आदि में स्पष्ट हैं, पंत की प्रकृति पहचानी जा सकती है कि वह पार्वतीय है। बाद को **ग्राम्या** की रचनाओं में उसकी अवधी (या मैदानी) विशेषता भी पहचानी जा सकती है।

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल !

यह प्रकृति सम्बन्धी कल्पना नहीं, वास्तविक प्रकृति है। प्रकृति की वास्तविकता के साथ भाषा और छंद में ओज है जिसकी प्रतिध्वनि **मेरे नगपति मेरे विशाल** जैसी कविताओं मे सुनाई देती है। इस प्रकृति-चित्रण मे उपदेश, नैतिकता, मानवीय भावनाओं का आरोप आरंभ से है, बाद को वह और बढ़ता गया, पंत के प्रकृति-काव्य को कमजोर बनाता गया। प्रसाद में प्रकृति-चित्र यदि धुँधले हैं तो कम-से-कम भावों का अभाव नही है। **ग्राम्या, पल्लव** को छोड़कर अनेक कमजोर रचनाओं में पंत प्रकृति सम्बन्धी धारणाएँ दोहराते हैं, भाव और रूप दोनो का अभाव रहता है। पंत अपनी प्रकृति को अत्यन्त सुरक्षित स्थान से देखते हैं, प्रकृति विस्मय या उल्लास उत्पन्न करती है, उसके कर्कश, उग्र, भयावह रूप उनकी आँखों से ओझल रहते है।

प्रसाद के भावबोध में समरसता नही है। वह अलस चाँदनी मे प्रकृति की मादक छवि निहारते हैं तो दिन की तेज़ धूप में लू के झोंकों से हिलता हुआ शाल्मली वृक्ष भी देखते हैं :

की काव्यभाषा पल्लवकाल में व्रजभाषा से काफी प्रभावित है; ग्राम्या में वह फिर बोलचाल की भाषा की मिठास से सरस होती है। परवर्ती काव्य में वह व्रज तथा लोकभाषा से बहुत दूर हट गई है।

आंधी संग्रह में प्रसाद की एक कहानी है 'ग्रामगीत'। उसमें यह गीत सुनाई देता है :

बरजोरी बसे हो नयनवाँ मे।
अपने बाबा की बारी दुलारी
खेलत रहली अँगनवाँ मे।
ई कुल बतियाँ कबों नहीं जनली,
देखली कबों ने सपनवा में।
मुरि मुसुकयाई पढ़्यो कछु टोना,
गारी दियो किधों मनवा में।
ढीठ! बिसारे बिसरत नाहीं
कैसे बसूं जाय बनवा में,
बरजोरी बसे हो नयनवाँ में।

इस तरह का लोकसंगीत प्रसाद को भी प्रिय था। हिंदी काव्य-भाषा की यह समस्या है कि उसे कैसे लोकभाषा के नजदीक लाएँ, लोकभाषा के तत्त्वों से कैसे उसे नई शक्ति दें। प्रसाद के गीतों पर लोकभाषा, लोकधुनों का हल्का प्रभाव है लेकिन ऐसा प्रभाव है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

मेरी आँखों की पुतली में
तू बन कर प्रान समा जा रे! (लहर)

यह बनक लोकगीतों की है। सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा!

यथार्थोन्मुख और यथार्थ-विमुख दोनों तरह की धाराएँ छायावादी साहित्य में है। वे भावबोध, विचारधारा और कला—तीनों जगह अपना प्रभाव दिखाती हैं। उनकी जड़ें सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में हैं। निराला के व्यक्तित्व में जो अन्तर्विरोध बहुत तीक्ष्ण रूप में उभरकर सामने आते हैं, वे मुंदे-ढके रूप में अन्य कवियों मे भी हैं। समर्थ साहित्य अन्तर्विरोधों को पार करता हुआ विकसित होता है। जिसे इस बात का पता नहीं कि उसकी भाषा लोकभाषा से कितना कटी हुई है, वह अन्तर्विरोधों का सामना क्या करेगा, भाषा का विकास क्या करेगा?

छायावादी कवि प्रतिभाशाली थे किंतु इनकी प्रतिभा अपना विशेष चमत्कार तब दिखाती है जब वह यथार्थ जीवन से कतराती नहीं है, स्वाधीनता-आंदोलन को नजदीक से देखती है, किसान संगठन की आवश्यकता महसूस करती है, सामाजिक क्रान्ति की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती है। निराला की साम्राज्य-विरोधी चेतना अत्यन्त प्रखर है, उनके किसान संस्कार प्रबल है, वह तुलसीदास से लेकर अवध के लोकगीतों तक से अपनी भाषा, ध्वनि-प्रवाह और कला के उपकरण जुटाते हैं, जीवन-संघर्ष में करारी चोटें खाकर तटस्थ निस्संग दृष्टि से सत्य को देखकर जो

साहित्य उन्होने रचा, वह छायालोक का साहित्य नही, यथार्थ जीवन का साहित्य है। निराला के व्यक्तित्व की विशेषताएँ उनके युग की विशेषताओं से मिल गई है। वह युग से लेते ही नहीं, रचनाकार हैं, उसे देते भी है। उनकी कला में हिंदी गद्य और काव्य का वहुत-सा भावी विकास छिपा हुआ है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के वाद दूसरे छायावादी कवियों के साहित्य में जैसे दिशा-परिवर्तन हुए, उनसे निराला-काव्य की तुलना करें तो पता चलेगा कि जो व्यक्तित्व सवसे ज्यादा विघटित मालूम होता था, वही अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाला सवसे धीर, प्रशान्त, अविघटित व्यक्तित्व भी है। निराला के साहित्य की अनेक विशेपताएँ उनके युग की सामान्य विशेषताएँ हैं। उनकी अपूर्व ऊर्जा, मेधा का प्रखर प्रकाश, अनुपम भावशक्ति, उदात्त ध्वनि-प्रवाह, लोकसंगीत का माधुर्य, व्यंग्य की वक्रता—उनकी प्रतिभा की अपनी देन हैं।

[4]

जैसे शेक्सपियर और मिल्टन के वाद शेली, कीट्स और वायरन का युग अंग्रेजी-काव्य का सवसे रचनात्मक, सवसे प्रगतिशील युग है, वैसे ही तुलसीदास और सूरदास के युग के वाद प्रसाद-निराला-पंत का युग सवसे रचनात्मक, सवसे प्रगतिशील युग है। शेक्सपियर और मिल्टन के युग मे अंग्रेजी-भापी जनता एक महाजाति के रूप में संगठित हुई; उसके जातीय अभ्युदय के युग का नाम है रिनैसेंस। सामन्ती युग के जनपदों का अलगाव दूर हुआ; व्यापार और विनिमय के विकास के साथ नये वर्ग संगठित हुए, पुरानी वर्ण-व्यवस्था टूटी। व्यापारी वर्ग, मध्य वर्ग और किसानों ने मिलकर—इंग्लैंड के गृहयुद्ध के रूप में—यूरोप की पहली सामन्त-विरोधी क्रांति सम्पन्न की। इस क्राति की देन है मिल्टन जो प्रजातंत्र के विनाश के वाद भी पराजय स्वीकार नहीं करता।

तुलसीदास और सूरदास के युग में जनपदों का अलगाव दूर होता है, व्यापार की मंडियों के रूप में वड़े-वड़े नगरों का विकास होता है। राजभापा फारसी है; हिंदीभाषी जनता की अपनी जातीय भापा के विकास मे यह वहुत वड़ी वाधा है। फिर भी व्रजभापा का साहित्य व्रज जनपद के वाहर दूर-दूर तक लोकप्रिय होता है। तुलसीदास व्रज और अवधी दोनों भापाओं मे लिखते है, उनका 'रामचरितमानस' व्रज-अवध के अलावा अनेक पूर्वी-पश्चिमी जनपदों में पढ़ा और सुना जाता है। जैसे शेक्सपियर के नाटक अंग्रेजी-भापी जाति की श्रेष्ठ उपलव्धि है, वैसे ही 'रामचरित-मानस' हिंदीभाषी जाति की श्रेष्ठ साहित्यिक उपलव्धि है। यूरोप से भिन्न भारत एक वहुजातीय राष्ट्र के रूप में विकसित होता है; तुलसीदास जिस तरह हिंदी-भापी प्रदेश के वाहर पढ़े जाते रहे हैं, उस तरह यूरोप मे शेक्सपियर नही पढ़ा जाता रहा।

अठारहवी सदी के अन्त में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति हुई। अर्थतंत्र में छोटे पैमाने के उत्पादन का विनाश आरम्भ हुआ; कल-कारखानों में श्रमिक द्वारा नये

तरीके से उत्पादन शुरू हुआ। देश के अर्थतंत्र मे जो सामन्ती अवशेष थे, वे खत्म हुए। औद्योगिक क्रांति से आर्थिक प्रभुसत्ता भू-स्वामी वर्ग के हाथ से छिन गई—पूरी तरह नही, आंशिक रूप में—किंतु उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे राजनीतिक प्रभुसत्ता उसी के हाथ मे बनी रही।

इस बीच फ्रांस में—यूरोप की दूसरी सामन्त-विरोधी क्रांति सम्पन्न होती है। इसका गहरा असर ब्रिटेन के रोमांटिक कवियों पर पड़ता है। औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न नवीन सामाजिक परिस्थितियो मे—फ्रांसीसी राज्यक्रांति से उत्पन्न उग्र विचारधारात्मक संघर्ष की नवीन सांस्कृतिक परिस्थितियो मे—जो साहित्य रचा जाता है, उसका नाम है रोमांटिक साहित्य। यह साहित्य कलात्मक स्तर पर रीतिवादी काव्य को परास्त करता है, आलोचना मे यूरोपीय रीतिवाद के आदिगुरु अरस्तू की प्रभुसत्ता का ध्वंस कर देता है, जातीय अभ्युत्थान के महान् लेखको शेक्सपियर और मिल्टन से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

भारत मे दूसरे महायुद्ध के बाद—यूरोप की तीसरी सामन्त-विरोधी क्रांति, श्रमिक वर्ग के नेतृत्व में सम्पन्न होने वाली, समाजवाद की ओर अग्रसर, रूसी राज्य-क्रांति के बाद—स्वाधीनता-आंदोलन के नवीन अभ्युत्थान के युग मे जो साहित्य रचा जाता है, वह छायावाद है। हिंदी-भाषी जाति अंग्रेज़ जाति की तरह स्वतंत्र नही है। वह विभिन्न जनपदों, अकसर विभाजित जनपदों मे बँटी हुई है—आधा भोजपुरी क्षेत्र बिहार में, आधा संयुक्त प्रान्त मे। उसकी भाषा हिंदी-उर्दू दो साहित्यिक अथवा शिष्ट रूपों मे बँटी हुई है। १८५७ की स्वाधीनता-संग्राम-भूमि—हिंदीभाषी प्रदेश—पर अंग्रेजों की विशेष कृपा रही। सामन्ती अवशेषों के साथ रीतिवादी धारा ने अंग्रेजी राज मे नया जीवन पाया। छायावादी कवियों मे प्रसाद और निराला को पूरी स्कूली शिक्षा भी नही मिली; केवल पंत इण्टर तक पहुँचे थे, विश्वविद्यालय की शिक्षा उन्हें भी नही मिली। विश्वविद्यालयीय शिक्षा प्राप्त अध्यापक-साहित्यकारो में महादेवी वर्मा अन्यतम हैं।

छायावादी कवियो ने शिक्षित मध्यवर्ग के काव्यबोध मे भारी परिवर्तन किया। रीतिवादी काव्य में रूप-रस-गंध का संसार सीमित, रूढिबद्ध और निर्जीव हो गया था। छायावादी काव्य में प्रकृति और मनुष्य के पार्थिव, मांसल सौंदर्य का नया उद्घाटन हुआ। छायावादी काव्य नये रीति-विरोधी गोचर सौन्दर्य का काव्य है। उसका मूर्तिविधान रूप-रस-गंध के संसार की इस नई पहचान का ही परिणाम है। छायावादी काव्य मनुष्य के नवीन उन्मुक्त भावलोक का साहित्य है। रीतिवादी भावरुद्ध काव्य संसार की सीमाएँ तोड़कर, व्यक्ति के महत्त्व की घोषणा करते हुए, छायावादी कवियों ने हिंदी कविता को नयी भावराशि से समृद्ध किया। यह भावराशि एक ओर भावुकता को छूती है और कमजोर है, दूसरी ओर उसमे भावगाम्भीर्य है, वह अप्रतिहत भावशक्ति से संचालित भी है।

दार्शनिक चिंतन की दृष्टि से तुलसीदास के बाद का यह सबसे समृद्ध युग है। छायावाद का कोई एक निश्चित व्यवस्थित दर्शन नही है—इंग्लैंड के रोमांटिक

कवियों का भी नहीं है। छायावादी कवि रहस्यवाद से नाता जोड़ते हैं किंतु उनकी व्याख्याएँ अलग-अलग हैं। जिस व्याख्या को एक कवि स्वीकार करता है, उसके अनुरूप ही सर्वत्र उसके दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हो, यह आवश्यक नहीं। जहाँ व्याख्याएँ परस्पर-विरोधी हों, वहाँ दार्शनिक ऊहापोह का कहना ही क्या। एक बात निश्चित है कि छायावाद में सांसारिकता की ओर उन्मुख प्रबल भाव-धारा ही नहीं, विचारधारा भी है। छायावाद की श्रेष्ठ उपलब्धि रहस्यवादी आनन्द का काव्य नहीं, शोकानुभूति का काव्य है। भवभूति के नाटकों, तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' के बाद ओजमिश्रित करुणा की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति इस युग के काव्य में हुई है।

छायावाद रीतिमुक्त कल्पना का काव्य है। मनुष्य की मानसिक क्षमताओं में कल्पनाशक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह कल्पनाशक्ति सुधारवादी, मिथ्या नैतिकतावादी कवियो में जड़ हो गई थी; उपयोगितावाद की ज़ंजीरें उसे सक्रिय न होने देती थी। रीतिवादी कवियों मे द्रष्टा की कल्पना नही, चमत्कारवादियों की गिरहबाजी थी। छायावादी कवियों की कल्पना एक ओर अपार्थिव छायालोक में घूमती है, दूसरी ओर वह यथार्थ का घनीभूत अनुभव भी प्रस्तुत करती है, काव्य मे वह स्वप्नाविष्ट कवि-दृष्टि का चमत्कार दिखाती है।

छायावाद आत्मगत अनुभूतियो का साहित्य माना जाता है किन्तु सामाजिक-सास्कृतिक परिवेश के प्रति उसमे जैसी सजगता है, वैसी पूर्ववर्ती, परवर्ती काव्य में कम है। आत्मगत अनुभूति, व्यक्तिगत जीवन पर निर्भर भावोद्गार लिरिक-काव्य की विशेषताएँ है। छायावाद मे लिरिक-काव्य सबसे अधिक महादेवी वर्मा ने लिखा, फिर पंत ने। प्रसाद ने नाटक लिखे, छायावाद का श्रेष्ठ महाकाव्य **कामायनी** लिखा। ये लिरिक साहित्य के उदाहरण नहीं है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी प्रबन्ध कविताएँ लिखी। प्रसाद और निराला दोनों आत्मगत अनुभवों को नाटकीय रूप देना जानते हैं। यह नाटकीयता निराला के गीतों मे भी है। इसलिए छायावाद के लिरिक पक्ष को उसका एकमात्र पक्ष न मानना चाहिए।

छायावाद नए सामन्त-विरोधी मानवमूल्यों की प्रतिष्ठा का साहित्य है, जाति-प्रथा और साम्प्रदायिक विद्वेष से विभाजित समाज में वह मानवीय एकता की पुकार का साहित्य है। वह बाह्य जगत् के अन्तर्विरोधों को उजागर करता है, साथ ही मनुष्य के अन्तर्जगत् के नए रहस्य भी उद्घाटित करता है। मनोवैज्ञानिक छान-बीन की दृष्टि से छायावादी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

छायावाद निरन्तर और नवीन प्रयोगशीलता का साहित्य है। नए-नए काव्य-रूप, नया छन्द-विधान, नई प्रबन्ध-पटुता, अनेक प्रकार की शैलियों का व्यवहार इस साहित्य की विशेषता है। यह प्रयोगशीलता नवीनता या मौलिकता का प्रदर्शन नहीं है। कलात्मक प्रयोग नए अनुभवो को व्यक्त करने की समस्याओ से जुड़े हुए हैं। विशेष रूप से ध्वनि-प्रवाह सम्बन्धी करिश्मे जैसे यहाँ है, वैसे शेष हिन्दी काव्य

में—एक ही युग के काव्य में—कम हैं। छायावादी कवियों ने पद्य के साथ गद्य भी लिखा। रीतिवादी और गाँधीवादी कवि गद्य-लेखन में इनका मुकाबला नही कर सकते। इनके आलोचनात्मक निबन्ध पुरानी स्थापनाओं को दोहराने या उनकी नई व्याख्या करने के बदले कवियों के अपने रचना सम्बन्धी अनुभवों से समृद्ध हैं। रीति-मुक्त हिन्दी आलोचना नवीन साहित्य-निर्माण के साथ आगे बढ़ती है। प्रेमचन्द को छोड़कर इनके नाटकों और कथा-साहित्य का गद्य उस युग का श्रेष्ठ कलात्मक गद्य है। पद्य की तरह गद्य में शैलीगत विविधता है; गद्य-पद्य दोनों में तर्कयोजना के अतिरिक्त ये लेखक संरचना सम्बन्धी स्थापत्यबोध, साहित्य के निर्माण-सौन्दर्य के प्रति अपनी सजगता का परिचय देते हैं। गद्य और पद्य दोनो में इन्होंने हिन्दी की अभिव्यंजना शक्ति का नवीन विकास किया।

संस्कृत वाङ्मय से लेकर हिन्दी के पुराने कवियों तक की सास्कृतिक विरासत के प्रतिनिधि ये छायावादी कवि हैं। इस विरासत से और लोग भी परिचित थे किन्तु उसका अनुसरण मात्र नही, रचनात्मक विकास छायावाद की विशेषता है। अन्य भाषाओ मे, विशेष रूप से बँगला में, जो नया साहित्य रचा जा रहा था, उससे ये परिचित थे, न्यूनाधिक मात्रा मे प्रभावित थे। नवीन साहित्य के अलावा निराला बँगला के पुराने साहित्य के भी अध्ययनशील प्रेमी थे। उनका परिचय उर्दू और अंग्रेजी साहित्य से भी था। देश-विदेश की अनेक सांस्कृतिक धाराएँ छायावादी साहित्य मे आकर मिलती है। इन धाराओं के मिलने से उसका जातीय और राष्ट्रीय रूप नष्ट नही होता, और भी विकसित होता है।

इन छायावादी कवियो मे परस्पर विरोध भी था, कही व्यक्तिगत, कही वस्तुगत। जहाँ साहित्यिक प्रतिद्वन्द्विता मे श्रेष्ठ बनने की महत्त्वाकांक्षा है, वहाँ विरोध व्यक्तिगत है, किन्तु यह स्मरण रखना उचित है कि छायावादी कवियों की विचारधारा, भावबोध और कलात्मक क्षमता मे बडा अन्तर है। कुछ ऐसे हैं जिनकी राजनीतिक चेतना प्रखर है, कुछ ऐसे हैं जिनकी राजनीतिक चेतना मन्द है। कुछ किसान जीवन से निकट रूप मे सम्बद्ध है, कुछ उससे विच्छिन्न हैं। कुछ ऐसे हैं जो भावोच्छ्वासमात्र से सन्तुष्ट नही हैं, साहित्य में मेधा का चमत्कार देखना चाहते है, कुछ ऐसे हैं जिनकी भावशक्ति क्षीण है, विचारशक्ति और भी जीर्ण है। भाषा की परख, कलात्मक क्षमता, जीवन-संघर्ष के अपने-अपने अनुभव एक-से नही हैं; इसलिए मतभेद की ही नही, परस्पर विरोध और वाद-विवाद की गुंजाइश भी थी। ऐसे विरोध और वाद-विवाद का आधार वस्तुगत है और साहित्य में वह वाछनीय है, भले ही वह व्यक्तिगत रागद्वेष से सदैव मुक्त न हो। छायावादी कवियों का मूल्यांकन होगा तो उनकी कलात्मक क्षमता और रचनात्मक उपलब्धि का भेद भी सामने आएगा। इस भेद के बारे मे मतभेद की गुंजाइश है किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि किसी एक को उठाने और दूसरों को गिराने के लिए साहित्य का विवेचन किया गया है। उसके लिए इतना परिश्रम करना आवश्यक नही। कुछ दिन में यह काम इतिहास स्वयं कर देता है। किन्तु जो काम इतिहास

नहीं करता, वह साहित्य के मर्म को उद्घाटित करना है। यह काम आलोचकों का है। कोई आलोचक यह दावा नही कर सकता कि उसने जो कुछ समझा है, वह सब सही है या साहित्य की समझ उसमें पूर्ण विकसित होने के बाद औरों के लिए निर्वाण को प्राप्त हो गई है।

जहाँ कवियों ने अपने बारे में कुछ लिखा है, अपने काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है, आलोचको का कर्तव्य है कि उस पर ध्यान दें। निराला ने अपने बारे मे जो कुछ लिखा है, उसकी चर्चा पहले हो चुकी है। प्रसाद और महादेवी वर्मा ने अपना मूल्यांकन नही किया। पंत ने अपने काव्य पर अनेक स्थानो मे विशद प्रकाश डाला है। विशेष रूप से **छायावाद : पुनर्मूल्यांकन** में उन्होने भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अपना महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन किया है। साथ ही अन्य कवियों पर भी मत प्रकट किया है।

कालिदास के बाद के समस्त भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने लिखा है, "भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में कालिदास-से महाकवि हुए हैं, पर भारतीय दार्शनिक परम्परा मे ऐसा सौन्दर्य-मंडित, ज्योति-संवृत कवि अभी तक एकमात्र निराला ही मिले हैं—यह उनके कृतित्व की पर्याप्त विजय है।" (पृ. ७०) ऐसी उदारता वंदनीय है जिसमे तुलसीदास समेत समस्त दार्शनिक काव्य-परम्परा निराला के सामने हेठी दिखाई देती है। अवश्य ही निराला छायावादी युग के एकमात्र दार्शनिक कवि नही हैं। वास्तव मे दार्शनिक कवि होना एक बात है, सत्य के दर्शन करना दूसरी बात है।

पंत ने लिखा है : "वास्तव में, दर्शनज्ञ या दर्शनों से प्रभावित कवि तो प्रसाद जी तथा निराला जी रहे हैं। एक शैवागम से, दूसरे वेदान्त से, और दोनों का दर्शन-बोध मूल्य की दृष्टि से उनके काव्य की परिसीमा बन गया है। मैंने तो जो कुछ भी वैचारिक या बौद्धिक तत्त्व ग्रहण किए हैं, वे भावनात्मक दृष्टि से, क्योकि मेरी भावना अन्तर्मुखी न होकर जीवनोन्मुखी या वस्तून्मुखी रही है।" (पृ. ७४)

वास्तव में तुलसीदास का दृष्टिकोण मध्ययुगीन रहा है; उस दार्शनिक परंपरा में कालिदास के बाद निराला श्रेष्ठ दार्शनिक कवि लगें तो आश्चर्य नही। किंतु उनका दर्शनबोध उनके काव्य की परिसीमा है, वह जीवनोन्मुखी नही है, यह ध्यान मे रखना चाहिए। मध्ययुगीन दर्शन से बँधे रहने का दोष रवीन्द्रनाथ ठाकुर में भी है। पंत ने उनके बारे में लिखा है कि "उनका भावना तत्त्व आधुनिक या नवीन न होकर वही वैष्णवयुग की प्रेम-साधना का भावतत्त्व है··· रवीन्द्र के गीतों में नये युग-हृदय की भावना-स्फूर्ति को, नये युग के निर्माण-उन्मेष तथा कर्म-सौन्दर्य को, तथा नये प्रेम मूल्य में परिणत तत्त्व को वाणी नही मिल सकी है।" (पृ. ८०-८१)

वर्तमान युग में केवल अरविन्द घोष ऐसे कवि-दार्शनिक है जिन्होने "भारतीय चेतना एवं मानस चैतन्य को मध्ययुगीन दार्शनिक जटिलताओ से मुक्त कर तथा उसका सन्तों की जीवन-घातक निषेध-वर्जनाओ से उद्धार कर उसका समग्र रूप से

नवीन सस्कार किया। वह नि मन्देह नये अन्तश्चैतन्य के प्रतिनिधि, महापुरुष तथा सत्यद्रष्टा है।" (पृ. ८१)

अन्तश्चैतन्य के प्रतिनिधि कवि और सत्यद्रष्टा पत भी है। लोग उन्हें अरविन्द का अनुयायी समझते है, यह गलत है। उनका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, "मुझे स्वयं ही पल्लव के बाद। क स्वतन्त्र व्यापक अन्तर्दृष्टि जीवन, मन तथा आत्मा सम्बन्धी मान्यताओं को निरखने-परखने के लिए मिल गई थी" (पृ. ८१)। स्वभावतः अरविन्द के सत्य-दर्शन और पत की सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूति मे अंतर है और कुल मिलाकर योगी अरविंद की देन क्या है ? यदि यूरोप के विकासवाद को उनके दर्शन से निकाल दिया जाय तो उसमे पुराने भारतीय दर्शन की आवृत्ति के अलावा बचेगा क्या ? पंत कहते है—

"वास्तव मे, विकासवाद के सिद्धात को छोड़कर जिसमे वह पश्चिमी विकासवाद को महत्त्वपूर्ण रूप दे सके है, श्री अरविंद दर्शन केवल भारतीय औपनिषदिक चैतन्य का ही युग-अनुरूप दार्शनिक मूल्यावन है, जिसका स्वतत्र बोध मुझे ज्योत्स्ना और युगवाणी काल मे हो चुका था।" (पृ. ७६)

स्वभावतः पुराने दार्शनिक चितन की व्याख्या करने वाले अरविंद के जीवन-दर्शन और पंत के सत्य-दर्शन मे अतर है।

"श्री अरविंद जीवन को जड़ के ऊपर की एक स्थिति भर मानते है। उनके अनुसार, जो प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण भी है--जड़ से जीवन, जीवन से मन का विकास हुआ है···उनकी साधना-पद्धति मध्ययुगीन दृष्टि से आत्ममुक्ति सम्बन्धी न होने पर भी उस प्रकार की नही है, जिसे मैं सामाजिक यथार्थ के विकास के पथ से सन्तुलित विश्व-जीवन के लिए सामूहिक मुक्ति की दृष्टि कहता हूँ।" (पृ. ७८)

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से अरविंद को छुटकारा नही मिलता। संतुलित विश्वजीवन के लिए मुक्ति की जो दृष्टि चाहिए, वह उनके पास नही है। अरविंद के विपरीत—अपनी इस सत्यदृष्टि को सम्पन्न बनाने के लिए मैंने अपने युग की सभी प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विचारधाराओं से अपने प्रयोजन के तत्त्वों को ग्रहण एव आत्मसात करने का प्रयत्न किया है।" (पृ. ८९)

स्पष्ट है कि अरविंद घोष के जीवन दर्शन मे जो खामियाँ है उन्हें पत ने दूर किया है। उस दर्शन का परिष्कार मात्र किया हो, ऐसी बात नही है। पल्लव के बाद उन्हे जो व्यापक जीवनदृष्टि मिली थी, उसे वे निरन्तर विकसित करते रहे है। यह जीवनदृष्टि तुलसीदास, वैष्णवकवियों, संतो आदि की जीवन-घातक निषेध वर्जनाओं से मुक्त है, उसमे रवीन्द्रनाथ की तरह वैष्णव युग की प्रेम-साधना की आवृत्ति नही है। उसके लिए नही कहा जा सकता कि वह नये युग-हृदय की भावना-स्फूर्ति के प्रतिकूल है। उसमे संतुलित विश्वजीवन के लिए वह सामूहिक मुक्ति की दृष्टि है, जो अरविंद के पास भी नही है। प्रसाद और निराला का जिक्र ही क्या, शैवागम और वेदान्त जिनके काव्य की परिसीमा बन गए है। विराट्

भारतीय साहित्य और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अनेक कवियों-दार्शनिकों का यह सर्वेक्षण अपने मे मूल्यवान है; वह पंत काव्य का सर्वथा नवीन मूल्यांकन भी प्रस्तुत करता है, यह उसका अतिरिक्त मूल्य है। नि.सन्देह पंत स्वयं अपना मूल्याकन जिस पद्धति से, जिस स्तर पर प्रस्तुत कर सकते हैं, वह किसी आलोचक के लिए संभव नहीं। कुछ आलोचक तो पुरानी काव्य-दृष्टि से बँधे हुए थे; जो उस दृष्टि मे मुक्त थे उनकी "संकीर्ण दृष्टि तथा दलबंदी के कारण, मेरी उस नयी जीवन-दृष्टि तथा काव्य वस्तु का समुचित मूल्याकन नही हो सका।" (पृ. ७६)

इसीलिए मैंने कहा, कवि अपने बारे मे क्या कहते हैं, उस पर ध्यान देना आवश्यक है। पंत ने जो कुछ लिखा है, वह दूसरों को गिराने और स्वयं को उठाने के लिए नही लिखा। उन्होंने जिस उदारता से औरो के बारे में लिखा है, उससे कुछ अधिक उदारता से अपने बारे में लिखा है। इसमे बुराई क्या है ? साहित्य में किसी कवि का मूल्यांकन न हो तो क्या वह चुपचाप बैठा रहे ? हिंदी साहित्य में जो काम कोई आलोचक नही कर सका, उसे पंत ने पूरा किया है। इसके लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने पहली बार अपना समुचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया है; जो मूल्यांकन समुचित है, वह उचित भी हो, यह आवश्यक नही। इससे उसके मूल्य में कोई कमी नही आती। छायावाद : पुनर्मूल्यांकन पंत की ऐतिहासिक कृति है और छायावादी युग के अन्तर्विरोधों को समझने के लिए उसका महत्त्व असंदिग्ध है।

परिशिष्ट

(पुस्तक-सूची)

परिमल—गंगा पुस्तक माला, लखनऊ; अष्टमावृत्ति, १६६०
गीतिका—भारती भंडार, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण, १६३६
अनामिका—उप.; प्रथम संस्करण, १६३८
तुलसीदास—उप.; तृतीय संस्करण, १६४२
अणिमा—युग मंदिर, उन्नाव; प्रथम संस्करण,१६४३
बेला—निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग; नवीन संस्करण, १६६२
नये पत्ते—उप.; उप., १६६२
अर्चना—कलामंदिर, प्रयाग; प्रथम संस्करण, १६५०
आराधना—साहित्यकार संसद्; प्रथम संस्करण, १६५३
गीतगुंज—हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; द्वितीय संस्करण, १६५६
सांध्य काकली—वसुमती, इलाहाबाद; प्रथम सस्करण, १६६६
कुकुरमुत्ता—युग मंदिर, उन्नाव; प्रथम संस्करण, १६४२
रामायण—(विनय काण्ड)—राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी; प्रथम संस्करण, १६४८
अप्सरा—गंगा पुस्तक माला, लखनऊ; सातवी आवृत्ति, १६६०
अलका—उप., दसवी आवृत्ति, १६६१
निरुपमा—भारती भंडार, प्रयाग; प्रथम संस्करण, १६३६
प्रभावती—किताब महल, प्रयाग; चतुर्थ संस्करण, १६५३
चोटी की पकड़—उप., प्रथम संस्करण, १६४६
काले कारनामे—हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी; १६६०
कुल्लीभाट—गंगा पुस्तक माला, लखनऊ; पाँचवी आवृत्ति, १६६१
बिल्लेसुर बकरिहा—किताब महल, प्रयाग; नवीन संस्करण, १६५८
लिली—गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ; सातवी आवृत्ति, १६६१
सुकुल की बीवी—भारती भंडार, प्रयाग; तृतीय संस्करण, १६५५
चतुरी चमार—किताब महल, इलाहाबाद; १६५७
रवीन्द्र कविता-कानन—हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी; १६५४
प्रबन्ध पद्म—गगा पुस्तक माला, लखनऊ; प्रथम संस्करण, १६३४
प्रबन्ध प्रतिमा—भारती भंडार, प्रयाग; प्रथम सस्करण, १६४०
चाबुक—कला मन्दिर, प्रयाग; प्रथम संस्करण, (प्रकाशन वर्ष अप्रकाशित)
चयन—कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स; वाराणसी; प्रथम सस्करण, १६५७
संग्रह—निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग; १६६२